चौखम्बा संस्कृत सीरीज ११९

श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचितः

कौलावलीनिर्णयः

(कौलसम्प्रदायान्तर्गतः)

सम्पादकः भूमिकालेखक
डॉ. सुधाकर मालवीय

हिन्दी व्याख्याकार
पं. रामरञ्जन मालवीयः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
११९

श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचितः

कौलावलीनिर्णयः

(कौलसम्प्रदायान्तर्गतः)

'निरञ्जन'-हिन्दीव्याख्योपेतः

सम्पादकः भूमिकालेखकश्च
डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम.ए., पीएच.डी., साहित्याचार्य,
निदेशक
महामना संस्कृत अकादमी
(पूर्व सम्बद्ध) संस्कृत विभागः, कलासंकायः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

हिन्दी व्याख्याकारः
पं० रामरञ्जन मालवीयः
महामना संस्कृत अकादमी
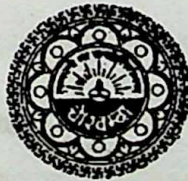
चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०६२, सन् २००५
टाइपसेटर : मालवीय कम्प्यूटर्स, वाराणसी

ISBN : 81-7080-171-0

पो० बा० नं० १००८
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : आफिस : ०५४२-२३३३४५८
आवास : ०५४२-२३३४०३२, २३३५०२०
फैक्स : ०५४२-२३३३४५८
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
Web-site : www.chowkhambaseries.com

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बाक्स १११८, वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : २३३५०२०

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
119

KAULĀVALĪNIRṆAYAḤ

(Belongs to Kaula Sampradāya)

by

Paramahansa **Srī Majjñānānanda**

With **Niranjan**-Hindi Commentary

Introduction by

Dr. Sudhakar Malaviya

M.A., Ph.D., Sahityacarya

Director

Mahamana Sanskrit Academy

(Retd.) Department of Sanskrit, Arts Faculty

Banaras Hindu University, Varanasi

Translated by

Pt. Ram Ranjan Malaviya

Mahamana Sanskrit Academy
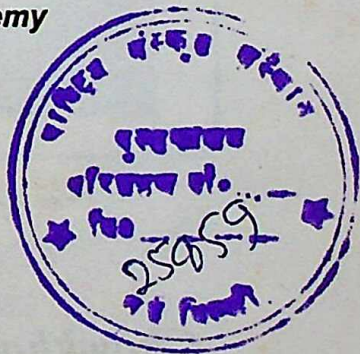
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI - 221001

ब्रह्मलीन पूज्यपाद
स्वामी सुखानन्द सरस्वतीजी महाराज
(भगवती दुर्गा के अनन्य उपासक)
को
सादर समर्पित श्रद्धा-सुमन

—रामरञ्जन मालवीयः

प्राक्कथन

कौलावली निर्णय का प्रस्तुत संस्करण शिव एवं शक्ति के उपासकों के समक्ष इदंप्रथमतया हिन्दी के साथ प्रस्तुत है। प्रस्तुत संस्करण का मूल सर जॉन वुडरफ के मूल पर आधारित है तथा अनेक स्थानों पर पाठों को निम्न ग्रन्थों से मिलाकर शुद्ध किया गया है। श्रीमज्ज्ञानानन्द ने विभिन्न ग्रन्थों से लेकर कौल सम्प्रदाय के साधकों के लिए यह प्रकीर्ण ग्रन्थ लिखा है। उन्होंने प्रथम उल्लास में ही उन ६८ ग्रन्थों का विवेचन प्रस्तुत किया है, जिनसे इस ग्रन्थ को बनाने में सहायता ली गई है। वे ग्रन्थ निम्न हैं—

रुद्रयामल, ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल, भावचूडामणितन्त्र, चूडामणि, कुलचूडामणि, कुलसार, कुलोड्डीश, कुलामृत, कुलार्णव, कालिका-कुलसर्वस्व, कुलसद्भाव, कालीतन्त्र, कुलानन्द, कुलचक्र, कालीकल्प, महाकौल, कुमारीतन्त्र, समयाख्य कालीतन्त्र, फेत्कारीतन्त्र, फेरवीतन्त्र, श्रीक्रमतन्त्र, योगिनीतन्त्र, श्रीहंसपरमेश्वरतन्त्र, स्वतन्त्रतन्त्र, तन्त्रराजतन्त्र, ज्ञानमालातन्त्र, वायवी हंसतन्त्र, ताराकल्प, मालिनीतन्त्र, मन्त्रनिर्णयतन्त्र, योगिनीहृदयतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, गान्धर्वउड्डीयानतन्त्र, तोडलतन्त्र, शिवशासनतन्त्र, मन्दरतन्त्र, प्लावनीतन्त्र, वीरावलीतन्त्र, वाराहीतन्त्र, वीरतन्त्र, कुब्जिकातन्त्र, नीलतन्त्र, मत्स्यसूक्ततन्त्र, ललितातन्त्र, शम्भुनिर्णयतन्त्र, वामकेश्वरतन्त्र, बटुकसंहिता, तारार्णवतन्त्र, गुप्तार्णवतन्त्र, चण्डरोषतन्त्र, मायातन्त्र, नीलमणितन्त्र, समया नामक तन्त्र, तन्त्रसार, मन्त्रविमर्शिनी, ज्ञानसार, योगवतीतन्त्र, भैरवीतन्त्र, भैरवमहातन्त्र, सिद्धसारतन्त्र, त्रिपुरार्णवतन्त्र, उत्तरतन्त्र, छिन्नातन्त्र, वातुलतन्त्र, दक्षिणामूर्तिसंहिता, नयोत्तरतन्त्र तथा एकवीरातन्त्र।

प्रस्तुत ग्रन्थ में इक्कीस उल्लास हैं और प्रायः तीन हजार श्लोकों में कौलानुसार पूजा पद्धति वर्णित है। इसमें दो प्रकार की पूजा का वर्णन किया गया है—१. बाह्य पूजा और २. आन्तरिक पूजा। आन्तरिक पूजा से सम्बन्धित स्वामी करपात्रीजी का एक संस्मरण मुझे स्मरण है। स्वामी जी जब नारद घाट पर ब्रह्मलीन होने से पूर्व अस्वस्थ थे, तो उस समय अर्धरात्रि में वह बैठे हुए थे। उनके शिष्य ने कहा गुरुजी आप अस्वस्थ हैं कृपया लेट जाइये। कई बार शिष्य के कहने पर गुरुजी ने उसे 'हूँ' कहकर शिष्य को डाँट लगाई। दूसरे दिन स्वामीजी ने शिष्य से पूछा कि तुम हमारे शिष्य हो, या हम तुम्हारे शिष्य हैं। शिष्य ने सहजता से उत्तर दिया—मैं ही आपका शिष्य हूँ। स्वामी जी ने कहा—

फिर रात्रि में तुम जो आदेश दे रहे थे क्या वह ठीक था। तुम्हीं बताओ; अभी मैंने त्रिपुरसुन्दरी को स्नान ही करवाया था। अभी तो सारे उपचार उनके बाकी ही थे। फिर मैं सो कैसे जाता। वस्तुतः रात्रि १२.०० बजे से ३.०० बजे तक रात्रि में मानस पूजा का समय होता है जो स्वामी जी कर रहे थे। बाह्य पूजा में आवरण पूजा मुख्य होती है। उसमें पात्रों के स्थापन से लेकर सभी पूजोपचार किए जाते हैं।

श्रीमज्ज्ञानानन्द ने जिन ग्रन्थों से सार लेकर इस ग्रन्थ को रचा है; उपर्युक्त उन सभी ग्रन्थों का प्रकाशन होना चाहिए। यद्यपि ये ग्रन्थ प्रचलित हैं लेकिन बहुत से ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित हैं। उन्होंने दो प्रकार के काली तन्त्रों को भी उद्धृत किया है। जिनमें से एक समयाख्य काली तन्त्र है। उन्होंने दो प्रकार के कुलार्णव का भी उल्लेख किया है। उसमें से एक कुलामृत कुलार्णव है।

राष्ट्रहित में इन ग्रन्थों का सम्पादन होना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः तन्त्र के प्रति समाज में बड़ी ही भ्रान्ति है और ग्रन्थों के विलोप का यही कारण भी है। इसलिए इस ग्रन्थ की भूमिका में विद्वान् लेखक ने इस ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक का गूढ़ रहस्यार्थ भी दिया है जो अवश्यमेव देखना चाहिए। वस्तुतः कौल सम्प्रदाय में समयाचार और वामाचार दो प्रकार के आचारों का वर्णन बतलाया गया है। इनका रहस्यार्थ भी भूमिका में आरम्भ में ही दिया गया है।

मैं भारतीय समाज के कल्याण के लिए तन्त्र ग्रन्थों के सम्पादन और उनके अनुवाद में संलग्न हूँ। मेरा दृष्टिकोण यह है कि राष्ट्र के पास वह शास्त्र है जिससे बड़े-बड़े दुर्योग से बचा जा सकता है। पीताम्बरा पीठ, दतिया, मध्यप्रदेश के स्वामी जी राष्ट्रगुरु कहे जाते हैं। यह सर्वविदित है कि उन्होंने अनुष्ठान द्वारा पं० जवाहर लाल नेहरू को यजमान बना कर १९६२ के चीन-भारत युद्ध को रोक दिया था। दतिया, मध्यप्रदेश में वह स्थल आज भी देखा जा सकता है।

हमारा शोधकार्य भारत देश के हित में उन तन्त्र ग्रन्थों को उजागर करने का है, जो विलुप्त प्राय हैं। हमारे शोध संस्थान 'महामना संस्कृत अकादमी' से बहुत से साधक जुड़े हुए हैं। हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। शक्ति के उपासकों से मेरी प्रार्थना है कि राष्ट्रहित में तन्त्रग्रन्थों की उपलब्धता के विषय में मेरा दिशा-निर्देश करें और अपना सुझाव अवश्य दें।

श्रीमज्ज्ञानानन्द की सूची में शारदातिलक एवं सर्वोल्लास तन्त्र का उल्लेख नहीं है जबकि कुण्ड निर्माण से सम्बन्धित प्रायः ७० श्लोक वहीं से लिए गये हैं। एकादश पात्र की स्तुति बहुत कुछ सर्वोल्लास तन्त्र में मिलती-जुलती है। प्रस्तुत संस्करण में शुद्ध अक्षरशः अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु स्खलन होना तो मानव स्वभाव है। इस ग्रन्थ में वर्णसंकेतसूची, पारिभाषिक शब्दकोश और श्लोकानुक्रमणिका सम्बद्ध है। जो शोधकर्त्ताओं के लिए अत्यन्त

उपयोगी सिद्ध होगी । प्रस्तुत शक्ति विषयक तन्त्र ग्रन्थ के प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज के व्यवस्थापकों को मेरा धन्यवाद है ।

यद्यपि यह ग्रन्थ प्राय: एक दशक से मेरे शोध कार्यों में सम्मिलित था तथापि भगवान् विश्वनाथ एवं भगवती पार्वती की महती कृपा से यह आज वर्तमान स्वरूप में प्रकाशित हो पाया । इस ग्रन्थ के भूमिका लेखक एवं सम्पादक मेरे पूज्य पिताजी डॉ० सुधाकर मालवीय, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पूर्व में सम्बद्ध रहे हैं और सम्प्रति 'महामना संस्कृत अकादमी' के निदेशक हैं। आपसे ग्रन्थ को समझने में और इसका पाठ सुधारने में मुझे अत्यन्त सहायता प्राप्त हुई है । उन्हीं के निर्देशन में यह कार्य आज पूर्णता को प्राप्त हुआ है । तदर्थ मैं उनसे आशीर्वाद की कामना करता हूँ । ग्रन्थ की पूर्णता के समय मैं अपने पितामह स्व० पं० रामकुबेर मालवीय का स्मरण कर रहा हूँ । अपनी शैशवावस्था में मैंने उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया और उनकी तान्त्रिक साधना जो मैंने देखी और उससे जो प्रेरणा प्राप्त हुई उसका मैं अत्यन्त ऋणी हूँ ।

यह ग्रन्थ ब्रह्मलीन स्वामी सुखानन्द सरस्वती को समर्पित किया गया है । इन्होंने काशी में नगवा, गङ्गा के तट पर अपने आश्रम में दुर्गासप्तशती का मन्दिर बनवाया है । सम्पूर्ण सप्तशती संगमरमर पत्थर पर खुदाई करके लिखी गयी है । मेरे पिता पर उनकी महती कृपा थी और मैंने भी उनका दर्शन किया था। ये शिवाम्बु पान करते थे और देवी के अनन्य उपासक थे । एक बार इन्होंने आश्रम पर भी पञ्चाग्नि-तपन भी किया था जिसे मेरे पिताजी ने भी देखा था । ये बाढ़ के समय भी मचान बनाकर उसी स्थान पर रहते थे । १९५० ई. से १९९३ ई. तक एक ही स्थान पर कुटिया बनाकर रहते हुए मेरे पिताजी ने इन्हें देखा है । स्वामीजी यश: शरीर से मेरे ऊपर प्रसन्न होवें और मुझे विद्या में गति प्रदान करें। इसी कामना के साथ यह ग्रन्थ उन्हें सादर समर्पित है ।

अन्त में मै भगवती अन्नपूर्णा एवं काशी विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझ पर प्रसन्न हों और इस तन्त्र ग्रन्थ से मानव मात्र एवं राष्ट्र का कल्याण करें।

दीपावली, वि.सं० २०६२
१.११.२००५

विदुषां वशंवद:
रामरञ्जन मालवीयः

महामना संस्कृत अकादमी
(शैवागम एवं पाञ्चरात्र आगम शोध योजना)
B. 31/21 A लंका वाराणसी - 5
Ph. [0542] 2369318

॥ श्रीः ॥

समरूपं विधातव्यं वैपरीत्यं परित्यजेत् ।
पृथक् स्थानं पृथग्ध्यानं पृथक्पूजा पृथक् स्तुतिः ॥ १ ॥

न कर्त्तव्या प्रयत्नेन किमेभिर्बहुजल्पितैः ।
वीरापत्यकुले चैव वीरपत्नीकुलेऽपि च ॥ २ ॥

सदा तिष्ठति देवेशि नात्र कार्या विचारणा ।
तासां निश्वासयोगेन तद्देशश्चैव नश्यति ॥ ३ ॥

प्रमोदादमृतस्नानं देव्याः स्यान्नात्रसंशयः ।
कुलजा सा महायुद्धे वीरास्फालननादिनी ॥ ४ ॥

अपने कुल (स्त्री) से समता का व्यवहार करना चाहिये विरुद्ध व्यवहार सर्वथा वर्जित करे । उससे अलग स्थान में अलग रहकर ध्यान, अलग पूजा और अलग प्रार्थना कदापि नहीं करनी चाहिये । यह प्रयत्नपूर्वक वर्जित करना चाहिये । इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ? महाभगवती वीरापत्य कुल में तथा वीरपत्नी कुल में सर्वदा निवास करती हैं । इसमें विचार की आवश्यकता नहीं है । यदि कुल स्त्री ने दुःखपूर्वक श्वास लिया तो सारा देश नष्ट हो जाता है । जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न होकर निवास करती हैं वहाँ स्वयं भगवती अमृत में स्नान करती हैं इसमें संशय नहीं । ऐसी कुलजा महायुद्ध में बड़े-बड़े वीरों को भी आस्फालित कर देती है अर्थात् पराभूत कर देती है ॥ १-४ ॥

—कौलावलीनिर्णयः (११.३९-४२)

भूमिका

वैदिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा शाक्त उपासना श्रेष्ठ मानी जाती है । आगमों के आचार का विकास होने पर शाक्तमत के दो उपसम्प्रदाय हो गये—(१) दक्षिणाचार (वैदिक मार्ग) और (२) वामाचार । दक्षिणाचार को समयाचार भी कहते हैं और वामाचार को कौलाचार । दक्षिणाचार सदाचारपूर्ण और दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी है । इसका अनुयायी साधक अपने को शिव मानकर पञ्चतत्त्वों से शिवा अर्थात् शक्ति की पूजा करता है । इसमें पञ्च मकारों (मद्यादि) के स्थान पर विजयारस का सेवन होता है । इसके अनुसार शक्ति और शक्तिमान् की अभिन्नता की अनुभूति योग के द्वारा होती है । योग शक्ति-उपासना का प्रधान अङ्ग है । शरीरस्थ योग के छह चक्रों में कुण्डलिनी और आज्ञा दो चक्र महाशक्ति के प्रतीक हैं । आज्ञाचक्र की शक्ति से ही विश्व का विकास होता है ।

समयाचार—यौगिक साधनाओं में 'समय' का एक विशेष अर्थ है । हृदयाकाश में चक्रभावना के द्वारा शक्ति के साथ अधिष्ठान, अनुष्ठान, अवस्थान, नाम तथा रूप भेद से पाँच प्रकार का साम्य धारण करने वाले शिव ही 'समय' कहे जाते हैं । 'समय' वास्तव में शिव और शक्ति का सामरस्य (मिश्रण) है । 'समयाचार' की साधना के अन्तर्गत मूलाधार में से सुप्त कुण्डलिनी को जगाकर स्वाधिष्ठान आदि चक्रों से ले जाते हुए सहस्रार चक्र में अधिष्ठित सदाशिव के साथ ऐक्य या तादात्म्य करा देना ही साधक का मुख्य ध्येय होता है ।

वामाचार—वामाचार अथवा कौलमत की साधना दक्षिणाचार से भिन्न है किन्तु ध्येय दोनों का एक ही है । 'कौल' उसको कहते हैं जो शिव और शक्ति का तादात्म्य कराने में समर्थ है । 'कुल' शक्ति अथवा कुण्डलिनी है, 'अकुल' शिव हैं । जो साधक अपनी यौगिक साधन से कुण्डलिनी को जागृत कर सहस्रार चक्र में स्थित शिव से उसका मिलन कराने में सक्षम है वही 'कौल' है । कौल का आचार कौलाचार अथवा वामाचार कहलाता है । इस कौलाचार में पञ्च मकारों का सेवन होता है । ये पञ्च मकार इस प्रकार हैं—१. मद्य, २. मांस, ३. मत्स्य, ४. मुद्रा और ५. मैथुन । वास्तव में ये नाम प्रतीकात्मक हैं और इनका रहस्य गूढ है । **१. मद्य का रहस्य**—मद्य भौतिक मदिरा नहीं है, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल से स्यूत अमृत ही मधु या मदिरा है । **२. मांस का रहस्य**—जो साधक ज्ञानरूपी खड्ग से वासनारूपी (पाप-पुण्य) पशुओं को मार कर अपने मन को शिव में लगाता है; वही मांस का सेवन है । **३. मत्स्य का रहस्य**—मत्स्य

शरीर में स्थित इडा एवं पिङ्गला नाड़ियों में प्रवाहित होने वाला श्वास तथा प्रश्वास है । वही साधक मत्स्य का सेवन करता है जो प्राणायाम की प्रक्रिया से श्वास-प्रश्वास को रोककर अपनी प्राणवायु को सुषुम्ना नाड़ी के भीतर सञ्चालित करता है । **४. मुद्रा का रहस्य**—असत् सङ्ग का त्याग और सत्सङ्ग का सेवन ही मुद्रा बतलायी गयी है । **५. मैथुन का रहस्य**—सहस्त्रार चक्र में स्थित शिव और कुण्डलिनी (शक्ति) का मिलन मैथुन (दो का एक होना) है ।

कौलसम्प्रदाय—मूलतः कौलसाधना यौगिक उपासना थी । कालान्तर में कुछ ऐसे लोग इस साधना में घुस आये जो आचार के निम्न स्तर के अभ्यासी थे। इन लोगों ने पञ्च मकारों का भौतिक अर्थ लगाया और उनके द्वारा भौतिक मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का खुलकर सेवन होने लगा । वामाचार के पतन और दुर्नाम का यही कारण था ।

शाक्त दर्शन में छत्तीस तत्त्व माने गये हैं; जो तीन वर्गों में विभक्त हैं—(१) शिवतत्त्व, (२) विद्यातत्त्व और (३) आत्मतत्त्व । शिवतत्त्व में दो तत्त्वों, शिव और शक्ति का समावेश है । विद्यातत्त्व में सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या सम्मिलित हैं। आत्मतत्त्व में इकतीस तत्त्वों का समाहार है, जिनकी गणना इस प्रकार है— माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति; पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) और पाँच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) ।

शिव-शक्ति के सङ्गम में शाक्त मत के अनुसार परा शक्ति की ही प्रधानता होती है। परम पुरुष के हृदय में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न होते ही उसके दो रूप, शिव और शक्ति प्रकट हो जाते हैं । शिव प्रकाशरूप हैं और शक्ति विमर्शरूप । विमर्श का तात्पर्य है पूर्ण और शुद्ध अहङ्कार की स्फूर्ति । इसके कई अन्य नाम भी हैं—चित्, चैतन्य, स्वातन्त्र्य, कर्तृत्व, स्फुरण आदि । प्रकाश और विमर्श का अस्तित्व युगपत् रहता है । प्रकाश को संवित् और विमर्श को 'युक्ति' भी कहा जाता है । शिव और शक्ति के आन्तर निमेष को 'सदाशिव' और बाह्य उन्मेष को 'ईश्वर' कहते हैं । इसी शिव-शक्तिसङ्गम से सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न होती है ।

आचार का ऐतिह्य—शाक्त मत में वामाचार के उद्गम और विकास को लेकर कई मत प्रचलित हैं। कुछ लोग इसका उद्गम भारत के उस वर्ग से मानते हैं, जिसमें मातृशक्ति की पूजा आदि काल से चली आ रही थी, परन्तु वे लोग स्मार्त आचार से प्रभावित नहीं थे। दूसरे विचारक इस सम्प्रदाय में वामाचार के प्रवेश के लिए तिब्बत और चीन का प्रभाव मानते हैं । बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय इसका माध्यम था । रुद्रयामल[१] एवं चीनाचार आदि कई आगम ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख है कि वसिष्ठ ऋषि ने बुद्ध के उपदेश से चीन देश में जाकर तारा

१. द्र० रुद्रयामल

देवी का दर्शन किया था । इससे स्पष्ट है कि तारा की उपासना चीन से भारत में आयी । नेपाली बौद्ध ग्रन्थ 'साधनमाला' का तन्त्र के जटासाधन प्रसङ्ग में निम्नांकित कथन भी इस तथ्य की पुष्टि करता है—

'आर्य नागार्जुनपादैर्भोटदेशात् समुद्धृता ॥'

(तारा देवी की मूर्त्ति आर्य नागार्जुनाचार्य द्वारा भोट देश (तिब्बत) से लायी गयी) 'स्वतन्त्रतन्त्र' नामक ग्रन्थ में भी तारा देवी की विदेशी उत्पत्ति का उल्लेख है—

मेरोः पश्चिमकोणे तु चोलनाख्यो ह्रदो महान् ।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती ॥

शाक्तों के पाँच वेदों, पाँच योगियों और पाँच पीठों का उल्लेख 'कुलालिकातन्त्र' में पाया जाता है । इनमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और ऊर्ध्व ये पाँच आम्नाय अथवा वेद है । महेश्वर, शिवयोगी आदि पाँच योगी हैं । उत्कल में उड्डियान, पंजाब में जालन्धर, महाराष्ट्र में पूर्ण, श्रीशैल पर मतङ्ग और कामरूप में कामाख्या ये पाँच पीठ हैं । आगे चलकर शाक्तों के इक्यावन पीठ हो गये और इस मत में बहुसंख्यक जनता दीक्षित होने लगी । इसका सबसे बड़ा आकर्षण यह था कि (भैरवी) चक्रपूजा में सभी शाक्त (चाहे वे किसी वर्ण के हों) ब्राह्मण माने जाने लगे । धार्मिक संस्कारों के मण्डल, यन्त्र और चक्र जो शक्तिपूजा के अधिष्ठान थे, वैदिक और स्मार्त संस्कारों में भी प्रविष्ट हो गये ।

कौल साहित्य—शाक्त मत का विशाल साहित्य है जिसका बहुत बड़ा अंश अभी तक अप्रकाशित है । इसके दो उपसम्प्रदाय हैं—१. श्रीकुल और २. कालीकुल । प्रथम उपसम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थों में अगस्त्य का शक्तिसूत्र तथा शक्तिमहिम्नस्तोत्र, सुमेधा का त्रिपुरारहस्य, गौडपाद का विद्यारत्नसूत्र[१], शङ्कराचार्य के सौन्दर्यलहरी और प्रपञ्चसार एवं अभिनवगुप्त का तन्त्रालोक[२] प्रसिद्ध है । दूसरे उपसम्प्रदाय में कालज्ञान, कालोत्तर, महाकालसंहिता[२] आदि मुख्य हैं । इन सभी का सार विवेचन 'आगमरहस्य' में देखना चाहिए ।

कौलावली निर्णय के रचयिता श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस हैं जिनके जीवन के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है और किसी अन्य पुस्तक से इनका नाम भी जुड़ा नहीं है । कौलावली कौल सम्प्रदाय के साधकों में अत्यन्त प्रसिद्ध तन्त्र है । इसी प्रकार का एक अन्य तन्त्र ग्रन्थ 'कौलिकार्चन-दीपिका' भी है; किन्तु इसमें इतने विस्तार से विवेचन नहीं है; जितने विस्तार से कौलावली में है । यद्यपि कौलिकार्चनदीपिका में कुछ और भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन है; जो कौलावली में नहीं है ।

---

१. यह दतिया, मध्यप्रदेश से प्रकाशित है ।
२. यह ग्रन्थ प्रो० राधेश्याम चतुर्वेदी की हिन्दी के साथ चौखम्बा से प्रकाशित है ।

कौलावली की पाण्डुलिपि अप्राप्त थी । कौल साधक इसे बताना नहीं चाहते । इसीलिए वी. आर. एम. चट्टोपाध्याय ने एक पाण्डुलिपि पर ही आधृत ग्रन्थ को सम्पादित किया था । स्वामी विमलानन्द के पुत्र प्रो. राय चौधुरी से प्राप्त एक पाण्डुलिपि, जिसे उन्होंने मुर्शिदाबाद के एक कौल साधक परिवार से प्राप्त किया था, सर जान वुडरफ ने सम्पादित किया । उसी से मूल का प्रस्तुत संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ पुनः सम्पादित किया गया है ।

प्रथम उल्लास के प्रारम्भ में ही श्रीमज्ज्ञानानन्द ने उन तन्त्रग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिस पर प्रस्तुत कौलावली आधृत है । यद्यपि ये सभी तन्त्र प्रचलित हैं; किन्तु उनमें कुछ अभी भी अप्रकाशित हैं । उन्होंने अद्वैत वेदान्त के विशिष्ट विद्वानों से भी सम्पर्क करके इस ग्रन्थ की रचना की है । इन तन्त्र ग्रन्थों की सूची में ज्ञानानन्द दो कुलार्णव का उल्लेख करते हैं जिसमें से एक कुलामृत कुलार्णव है और उन्होंने दो प्रकार के काली तन्त्रों को भी उल्लेख किया है; जिनमें से एक समयाख्य कालीतन्त्र है । सामान्य साधक के लिये कौलावली का मूल अत्यन्त कठिन है और कुछ स्थलों पर स्पष्ट भी नहीं है ।

कई स्थानों पर मूल-पाठ का उल्लेख इस तरह से किया गया है कि वह इस विषय से परिचित लोगों के लिये मात्र स्मृति सहायक हो और कई स्थानों पर जहाँ इस बात की सम्भावना है कि इस ग्रन्थ से अपरिचित मूल का तत्त्वज्ञ पाठक गलत अर्थ न लगा ले या गलत अर्थ न समझ ले, वहाँ व्याकुलिताक्षर (अव्यवस्थित श्लोक) रूप में प्रस्तुत किया गया है जैसा की तन्त्रराज (पटल VIII और XII) में भी किया गया है । इसकी भूमिका से ऐसे संकेत प्राप्त किये जा सकते हैं, जिससे मूल पाठ को पुनः संयोजित किया जा सके ।

नित्यषोडशिकार्णव (आनन्दाश्रम सीरीज) के कुछ अंश भी इसी प्रकार अव्यवस्थित (व्याकुलित) हैं । वहीं श्लोक संकेत पाठक को यहाँ श्लोक पुनः व्यवस्थित करने में मदद करेंगे । अव्यवस्थित श्लोक कौलावली के IV, V और VIII उल्लास में आये हैं ।

कहा जाता है कि ऐसी पुस्तकों का संग्रह करने की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न हुई कि कुछ विशिष्ट विद्वानों के ऐसे शिष्य थे, जिनको दूसरे और पुराने तन्त्रों की प्रक्रिया से नहीं सिखाया जा सकता था । अतः उन्होंने उन प्रक्रियाओं को सुधारने की आवश्यकता समझी, जिससे की उनके शिष्यों को आत्मसंयम सिखाया जा सके । इस पुस्तक में जो भी कहा गया है, उसके साथ यह आदेश बार-बार कई तरह से दिया गया है कि स्त्री का आदर पृथ्वी पर आदिशक्ति के रूप में करना चाहिये और जीवन के सुखों का उपभोग करने में संयम से काम लेना चाहिये । जैसा की कई स्थानों पर कहा गया है कि तन्त्रशास्त्र का उद्देश्य प्रवृत्ति के पथ पर होते हुए भी मोक्ष की ओर ले जाना है ।

इस पुस्तक के इक्कीस उल्लासों के संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत है जिसमें पाठकों का ध्यान पुस्तक के ध्येय की तरफ खींचने की कोशिश की गई है। चट्टोपाध्याय के मूल-पाठ में पुस्तक का विभाजन बाइस अध्यायों में किया गया है, यद्यपि दोनों का विषय लगभग समान है।

कौलावलीनिर्णय का प्रतिपाद्य

प्रथम उल्लास जिसका मूल प्रायः कुलार्णव से लिया गया है; में मनुष्य के रूप में अपने जीवन का सबसे अच्छा उपयोग करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। जो मोक्ष की तलाश करता है उसे तत्त्व अर्थात् ब्रह्म के लिये समर्पित होना चाहिये। इस उल्लास में गुरु के लिये ध्यान और उनकी पूजा के लिये मन्त्र बतलाया गया है।

द्वितीय उल्लास में इस बात का उल्लेख है कि कौल साधक किस प्रकार स्नान करे और उस प्रकार के संस्कार हेतु मन्त्र और मुद्रा का किस तरह से आधान करे। यहाँ पृथ्वी पर बैठने के लिये मन्त्र द्वारा आज्ञा माँगते हैं—'हे पृथ्वि! आपके द्वारा सभी चीजें अपनी जगह अवस्थित हैं। आप स्वयं भी विष्णु के द्वारा अवस्थित हो। आप मेरा सहयोग करो। आप मेरे आसन को पवित्र करो'—इस प्रकार ऊपर किये गये उल्लेख द्वारा यह प्रगट होता है कि साधक किस प्रकार उपासना हेतु आसन ग्रहण करे। यह इस बात की आवश्यकता पर भी बल देता है कि साधक और उसकी शक्ति (महादेवी) की उपासना हेतु किस प्रकार से अपनी भार्या (या शक्ति) की सहायता ले। इसके ११० और १११ श्लोक में कहा गया है कि उपासना में साधक किस प्रकार मद्य (या विजया) को प्रयोग में लावे; किन्तु यह पूर्णतया पवित्र होना चाहिए। विजया के कुल चार प्रकार बतलाये गये है, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण के हैं। इनको प्रयोग करने हेतु इनके चार प्रकार के मन्त्र भी बतलाये गये हैं। प्राणायाम द्वारा भूतशुद्धि, न्यास और अनेक प्रकार के कर्मों हेतु भी यहाँ नियम प्रतिपादित किये गये हैं। किस प्रकार से साधक के शरीर में देवता का जीवतत्त्व (आत्मा) समावेशित किया जाय इसका भी यहाँ उल्लेख है।

तृतीय उल्लास में अन्तर्याग की उपासना के विषय में बतलाया गया है। यदि मनुष्य कोई भी बाहरी याग या यज्ञ सम्बन्धी बलिदान आदि कर्म करता है तो वह फलदायी नहीं होता। अन्तर्याग कई प्रकार से किया जा सकता है। जैसे—कुण्डलिनीयोग या ध्यानयोग द्वारा। साधक ध्यान करे कि अपने हृदय में अमृत के समुद्र पर, रत्नों के द्वीप के मध्य, सुवर्ण के रेत से जिसके तट परिपूर्ण हैं, वह द्वीप पूर्णतया पारिजात नामक वृक्षों से आच्छादित है और जिसके मध्य एक कल्पवृक्ष है, जो वर्णमाला के पचास अक्षरों से समन्वित है। वृक्ष के नीचे एक तेजःपुञ्ज रूप मन्दिर अर्थात् ज्योति मन्दिर विद्यमान है; जो कि विभिन्न रत्नों से

सुशोभित है। यह उगते हुए सूर्य के समान चमकीला और सौ योजन के विस्तार वाला है। विश्व में चारो ओर जिसका प्रकाश व्याप्त है। जो सुवर्ण की चहारदीवारी से घिरा हुआ है, जिसके चार प्रवेश द्वार हैं। ध्वज, पताका और घण्टियाँ उसकी सुन्दरता को बढ़ा रही है। फूलों की सुगन्ध लिए शीतल मन्द समीर द्वीप पर बह रहा है। मन्दिर के भीतर एक रत्न जटित वेदी है, जिसके ऊपर सुवर्ण के धागों से निर्मित छत्र शोभायमान हो रहा है। वेदी पर रखे कलश में भरे अमृत में स्थित यन्त्र पर तत्त्वज्ञ साधक को अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

यन्त्र का रहस्य है मद्य या अमृत से आप्लावित आधान पात्र। मूल में आगे साधक के द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले विभिन्न धार्मिक कृत्यों के बारे में और उपासना हेतु विभिन्न पात्रों के उपयोग के बारे में बतलाया गया है। यह उपासना या तो मानस हो अथवा समग्र उपासना हो; इसे स्थूल रूप में करनी चाहिए, जो कि साधक के सामर्थ्य पर निर्भर करती है। इस अध्याय में कुण्डलिनी शक्ति के बारे में बतलाया गया है कि योगी साधक अपने मस्तिष्क को किस प्रकार महाशून्य में समाहित करे। जब वह अपंने को महाशून्य में समाहित कर लेता है तो वह योगियों में अग्रगण्य हो जाता है। इस समय उसके आत्मा का प्रकाश ऐसे कोटि में होता है, जो निरालम्बपद में प्रतिष्ठित हो जाता है।

इसके पश्चात् **होम विधि** कहते हैं, जिससे चिन्मयता प्राप्त होती है। उत्तम साधक अपने को अपरिच्छिन्न अव्यय की भावना करे और आत्मा, अन्तरात्मा तथा परमज्ञानात्मा—इनका एकीभूत रूप ही चित्कुण्ड चतुरस्त्र है ऐसा ध्यान करे। आनन्दमय सुरम्य मेखला है, जिसमें तीन बिन्दुमय तीन वलय हैं और अर्धमात्रा योनिरूप ब्रह्मानन्दमय है। सर्वज्ञान-विजृम्भित परदेवमय सम्विदग्नि में स्थिरचित्त साधक हवन द्रव्य का हवन करे। 'अ' से 'क्ष' तक वर्ण-विराजित शब्दब्रह्म मातृका रूप हैं। उसमें समस्त अक्षर हुत हैं। शब्द ही ब्रह्म है। कृत्य-अकृत्य, पाप-पुण्य, सङ्कल्प-विकल्प, धर्माधर्म—इन सबको साधक हवनीय द्रव्य कल्पित करे। नाभिमण्डल में स्थित चिदग्नि में मनरूपी स्रुवा से निम्नलिखित मन्त्रों के आदि में मूलमन्त्र जोड़कर यथाक्रम साधक हवन करे—

नाभि-मण्डल-चैतन्य-रूपाग्नौ मनसा स्रुचा।
ज्ञान-प्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥ स्वाहा ॥
धर्माधर्म-हविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्ना-वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥ स्वाहा ॥
प्रकाशाकाश-हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मौ कला-स्नेह-पूर्ण-वह्नौ जुहोम्यहम् ॥ स्वाहा ॥
अन्तर्निरन्तर-निबन्धन-मेधमाने ।

मायान्धकार-परिपन्थिनि सम्विदग्नौ ॥ स्वाहा ॥
कस्मिंश्चिवदद्भुत-मरीचि-विकाशि-भूमौ ।
विश्वं जुहोमि वसुधां, दिशि वावसानम् ॥ स्वाहा ॥
इदं तु पात्रभरितं, महोत्ताप-परामृतम् ।
पूर्णाहुतिमये वह्नौ, पूर्ण-होमं जुहोम्यहम् ॥ स्वाहा ॥

१. महाअन्तर्यजन—अब महाअन्तर्यजन कहेंगे, जो ब्रह्मयज्ञ स्वरूप है । ब्रह्मयज्ञ महायज्ञ है । इसे ब्रह्मज्ञानी साधक अपने मन से ही मन को देखकर सदैव करे । जैसे समस्त नदियाँ सिन्धु में ही प्रविष्ट होकर लय को प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त शरीर को महाशून्य में योगी साधक विनियुक्त करे । यज्ञकर्ता महायोगी है; इसलिये ब्रह्मयज्ञ करके साधक फिर सब मन्त्रों का जप करे । आत्मस्थ यज्ञ ही सब यज्ञों का फलदाता है । अतः कर्मयज्ञ, मनोयज्ञ, प्राणयज्ञ— ये तीन हुताशन हैं । उसे सब यज्ञ करना वर्जित है । वस्तुतः सुषुम्ना के भीतर मन्त्रयज्ञ होता है, जो समस्त यज्ञों का फल देता है । ब्रह्मग्नि में ब्रह्मरूप हवि को ब्रह्मकर्ता के द्वारा ब्रह्म को ही अर्पित करके ब्रह्मकर्म समाधि से ब्रह्म में ही मिलकर ब्रह्मत्त्व प्राप्त करना ही 'ब्रह्मयज्ञ' कहलाता है । स्वयं को ब्रह्म जानकर साधक समस्त कार्य करता रहे ।

२. बहिर्यजन—तन्त्रमार्गानुसार अब बहिर्याग का विधान है । उपर्युक्त अन्तर्यजनों में से किसी एक को करने के पश्चात् साधक स्वेष्टदेवतानुरूप सोने, चाँदी, ताम्र, अष्टधातु अथवा शालिग्राम शिला, जिसमें जिसकी जैसी अभिरुचि हो, यन्त्रराज बनावे । श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, काश्मीर प्रभूत मिट्टी में एवं दर्पण में श्रीयन्त्र बनावे अथवा कुछ न हो तो गोबर से लिपी हुई शुद्ध भूमि में ही बना लेवे अथवा भोजपत्र में, स्फटिक के खण्ड में, रत्न में, कुलशक्ति पर यन्त्र की रचना करे । स्वयम्भू कुसुम, कुण्डगोलोत्थ द्रव्य, रोचना, अगर, केशर, कस्तूरी, मद्य, श्वेत चन्दन—इनसे मिश्रित गन्ध से यन्त्रराज को लिखे । इससे देवी प्रसन्न होती हैं। स्वयम्भू कुसुम से या कुण्डगोलोत्थ कुसुम से इनमें से केवल एक से ही लिखने से सिद्धि प्राप्त होती है; इसमें कोई सन्देह नहीं । श्वेत और रक्त चन्दन, अगर, कपूर, सिन्दूर, कस्तूरी, गोरोचन, लाक्षा, कुलगोलोद्भव, स्वयम्भू कुसुम, केशर—इनसे मिश्रित गन्ध से, सुवर्ण की लेखनी से, रत्नजटित लेखनी से, पुष्प से, बेल के काँटों से स्वयं चक्रराज को लिखे ।

साढ़े-तीन करोड़ तीर्थों के स्नान का फल तत्त्वज्ञ साधक को अपने इष्टचक्र के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है । जो कोई भी साधक यन्त्र का सुरूप आलेखन न जानकर यन्त्र की पूजा में प्रवृत्त होता है, उसका सब कुछ भगवती जगदम्बा हरण कर लेती हैं। अपराजिता के पुष्प में, श्वेत रक्त कनेर के पुष्प में, गुड़हल के पुष्प में, द्राक्षा के पुष्प में सदा देवी का निवास रहता है और इनको

यन्त्रराज के रूप में ग्रहण कर इनमें चण्डिका का पूजन किया जा सकता है।

उत्तर दिशा की ओर मुँह करके यदि चक्र लिखे तो साधक उसे पूर्व ही जाने। इसी प्रकार अन्य दिशाएँ समझे और पीछे पश्चिम आदि का व्यवहार होगा। यन्त्र लिखकर उसे आसन पर रखे। ध्यान रहे कि शीशे, कांसे, रांगे, काठ के पीढ़े या दीवार में यन्त्र की स्थापना कदापि न करे। यन्त्र की स्थापना के पहिले पुष्प रखकर तब उस पर यन्त्र स्थापित करे। यन्त्रपीठ पुष्प गन्ध-चन्दनादि से युक्त होना चाहिये। स्वकल्पोक्त विधि से देवी का ध्यान कर अपने से उसके अभिन्न होने की भावना से साधक अपने शिर पर एक पुष्प रख कर अर्चन करे।

चतुर्थ उल्लास में देवपूजा-भाव, पञ्चतत्त्व-निर्णय, मद्यभेद, मद्य-शोधन एवं उनके शोधन मन्त्र के विषय में बतलाया गया है।

देवपूजा-भाव—बालाम्बा, सव्याम्बा, भैरवी, कामेश्वरी, कामाख्या, महामाया, शारदा, शैलपुत्री एवं अम्बिका—इन देवियों का पूजन दक्षिण एवं वामभाव से किसी प्रकार भी कर सकते हैं; सिद्धि प्राप्त होगी। किन्तु श्मशानभैरवी, काली, उग्रतारा, उच्छिष्टभैरवी, तारा, त्रिपुरसुन्दरी, उन्मुखी, दुर्गा, मर्दिनी और स्वप्न-बोधिनी—इनका पूजन सदैव वामभाव से ही करना चाहिये। अन्यथा दश लाख जन्मपर्यन्त पूजन-जप से भी सिद्धि नहीं मिलती। ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव—ये भी वामभाव से ही उपास्य हैं। विष्णु की वामिका मूर्ति नृसिंह की पूजा दोनों मार्ग से होती है परन्तु वाम भाव से सिद्धि शीघ्र होती है। इसी प्रकार परमात्मा की जितनी भी बालगोपाल मूर्तियाँ हैं, उनका पूजन मत्स्य, मांस, आसवलोलुप भाव से ही सदैव सानन्द करना चाहिये। गणेश और बेताल भी वामभाव के नायक कहे गये हैं। भैरव भी, तद्वत् अन्य देवता भी तथा चण्डिका देवी के अन्य बालिका रूप—लक्ष्मी, रक्ता, दशभैरवी आदि, सरस्वती की बालिका मूर्ति वाग्भवी—इन सबका पूजन वामभाव से ही करना चाहिये; अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती। साधक भी वामाचारी हो तथा गुरु भी।

पञ्चतत्त्व-निर्णय—अब पञ्चतत्त्वों का निर्णय कहते हैं। प्रथम तत्त्व के योग से साधक भैरव होता है तथा दूसरे से ब्रह्म, तीसरे से महाभैरव, चतुर्थ से भूमण्डल में पूजकों का नायक तथा पञ्चम से पूजन करने वाला साधक सर्वसिद्धियों का भोक्ता होता है। जो साधक पञ्चमकारों के बिना देवी की पूजा करता है, उसके जप, हवन, तर्पण सब निष्फल होते हैं और उसके आयु, विद्या, यश एवं धन नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि मकारपञ्चक ही देवता को प्रिय हैं। मद्य, मांस, मीन, मुद्रा तथा मैथुन—इन पाँचों को मकारपञ्चक कहा जाता है।

मद्यभेद—सत्ययुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम से दूध, घी, मधु और पिष्ट से देवी की पूजा किया करते थे। त्रेता में केवल घी से ही सर्व जाति के जन पूजन किया करते थे। द्वापर में मधु से, परन्तु कलियुग में देवी की मद्य

से ही पूजा करनी चाहिये । चारों युगों में तुरीय आसव से सदा देवी का पूजन करना चाहिये ।

अब तन्त्रमार्गोक्त नाना प्रकार का द्रव्य कहते हैं । प्रथम द्रव्य ऊख के रस का, गुड का, पुष्पों का, शहद का एवं फलों का उत्तमं होता है, किन्तु अन्नोद्भव द्रव्य सर्वश्रेष्ठ माना गया है । अथवा पत्र, पुष्प, अंकुर, फल, मूल, वल्कल, धान्य—इन सबके रस का, वृक्षों की लताओं के रस का, ऊख के रस का इस प्रकार मद्य के दश भेद माने गए हैं । कटहल, मुनक्का, महुआ, खजूर, ताड़, शहद, सीधु, माध्वीक, मैरेय, नारियल, ऊख—इस प्रकार ग्यारह तरह के मद्य भुक्ति एवं मुक्तिदायक हैं । बारहवीं सुरा है, जो सर्वश्रेष्ठ है । महुआ और चावलों की पीठी से बनी हुई पैष्टी सुरा सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली है । गुड़ की भोग प्रदात्री है । माध्वी मुक्तिकरी तथा खार्जुरी रिपुनाशिनी और नारियल की लक्ष्मीदायिका एवं ऊख की सुखवर्द्धिका होती है ।

जो साधक असंस्कृत मद्यपान करता है या बलात्कार करता है और अपने स्वाद के लिये जीववध कर मांस खाता है, वह रौरव नरक में जाता है ।

मद्य-शोधन—साधक अपने वामभाग में बिन्दु, षट्कोण, वृत्त, चतुरस्रात्मक मण्डल बनाकर सामान्यार्घ जल से उसका प्रोक्षण कर आधार-शक्ति का उसमें पूजन करे । फिर उस पर आधार स्थापित कर उस पर अग्निमण्डल का पूजन करे । फिर सुवर्ण, चाँदी, ताम्र और मिट्टी का लौह-वर्जित कलश स्थापित करे । सुवर्ण का कलश भोगदाता, चाँदी का मोक्षदाता, काँसे का शान्तिकारक, मिट्टी का पुष्टिकारक कलश होता है ।

जिसका आभ्यन्तरिक भाग पचास अङ्गुल का हो, सोलह अङ्गुल ऊँचा हो और जिसका मुँह आठ अङ्गुल चौड़ा हो—यह कलश का प्रमाण है । पूर्वोक्त कलशों में से यथाशक्ति प्राप्त किसी एक को अस्त्र मन्त्र से धोकर, उसे आधार पर रख उस पर सूर्यमण्डल की पूजा कर, मूलमन्त्र उच्चारण कर, उसे द्रव्य से पूर्ण करे और रक्तपुष्पमाला से उसे विभूषित कर रक्तवस्त्र से वेष्टित कर रक्तचन्दन का लेप करे । फिर द्रव्य में सोममण्डल का पूजन कर द्रव्य में अमृत की भावना कर उसे इष्टदेवता का स्वरूप समझे ।

पञ्चसंज्ञक मुद्राओं से भक्तिभाव से प्रणाम करे । १. दोनों हाथ की गदोरियों को भूमि पर अधोमुख अङ्गुलियों को सीधी करके रखे, इसे चतुरस्त्रिका मुद्रा कहते हैं । २. दोनों मूठियों को अधोमुख करने को संवृत मुद्रा, ३. दोनों पाणितलों को एक दूसरे के अभिमुख सम्पुटाकार मिलाने को सम्पुट मुद्रा कहते हैं—इससे नमस्कार किया जाता है । ४. दोनों कनिष्ठाओं के मूल में दोनों अंगूठों को रखे, फिर दोनों तर्जनियों के ऊपर दोनों मध्यमाओं को, दोनों अनामिकायें और कनिष्ठायें अंगूठों से दबी रहे—इस महामुद्रा को योनिमुद्रा कहते हैं । ५. सम्पुट

मुद्रा बनाकर उसी में दोनों कनिष्ठाओं के मूल में दोनों अंगूठों को लगा देने से सम्पुटाञ्जलि मुद्रा बनती है ।

'ह्रां नम:' उच्चारण कर चतुरस्त्रिका, 'ह्रीं नम:' से सम्वृत, 'ह्रीं नम:' से सम्पुट, 'प्लुं नम:' से सम्पुटाञ्जलि एवं 'स: नम:' से योनिमुद्रा दिखानी चाहिये । इसके अनन्तर मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ भक्तिपूर्वक द्रव्य को देखे । फिर 'ॐ वं वामदेवाय वौषट्' उच्चारण कर उत्तम यन्त्र की पूजा करे । फिर 'ॐ हूँ पशुपतये अस्त्राय हूँ फट्' इस मन्त्र से पथिकदेवताओं के बलिमण्डल की पूजा करे । कुम्भ के समीप ही त्रिकोण एवं भूगृहात्मक मण्डल बनाकर उस पर मद्य, मांस आदि संयुक्त बलिद्रव्य रखे । सिन्दूर कुंकुम आदि से उसकी पूजा कर 'ह्रीं श्रीं सर्वपथिकदेवताभ्यो नम:' से बलि प्रदान कर पुन: उसे बायें हाथ से उठाकर कलश के ऊपर तीन बार घुमाकर मूलमन्त्र उच्चारण पूर्वक बाहर फेंक दे ।

शोधन मन्त्र—इसके पश्चात् हाथ-पैर धोकर कलश के द्रव्य को धूप देकर उसके विकारों को निम्नलिखित मन्त्रों से शोधन करे । कलश के ऊपर हाथ रखकर 'ह्रीं श्रीं छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं छ्र: छुरिकायै अलिशोभिनि विकारानस्य द्रव्यस्य हर हर स्वाहा' इस मन्त्र को तीन बार जप कर विकारों को दूर कर फिर चार प्रकार से और शोधन करे । 'फट्' मन्त्र से ताड़न करे, 'हुँ' से प्रोक्षण करे, मूल मन्त्र से वीक्षण कर 'नम:' से पुन: प्रोक्षण करे ।

मूलमन्त्र से गन्ध लेकर तीन बार नाक में लगाकर फिर द्रव्य के मध्य में योनि (त्रिकोण) की कल्पना करे और उसके बीच में 'ह्सौ:' की । 'ह्सौ: स्हौ:... ....नम:' से उसकी पूजा करे । 'ऐं ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि तन्नोर्धनारिश्वर प्रचोदयात्' इस आनन्दगायत्री का दस बार जप करे । फिर 'ॐ ह्रीं परमप्रकाशिनि परमाकाशशून्यनिवासिनि सूर्यचन्द्राग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा' इस मन्त्र को तीन बार जपे । फिर 'ॐ वां वीं वूं वैं वौं व: ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नम:' मन्त्र को दस बार जपकर ब्रह्मशाप-मोचन करे। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्र: सुरे कृष्णशापं विमोचय अमृतं श्रावय-श्रावय स्वाहा' इसे दस बार जप कर कृष्णशाप का मोचन करे। फिर 'ॐ शां शीं शूं शैं शौं श: शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नम:' मन्त्र को दस बार जप कर शुक्रशाप विमोचन करे । अथवा अन्य प्रकार से शुक्रशाप से मुक्त करे । यथा—'ह्रीं कामेश्वरि अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि क्लीं अमृतं श्रावय सौ: शापं मोचय ज्ञानं देहि सिद्धिसामर्थ्यं देहि दह दह खेचरीं मुद्रां प्रकटय प्रकटय अस्त्राय फट् स्वाहा' इसे दस बार जपे ।

तीनों शापों से मुक्त करने का अन्य प्रकार कहते हैं—

सुराणाममृतं पूर्वं, बलदेवेन धीमता ।
समानीता प्रयत्नेन, पानार्थं वारुणी सुरा ॥

दत्तात्रयेण मुनिना, शुक्रेण च महात्मना ।
धीमता बलभद्रेण, पुरा पीतोत्थितार्णवात् ॥

इसे तीन बार पढ़कर 'क्रीं ऐं ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लौं ब्लैं ब्लः अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि सुरे शुक्रशापं मोचय-मोचय अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा' इस मन्त्र को दस बार जपकर तीनों शापों को मुक्त करे । इसके पश्चात् त्रिशापमोचिनी मन्त्र का जपकर फिर प्रकाशयुक्ता का जप करे । फिर 'ह्रीं श्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृत-वर्षिणि प्रकाशयुक्ते स्वाहा, ह्सौः ह्स् क्लीं हस्रीं ह्स्ख्फ्रें ह्स्रीं भगवती ह्सौः कुब्जिके स्ह्ख्फ्रें सत्रः घोरे खप्रां ख्स्प्रीं किल किल विच्चे ह्स्खात्रं हस्खब्लें ह्स्रीं सौः ह्रीं ह्स्रें' इस मन्त्र का जपकर कलश का द्रव्य अमृत बन गया, ऐसी भावना करके फिर पशुपाशविनाशिनी तिरस्करणी देवी का ध्यान करे । यथा—

नीलं हयं समधिरुह्य पुरः प्रयान्ती,
नीलांशुकाभरण-माल्य-विलेपनाढ्या ।
निद्रापटेन भुवनानि तिरोदधाना,
खड्गायुधा भगवती परिपातु भक्तान् ॥

इस प्रकार ध्यान कर साधक तिरस्करणी देवी के दो मन्त्रों का तीन-तीन बार जप करे, जो इस प्रकार हैं—१. 'ह्रीं श्रीं नमो भगवति माहेश्वरि सर्वपशुजनमन-श्चक्षुस्तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा । २. ह्रीं कामेश्वरि ऐं ग्लैं तिरस्करिणि सकलजन-वाग्वादिनि सकलपशुजनमनश्चक्षुश्रोत्रजिह्वाघ्राण तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा ।' इसके बाद मन्त्रमय हंसपीठ त्रिकोण में अकथादि त्रिपंक्ति से युक्त ह ल क्ष के मध्य में मण्डित शिवरूप निज गुरुदेव का ध्यान करे ।

अन्य प्रकार से साधक द्रव्य का शोधन करे । यथा—'ॐ हंसः शुचिसद्व-सुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसत् सदृतोतिथि सद्व्याम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् । ऐं तृप्तोद्भव-सिद्धोद्भव-सर्वज्ञोद्भव-सर्वजनकोद्-भवाय अमृताय अमृतनाथाय अमृतकुल-कुम्भाय ऐं फ्रें चल चल पिव पिव कुलकुण्डलिनि अमृतकुण्डलिनि अमृतं द्रव द्रव निर्झर ऐं ह्रीं कुलकुण्डलिनि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा ।' प्रथम मन्त्र का अथवा दूसरे मन्त्र का तीन बार जपकर द्रव्य का शोधन करे । इसके पश्चात् कुण्डलिनी शक्ति को द्रव्य के पान कराने की भावना कर द्रव्य में शिवशक्ति के समायोग से झरित अमृत की भावना करे और तब इस प्रकार संशुद्ध द्रव्य से कलश को पूर्ण करे । इस प्रकार के विधान से साधक द्रव्यशुद्धि करे ।

अब द्रव्यशुद्धि के सम्बन्ध में कालिका के विषय में जो विशेषता है, उसे तन्त्र के अनुसार कहा गया है—

एकमेव परम्ब्रह्म, स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां, तेन ते नाशयाम्यहम् ॥

इन तीनों मन्त्रों से सुरा का अभिमन्त्रण करके कालिका देवी को अर्पित करे, तब नैवेद्य-भोगी हो । इस प्रकार तीन प्रकार की द्रव्यशुद्धि कही गई है, जो परम शापमोचक हैं । इनमें से किसी एक को कर साधक द्रव्य में आनन्दभैरव-भैरवी का ध्यान करे ।

अथवा अन्य प्रकार से सुधा देवी का ध्यान करे । यथा—

चन्द्रांशुसदृशीं श्वेतां, वारुणीं ब्रह्मरूपिणीम् ।
शिरश्चन्द्राद्विगलन्तीं, ध्यायेत् तां परदेवताम् ॥

ध्यान करने के अनन्तर द्रव्य के मध्य में 'हसक्षमलवरयूँ आरन्दभैरवाय वषट्' इस मन्त्र से आनन्दभैरव का पूजन करे । फिर 'सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वषट्' से आनन्दभैरवी का पूजन करे । फिर वरुण बीज 'वं' का द्रव्य पर आठ बार जप करके फिर मूलमन्त्र का आठ बार जपकर द्रव्य को अमृत समझे । इसके पश्चात् आवाहिनी, स्थापिनी, सन्निधापिनी, सन्निरोधिनी और अवगुण्ठन मुद्रायें दिखाकर तीन ताल पूर्वक षडङ्ग की मुद्रायें दिखावे और छोटिका मुद्रा से दिग्बन्धन करके परमीकरण कर धेनुमुद्र से अमृतीकरण करे । देखने से, सूघँने से एवं स्नान से द्रव्यशुद्धि होती है । साधक दाहिने हाथ के चुल्लू में द्रव्य लेकर वाम कर की अनामा और अङ्गुष्ठ से मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ पूजा द्रव्यों का सिञ्चन कर फिर अपने मुँह में बिन्दु छोड़े और दोनों करों को आपस में रगड़ कर समस्त शरीर में हाथों को फेर लेवे । इस दिव्य कारण (=मद्य) को सुर-समूह ने सानन्द ग्रहण किया है । इसलिये इसका नाम भुवनों में 'सुरा' प्रसिद्ध हुआ है । सुरा के दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं और इसकी गन्ध सूँघने से शतव्रत करने का फल प्राप्त होता है । इसके स्पर्श से करोड़ों तीर्थों का फल तथा इसके पान से साक्षात् चार प्रकार की मुक्ति मिलती है । सुरा के आमोद में इच्छाशक्ति, उसके रस में ज्ञानशक्ति, स्वाद में क्रियाशक्ति एवं चित्त का परम शोधन होता है ।

पञ्चम उल्लास में पञ्चमकारों के शोधन के विषय में बतलाया गया है—

१. मांस-शोधन—अब तन्त्रक्रम से मैं मांसों को कहता हूँ । जल (मत्स्य), भूचर (पशु) और खेचर (पक्षी) के क्रम से मांस तीन प्रकार के हैं। गो, नर, हस्ति, अश्व, महिष, वराह, अज, मृग आदि आठ का मांस महामांस है । अथवा अज, अश्व, गरुड़, महिष, चमरी, वराह, व्याघ्र, भल्लूक, शशक, कूर्म, कुक्कुट, कृष्णमृग, हरिण, चित्रमृग, नर, गो, शल्लकी, हंस, पारावत, ग्रामकुक्कुट—इन सबकी बलि देना देवी की पूजा में विहित है । इनमें से किसी एक का मांस तर्पण के लिये ग्रहण करे । मांस के दर्शन से सुरा दर्शन जैसा ही फल मिलता है । पितृ-कर्म तथा देवकर्म के सम्बन्ध में वेद में हिंसा विहित है । दूसरे कार्य के लिये प्राणि हिंसा कदापि न करे । मांस के बिना पूजा करने से पाप होता है । गन्ध-पुष्प से पशु का पूजन कर तथा मन्त्र से उस को अभिमन्त्रित कर

उसका उत्सर्ग करे । मन्त्र इस प्रकार है—

शिवोत्कृत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः ।
तद्बुद्धस्व पशो ! त्वं हि माशिवस्त्वं शिवोऽसि हि ॥ १२ ॥

इसके बाद उसके मांस का चरु पाक करे । कोई-कोई साधक कच्चे ही मांस का पूजा में प्रयोग करते हैं ।

अब मांस का शोधन कहते हैं । मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' मन्त्र जोड़कर उससे मांस का सामान्यार्घ्य के जल से प्रोक्षण करे । वायु बीज 'यं' से शोषण और वह्निबीज 'रं' से दोहन करे । फिर शिव-शक्ति के संयोग से क्षरित अमृत से वरुणबीज 'वं' पढ़कर भावना द्वारा उसे अमृतमय करे । अब उसका चार बार मन्त्र पढ़कर शोधन करे । मन्त्र यह है—

ॐ प्रतद्विष्णु स्तवने मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वाः ॥

इसके बाद पूर्वोक्त आवाहनी आदि मुद्राएँ दिखावे । फिर उसके ऊपर सात बार मूलमन्त्र का जप करे ।

२. मत्स्य-शोधन—अब मत्स्यों का शोधन कहते हैं । पाठीन, वोदाल, शकुल, शालक, महाशकुल, चित्री, खड्गी, जलवृश्चिका आदि मत्स्य देवी पूजा में विहित हैं । पहले मत्स्य के पक्व मांस का प्रोक्षणादि करे । फिर निम्नमन्त्र पढ़कर उसका शोधन करे—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

फिर मुद्राएँ दिखाकर मूलमन्त्र का जप करे ।

३. मुद्रा-शोधन—अब मुद्रा का कथन करते हैं । सुपक्व, मनोहर, शर्करादि से पूरित मुद्राएँ देवी की पूजा में विहित हैं । भुने हुए धान्य भी मुद्रा के रूप में समर्पित किये जाते हैं । मुद्राओं का पूर्ववत् प्रोक्षणादि कर निम्नमन्त्र से उनका शोधन करे—

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीवचक्षुराततम् ॥
ॐ तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥

इस प्रकार शोधन कर पूर्ववत् मुद्राएँ दिखाकर मूलमन्त्र का जप करे ।

४. कुलद्रव्य-शोधन—अब कुलद्रव्य तथा शक्तिशोधन कहते हैं । यथाविधि कुल द्रव्य तथा सुस्नाता, सालङ्कारा, दीक्षिता शक्ति को लाकर आसन पर बिठावे । अपने कल्प के अनुसार शक्ति के अङ्गों में न्यास करे । मातृकान्यास करने के

बाद कलान्यास भी करे । 'ह्रीं' का ललाट में, 'क्लीं' का वदन में, 'ऐं' का हृदय में, 'ब्लूं' का नाभि में और 'स्त्रीं' का गुह्य में न्यास करे । फिर अपने कल्पानुसार ऋष्यादि का न्यास कर पाद्यादि उपचारों से उसका पूजन करे । 'द्राविणि' का न्यास योनि में करे । फिर मूलमन्त्र का आधार में, हृदय में और भ्रू मध्य में तथा ब्रह्मरन्ध्र में क्रम से न्यास करे । इसके बाद मूर्धा से लेकर पादपर्यन्त मूलमन्त्र का फिर न्यास करे । इसके बाद साधक अपने क्रम के अनुसार कुलसन्ध्या करे । फिर कुलद्रव्य लेकर उसका पूर्ववत् प्रोक्षणादि करे ।

५. अनुकल्प—पञ्चद्रव्यों के अभाव में पूजन का कदापि लोप ने करे । अतः इनका अनुकल्प कहते हैं ।

मद्य के अभाव में साधक ताम्रपात्र में मधु या घृतरहित दधि या काँसे के पात्र में अदरक और गुड़ मिश्रित नारियल का जल रख उसे मद्य मानकर उससे पूजन करे । गुड़मिश्रित तक्र में मधु मिला कर उसे मद्य मानकर देवता का तर्पण किया जा सकता है । अथवा मांसखण्ड, मत्स्यखण्ड और विजया तथा अष्टगन्ध का चूर्ण—इन सबको एक में मिलाकर वटिका बनाकर अवसर पड़ने पर इसे जल में घोलकर तर्पण करे ।

मांस के अभाव में लहसुन, अदरक, शुण्ठी, सूरन या माषवटक का प्रयोग होता है ।

मत्स्य के अभाव में भैंस, गाय, बकरी का दूध और फलमूल को पकाकर प्रयोग में लाते हैं ।

कुलद्रव्य के अभाव में देवी-रूप अपराजिता का फूल लेकर उसके भीतर चन्दन का लेप करे । फिर शिवरूप हयारि का पुष्प लेकर उसके मुख में कारण (मद्य) छोड़े । तब दोनों का सम्मिलन कर यह समझे की शिव-शक्ति का संयोग हो रहा है । वहीं देवी का पूजन करे । फिर उससे प्राप्त द्रव्य को काम में लावे ।

षष्ठ उल्लास में विशेषार्घ्य पात्र, अर्घ्य विधि, अन्यान्य पात्र स्थापन, स्थापन विधि एवं बलि-पञ्चक के विषय में कथन करते हैं—

१. विशेषार्घ्य पात्र एवं अर्घ्य विधि—साधक महादेवी की आज्ञा ग्रहण कर अपने तथा देवता के मध्य भूमि में 'ह्रीं' युक्त षट्कोण, वृत्त, चतुरस्रात्मक मण्डल बनाकर मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' जोड़कर सामान्यार्घ्य के जल से उसका प्रोक्षण करे । तदनन्तर आधार-शक्ति का पूजन कर पीठ देवताओं का पूजन करे । चतुरस्र में पूर्णशैल, उड्डीयान, जलन्धर और कामरूप आदि पीठों की पूर्वादि क्रम से पूजाकर 'षट्कोणों' में मन्त्रज्ञानी साधक षडङ्ग की पूजा करे । फिर त्रिकोण में मूलमन्त्र से त्रिकोणों की पूजा करने के पश्चात् मध्य में आधारशक्ति की पुनः पूजा करके अस्त्र मन्त्र से आधार को धोकर स्थापित करे ।

तन्त्रों में आधार के प्रकार के विषय में त्रिपद अथवा षट्पद या चतुष्पद अथवा वर्तुलाकार कहा गया है। इनमें से किसी एक को स्थापित कर साधक कुलमार्ग से पूजा करे। अब 'ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः' मन्त्र से आधार पर वह्निमण्डल का पूजन करे। इसके पश्चात् अग्नि की दश कलाओं का पूजन आधार के चारो ओर करे। यथा—यं धूम्रार्चिषे नमः, रं ऊष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः, धं ज्वालिन्यै नमः, शं विष्फुलिंगिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, सं रूपायै नमः, हं कपिलायै नमः, लं हव्यवाहायै नमः, क्षं कव्यवाहायै नमः। मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' जोड़कर उससे पात्र का प्रक्षालन कर उसे आधार पर रखे।

सोना, चाँदी, पत्थर, कूर्मपृष्ठ, नरकपाल, मिट्टी, नारियल, शङ्ख, ताम्र, मोती और शुक्ति आदि का पात्र लेना चाहिये अथवा किसी पवित्र वृक्ष के काष्ठ का पात्र बनाना चाहिए।

उत्तम पात्र सोलह अङ्गुल का विस्तृत तथा छह अङ्गुल का ऊँचा होता है। अथवा इसके आधे प्रमाण का या उससे भी आधा, एक अङ्गुल, डेढ़ अङ्गुल, छह अङ्गुल का प्रमाण है। किन्तु अति सूक्ष्म, अति स्थूल एवं छिद्रयुक्त पात्र तथा फूटा हुआ पात्र पूजन में न ग्रहण करे। स्व प्रादेश (बित्ता) प्रमाण का पात्र प्रशस्त माना गया है। इसमें से किसी एक पात्र को त्रिपद पर रखे। पूर्वमार्गानुसार उसकी पूजा करे। फिर उसमें सूर्य मण्डल की भावना कर 'अं अर्कमण्डलाय नमः' इस मन्त्र से सूर्यमण्डल की पूजा करे। फिर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करे। यथा—कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुषुम्नायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, भं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः। फिर रक्तचन्दन और सुगन्धित मनोहर पुष्पों से पात्र की पूजा करे। फिर साधक विलोम मातृका पढ़कर अन्त में मूलमन्त्र एवं वरुण बीज का उच्चारण करते हुये कलश के द्रव्य से पात्र के तीन भाग पूर्ण करे तथा एक भाग सामान्यार्घजल से। फिर उसमें दूब, रक्तचन्दन, अक्षत, कुण्डगोलोद्भव एवं विल्वपत्र, मांस, मत्स्य, मुद्रा, नाना सुगन्ध, नवरत्न, इलायची, लौंग, कङ्कोल, जायफल, कपूर, सफेदचन्दन, कस्तूरी, गोरोचन, अगर, केशर, स्वयम्भु कुसुम, अष्टगन्ध आदि छोड़कर द्रव्य में 'ॐ सोममण्डलाय नमः' मन्त्र से चन्द्रमण्डल का पूजन कर, फिर द्रव्य के चारो ओर निम्न मन्त्रों से चन्द्र की कलाओं का पूजन करे—अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ॠं शशिन्यै नमः, ऌं चन्द्रिकायै नमः, ॡं ज्योत्स्नायै नमः, एं कान्त्यै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।

इसके पश्चात् पात्र के तीर्थ में अंकुश मुद्रा के द्वारा तीर्थों का आवाहन कर

पूर्ववत् मण्डल की कल्पना कर पूर्ववत् ही मन्त्रोच्चारपूर्वक आनन्दभैरव का एवं आनन्दभैरवी का पूजन करे। फिर अपने इष्टदेवता का आवाहन करे और आवाहनादि मुद्रायें स्वकल्पोक्त विधि से दिखाकर इष्टदेव का पूजन करे। फिर पूर्ववत् षडङ्ग तथा त्रिकोण का पूजन करे। फिर पात्र के द्रव्य में अकथादि रेखाओं के मध्य में मायाबीज (ह्रीं) को भावना के द्वारा लिखे। फिर चतुरस्र के मध्य में 'ह्सौः' लिखे। फिर साधक पञ्चरत्नों की पूजा करे। यथा—'ग्लूँ गगनरत्नेभ्यो नमः' पूर्व में। 'स्लूँ स्वर्गरत्नेभ्यो नमः' दक्षिण में। 'म्लूँ मर्त्यरत्नेभ्यो नमः' पश्चिम में। 'प्लूँ पातालरत्नेभ्यो नमः' उत्तर में। 'न्लूँ नागरत्नेभ्यो नमः' मध्य में। फिर अकथ की त्रिरेखाओं में वाग्भव बीज (ऐं) के अन्त में 'दिव्यौघगुरु श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' से दिव्यौघ गुरुओं की तथा सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं की पूजाकर साधक स्वेष्ट मूलमन्त्र का जप करे। फिर पात्र के ऊपर दायाँ हाथ रखकर—

अखण्डैकरसानन्दकरे, परसुधात्मनि! ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र, निधेह्यकुलरूपिणि! ॥
अकुलस्थामृताकारे, शुद्धिज्ञानकरे, परे! ।
अमृतत्त्वं निधेह्यस्मिन्, वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि! ।
तद्रूपेणैकरस्यं च, दत्त्वा ह्येतत्स्वरूपिणि! ।
भूत्वा परामृताकारं, मयि चित्स्फुरणं कुरु ॥

इन तीनों मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने के पश्चात्—

ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं, पीयूषरसमावह ॥

इससे भी अभिमन्त्रित करे। फिर 'ऐं प्लूँ क्ष्रौं जूँ सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा'—इसका जप कर 'वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लेदिनि महामोक्षं क्लेदय क्लेदय कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु स्हौं ह्सौः नमः' इन मन्त्रों से भी अभिमन्त्रित करे।

इसके पश्चात् विशेषार्घ पात्र के तीर्थ से साधक अपने शिर में आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का पूजन-तर्पण तीन-तीन बार कर फिर पूर्वोक्त चतुरस्रादि मुद्रायें तथा शङ्ख मुद्रा, मत्स्य एवं धेनु मुद्रा दिखाकर अवगुण्ठन मुद्रा से अवगुंठित करे। फिर योनिमुद्रा से नमस्कार करे और छोटिका मुद्रा से तीन ताल देकर दिग्बन्धन करे। फिर मूलमन्त्र का आठ बार जप कर पात्र को इष्टदेवता स्वरूप समझे।

दाहिने हाथ से बायें हाथ के अंगूठे को पकड़े। फिर मुट्ठी और अंगूठे को उतान करके फैलावे और वाम कर की शेष अङ्गुलियाँ उसी प्रकार संयुक्त रूप में फैली रहें तथा दाहिने अंगूठे से लगी रहे, इसे शङ्खमुद्रा कहते हैं। दाहिना हाथ

अधोमुख रहे और वाम भी। फिर एक-दूसरे के ऊपर सभी अङ्गुलियाँ मिली हुई रहें और सीधी रहें। अंगूठों को किंचित् चलाये, इसे मत्स्य मुद्रा कहते हैं।

२. अन्यान्य पात्र स्थापन—विशेषार्घ स्थापित करने के पश्चात् शङ्ख एवं वीरपात्र की स्थापना करे और श्रीविद्योक्त विधि से उनका पूजन करे। विसर्जन करने के पूर्व काल तक उन्हें न तो उठावें और न उस स्थान से खिसकावे ही। विशेषार्घ से सामान्यार्घ में बिन्दु विक्षेप कर देव्यर्घ और कलश के मध्य भाग में अन्य पात्रों की स्थापना करे। कलश के समीप गुरुपात्र, फिर उसके पश्चात् भोगपात्र, फिर शक्तिपात्र, फिर योगिनी पात्र, फिर बलिपात्र, फिर पाद्य एवं आचमनीय पात्र की क्रमपूर्वक स्थापना करे।

नव पात्र उत्तम, सात पात्र मध्यम, कोई-कोई मन्त्रज्ञ पाँच पात्रों को मध्यम कहते हैं। तीन पात्र अधम कहे जाते हैं। एक पात्र की स्थापना कदापि नहीं करनी चाहिये। देवीपात्र, गुरुपात्र और भोगपात्र ये तीन पात्र कहे जाते हैं। पूजापात्र और बलिपात्र मिलकर पाँच पात्र होते हैं। शक्तिपात्र, वीरपात्र मिलकर सात पात्र होते हैं। योगिनी पात्र, पाद्य तथा आचमनीय पात्र मिलकर नव पात्रों की विधि पूर्ण होती है।

पात्र स्थापना की विधि—अब इनकी स्थापना की विधि बतलाते हैं। प्रथम कुम्भ के दक्षिण भाग में त्रिकोण वृत्त-भृगृहात्मक मण्डल बनावे। फिर पूर्ववत् प्रोक्षणादि कर आधार रखे। उस पर वह्निमण्डल की पूजा कर पात्र को धोकर आधार पर रखे। पात्र में सूर्यमण्डल का पूजन कर उसे कलशामृत से पूर्ण करे। फिर द्रव्य में सोममण्डल की पूजा कर उसमें कुण्डगोलोद्भव द्रव्य और पुष्प, गन्ध एवं चन्दन छोड़े। फिर द्रव्य में षट्कोण, वृत्त, भूपुर की मानसिक रचना कर षट्कोणों में षडङ्गों की पूजाकर पूर्ववत् मुद्रायें दिखाकर छोटिका मुद्रा से दिग्बन्धन करे और आठ बार मूलमन्त्र का जप कर विशेषार्घ्य से बिन्दुप्रक्षेप करे तथा वाम कर की तत्त्वमुद्रा से दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं का नामोच्चारपूर्वक साधक अपने शिर में तीन-तीन बार तर्पण कर, फिर स्वगुरु, परमगुरु एवं परमेष्ठि गुरुओं का तर्पण करे। फिर विशेषार्घ द्रव्य से साधक अपने हृदयकमल में पाँच या सात बार तत्त्वमुद्रा द्वारा इष्टदेवता का तर्पण करे।

इसके अनन्तर गुरुपात्र के दक्ष भाग में साधक भोगपात्र स्थापित करे और पूर्ववत् पात्र की स्थापना कर उससे तत्त्वशुद्धि करे। भोगपात्र के अमृत से दोनों हाथों का मार्जन करे। दायें हाथ की हथेली में वृत्तसहित नवयोनिमय यन्त्र लिखे। फिर 'ह्रीं श्रीं शिवशक्तिसदाशिवविद्याकलात्मने अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ऐं (मूलं) आत्मतत्त्वेन स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा।' इस मन्त्र को पढ़ते हुये वाम हाथ के अङ्गुष्ठ, मध्यमा तथा अनामिका अङ्गुलियों से सबसे नीचे के शुद्धिखण्ड को उठा कर प्राशन कर ले।

इसके पश्चात् 'ह्रीं श्रीं मायाकलानियतिकलात्मशुद्धविद्यारागपुरुषात्मने कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं क्लीं (मूलं) विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा ।' यह पढ़कर दूसरे शुद्धिखण्ड को उठाकर प्राशन कर ले ।

फिर 'ह्रीं श्रीं प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूम्यात्मने यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सौः (मूलं) शिवत्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा ।' यह पढ़कर तीसरा शुद्धिखण्ड पूर्ववत् उठाकर प्राशन कर ले ।

फिर 'ह्रीं श्रीं शिवशक्तिसदाशिवविद्याकलात्मने मायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषात्मने प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूम्यात्मने अं आं.....कं खं........यं रं.......ळं क्षं ऐं क्लीं सौः (मूलं) सर्वतत्त्वत्रयान्वितं जीवं शोधयामि स्वाहा ।' यह पढ़कर चतुर्थ शुद्धिखण्ड पूर्ववत् उठाकर प्राशन कर ले ।

इसके बाद—'ॐ आर्द्र ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि । योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा । ॐ तामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मावतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मां । अवतु वक्तारं स्वाहा । ॐ छन्दसामृषयो गावो यच्छन्दो ह्यमृता भुवसान्द्रोः मेधया स्पृणोतु भुवि स्रुवं मेणोपायतु स्वाहा ।' इन मन्त्रों का पाठ करने के पश्चात् वस्त्र से दोनों हाथों तथा देह को पोछकर हाथों से समस्त शरीर को शुद्ध करे । फिर हाथों को धो डाले ।

अथवा—'ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा । ॐ पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ॐ प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्राणि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ॐ त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ॐ पाणिपादपायूपस्थ शब्दा में शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ॐ स्पर्शरूपगन्धरसाकाशानि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ वायुतेजः सलिलभूम्यात्मानो मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥' इन सात मन्त्रों को तत्त्वशुद्धि के लिये पढ़े ।

तत्त्वशुद्धि करने के पश्चात् योगी साधक शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, पाद्यपात्र एवं आचमनीय पात्र स्थापित करे । योगिनी पात्र के तत्त्व से रश्मिवृन्दों का, बलिपात्रामृत से वटुकादिकों का तर्पण करे । जिन पात्रों का अभाव हो, उनका तर्पण सामान्यार्घ के द्रव्य से करे । देवीपात्रामृत-बिन्दु को पूजा के द्रव्यों पर छिड़क कर और अपने ऊपर सींच कर अपने को देवता स्वरूप भावित

करे । इसके पश्चात् भोगपात्रामृत-बिन्दु को स्वीकार करे ।

३. बलि-पञ्चक—अब बलिपञ्चक की उत्तम विधि कहते हैं । दक्षिण में बटुक को, योगिनियों को उत्तर में, सर्वभूतों को मध्य में, राजराजेश्वर को पूर्व में तथा पश्चिम में क्षेत्रपाल को बलि देनी चाहिये ।

दक्षिणादि चारों दिशाओं में पूर्ववत् मण्डल बनाकर पूर्ववत् ही प्रोक्षण कर वटुक का ध्यान करे ।

१. इस प्रकार ध्यान कर वाम कर के अङ्गुष्ठ एवं अनामा से बलिपात्र को मण्डल पर रखे । 'ॐ ह्रीं श्रीं देवीपुत्र बटुकनाथ पिङ्गलजटाभारभास्वर पिङ्गल त्रिनेत्र इमं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा'—इस मन्त्र से बटुक को बलि देवे ।

२. फिर योगिनियों का ध्यान करे । यह ध्यान कर—'ॐ ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धियोगिनीभ्यः सर्वाभ्यः मातृकाभ्यश्च' इस मन्त्र से योगिनियों को बलि देवे ।

३. इसके अनन्तर—'ॐ ह्रीं सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यः नमः' इससे सर्वभूतों को बलि देवे ।

४. फिर क्षेत्रपाल का ध्यान करे । इस प्रकार ध्यान कर—'ॐ ह्रीं श्रीं क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्वस्थान क्षेत्रपाल इमं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा' । इस मन्त्र से क्षेत्रपाल को बलि दे ।

५. मध्य में राजराजेश्वर को बलि दे । पश्चात् बलि पात्रामृत से वटुकादि का तर्पण करे । अथवा व्यापक मण्डल बनाकर एक ही स्थान में सभी को बलि प्रदान करे । साधक के वामभाग में ही बलिपञ्चक कार्य करने से सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं ।

सप्तम उल्लास में पूजारम्भ, मुद्राविधान, उपचार विधान, बलिदान, मन्त्रजप, नित्य होम एवं विसर्जन आदि विषयों का विवेचन किया गया है ।

१. पूजारम्भ—पूजा के प्रारम्भ में, जप के आदि में और अन्त में तथा पूजा के अन्त एवं अग्निकार्य के अन्त में तीन प्राणायाम करना चाहिये । प्राणायाम और षडङ्ग पूजन करके साधक स्वकल्पोक्त विधि से पीठपूजा करे । साधक स्वकल्पोक्त विधि से अपने हृदय-कमल में समाहित चित्त से देवी का ध्यान करे और फिर जैसे कोई एक द्वीप से दूसरे में जाता है, उसी प्रकार हृत्कमल से तेजोमयी महादेवी को नासापुट-मार्ग से पुष्पाञ्जलि में और फिर यन्त्र में लावे। फिर आवाहन्यादि मुद्राएँ दिखावे ।

२. मुद्रा विधान—दोनों हाथों की ऊर्ध्वमुख अञ्जलियों को अधोमुख करने से आवाहनी तथा उसी को ऊर्ध्वमुख करने पर स्थापिनी मुद्रा बनती है । दोनों हाथ की बँधी हुई मुट्ठियों को मिलित रूप में रखने से सन्निधापिनी तथा मुट्ठियों के भीतर अँगूठों को दबा कर उन्हें अधोमुख करने पर सन्निरोधिनी मुद्रा बनती है ।

इसी मुद्रा में यदि तर्जनी सीधी कर दी जाय तो अवगुण्ठन मुद्रा बनती है । इसको देवता के चारो ओर घुमाकर देवता के अङ्ग में षडङ्ग सकलीकरण न्यास किया जाता है । परस्पर दोनों हाथों के अँगूठों को ग्रथित कर शेष अङ्गुलियों को सीधी फैला देने से महामुद्रा बनती है, जिससे विद्वान् साधक परमीकरण करते हैं । दोनों हाथों की अङ्गुलियों को नीचे की ओर करके दोनों मध्यमाओं, दोनों तर्जनियों तथा दोनों अनामिकाओं को दोनों कनिष्ठाओं से संयुक्त करे तो धेनुमुद्रा बनती है । इससे साधकजन पूजन में खाद्य एवं पेय पदार्थों को अमृतमय करते हैं ।

स्वकल्पोक्त विधि से साधक मुद्रायें प्रदर्शित कर छोटिका मुद्रा के द्वारा तीन ताल से दिग्बंधन कर प्राणप्रतिष्ठा के मन्त्र से लेलिहान मुद्रा के द्वारा यन्त्र पर हाथ रखकर अथवा पाँच कुशों से प्राणप्रतिष्ठा करे । दायें हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामा को सीधी करके अधोमुख करे और अनामा के ऊपर अंगूठे को रखे तथा कनिष्ठा को सीधी फैला देने से लेलिहान मुद्रा बनती है। यह जीवन्यास में प्रयुक्त होती है ।

फिर साधक मूलमन्त्रोच्चारपूर्वक सामान्यार्घ्य जल से तीन बार यन्त्र का सिञ्चन करे । इसे देवशुद्धि कहते हैं ।

३. उपचार विधान—इसके पश्चात् षोडशोपचारों से देवी की पूजा करे । **उत्तम उपचार**—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वन्दना आदि कृत्य षोडशोपचार हैं। अथवा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, अर्चना, स्तोत्र और तर्पण ये षोडशोपचार हैं। **मध्यम उपचार**—अर्घ्य, पाद्य निवेदन कर फिर आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य ये दशोपचार है । **अधम उपचार**—गन्धादि नैवेद्यान्त पञ्चोपचारिका पूजा कही जाती है । उपर्युक्त उपचारों को क्रम से पण्डितों ने उत्तम, मध्यम एवं अधम संज्ञाएँ दी हैं । समस्तोपचार के अभाव में केवल पुष्प और जल से, इसके अभाव में केवल पत्र से, इसके अभाव में श्वेत सरसों से, यह भी न हो तो अक्षत से, अक्षताभाव में दूर्वा से, दूर्वाभाव में जल से, जलाभाव में मन से पूजन करना चाहिये । मूलमन्त्र के अन्त में चतुर्थी-विभक्ति-सहित देवता का नाम, फिर देय द्रव्य का उच्चारण करके 'नमः' जोड़कर पाद्य और 'स्वाहा' लगाकर अर्घ्य प्रदान करे । उक्त प्रकार से वारुण बीज वं से आचमन और मधुपर्क देवे । 'वषट्' मन्त्र से गन्ध और 'वौषट्' मन्त्र से पुष्प प्रदान करे । 'निवेदयाम्यहं' जोड़कर साधक सब पेय द्रव्य मुख में प्रदान करे। पाद्यादिक देकर स्नानीय निवेदन करे । फिर सुन्दर पादुकाएँ देकर रक्तवर्ण सुरम्य स्नानीय मन्दिर में नाना प्रकार के रत्नों से जटित स्वर्णमय सिंहासन संयुक्त महादेवी को लाकर साधक मन से घृत का उद्वर्तन निवेदन करे । इसके पश्चात् यह

भावना करे कि सहस्रों देवकन्याओं के द्वारा दिव्य सुगन्धित तैल लगाया जा रहा है, सुवर्ण के हजारों घटों से सुगन्धित जल से भक्तवत्सल भवानी का आसिञ्चन हो रहा है । फिर असंख्य नागकन्याओं, किन्नरकन्याओं तथा अप्सरागणों के द्वारा विशुद्ध सहस्रगन्धराज-संयुक्त नाना तीर्थोदकों से एवं पञ्चामृत और पञ्चगव्य से स्नान करावे । पुनः नारिकेल जल से, ईख के रस से, फिर सप्तमृत्तिका-संयुक्त शीतल जल से, फिर शीतलोष्णोदक से, रत्नोदक से और सुवासित जल से देवी को स्नान करावे ।

'सहस्रशीर्षा' मन्त्र से और 'पावमान्या' मन्त्र से भृङ्गाराष्टक कुम्भों से देवी को स्नान कराकर फिर विशुद्ध वस्त्रों से अङ्ग-मार्जन करावे । रुई का, वल्कल वस्त्र, वृक्ष का और कौषेय वस्त्र देवी को प्रिय है । परन्तु रक्तवर्ण का कौषेय वस्त्र महादेवी को विशेष प्रिय है । पीताम्बर के सहित कौषेय वस्त्र अपने इष्टदेव को साधक प्रदान करे । अन्य समस्त देवताओं को विचित्र वर्ण के दिव्य वस्त्र देने चाहिये, किन्तु नीलरक्त वस्त्र सर्वत्र वर्जित है । जिस वस्त्र में अधिकाधिक अनेक रङ्ग हों और किनारा न हो, उसे देवता को नहीं देना चाहिये । वस्त्र महादेवी को दे, अन्य देवताओं को नहीं । रक्तवस्त्र, रक्त माल्य, रक्ताभरण देकर गन्ध, चन्दन, सिह्लक आदि निर्मित अङ्ग लेप से अङ्गलेपन करना चाहिये । पुनः मनोरम पादुकाएँ देकर साधक यन्त्र में देवता को लाकर समाहित होकर नमस्कार करे । फिर पाद्यादिक देकर विधिपूर्वक पूजन करे । यथासमयोत्पन्न फल, पुष्प, पत्र देकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । अधोमुख फल देवता को न देना चाहिये ।

ज्ञानमुद्रा से परमेश्वरी का पूजन करे । अङ्गुष्ठ और तर्जनी के संयोग से ज्ञानमुद्रा बनती है । साधक मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठाग्र से पूर्ववत् मूलमन्त्र से विमल गन्ध दे । फिर गन्ध की भाँति ही मध्यमा और अनामा के मध्य पर्व में अङ्गुष्ठाग्र संयुक्त कर धूप प्रदान करे तथा मूलमन्त्र संयुक्त गायत्री से तीन बार उसका उत्तोलन करे । अनामिका और अङ्गुष्ठ के योग से नैवेद्य अर्पित करे । साधक अन्यान्य समस्त वस्तुएँ ज्ञानमुद्रा से सदैव समर्पित करे ।

दधि, मधु और घृत के सम्मिश्रण को मधुपर्क कहते हैं । फिर मधु से युक्त पायस और कृशरान्न (खिचड़ी) प्रदान करे । पिष्टक, लड्डू, दूध, दही और फल देने के पश्चात् कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल प्रदान करना चाहिये । प्रत्येक उपचार के अनन्तर जल देता जाय । पुनः माला, गन्ध, चन्दन, कमल पुष्प, दर्पण, चामर, छत्र और पादुका आदि निवेदन करना चाहिये । इस प्रकार श्रेष्ठ साधक विधिवत् पूजन कर तत्त्वमुद्रा के द्वारा बायें हाथ की अनामा और अङ्गुष्ठ के योग से सर्वदा देवता का तर्पण करे । अङ्गुष्ठ में भैरव तथा अनामा में चण्डिका का सदा निवास रहता है । इसलिये इन्हीं अङ्गुलियों से कुल संतति का तर्पण करना उचित है ।

साधक इस प्रकार कुल द्रव्यों से यथाविधि देवेशी को तृप्त करके फिर यथेच्छापूर्वक आठ बार अथवा एक बार तर्पण करे । एक हाथ से पूजन और तर्पण कदापि न करे । महादेवी का तर्पण करने के पश्चात् अपना क्रम करे। सर्वदा विहित पुष्पों के द्वारा देवता को अपने समीप लाना चाहिये । पूजाकाल में देवता के ऊपर हाथ न घुमाना चाहिये ।

देवी की आज्ञा लेकर अङ्ग-देवताओं की पूजा करनी चाहिये । धीर साधक गुरुकुल एवं रश्मिवृन्द का ध्यान कर स्व-स्व-स्थान में उन्हें आवाहित कर उनका पूजन करे । फिर दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ गुरुओं की पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये । यदि गुरुओं के नाम ज्ञात न हों तो गुरुत्रितय और चतुष्टय अर्थात् गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु तथा परमेष्ठिगुरु ये शुभ कहे गये हैं ।

न जानामि गुरोर्नाम, वंशशुद्धिं कदाचन ।
त्वत्पादाम्बुजरेणूनां, कणमादेहि दासताम् ॥

इस स्तव से स्तुति करके उसमें यदि साधक अपने गुरु का नामोच्चारपूर्वक पूजा करे तो यथोचित् पूजा होती है । पूर्ववत् तर्पण करके फिर रश्मिवृन्द का पूजन करे । साधक को चाहिये कि वह सावधानी से प्रयत्नपूर्वक यथाक्रम प्रत्येक देवता को यथास्थान आवाहित करके उनका पूजन और तर्पण करे ।

इसके पश्चात् ब्रह्माणी आदि अष्ट शक्तियों का पूजन एवं तर्पण करे । पुनः विस्तृत उपचारों से देवी की पूजा करे । पहले चाँदी अथवा लकड़ी का आसन दे। फिर मण्डप के उत्तर भाग में वस्त्र चर्म का अथवा कौशेय, जो भी बन पड़े यथाशक्ति दे । फिर पाद्य, अर्घ्य दे । श्यामवर्ण की दूर्वा, कमल, विष्णुकांता, गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों इत्यादि वस्तु निर्मित अर्घ्य सम्पूर्ण देवताओं को देना चाहिये । केवल जल से आचमन कराना चाहिये । यदि सुगन्धित जल से आचमन कराया जाय तो अति श्रेष्ठ माना गया है । अर्घ्यादिक के पश्चात् गन्धाष्टक निवेदन करना चाहिये । चन्दन, अगर, कर्पूर, चोर, केशर, गोरोचन, जटामाशी, कपिजटा—इस मिश्रण को विद्वानों ने देवी का गन्धाष्टक माना है । इस अनन्तर अनेक प्रकार के पुष्प, वसन, आभरण और गन्ध-चन्दन मिश्रित माला महादेवी को अर्पित करना चाहिये ।

फिर साधक सर्वाङ्ग लेप और धूप दे । खस, श्वेत चन्दन, कूट, अगर, गूगल, घी मधु आदि निर्मित धूप चण्डिका को अति प्रिय है । अथवा हर, नागरमोथा, नखी, जटामांशी, लाख, छड़ीला, देवदारु, कूट, गुड़, धूप इन वस्तुओं की धूप को दशाङ्ग धूप मुनियों ने कहा है । अथवा अगर, खस, गूगल, शक्कर, मधु, चन्दन, घी को मिलाकर धूप दे । अथवा केवल गूगल की धूप या अगर की ही दें । उपर्युक्त किसी एक को शास्त्रमार्गानुसार देवता को निवेदन कर धूपपात्र को भूमि पर न रखकर किसी आधार या घट में रखना चाहिये ।

इसके पश्चात् पहले घी का फिर तिल के तेल का दीप जलाना चाहिये। सरसों के तेल का, या फल के तेल का, या कमलगट्टे के तेल का दीपक श्रेष्ठ माना गया है—'ॐ जयध्वनि मातः स्वाहा' इस मन्त्र से घण्टे की पूजा करे और इसी मन्त्र का उच्चारण कर उसे बजावे भी। धातु या लकड़ी या मिट्टी का दीपाधार होना चाहिये और उसी पर दीप प्रदान करे। भूमि पर दीपक न जलाना चाहिये। इस प्रकार देवता के नेत्र-रञ्जन के लिये साधक दीप प्रदान करे। घृत का दीपक साधक अपने दायें भाग में तथा तेल का बायें भाग में स्थापित करे। फिर कर्पूर-मिश्रित बत्तियों से संयुक्त घृत की दीपमालिका अथवा सरसों या तिल तैल का ही जलाकर देवता के चारों ओर दिखाकर आधारों पर रख दे। फिर कुलदीप दे। सुवर्ण या चाँदी अथवा काँसे के पात्र में कुंकुम से अष्टदल कमल बना कर उसमें साधक यव, गेहूँ, दूध आदि की बनी हुई खीर को आठों दलों में और मध्य में रखे। तब उनमें नौ दीपक जला कर रखे। फिर मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर सात बार उत्तोलन कर नौ बार घुमाकर मूलमन्त्र पढ़ता हुआ महादेवी का नीराजन करे। फिर साधक देवता को चक्रमुद्रा दिखावे। बायें हाथ की वृद्धा अङ्गुली के गर्भ में कनिष्ठा और दक्षिण हस्त की कनिष्ठा के गर्भ में जोड़कर फिर वाम और दक्षिण अङ्गुष्ठों का संयोग करने से चक्रमुद्रा बनती है। उपर्युक्त प्रकार से कुलदीप प्रदान कर साधक देवता को नैवेद्य अर्पण करे।

नैवेद्यविधान—साधक तैजस पात्र में अथवा पाषाणमय या यज्ञ सम्बन्धी काष्ठ के पात्र में या कमल-पत्र में नैवेद्य की कल्पना करे। सर्वाभाव में मृण्मय पात्र में अथवा साधक अपने हाथ में ही लेकर नैवेद्य प्रदान कर सकता है, किन्तु वल्कल पात्र में अथवा लौह पात्र में कदापि नैवेद्य न दे। समयानुकूल जो पात्र उपलब्ध हो जाय, उसी में नैवेद्य देना चाहिये। अर्घ्यपात्र के अतिरिक्त किसी अन्य पात्र में स्थित जल को देवी नहीं ग्रहण करती। नैवेद्य षड्रसपूर्ण होना चाहिये और नाना भाँति के फल भी उसमें रहने चाहिये। अनेक प्रकार के द्रव्य देवी को प्रयत्नपूर्वक देकर फिर मद्य, मांस, मत्स्य और मुद्रायें प्रदान करनी चाहिये। भाँति-भाँति के अन्न के पदार्थ तथा रम्य विविध व्यञ्जन—कषाय, तिक्त, कटु और मधुर रस संयुक्त शर्करा-समन्वित परमान्न और शक्कर, दूध, खाँडयुक्त पिष्टी पदार्थ एवं दूध, दही, तक्र, नवनीत, शक्कर के लड्डू आदि नाना प्रकार के चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भक्ष्य, भोज्य देवी को निवेदन करना चाहिये। यदि साधक पूर्वकथित पदार्थ साक्षात् न दे सके तो मानसिक ही दे; किन्तु कर्म का लोप न करे। फिर चुल्लुक देकर प्राणमुद्रा दिखावे।

वृद्धा, अनामा, और कनिष्ठा के संयोग से प्राणमुद्रा, वृद्धा, मध्यमा और तर्जनी से अपान, वृद्धा, अनामा और मध्यमा से व्यान तथा कनिष्ठा-रहित सब अङ्गुलियों से उदान एवं सम्पूर्ण अङ्गुलियों के संयोग से समान मुद्रा होती है।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान प्रत्येक शब्द को चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर अन्त में 'स्वाहा' शब्द कहते हुए मुद्रायें दिखावे और वाम कर में ग्रासमुद्रा ग्रासवत् कही गई है । पुनः साधक देवी को आचमन दे । फिर स्वयम्भू कुसुम, कुण्डगोलोत्थ, रोचन, अगर, कस्तूरी, केशर एवं लालचन्दन प्रदान करे । फिर गन्ध, पुष्प, माला, रक्तपुष्प, आभूषण, सिन्दूर, काजल, महावर और पदगुच्छ प्रदान करे । फिर द्रोण, अपराजिता, कनेर और गुड़हल आदि पुष्प प्रदान करे । जवा पुष्प के प्रदान करने से रेशमी वस्त्र के देने का फल मिलता है । अपराजिता पुष्प का माहात्म्य इतना अधिक है कि उसे कोई कह नहीं सकता । फिर कर्पूर युक्त ताम्बूल प्रदान करे । इसके अनन्तर साधक गन्ध, चन्दन-संयुक्त पुनः माला प्रदान करे । फिर दर्पण, पादुका, छत्र, चामर और व्यञ्जन आदि देकर बलिदान से चण्डिका को सन्तुष्ट करे ।

४. बलिदान—साधक यत्नपूर्वक बलि दे; किन्तु स्वयं न दे । तदनन्तर साधक धूप, दीप देकर किसी पात्र में हृदयोद्भव रुधिर को लेकर जल, सेंधा नमक, शक्कर और मधु मिलाकर महादेवी को प्रदान करे । देवता के नाभिप्रदेश के ऊपर वाग्भव बीज (ऐं) से अथवा शक्ति बीज (ह्रीं) से साधक रुधिर का अभ्युक्षण करे । फिर तीन पुष्पाञ्जलियाँ देकर अपने देवता को तर्पण करावे ।

५. मन्त्र-जप—इसके अनन्तर साधक स्वकीय मन्त्र की शुद्धि सम्पादित करे। यथा—मातृका वर्ण एवं मूलमन्त्र के अक्षरों को लेकर क्रम से द्विरावृत्ति करने को मन्त्रशुद्धि कहते हैं । पहले मन्त्र शुद्ध्यर्थ जप करना चाहिये । वाचिक, उपांशु और मानस भेद से जप तीन प्रकार का होता है । जिह्वा, ओष्ठ, अधरोष्ठ की स्फूर्ति-सहित जप को वाचिक, जिसमें केवल जीभ हिलती हो, उसे उपांशु और जिसमें केवल मन से मन्त्र के वर्णों का स्मरण किया जाता है, उसे मानस जप कहते हैं । वाचिक से उपांशु एक सौ आठ गुणा अधिक तथा उपांशु से सौ गुना अधिक फलदायक उत्तम मानस जप होता है। अथवा—जिस जप में वचन स्पष्ट सुनाई पड़ता हो, उसे निगद जप कहा जाता है और जिसमें वर्ण स्फुट न होते हों; किन्तु मुँह डोलता अवश्य हो, उसे उपांशु तथा जिस जप में केवल मन्त्राक्षरों का मानस चिन्तन किया जाता है, उसे मानस जप कहा जाता है । एक लक्ष संख्या परिमित निगद जप उपांशु के केवल स्मरण के तुल्य और लक्ष संख्या परिमित उपांशु जप मानस जप के उच्चारण मात्र के तुल्य माना गया है ।

इसके पश्चात् साधक प्राणायाम और षडङ्ग करके ऋष्यादि न्यास करे । फिर हृदय में देवी का और मूर्धा में स्वगुरु का ध्यान करे । स्वयं को कामकला के रूप में भावित करके स्वेष्ट मन्त्र के जप का आरम्भ करे । जप के आदि में देवी का ध्यान करे । ध्यान के अन्त में जप करे । जप और ध्यान से युक्त साधक शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है ।

मालाविधान—अब साधक माला की पूजा करे । यथा—पहले माला का जल से अभ्युक्षण करे । फिर गन्धाक्षत द्वारा—'ॐ ह्रीं अक्षमालायै: नम:' मन्त्र से उसका पूजन करे। फिर दायें हाथ में माला को लेकर उसे हृदय के समीप लावे और वाम कर से स्पर्श न करते हुए—

ॐ माले माले महामाले सर्वसिद्धिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मां सिद्धिदा भव ॥

इस श्लोक मन्त्र से माला की प्रार्थना करे । मन्त्र की संख्या के निमित्त मिट्टी के टुकड़े अथवा अक्षत रख लेना चाहिये । साधक सावधान मन से मध्यमा अङ्गुली के मध्य पर्व में माला को रखे और अङ्गुष्ठ के अग्र भाग से शनैः-शनैः एक-एक मणि को मन्त्र पूर्ण होने पर खिसकाता जाय । इस बात का विशेष ध्यान रखे कि जप के समय माला के साथ तर्जनी अङ्गुली का संयोग कदापि नहीं होना चाहिये । मन्त्र के पार्श्व में सेतु संयुक्त करके जप-कर्म प्रारम्भ करना चाहिये । द्विजाति के लिये प्रणव ही मन्त्रों का सेतु है और शूद्रों के लिये चन्द्रबिन्दुयुक्त औकार सेतु माना गया है । साधक प्रत्येक बीज को लेकर मन्त्राङ्ग से ऊपर पूर्वबीज को जपता हुआ परबीज का स्पर्श करे । इस प्रकार उक्त विधि से विलम्ब और शीघ्रतारहित होकर मेरु की प्रदक्षिणा करके जप करना चाहिये । अथवा करमाला में या अन्तर्मातृका के वर्णों में नित्य जप करे । परन्तु यदि काम्य जप करना हो तो माला आवश्यक है ।

नित्य जप में और नित्य के होम में, जहाँ संख्या नहीं कही गई है, वहाँ एक हजार आठ या एक सौ आठ और कहीं-कहीं केवल तीस ही जप संख्या मानी गई है, परन्तु तीस से कम नहीं करनी चाहिये । उपर्युक्त प्रकार से यथाशक्ति जप करने के पश्चात् प्रणाम करके माला को पुष्प और अर्घ्यजल से प्रोक्षण कर छिपाकर पवित्र स्थान में रख देना चाहिये । तेजोमय जप के फल को देवी के हाथ में सदैव समर्पित करना चाहिये । जप-समर्पण के समय 'गुह्यातीति' इत्यादि मन्त्र पढ़ना चाहिये । इसके अनन्तर साधक देवता की स्तुति कर घण्टा बजावे और तीन बार साष्टाङ्ग नमस्कार करे । नमस्कार की यह विधि है कि चिबुक (ठोड़ी) से, मुख से, नाक से, मस्तक से, ब्रह्मरन्ध्र से और दोनों कानों से—जो-जो अङ्ग भूमि का स्पर्श कर सकें—उनसे अर्थात् हाथ और पैर आदि से अथवा छाती, शिर, दृष्टि, जानु, मन, चरण, वचन और कर से नमस्कार करने को अष्टाङ्ग नमन कहा जाता है ।

६. नित्य-होम—साधक नित्य और नैमित्तिक हवन वेदी में करे, परन्तु काम्य हवन सदैव कुण्ड में करे । अपने हस्त-प्रमाण चतुष्कोण एक अङ्गुल ऊँची बालू की वेदी बनावे और उसके बीच में षट्कोण लिखकर जल से उसे प्रोक्षित करे और पूजन करे । फिर पूर्ववत् षडङ्गों सहित आधारशक्ति का पूजन कर अग्नि को

प्रज्वलित करे क्रव्याद अंश का त्याग करे । फिर अस्त्र मन्त्र से नैर्ऋत्य दिशा में जलती हुई अग्नि को साधक अपने अभिमुख स्थापित करे और अग्नि को यथोचित प्रज्वलित कर ज्वालिनी मुद्रा दिखावे । दोनों मणिबन्धों को सम करके और सम्पूर्ण अङ्गुलियों को फैलाकर दोनों मध्यमाओं को संयुक्त करे और उनके बीच में अंगूठों को जोड़े तो **ज्वालिनी मुद्रा** बनती है । इसके पश्चात् साधक शिवशक्ति के समागम से स्वेष्टदेवता का अग्नि में आवाहन करे और पूजन करे । पुनः आवाहनादिक मुद्राएँ दिखाकर 'फट्' मन्त्र से उनकी रक्षा करे । उक्त प्रकार से महादेवी की पूजा कर हव्य का शोधन करे ।

हवनीय द्रव्य को स्थापित करके जल से उसे चार बार प्रोक्षित कर शुद्ध करे। फिर स्थाली को रखे । पूर्ववत् मण्डल बनाकर पूर्वोक्त विधि से उसका पूजन करे। उस पर पात्र को रखकर उसमें हव्य को रखे और मूलमन्त्र से दश बार अभिमन्त्रित कर अग्नि में हवन करे । हवनीय मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये । ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे । ॐ स्वः स्वाहा इदं प्रजाधिपतये' इस प्रकार तीन आहुतियाँ दे । इनकी महाव्याहृति संज्ञा है । साधक हव्य, अग्नि, देवी और अपने में एकत्व की भावना से इस कार्य को सम्पन्न करे । इसके अनन्तर मूलमन्त्र के षडङ्गों से छह आहुतियाँ प्रदान करे। फिर मूलमन्त्र के अन्त में देवता का नाम चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर अन्त में 'स्वाहा' संयुक्त कर एक सहस्र आठ आहुतियाँ घी, तिल अथवा मांस से दे। अथवा एक सौ आठ आहुतियाँ दे या इसकी आधी आहुतियाँ दे । यही नित्य हवन की विधि है ।

मांस, मधु, घी, मत्स्य, पुष्प, तिल या धान्य, मुद्रा, कुलपुष्प, फल, अपामार्ग, बिल्वपत्र, सुन्दर, भृङ्गराजपत्र, कनेर पुष्प, जवा पुष्प, अपराजिता पुष्प, द्रोण, किंशुक, पद्म, कुमुद, कुन्द, नीलकमल, रक्तकमल, सुगन्धित पुष्प, बन्धूक पूष्प, जाती पुष्प, मल्लिका पुष्प, मालती, कदम्ब पुष्प आदि मनोरम पुष्प एवं फलों से देवी का सविधि हवन समाप्त कर पञ्च प्राणों और मूलमन्त्र के षडङ्गों की आहुतियाँ दे । फिर गुरुवृन्दों का विधिवत् आवाहन कर प्रत्येक को एक-एक आहुति प्रदान करे । फिर प्रयत्नपूर्वक देवी को तीन आहुतियाँ दे । पुनः आचमन देकर अग्नि में देवी को समाविष्ट जानकर संहार-मुद्रा से 'देवीं अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे ।

७. विसर्जन—देवी एवं अग्नि का विसर्जन कर घण्टा और शङ्ख बजावे । पश्चात् चक्रस्थ परमेश्वरी का तर्पण कर साधक अपने सिर में देवता और गणदेवताओं को संहारमुद्रा से लाकर पूजन पूर्ण करे । तब साधक कौलिकों के साथ कुलामृत का पान करे; क्योंकि जो वीर देवी को पञ्चतत्त्व प्रदान करके प्रसाद रूप में उन तत्त्वों को स्वयं ग्रहण नहीं करता, वह देवी के शाप का अधिकारी होता है । किसी भी साधक को अकेले पान कदापि नहीं करना चाहिये । कौलिकों

और देवी के साथ ही पान का विधान युक्त है। पान तीन प्रकार का शास्त्र में वर्णित है—दिव्य, वीर और पशु । देवी के समक्ष पान को दिव्य, एकान्तवासी वीरों के समक्ष पान को वीर और संस्काररहित पान को पशुपान कहा गया है ।

अष्टम उल्लास में अन्नपूर्णा पूजन, कौल लक्षण एवं कुलचक्रार्चन आदि विषयों का विवेचन किया गया है ।

१. अन्नपूर्णा-पूजन—अब चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देने वाले क्रम को कहूँगा । अन्न की राशि के बीच में अष्टदल-कमल की रचना कर उसमें कारण से पूर्ण पात्र को स्थापित कर मायाबीज (ह्रीं) के षट् दीर्घों से षडङ्गन्यास करके फिर परमानन्ददायिनी अन्नपूर्णा का ध्यान करे—

आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वीं
दुग्धान्नपूर्णमितरेण च रत्नपात्रम् ।
भिक्षान्नदाननिरतां नवहेमवर्णा
मम्बां भजे सकलभूषणभूषिताङ्गीम् ॥

इस प्रकार महादेवी का ध्यान कर उस पात्र में उनका आवाहन कर, तत्त्वमुद्रा दिखाकर, 'इदमन्नामृतं पूरय पूरय नमः स्वाहा'—यह मन्त्र उच्चारण- पूर्वक उसमें भक्तिपूर्वक अन्नपूर्णा का तर्पण और यजन करे । 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'—यह अन्नपूर्णा का मन्त्र है। साधक समाहित मन से इसका यथाशक्ति जप करे । फिर देवेशी की स्तुति और पूजा कर कौलिकों का पूजन करे ।

२. कौल-लक्षण—अब तन्त्रानुसार कौलों के लक्षण कहूँगा । दुःखों से निवृत्त, सन्तुष्ट, विद्या और आगम में निष्णात, विमत्सर, कुलज्ञानरत, शान्त, शिव के भक्त, दृढ़व्रती, कुल की कीर्ति सुनने पर जिनको रोमाञ्च हो जाता हो और जिसका स्वर गद्‌गद हो जाता हो तथा जिनको आनन्दाश्रु आ जाते हों; ऐसे वीर कौलिकेश्वर होते हैं । लोक में सभी धर्म श्रेष्ठ हैं; किन्तु कुलधर्म तो शिव ने ही कहा है । ऐसी जिनकी बुद्धि निश्चित है, वे उत्तम कौलिक कहे गये हैं । जो कुलतत्त्व का ज्ञानी हो, कुलशास्त्र में विशारद हो, वही कुलार्चनरत पुरुषों में कौलिक श्रेष्ठ है । जो कौलिक कुलभक्तों को, कुलाचारों को, कुलव्रतों को देखकर प्रसन्न होता है, वह शिव को अति प्रिय है । पञ्चतत्त्वों को स्वीकार करने से, मूलमन्त्र के अर्थ के तत्त्व का ज्ञानी, देवता और गुरु का भक्त दीक्षा-ग्रहण से ही साधक बनता है । सारे संसार में कुलाचार्य का दर्शन दुर्लभ है ।

३. कुलचक्रार्चन—साधक शक्ति-सहित कौलों को अपने यहाँ बुलाकर अपनी शक्ति और वीरशक्ति को, जो दीक्षित हो, द्रव्यपान कराकर स्वयं पान करे—यह तन्त्रशास्त्र का निर्णय है । जो साधक शक्ति को निवेदन किये बिना द्रव्य का सेवन करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है । यन्त्र के बिना पूजा और मांस

के बिना तर्पण तथा बिना शक्ति के पान किये सब निष्फल होते हैं। पूजनकाल में बुलावे से जो न आवे अथवा बिना बुलाये जो आवे, वे दोनों सर्वधर्मबहिष्कृत पापी होते हैं। पूजा-स्थान में प्रयत्नपूर्वक आसन बिछाना चाहिये। इसके अनन्तर समस्त कौल एवं शक्तियाँ हाथ धोकर देवता को पञ्च मुद्राओं सहित प्रणाम कर यागगृह में प्रवेश करें। स्त्रियों से अलग अन्य स्थान में पुरुषों के आसन बिछाने चाहिये अथवा प्रत्येक साधक अपनी- अपनी शक्ति-सहित क्रम से पंक्त्याकार या चक्राकार रूप से बैठे। भैरवी-चक्र के प्रवृत्त होने पर सभी वर्ण द्विजाति हो जाते है और उसके निवृत्त होने पर सबं वर्ण पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। साधक चक्र में शिव-शक्ति की बुद्धि से सबका पूजन करे। संस्कार-क्रम से जो ज्येष्ठ हो, उसी प्रकार प्रत्येक साधक एवं शक्ति के ललाट में गन्धाक्षत से तिलक करना चाहिये। फिर मालाएँ पहिनावे।

साधक अति स्थूलता या सूक्ष्मता रहित मनोरम पात्रों में चार, तीन, दो, एक तोला प्रमाण में, यथाशक्ति हेतु (=मद्य) का पान करे। कुलसाधन में ऐसा लिखा है कि इससे अधिक पात्र साधकों को न करना चाहिये। हाथों से पात्र को उठाकर यथाक्रम से श्री गुरुओं को और परशिव को देवता बुद्धि से मांस सहित समर्पित करे। अमृतरसपूर्ण पात्र गुरु को देने के पश्चात् स्त्रियों को, फिर वीरों को, फिर कुलज कुलीन कुल भक्त को देवे। गुरुओं को गुरुपात्र, शक्तियों को शक्तिपात्र और वीरपात्र वीरों को देकर भोगपात्रामृत स्वयं पान करे। साक्षात् गुरु यदि न हों, तो गुरुपात्र को जल में विसर्जित कर दे। फिर समस्त साधक सुधा-बुद्धि से उत्तम पात्रों को ग्रहण कर शास्त्रप्रमाणानुसार सुधादेवी का ध्यान करे।

इस प्रकार ध्यान कर फिर मूलमन्त्र का सात बार जप करे। पात्र के ऊपर साधक पञ्च-मुद्रायें दिखावे। बाद में धेनु और योनिमुद्रा बार-बार उसे प्रदर्शित करे। छोटिका से और तीन ताल बजाकर दिग्बन्धन करे। फिर पूर्ववत् अपने शिर में आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी तथा गुरु-पंक्तियों का तर्पण करे। इसके पश्चात् इष्टदेव, रश्मिवृन्द, गणेश, क्षेत्रपाल, वटुकभैरव, योगिनी, डाकिनी, विघ्न करने वाले महाभूतों का क्रम से तर्पण करे। भैरव की पूजा और गुरु-तर्पण किये बिना पशुपान-विधि से पान कर वीर साधक भी नरक को प्राप्त होता है। गुरुपंक्ति और रश्मिवृन्द का तर्पण किये बिना जो साधक पान करता है, वह पशुवत् होता है। कुलज्ञान के बिना जो कौल द्रव्य को भोगने की इच्छा करता है, वह महापातकी है और सर्वधर्म-बहिष्कृत है। यागकाल के अतिरिक्त इन द्रव्यों का सेवन सर्वथा दोषावह है।

मन्त्र-संस्कार से शुद्धात्मा वीर ही अलिपान कर सकता है। इससे देवताभाव उत्पन्न होता है और वह भवबन्धविमोचक होता है। पात्र ब्रह्मा, सुरा विष्णु, रस खाने वाले रुद्र, आनन्दशेखर सदाशिव, मद्य भैरवदेव और मद शक्ति है।

इसलिये सुरा शक्ति है, मांस शिव है और दोनों का भोक्ता स्वयं भैरव है और इन दोनों से उत्पन्न आनन्द मोक्ष है। आनन्द ब्रह्म का रूप है। वह देह में प्रतिष्ठित है। उसे अभिव्यक्त करने वाला मद्य है। इसलिये योगीजन उसका पान करते हैं। ऐसा विचार कर बुद्धिमान साधक तत्त्वों का शोधन करे।

तदनन्तर वीर साधक विधि से पात्रों की वन्दना करे। प्रथम पात्र वन्दना कर तब भक्ति-परायण साधक क्षमा प्रार्थना करे—

जानताऽजानता वापि यन्मया क्रियते शिवे!।
तव कृत्यमिदं सर्वमिति मत्वा क्षमस्व मे॥

इस प्रकार महादेवी की स्तुति कर प्रत्येक साधक प्रत्येक की प्रार्थना करे। फिर प्रत्येक साधक परस्पर यथाश्रेष्ठ क्रमानुसार एक दूसरे से अनुज्ञा ग्रहण कर 'मैं स्वीकार करता हूँ' ऐसा कहकर और आज्ञा पाकर 'जुषस्व' ऐसा कहे। तब बद्धपद्मासनासीन वीर द्रव्य को ग्रहण करे। दायें हाथ से द्रव्यपात्र उठाकर बायें हाथ से मुद्रा बनाकर ग्रहण करे। एक हाथ से पात्र उठाना तथा एक हाथ से पात्र करना निषिद्ध है। पात्रवन्दन के पश्चात् कोटि सूर्य समप्रभ मूलाधारस्थ त्रिकोण में परम कलारूपिणी प्रकृति देवी का ध्यान करे। फिर कुण्डलिनी शक्ति चिदग्नि में मन्त्रोच्चारपूर्वक द्रव्य का हवन करे। द्रव्य ग्रहण करते समय द्रव्य-मुख-संयोग से किसी प्रकार का शब्द न होना चाहिये और न भूमि पर बिन्दुपात हो। चर्वण-रहित पान केवल विषवर्धक है। इसलिये यथाक्रमविधि से चर्वण-सहित पान करना चाहिये। एवमेव एक आसन पर जो साधक बैठते हैं और एक पात्र में भोजन करते हैं तथा एक पात्र में द्रव्यपान करते हैं, वे निश्चय नरकगामी होते हैं।

चक्र में उच्छिष्ट रूप में कुलद्रव्यों का स्पर्श न करे। बाहर हाथों का प्रक्षालन कर तब किसी अन्य वीर को कुलद्रव्य प्रदान करे। चक्र में मुद्रारहित तथा एक हाथ से जो साधक द्रव्य प्रदान करता है तथा थूकता, मल-मूत्र एवं अधोवायु त्याग करता है—वह योगिनियों का पशु होता है। चक्रार्चन काल में परिहास, प्रलाप, वितण्डावाद, बहुभाषण, उदासीनता, भय एवं क्रोध आदि न करना चाहिये। पाद तथा अधम अङ्ग से पात्र को नहीं छूना चाहिये और जिस स्थान में पात्र रखा हो, वहाँ से उसे हिलाना तथा अन्य पात्रों से सम्मिश्रण भी न करना चाहिये। पात्र के उठाते समय और पात्र पूर्ण करते समय शब्द होना निषिद्ध है। परस्पर वीरों के पात्रों का एक के पात्र को दूसरे से टकराना या भूमि पर रखना निषिद्ध है। आधार-सहित पात्र को उठाना तथा आधार-रहित पात्र का रखना मना है। पात्र को घुमाना एवं द्रव्य से रिक्त न करना चाहिये। बुद्धिमान वीर पात्र का उल्लङ्घन न करे और न उछाले और न उसे भूमि पर गिरावे।

अब तृतीया-सहित दूसरा पात्र दे और उनका वन्दन करे। पूर्ववत् तर्पण कर फिर मुद्रा-सहित तीसरा पात्र हाथ में ले उसकी वन्दना पढ़े। पूर्ववत् तर्पण कर

चतुर्थ पात्र की वन्दना करे । तब पूर्ववत् तर्पण कर पञ्चम पात्र की वन्दना करे । इसके पश्चात् मन्त्रवित् छठे पात्र की पूजा कर पान करे । पूर्ववत् तर्पण करके सप्तमपात्र की पूजा करे । सप्तमपात्र का पान कर चुकने पर साधक शान्ति स्तोत्र का पाठ करे ।

फिर अष्टम पात्र लेकर उसकी वन्दना करे । पूर्ववत् तर्पण करके नवम पात्र की पूजा करे । सहस्रार में श्रीगुरुदेव का, हृदय में देवी का ध्यान करते हुये और जीभ पर स्वेष्टमन्त्र का जप करते हुये 'मै शिव हूँ' इस भावना से यथाविधि पूजन कर कुण्डलिनी के मुख में हवन करे ।

फिर दशम एवं एकादश पात्रों की वन्दना कर पूर्ववत् तर्पण करे ।

साधक अपने पात्र के हेतु (=मद्य) को भैरव को भी न दे क्योंकि ऐसा करने से सिद्धि की हानि होती है एवं देवता का शाप प्राप्त होता है । कहीं यदि अनपेक्षावशात् प्राप्त हो जाय तो भक्तिपूर्वक उसे अपने पात्र में लेकर गुरुदेव का स्मरण करते हुये पान कर जाय । गुरु की शक्ति के पुत्रों एवं गुरु से ज्येष्ठ और कनिष्ठ भ्राताओं तथा अन्य स्त्रियों का उच्छिष्ट साधक खाये पर इन्हें अपना उच्छिष्ट कदापि न दे । चक्र में इसके विपरीत करने से साधक का पतन होगा । शक्ति का उच्छिष्ट द्रव्य पीना चाहिये और वीरों का उच्छिष्ट चर्वण करना चाहिये । चक्र में पान करने का यह नियम है कि जब तक साधकों की दृष्टि चलायमान न हो और जब तक मन चञ्चल न हो, तब तक ही पान करना उचित है । उक्त विकार के आरम्भ होने के पश्चात् पान करना पशुपान कहलाता है ।

शाक्तजन मद्यपान किसलिये करते हैं, इसका उत्तर तन्त्रशास्त्र में इस प्रकार दिया गया है कि साधकों के हृदय, मन एवं बुद्धि में मन्त्र के अर्थ की स्फूर्ति हो जाय तथा ब्रह्मज्ञान की स्थिरता हो, परन्तु इन्द्रियलोलुपता के लिये पान नहीं किया जाता ।

चक्रार्चन काल में घट के टूटने, पात्र के गिरने, द्रव्य के गिरने, पात्र के टूटने, दीप के बुझने पर पुनः चक्र करने से शान्ति होती है । साधकों को यथायोग्य पिला कर और स्वयं पीकर उत्तम साधक पुनः परिवार सहित देवी का तर्पण करे । फिर गन्धादि युक्त माला, चन्दन, धूप, दीप, दर्पण, चामर, नैवेद्य देकर मनोहर घण्टा, शङ्ख आदि बजावे । फिर यथाशक्ति स्तव और प्रदक्षिणा कर पुष्पसहित अर्घ्य का अमृत लेकर आत्मसमर्पण करे । यथा—

ॐ इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकारतो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु कर्मणा, मनसा, वाचा, हस्ताभ्यां, पद्भ्यां, उदरेण, शिश्ना, यत्-कृतं, यत्-स्मृतं, यदुक्तं, तत्-सर्वं मां मदीयं च सकलं श्रीमदिष्टान्ते देवतापादे समर्पणम् ।

महादेवी के चरणों में पुष्पाञ्जलि प्रदान कर दण्डवत् प्रणाम कर 'क्षमस्व' कह

कर पुनः-पुनः देवी को आचमन प्रदान करे । फिर देवी के अङ्ग में सातों आवरण के देवताओं के लीन होने की भावना करे । फिर साधक अर्घ्यपात्र को उठाकर शिर से लगावे और देवी के ऊपर तीन बार घुमाकर देवी के ऊपर निवेदन कर दे। फिर नासामार्ग से तेजोमयी देवी को संहार मुद्रा से हृदय में लाकर निर्माल्यवासिनी की पूजा करे ।

निर्माल्यकुसुमों से देवी को प्रणाम कर भक्तिभाव से गुरुपादुकाओं को प्रणाम करे । फिर कर एवं षडङ्गन्यास कर स्थिरमानस होकर साधक 'सोऽहं' की भावना कर गुरु-स्थान ब्रह्मरन्ध्र में यन्त्रलेप को धारण करे । इस लेप को कभी भूलकर भी नास्तिक, पशु और मूर्खों को न दे । कौल को ही देना चाहिये । चण्डिका के नैवेद्य को देवता सदैव ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। इसलिये देवी के निर्माल्य पुष्पों को ब्रह्मा को, मुझे अर्थात् शिव को, विष्णु को, शुक्र, सूर्य, गणेश, यम, अग्नि, वरुण, कुबेर, ईशान आदि देवों को और महादेवी के साधक को देना चाहिये, अथवा पवित्र स्थानस्थ वृक्षमूल के गढ्डे में या अन्य पवित्र स्थल में श्रेष्ठ साधक यत्न से गाड़ देवे । शक्तियों और साधकों को निर्माल्य चन्दन देकर फिर उन्हें माला और चन्दन से विभूषित कर अपना शरीर भी अर्पण कर दे ।

इसके अनन्तर श्रेष्ठ वीर साधक अर्घ के अमृत को सामयिकों में वितरण कर शेष को स्वयं ग्रहण करे । फिर यदि उचित प्रबन्ध हो तो पूर्णपात्र कर देह को मन्त्रमय कर गुरु की वन्दनापूर्वक कुलविद्या से श्रीपात्र को शुद्ध कर उस दुःख-निर्मूलक एवं सुखरूप कारण (मद्य) द्रव्य को चारों विद्यापीठों एवं शिव-शिवा को तर्पण कराकर सिद्धिक्रम से स्वाद लेकर पान करे । इस प्रकार पान करने के पश्चात् पूर्णपात्र लेकर विद्वान् साधक उसे भूमि में उलट कर उस स्थान में पुष्प डालकर फिर मायाबीज (ह्रीं) लिख कर बायें हाथ की कनिष्ठा अङ्गुली से 'यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा । स एवं दासतां यातु यदि शक्रसमो भवेत् ।' इस श्लोक मन्त्र को पढ़कर सामयिकों को तथा अपने को तिलक लगावे। फिर वीरेन्द्र उस उत्तम पात्र को धोकर गुप्त स्थान में रख दे । फिर यथोचित क्रम से प्रसाद को परोस कर स्त्री एवं साधकों के सहित भोजन करे । भोजन कर चुकने के पश्चात् फिर से सबको गन्ध, चन्दन, मालाएँ अर्पण कर ताम्बूल, आभूषण, शय्या आदि दे ।

यदि शक्ति दीक्षित न हो, तो आत्मदेह स्वरूप से उसके कान में मायाबीज सुना देने से वह भुक्तिमुक्तिदायक शक्तिरूपा हो जाती है । दीक्षाकाल में स्त्रियों का अभिषेक सुरा से या चन्दन से होता है । अभिषेक दीक्षाकाल में करना चाहिये । 'बालात्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्री कुरु मम शक्तिं कुरु कुरु स्वाहा ।' इस मन्त्र से शक्ति को शुद्ध करना चाहिये ।

कौलिक किन स्त्रियों की पूजा नहीं कर सकता—इस बात को तन्त्रमार्गानुसार

कहते हैं । त्रिपुरादेवी ही साक्षात् गुरु है । अतः गुरुपत्नी उन्हीं का रूप हैं । इसलिये मन, कर्म और वचन से साधक सदैव पूज्य भाव से उनकी प्रणाम आदि से पूजा करे । उनके चरणों की भक्ति से साधक शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करता है । गुरुकन्या, गुरुभगिनी, अपनी पुत्री, मन्त्रपुत्री इनसे ब्रह्मवेत्ता मानस से भी रमण न करे । इसी प्रकार कौलिक भार्या साक्षात् सिद्धीश्वरी शिवा है । उसके रमण से कौलिक नरकगामी होता है । शिवहीना अर्थात् विधवा हो जाने पर भी स्त्री गौरवात् वर्जित है । अन्य स्त्री में विचार करने से देवी का शाप होता है । अथवा ऐसा भी मत है कि गुरु एवं वीर की स्त्री को छोड़कर समस्त स्त्री स्पृश्य हैं । परन्तु यह मत अद्वैतज्ञान पारङ्गतों के लिये है; जिन्हें कुछ भी निषेध एवं विधि नहीं है । किन्तु जिन्हें यह अवस्था प्राप्त नहीं है; उनके लिये पूर्व वर्णित नियम ही पालन करना चाहिये । शक्ति साधना में साधक को निर्विकार होना आवश्यक है । इसलिये यदि उसमें कुत्सित भावना है तो वह दोषी एवं प्रायश्चित्ती होगा । अन्यथा यदि यह भावना दृढ़ रहे कि इन्द्रियाँ अपने विषयों में प्रवृत्त हैं । मैं निर्विकार शिव हूँ, यह शक्ति है; मुझमें और इस शक्ति में एकीभाव है । मै विषयासक्त नहीं हूँ । इस प्रकार निर्विकार मन होकर चिन्मयी की उपासना करने वाला साधक निर्दोष तथा मुक्त होता है ।

नवम उल्लास में पूजा-काल, पूजा स्थान, शिवाबलि विधान एवं कुलपूजा निरूपण आदि विषयों का विवेचन किया गया है ।

१. पूजा-काल—पूजन के विषय में साधक को इस बात से अति सतर्क रहना चाहिये कि पूजन का जो काल निश्चित कर ले वह भङ्ग न हो । जिस स्थान में पूजा की जाय, वहीं सदैव करनी चाहिये । पञ्चतत्त्वात्मक पूजा अति गुप्त रीति से रात्रि में करनी चाहिये, दिन में कदापि नहीं ।

नित्य की पूजा उत्तम, पर्व की मध्यम तथा मासिकी पूजा अधम है । मास से अधिक दिन व्यतीत होने पर यदि साधक पूजा करता है तो वह पशु हो जाता है । कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति इन पाँचों पर्वों में तथा पवित्र दिनों में सम्पत्ति लाभ होने पर और तप, दीक्षा, व्रतोत्सव में, देवी के किसी पीठस्थान पर जाने पर एवं वीर, कुल, पीठदर्शन होने पर, किसी देशिक के आने पर, पुण्य तीर्थदेवता के दर्शन होने आदि के समय पर अवश्य कुलपूजन करना चाहिये । एवमेव गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरुओं के जन्मदिनों में, मानवौघादि गुरु-जन्मदिनों में, अपने जन्मदिवस आदि विशेष दिनों में एकादशी व्यतीपात होने पर भी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार पूर्वापर प्राप्त होने पर साधक पञ्चतत्त्वों से प्रयत्नतः पूजन करे ।

२. पूजास्थान निरूपण—पर्वताग्रदेश में, विष्णु मन्दिर में देवता नहीं रहते प्रत्युत चिदानन्दमय देवता अपने ही हृदय में निवास करते हैं और वह भाव से

अनुभवगम्य हैं। वाराणसी में महापूजा सम्पूर्ण फलदायिनी है । उससे दुगुनी पुरुषोत्तम के सन्निकट, विशेष् कर उससे भी दूनी द्वारिका में फलद कही गई है । अन्य समस्त पुण्य क्षेत्रों एवं तीर्थों में की हुई पूजा द्वारिका के समान है । विन्ध्याचल में शतगुण अधिक, गङ्गा में उसके तुल्य एवं आर्यावर्त में, मध्यदेश में तथा ब्रह्मावर्त, पुष्कर, प्रयाग में विन्ध्यवत् ही फलदात्री है । विन्ध्य से चतुर्गुणा करतोया नदी के जल में, नन्दिकुण्ड में इससे भी चतुर्गुणा, इससे चतुर्गुणा समुद्र के सन्निकट, इससे द्विगुण सिद्धीश्वरी योनि में, लौहित्यनद के मार्ग में इससे भी चतुर्गुणा और उसके समान कामरूप क्षेत्र में तथा जलथल में सर्वत्र मानी गई है । उससे शत गुण आधिक्य नीलकूट के शिखर में है । उससे द्विगुण सुमेरु में स्थित शिवलिङ्ग में, उससे द्विगुण शैलपुत्री की योनियों में, कामाख्या योनिमण्डल में उससे भी शतगुणा अधिक फलप्रदात्री है । विधि इस प्रकार है कि सन्ध्या-समय मांस-प्रधान नैवेद्य लेकर साधक उपर्युक्त स्थानों में से किसी में जाकर बलि का सम्पादन करे ।

३. शिवाबलि विधान—निर्जन प्रदेश में अथवा श्मशान में जाकर सन्ध्या-समय मांस-प्रधान नैवेद्य से साधक शिवाबलि निवेदन करे ।

गृह्ण देवि महाभागे! शिवे कालाग्निरूपिणि ।
शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ॥

इस श्लोक मन्त्र से बलिप्रदान करे और—

काली कालीति वक्तस्तत्रोमा शिवरूपिणि ।
पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह ॥

इससे आवाहन करे । शिवा के आने पर खाकर यदि वह ईशान की ओर मुँह उठाकर बोले और उसका स्वर भला ज्ञात हो तो साधक का कल्याण होगा, अन्यथा न होगा । यदि आकर भी भोजन न करे तो शुभ न होगा । नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म में प्रयत्नतः बलि प्रदान करना चाहिये । यह शुभावह बलिदान अति गुप्त रीति से करना चाहिये ।

४. कुलपूजा निरूपण—अब मैं कुलपूजा की विधि कहूँगा । कुलागम में इस प्रकार कहा है—कुलवार में, कुलाष्टमी में, विशेष कर चतुर्दशी में, कुलतिथि एवं कुल नक्षत्र में कुलपूजा करनी चाहिये । जिस पूजा में योगिनी की पूजा प्रधानतया की जाती है, उसको कुलपूजा कहते हैं ।

द्वितीया, दशमी, षष्ठी ये तिथियाँ कुल और अकुल कही गई हैं । विषम तिथियाँ अकुल तथा समकुल कही जाती हैं । रवि, सोम, गुरु, शनि ये वार अकुल, भौम और शुक्र कुल तथा बुधवार कुलाकुल कहलाता है । वारुण, आर्द्रा, अभिजित् और मूल ये नक्षत्र कुलाकुल हैं और समसंख्यक कुल शेष अकुल माने

जाते हैं। अकुल तिथि नक्षत्र वार में पूजन करने से अपराजय तथा कुलर्क्षादि में विजय एवं कुलाकुल में सौम्यता होती है। पूर्णिमा के अन्त में मासान्त से तिथियों का कार्य होता है। महाष्टमी एवं कुलाष्टमी सभी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। इस प्रकार सुसिद्धि के लिये कुलवारादि का निर्णय कहा गया।

अब इसके अनन्तर वीर पुरुष अपनी कल्पोक्त विधि से पाद्य, अर्घ्य पर्यन्त क्रियायें करके लाक्षारस-संयुक्त गृह में तूलिका की रचना करे। इस कृत्य के सम्पादनार्थ शास्त्रोक्त शक्ति का ग्रहण करे। यहाँ तन्त्रमार्गानुसार अग्राह्य शक्ति का वर्णन करते हैं—अङ्गविकार युक्त, विधवा, व्यङ्गी, वृद्धा, तपस्विनी, हीनाङ्गी, हीनवसना, कुटिल, कलहप्रिय, लोभी और वेदविरुद्ध, निष्ठुरभाषिणी, झूठ बोलने वाली, प्रलाप करने वाली, मिथ्याचार करने वाली, मदोत्सुका, ईर्ष्यादि दोषसंयुक्त, पागल स्त्रियों को नहीं ग्रहण करना चाहिये। जिसका मुख विकारयुक्त हो और जो अदीक्षित हो तथा जिसके मन में अनेक प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प हों और वर्षीयसी, पापिनी, क्रूरा, अत्यन्त लोलुप, विचार-शून्य, दरिद्र का भी उत्तम साधक सदैव त्याग करे।

वीर साधक अक्रूरा, रूपवती, अलङ्कार-विभूषिता, दीक्षिता, घृणा-लज्जा-रहिता, शान्तचित्ता, शिववाक्य में जिसकी दृढ़ भक्ति हो, गुरुदेव के चरणों में जिसकी प्रीति हो, ऐसी कुलोद्भवा, चारुहासिनी, विदग्धा, परम साधिका युवती को, चाहे वह परकीया अथवा स्वकीया हो, लाकर उसे पाद्य, अर्घ्य आदि देकर स्थिर मन से अतुल सिद्धि को सिद्ध करे। उसके शरीर में स्वकल्पोक्त विधि से न्यास-समूहों का सम्पादन करे। अब चन्दनादि द्वारा सुवासित जल से स्वकल्पोक्त विधि से उसमें देवी की पूजा करे—

सर्वयोषिन्मये देवि! सर्वकामार्थदायिनि।
कामेश्वरि कामभूते! कामुके! सन्निधिं कुरु॥

इस मन्त्र से देवी का आवाहन करे और पुनः अपना अनुक्रम करे। पञ्चमी पूजन में स्वकुल मन्त्र वर्जित है। मद्यमांस के बिना जो साधक कुलपूजा करता है, उसके हजारों जन्म का सुकृत नष्ट होता है। इसलिये विधिवत् पूजन, जप, स्तुति एवं प्रणाम करके यथाविधि शक्ति का पूजन करे। मद्य, मांस एवं यावत् कुलसाधन सामग्री हो, सब कुछ शक्ति को अर्पण करे और शेष गुरु को निवेदन कर पुनः शक्ति एवं गुरु की आज्ञा से स्वयं ग्रहण करे। अब शक्ति को दक्षिणा देकर 'सोऽहं' अर्थात् मैं शक्ति हूँ; ऐसी साधक चिन्ता करे। यही कुलपूजन है।

दशम उल्लास में समयाचार से सम्बन्धित विषयों का विवेचन किया गया है।

अब मैं तन्त्रशास्त्रानुसार समयाचार का निरूपण करूँगा। साधक प्रातःकाल ब्रह्मरन्ध्र में गुरु का ध्यान करे और मानस पूजन कर गुरुदेव की आज्ञा ग्रहण कर सर्वदा अपने समस्त कार्यों को करे। जो साधक गुरु को मनुष्य, मन्त्र को अक्षर

एवं मूर्ति को पत्थर समझता है, उसे अवश्य नरक में जाना पड़ता है । गुरु के समक्ष शिष्य को चपलता एवं परिहास कदापि न करना चाहिये । गुरुदेव की जिससे प्रसन्नता हो, ऐसा कार्य जो उत्तम साधक करता है, उसके पैरों के नीचे शीघ्र सारी सिद्धियाँ लोटने लगती हैं । शरीर, मन, वचन से जो गुरुदेव के चरणों का भक्त है, उसे बिना जप एवं होम किये समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।

गुरु के आगे किसी की दीक्षा एवं किसी विषय विशेष की व्याख्या तथा अपना प्रभुत्व प्रदर्शन और पृथक् देवपूजा एवं औद्धत्य—ये बातें शिष्य को कदापि न करना चाहिये ।

गुरु से ऋण लेना-देना तथा वस्तुओं का क्रय-विक्रय आदि व्यवहार न करना चाहिये । गुरु आज्ञा का उल्लङ्घन, गुरु के धन का अपहरण, गुरु से अप्रिय आचरण यह गुरुद्रोह कहलाता है । इसे करने वाला पातकी है । जपकाल के अतिरिक्त समय में गुरु का नाम शिष्य कदापि न ले । वरन् अभिवादन एवं साधना के समय में भी श्रीनाथ, देव, स्वामिन् इस प्रकार सम्बोधन करे । देवता, गुरु, गुरुस्थान, क्षेत्र एवं क्षेत्र के अधिदेवता, सिद्धि, सिद्धों का स्थान इन पूर्वोक्तों को भी श्रीपूर्वक ही उच्चारण करना चाहिये । गुरु को तुकारना, हुँकारना, तिरस्कार करना अतिनिन्दित है । ऐसे साधक की कहीं भी गति नहीं हो सकती ।

गो ब्राह्मण की हत्या करने से जो पाप होता है, वह पाप गुरु के समक्ष झूठ बोलने से होता है । स्त्री की छाया, गुरुछाया, एवं देवता की छाया को लाँघना वर्जित है । गुरु को देखते ही शिष्य आसन छोड़ देवे और उठकर खड़ा हो जावे । गुरु के सत् अथवा असत् वाक्यों को शिष्य उल्लङ्घन न करे ।

देवता और गुरु के सामने आसन पर धीर पुरुष न बैठे । राजा, देवता एवं गुरु के समीप खाली हाथ न जाना चाहिये वरन् यथाशक्ति फल पुष्पादि ले जाकर उन्हें समर्पित करना चाहिये । गुरु और मन्त्र को सदैव गुप्त रखना चाहिये । गुरु की शय्या, आसन, सवारी, स्नान-जल, खड़ाऊँ, जूते आदि को लाँघना न चाहिये ।

विद्वान् पुरुष जूआ आदि क्रीड़ाओं में व्यर्थ समय न बितावें । देव पूजा, जप, यज्ञ, स्तवपाठ आदि के द्वारा समय यापन किया करे । गुरु की कृपा का आलाप, गुरु की कथा, स्तोत्र, शास्त्रावलोकन में रात-दिन बितावे । दूसरे की निन्दा न किया करे । राग, लोभ, मद, क्रोध, चुगली आदि न करे। कुलाचार, गुरु और देवता की मन से भी निन्दा न करे । पूजा, ध्यान, जप और होम ये चार काम सिद्धि की इच्छा करने वाला साधक प्रतिदिन करे। कन्या की योनि, पशुओं की क्रीड़ा, नङ्गी युवती आदि को न देखना चाहिये। परद्रव्य और परस्त्री का ग्रहण न करे । वेदव्रती, विप्र तथा वेदाङ्ग संहिताओं एवं पुराण, आगम, शास्त्र, कल्पों की निन्दा और उनमें किसी प्रकार का दोषारोपण न करना चाहिये । अन्य मन्त्र की

पूजा में श्रद्धा न करे, अन्य मन्त्र की पूजा करनी अनुचित है । दूसरे का आवाहन करके उसकी पूजा करना अनुचित है । जब गुरुप्राप्त-मन्त्र से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है तब अपर साधनों के करने का प्रयोजन क्या ?

कुलदर्शनशास्त्रों, कुलद्रव्यों, कौलिकों, सेवकों, प्रेरकों, वाचकों, दर्शकों, शिक्षकों, योगिनी-सिद्धि-रूपकों, मोक्ष एवं नग्न कुमारिकाओं, उन्मत्त स्त्रियों की निन्दा, उनका परिहास और अपमान कदापि न करे । किसी कुलयोगी का अप्रिय और उसके विषय में असत्य कभी भी न कहे । किसी कुल स्त्री को 'यह कुरूपा या निकृष्टा है' ऐसा कभी न कहे । भक्त वीरों के किये न किये की परीक्षा कदापि न करे। समस्त स्त्रियाँ जगज्जननी के कुल से ही उत्पन्न हुईं हैं । सौ अपराध करने पर भी स्त्री को पुष्प से भी प्रताड़ित न करे । इसलिये बुद्धिमान् पुरुष कुल, स्त्री और वीरों की निन्दा तथा परद्रव्यापहरण आदि कुलरोध प्रहार का सदैव ही त्याग करे ।

जप स्थान में महाशङ्ख निवेशित करके जप करना चाहिये । शाक्त साधक कुलज स्त्री से युक्त मांस, मत्स्य, दधि, क्षौद्र आदि भक्ष्य द्रव्य यथारुचि भोजन करता हुआ या करके जप करे । यदि साधक रात्रि में पर्यटन नहीं करता और शक्तिपूजन नहीं करता तो वह कैसे कौलिक हो सकता है । बहरा बनकर अकेले सङ्गरहित होकर सदा भ्रमण करे । शाक्त कौल दिव्य योगी के लिये दिशा, काल, स्थिति आदि का कुछ भी नियम नहीं है और जप, बलि, अर्चा आदि का भी । शक्तिमन्त्र के साधन में स्वेच्छा का ही नियम है ।

इस मार्ग में स्नान आदि शौच, जप, दिव्य पूजन, तर्पण आदि सब मानस ही श्रेष्ठ है । सभी काल शुभ है, अशुभ कहीं है ही नहीं । दिन, रात्रि, सन्ध्या, महानिशा, वस्त्र, आसन, स्थान, घर, देहस्पर्श आदि का कोई विचार नहीं, शरीरादि की शुद्धि से निरपेक्ष होकर केवल मन को निर्विकल्प बनावे । इस विषय में न तो शुद्धि की अपेक्षा है और न अमेध्य आदि का दोष ही है ।

इस प्रकार जो मन्त्री चिन्तन करता है, वह शीघ्र ही सिद्धियों का भाजन बनता है । ऐसा साधक अपना शरीर सर्वदेवमय समझे और अपने को देवता का रूप समझ अद्वैत की चिन्ता करे । आत्मा एवं परमात्मा स्वरूप से जगत् में मैं व्याप्त हूँ तथा मैं ब्रह्मरूप हूँ; ऐसी भावना वह सदैव करे ।

सर्वसिद्धि परायण सब काल में मन्त्र जपे । सर्वदा जप में कोई दोष नहीं है । जपनिष्ठ जो कुछ जपता है, उसे सब यज्ञों का फल प्राप्त होता है । सब यज्ञों में जपयज्ञ श्रेष्ठ है । रात्रि में जप मात्र से चण्डिका सिद्धि देती हैं। रात्रि में यदि इडा नाड़ी चलती हो तो शक्तिमन्त्र का जप करे और पिङ्गला की गति में जीव की प्रवृत्ति होने पर पुरुष मन्त्र जपना चाहिये । इसी विधि से सिद्धि प्राप्त होती है । साधक को स्वर्ग एवं मोक्ष की अपेक्षा छोड़कर कृतार्थ रहना चाहिये । इस विषय

में तनिक भी भ्रान्ति न करना चाहिये। इससे सिद्धि की हानि होती है। इस मार्ग में विशुद्ध चित्त होने से ही अपवर्ग देने वाली सिद्धि प्राप्त होती है। शास्त्रों में महापातकियों की भी निष्कृति के उपाय बताये गये हैं। परन्तु कुलाचार-भ्रष्ट की निष्कृति किसी शास्त्र में नहीं देखी गई है। आचारवान् वीर योगिनियों का प्रिय होता है। इसलिये प्रत्येक साधक को सच्चा कुलाचारी होना परमावश्यक है। कुलाचार पालन करने से योगिनियों और वीरों का मिलन होता है।

संस्कार-विहीन होने से, गुरुवाक्य के उल्लङ्घन से एवं आचारहीन होने से कौलिक पतित होता है। पञ्चतत्त्वों से सदैव महापूजा करनी चाहिये। पूजन सदैव अति गुप्तता से करना चाहिये, यह निश्चित है। ऐसा आचारपरक, जपपूजा परायण, कुलतत्त्वों का पालक एवं श्रीमान् साधक परतत्त्व में विलीन होता है और अणिमादि सिद्धियों का वह निधि होता है। कौल के लिये प्रायश्चित्त, भृगुपात, संन्यास धारण, कायक्लेश, नास्तिकता, तीर्थयात्रा, उपवास आदि वर्जित है। यदि वह अपनी सिद्धि चाहे तो पूर्वोक्त बातों को कदापि न करे। वीरहत्या, वृथापान, वीरद्रव्यापहरण, वीरस्त्रीगमन तथा वीर की स्त्री से पञ्चमतत्त्व की पूर्ति ये महापाप हैं। साधक इन्हें सर्वथा प्रयत्नपूर्वक त्यागे। सिद्धविद्या-पूजक साधक कुसुम्भ नालिका (शाक विशेष) और इमली को कभी न खावे। त्रिपुरा का पूजक ईख न खावे, कभी कदम्ब के वृक्ष को न काटे। गुप्त अथवा प्रकट, ज्ञान या अज्ञान से यदि निषिद्धाचरण हो जाय तो साधक प्रायश्चित्त करे। निषिद्धाचरण होने पर पाप की गुरुता एवं लघुता, देश, काल, वय, वित्त आदि का सम्यक् विचार करके पाप शुद्ध्यर्थ गुरु के समक्ष साधक यथाविधि प्रायश्चित्त करे। शिष्य भी वही है, जो गुरुभक्त है और प्रायश्चित्त को करता है अथवा सब पापों का प्रायश्चित्त केवल गुरु का नामजप करना है।

गुरुदेव का एक लक्ष नाम जपने से साधक समस्त पापों से शुद्ध हो जाता है। अथवा अजपा का एक लक्ष या लोपामुद्रा का तीन लक्ष जप करने से साधक सदैव सर्व पापों से छूट जाता है। 'हंसः' यह अजपा मन्त्र तथा 'हसक्लीं ग्लौं हां हसक्लौं क इ ह्रीं ऐं क्लीं ग्लौं ह्रीं' यह लोपामुद्रा द्वारा दृष्ट श्रीविद्या मन्त्र है।

इस विषय में अधिक कहने से क्या? रहस्य की बात तो यह है कि यह सभी वर्णाश्रमियों को आचार एवं सद्गति प्रदान करता है। सुगुप्त कौलिक आचार को देवता ग्रहण करते हैं और ऐसा कुलीन वाञ्छासिद्धि प्राप्त करता है और कुलधर्म-प्रकाशक कौलिक को देवता ही नष्ट कर देते हैं।

एकादश उल्लास में भाव का कथन है। दिव्य, वीर और पशुभेद से भाव तीन प्रकार का है। तीनों भाव तथा मन्त्र और देवता सभी श्रेष्ठ हैं परन्तु आद्य भाव (दिव्य) सर्वसिद्धि प्रदायक है। द्वितीय (वीर) भाव मध्यम और तृतीय (पशु) भाव अतिनिन्दित है। यदि साधक में भाव न हुआ तो न्यासविस्तार,

भूतशुद्धिप्रस्तार, पूजनादि सब व्यर्थ है । विद्या की पूजा एवं मन्त्र का जप कौन नहीं करता ? सभी करते हैं; किन्तु कोई फल प्राप्त नहीं होता इसका मुख्य कारण भावाभाव ही है ।

१. दिव्यभाव—पहले दिव्यभाव का कथन करते हैं । जिस साधक का देवता जिस वर्ण का हो, तद्वर्णमय तत्तेजपुञ्जपूरित समस्त जगत् को वह देखे और तत्तेजमय मूर्ति की कल्पना मन में करे । फिर तत्तत् मूर्तिमय मन्त्रों से अपने को भी तन्मय समझे और संसारी समस्त भावों, वस्तु जातियों को संयमित मन से स्त्रीमय ध्यान करे । आठ वर्ष से लेकर सोलह वर्ष की अवस्था को युवती कहते हैं । उसी में भाव का प्रकाश होता है । अतएव वही भाव परम श्रेष्ठ है । इस कल्पित तेजोमयी मूर्ति के चरणों से लेकर सिर पर्यन्त दिव्य दृष्टि के द्वारा बारम्बार पुनः पुनः पान करे । उसके नखशशिज्योत्स्ना के प्रकार को पाकर निष्पाप बने । वीर साधक सदैव स्निग्धान्तःकरण तथा निर्विकार बने । सुवृत्त जानु एवं चारु जङ्घोरुजङ्घा की शोभा से, नाभि की रोमावलि, वक्षःस्थलों से, पीनपयोधरों से, ग्रीवा से लेकर नयन पर्यन्त केशाग्र प्रसरित मन्द स्मित युक्त मधुमत्तता पूर्ण दिव्यभाव के विलोकन से युक्त देवता को चतुर्वर्ग पदाश्रयी साधक स्निग्धेन्द्रिय होकर सर्वतः व्याप्त देखे और इसी रूप को हृदय में स्थिर करे । इसके पश्चात् स्थिर मन से कामकला का ध्यान करे ।

उपर्युक्त ध्यान से निवृत्ति काल में उस देवता के भावपूर्ण अमृत से अपने मुखादि को देवतामय कामकला स्वरूपवत् ध्यान करे । यथा कामकला के स्वरूप (ईं) के बिन्दु को मुख, उसके नीचे के भाग को कुचद्वय, उससे नीचे के भाग को नाभि के नीचे का शरीर समझे । यह कामकला-स्वरूप सर्वार्थसाधक है । उत्तम साधक इसे सर्वथा गुप्त रखे और सदैव यही रूप अपना समझे ।

इसके बाद आधारचक्र में कनकप्रभ, मेढ़ (लिङ्ग) स्थान में शिवाकार, नाभि में तरुणादित्यविम्बाभ, हृदय में वह्निशिखाकार, उसके ऊपर सूर्यद्युति की भाँति, कण्ठ में घण्टा, वैडूर्य सन्निभ दीपशिखाकार, श्वासनालिका में चन्द्रविम्बाभ, भ्रूमध्य में रत्न की कान्ति के सदृश, नेत्रों में विश्व का तेज, उपर्युक्त स्थानों में ऐसा ध्यान करना चाहिये । कामकला के शरीर को धारण कर, स्पर्श कर या देखकर कुलों में और अकुलों में कामकला के रूप की चिन्ता करे । क्षण भर वैसा विमर्श करने से भाव का सञ्चय होता है ।

साधक कामरूपिणी सुवेशी सुन्दरी को अपने वामभाग में बैठाकर उसके शरीर में पूर्व वर्णित विन्द्वादि कामकला के रूप का ध्यान कर गन्ध, माला आदि से उसकी पूजा करके फिर कुलद्रव्यों को प्रदान करे । हेतुयुक्त ताम्बूल देकर तथा साधक स्वयं भी खाकर कौलिक एवं लौकिक कुलीन कथायें आदि सब पूछे । यह परम सुखावह दिव्य भाव कहा गया है ।

२. वीरभाव—अब वीरभाव का वर्णन करते हैं। साधक निर्द्वन्द्वमानस होकर हृदय में कामकला शरीर को धारण कर निशा में सदैव हेतुयुक्त होकर पूजा करे। अपने कुल को लेकर स्वयं भैरव रूप धरकर और कुल भैरवी रूप होकर उसके शरीर में न्यासविस्तार एवं नवयोन्यात्मक न्यास करे। प्रसून-तूलिका के बीच में, जिसमें पुष्पों का समूह बिछा हो, नाना प्रकार की सुगन्धियों से जो सुगन्धित हो, कुलद्रव्य से यन्त्र बनावे और घटस्थापनापूर्वक शक्ति की पूजा करे। पूर्ववत् मण्डल बनाकर पूर्वोक्त घटों में से किसी एक की स्थापना करके उसे कारण (मद्य) से पूर्ण कर ब्राह्मणादि विभेद से पहले उसमें मन्त्र लिखकर जो कुल समुद्भव हो, उसमें इष्टदेवता का ध्यान कर एक-सौ आठ बार जपे। उसे धेनुमुद्रा दिखाकर उसमें अमृत की चिन्ता करे। अर्घ्यपात्र को तीन भागों में बाँटे। इनमें से एक गुरु को, दूसरा कुल को दे और तीसरे से देवता का तर्पण करे। साधक पूर्ण कुलरस का पान करके नाना अलङ्कारों से विभूषित होकर तथा आनन्द रूपवान् होकर परमेश्वरी की पूजा करे। तत्तत्कल्पोक्त विधि से तत्तन्मन्त्रों की पूजा करके फिर विसर्जन करके कुल की योजना करे। भक्ति स्वरस पान से देवी अमृत का पान करती है। तत्तत्कुलरसास्वादों से देवी प्रसन्न होती है। तत्तत्फल ग्रहण से ही सुमेरु के शृङ्गों का आरोहण होता है। लता के आलिङ्गन मात्र से साधक का कलेवर अमृत से घुल जाता है। मूलयोग करने पर उसमें आठ सहस्र जप करे। जप के अन्त में हविद्रव्य लेकर उससे देवता का तर्पण करे। तर्पण करने के पश्चात् प्रदक्षिणा करता हुआ साधक अपने कल्पोक्त विधि से प्रणाम करके फिर स्तोत्रों से देवी को सन्तुष्ट करे। यह वीरकुल अतीव सुन्दर तथा मनोहर है।

३. पशुभाव—अब पशुभाव का वर्णन करते हैं। भाव-तत्पर व्यक्ति यथाविधि पशुविद्या को ग्रहण कर पहले प्रयत्नतः शुद्ध करे। मन से भी मत्स्यभोजन एवं स्त्री का स्मरण न करे। पर द्रव्य में लोभ तथा मन से भी उसका भोग न करे। किसी नदी के तट में, पर्वत में, वन में, देवालय में, बिल्वमूल में, विविक्त पुण्यक्षेत्र आदि में निवास करे। कुटिलता का सर्वथा त्याग करे। समाहित होकर शुभ्र वर्ण के देवता का ध्यान करे। तीनों सन्ध्याओं में ध्यान, पूजन तथा जप करे। रात्रि में माला और यन्त्र को कदापि न छुये। भोजनोपरान्त मन्त्रोच्चारण न करे। सब कामों में मौन रहे। पर्वकाल में स्त्री-सम्भोग न करे। पुष्प, गन्ध एवं जल स्वयं लाकर पूजन करे। मैथुन एवं उसका प्रसङ्ग तथा गोष्ठी का त्याग करे। बिना ऋतुकाल के अपनी स्त्री का भी सहवास न करे। पुराणों के श्रवण में श्रद्धा रखे और वेद-वेदाङ्ग में तत्पर रहे। रात्रि में भोजन न करे, ताम्बूल भी न खावे। गुरु ने जो-जो आदेश दिये हों, उन्हें यत्नतः करना चाहिये। स्वजात-कुसुम एवं हेतु द्रव्य (मद्य) का स्पर्श हो जाने पर तीन रात्रि तक केवल पञ्चगव्य लेकर बिताने से पशुभाव का साधक शुद्ध होता है। देवीभक्ति परायण रक्तवस्त्र न ग्रहण करे। वीरों की कथाओं की बातचीत एवं वीरों की वन्दना आदि

कदापि न करे । नित्य श्राद्ध, गोग्रास, सन्ध्या-वन्दन, तीर्थस्नान और पीठस्थानों में गमन तथा धर्मतत्परता आदि करे ।

पशुसाधक दीक्षित एवं अदीक्षित दो प्रकार के होते हैं । दीक्षित का पूजा में निश्चित् अधिकार होता है परन्तु गुरुत्व में उसका किसी तरह का अधिकार नहीं है। अदीक्षित को पूजा स्थान में जाने का भी अधिकार नहीं है ।

पशुभाव से तीन जन्म तक भावना करने से सभाव होता है । तभी वह वीर बनता है और तब वह देवता बन जाता है । बड़े ही भाग्य से कोई वीर होता है क्योंकि वीर भाव होने पर उसे देवत्व प्राप्त होता है । देवता और वीर में कोई भेद नहीं रह जाता; वरन् साम्यता है । भाव तो मन का धर्म है; वह शब्द कैसे हो सकता है? इसलिये भाव का प्रकाश नहीं करना चाहिये ।

द्वादश उल्लास में माला का विधान कहा गया है ।

१. करमाला—अनामिका के मध्य पर्व से आरम्भ करके प्रादक्षिण क्रम से तर्जनी के मूलपर्यन्त दश पर्वों में जप करना चाहिये । तर्जनी के अग्र और मध्य में जप करने वाले के यश, आयु, विद्या और धन ये चारो विनष्ट होते हैं । सर्वतन्त्र-प्रदीपिनी 'शक्तिमाला' इसी को कहते हैं । जप करते समय अङ्गुलियों को एक में जोड़े रहे, तलभाग को संकुचित किये रहे क्योंकि अङ्गुलियों के अग्र भाग में तथा मेरु के लङ्घन से जो जप होता है एवं पर्वों की सन्धियों में किया हुआ जप निष्फल होता है । हे महादेवि ! नित्यजप में करमाला शुभप्रद है ।

२. अक्षमालादि—अक्षमाला तथा अन्य मालाएँ सर्वथा सिद्धि प्रदान करती हैं। मुक्ताफलों की माला तथा स्फटिक मणिमाला राज्यमोक्ष फलदायिनी और सदा सर्वसिद्धिप्रदा तथा सर्वराजवशङ्करी है । रुद्राक्ष की मालिका मोक्ष में सर्व सुसिद्धिदा है । वश्यकर्म में प्रवाल की माला उपयुक्त है तथा लक्ष्मी और विद्या प्रदायिनी भी है । पद्ममाला से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । रक्तचन्दन की माला वैश्यों के लिए सौभाग्यदायिका है । पद्माक्ष (कमलगट्टा) की माला से जप करने से शत्रुओं का नाश होता है तथा यदि उसे कुशों के द्वारा गूँथा जाय तो वह पापों को नष्ट करती है । पुत्रजीवक की माला से जप करे तो शीघ्र पुत्रोत्पन्न होता है। हिरण्मयी माला कामनाप्रद एवं प्रवालमयी माला पुष्कल धनदात्री है। शाक्तों के लिये स्फटिक एवं रक्तचन्दन की माला श्रेष्ठ है । इन्द्राक्ष की माला महती सिद्धि को बढ़ाती है । गुञ्जाओं की माला से सर्वसिद्धि तथा बिल्वकाष्ठ की माला सिद्धिदात्री है । शङ्ख की बनी माला सर्वसौभाग्यदायिका है ।

रक्तचन्दन की माला बाला विद्या के जप के लिये बनानी चाहिये । दाँत से मणियाँ और राजदन्त का सुमेरु कालिका के लिये बनावे । उग्रतारा के जप के लिये महाशङ्ख की माला तथा उन्मुखी की माला मोक्षदा होती है । वैष्णवों के लिये पद्मबीजों तथा तुलसी की माला चाहिये । गणेश मन्त्र के लिये गजदन्त और

शिव के लिये रुद्राक्ष की माला बनावे । अभिचार कर्म में गर्दभ एवं वराह के दाँतों की माला बनाना चाहिये । एक-सौ आठ या चौवन मणियों की माला बनावें । अथवा मातृका संख्या (५१) की माला सर्वश्रेष्ठ है। इसे ही प्रयत्नत: बनाना चाहिये । सर्वसाधारण जप के लिये सत्ताइस मणियों की माला बना लेवे । मोक्षार्थी साधक पच्चीस मणियों की और धनार्थी तीस मणियों की माला में मन्त्र जपे । एवमेव पुष्ट्यर्थी सत्ताइस तथा अभिचारक पन्द्रह मणियों की माला ग्रहण करे । एक-सौ आठ मणियों की माला सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा विद्वानों ने कहा है । पचास की माला से सब कार्य करना चाहिये ।

३. माला-संस्कार—सुन्दर गोल बेर के बीजों को लाकर शिल्पी को दक्षिणा देकर साधक माला बनवाकर यथाशास्त्र प्रमाण उसका संस्कार करे । अप्रतिष्ठित माला में जो साधक मन्त्र जपता है, उसका सब जप विफल हो जाता है । पवित्र स्त्री के द्वारा बने सूत्र, अथवा कपास या रेशमी सूत्र, कमलोद्भव सूत्र, कोसे का सूत्र, सन का सूत्र—इनमें से किसी एक के सूत्र से माला को गूँथना चाहिये । सुवर्ण आदि के त्रिगुणमय सफेद, रक्त और कृष्ण तीन तारों से त्रिगुणित सूत्र में माला गूँथने से शान्ति, वश्य और अभिचार होते हैं । रक्त तार में गूँथने और उसमें जप करने से मुक्ति तथा श्वेत से योग-साधन और पीत से कामना-पूर्ति एवं यश की प्राप्ति होती है तथा कृष्ण से रोग उत्पन्न होता है । नित्य और नैमित्तिक कार्य में शुक्ल श्रेष्ठ है तथा रक्त भी शुभ है । माला ग्रथित करने की विधि यह है कि बीजों तथा सूत्र को पञ्चगव्य में डाल दे । फिर उन्हें मूलमन्त्र पढ़कर शुद्धोदक से धोकर तब गूँथे । गुरु, ससुर, दामाद, पुत्र इनकी गूँथी माला अथवा स्वयं की बनाई माला साधक ग्रहण करे । अन्य की कदापि नहीं, परन्तु अपनी कान्ता की गूँथी माला द्रुत सिद्धिकारी होती है, ऐसा गुरुजनों एवं शास्त्र का मत है । एक-एक मणि को लेकर एक-एक ग्रन्थि लगाता जाय । ग्रन्थिहीन माला कदापि न बनावे क्योंकि स्पृष्टास्पृष्ट होने से वह दूषित हो जाती है । स्वेष्टदेवता के मन्त्र जपने वाली माला में अन्य किसी देवता के मन्त्रों का जप कभी न करना चाहिये ।

तोतलावनवासिनी, कालिका और त्वरिता, वाराही आदि अन्य चण्डिका देवी की माला में, वज्रा आदि के छह भेदों में ग्रन्थिहीन माला का ही विधान है । एक-एक मणि लेकर स्थिर मन से हृदय में तार (ॐ) मन्त्र का स्मरण करता हुआ तथा मूलमन्त्र का जप करता हुआ एक-एक ग्रन्थि लगावे और अन्य व्यक्ति प्रणव का जप करता हुआ ग्रन्थि लगावे । माला गोपुच्छ-सदृशी या सर्प-रूपिणी हो । माला के अन्त में एक सुमेरु बनावे । सुमेरु के दक्षिण में न्यास मन्त्रों का तथा वाम ओर इष्टदेवता का भी ध्यान करता हुआ सुमेरु में गुरु की पूजा करे । इससे सिद्धि प्राप्त होती है । साधक जप करते समय या माला के सम्बन्ध में सदैव सुमेरु को गुरु तथा उसके दक्षिण भाग में मूलमन्त्र के बीजों को समझे । इस

प्रकार माला निष्पन्न कर उसकी प्रतिष्ठा करे । माला को पञ्चगव्य में डालकर शिवमन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे । फिर अनुलोम एवं विलोम क्रम से मातृका वर्णों से अन्तरित न्यास करे । नादबिन्दु-विभूषित शक्रस्वरारूढ़ सान्त शिव का मन्त्र साधकों के कल्याणार्थ कहा गया है । मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ साधक माला को पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान करावे । घी, दूध, जल, शक्कर और मधु को पञ्चामृत कहते हैं । ये सब पदार्थ प्रत्येक चार-चार तोला लेना चाहिये । आधा पल गोबर, एक प्रस्थ दूध, एक प्रस्थ दही, एक प्रस्थ गोमूत्र, आधे प्रस्थ घी के सम्मिश्रया को **पञ्चगव्य** कहते हैं । इन वस्तुओं को मिलाते समय साधक मूलमन्त्र का उच्चारण करता रहे । इस कार्य के बाद गुनगुने जल से सद्योजात आदि मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे पोंछ ले । मन्त्र—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवेऽभवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥

फिर चन्दन अगर आदि गन्ध द्रव्य लगाकर माला का दोनों हाथों से घर्षण करे । गन्ध का मन्त्र यह है—

ॐ वामदेवाय नमो, ज्येष्ठाय नमः, श्रेष्ठाय नमो, रुद्राय नमः ।
कालाय नमः कलविकरणाय नमः ॥
बलाय नमो, बलविकरणाय नमो, बलप्रमथनाय नमः ।
सर्वभूतदमनाय नमो नमः, उन्मनाय नमः ॥

तब धूप देवे, धूप का मन्त्र यह है—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो, घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो, नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

पुनः गन्ध, चन्दन, केशर से उसका लेप करे । लेप का मन्त्र यह है—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महा देवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

तब साधक सुमेरु तथा प्रत्येक मणि को निम्नलिखित मन्त्र से अर्थात् एक-सौ बार सुमेरु को तथा सौ-सौ बार प्रत्येक मणि को अभिमन्त्रित करे । मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम् ॥

इन संस्कारों के कर चुकने के पश्चात् स्वर्णादि की पेटी में उसे रखे । अथवा किसी पात्र में अश्वत्थ (पीपल) के नव पत्रों को धोकर एक बीच में तथा आठ चारों ओर इस प्रकार से रखे कि अष्टदलकमलाकार बन जाय । फिर उसमें माला को रखे अथवा किसी पीठ पर रखे । तब उसमें स्वकीय देवता की पूजा करे । साङ्ग, सावरण देवता की विस्तृत उपचारों से पूजा कर उत्तम साधक एकैक

क्रमयोग से बीजों की एक सौ आठ बार प्राणप्रतिष्ठा करे । प्राणशक्ति समारुढ़ ॐकार बिन्दुरूप धारी प्रणव, तब अक्षमालाधिपतये, फिर हृदन्त बीज नमः और अन्त में मूलमन्त्र का उच्चारण कर क्रम से माला की पूजा करे । उसके बाद घृतयुक्त तिलों से शक्तिसहित होम करे । यदि होम न कर सके तो द्विगुण मूलमन्त्र का जप करे । फिर—

ॐ अक्षमालाऽधिपतये सुसिद्धादिसर्वमन्त्रार्थसाधिनि ।
साधय साधय सिद्धिं प्रकल्पय स्वाहा ॥

इस मन्त्र से माला को अभिमन्त्रित कर पुनः एक-सौ आठ बार मूलमन्त्र का जप करे । एक सहस्र आठ बार जपे तो अधिक श्रेष्ठ है । उपर्युक्त माला-संस्कार-विधि गुरु द्वारा करने को कही गई है । गुरु स्वयं शिष्य की माला का संस्कार कर शिष्य को दे । तब शिष्य स्वयं एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जप कर माला को गुप्त स्थान में छिपा कर रख दे। शिष्य इस कार्य के समाप्त हो जाने के बाद गुरु को दक्षिणा दे और उन्हें सन्तुष्ट करे । यदि गुरुदेव न हो तो शिष्य स्वयं पूर्वोक्त विधि से माला का संस्कार करे ।

जप के अन्य समय में माला की पूजा करके उसे छिपा देना चाहिये । माला को अपवित्र दशा में न स्पर्श करे और अशुचि स्थान में न रखे । जपकाल में यदि माला हाथ से गिर जाय तो तीन दिनों तक उससे जप न करे । उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

प्रायश्चित्त यह है कि एक हजार बार मूलमन्त्र का जप करे अथवा एक-सौ आठ ही बार जपे । यदि सूत्र जीर्ण हो जाय तो पुनः ग्रथित करके एक-सौ आठ बार जप करे ।

४. वर्णमाला—अब ऐसी सर्वोत्तमोत्तम माला का कथन किया गया है; जिसके ज्ञान मात्र से तत्क्षण मन्त्र सिद्ध होते हैं । मातृका वर्णों के अनुलोम और विलोम क्रमभेद से मूलमन्त्र से मातृका वर्ण तथा मातृका वर्ण से मूलमन्त्र वर्ण सम्पुटित कर सर्वमन्त्रों की प्रदीपिनी वर्णमयी माला बनावे । मातृका के अन्तिम वर्ण को सुमेरु समझे, जपकाल में उसका लङ्घन कदापि न करे, इसमें यह रहस्य है । बिन्दु-संयुक्त अनुलोम-विलोमस्थ अष्टवर्गों सहित मातृका वर्णों तथा 'क्षं' सुमेरु की वर्णमयी माला से जप किये हुये मन्त्र तुरन्त सिद्ध होते हैं । इसका क्रम यह है कि पहले बिन्दु सहित मातृका वर्ण का उच्चारण करे, तब मन्त्रोच्चारण करे ।

५. यन्त्र-प्रतिष्ठा—अब यन्त्र की प्रतिष्ठा का विधान है । सुवर्ण, चाँदी और ताम्र का उत्तम, मध्यम एवं अधम यन्त्र क्रमशः जानना चाहिये । ताँबे के यन्त्र में लक्ष गुण, चाँदी के यन्त्र में कोटि गुण तथा सुवर्ण के यन्त्र में अनन्त फल होता है । स्फटिक भी बराबर ही फलप्रद है । एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात अथवा आठ तोले का, जैसी शक्ति हो, सुन्दर मनोहर एवं जिसमें सुन्दर रेखायें हों

तथा अतीव सुमुख यन्त्र विधिवत् बनाये या निजदेवस्वरूपिणी प्रतिमा बनवाकर यथाशास्त्र प्रमाण से उसकी प्रतिष्ठा करे । यन्त्र की प्रतिष्ठा-विधि यह है कि मन्त्री साधक स्नान करके सङ्कल्पपूर्वक न्यासादि करे । तब शिव मन्त्र शोधित पञ्चगव्य में प्रणवोच्चारण करके यन्त्र को स्थापित करे। तब उसे बाहर निकालकर स्वर्णमय पीठ पर रखे और पञ्चामृत तथा शीतल जल से स्नान कराकर कपड़े से पोंछकर स्वर्णपीठ पर स्थापित कर कुशों से यन्त्र का स्पर्श करता हुआ पीठपूजा करे— **ॐ यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि । तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्**—यन्त्र के इस गायत्री मन्त्र का एक-सौ आठ बार जप करे । तब यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठापूर्वक देवी का आवाहन कर स्वकल्पोक्त विधिपूर्वक नानाविध रस एवं पानों, नानाविध फलों, द्रव्यों एवं रागादिक षोडशोपचारों द्वारा परमेश्वरी की पूजा करे । तब मूलमन्त्र का एक हजार जप करे । तब बलिदान कर चक्र को नमस्कार करे । तब वह घी की एक सौ आठ आहुतियाँ देकर गुरु और शिल्पी को दक्षिणा दे । इस प्रकार यन्त्र में देवता की प्रतिष्ठा करके स्वकल्पोक्त न्यासादि तथा गायत्री का जप करे ।

६. पुरश्चरण-विधि—गुरुप्राप्त मन्त्रों के पुरश्चरणों के ज्ञानमात्र से भाग्यहीन मूर्ख भी अमर हो जाता है । इतना ही नहीं, समस्त सिद्धियों को प्राप्त करके वह सिद्धीश्वर हो जाता है । इसलिये पहले नियमपूर्वक यथाविधि साधक पुरश्चरण करे । तब मन्त्री साधक अपने मन्त्र का प्रयोग करने योग्य होता है । पुरश्चरण के लिये वह ग्राम में एक कोस पर, शहर से एक या दो कोस पर किसी नदी के किनारे, स्वेच्छापूर्वक आहार-विहार जहाँ सुगमता से हो सके, ऐसा स्थान निश्चित करे । **जपस्थान**—घर में जप सम, नदी तट में शतगुण, पुण्यारण्य तथा बगीचे में हजार गुना अधिक फलप्रद कहा गया है। पर्वत पर अयुतगुण होता है तथा गङ्गातट पर लक्षगुण, देवालय में कोटिगुण और शिव के समीप अनन्त पुण्य का कथन विद्वानों ने किया है । पश्चिमाभिमुख लिङ्ग में या स्वयम्भू बाणलिङ्ग में अथवा उसके समीप अन्य किसी लिङ्ग में, प्रयाग में, या अन्यत्र कहीं भी गङ्गातट में, अथवा काशी में, वराहक में, उज्जट में, श्मशान में, गहन वन में, एकलिङ्ग-स्थल में, शून्य घर में, चतुष्पथ में, एक ही वृक्ष वाले पर्वत में, वटमूल में, शिवालय में से किसी एक स्थान में साधक महानिशा में पुरश्चरण करे ।

वीर साधक दूध वाले वृक्ष के दश खूँटे बनाकर उन्हें 'फट्' मन्त्र से अभिमन्त्रित कर पूर्वादि क्रम से दशों दिशाओं में गाड़े । तब इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त आदि दिक्पालों की पूजा कर उन्हें बलि प्रदान करे । ईशान और इन्द्र के मध्य में ऊर्ध्व दिशा तथा वरुण और असुर के बीच में अधः दिशा जानना चाहिये । क्षेत्र कीलित कर लेने से मन्त्री साधक को किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता । दीपस्थान में यथाविधि चतुर्द्वारात्मक मण्डल बनाकर क्षेत्रपाल और गणेश की पूजा करे । पुरश्चरण प्रारम्भ करने के

एक दिन पूर्व प्रात:स्नान कर पवित्र होकर ज्ञाताज्ञात पापक्षयार्थ एक हजार ब्रह्मगायत्री का जप करे । तब भोजनादि द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करे । तत्पश्चात् अपने गुरुदेव महाराज की नाना वस्त्रों और आभूषणों से पूजा करे और उनकी आज्ञा ग्रहण कर जप आरम्भ करे ।

जप प्रारम्भ करने के पूर्व साधक नित्य परकीया, किन्तु दीक्षिता स्त्री का वस्त्र-पुष्पादि से पूजन करे । वह स्वयं अपने मन को स्थिर रखे । पुरश्चरणकाल में वह खीर, पिष्टक, दूध, दही तथा शर्करामिश्रित तक्र, नवनीत, गुड़, लड्डू तथा अनेक भाँति के फल, नाना प्रकार के विलेपन, लाल चन्दन, कस्तूरी, श्वेत-चन्दन, केशर, आसन, पादुका, वस्त्र तथा आभरणादि धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पमाला और परम पञ्चतत्त्व तथा कुलाष्टक—ये वस्तुयें शून्य गृह में लाकर एकत्र करे । तब द्वारदेश में द्वार देवताओं का पूजन करे । चारों द्वारों पर गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल तथा योगिनियों की पूर्वादि क्रम से पूजा कर उन्हें बलि देवे । तब भूतों को अपसारित कर दीपस्थान बनावे । फिर नानालङ्कारों से भूषित होकर आसन पर बैठकर स्वकल्पोक्त विधि सम्पादित कर अर्घ्योदक से अपना तथा पूजा की वस्तुओं का सिञ्चन करे । अर्घ्योदक से सिंचित तथा नानालङ्कारों से भूषित आठ शक्तियों का अमृतीकरण कर उनकी पूजा करे और आठों कन्याओं के रूप-भेद को तथा उनके विचारों और चेष्टाओं को देखकर समझे । ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, वेश्या, नापित, कन्या, धोबिन, योगिनी—ये आठों कुलभूषण शक्तियाँ मानी गई हैं । परन्तु सब जाति की विदग्धा अर्थात् चतुर युवती स्त्रियाँ सिद्धियों को देने वाली और प्रशस्त हैं। ब्राह्मणी आदि आठों शक्तियों को उनका नाम उच्चारण कर प्रथम उन्हें आसन प्रदान करे । तब बारम्बार स्वागत कर अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान आदि कराकर गन्ध, पुष्प आदि देकर उनके केशों में कङ्घी करे । केशों को धूपित कर सुगन्धित तेल लगाकर कङ्घी आदि करे। तब कौशेय वस्त्र प्रदान करे । पुन: अन्य स्थान में ले जाकर पादुका प्रदान कर सुन्दर आसन पर बैठाकर नानालङ्कारों से भूषित कर गन्धादि लेपन तथा माला पहनाकर यथाक्रम विधान से उन-उन शक्तियों का ब्राह्मणी आदि अष्ट माताओं के रूप में ध्यान करे ।

अब आवाहनादि मुद्राओं के द्वारा उन-उन शक्तियों का पूर्वोक्त स्त्रियों के शिर पर आवाहन कर, शिर पर ही उनकी पूजा कर, पुन: पाद्यादिक देकर स्थिर मन से स्वर्णादि स्थान, भोज्य मण्डल मध्य में चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य, भक्ष्य, आदि का निवेदन करे । यदि शक्तियाँ अदीक्षित हों तो उन सबके कानों में मायाबीज (ह्रीं) सुना दे । तदनन्तर स्तोत्रपाठ करे ।

यदि शक्तियाँ लज्जावती हों तो उन्हें उनकी इच्छा से एकान्त स्थान में भोजनादि करावे । जब तक भोजनादि से वे तृप्त न हों जायें तब तक स्तोत्रपाठ

करता रहे । आचमन, मुख-प्रक्षालनादि के पश्चात् मुखवास एवं ताम्बूलादि अर्पण करे । तब माला, गन्ध, चन्दनादि प्रदान करे । बिन्दुयुक्त दीर्घ के प्रत्येक को अन्त में नियुक्त करे । प्रत्येक शक्ति का चतुर्थ्यन्त नामोच्चार कर अन्त में हृन्मन्त्र बीज जोड़कर मन्त्री साधक जप करे । यथाशक्ति क्रमपूर्वक जप कर उसे अर्पित करे और स्तुति पढ़े । तदनन्तर शक्तियों को नमस्कारपूर्वक विदा कर उनसे वर पाने की प्रार्थना कर सुखी हो । यदि अन्य शक्तियाँ न आवें तो अपनी कन्या, छोटी बहन, बड़ी बहन, मामी, माता, माँ की सौत, वय एवं जाति से हीन भी, कोई स्त्री हो तो क्या? सभी माँ की परम कला हैं, पूजनीय हैं । यदि उपर्युक्त शक्तियों में से कोई भी न प्राप्त हो सके तो संस्कार की हुई अथवा असंस्कृत विधवा की या अपनी माँ की पूजा करनी चाहिये । शक्तिपूजा समाप्त करने के पश्चात् पूजन कार्य करे ।

साधक स्वकल्पोक्त विधि से देवी की पूजा कर प्रातःकाल जप प्रारम्भ कर मध्याह्न पर्यन्त करे । जितनी जपसंख्या प्रारम्भ दिन की हो, उससे कम या अधिक अन्य दिनों में न करे तथा समय और दिनों का उल्लङ्घन भी न करे। तीनों काल में वह यथारुचि शुद्ध जल से स्नान करे तथा हविष्यान्न भोजन करे । जहाँ वह रहता हो, वहीं यदि गुरुदेव भी रहते हों, तो नित्य एक बार जाकर उन्हें प्रणाम करे और यदि गुरुदेव दूर हों, तो उस दिशा को प्रणाम करे। नित्य प्रातः उठकर पूजा में, अथवा स्नानकाल में, संस्कृत अथवा असंस्कृत कैसी भी कोई भी स्त्री हो, उसे नमस्कार करना चाहिये । चाहे वह किसी भी ज़ाति की हो, 'कुलार्चनी कुलीनां' का यही नियम है ।

पुरश्चरण करने वाले को निम्न प्रकार आचरण पालन करना चाहिये । गाना-बजाना सुनना तथा नृत्य-दर्शन न करे । अभ्यङ्ग-लेप तथा पुष्पमाला धारण न करे । बिना स्नान किये विप्रों, शूद्रों एवं स्त्रियों का स्पर्श न करे । उष्ण जल से स्नान और देवता को अनिवेदति भोजन का ग्रहण न करे । नाना प्रकार के आहार तथा इधर-उधर भ्रमण का त्याग करे । देवी के निमित्त बलिदान के अतिरिक्त अन्य प्रकार की हिंसा—विशेष कर पशुहिंसा भूलकर भी न करे । दूसरे देवता के मन्त्र की प्रशंसा और निन्दा न करे । शिर पर पगड़ी बाँधकर, कुर्ता पहन कर, नग्न रहकर, केशों को छोड़कर, अपवित्र कर तथा अशुद्ध स्थिति में होकर एवं वार्तालाप करता हुआ जप न करे । इसी प्रकार बिना ढँके हाथ तथा शिर ढककर चिंता से व्याकुल चित्त और क्रुद्ध होकर जप न करे । वीरासन या शयन किया हुआ, सर्वत्र गमन करता हुआ, रास्ते में, अशिव स्थान में और अन्धकारमय स्थान में जप न करे । पतितों और अन्त्यजों के दर्शन होने पर या उनका भाषण सुनने पर, अधोवायु निकलने पर और जम्भाई आने पर जप बन्द कर दे तथा उठकर आचमन प्राणायाम षडङ्गन्यास कर अथवा सूर्यदर्शन कर तब

जप प्रारम्भ करे। स्त्री, शूद्र, पशु, भ्रष्ट साधक आदि से बातचीत न करे। ब्रह्मचर्य से रहे। शुद्ध वस्त्रधारी रहे तथा शुद्ध शय्या में शयन करे। नित्य शय्या को धोवे और एकाकी निर्भय शंयन करे। केवल वेदागम पढ़े। रात्रि में हविष्यान्न का भोजन करे और दिन में शुद्ध होकर विद्या का जप करे। रात्रि में कुलाचार क्रम से देवी की पूजा करे। पूजाकर यथाशक्ति जप करे। पुरश्चरण काल में यदि पीठ का दर्शन हो तो यत्नतः पीठपूजा मन से करे।

उन देवियों का नाम जानकर, पुनः कुलनाथ का ध्यान कर, स्वयं वह अडिग मन से, उन देवियों का स्मरण करता हुआ पूजा समाप्त करे। पूजाकाल में कोई हीन जाति की स्त्री अथवा अपनी स्त्री कोई भी हो, विधान से उसकी पूजा करे। जिन मन्त्रों के जप में और होम में महर्षियों ने संख्या नहीं कही है, वहाँ आठ हजार की संख्या का नियम है। जिस मन्त्र में संख्या का विधान है वहाँ मन्त्रों की संख्या में युगक्रम से वृद्धि होती है। कल्पोक्त में जो संख्या कही गई है, वह त्रेता में दुगुनी होती है। द्वापर में तिगुनी और कलियुग में चौगुनी होती है।

त्रयोदश उल्लास में होम का विधान किया गया है। किसी वास्तुशास्त्र के ज्ञाता द्वारा होम के लिए स्थान का चयन और भूमि परीक्षा आवश्यक है, जहाँ विधि-विधान से होम किया जा सके। हवन के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञों के अनुसार छोटे बड़े कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। ये कुण्ड आठ प्रकार के बताए गए हैं। इनमें चतुरस्र कुण्ड, त्र्यस्र कुण्ड, योनि कुण्ड और पद्म कुण्ड आदि कुण्डों के निर्माण की माप बताई गई है। इनमें मेखला, योनि और नाल का निर्माण होना चाहिए। होम की संख्या के अनुसार विभिन्न प्रकार के बड़े और छोटे कुण्ड बनाए जाते हैं। कुण्ड की आकृति के भेद से फल का भी भेद बताया गया है। स्रुक् और स्रुवा तथा कुण्डों के अट्ठारह संस्कारों का वर्णन है। वागीश्वरी देवी का ध्यान, वह्नि का मन्त्र, सत्त्व, रज एवं तम भेद से वह्नि की जिह्वा, वह्नि का ध्यान और उनके वीक्षणादि छह संस्कारों का वर्णन है। वह्नि के गर्भाधानादि संस्कार, विघ्नराज के मन्त्र का विधान है। रिक्त हस्त हवन से फल का अभाव होता है। आज्य (घृत) के भेद से भी फल के भेद होते हैं। होम द्रव्य के परिमाण का निरूपण तथा होम की अग्नि के वर्ण के भेद से शुभ या अशुभ फल का विधान बतलाया गया है। तर्पण-विधि, काम्य-कर्म, उन्मुखी-कालिका का विधान, छिन्न(मस्ता) कालिका का दिवाकल्प तथा विप्र भोजनादि का वर्णन है।

इस उल्लास में यद्यपि सूक्ष्म एवं पर होम (Transcendent) का विधान नहीं है तथापि तन्त्रराजतन्त्र में होम के इन दो श्रेष्ठ प्रकारों का भी उत्कृष्ट वर्णन है।

चतुर्दश उल्लास में पुरश्चरण प्रयोग का वर्णन बतलाया गया है।

पुरश्चरण एवं शवसाधना—पुरश्चरण मात्र शाक्तों के लिए ही नहीं है किन्तु वैष्णव, गाणपत्य, शैव या सौर सम्प्रदाय के उपासकों के लिए भी उपयोगी है।

श्मशान साधना में आत्मरक्षा के मन्त्र, षोढान्यास, मन्त्रों के अक्षर संख्या के अनुसार जप संख्या का विधान, बलिदान विधि, पशु-पूजा विधि और उनके मन्त्र का वर्णन है। शव साधन में गुरु की पूजा, शव शोधन आदि की विधि वर्णित है। शव के अभाव में साधना और उनके विविध मन्त्रोपचारों का विधान है। ७६ वें श्लोक में महाबलवान्, साहसिक, शुद्ध, दयालु एवं सम्पूर्ण प्राणियों के हित में लगे रहने वाले साधकों के लिए वीर-साधन का निरूपण किया गया है। ८३-९१ श्लोकों में शव की परीक्षा कर स्वस्थ व्यक्ति के शव को शव साधन के लिए लाने को कहा गया है। साधक को अपनी साधना के लिए किसी को मार कर लाने के लिए कभी भी नहीं कहा गया है। हत्या वाले शव में मन्त्र वर्जित हैं; वह साधक को ही मार डालेगा। शव-साधना में आत्महत्या वाले शव को, बालक, वृद्ध या कोढ़ी एवं स्त्री के शव का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपितु एक चाण्डाल का शव शवसाधना के लिए अत्यन्त उपयुक्त कहा गया है। साधना के लिए नदी का तीर, खण्डहर, पर्वत की चोटी और बिल्व वृक्ष के नीचे का स्थान प्रशस्त कहा गया है। शव के ऊपर यन्त्र बनाकर साधक उसके ऊपर बैठ कर साधना करे। घोड़े के ऊपर सवार हुए के समान बैठ कर या अन्य किसी प्रकार बैठ कर साधना करे। सर्वानन्द ने (सर्वोल्लास तन्त्र में) कहा है कि इस प्रक्रिया से शवसाधना द्वारा सिद्धि प्राप्त हो जाती है और वह एक वृद्ध चाण्डाल के द्वारा सेवित हो जाता है। इस साधना में साधक को विभिन्न प्रकार से अपनी रक्षा करके ही आगे बढ़ना चाहिए। उल्लास के अन्त में महातारा का मन्त्र निरूपित कर चन्द्र या सूर्य ग्रहण में पुरश्चरण करने का विधान किया गया है।

पञ्चदश उल्लास में कुमारी पूजन का विधान है। इसके बिना होम आदि का विधान निष्फल है। चाहे समर्थ हो या असमर्थ, कुमारी कन्या का मनोरथ जरूर पूर्ण करे। कुमारी कन्या के अङ्ग में समस्त देवताओं का वास है। अतः कुमारी पूजा से सभी देव सन्तुष्ट हो जाते हैं। कुमारी के लक्षण तथा वय (उम्र) के अनुसार उनके विभिन्न नामों का उल्लेख है। इसे सम्भवतः रुद्रयामल (उत्तरतन्त्र) से लिया गया है। कुमारी पूजन के लिए प्रशस्त दिवस, उनके पूजन मन्त्र, विशेष न्यास तथा कुमारी पूजन का फल वर्णित है। एक से लेकर सोलह वर्ष तक की कन्याओं में से नौ कन्या और नौ बालकों को लेकर मिथुन-पूजा का विधान भी किया गया है।

विश्व की समस्त स्त्रियाँ देवी का रूप हैं। अतः शाक्त साधक को यह स्त्रियों का देवीमयत्व सदैव ध्यान रखना चाहिए। यह जगत् देवीमय है। यदि इस भावना का त्याग साधक कर दे तो उसे किसी भी मन्त्र से सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

इस उल्लास के १२९ से लेकर १४० श्लोक तक त्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न

नामों का उल्लेख है और ये नाम उनकी सेविका योगिनियों के साथ वर्णित हैं । १४१ श्लोक से लेकर आंगे तक श्रीविद्या के विभिन्न उपासकों की नामावली संग्रहीत है । इस संग्रह में समस्त देवता, श्रेष्ठ सिद्धगण, विभिन्न अवतार, देवियाँ, ऋषिगण, श्रेष्ठ गुरु, योद्धा, पर्वत और सागर आदि के नाम बतलाये गये हैं । इनमें भगवान् बुद्ध का भी नाम है ।

ये नाम इस प्रकार है—मनु, चन्द्र, कुबेर, मन्मथ, लोपामुद्रा, नन्दी, शक्र, सुन्द, शिव, क्रोधभट्टारक, दुर्वासा, व्यास, सूर्य, वशिष्ठ, पराशर, और्व, वह्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, विष्णु, स्वयम्भू, भैरव, गणक, अनिरुद्ध, भरद्वाज, दक्षिणामूर्त्ति, गणप, कुलप, वाणी, गङ्गा, सरस्वती, धात्री, शेष, प्रमत्त, उन्मत्त, कुलभैरव, क्षेत्रपाल, हनूमान, दक्ष, गरुड, प्रह्लाद, शुकदेव, राम, रावण, काश्यप, कुम्भकर्ण, जमदग्नि, भृगु, बृहस्पति, यदुश्रेष्ठ, दत्तात्रेय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, द्रोणाचार्य, वृषाकपि, दुर्योधन, कुन्ती, सीता, रुक्मिणी, सत्यभामा, द्रौपदी, उर्वशी, तिलोत्तमा, पुष्पदन्त, महाबुद्ध, बाण, काल, मन्दर, कैलास, क्षीरसिन्धु, उदधि, हिमवान्, नारद, भीष्म, कर्ण, मेरु, अरुण, जनक और कौत्स हैं । ये ब्रह्मसाधक भी कहे गए है । इनमें उल्लास (प्रकाश) की विभिन्न दशाएँ साधक की पूजा में बताई गई हैं । कुलार्णव तन्त्र के आठवें उल्लास में प्रकाश (=उल्लास) की विभिन्न दशाओं का वर्णन प्राप्त होता है ।

कुलार्णव तन्त्र में एक उद्धरण में कहा गया है कि साधक और साधिका मद्य का पात्र सिर पर लेकर उल्लास की पराकाष्ठा में नृत्य करने लगते हैं । यहाँ उल्लास का अर्थ है योगी की वह अवस्था जिसमें प्रकाश के रहस्य का उद्घाटन नहीं हुआ है ।[१] सिर पर मद्य का पात्र अर्थात् अमृत का वह क्षरण जो सहस्र दल कमल में परशिव के मिलन से होता है । मैथुन का शाब्दिक अर्थ नहीं लेना चाहिए । यह अवस्था साधक की श्रेष्ठ अवस्था है । यहाँ शिव और शक्ति का सामरस्य वर्णित है ।

इसी प्रकार एक बौद्ध तन्त्र 'छन्द' महारोशण में भी कहा गया है । इस पुस्तक का उल्लेख ज्ञानानन्द ने इसी तन्त्र के प्रथम अध्याय में अन्य पुस्तकों के साथ नहीं किया है । यहाँ बुद्ध वज्रसत्त्व का मिथुन वज्रधालिश्वरि के साथ उल्लिखित है । वज्रसत्त्व का अर्थ है वह साधक जिसका भौतिक अस्तित्व ही न हो अर्थात् वह निश्प्रपञ्चस्वरूप है और वह सर्व सङ्कल्पवर्जित (इच्छारहित) है । 'वज्रपाणि' का अर्थ है वज्रसत्त्व और 'वज्रधात्विश्वरि के मिथुन रूप में संज्ञान होना' । श्वेताच्छल (सफेद पर्वत) का अर्थ है 'सुगन्ध का प्रत्यक्ष होना' । इस प्रकार आसक्ति (राग) को समाप्त कर देने वाला वज्रसत्त्व है । वज्रधात्विश्वरि का अर्थ है बोधि-चित्त अर्थात् जो छिपा हुआ है और प्रज्ञा के द्वारा जो स्तुत है ।

१. ब्राह्मण विधवा=कुण्डलिनी (द्र० नेपाल मेनुस्क्रिप्ट्स; टवसस.प्; हरप्रसाद शास्त्री)

टीकाकार के अनुसार यह तारा से सम्बन्धित है (अयञ्च विहारः प्राकृतजनस्य अत्यन्ताङ्गगुप्तं भवति)

रुद्रयामल तन्त्र में भी तारा को भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित बताया गया है। इसी क्रम से दीक्षा लेने पर वसिष्ठ को तारा महाविद्या की सिद्धि प्राप्त हुई थी।

इस उल्लास के १५७ श्लोक से लेकर २०० श्लोक तक शाक्तों के नैमित्तिक अर्चन का प्रतिपादन किया गया है। इसमें कृष्णपक्षार्चन और शुक्ल पक्षार्चन अलग-अलग बताया गया है। यह प्रयोग तान्त्रिक पञ्चाग के अनुसार किया जाता है। अन्त में अष्टकार्चन का भी विधान वर्णित है।

षोडश उल्लास में कुल दीक्षा का विधान बतलाया गया है।

कुल दीक्षा—दीक्षा के लिए स्त्री परकीया या स्वकीया होनी चाहिए। शक्ति के बिना दीक्षित हुए उसका याग में प्रवेश निषेध है क्योंकि उसके साथ लौकिक सङ्गम करने वाला पातकी कहा गया है। प्रशस्तशक्ति के लक्षणों का प्रतिपादन करने के बाद शक्ति पूजा का विधान, कुल पुष्प का कथन तथा पूजा के फल का वर्णन है। रत्नपूजा विधान करके त्रिपुराबीज साधन और वाग्भवबीज साधन बताया गया है। कामबीज साधन और शक्तिबीज साधन का अन्त में वर्णन है।

इस उल्लास के १४० में श्लोक में कहा गया है कि शक्ति पूजा का साधक ऐसी अवस्था में आ जाता है जबकि किसी भी स्त्री को वह वश में कर सकता है। इसी प्रकार का एक उद्धरण नित्याषोडशिकार्णव में भी आया है जो कि वामकेश्वर तन्त्र का एक भाग है। इस प्रकार की शक्ति साधक में तब आती है; जब वह सिद्धि प्राप्त करने वाला ही होता है। अतः मुमुक्षु साधक को इस प्रकार की छोटी सिद्धि में नहीं फंसना चाहिए क्योंकि ये सभी विघ्न रूप हैं।

कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है कि कौल साधक का मार्ग अत्यन्त विघ्नों से भरा है और उसी तरह कठिन है जैसे एक क्रोधित सिंह के मुँह में हाथ डालना, विषैले सर्प का मुँह पकड़ना या नङ्गी तलवार की धार को हाथ से पकड़ना। **परशुरामकल्पसूत्र** में (१०.६८) कहा है कि साधना की पाँच अवस्थाओं में १. आरम्भ, २. तरुण, ३. युवान, ४. प्रौढ़ और ५. प्रौढान्त (जो वेदान्त की पाँच अवस्था विविदिषा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति के समान है) साधक को समयाचार का पालन करना चाहिए अर्थात् गुरु के सान्निध्य में साधना करे और सामाजिक नियमों का पालन करे। इससे ही वह उन्मनी (Mindlessness) अवस्था में आ जाता है और उस साधक के लिए सभी समाज की सीमाएँ निस्सीम हो जाती हैं। **कुलार्णव** के द्वितीय उल्लास में इन पाँच अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन है—

१. वेद अर्थात् साधक की वह अवस्था जिसमें वह बाह्य शुद्धि प्राप्त करता है।

२. वैष्णव अर्थात् भक्ति भाव का पालन करना ।

३. शैव अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना ।

४. दक्षिण साधक द्वारा पिछली तीन अवस्थाओं का दृढ़ता से पालन करना और

५. वाम अर्थात् वैराग्य उत्पन्न होने से मुमुक्षुत्त्व की स्थिति में आ जाना ।

आचार मीमांसा—यही मुमुक्षुत्व की अवस्था वेदान्त में असंसक्ति की अवस्था है, अर्थात् संसार से आसक्तिरहित होना । वेदान्त और आगम की अवस्थाओं में इतना ही भेद है कि आगम में भक्ति ज्ञान के पीछे चलती है अर्थात् भक्ति के द्वारा साधक ज्ञान प्राप्त करता है और वेदान्त में ज्ञान के द्वारा भक्ति प्राप्त करता है । आगम में छठवीं अवस्था 'उन्मनी' अवस्था है जबकि वेदान्त में यह 'पदार्थार्थाभाविनी' अवस्था है । आगम में सातवीं अवस्था 'कौल' है और वेदान्त में इसे तुरीयावस्था कहते हैं । **भावचूडामणितन्त्र** में इन्हीं प्रथम चार वेद, वैष्णव, शैव और दक्षिण को आचार माना गया है । पशुभाव में वाम और उन्मनी अवस्थाएँ आती हैं । वीर और कौल दिव्य अवस्था में आती है । **विश्वसारतन्त्र** में सप्त आचार और तीन भाव (पशु, वीर, दिव्य) कहकर यह बताया गया है कि मात्र दो ही आचार हैं १. दक्षिण और २. वाम । किन्तु कौल साधक सभी आचारों के परे है । इस प्रकार चार आचार (वेद, वैष्णव, शैव और दक्षिण) पशुभाव में आते हैं और वाम एवं सिद्धान्त वीरभाव में आते हैं ।

सप्तदश उल्लास में मन्त्र शिखा (=सिद्धि) के विषय में कहा गया है ।

मन्त्रसिद्धि—मन्त्र सिद्ध जब हो जाता है तभी कुण्डलिनी जागृत होती है । कुण्डलिनी मूलाधार में सुप्तावस्था में रहती है जो सौम्य (=मधुर) शब्द करती है । निरन्तर ऊर्ध्वगामी होकर जब यह ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है और फिर लौटकर मस्तिष्क तक आती है तो साधक का मनोलय हो जाता है । योनि मुद्रा द्वारा कुण्डलिनी जागृत होती है । इसकी प्रक्रिया **रुद्रयामलतन्त्र** में बतलायी गई है । योनि मुद्रा के द्वारा सभी मन्त्र के दोषों का निराकरण किया जाता है । यहाँ मन्त्र के दोषों के निराकरण हेतु तापन, ताडन आदि विभिन्न उपाय बताए गए हैं ।

अष्टादश उल्लास में साधक की साधना में सिद्धि के लक्षण के विषय में कहा गया है ।

सिद्धि के लक्षण—साधक को एकाएक फूलों की मधुर सुगन्ध प्राप्त होती है जिसका वहाँ कोई उत्स नहीं होता । सभी व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष सभी उसका बड़ा सम्मान करते हैं । स्वप्न में वह अपने को हाथी या घोड़े पर या बैल पर चढ़ा हुआ देखता है । कभी-कभी वह राजा को देखता है या अपने को उच्च कुल की स्त्रियों से घिरा हुआ देखता है । उसे स्वप्न में झण्डा, सुन्दर मूर्तियाँ, रक्त, अथवा रक्त एवं मद्य से सिक्त हुआ अपने को देखता है । छब्बीसवें श्लोक

में कहा गया है कि यदि वह स्वप्न में काले योद्धा को देखता है, या परकीया स्त्री से अपने को सङ्गत हुआ देखता है, अथवा अपने राष्ट्र में क्रान्ति देखता है तो उसकी साधना निष्फल जायेगी यह समझना चाहिए । पचपनवें श्लोक में कहा गया है कि तारा शीघ्र ही फलीभूत होती हैं; यदि उनकी आराधना छिन्नक्रम से की जाय । गुरु की कृपा के अनुसार यदि तारा की साधना की जाय तो साधक को शीघ्र ही आनन्द एवं मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है । महाछिंन्नक्रम से यदि कालिका की उपासना की जाय तो शीघ्र ही फलीभूत होती है । गुप्त साधन के द्वारा ही सभी श्रीविद्या और भैरव सिद्धि प्रदान करते हैं । इस अध्याय के अन्त में पादुका मन्त्र का प्रतिपादन किया गया है । साधक को 'श्री पादुकां पूजयामि नमः' मन्त्र से गुरु एवं इष्ट देवता की पूजा करनी चाहिए ।

एकोनविंश उल्लास में षट्कर्म का प्रतिपादन किया गया है ।

षट्कर्म विधान—शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण ये षट्कर्म कहे जाते हैं । १. रोग, कृत्या और पापग्रहजन्य दोषों को दूर करना शान्ति-कर्म के अन्तर्गत आता है । २. सबकी प्रवृत्तियों का निरोध स्तम्भन है । ३. दो के बीच विद्वेष उत्पन्न करना 'विद्वेषण' कहलाता है ।

दिक्, काल और देवता आदि का विचार कर इन कर्मों को करना चाहिए। वश्यादि कर्म में दूर्वा की लेखनी होनी चाहिए । आकर्षण में मोरपङ्ख से और विद्वेषण, उच्चाटन या मारण में कौए के पङ्ख की लेखनी से यन्त्रादि निर्माण करना चाहिए । रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा और काली षट्कर्म के देवता हैं । अतः तत्तत्कर्म के आदि में इनका पूजन विहित है ।

षट्कर्म में प्रशस्त तिथियाँ—

१. बुध और रवि से संयुक्ता पञ्चमी, द्वितीया, चतुर्थी और सप्तमी—ये तिथियाँ शान्तिकर्म में प्रशस्त हैं ।

२. गुरु और सोम युक्त षष्ठी, चतुर्दशी, त्रयोदशी और नवमी पौष्टिक कर्म में प्रशस्त हैं ।

३. रवि और शुक्र से युक्त अष्टमी, नवमी, दशमी और एकादशी आकर्षण कर्म में प्रशस्त हैं ।

४. शनि एवं रवि से युक्त अमावस्या, नवमी, प्रतिपदा और पूर्णमासी विद्वेषण कर्म में प्रशस्त हैं ।

५. शनि से युक्त कृष्ण चतुर्दशी, अष्टमी और प्रदोष उच्चाटन में प्रशस्त है । बुध और सोम से युक्त पञ्चमी, दशमी और पूर्णमासी स्तम्भन में प्रशस्त हैं ।

६. शनि एवं रवि से युक्त कृष्ण चतुर्दशी, अष्टमी एवं अमावस्या मारण कर्म में प्रशस्त हैं ।

शुभ ग्रह के काल में शुभ कार्य, रिक्तार्क में रौद्र कर्म और मृत्युयोग में मारण कर्म करना चाहिये । हेमन्त में शान्तिकर्म, बसन्त में वश्य कर्म, शिशिर में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन और शरद ऋतु में मारण कर्म करना चाहिये । शान्तिकर्म में गो और मेष का, वश्य और स्तम्भन में व्याघ्र का, विद्वेषण में गज का, उच्चाटन में भालू का और मारण में मेष, महिष या अश्व के चर्म का आसन प्रयोग के लिए विहित है । शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः पद्म, स्वस्तिक, विकट, कुक्कुट, वज्र और भद्रक ये आसन तथा पद्म, पाश, गदा, मुशल, वज्र और खड्ग ये छह मुद्रायें प्रशस्त कही गई हैं ।

षट्कर्म में माला विधान—षट्कर्म के देवताओं के वर्ण क्रमशः श्वेत, रक्त पीत, मिश्र, कृष्ण और धूम्र हैं । जिस देवता का जो वर्ण है, उसी वर्ण के पुष्पादि उपहार ग्रहण करने चाहिये । मूंगे और लाल रङ्ग की मणियों की माला वश्य और पौष्टिक कर्म में, मन्त्र वर्णों की संख्या के बराबर गुरियों की माला आकर्षण में, साध्य के केश के सूत्र में ग्रथित घोड़े के दाँतों की माला विद्वेषण और उच्चाटन में, युद्ध में मरे हुये को छोड़कर अन्य मृतक के और गर्दभ के दाँतों की माला मारण कर्म में प्रशस्त है ।

षट्कर्म में जप विधान—अनामिका के मध्य पर्व पर माला को स्थापित कर शान्ति, स्तम्भन और वशीकरण के कर्मों में अंगूठे के अग्रभाग से उसे चलावे । विद्वेषण और उच्चाटन के कर्मों में तर्जनी और अङ्गुष्ठ के योग से तथा मारण में कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ से माला चलावे, अथवा तन्त्रानुसार यथाविधि वर्णमाला में जप करे । सभी प्रयोगों में दो हजार जप करे ।

समीक्षा—इस अध्याय का मूल अत्यन्त भ्रष्ट है । लगता है कि यह कौलावली का अंश ही नहीं है । परपुर प्रवेशण (परकाया प्रवेश) और 'अञ्जन सिद्धि' कौल सम्प्रदाय से अलग इन्द्रजाल कर्म के लगते हैं । अपनी शक्ति से दूसरे के मृत शरीर में प्रवेश कर जाना 'परपुर प्रवेश' कहा जाता है और किसी भी वस्तु को जमीन पर या जमीन के अन्दर अपनी सिद्धि से देख लेना 'अञ्जन सिद्धि' कहा गया है । तन्त्रराजतन्त्र में ये दोनों ही सिद्धियाँ बतलाई गई है । अतः वहीं से मिलाकर इनके विषयों को जाना जा सकता है ।

विंश उल्लास में लुकी विद्या और खड्ग सिद्धि, फेत्कारिणी सिद्धि और खेचरी सिद्धि का वर्णन है । लुकी विद्या से तात्पर्य है कि साधक अपनी इच्छानुसार अपने को छिपा ले और अन्तर्धान हो जाय । खड्ग का अथवा शत्रु का स्तम्भन खड्ग सिद्धि से प्राप्त होता है । इच्छानुसार देवी पर अपना अधिकार प्राप्त कर लेना ही फेत्कारिणी सिद्धि है और आकाश गमन में सक्षम होना खेचरी सिद्धि है ।

इस उल्लास के तीसवें श्लोक में षडङ्गदेवता का निरूपण किया गया है । पैंतिसवें श्लोक से लेकर तिरसठवें श्लोक तक विभिन्न प्रकार के पुरश्चरण का

वर्णन कालीकल्प के अन्तर्गत किया गया है ।

कालीकल्प के प्रसङ्ग से चण्डी पाठ में प्रथम, मध्यम और उत्तम चरितों के विनियोग एवं ध्यानादि का वर्णन भी यहाँ किया गया है ।

एकविंश उल्लास में अवधूत क्रम का निरूपण है । अवधूत साधक किस प्रकार रहे और कैसे कुण्डलिनी से सहस्रार तक का मार्ग सिद्ध करे ? यह इस अध्याय का विषय है ।

अध्याय समीक्षा—इस अध्याय के अन्त में बहुत से श्लोक **त्रिपुरासार समुच्चय** से लिए गए हैं । वस्तुतः ये षट्कर्म निरूपण के समान ही हैं । त्रिपुरासारसमुच्चय से लेकर श्रीमज्ज्ञानानन्द ने कुछ नवीकरण के साथ इन्हें उद्धृत किया है । इस पुस्तक के प्रणेता नागभट्ट हैं और कहा जाता है कि कलाप-व्याकरण के रचयिता दुर्गसिंह ही नागभट्ट हैं । त्रिपुरासारसमुच्चय में और कौलावली ग्रन्थ के इस अध्याय में शक्तियों, डाकिनियों और अन्य देवियों को भी षट्चक्रनिरूपण की अपेक्षा अलग क्रम में रक्खा गया है । सौभाग्यरत्नाकार में भी इनका निरूपण किया गया है । वहाँ धातु, त्वक् और अस्थि आदि के अधिदेवता का भी वर्णन है ।

त्रिपुरासारसमुच्चय से मूल उद्धृत करने के बाद इस उल्लास में योनिमुद्रा के प्रयोग से साधक को सब कुछ प्राप्त कर लेने की बात भी कही गई है । योनिमुद्रा के साधन से साधक मन्त्र के दोषों को भी समाप्त कर लेता है और सिद्धि प्राप्त कर अन्ततः मोक्ष का अधिकारी हो जाता है । योनिमुद्रा के साधक द्वारा साधारण से अक्षरों के प्रयोग कर देने मात्र से वे अक्षर मन्त्र बन जाते हैं । योनिमुद्रा के साधन से साधक प्राणवायु पर अधिकार प्राप्त कर लेता है और कालवञ्चन अर्थात् मृत्यु को भी धोखा दे सकता है । अपनी साधना के कारण ही वह योग की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है ।

इस उल्लास के मूल में प्राणवायु के बारे में एक विलक्षण बात यह कही गई है कि प्राणवायु साँस लेते समय मात्र आठ से बारह अङ्गुल के बीच ही साधक के नाक से दूर हो पाता है । व्रत के द्वारा यह दूरी आधा अङ्गुल तक भी की जा सकती है और भोजन के बाद यह दूरी दूनी हो जाती है । बाहर जाने वाली प्राणवायु की दूरी यदि इस माप से अधिक हो जाती है तो निश्चित ही साधक की मृत्यु हो जाती है । इसलिए तत्त्वज्ञ साधक को सदैव प्राणवायु को प्राणायाम द्वारा ठीक रखना चाहिए ।

जब अवधूत साधक भिक्षा के लिए जाता है, तब वह सभी भिक्षा कुण्डली को समर्पित करता है । वह सदैव आशीर्वाद की भूमिका में रहता है और भैरव एवं शिव के साथ सतर्क रहता है । इस साधक की सत्य प्रकृति को कोई नहीं

जानता है । यह साधक कभी पागल-सा व्यवहार करता है, कभी शिष्टजन की तरह, कभी भ्रष्ट व्यक्ति या पिशाचवत् हो जाता है ।

क्वचित् शिष्टः क्वचित् भ्रष्टः क्वचित् भूतपिशाचवत् ॥

योगी तो सदैव पवित्र होता है और वह जिसे स्पर्श कर दे वह तो पावन हो ही जाता है । वह पूर्ण होता है । वह भैरव और आनन्दरूप हो जाता है । वह सभी द्वैत से अद्वैत होकर निरञ्जन एवं निर्विकार हो जाता है ।

कौलावली के अन्तिम श्लोक का रहस्यार्थ—इस श्लोक का अर्थ अत्यन्त गूढ़ है । यहाँ पर जो यह कहा है कि कौलयोगी के बाएँ सुन्दरी युवती होती है इसका गूढार्थ यह है कि वाम अर्थात् मूलाधार के नीचे युवती अर्थात् कुण्डलिनी होती है और दक्षिण अर्थात् ऊपर कुण्डलिनी एवं पर शिव के सामरस्य से निकलने वाला अमृत होता है । गरम-गरम मांस का अर्थ है प्राणसञ्चार और उसका अस्तित्व । वस्तुतः इस अन्तिम श्लोक में आत्मा और देह (शरीर एवं शरीरी) के बीच भेद प्रतिपादित करना ही तन्त्रकार का विशेष आशय है ।

निदेशक
महामना संस्कृत अकादमी
शैवागम एवं पाञ्चरात्र आगम शोध योजना
B. 31/21 A लंका वाराणसी - 5
Ph. [0542] 2369318

विदुषां वशंवदः
सुधाकर मालवीयः

॥ श्रीः ॥

तत्तत्कल्पविधानेन कुलं कुर्यात् सुशिक्षितम् ।
यतः पतिव्रताधर्मात् धर्मो नास्ति जगत्त्रये ॥ १ ॥

पतिः प्राणप्रदो नित्यं पतिरेव परा गतिः ।
पतिरेव परं ब्रह्म पतिः प्राणाधिकः प्रभुः ॥ २ ॥

सर्वतीर्थमयः स्वामी सर्वदेवमयः पतिः ।
सर्वदेवीमयश्चैव पतिरेवमहागुरुः ॥ ३ ॥

वीर साधक कुल (अपनी स्त्री) को तत्तत् कल्पों में विहित विधान के अनुसार सुशिक्षित करे । उसे यह बतावे कि पतिव्रता धर्म से बढ़कर तीनों जगत् में कोई धर्म नहीं है । पति ही स्त्री में प्राण देने वाला है । पति ही स्त्रियों के लिये परा गति है । पति स्त्रियों के लिये परंब्रह्म है । पति प्राण से भी अधिक समर्थ है । पति सर्वदेवमय है; पति ही स्वामी तथा सर्वतीर्थमय है । पति सर्वदेवीमय तथा महागुरु भी पति ही है ॥ १-३ ॥

—कौलावलीनिर्णयः (११.५१-५३)

विषयानुक्रमणिका

पारिभाषिकशब्दकोश

अनलपुर—श्मशान ।

अपानमुद्रा—अङ्गूठा, मध्यमा और तर्जनी को मिला देने से अपान मुद्रा बन जाती है ।

अमृतत्रय—ऐं ह्रीं श्रीं ।

उन्मत्तसमिधा—धत्तूर की समिधा ।

एकलिङ्ग—पाँच कोश के भीतर जहाँ एक लिङ्ग के अतिरिक्त और कोई लिङ्ग न हो उस स्थान को एकलिङ्ग कहा जाता है ।

कारण—मद्य ।

कालसंकर्षा—नौ वर्ष की कन्या ।

कुब्जिका—आठ वर्ष की कन्या ।

कुलद्रुम—कुलस्त्री ।

कुलनायिका—शाक्तों के उत्सवों में जिनकी पूजा होती है । नटी, कपालिका, वेश्या, नापितस्त्री, रजकी—इनके बारह प्रकार तन्त्रशास्त्र में कहे गए हैं ।

कुलवृक्ष—अशोक, केशर, कर्णिकार, आम, तिलक, नमेरू, प्रियाल, सिन्धुवार, कदम्बक, मरुवक, चम्पक, साख—इस प्रकार कुल बारह वृक्ष कुलवृक्ष होते हैं । श्लेष्मातक, करञ्ज, निम्ब, अश्वत्थ, कदम्ब, बिल्व, वट, गूलर और चिञ्चा इन दस कुलवृक्षों पर सदैव योगिनियों का निवास रहता है ।

कुलागार—स्मरमन्दिर ।

कौलिक—पञ्चतत्व (मद्य-मांसादि) को स्वीकार करने वाला एवं मूलमन्त्र के अर्थ का तत्त्ववेत्ता, देवता और गुरु का भक्त तथा दीक्षा सम्पन्नजनों को कौलिक कहा जाता है ।

गन्धाष्टक—चन्दन, अगुरु, कपूर, चोर, कुङ्कुम, रोचना, जटामांसी, कपिजटा—ये महाशक्ति के गन्धाष्टक कहे गये हैं ।

गुरुस्थान—ब्रह्मरन्ध्र ।

चण्डिकाप्रिय धूप—उशीर, चन्दन, कुष्ठ, अगुरु, गुग्गुलु तथा मधु से मिश्रित यह धूप चण्डिका को प्रिय है ।

चतुरस्त्रकादि मुद्रा—सम्पूर्ण अङ्गुलियों के साथ दोनों हाथ के तलवों को बराबर कर अधोमुख स्थापित करे तो यह चतुरस्त्रिका मुद्रा कही जाती है ।

चतुष्पथ—जहाँ चण्डिका की शिला (प्रतिमा) हो उसे ही चतुष्पथ कहा गया है । वहाँ महादेवी की पूजा करने से उत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है ।

तत्त्वमुद्रा—बायें हाथ के अङ्गूठे एवं अनामिका अङ्गुलियों के योग को तत्त्वमुद्रा कहते हैं ।

तीक्ष्ण तैल—नीम का तेल ।

नाराच मुद्रा—अध:रेखा एवं ऊर्ध्वरेखा सहित तर्जनी से अङ्गुष्ठ के अग्र भाग में संयुक्त कर एवं अन्य अङ्गुलियों को ऊपर उठाये रहने से नाराच मुद्रा होती है ।

पञ्च अवस्था—जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या एवं उन्मनी अवस्था ।

पञ्चबाण—द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: ।

पञ्च संकेतक—१.चक्रसङ्केतक, २.गुरुसङ्केतक, ३.मन्त्रसङ्केतक, ४.नामसङ्केतक, ५.समयाचार सङ्केतक ।

पञ्च ह्रस्व—अ इ उ ऋ ऌ ।

परमा मुद्रा—दोनों मध्यमा को सीधे रखकर उस पर तर्जनी अङ्गुली लगा देवे । इसी प्रकार दोनों अनामिका के मध्य में दोनों कनिष्ठा को स्थापित कर अङ्गुष्ठ से परिपीडित कर सब को एक में मिला देवे । यह परमामुद्रा कही जाती है ।

परलता—परकीया स्त्री ।

पुरश्चरण—मन्त्रजप की विशिष्ट संख्या का संकल्प कर उसकी पूर्णता करना ।

प्राणमुद्रा—वृद्धा (अङ्गूठा), अनामिका और कनिष्ठा अङ्गुलियों को एक में मिला देने पर प्राणमुद्रा बनती है ।

प्राणायाम—मन्त्रवेत्ता साधक प्रणव का उच्चारण करते हुये बाईं नासिका पुट से जितनी वायु से उदर पूर्ण हो जाय उतनी वायु खींच कर उदर को पूर्ण करे । इस प्रकार सारे शरीर को पूर्ण करने के कारण वह **पूरक** प्राणायाम हो जाता है । बिना शीघ्रता के अथवा बिना विलम्ब किये जानु की प्रदक्षिणा कर अङ्गुलि विस्फोट करे तो उसे मात्रा कहते हैं । इस प्रकार बारह मात्रा में किया गया प्राणायाम पूरक कहा जाता है । फिर साधक निश्वास-उच्छ्वास बिना लिये समस्त गात्र में उस वायु को रोककर किसी भरे हुये घड़े के समान निश्चल हो जावे; तो उसे **कुम्भक** प्राणायाम कहा जाता है । अड़तालिस मात्रा में कुम्भक प्राणायाम किया जाता है । फिर मन्त्रवेत्ता साधक नि:श्वास योग से युक्त होकर एक श्वास से ही सारी वायु बाहरी वायु के सहारे बाहर निकाल देवे तो उसे **रेचक** प्राणायाम कहते हैं । चौबीस मात्रा में रेचक प्राणायाम किया जाता है ।

प्रेतभूमि—श्मशान ।

फेत्कारिणीविद्या—जलादि फेंककर प्रयोग करना ।

बाह्यचक्र—मूलाधार से उठी हुई वायु का पंखा ।

बीजमन्त्र—मन्त्रशास्त्र के अनुसार अं, यं, रं, लं, वं इत्यादि स्वरवर्णों तथा ह्रीं, क्लीं इत्यादि एकाक्षर शब्दों की संज्ञा । बीजाक्षरों में ही मन्त्रों की शक्ति मानी जाती है । मन्त्र के देवता का जागरण बीजाक्षरों के उच्चारण से होता है । ॐकार को प्रणवबीज अर्थात् सभी बीजाक्षरों की उत्पत्ति का मूल माना जाता है ।

ब्रह्मजल—इस शिवतीर्थात्मक शरीर में इडा और सुषुम्ना नाड़ी स्वरूप दो नदियाँ (नाडियों) के बीच बहने वाला ज्ञान रूप जल ।

ब्रह्मतरु—ब्रह्मरन्ध्र ।

ब्रह्ममूल—ओम् (ॐ)। प्रबोधिनी में ब्रह्ममूल (ॐ) से मन्त्र पुष्प द्वारा भगवती की प्रयत्नपूर्वक पूजा करने से विघ्न नहीं होता ।

ब्रह्मवृक्ष—बेल ।

ब्राह्मणविधवा—कुण्डलिनी ।

भावत्रय—तन्त्रशास्त्र के अनुसार साधक की तीन अवस्थाएँ होती हैं—१. पशुभाव, २. वीरभाव, ३. दिव्यभाव । ये क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम आध्यात्मिक अवस्था के सूचक हैं ।

महाचीनक्रम—तारा विद्या ।

महाचीनद्रुम—कुलस्त्री ।

महाचीनद्रुमलता—कदम्ब वृक्ष ।

मृगी मुद्रा—पाणि के सङ्कोच करने से शूकरी, उसी में कनिष्ठा को हटा देने से हंसी तथा जिसमें कनिष्ठा तर्जनी का सम्बन्ध न हो उसे मृगी मुद्रा कहते हैं ।

मृद्वासन—छह मास से पहले जो गर्भ गिर गया हो, कौल उसे ही 'मृदु' कहते हैं। इससे निर्मित आसन ही मृद्वासन कहा जाता है ।

मृदुचूडक—छह मास से पहले जो गर्भ गिर गया हो, चूडाकर्म तथा उपनयन से रहित ऐसे मृदु को 'मृदुचूडक' भी कहा जाता है ।

योनिमुद्रा—हठयोग की एक क्रिया । इसमें मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी शक्ति का सुषुम्णा नाडी द्वारा ब्रह्मरन्ध्र तक प्राणशक्ति से आरोहण तथा ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार (या ब्रह्मयोनि) तक अवरोहण की क्रिया होती है ।

लता—कुलस्त्री । जिसके आलिङ्गन मात्र से साधक का शरीर अमृत के समान स्वच्छ हो जाता है ।

लतागृह—स्मरमन्दिर ।

लुकी विद्या—अदृश्य होने की विद्या ।

वीरद्रव्य—मद्य ।

शिववाक्य—कौलाचार ।

शिवाम्बु—स्वमूत्र ।

शौच—आन्तरिक और बाह्य शुद्धता । इनके पाँच प्रकार कहे गए हैं—१. मनः शौच, २. कर्मशौच, ३. कुलशौच, ४. वाक्शौच, ५. आभ्यन्तर शौच ।

श्रीयन्त्र—इस तान्त्रिक यन्त्र की नाप ९६ इकाइयों पर रखी गई है । मध्य बिन्दु बीजशक्ति स्वरूप है । प्रथम केन्द्रीय त्रिकोण, शम्भु का स्थान है । अष्टकोण वसुगण का स्थान है । आन्तर और दश-दश त्रिकोण दस प्राणों के द्योतक है । षोडश दल चन्द्रमा की विशुद्ध सोलह कलाएँ हैं तथा आठ दलों में सोलह कलाओं का समावेश है । तीन बाह्य रेखाएँ त्रैलोक्य, चार द्वार ऋद्धिसिद्धियों के प्रवेशद्वार, इस यन्त्र में चार सीधे और पाँच उल्टे त्रिकोणों से मिलकर ४३ त्रिकोणों की सृष्टि होती है । इसकी आराधना का जपमन्त्र 'ॐ श्री क्लीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः' है ।

संवित्—विजया (भाँग)। संवित् और आसव दोनों में जो साधक विजया का ग्रहण कर ध्यान करता है, उसको उसी समय ध्यान में मूर्त्ति का प्रत्यक्ष हो जाता है ।

संवृत्त मुद्रा—दोनों हाथ की मुट्ठियों को अधोमुख स्थापित करे तो संवृत्त मुद्रा हो जाती है ।

सन्धिवर्ण—ए ऐ ओ औ ।

सन्ध्या—एक वर्ष की कन्या ।

समयाचार—तन्त्रमार्ग का एक प्रकार । अपर संज्ञा कौल मार्ग । तान्त्रिक श्रीचक्र की मानसपूजा या ध्यानात्मक उपासना ।

सम्पुट मुद्रा—दोनों हाथों को परस्पर सम्मुख कर पुट के आकार में संयुक्त कर बनावे तो वह सम्पुट नामक मुद्रा बन जाती है । नमस्कार कर्म में इसका प्रयोग किया जाता है ।

सम्पुटाञ्जलि मुद्रा—इसी मुद्रा को बनाकर दोनों कनिष्ठा अङ्गुली के मूल प्रदेश में दोनों अङ्गूठो को लगा देवे तो वह सम्पुटाञ्जलि मुद्रा कही जाती है ।

सारस्वत मन्त्र—ऐं ।

स्वयम्भूकुसुम—रज ।

हंसविद्या—सोऽहं, हंसः—इस मन्त्र का श्वास एवं उच्छ्वास के साथ जप या मनन करते हुए आत्मानुभव पाने की साधना ।

हेतु—मद्य ।

वर्णसंकेतसूची

अंकुशबीज—क्रों
अमृतत्रय—ऐं ह्रीं श्रीं
अर्घीश—ह
अर्धचन्द्र—अनुस्वार
अस्त्रमन्त्र—अस्त्राय फट्
आद्याबीज—श्रीं
इन्दु—स
ईंश—य
एकादश स्वर—ए
कठिनबीज—श्रीं
कन्दर्पबीज—क्लीं
कमलाबीज—श्रीं
कवचबीज—हुँ
कामकला—ईं
कामबाण—द्रां द्रीं
कामबीज—क्लीं
कामराज—क्लीँ
कामेशी—क्लीं, ह्रीं
कूर्चबीज—हुँ
क्षिति (बीज)—ल
जल—व
ठ द्वय—स्वाहा
तार—ॐ
तृतीयबीज—सौः
त्रितार—ऐं ह्रीं श्रीं
त्रिपुरा मन्त्र—श्रीं ह्रीं क्लीं
त्र्यक्षरी—ऐं क्लीं सौः
दक्षकर्ण—उ
दक्षश्रोत्र—उ
देवराज—ल
धरा—ल
पञ्चबाण—द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः
पञ्चम—व
पञ्चान्तक—म
पराबीज—श्रीं
पाश—आँ
प्राणविद्या—हँ
प्रेतबीज—हं
फलपाक—सिद्धि
बिन्दु—अनुस्वार
भान्त—म
भुवनेशी—ह्रीं
भू बीज—लं
भृगु—स
मद—क
महाकाल—श
माया (बीज)—ह्रीं
मुखवृत्त—ऊ
रमाबीज—श्रीं
लक्ष्मीबीज—श्रीं

लज्जाबीज—ह्रीं
वधूबीज—स्त्रीं
वर्म—हुँ
वह्नि—र
वह्निजाया—स्वाहा
वागीश—ऐं
वाग्भव—ऐं
वाणी—ऐं
वान्त—श
वामनेत्र—ई
वामपाद—ह
वायु—य
वारुणबीज—व
वियत्—ह
विश—म
विष—म
वेदादि—ॐ
व्योम—ह
शक्र—ल
शक्रस्वर—औ
शक्तिबीज—ह्रीं
शवर्ग—शं षं सं
शिव—ह
शीतल—व
श्रीबीज—श्रीं
श्वेत—ष
सदाशिव—ह
सनयन—ई
सरस्वतीबीज—ऐं
सान्त—ह
सूर्यस्वर—ऐं
स्मरबीज—क्लीं
हृत्—नमः
हृदय—नमः
हृल्लेखा—ह्रीं
हंसः—सः

॥ श्रीः ॥

श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचितः

कौलावलीनिर्णयः

प्रथम उल्लासः

मङ्गलाचरणम्

नत्वा श्रीगुरुपादपद्मयुगलं सिद्धैः सदा सेवितं
शाक्तानां परिभावमोक्षजनकं कौलावलीनिर्णयम् ।
वक्ष्येऽहं कुलवर्धनं सुकृतिभिः सेव्यं सदा कौलिकै-
र्भावैरेव मनोहरैश्च चरणाब्जैकप्रसादालयम् ॥ १ ॥
वाञ्छाकल्पतरुं तनोति शिवयोर्वाक्यानुसारार्थतो ।
ज्ञानानन्दगिरिर्महेशचरणाब्जैकप्रसादालयः ॥ २ ॥

* निरञ्जन *

मञ्जुसिञ्जितमञ्जीर वाममर्द्धं महेशितुः ।
आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं वचसामपि ॥ १ ॥
सुखदा सर्वभूतानां सच्चिदानन्दरूपिणी ।
स भूत्यै मम सम्भूयात् शङ्करार्द्धशरीरिणी ॥ २ ॥
सहस्त्रविद्युदामानं कान्त्या दीप्तां मनोहराम् ।
मूलाधारस्थितां वन्दे कौलानां कुलदेवताम् ॥ ३ ॥
स्वयम्भुवं त्रिः संवेष्ट्य स्फुरन्ती सर्पिणीमिव ।
तां स्यन्दमानां सुधास्रोतः कुलकुण्डलिनीं श्रये ॥ ४ ॥
विश्वमूलामनाद्यन्तां भक्तानामार्त्तिनाशिनीम् ।
उपासितुः कामदुघां वन्दे वर्णस्वरूपिणीम् ॥ ५ ॥
कौलावली निर्णयोऽयं कौलमार्गप्रवर्त्तकः ।
ग्रन्थः सर्वैर्दुराराध्यः आचारेणापि दुर्गमः ॥ ६ ॥

टीकाकर्तुं प्रवृत्तोऽहमनुज्ञातो मनीषिभिः ।
निर्विघ्नं कुरु मे मातः सुबुद्धिं देहि शाङ्करि ॥ ७ ॥

महेश्वर के चरण कमलों के प्रसन्नता का एकमात्र पात्र मैं (महेश्वरगिरि) अपने श्रीगुरु के चरणकमलों को नमस्कार कर सिद्धों के द्वारा सुसेवित शाक्त सम्प्रदाय वालों को आदर देने वाले तथा उन्हें मोक्ष देने वाले कौलावली निर्णय नामक ग्रन्थ का निर्माण कर रहा हूँ । यह कुलमार्ग की वृद्धि करने वाला है । अतः पुण्यात्मा कौलमार्ग वालों के लिये यह नित्य मनोहर भावों से सेवनीय है । शिव तथा शक्ति के कथनानुसार यह अर्थ के द्वारा वाञ्छा कल्पतरु का विस्तार करता है और भगवान् के कमल सदृश चरणों की प्रसन्नता ही जिसका एकमात्र स्थान है ॥१-२॥

यस्याः प्रसादतो लेभे शास्त्रार्थं तत्त्वनिर्णयम् ।
तां नमामि महादेवीं वाणीं वाग्विभवप्रदाम् ॥ ३ ॥

वाग्विभव प्रदान करने वाली; जिन महादेवी वाणी के द्वारा तत्त्व निर्णय नामक इस शास्त्र के अर्थ को मैंने प्राप्त किया है सर्वप्रथम उन्हें मैं (महेश्वरगिरि) नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

संग्रहार्थे तन्त्रग्रन्थनिरूपणम्

संवीक्ष्य यामलं रुद्रब्रह्मविष्णुकसञ्ज्ञकम् ।
यामलं शक्तिसञ्ज्ञञ्च भावचूडामणिं तथा ॥ ४ ॥
तन्त्रचूडामणिञ्चैव कुलचूडामणिं तथा ।
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलामृतकुलार्णवम् ॥ ५ ॥
कालिकाकुलसर्वस्वं कुलसद्भावमेव च ।
कालीतन्त्रकुलानन्दं कुलचक्रं तथैव च ॥ ६ ॥
कालीकल्पं महाकौलं कुमारीतन्त्रमेव च ।
समयाख्य कालीतन्त्रं फेत्कारीं फेरवीं तथा ॥ ७ ॥
श्रीक्रमं योगिनीतन्त्रं श्रीहंसपरमेश्वरम् ।
स्वतन्त्रं तन्त्रराजञ्च ज्ञानमालां ततः परम् ॥ ८ ॥
वायवीं हंसतन्त्रञ्च ताराकल्पञ्च मालिनीम् ।
मन्त्रनिर्णयतन्त्रञ्च योगिनीहृदयं तथा ॥ ९ ॥
कुलार्णवञ्च गान्धर्वमुड्डीयानञ्च तोडलम् ।
शिवशासनतन्त्रञ्च मन्दरं प्लावनीं तथा ॥ १० ॥
वीराबलिञ्च वाराहीं वीरतन्त्रञ्च कुब्जिकाम् ।
नीलतन्त्रं मत्स्यसूक्तं ललितातन्त्रमेव च ॥ ११ ॥

शम्भुनिर्णयतन्त्रञ्च वामकेश्वरतन्त्रकम् ।
वटुकसंहिताञ्चैव तारार्णवं ततः परम् ॥ १२ ॥
गुप्तार्णवं चण्डरोषं मायां नीलमणिं तथा ।
समयाख्यं तन्त्रसारं ततो मन्त्रविमर्शिनीम् ॥ १३ ॥
ज्ञानसारं योगवतीं भैरवीतन्त्रमेव च ।
भैरवाख्यं महातन्त्रं सिद्धसारस्वतं ततः ॥ १४ ॥
त्रिपुरार्णवतन्त्रञ्च उत्तरं तन्त्रमेव च ।
छिन्नातन्त्रं वातुलञ्च दक्षिणामूर्त्तिसंहिताम् ॥ १५ ॥
नयोत्तरं ह्येकवीरां दृष्ट्वा विविधसंग्रहान् ।
गुरुणाञ्च मतं ज्ञात्वा सारात्सारतरं महत् ॥ १६ ॥

मैंने रुद्रयामल, ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल, भावचूडामणितन्त्र, चूडामणि, कुलचूडामणि, कुलसार, कुलोड्डीश, कुलामृत, कुलार्णव, कालिका-कुलसर्वस्व, कुलसद्भाव, कालीतन्त्र, कुलानन्द, कुलचक्र, कालीकल्प, महाकौल, कुमारीतन्त्र, समयाख्य कालीतन्त्र, फेत्कारीतन्त्र, फेरवीतन्त्र, श्रीक्रमतन्त्र, योगिनीतन्त्र, श्रीहंसपरमेश्वरतन्त्र, स्वतन्त्र तन्त्रराजतन्त्र, ज्ञानमालातन्त्र, इसके बाद वायवी हंसतन्त्र, ताराकल्प, मालिनीतन्त्र, मन्त्रनिर्णयतन्त्र, योगिनीहृदयतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, गान्धर्वउड्डीयानतन्त्र, तोडलतन्त्र शिवशासनतन्त्र, मन्दरतन्त्र, प्लावनीतन्त्र, वीरावलीतन्त्र, वाराहीतन्त्र, वीरतन्त्र, कुब्जिकातन्त्र, नीलतन्त्र, मत्स्यसूक्ततन्त्र, ललितातन्त्र, शम्भुनिर्णयतन्त्र, वामकेश्वरतन्त्र, बटुकसंहिता, तारार्णवतन्त्र, इसके बाद गुप्तार्णवतन्त्र, चण्डरोषतन्त्र, मायातन्त्र, नीलमणितन्त्र, समया नामक तन्त्र, तन्त्रसार, इसके बाद मन्त्रविमर्शिनी, ज्ञानसार व योगवतीतन्त्र, भैरवीतन्त्र, भैरवमहातन्त्र, सिद्धसारतन्त्र, इसके बाद त्रिपुरार्णवतन्त्र, उत्तरतन्त्र, छिन्नातन्त्र, वातुलतन्त्र, दक्षिणामूर्तिसंहिता, नयोत्तरतन्त्र तथा एकवीरातन्त्र आदि अनेक संग्रहों को देखकर एवं अपने गुरुओं से इस मार्ग के सिद्धान्त को ज्ञात कर सभी ग्रन्थों के महान् सारों से कौलशास्त्र के सिद्धान्त की गवेषणा कर इस ग्रन्थ की रचना की गई है ॥ ४-१६ ॥

तन्त्रशास्त्रगोपनीयत्वे युक्तिः

द्वैतज्ञानविहीनानां मनोऽभीष्टप्रदायकम् ।
अतियत्नेन गोप्तव्यं मातृमैथुनवत् सदा ॥ १७ ॥

यह ग्रन्थ अद्वैतवादियों के अभीष्टों को प्रदान करने वाला है । अतः इसे मातृमैथुन के समान अत्यन्त यत्न से गोपनीय रखना चाहिये ॥ १७ ॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं न दुष्टाय कथञ्चन ।

न दद्यात् परशिष्याय वञ्चकाय तथैव च ॥ १८ ॥
सर्वथा गोपयेदेनं यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।

इस तन्त्र निर्णय को जिस किसी को नहीं देना चाहिये । दुष्ट को तो किसी प्रकार भी न देवे, दूसरों के शिष्यों को भी न देवे । इसी प्रकार वञ्चक (कपटी) को भी न देवे । यदि साधक अपना कल्याण चाहे तो इस शास्त्र को उसे सब प्रकार से गोपनीय रखना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

योग्यशिष्यायदेयम्

प्रकृताचारयुक्ताय गुरुसेवापराय च ॥ १९ ॥
कुलीनाय महोच्छाय देवीभक्तपराय च ।
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रदापयेत् ॥ २० ॥

जो इसके अनुसार आचरण करने वाला हो, गुरु सेवा परायण हो, कुलीन एवं उत्साही हो, देवी का भक्त हो तथा गुरु में भक्ति रखने वाला शिष्य साधक हो तो उसे ही प्रदान करे ॥ १९-२० ॥

विना परीक्ष्य यो दद्यात् यस्मै कस्मै कथञ्चन ।
स भक्ष्यो योगिनीवृन्दैर्मृते च नरकं व्रजेत् ॥ २१ ॥
तस्माच्च साधकश्रेष्ठो गोपयेत् सर्वथा पुनः ।

जो मन्त्रज्ञ बिना परीक्षा किये हुये; जैसे-तैसे शिष्य को यह तत्त्वनिर्णय प्रदान करता है, वह योगिनी समूहों का भक्ष्य हो जाता है और मरने पर नरकगामी हो जाता है । इसलिये श्रेष्ठ साधक इसे सर्वथा गुप्त रखे ॥ २१-२२ ॥

पुस्तकं वीक्ष्य यो मूढो न लब्धो गुरुवक्त्रतः ॥ २२ ॥
कुर्याल्लोभवशेनैव सोऽपि नश्यति निश्चितम् ।
तस्य कर्माणि सर्वाणि नरकाय भवन्ति हि ॥ २३ ॥

जो मूर्ख साधक पुस्तक मात्र को देखकर; गुरु के मुख से बिना दीक्षा लिये लोभवश इसका अनुष्ठान करता है, वह निश्चित रूप से विनष्ट हो जाता है और उसके सारे कर्म नरक जाने में कारण बन जाते हैं ॥ २२-२३ ॥

योगिनीनां भवेद् भक्ष्यो नारकी ब्रह्मघातकः ।
तस्माज्ज्ञात्वा गुरोर्वक्त्रात् साधने यत्नमाचरेत् ॥ २४ ॥

वह योगिनियों का भक्ष्य बन जाता है, नरकगामी तथा ब्रह्महत्या का पाप तो उसे लगता ही है । इसलिये गुरुमुख द्वारा दीक्षा लेकर ही इसके अनुष्ठान के लिये प्रयत्न करे ॥ २४ ॥

शिवः ब्रह्मस्वरूपी

अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः ।
सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वेशो निर्मलोदयः ॥ २५ ॥
स्वयंज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः ।
निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशा जीवसञ्ज्ञकाः ॥ २६ ॥

साधक विचार करे कि निष्कल परब्रह्मरूप शिव नामक एक ही तत्त्व है, जो सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, सर्वेश, निर्मल ज्ञानस्वरूप, स्वयं ज्योति, अनादि, अनन्त, निर्विकार और परात्पर एवं निर्गुण सच्चिदानन्द है और ये समस्त जीव उसी के अंश हैं ॥ २५-२६ ॥

अनाद्यविद्योपहिता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः ।
सर्वेप्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः ॥ २७ ॥

जिस प्रकार अग्नि से उत्पन्न विस्फुलिङ्ग (चिंगारी) उपाधियुक्त होता है, उसी प्रकार शिवतत्त्व से उत्पन्न हुए सभी जीव अनादि अविद्या से उपहृत हैं और वे सभी जीव अपने-अपने अनादि कर्मों के कारण ही नाना उपाधियों से संयुक्त बतलाये गये हैं ॥ २७ ॥

मानवकर्त्तव्यकथनम्

चतुर्विधशरीराणि धृत्वा धृत्वा सहस्रशः ।
सुकृतैर्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥ २८ ॥
चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् ।
न मानुष्यं विनाऽन्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥ २९ ॥

ये जीव सहस्रों बार (अण्डज, पिण्डज, उद्भिज और स्वेदज) चार प्रकार के शरीर धारण करते रहते हैं और पुनः पुण्योदय होने पर मनुष्य शरीर प्राप्त करते हैं । उसमें भी जब वे ज्ञान प्राप्त करते हैं; तब उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है । इन जीवों को; जो चौरासी लाख योनियों में अनेक बार भटकते रहते हैं, उन्हें मनुष्य योनि प्राप्त किये बिना अन्यत्र तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ॥ २८-२९ ॥

तत्र जन्मसहस्रेषु जन्मैकमपि भाग्यतः ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥ ३० ॥

यह जीव हजारों बार जन्म लेता रहता है । तदनन्तर पुण्य सञ्चय होने पर यदा-कदा उसे मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।

यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः ॥ ३१ ॥

जो मोक्ष के सोपानभूत इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त करके भी; अपने को तरण-तारण के योग्य नहीं बना पाता, उससे बढ़कर भला और पापी कौन हो सकता है ॥ ३१ ॥

ततश्चाप्युत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम् ।
न वेत्तात्महितं यस्तु स भवेदात्मघातकः ॥ ३२ ॥

इन रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ग्रहण करने वाली इन्द्रियों के सौष्ठव से युक्त मनुष्य जन्म प्राप्त कर जो अपने हित का साधन नहीं करता; उससे बढ़कर आत्मघाती कौन हो सकता है? ॥ ३२ ॥

विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते ।
तस्माद् देहधनं रक्षन् पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥ ३३ ॥

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थों की प्राप्ति बिना मनुष्य देह प्राप्त किये नहीं होती । इसलिये शरीर रूप सम्पत्ति की रक्षा करते हुये पुण्यकर्म का अर्जन करते रहना चाहिये ॥ ३३ ॥

ज्ञानप्राप्त्यर्थं कर्मकर्त्तव्यम्

तावत् कर्माणि कुर्वीत यावज्ज्ञानं न जायते ।
ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वापि यावद् देहस्य रक्षणम् ॥ ३४ ॥

ज्ञानी अथवा अज्ञानी जीव का जब तक शरीर सुरक्षित है; तभी तक वह कर्म करे और वह कर्म भी तब तक करे; जब तक उसे (आत्म) ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जाती ॥ ३४ ॥

तावद्वर्णसमाचारः कर्त्तव्यः कर्ममुक्तये ।
कर्मणोन्मीलिते ज्ञाने ज्ञानेन शिवतां व्रजेत् ॥ ३५ ॥

कर्म से छुटकारा प्राप्त करने के लिये ही वर्णाश्रम धर्म पालन रूप कर्म की आवश्यकता है, क्योंकि कर्म के द्वारा ज्ञान हो जाता है और ज्ञान हो जाने पर यह जीव शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ३५ ॥

तत्त्वज्ञाननिरूपणम्

कुर्यादनित्यकर्माणि नित्यकर्माणि वा चरेत् ।
सर्वकर्माणि सन्त्यक्तुं न शक्यं देहधारिणा ॥ ३६ ॥

जीव को नित्य अथवा अनित्य कर्म सदैव करते रहना चाहिये । क्योंकि देह

धारण करने वाले लोग सर्वथा कर्म का त्याग नहीं कर सकते ॥ ३६ ॥

स्वकार्येषु प्रवर्तन्ते करणानीति चिन्तयन् ।
अहम्भावमपास्यैवं यः कुर्यात् स न लिप्यते ॥ ३७ ॥

इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों में लगी रहती हैं । इसलिये अपने अहम्भाव का त्याग कर जो कार्य में लिप्त रहता है, वह उस कर्म से लिप्त नहीं होता ॥ ३७ ॥

त्यजेत् कर्मफलं यो वा स त्यागीत्यभिधीयते ।
क्रियमाणानि कर्माणि ज्ञानप्राप्तेरनन्तरम् ॥ ३८ ॥
न च स्पृशन्ति तत्त्वज्ञं जलं पद्मदलं यथा ।
तत्त्वनिष्ठस्य कर्माणि पुण्यापुण्याणि सङ्क्षयम् ॥ ३९ ॥

त्यागी वही है जो कर्मफल का त्याग करता है । ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर किये जाने वाले समस्त कर्म उस तत्त्वज्ञ को इस प्रकार स्पर्श नहीं करते, जैसे कमल पत्र को जल स्पर्श नहीं करता । तत्त्वनिष्ठ के पाप पुण्ययुक्त समस्त कर्म अपने आप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८-३९ ॥

प्रयान्ति नैव नरकं तत्त्वनिष्ठाः कदाचन ।
उत्पन्नसहजानन्दतत्त्वज्ञानरताः सदा ॥ ४० ॥

जिन्हें स्वाभाविक रूप से आनन्द एवं तत्त्वज्ञान सदैव के लिये उत्पन्न हो जाता है, ऐसे तत्त्वनिष्ठ कभी भी नरक में नहीं जा सकते ॥ ४० ॥

सर्वसङ्कल्पसन्त्यक्तः स विद्वान् कर्म सन्त्यजेत् ।
वृथैव यैः परित्यक्तं कर्मकाण्डमपण्डितैः ॥ ४१ ॥
पाषण्डाः पण्डितम्मन्यास्ते यान्ति नरकं किल ।

जिसने अपने सारे सङ्कल्पों का त्याग कर दिया है वहीं विद्वान् कर्म का त्याग करे । किन्तु जिन मूर्खों ने अपने सङ्कल्प का त्याग किये बिना ही कर्मकाण्ड का त्याग कर दिया है ऐसे पाखण्डी अपने को पण्डित मानने वाले निश्चय ही नरक प्राप्त करते हैं ॥ ४१-४२ ॥

प्राप्तज्ञानस्य कर्मकाण्डे अनधिकारित्व कथनम्

फलं प्राप्य यथा वृक्षः पुष्पं त्यजति निस्पृहः ॥ ४२ ॥
तत्त्वं प्राप्य तथा योगी त्यजेत् कर्मपरिग्रहम् ।

जिस प्रकार फल प्राप्त कर लेने पर वृक्ष निःस्पृह होकर अपने पुष्पों का परित्याग कर देते हैं, उसी प्रकार योगी भी तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेने पर कर्म का परित्याग कर देते हैं ॥ ४२-४३ ॥

अश्वमेधशतेनापि ब्रह्महत्याशतेन च ॥ ४३ ॥
पुण्यपापैर्न लिप्यन्ते येषां ब्रह्म हृदि स्थितम् ।

योगी भले ही सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ करे; अथवा सैकड़ों ब्रह्महत्या का पाप करे; किन्तु जिनके हृदय में ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो गया है ऐसे योगी पुण्य और पाप से लिप्त नहीं होते ॥ ४३-४४ ॥

पृथिव्यां यानि कर्माणि जिह्वोपस्थनिमित्ततः ॥ ४४ ॥
जिह्वोपस्थपरित्यागी कर्मणा किं करिष्यति ।

इस पृथ्वी में जितने भी कर्म हैं; उनमें जिह्वा और उपस्थ ही निमित्त है । किन्तु जिसने जिह्वा और उपस्थ के लिये कर्म छोड़ दिया है वह किस निमित्त पुनः कर्म करेगा ॥ ४४-४५ ॥

ज्ञानस्य द्वैविध्यम्

आगमोत्थं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते ॥ ४५ ॥
शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ।

ज्ञान दो प्रकार का होता है । एक आगमोत्थ ज्ञान तथा दूसरा विवेकजन्य ज्ञान । शब्दब्रह्म का ज्ञान आगमजन्य ज्ञान है और परब्रह्म का ज्ञान विवेकजन्य ज्ञान है ॥ ४५-४६ ॥

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ॥ ४६ ॥
परं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ।

कोई अद्वैत मानते हैं और कोई द्वैत मानते हैं । ऐसे लोग द्वैताद्वैत से विवर्जित परतत्त्व को जानने में समर्थ नहीं होते ॥ ४६ ॥

द्वे पदे बन्धमोक्षाय ममेति निर्ममेति च ॥ ४७ ॥
ममेति बध्यते जन्तुर्विमुक्तिर्निर्ममेति च ।

'मम' और 'न मम'—ये दो पद ही क्रमशः बन्ध और मोक्ष में कारण होते हैं। 'मम' से जन्तु संसार में बन्धन प्राप्त करता है और ' न मम' इससे मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ४७-४८ ॥

विद्याऽविद्यालक्षणम्

विद्याऽविद्याद्वयोर्योगात् पक्षद्वयमुदीरितम् ॥ ४८ ॥
तत् कर्म यच्च बन्धाय साऽविद्या परिकीर्त्तिता ।
यन्न बन्धाय तत् कर्म सा विद्या परिकीर्त्तिता ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार विद्या और अविद्या—ये दो पद कहे गये हैं । जो कर्म संसार में बाँधने वाला है; उसे अविद्या कहते हैं और जो संसार में बाँधने के लिये न होकर संसार से छुटकारा पाने के लिये किया जाता है उसे विद्या कहते हैं ॥ ४८-४९ ॥

यावत् सङ्कल्पकर्मास्ति तावदेव हि बन्धनम् ।
यावत्तदेव नैवास्ति तावदेव हि मोक्षणम् ॥ ५० ॥

जब तक सङ्कल्पपूर्वक कर्म (काम्यकर्म) किया जाता है; उतनी ही देर तक बन्धन है । जब सङ्कल्प का परित्याग कर कर्म किया जाता है; उसी समय मोक्ष प्राप्ति हो जाती है ॥ ५० ॥

जपहोमार्चनं तीर्थं वेदशास्त्रागमादिकम् ।
तावदेव हि सर्वज्ञ यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ ५१ ॥

जप, होम, अर्चन, तीर्थ एवं वेदशास्त्रादि प्रतिपादित कर्म तभी तक हैं; जब तक तत्त्व का ज्ञान नहीं होता ॥ ५१ ॥

अतः प्रयत्नतो धीरः सर्वावस्थासु सर्वदा ।
तत्त्वनिष्ठो भवेच्चैव यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥ ५२ ॥

इसलिये धीर पुरुष सभी अवस्थाओं में (चारो आश्रमों में रहकर) सर्वदा तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे । यदि अपने को मोक्ष की इच्छा हो तो तत्त्वनिष्ठ होना आवश्यक है ॥ ५२ ॥

तत्कारणमहं वक्ष्ये क्षिप्रं येन प्रजायते ।
यथाविधि गुरोर्वक्त्राद्विद्या संगृह्य साधनम् ॥ ५३ ॥

जिन कारणों से शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है उन कारणों को यहाँ मैं कहता हूँ । साधक विधि के अनुसार मोक्ष के साधनभूत गुरु के मुख से विद्या (मन्त्र) ग्रहण करे ॥ ५३ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सापेक्षं पूर्वपूर्वतः ।
अन्यथा न भजेदित्थं करोत्यापत्परम्परा ॥ ५४ ॥

नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्म पूर्व की अपेक्षा परस्पर सापेक्ष हैं । उन्हें सापेक्ष न माने । क्योंकि उन कर्मों के अनुष्ठान से आपत्ति की परम्परा प्राप्त होती रहती है ॥ ५४ ॥

इति ज्ञात्वा महाप्राज्ञः क्रमेण समुपाचरेत् ।
प्रातरुत्थाय शिरसि सहस्त्रदलपङ्कजे ॥ ५५ ॥

तरुणादित्यकिञ्जल्कविधोर्मण्डलसंयुते ।
ध्यायेन्निजगुरुं धीरो रजताचलसन्निभम् ॥ ५६ ॥

(आचार से) महान् एवं विद्वान् लोगों को ऐसा समझकर क्रम प्राप्त इन कर्मों को करना चाहिये । प्रातःकाल उठकर शिर में स्थित सहस्त्रदल वाले कमल में मध्याह्नकालीन सूर्य के समान तेजस्वी केशरों वाले चन्द्रमण्डल में बुद्धिमान् साधक चाँदी के समान चमकीले अपने गुरु का ध्यान करे ॥ ५५-५६ ॥

गुरुध्यानकथनम्

वीरासनसमासीनं शुक्लाभरणभूषितम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरं वरदाभयपाणिकम् ॥ ५७ ॥
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनावलोकितम् ।
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ॥ ५८ ॥
वामेनोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया ।
ज्ञानानन्दसमायुक्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥ ५९ ॥

जो गुरु वीरासन से बैठे हुये स्वच्छ आभरणों से विभूषित, श्वेत वर्ण की माला धारण किये हुये, वर और अभयमुद्रा से युक्त हाथों वाले हैं । जो बाँये ऊरू पर अपनी शक्ति को बैठाये हुये हैं और उसके द्वारा करुणापूर्वक देखे जा रहे हैं। जिनके रत्नाभरणभूषित बाँये हाथ से कमल धारण किये हुये अपनी प्रिया के दाहिने हाथ से जिनका मनोहर शरीर संगृहीत है । ऐसे ज्ञानी एवं आनन्द से संयुक्त अपने गुरु का नाम स्मरण करते हुये साधक उनका ध्यान करे ॥५७-५९॥

गुरुपूजानिरूपणम्

मानसैरुपचारैस्तु सम्पूज्य कल्पयेत् सुधीः ।
गन्धं भूम्यात्मकं दद्याद् भावपुष्पं ततः परम् ॥ ६० ॥
धूपं वाय्वात्मकं देयं तेजसा दीपमेव च ।
नैवेद्यममृतं दद्यात् पानीयं वरुणात्मकम् ॥ ६१ ॥
तत्तन्मुद्राविधानेन सम्पूज्याऽथ गुरुं यजेत् ।
दर्शयित्वा योनिमुद्रां गुरुमन्त्रं जपेत्ततः ॥ ६२ ॥

तदनन्तर मानस उपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिए । यथा 'श्रीगुरवे नमः' भूम्यात्मकं गन्धं समर्पयामि, भावपुष्पं समर्पयामि, वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि, तैजसं दीपं समर्पयामि, वरुणात्मकं जलं समर्पयामि अमृतरूपं नैवेद्यं समर्पयामि, तदनन्तर आकाशात्मकं मुकुटं वसनं च समर्पयामि । इसके बाद तत्तन्मुद्राओं के द्वारा चामर, पादुका, छत्र तथा अलङ्कार समर्पित करे । इस प्रकार गुरुदेव का

पूजन कर गुरुदैवत याग सम्पादन करे । तदनन्तर 'योनिमुद्रा' प्रदर्शित कर गुरुमन्त्र का जप करे ॥ ६०-६२ ॥

गुरुमन्त्रविधानम्

हसौः पदं समालिख्य सहक्षमलवरानिलान् ।
वह्नियुक्तांस्त्रिधा लिख्य आद्यदीर्घत्रयान्वितान् ॥ ६३ ॥
विन्दुनादकलायुक्तान् श्रीपरान्ते च पावकम् ।
अथाराध्यपदं चैव सर्वमूर्ध्वपदं ततः ॥ ६४ ॥
नाथ सर्वगुरुप्रान्ते गुरुः स्वयं ततो गुरुः ।
श्रीगुरुनाथशब्दान्ते सहक्षमलवरानिलान् ॥ ६५ ॥
वह्निदीर्घप्रतियुतान् नादविन्दुकलान्वितान् ।
पिण्डीकृतं लिखेदाद्यं चतुर्थञ्च ततो लिखेत् ॥ ६६ ॥
तृतीयं पूर्ववल्लेख्यं द्वितीयञ्च तथैव च ।
ततः श्रीशम्भुगुर्वन्ते नराद्यं समालिखेत् ॥ ६७ ॥
आद्यकूटं चतुर्थञ्च पुनराद्यं तृतीयकम् ।
चत्वारिंशन्मार्गवर्णैर्मण्डितोऽयं गुरोर्मनुः ॥ ६८ ॥

गुरु मन्त्र का विधान—'हसौ' पद लिखकर आद्य दीर्घत्रय समन्वित वह्नि (रेफ्) से युक्त (रां री रूं) से युक्त स ह क्ष म ल व र य इन्हें विन्दुनाद से युक्त (सं हं क्षं मं लं वं रं यं) लिखकर श्री परपावकमाराध्यं सर्वमूर्ध्वनाथ सर्वगुरुगुरुः स्वयं गुरुः श्रीगुरुनाथ सं हं क्षं मं लं वं रं यं फिर नाद, विन्दु कलान्वित तीन दीर्घयुक्त वह्नि (रां रीं रूं) इन्हें एक में पिण्डी कृत् अर्थात् मिलाकर लिखे । सर्वप्रथम आद्य लिखना चाहिए फिर चतुर्थ लिखे तदनन्तर तृतीय पूर्ववत् लिखे । उसी प्रकार द्वितीय लिखे, फिर श्रीशम्भुगुरु लिखकर आद्य कूट, फिर चतुर्थ, फिर आद्य, फिर तृतीय कूट लिखना चाहिए । इस प्रकार यह गुरु मन्त्र चालीस मार्ग रूप वर्णों से मण्डित है ॥ ६३-६८ ॥

यथाशक्तिजपं कुर्य्यादथवा वाग्भवं जपेत् ।
दक्षकर्णयुतो गौरो वह्निरुद्रेण भूषितः ॥ ६९ ॥

ऊपर कहे गये मन्त्र का यथाशक्ति जप करे; अथवा वाग्भव (ऐं) मन्त्र का जप करे । ग और र इन दो वर्णों को दक्ष कर्ण (उकर) से विभूषित करे ॥ ६९ ॥

वर्णद्वयात्मको मन्त्रश्चतुर्वर्गफलप्रदः ।
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य हारकः ॥ ७० ॥

गुरु, मकार, वह्नि और रुद्र से विभूषित हो । 'गुरु' यह दो वर्ण वाला मन्त्र

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों को देने वाला है । 'ग'कार सिद्धि देने वाला तथा 'र'कार पाप का विनाशक है ॥ ७० ॥

उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः ।
गुरोर्वामकरे तत्तु समर्प्याथ स्तुतिं पठेत् ॥ ७१ ॥

इसमें रहने वाला 'उकार' अव्यक्त (गुप्त) रूप से विष्णु है । इस प्रकार गुरु शब्द त्रितयात्मा है । फिर जप करने के पश्चात् गुरु के वाम हाथ में उस जप को समर्पण कर उनकी स्तुति करे ॥ ७१ ॥

गुरुस्तुतिम्

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७२ ॥

गुरु स्तुति—जिन्होंने अज्ञान रूप अन्धकार से अन्धे लोगों की आँखों में ज्ञान रूप अञ्जन की शलाका से प्रकाश उत्पन्न किया है; उन श्रीगुरु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७२ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७३ ॥

अखण्डमण्डलाकार जिस 'तत्' पद (परंब्रह्म) से सारा जगत् व्याप्त है उस तत् स्वरूप ब्रह्म का जिन्होंने ज्ञान चक्षु से दर्शन सम्भव करा दिया है; उन श्रीगुरु को मेरा नमस्कार है ॥ ७३ ॥

विश्वात्मकः परः शम्भुर्विश्वोत्तीर्णोऽस्म्यहं दृढम् ।
इति यस्याज्ञया तस्मात्तस्य श्रीपादुकास्मृतिः ॥ ७४ ॥

जो विश्वात्मक पर सदाशिव हैं; जिनकी आज्ञा से मैंने दृढ़तापूर्वक इस संसार सागर को पार कर लिया है । इस कारण उन गुरुचरणों की पादुका का स्मरण करता हूँ ॥ ७४ ॥

सहस्रारे पद्मे विगतशठशास्त्रान्तरगतं
सदा देवैर्वन्द्यं भवभयविनाशैककरणम् ।
वराभी पाणिभ्यां प्रकटितसमन्दस्मितमुखं
नमामीदृग्रूपं परमगुरुरूपं सकरुणम् ॥ ७५ ॥

जो सहस्रारपद्म में प्रकाशरूप से स्थित हैं । देवताओं से वन्दनीय हैं और संसार के भय को विनाश करने के लिये एकमात्र शरण (रक्षक) हैं । अपने हाथ में वर और अभय मुद्रा धारण किये हुये हैं और जिनका मुख मन्द-मन्द स्मित से

युक्त है। इस प्रकार के स्वरूप वाले करुणायुक्त परमगुरु के स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७५ ॥

शान्तं शुक्लकलेवरं त्रिनयनं कान्ताङ्गभूषं शिवं
वाञ्छाभीतिकरं प्रचण्डतिमिराज्ञानप्रकाशं रविम् ।
नित्यं नौमि रविं तथाब्धितरणे तं कर्णधारं गुरुं
यस्य श्रीपदपङ्कजोद्भवसुधा सिद्धैः सदा पीयते ॥ ७६ ॥

मैं उन शान्त शुक्ल कलेवर वाले, त्रिनेत्र, अर्द्धनारीश्वर स्वरूप सदाशिव को नमस्कार करता हूँ; जो हाथ में वर और अभयमुद्रा धारण किये हुये हैं, जो प्रचण्ड अन्धकार स्वरूप अज्ञान को हटाकर सूर्य के समान प्रकाश करने वाले हैं, जो संसार सागर से पार करने के लिये कर्णधार स्वरूप हैं, जिनके चरण कमलों से उत्पन हुई सुधा का सिद्ध लोग पान करते हैं ॥ ७६ ॥

सदा विधोर्मण्डलमध्यसंस्थं नमामि नित्यं गुरुपादपद्मम् ।
प्रसादतो यस्य मया प्रलब्धं सवासनाज्ञानविनाशबीजम् ॥ ७७ ॥

सहस्रारपद्म स्वरूप चन्द्रमण्डल के मध्य में सदा निवास करने वाले उन गुरु के चरण कमलों में मैं नमस्कार करता हूँ । जिनकी कृपा से मैंने वासनायुक्त अज्ञान के विनाश का बीज (मूलकारण) प्राप्त कर लिया है ॥ ७७ ॥

पद्मोद्भवे समकलापतयोऽपि नित्यं
यस्याङ्घ्रिपद्ममलं परिभावयन्ति ।
कारुण्यवारिधिरशेषगुणैकराशिः
सोऽयं गुरुः शिरसि शुक्लसरोजमध्ये ॥ ७८ ॥

सहस्रारदल वाले कमल में कमलापति श्री विष्णु सहित समस्त देवगण जिनके चरण कमलों की उपासना करते हैं और जो करुणा के सागर एवं सम्पूर्ण गुणों की राशि हैं । इस प्रकार से वह मेरे गुरु शिर में रहने वाले शुक्लवर्ण के सहस्रारदल में निवास करते हैं ॥ ७८ ॥

प्रवद्धानां पाशैः सकलगुणमायामयरसै-
र्निमग्नानां नित्यं भवजलनिधेरन्तरगतः ।
कृपालेशो बन्धं परिहरति यस्याङ्घ्रितरगः
प्रवन्दे सानन्दं तमपि गुरुरूपं सकरुणम् ॥ ७९ ॥

सम्पूर्ण गुणों से युक्त मायामय रस्सी से बँधे हुये तथा संसार समुद्र के जल में सर्वथा निरन्तर डूबते हुये समस्त जीव जिनके चरण कमलों को प्राप्त करते ही

उनकी कृपा के लेश से सारे बन्धन काट देते हैं, ऐसे करुणायुक्त आनन्द स्वरूप गुरु रूप की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७९ ॥

कवित्वं पाण्डित्यं त्रिभुवनपतित्वं न हि कदा
न वा स्वर्गसिद्धिं न सुरवरसाम्यञ्च नियतम् ।
न वाञ्छामो मोक्षं पुरहरपदं नैव शिवतां
यदि स्याच्चेतो मे निरवधि गुरोःपादकमलम् ॥ ८० ॥

यदि मेरा चित्त निरन्तर गुरु के चरण कमलों में लगा रहे तो मैं कवित्व नहीं चाहता, पाण्डित्य एवं त्रिभुवनपतित्व भी कदापि नहीं चाहता, स्वर्गसिद्धि, निरन्तर इन्द्र की समता भी नहीं चाहता, किं बहुना मोक्ष और शिवपद तथा शिवता भी नहीं चाहता ॥ ८० ॥

स्तवेनानेन संस्तुत्यं गुरोराज्ञां लभेत्ततः ।
ध्यायेत् कुण्डलिनी शक्तिं मूलाधारनिवासिनीम् ॥ ८१ ॥

इस प्रकार की स्तुति से स्तवन कर साधक गुरु की आज्ञा प्राप्त करे । तदनन्तर मूलाधार में निवास करने वाली कुण्डलिनी का अपनी इष्टदेवता स्वरूप में ध्यान करे ॥ ८१ ॥

कुण्डलिनी निरूपणम्

निजेष्टदेवतारूपां विषतन्तुतनीयसीम् ।
सुप्ताहिसादृशाकारां सार्धत्रिवलयान्विताम् ॥ ८२ ॥

जो विसतन्तु (मृणाल) के सदृश अत्यन्त सूक्ष्म है और सोई हुई सर्पिणी के सदृश है, जो साढ़े तीन हाथ गोलाकार रूप से स्थित है ॥ ८२ ॥

कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम् ।
समुत्थाप्य महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः ॥ ८३ ॥

जो करोड़ों विद्युत् के समान प्रकाश वाली है और स्वयम्भू लिङ्ग को साढ़े तीन हाथ वलयाकार रूप में घेर कर स्थित है । साधक उस कुण्डलिनी को प्राणमन्त्र (ह्राँ) मन्त्र से ऊपर की ओर उठावे ॥ ८३ ॥

भेदयित्वा च षट्चक्रं सहस्रारस्थितेश्वरे ।
स्थापयित्वा च तस्योर्ध्वं ध्यायेत् कुलगुरून् क्रमात् ॥ ८४ ॥

पुनः षट्चक्र का भेदन कर उसे सहस्रार में स्थित सदाशिव के साथ स्थापित कर उसके ऊपर क्रमशः कुलगुरुओं का ध्यान करे ॥ ८४ ॥

कुलगुरुनामानि

प्रह्लादानन्दनाथञ्च सनकानन्दनाथकम् ।
कुमारानन्दनाथञ्च वशिष्ठानन्दनाथकम् ॥ ८५ ॥
क्रोधानन्दसुखानन्दौ ज्ञानानन्दं ततः परम् ।
बोधानन्दमथाभ्यर्च्य क्रमेणानेन साधकः ॥ ८६ ॥

प्रह्लादानन्दनाथ, सनकानन्दनाथ, कुमारानन्दनाथ, वशिष्ठानन्दनाथ, क्रोधानन्दनाथ, सुखानन्दनाथ, ज्ञानानन्दनाथ फिर इसके बाद बोधानन्दनाथ का क्रमपूर्वक साधक अर्चन करे ॥ ८५-८६ ॥

परामृतरसोल्लासहृदयान् घूर्णलोचनान् ।
परालिङ्गनसम्भिन्नचूर्णिताशेषतामसान् ॥ ८७ ॥

ये सभी गुरु परामृत रस के पान के उल्लास युक्त हृदय वाले होकर अपने मदमत्त नेत्रों से (मेरे पापों को) घूर रहे हैं । पराशक्ति के आलिङ्गन से इनके सारे तामस (पाप) नष्ट हो गये हैं ॥ ८७ ॥

कुलशिष्यैः परिवृतान् सुखान्तःकरणोद्यतान् ।
वराभयकराशेषकुलतत्त्वार्थवेदिनः ॥ ८८ ॥

ये सभी कुल मार्ग के शिष्यों से घिरे रहने वाले बतलाये गये हैं । इनका समस्त अन्तःकरण सुख से परिपूर्ण बतलाया गया है । ये अपने हाथों में वर और अभयमुद्रा को धारण किये हुये हैं तथा ये कुल मार्ग के समस्त तत्त्वों के जानकार कहे गये हैं ॥ ८८ ॥

सशक्तिं सकुलञ्चैव कथितञ्च सुखावहम् ।
एवं कुलगुरून् नत्वाऽमृतवृष्टिं विधाय च ॥ ८९ ॥
तर्पयित्वा च तां देवीं पुनर्मूले समानयेत् ।
तस्याः प्रभासमूहैश्च व्याप्तं देहं विभावयेत् ॥ ९० ॥

इस प्रकार मैंने शक्ति और कुल के सहित गुरुओं का सुखावह वर्णन किया । अतः विज्ञ साधक इस प्रकार अपने कुलगुरुओं को नमस्कार कर वहाँ अमृतवृष्टि के द्वारा उस कुण्डलिनी को सन्तृप्त कर पुनः अपने मूल स्थान पर ले आकर स्थापित करे । तदनन्तर उसके प्रभासमूह से अपने शरीर में व्याप्त होने का उसे ध्यान करना चाहिए ॥ ८९-९० ॥

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमित्यात्मानं विभावयेत् ॥ ९१ ॥

इतना ही नहीं मैं ही देवी हूँ, अन्य नहीं । मैं ही ब्रह्म हूँ, मुझे किसी प्रकार का शोक नहीं । मैं ही सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ । इस प्रकार का सङ्कल्प अपनी आत्मा में करे ॥ ९१ ॥

बहिर्गत्वा यदा पश्येत् कुलवृक्षं सुसाधकः ।
नमस्कुर्यात् प्रयत्नेन कुलं कुलपतिं तथा ॥ ९२ ॥

इसके बाद साधक बाहर जाकर कुलवृक्ष का दर्शन करे, तदनन्तर कुल तथा कुलपति को नमस्कार करे ॥ ९२ ॥

कुलवृक्षनामानि

अशोकः केशरः कर्णिकारश्चूतस्तिलस्तथा ।
नमेरुश्च पियालश्च सिन्धुवारकदम्बकौ ॥ ९३ ॥
मरुवकश्चम्पकशाखी कुलवृक्षाश्च द्वादश ।
अथवा कुलवृक्षांश्च कथयामि सुसिद्धये ॥ ९४ ॥

अशोक, केशर, कर्णिकार, आम, तिलक, नमेरू, प्रियाल, सिन्धुवार, कदम्बक, मरुवक, चम्पक, साख—इस प्रकार कुल बारह वृक्ष कुलवृक्ष कहे गये हैं अथवा अच्छी प्रकार की सिद्धि के लिये मैं कुलवृक्षों को कहता हूँ ॥ ९३-९४॥

श्लेष्मातककरञ्जानि निम्बाश्वत्थकदम्बकाः ।
विल्वो वटोदुम्बरश्च चिञ्चेति दशमी स्मृता ॥ ९५ ॥
तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः कुलवृक्षेषु सर्वदा ।
न स्वपेत् कुलवृक्षाधो न चोपद्रवमाचरेत् ॥ ९६ ॥

श्लेष्मातक, करञ्ज, निम्ब, अश्वत्थ, कदम्ब, बिल्व, वट, गूलर और चिञ्चा इन दस कुलवृक्षों पर सदैव योगिनियों का निवास रहता है । इन कुलवृक्षों के नीचे न सोवे और न कोई उत्पात करे ॥ ९५-९६ ॥

दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्यात् छेदयेन्न कदाचन ।
कामबीजं कामदेवं सर्वान्ते जनमालिखेत् ॥ ९७ ॥
प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुर्दन्तविशुद्धये ।
दन्तादिकं विशुध्याथ स्वकल्पोक्तं समाचरेत् ॥ ९८ ॥

इन्हें देखते ही नमस्कार करे, इनका छेदन कदापि न करे, तदनन्तर कामबीज (क्लीं), फिर कामदेव सर्व, फिंर जन लिखे, इसके बाद 'प्रियाय', फिर हृत् (नमः) यह मन्त्र दन्तशुद्धि के लिये लिखे । 'ॐ क्लीं कामदेवसर्वजनप्रियाय नमः' तदनन्तर दन्तादि के शोधन के लिये अपने सम्प्रदाय के अनुसार प्रयत्न करना चाहिए ॥ ९७-९८ ॥

प्रातःकृत्यमकृत्वा तु यो देवीं भक्तितोऽर्चयेत् ।
तस्य पूजा तु विफला शौचहीना यथा क्रिया ॥ ९९ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

जो साधक इस प्रकार ऊपर कहे गये प्रातःकृत्य को बिना किये भक्तिपूर्वक अर्चना करता है; उसकी सारी पूजा निष्फल हो जाती है, वैसे ही जिस प्रकार शौचरहित क्रिया निष्फल हो जाती है ॥ ९९ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के प्रथम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १ ॥

द्वितीय उल्लासः

...ॐ...

आत्मशुद्धिनिरूपणम्

अथ स्नानं प्रवक्ष्यामि शाक्तानां सिद्धिहेतवे ।

स्नानविधिः

यथाविध जलं प्राप्य आत्मानं देवतालयम् ॥ १ ॥
विचिन्त्य प्रणमेद्धीरो वरुणं वारिदैवतम् ।
उन्मज्य तत उत्थाय कुलदर्भं विधारयेत् ॥ २ ॥

स्नानविधि—अब मैं शाक्तों की सिद्धि के लिये स्नान का विधान कहता हूँ । शास्त्र के कहे गये वचनों के अनुसार जल प्राप्त कर धीर पुरुष उसे अपने देवता का स्थान समझकर प्रणाम करे । पुनः उस जल में डुबकी लगाकर कुल सम्प्रदायानुसार कुशा धारण करे ॥ १-२ ॥

पवित्रीधारणम्

अशून्यौ च करौ कुर्य्यात् सुवर्ण रजतैः कुशैः ।
तत्र शाक्तैः स्वयं ग्राह्यं न च वन्याः कुशाः कुशाः ॥ ३ ॥

सुवर्ण निर्मित कुशाओं (पवित्री अँगूठी) से अथवा चाँदी की बनी हुई अङ्गूठी हाथ में धारण करे, हाथ को शून्य न रखे । शाक्त उसे स्वयं ग्रहण करे । शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार वन में होने वाले कुशा, कुशा नहीं कहे जाते ॥ ३ ॥

अनामयोर्भवेत् स्वर्णं तर्जन्यो रजतं तथा ।
एष एव भवेद्दर्भो न दर्भो वनसम्भवः ॥ ४ ॥

दोनों अनामिका में सुवर्ण की बनी हुई अङ्गूठी धारण करे तथा दोनों तर्जनी में चाँदी की बनी हुई अङ्गूठी धारण करे । शाक्तमत में इसी को दर्भ कहते हैं । वन में उत्पन्न होने वाले दर्भ, दर्भ नहीं कहे जाते ॥ ४ ॥

विनैव दूर्वया देव्याः पूजा नास्ति कदाचन ।
तस्माद्दूर्वा ग्रहीतव्या सर्वपुष्पमयी यतः ॥ ५ ॥

यत: बिना दूर्वा के देवी की पूजा नहीं होती, अत: दूर्वा ग्रहण अवश्य करे क्योंकि वह सर्वपुष्पमयी होती है ॥ ५ ॥

हस्ते दूर्वाङ्कुरं कृत्वा सर्वकर्म समाचरेत् ।
आचामेदात्मतत्त्वाद्यैः प्रणवाद्यैः स्वधान्तिकैः ॥ ६ ॥

हाथ में दूर्वांकुर लेकर साधक सारा कर्म सम्पादन करे । पूर्व में प्रणव, तदनन्तर आत्मतत्त्वादि, तदनन्तर स्वधा कहकर आचमन करे ॥ ६ ॥

मन्त्रैस्त्रिधा तथा वक्त्रं नासाक्षिश्रोत्रनाभिहृन् ।
मस्तकानि स्पृशेन् मन्त्री कुर्याच्छ्रोत्राक्षिबन्धनम् ॥ ७ ॥
भूत्वा पूर्वमुखो मन्त्री उत्तराभिमुखोऽपि वा ।
मूलान्ते चात्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय तत्परम् ॥ ८ ॥
शिवतत्त्वाय च प्रोक्त्वा क्रमेण साधकोत्तमः ।
स्वाहान्तमद्भिराचामेत् पूर्वोत्तरमुखः सुधीः ॥ ९ ॥

आगे के वक्ष्यमाण मन्त्र से साधक पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर नासिका, नेत्र, कान, नाभि, हृदय तथा मस्तक का तीन बार स्पर्श कर कान, नेत्र को बन्द कर लेवे । मूल (ॐ), उसके अन्त में आत्मतत्त्वाय, विद्यातत्त्वाय, उसके बाद शिवतत्वाय कहकर अन्त में स्वाहा कर आचमन करे ॥ ७-९ ॥

विमर्श—'ॐ आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय, शिवतत्त्वाय स्वाहा' ॥ ७-९ ॥

कुलपात्रं सदूर्वञ्च सतिलं सजलं ततः ।
एभिः सङ्कल्प्य वीरेन्द्रः समन्त्रं वारिणि न्यसेत् ॥ १० ॥

साधक दूर्वा तिल और जल सहित कुलपात्र स्थापित करे और उससे सङ्कल्प करे । सङ्कल्प का स्वरूप—सदूर्वं, सजलं, सतिलं कुलपात्रं स्थापयामि । फिर इस मन्त्र के साथ उसके जल में न्यास करे ॥ १० ॥

सूर्यस्य मण्डलात्तीर्थमावाह्याऽङ्कुशमुद्रया ।
सञ्जप्य दशधा मूलं तत्तोयं मूर्ध्नि संक्षिपेत् ॥ ११ ॥

अङ्कुशमुद्रा दिखाकर सूर्यमण्डल से तीर्थों का आवाहन करे, फिर दश बार मूलमन्त्र का जाप कर उस जल से अपने शिर को अभिषिक्त करे ॥ ११ ॥

कुम्भाख्यमुद्रया मूलं स्मरन् साधकपुङ्गवः ।
अङ्गुलीभिर्मुखं श्रोत्रं नासां नेत्रे च रोधयन् ॥ १२ ॥

फिर उत्तम साधक कुम्भमुद्रा प्रदर्शित कर, मूलमन्त्र (ॐ) का स्मरण कर, अपनी अङ्गुलियों से मुख, श्रोत्र, नासा और नेत्र को बन्द करे ॥ १२ ॥

मूलं स्मरन् त्रिधोन्मज्य गात्राणि परिमार्जयेत् ।
तिलकं मूलमन्त्रेण शिखाञ्च परिकल्पयेत् ॥ १३ ॥

तदनन्तर पुनः मूल मन्त्र का स्मरण कर, तीन बार जल में डुबकी लगाकर अपने शरीर का प्रोक्षण करे । मूलमन्त्र (ॐ) से तिलक लगावे, पुनः शिखा बन्धन करे ॥ १३ ॥

त्रिराचम्य ततो मन्त्री षडङ्गानि न्यसेत्ततः ।
गृहीत्वा वामहस्ते तु जलं दक्षिणपाणिना ॥ १४ ॥
समाच्छाद्य ततो व्योम वायुवह्निस्ततः परम् ।
क्षौणीवरुणबीजञ्च त्रिवारमभिमन्त्रयेत् ॥ १५ ॥

शक्तिसन्ध्या—पुनः तीन बार आचमन कर मन्त्रज्ञ षडङ्ग न्यास करे । दाहिने हाथ से जल लेकर बायें हाथ में स्थापित करे, फिर उसे व्योम (हं), वायु (यं), वह्नि (रं), क्षोणी (लं) और वरुण के बीज (वं) से अभिमन्त्रित करे ॥ १४-१५ ॥

मूलेन सप्तवारन्तु मुद्रया तत्त्वसञ्ज्ञया ।
स्वमूर्ध्नि च क्षिपेत्तोयं शेषं दक्षे निधाय च ॥ १६ ॥
ध्यात्वा तेजोमयं तोयं सव्यनासापुटेन च ।
तत उत्तोल्य देहस्थं पापं प्रक्षाल्य वामया ॥ १७ ॥
प्रोत्सार्य कल्पिते वज्रशिलायां संक्षिपेत् सुधीः ।
प्रक्षाल्य हस्तयुगलमाचमेत्तदनन्तरम् ॥ १८ ॥

फिर मूल मन्त्र सात बार पढ़कर तत्त्वमुद्रा प्रदर्शित करते हुये, उस जल को अपने शिर पर प्रक्षिप्त करे । शेष जल दाहिने हाथ में रखकर, उस जल में तेज का ध्यान कर, दाहिनी नासिका के पुट से स्पर्श कर, वाम नासिका से देह में रहने वाले पाप का प्रक्षालन कर, उसे ऊपर उठाकर किसी कल्पित वज्रशिला पर पटक देवे । फिर दोनों हाथों का प्रक्षालन कर आचमन करे ॥ १६-१८ ॥

मायाप्राणात्मकं मन्त्रं मार्तण्डभैरवाय च ।
प्रकाशशक्तियुक्ताय अर्घ्यं स्वाहा ततो वदेत् ॥ १९ ॥
सूर्यायाऽर्घ्यं विधायाथ शक्तिसन्ध्या प्रकीर्तिता ।
विभाव्य पुरतो यन्त्रं तत्र देवीं गणान्विताम् ॥ २० ॥

श्री माया (ह्रीं), प्राण (हं) मन्त्र का उच्चारण करते हुये 'मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तियुक्ताय अर्घ्यं स्वाहा' कहकर सूर्यनारायण को अर्घ्य प्रदान करे । यहाँ तक हमने शक्ति सन्ध्या कही । फिर अपने आगे यन्त्र स्थापित कर, उस पर गणेश के सहित देवी का ध्यान करे ॥ १९-२० ॥

गृहीत्वा गन्धतोयञ्च कुलपात्रात्ततः परम् ।
तर्पयेद् देवतावक्त्रे विधिवत् साधकोत्तमः ॥ २१ ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् ।
द्वितीयान्तामहं पश्चात् तर्पयामि नमः पदम् ॥ २२ ॥
मूलान्ते तर्पयामीति स्वाहान्तं तर्पणं भवेत् ।

पूजाविधि—फिर साधकोत्तम अर्घ्यपात्र से कर्पूरादि से युक्त गन्धजल लेकर देवता के मुख में तर्पण करे । उसकी विधि इस प्रकार है—मूल मन्त्र का उच्चारण कर, उसके बाद देवता का द्वितीयान्त नाम लेकर 'तर्पयामि' तथा 'नमः' पद कहे । प्रथम मूल मन्त्र अन्त में 'तर्पयामि स्वाहा' यही तर्पण की विधि है । जैसे— 'ॐ अमुक देवतां तर्पयामि नमः स्वाहा' ॥ २१-२२ ॥

गुरुं सपरिवारञ्च आयुधं वाहनं तथा ॥ २३ ॥
शक्तितस्तर्पयित्वा च गायत्रीं शक्तितो जपेत् ।
ध्यात्वा सावरणां देवीं सूर्यमण्डलवासिनीम् ॥ २४ ॥

फिर सपरिवार गुरु, आयुध, वाहन इनका शक्ति के साथ तर्पण कर यथाशक्ति गायत्री का जप करे । उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम सूर्य मण्डल में रहने वाली गायत्री का उनके आवरण के साथ ध्यान करे ॥ २३-२४ ॥

मूलान्ते उद्यदादित्यवर्तिन्यैस्तदनन्तरम् ।
शिवचैतन्य तस्यान्ते मय्यै स्वाहेति संस्मरन् ॥ २५ ॥
अर्घ्यं दत्त्वा ततस्तस्यै तामानीयाङ्कुशेन च ।
मुद्रया हृदि संस्थाप्य जलादुत्थाय साधकः ॥ २६ ॥

वस्त्रधारणम्

मूलेन कुलवस्त्रे द्वे परिधाय कुलेन च ।
मोक्षार्थी रक्तवस्त्रेण भोगार्थी श्वेतवाससा ॥ २७ ॥

मूल (ॐ) इसके बाद उद्यदादित्यवर्त्तिन्यैः, उसके बाद 'शिवचैतन्यमय्यै स्वाहा', इस मन्त्र को स्मरण कर गायत्री को अर्घ्य प्रदान करे । फिर अङ्कुशमुद्रा से उनका आवाहन कर उन्हें अपने हृदय में स्थापित करे । साधक जल से बाहर हो जावे । फिर कुल मन्त्र से दो कुलवस्त्र धारण करे । मोक्षार्थी रक्तवस्त्र से तथा भोगार्थी श्वेत वस्त्र से अपने को आच्छादित करे ॥ २५-२७ ॥

मारणे कृष्णवासस्तु वश्ये रक्तं सदा गृही ।
उच्चाटने व्याघ्रचर्म वृक्षत्वक् शुभकर्मणि ॥ २८ ॥

मारण में कृष्ण वस्त्र, वश्य में रक्तवस्त्र, उच्चाटन में व्याघ्रचर्म तथा शुभकर्म में वृक्ष के वल्कल धारण करने का विधान है ॥ २८ ॥

परिधाय ततो मौनी हृदि मन्त्रं परामृशन् ।
प्रक्षाल्य हस्तपादौ च पूजास्थानं समाविशेत् ॥ २९ ॥

इस प्रकार वस्त्र धारण करने के उपरान्त साधक मौन होकर मन्त्र का ध्यान करे । तदनन्तर अपना हाथ पैर प्रक्षालन कर पूजास्थान में जावे ॥ २९ ॥

स्नानं विना पूजा विफला

इति स्नानं समुद्दिष्टमधिकारप्रदायकम् ।
स्नानतर्पणशून्यस्य नाधिकारश्च पूजने ॥ ३० ॥

यहाँ तक हमने पूजा में अधिकार प्राप्त करने के लिये स्नान की विधि कही । क्योंकि स्नान तर्पण से रहित व्यक्ति का पूजा में अधिकार नहीं होता ॥ ३० ॥

विविधैरुपचारैश्च भक्तिभावसमन्वितः ।
विना स्नानेन या पूजा विफला सिद्धिहानिदा ॥ ३१ ॥
तस्मात् स्नानादिकं कृत्वा रक्तवस्त्रं ततः परम् ।

स्नान के बिना भक्तिभाव से समन्वित होकर भी साधक; यदि नाना प्रकार के उपचारों से पूजा भी करे तो वह आराधना निष्फल होती है, इतना ही नहीं; अपितु सिद्धि में हानिप्रद भी होती है । इस कारण स्नानादि क्रिया सम्पन्न करने के बाद ही रक्त वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३१-३२ ॥

पूजास्थाननिरूपणम्

एकलिङ्गे श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे ॥ ३२ ॥
विल्वमूले प्रान्तरे वा नद्यां पर्वतमस्तके ।
उज्जटे निर्जने वापि भूगृहे देवतालये ॥ ३३ ॥
अश्वत्थसन्निधौ वापि वटमूले त्रिशूलके ।
हट्टागारे निजागारे पशुदृष्टिविवर्जिते ॥ ३४ ॥
नृपालमण्डपे वापि गह्वरे वापि यन्त्रिते ।
निश्छिद्रमण्डपे वापि कर्तव्यं पूजनं सदा ॥ ३५ ॥

पूजा स्थान का विधान—अब अर्चन का स्थान कहते हैं । एकलिङ्ग (वक्ष्यमाण स्थान द्र. २.३६.) श्मशान, शून्यागार, चतुष्पथ, बिल्वमूल, सर्वथा एकान्त, नदी का तट, पर्वत का ऊपरी भाग, उज्जट, निर्जन, पृथ्वी के भीतर में (खोह), देवालय, पीपलवृक्ष का सन्निधान, वटमूल, त्रिशूल, हट्टागार, निजागार

(अपना घर), जहाँ पशुओं की दृष्टि न पहुँचे, नृपाल, मण्डप (कन्दरा), सर्वथा जहाँ किसी का आना-जाना सम्भव न हो, ऐसे नियन्त्रित स्थान में अथवा सर्वथा बन्द मण्डप में पूजा करनी चाहिये ॥ ३२-३५ ॥

एकलिङ्गनिरुक्तिः

पूजास्थानं महादेव्याः कथितं पीठमुत्तमम् ।
पञ्चकोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते ॥ ३६ ॥
तदेकलिङ्गमित्याहुस्तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।

चतुष्पथनिरुक्तिः

चतुष्पथं विजानीयात् यत्रास्ते चण्डिकाशिला ॥ ३७ ॥

एकलिङ्ग एवं चतुष्पथ का लक्षण—महादेवों के पूजा के लिये उत्तम स्थान सिद्धपीठ भी कहा गया है । पाँच कोश के भीतर जहाँ एक लिङ्ग के अतिरिक्त और कोई लिङ्ग न हो उस स्थान को एकलिङ्ग कहा जाता है । वहाँ महादेवी की पूजा करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है । जहाँ चण्डिका की शिला (प्रतिमा) हो उसे चतुष्पथ जानना चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

तत्र यत्नेन गन्तव्यं जप्तव्यं सिद्धिकाङ्क्षिभिः ।
द्वारदेशे ततो गत्वा पूजयेद्द्वारदेवताः ॥ ३८ ॥

सिद्धि की इच्छा रखने वालों को वहाँ प्रयत्नपूर्वक जाना चाहिये और जप करना चाहिये । इसके बाद मण्डल के द्वारदेश में जाकर सर्वप्रथम द्वारदेवता का पूजन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

कारयेत्तत्र वाद्यादिनृत्यगीतं तथैव च ।
सिद्धार्थाक्षतदूर्वाभिस्तिलमिश्रैः सुसाधकः ॥ ३९ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ ४० ॥
वाग्भवाद्यं समुच्चार्य नाराचमुद्रया सुधीः ।
कुलभूतं समुत्सार्य यागभूमिं ततो विशेत् ॥ ४१ ॥

द्वारदेवता के पूजन के समय बाजा-गाजा तथा नृत्यादि भी कराना चाहिये । उत्तम साधक सिद्धार्थ (सफेद सरसों), अक्षत और दूर्वा, जिसके साथ तिल भी हो; हाथ में लेकर 'अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया' यह श्लोक मन्त्र पढ़कर; तदनन्तर पहले 'वाग्भव' ऐं कहकर; नाराच मुद्रा दिखाकर; कुलमार्ग के भूतों को बाहर निकाल कर यागभूमि में प्रवेश करना चाहिये ॥ ३९-४१ ॥

कूर्मचक्रं प्रकुर्वीत यथातन्त्रविधानतः ।
रेखाचतुष्टयं कार्यं इन्द्रवारुणयोगतः ॥ ४२ ॥

कूर्मचक्र विधान—तदनन्तर तन्त्र में कही गई विधि के अनुसार कूर्मचक्र का निर्माण करना चाहिये । पूर्व से पश्चिम तक चार रेखा खींचे ॥ ४२ ॥

उत्तराद् याम्यपर्यन्तं नवकोष्ठं यथा भवेत् ।
इन्द्राग्नियाम्यनैर्ऋत्यप्रतीच्यां पञ्चवर्गकम् ॥ ४३ ॥
वायुकुबेरशम्भौ च यादिवर्णांश्चतुश्चतुः ।
लक्षौ क्रमात् समालिख्य साधकः सिद्धिहेतवे ॥ ४४ ॥

फिर जिस प्रकार नवकोष्ठ बन जावे; उस प्रकार उत्तर से दक्षिण दिशा पर्यन्त रेखा खींचे । फिर पूर्व, आग्नेयकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण तथा पश्चिम में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग—इन पाँच वर्गों को लिखे । वायुकोण पश्चिम तथा ईशान में य र ल व फिर श ष स ह फिर ळ और क्ष वर्णों को क्रमशः साधक अपनी सिद्धि के लिये लिखे । (द्र. शारदातिलक २.१३३-१३४) ॥ ४३-४४ ॥

मध्ये कोष्ठे ततः कुर्यात् पूर्ववन्नवकोष्ठकम् ।
पूर्वादीशानपर्यन्तं षोडशस्वरमालिखेत् ॥ ४५ ॥
अकारादिक्रमेणैव युग्मयुग्मप्रभेदतः ।
क्षेत्राद्यर्णस्तु यत्रास्ते शीर्षं तस्य विनिश्चितम् ॥ ४६ ॥
दीपस्थानं तदेव स्यात्तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।

फिर मध्य के कोष्ठ में नवकोष्ठ निर्माण करे । उसमें पूर्व से ईशानकोण पर्यन्त सोलह स्वरों को अकारादि से आरम्भ कर दो-दो स्वरों को प्रत्येक कोष्ठों में लिखे । जहाँ साधक के ग्राम के नाम का आदि अक्षर पड़े; वहीं कूर्म का शिर समझना चाहिये । अतः उसी स्थान पर दीप रखना चाहिए । इससे साधक को उत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ४५-४७ ॥

निर्धनो जायते पत्सु पार्श्वयोर्व्याधिरेव च ॥ ४७ ॥

कूर्म के पाद स्थान में दीपक रखने से साधक निर्धन होता है । पार्श्वभाग में दीपक रखने से व्याधि होती है ॥ ४७ ॥

पुच्छे हानिः सदा ज्ञेया दीपस्थानं सदाश्रयेत् ।

पुच्छस्थान में दीपक स्थापित करने से हानि होती है । इसलिये शीर्ष स्थान में ही दीपक स्थापित करना चाहिये ॥ ४८ ॥

कूर्मचक्रं विना यो हि जपहोमं समाचरेत् ॥ ४८ ॥

तत्सर्वं निष्फलं विन्द्यात् अभिचाराय कल्पते।

पञ्चशुद्धिकथनम्

पञ्चशुद्धिविहीनेन यत्कृतं न च तत् कृतम् ॥ ४९ ॥

जो कूर्मचक्र के बिना जप होम करते हैं; उनका वह सारा जप होम निष्फल हो जाता है और साधक की मृत्यु का कारण बन जाता है । इसी प्रकार पञ्चशुद्धि के बिना जो जप होम किया जाता है; वह भी बेकार हो जाता है ॥ ४८-४९ ॥

यावन्न कुरुते तत्तु तावद् देवार्चनं कुतः ।
पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ॥ ५० ॥

जब तक पञ्चशुद्धि न करे; तब तक देवार्चन से कोई लाभ नहीं होता । पञ्चशुद्धि किये बिना पूजा मृत्यु का कारण बन जाती है ॥ ५० ॥

भूमिशुद्धिरात्मशुद्धिर्द्रव्यानां शोधनं तथा ।
मन्त्रशुद्धिर्देवशुद्धिः पञ्चशुद्धिरितीरिता ॥ ५१ ॥

भूमिशुद्धि, आत्मशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, मन्त्रशुद्धि तथा देवशुद्धि—इसे पञ्चशुद्धि कहते हैं ॥ ५१ ॥

पञ्चशुद्धिं प्रवक्ष्यामि यथाक्रमविधानतः ।
सामान्यार्घ्यं ततः कुर्यात् प्रोक्षणार्थं च साधकः ॥ ५२ ॥

अब मैं यथाक्रम विधान से पञ्चशुद्धि कहता हूँ । साधक सर्वप्रथम समस्त वस्तुओं के प्रोक्षण के लिये सामान्य अर्घ्य स्थापित करे ॥ ५२ ॥

चतुरस्रं ततो वृत्तं त्रिकोणं वामतो लिखेत् ।
आधारं स्थापयेतत्र सम्पूज्य वह्निमण्डलम् ॥ ५३ ॥

उसके बाद दाहिनी ओर चतुरस्र वृत्त निर्माण करे तथा बाएँ ओर त्रिकोण की रचना करे । फिर वह्निमण्डल का पूजन कर आधार स्थापित करे ॥ ५३ ॥

अस्त्रेण प्रोक्षितं पात्रं स्थापयित्वा च पूजयेत् ।
सूर्यमंण्डलमुच्चार्य हृन्मन्त्रेण प्रपूजयेत् ॥ ५४ ॥

उस आधार पर अस्त्र मन्त्र (हुं फट्) से प्रोक्षित पात्र रखकर उसका पूजन करे। फिर 'सूर्यमण्डलाय नमः' इस मन्त्र से सूर्यपात्र का पूजन करे ॥ ५४ ॥

विलिख्य मण्डलं तोये पूर्ववत् पूजयेत्ततः ।
इन्दुमण्डलमभ्यर्च्य प्रक्षिपेद् गन्धपुष्पके ॥ ५५ ॥

फिर उस पात्र के जल में मण्डल बनाकर पूर्ववत् उसकी भी पूजा करे । इसी

प्रकार जल में इन्दु मण्डल की पूजा कर उसमें गन्ध पुष्प प्रक्षिप्त करे ॥ ५५ ॥

पूर्ववत्तीर्थमावाह्य षडङ्गानि यजेत्ततः ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम् ॥ ५६ ॥

फिर उसमें तीर्थों का पूर्ववत् आवाहन कर षडङ्गों का पूजन करे । आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में तथा पूर्वादि दिशाओं में षडङ्ग की पूजा का विधान विहित है ॥ ५६ ॥

मूलमन्त्रं जपेदष्टौ तज्जलेन प्रसेचयेत् ।
अस्त्रान्तमूलमुच्चार्य आत्मानं यागभूमिषु ॥ ५७ ॥

भूमि शुद्धि विधान—उस जल को लेकर मूल मन्त्र का आठ बार जप करे । फिर उस जल से अस्त्रान्तमूल मन्त्र (ॐ हुँ फट्) पढ़कर अपने को तथा यज्ञभूमि को अभिषिक्त करे ॥ ५७ ॥

पृथिव्यर्घ्यं ततो दत्त्वा नैर्ऋत्यां साधकोत्तमः ।
प्रणवं भगवत्येव धरणीं ङेयुतां वदेत् ॥ ५८ ॥
धरणीवेधसे स्वाहा अनेनार्घ्यं विधाय च ।
ब्रह्माणं पूजयित्वा च पुरुषं वास्तुसञ्ज्ञकम् ॥ ५९ ॥

तदनन्तर उत्तम साधक पृथ्वी को नैर्ऋत्यकोण में अर्घ्य प्रदान कर 'ॐ भगवत्यै धरण्यै धरणीवेधसे स्वाहा' इस मन्त्र का उच्चारण करे । इस प्रकार अर्घ्य प्रदान कर ब्रह्मदेव का पूजन कर वास्तु पुरुष का पूजन करे ॥ ५८-५९ ॥

सम्मार्जनानुलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत्प्रभम् ।
वितानं धूपदीपाद्यैः पुष्पमालाऽभिशोभितम् ॥ ६० ॥
पञ्चवर्णरजश्चित्रं भूमेः शुद्धिरितीरिता ।
विलिख्य मण्डलं भूमौ पूर्ववत् साधकाग्रणीः ॥ ६१ ॥

पुनः पृथ्वी का सम्मार्जन एवं अनुलेपन कर दर्पण के उदर के समान स्वच्छ वितान (चँदोवा); जो धूप, दीप तथा पुष्पमाला से सुशोभित हो; उसे स्थापित करे तथा भूमि को पाँच वर्णों वाले रङ्ग से रङ्गकर चित्र बना देवे । यहाँ तक हमने भूमिशुद्धि का विधान आपको बतलाया । फिर साधकाग्रणी भूमि पर पूर्ववत् मण्डल निर्माण करे ॥ ६०-६१ ॥

आसनं स्थापयेत्तत्र यथा तन्त्रानुसारतः ।
अथासनं प्रवक्ष्यामि शाक्तानां स्थितिकाम्यया ॥ ६२ ॥

उस मण्डल पर तन्त्रशास्त्र के अनुसार आसन स्थापित करे । अब मैं शाक्त

सम्प्रदाय के उपासक को बैठने के लिये आसन की विधि कहता हूँ ॥ ६२ ॥

मृद्वादिविविधासनकथनम्

मृदुचूडकमासीनः अन्येषु कोमलेषु वा ।
विष्टरे वा समासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ६३ ॥

आसनविधान—मृदुचूड़क पर बैठकर अथवा अन्य कोमल आसन पर अथवा विष्टर (कुशासन) पर बैठकर साधक उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ६३ ॥

अर्वाक् षंण्मासतो गर्भच्युतमाहुर्मृदुं बुधाः ।
चूडोपनयनैर्हीनं मृदुमचूडकं विदुः ॥ ६४ ॥

६ मास से पहले जो गर्भ गिर गया हो, उसे बुद्धिमान कौल 'मृदु' कहते हैं । चूडाकर्म तथा उपनयन से रहित ऐसे मृदु को 'मृदुचूडक' कहा जाता है ॥ ६४ ॥

निवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः पुमान् ।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः ॥ ६५ ॥

जिसका चूडाकर्म हो गया हो, ऐसे बालक को तथा जिसका उपनयन न हुआ हो ऐसे पुरुष को, अथवा जो पाँच वर्ष की अवस्था में मर गया हो, उसे भी 'कोमल' कहा जाता है ॥ ६५ ॥

विविधासनफलकथनम्

मृद्वासनं विना यो हि पूजयेच्चण्डिकां शिवाम् ।
तावत् कालं नारकी स्याद् यावदाहूतसंप्लवम् ॥ ६६ ॥

जो साधक मृदु आसन पर बिना बैठे शिवा चण्डिका की पूजा करता है; वह तब तक नरक में निवास करता है जब तक प्रलयकाल रहता है ॥ ६६ ॥

पञ्चाशद्भिः कुशैर्ब्रह्म तदर्धेन तु विष्टरः ।
कौशेयं भोगदं रक्तकम्बलं सिद्धिदं स्मृतम् ॥ ६७ ॥

पचास कुशा का ब्रह्म कहा जाता है । उसके आधे भाग वाले कुशा का आसन 'विष्टर' होता है । कुशा का बना आसन भोग प्रदान करता है और रक्त कम्बल का आसन सिद्धि प्रदान करता है ॥ ६७ ॥

वस्त्रं रोगहरं ज्ञेयं मोक्षं श्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
ऊर्णा दुःखहरी प्रोक्ता ज्ञानसिद्धिर्मृगाजिने ॥ ६८ ॥

वस्त्र का आसन रोगों का हरण करता है और बाघम्बर मोक्ष एवं सम्मृद्धि प्रदान करता है, ऊन का आसन दुःख दूर करता है और मृगचर्म का आसन

ज्ञानसिद्धि प्रदान करता है ॥ ६८ ॥

सन्यासी ब्रह्मचारी तु विशेषः कृष्णाचर्मणि ।
काष्ठासनं न कुर्वीत यत्र दौर्भाग्यवान् भवेत् ॥ ६९ ॥

सन्यासी एवं ब्रह्मचारी के लिये कृष्ण मृग के चर्म का आसन विहित है । काष्ठ के आसन पर कदापि न बैठे क्योंकि उससे दौर्भाग्यवान् होता है ॥ ६९ ॥

अत्युच्चं चातिनीचञ्च मग्नञ्च परिवर्जयेत् ।
मनोहरं मृदु श्लक्ष्णमासनं परिकीर्तितम् ॥ ७० ॥

अत्यन्त ऊँचा, अत्यन्त नीचा तथा सर्वथा जमीन में गड़ जाने वाला आसन सर्वथा वर्जित करे । आसन के लिये मनोहर, कोमल और चिकना आसन प्रशस्त कहा गया है ॥ ७० ॥

आसनशोधनम्

एषामन्यतमं प्राप्य प्रोक्षयेत्तदनन्तरम् ।
सामान्यार्घ्यस्य तोयेन पुटाञ्जलिविधानतः ॥ ७१ ॥

इन विहित आसनों में कोई भी आसन प्राप्त कर उस पर सामान्य अर्घ्य के जल का छींटा देकर पवित्र करे ॥ ७१ ॥

मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम् ।
कूर्मोऽधिदेवता चात्र आसनस्थापनाय च ॥ ७२ ॥
विनियोगः परिज्ञेयोऽप्यभिलप्य पठेत्ततः ।
पृथ्वि त्वया धृता लोका देविपदं ततो वदेत् ॥ ७३ ॥
त्वं विष्णुना धृता त्वञ्च धारय मां ततः परम् ।
नित्यं पवित्रं कुरु च आसनञ्च समुच्चरेत् ॥ ७४ ॥
अनेन प्रणवाद्येन तत्र कुशत्रयं क्षिपेत् ।
आधारशक्तिं सम्प्रोच्य ङेयुतं कमलासनम् ॥ ७५ ॥
हृदन्तं मनुमुच्चार्य मायाद्येन प्रपूजयेत् ।
आसने संविशेत् पश्चात् वीरासनेन साधकः ॥ ७६ ॥

इस आसन का 'मेरुपृष्ठ' ऋषि और 'सुतल' छन्द कहा गया है और कूर्म इसके देवता बतलाये गये हैं । इसलिये आसन स्थापित करने के लिये ऋषि, छन्द और देवता का स्मरण कर विनियोग करना चाहिये । तदनन्तर 'ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्' इस श्लोक मन्त्र से आसन पर तीन कुशा प्रक्षिप्त करे । फिर 'ॐ ह्रीं

कमलासनाय नमः' पढ़कर आसन की पूजा करे। फिर साधक वीरासन लगाकर उस सिद्धासन पर बैठे ॥ ७२-७६ ॥

दक्षगुल्फं हि वामोरौ तदधो वामगुल्फकम् ।
कुर्यादृजुवपुर्ग्रीवः शरीरं ऋजुवच्चरेत् ॥ ७७ ॥
समग्रीवं विधायाथ प्रोक्तं वीरासनं परम् ।

दाहिना गुल्फ बायें ऊरू पर, उसके नीचे बायाँ गुल्फ रहे। उस पर सीधा शिर, ग्रीवा और शरीर करके बैठे। इसे वीरासन कहते हैं ॥ ७७-७८ ॥

कामाख्यादिङ्मुखः सुस्थः प्राङ्मुखो वा प्रपूजयेत् ॥ ७८ ॥

आसन पर कामाख्या जिस दिशा में हों उस दिशा में अथवा पूर्व दिशा में बैठकर पूजा करनी चाहिये ॥ ७८ ॥

सामान्यार्घ्यस्य तोयेन प्रोक्षयेद्यागभूमिषु ।
इति ते कथितो ह्यत्र आसनविधिः पूजने ॥ ७९ ॥

तदनन्तर पुनः सामान्य अर्घ्य के जल से यज्ञभूमि का प्रोक्षण करे। इस प्रकार आसन विधि का विधान कहा गया ॥ ७९ ॥

स्नातो निच्छिद्रगेहे कुलविमलजलैरर्घ्यपात्रं विधाय
भक्तिश्रद्धान्वितोऽसौ निजकुलकमले यन्त्रराजं विलिख्य ।
सिन्दूरैर्भूषिताभिः सुकुलयुवतिभिः पूजयित्वा जपेद्य-
स्तस्य श्रीर्नेत्रपद्मे विलसति सततं वक्त्र चन्द्रे च वाणी ॥ ८० ॥

स्नान कर उत्तम बन्द गृह में बैठकर कौलशास्त्र के अनुसार विमल जल से अर्घ्यपात्र बनाकर भक्ति श्रद्धा से युक्त साधक अपने कुल कमल में यन्त्रराज निर्माण कर सिन्दूर से विभूषित उत्तम कुलीन सौभाग्यवती युवतियों के साथ भगवती का पूजन कर जो शाक्त मन्त्र का जप करता है, उसके नेत्रों में शोभा और मुख में वाणी नित्य विलास करती है ॥ ८० ॥

दीक्षिताभिः कुलीनाभिर्युवतीभिः कुलात्मभिः ।
देवतागुरुभक्ताभिः सञ्चितं यागभूमिषु ॥ ८१ ॥

या भूमि में कुलमार्ग की उपासना वाली देवता और गुरुओं में भक्ति रखने वाली, दीक्षित, कुलीन एवं सौभाग्यवती नवयुवतियों को एकत्रित करे ॥ ८१ ॥

नानाविधानि पुष्पाणि गन्धानि विविधानि च ।
कर्पूरागुरुधूपादिवासितं पटवासितम् ॥ ८२ ॥

ताम्बूलं पेयद्रव्यञ्च धूपदीपादिकञ्च यत् ।
सर्वालङ्कारभूषाभिर्भूषितः साधकोत्तमः ॥ ८३ ॥

इसी प्रकार अनेक प्रकार के पुष्प, अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य, कपूर, अङ्गुर, धूपादि तथा सुवासित वस्त्रादि, ताम्बूल, पेयद्रव्य और धूपादि भी एकत्रित कर अलङ्कारयुक्त सुशोभित वस्त्रों से युक्त होकर साधक को यागमण्डप में प्रवेश करना चाहिए ॥ ८२-८३ ॥

मूलविद्याजप्ततोयैः प्रोक्षयेत् यागवस्तु च ।
सर्वं स्वदक्षिणे स्थाप्य वामे कुम्भं निवेशयेत् ॥ ८४ ॥

फिर मूलविद्या से जपे हुये जल के द्वारा यज्ञीय वस्तुओं का प्रोक्षण करे । सब कुछ पूजा द्रव्य दाहिने रखे और बायें कलश रखे ॥ ८४ ॥

पश्चिमे देवतायाश्च कुल द्रव्याणि धारयेत् ।
(अथवा) **नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः ॥ ८५ ॥**

कुलदेवता के द्रव्य को अपने पश्चिम बाएँ ओर रखे । नैवेद्य दाहिने, चाहे बायें अथवा आगे रक्खे । किन्तु पीछे न रखे ॥ ८५ ॥

अथवा वामतो दद्यान्नतु पृष्ठे कदाचन ।
दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः ॥ ८६ ॥

अथवा बाईं ओर से नैवेद्य देवे । किन्तु पृष्ठ भाग से नैवेद्य कदापि न देवे । दीपक दाहिने रखे । अपने आगे अथवा बाईं ओर कदापि न रखे ॥ ८६ ॥

वामहस्ततले धूपमग्रतो वा न दक्षिणे ।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धपुष्पादिभूषणम् ॥ ८७ ॥

देवी के बायें हाथ के तलवे में धूप प्रदान करे, आगे अथवा दाहिने कदापि न देवे । गन्ध, पुष्प एवं भूषणादि आगे प्रदान करे ॥ ८७ ॥

मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषितम् ।
अङ्गसंस्पृष्टमाघ्रातं त्यजेत् पुष्पं सदा बुधः ॥ ८८ ॥

बुद्धिमान् साधक मलिन, भूमि पर गिरे हुये, कृमि केशादि से दूषित, अङ्ग संस्पृष्ट, आघ्रात (सूँघे हुये) ऐसे पुष्पों को पूजा में सर्वथा त्याग देवे ॥ ८८ ॥

नैव पुष्पं द्विधा कृत्वा न दद्यात् कलिकामपि ।
रक्तमर्घ्यं श्वेतदूर्वां नीलकण्ठं कुरुण्टकम् ॥ ८९ ॥
न दद्याच्च महादेव्यै यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।

सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेत् कुशैः ॥ ९० ॥

एक पुष्प को कई भागों में तोड़कर न दे और इसी प्रकार कलिका भी न प्रदान करे । इसी प्रकार रक्तवर्ण का अर्घ्य एवं श्वेतदूर्वा, नीलकण्ठ एवं कुरण्टक का पुष्प भी यदि अपना कल्याण चाहे तो महादेवी को न देवे । सुगन्धित श्वेत और लाल वर्ण वाले पुष्पों से एवं कुशों से देवी की अर्चना करे ॥ ८९-९० ॥

विल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः ।
पत्रैर्न चार्चयेद् देवीं विल्वपत्रविवर्जितैः ॥ ९१ ॥

बिल्व एवं मरुवक आदि पुष्पों से भी देवी की अर्चना करनी चाहिए । किन्तु बिल्वपत्र तथा तुलसी पत्र को छोड़कर अन्य किसी वृक्ष के पत्रों से भगवती की पूजा कदापि न करे ॥ ९१ ॥

निर्गन्धैर्नार्चयेत् पुष्पैः सुगन्धैः सर्ववस्तुभिः ।
जवाबन्धूकमन्दारैः सिन्दूरैश्च महोत्पलैः ॥ ९२ ॥
सम्पूजयेच्च निर्गन्धैस्तथा च रक्तचन्दनैः ।

गन्धरहित पुष्पों से महादेवी की पूजा अर्चना न करे । सभी सुगन्धित वस्तुओं से ही पूजा करनी चाहिये । जवा, बन्धूक, मदार, सिन्दूर एवं कमल पुष्पों से तथा रक्त चन्दन से साधक महादेवी की पूजा करे ॥ ९२-९३ ॥

नन्द्यावर्त्तं तिलपत्रं तथा केशरपत्रकम् ॥ ९३ ॥
मदनं मरुवकञ्चैव दाडिमं कुन्दपुष्पकम् ।
नानोपहारबलिभिर्नानापुष्पैमनोहरैः ॥ ९४ ॥
अपामार्गदलैर्भृङ्गैस्तुलसीवर्जितैः शुभैः ।
कुलपुष्पेण धूपेन कुलदीपेन तां सुधीः ॥ ९५ ॥
चण्डिकां पूजयेद्धीमानन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।
न दद्यान्मालतीपुष्पं ताराकालीप्रपूजकः ॥ ९६ ॥

नन्द्यावर्त्त, तिलपत्र, केशरपत्र, मदन, मरुवक, अनार, कुन्दपुष्प—इस प्रकार के अनेक पुष्पों से, अनेक प्रकार के भक्ष्य, भोज्यों एवं बलियों से, अपामार्ग और भङरैया के पत्तों से पूजा करे । किन्तु शुभ तुलसीपत्र न प्रदान करे । कुलमार्ग के पुष्पों से, धूप से, कुलदीप से धीमान् साधक चण्डिका की पूजा करे; अन्यथा हानि ही होती है । तारा और काली की पूजा करने वाला साधक उन्हें मालती पुष्प न चढ़ावे ॥ ९३-९६ ॥

उन्मत्तञ्च न दातव्यं साधकेन महात्मना ।
न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजोत्पलचम्पके ॥ ९७ ॥

उत्तम साधक भगवती को धत्तूर का पुष्प न चढ़ावे। जल में उत्पन्न होने वाले कमल तथा चम्पा पुष्प में पर्युषित (बासी होने का) दोष नहीं लगता। अतः पर्युषित होने पर भी उससे पूजा की जा सकती है ॥ ९७ ॥

अगस्त्यवकुले चैव विल्वगङ्गाजले तथा।
निजदेवस्य पुष्पाणि पृथक्पात्रे निधापयेत् ॥ ९८ ॥

अगस्त्य के पुष्प में, बिल्वपत्र में एवं गङ्गाजल में पर्युषित दोष नहीं लगता। अपने देवता की पूजा के लिये पुष्प किसी दूसरे पात्र में रखना चाहिये ॥ ९८ ॥

एकीभावं न कर्त्तव्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि तथा जानीहि निश्चितम् ॥ ९९ ॥

यदि साधक अपना कल्याण चाहे तो अपने इष्टदेव की पूजा के लिये लाये गये पुष्पों को चण्डिका के पुष्पों में सम्मिलित न करे। इसी प्रकार नैवेद्यादि भी पृथक् रखे। निश्चित रूप से यह पृथक्करण कार्य करे ॥ ९९ ॥

पूजाकाले तु सम्प्राप्ते वासुदेवं स्मरेत्तु यः।
पूजाफलं न चाप्नोति नरकं प्रतिपद्यते ॥ १०० ॥

चण्डिका के पूजाकाल में जो वासुदेव का स्मरण करता है उसे पूजाफल प्राप्त करना तो दूर वह सर्वथा नरक का भागी होता है ॥ १०० ॥

वैष्णवं कुसुमं स्पृष्ट्वा पूजाकाले च सर्वदा।
हस्तप्रक्षालनाच्छौचमाचामस्तु तदाचरेत् ॥ १०१ ॥

चण्डिका के पूजनकाल में यदि विष्णु के निमित्त चढ़ाये जाने वाले पुष्पों का स्पर्श हो जावे तो साधक हस्त प्रक्षालन कर पुनः आचमन करने पर ही शुद्ध होता है ॥ १०१ ॥

शक्तिं विना पूजा विफला

शुचिः सावहितो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
संस्थाप्य वामभागे तु शक्तिं स्वामिपरायणाम् ॥ १०२ ॥

अत्यन्त पवित्र, सावधान तथा भक्ति एवं श्रद्धा से समन्वित होकर अपने वामभाग में पतिव्रता अपनी शक्तिभूता स्त्री को रखे ॥ १०२ ॥

रक्तवस्त्रपरीधानां दीक्षितां चारुहासिनीम्।
विना शक्त्या तु या पूजा विफला नात्र संशयः ॥ १०३ ॥

जो रक्तवस्त्र धारण की हुई हो, दीक्षित हो, मन्दस्मितयुक्त हो, ऐसी अपनी शक्ति को स्थापित किये बिना पूजा निष्फल होती है, इसमें संशय नहीं ॥ १०३॥

तस्माच्छक्तियुतो वीरो भवेच्च यत्नपूर्वकम् ।
या शक्तिः सा महादेवी हररूपस्तु साधकः ॥ १०४ ॥

इसलिये महादेवी के भक्त को पूजा काल में अपनी शक्ति से संयुक्त अवश्य होना चाहिये । क्योंकि पूजा काल में शक्ति महादेवी का स्वरूप और साधक महादेव का स्वरूप होता है ॥ १०४ ॥

अन्योन्यचिन्तनाच्चैव देवत्वमुपजायते ।
प्राणं बिना यथा देही स्पन्दितुं नैव शक्यते ॥ १०५ ॥
शक्तिं विनापि पूजायां नाधिकारी भवेत्तदा ।

एक दूसरे का ध्यान करने से ही देवत्व की प्राप्ति होती है । जिस प्रकार प्राण के बिना जीव कोई चेष्टा नहीं कर सकता; उसी प्रकार शक्ति के बिना कोई महादेवी की पूजा का अधिकारी नहीं हो सकता ॥ १०५-१०६ ॥

हेतुयुक्तेन पूजा कार्या

विना द्रव्याधिवासेन न जपेन्न स्मरेत् सदा ॥ १०६ ॥
विना हेतुक्रमास्वाद्य क्षोभयुक्तो भवेन्नरः ।
न पूजां न जपं कुर्यान्न ध्यानं न च चिन्तनम् ॥ १०७ ॥

बिना द्रव्याधिवासन के न जप करना चाहिये, न ही स्मरण करना चाहिये। अकारण (मद्यपूर्वक) भोजन कर लेने पर मनुष्य को क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। इसलिये भोजन के अनन्तर न पूजा करे, न जप करे, न ध्यान करे और न ही चिन्तन करे ॥ १०७ ॥

तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
सत्यमेतद् विजानीयाद्वाक्यं शङ्करभाषितम् ॥ १०८ ॥

किन्तु परमेश्वरी का पूजन भोजन और जल पीकर ही करे, यह शङ्कर का वचन है । इसे सर्वथा सत्य मानना चाहिये ॥ १०८ ॥

न क्रमच्युतिदोषोऽस्ति नाचारदोषदूषणम् ।
न भुक्त्वा च न पीत्वा च न स्मरेन्न जपेत्तदा ॥ १०९ ॥
ये स्मरन्ति नरा मूढास्तेषां दुःखं पदे पदे ।
आनन्देन विना यस्तु चण्डिकां परिपूजयेत् ॥ ११० ॥
रोगी दुःखी भवेत् सोऽपि मृते च नरकं व्रजेत् ।
तस्मादादौ प्रकर्त्तव्यं सम्विदासवयोजनम् ॥ १११ ॥

यतः शङ्कर का वचन है; अतएव इसमें क्रमच्युति दोष नहीं लगता; न तो

आचार दोष (पाप) ही लगता है । जो लोग यह कहते हैं कि भोजन तथा जल पीकर न स्मरण करे और न जप करे; वे मूर्ख हैं । उन्हें पद-पद पर दुःख भोगना पड़ता है । जो आनन्दरहित होकर चण्डिका का पूजन करते हैं, वे जीवन में रोगी और दुःखी तो रहते ही हैं; मरने पर भी उन्हें नरक ही प्राप्त होता है । इसलिये सर्वप्रथम विजया, संवित् और आसव एकत्रित करना चाहिये ॥ १०९-१११ ॥

संविदः श्रेष्ठत्वम्

सम्विदासवयोर्मध्ये सम्विदेव गरीयसी ।
विजयाग्रहणं कृत्वा ध्यानं यः कुरुते नरः ॥ ११२ ॥
तदा ध्यानमयी मूर्त्तिः प्रत्यक्षा तस्य जायते ।
सम्वित्प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः ॥ ११३ ॥

संवित् और आसव दोनों में संवित् ही श्रेष्ठ है । जो विजया का ग्रहण कर ध्यान करता है, उसको उसी समय ध्यान में मूर्त्ति का प्रत्यक्ष हो जाता है । इसलिये उत्तम साधक को पूजा के आदि में संवित् (विजया) का प्रयोग अवश्य करना चाहिये ॥ ११२-११३ ॥

कर्त्तव्या च महापूजा करुणामयनन्दितैः ।
तस्या भेदं प्रवक्ष्यामि यथार्थं तन्त्रवर्त्मना ॥ ११४ ॥

तस्या चातुर्विध्यम्

श्वेतपुष्पा च ब्रह्माणी रक्ता तु क्षत्रिया स्मृता ।
वैश्या पीतप्रसूना च शूद्रा कृष्णप्रसूनिका ॥ ११५ ॥

करुणा और आनन्द में परिपूर्ण होकर ही महादेवी की पूजा करनी चाहिये । अब तन्त्र मार्ग से प्रतिपादित यथार्थ वचनों द्वारा विजया पूजा की विधि कहता हूँ—श्वेत पुष्पों वाली विजया ब्रह्माणी है । रक्त पुष्पों वाली क्षत्रिया, पीत पुष्पों वाली वैश्या और कृष्ण पुष्पों वाली विजया शूद्रा कही जाती है ॥ ११४-११५ ॥

तासां शोधनमन्त्राः

आसां शोधनमन्त्रञ्च कथयामि पृथक् पृथक् ।
सम्विदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे ॥ ११६ ॥
भैरवाणाञ्च तृप्त्यर्थं प्रसन्ना भव सर्वदा ।
ॐ ब्रह्माण्यै नमः स्वाहा ब्रह्माणीं शोधयेदिति ॥ ११७ ॥

अब इनके शोधन का प्रकार पृथक्-पृथक् कहता हूँ । 'सम्विदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे भैरवाणाञ्च तृप्त्यर्थं प्रसन्ना भव सर्वदा ॐ ब्रह्माण्यै नमः स्वाहा' इस प्रकार मन्त्र पढ़कर ब्रह्माणी विजया का शोधन करे ॥ ११६-११७ ॥

सिद्धिमूलक्रिये देवि हीनबाधप्रबाधिनि ।
राजप्रजावशङ्करि शत्रु कण्ठत्रिशूलिनि ॥ ११८ ॥
ॐ ऐँ क्षत्रियायै नमः स्वाहा क्षत्रियायाः स्मृतो मनुः ।
अज्ञानेन्धनदीप्ताग्ने ज्ञानाग्ने ज्ञानरूपिणि ॥ ११९ ॥
आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यग्ज्ञानं प्रयच्छ मे ।
ह्रीँ वैश्यायै नमः स्वाहा शूद्रां संशोधयेदथ ॥ १२० ॥
ॐ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रदर्शिनि ।
त्रैलोक्यविजये मातः समाधिफलदा भव ॥ १२१॥
क्लीँ (श्रीँ) शूद्रायै नमः स्वाहा कथितं मन्त्रमुत्तमम् ।
ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि पदन्ततः ॥ १२२ ॥
अमृतमाकर्षयद्वन्द्वं सिद्धिं देहि ततः परम् ।
त्रैलोक्यं मे ततो ब्रूयाद्वशमानय तत्परम् ॥ १२३ ॥
द्विठान्तोऽयं मनुः प्रोक्तश्चतुष्काणाञ्च शोधने ।
(अथवा) **हसक्षमलवरयूँ हसरौञ्च ततः परम् ॥ १२४ ॥**
आनन्दभैरवायेति वषडन्तः परो मनुः ।
अनयोरेकतरेणैव विशोध्य विजयां ततः ॥ १२५ ॥

सिद्धिमूलक्रिये...........क्षत्रियायै नमः स्वाहा पर्यन्त क्षत्रिया विजया शोधन का मन्त्र है । अज्ञानेन्धन दीप्ताग्ने...........ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा । इससे वैश्या विजया का शोधन करे ।

अब शूद्रा के शोधन का प्रकार कहते हैं—ॐ नमस्यामि ....श्री शूद्रायै नमः स्वाहा । यह शूद्रा विजया शोधन का मन्त्र है । ॐ अमृते............द्विठान्तः (स्वाहा) पर्यन्त यह मन्त्र चारो प्रकार की विजया शोधन का मन्त्र है । अथवा हं सं क्षं मं लं वं रं यं.............आनन्द भैरवाय वषट् पर्यन्त मन्त्र भी चारों प्रकार के विजया का संशोधन करता है । इन दोनों में से किसी एक मन्त्र द्वारा भाँग को शुद्ध करना चाहिए ॥ ११८-१२५ ॥

विजयाग्रहणविधिः

सप्तधा मूलमन्त्रञ्च तासामुपरि सञ्जपेत् ।
आवाहन्यादिमुद्राञ्च धेनुयोनिञ्च दर्शयेत् ॥ १२६ ॥

विजया का संशोधन कर उसके ऊपर सात बार मूलमन्त्र का जप करे और आवाहनी मुद्रा तथा धेनु एवं योनि मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ १२६ ॥

त्रितालछोटिकाभिश्च दिग्बन्धनं समाचरेत् ।

दिव्यदृष्ट्या पदाघातैर्विघ्नांश्च विनिवारयेत् ॥ १२७ ॥

तीन ताल तथा तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करे और दिव्य दृष्टि से देखते हुये पैर को पृथ्वी पर पटक कर विघ्नों का उत्सारण करे ॥ १२७ ॥

सप्तधा तर्पयेन् मूर्द्धिर्न गुरुवर्ग सुसाधकः ।
तत्त्वमुद्राविधानेन हृदि देवीं गणान्विताम् ॥ १२८ ॥

उत्तम साधक सात बार गुरुवर्ग के मस्तक पर तर्पण करे । फिर तत्त्वमुद्रा प्रदर्शित कर गणेश सहित श्री भगवती का हृदय में ध्यान करे ॥ १२८ ॥

तर्पयित्वा महादेवीं शक्तिभ्योऽपि ददेत्ततः ।
गृहीत्वा वामहस्तेन पठेदमुं मनुं ततः ॥

इस प्रकार महादेवी का तर्पण कर उनकी शक्तियों का भी तर्पण करे । फिर वायें हाथ से विजया ग्रहण कर इस मन्त्र को पढ़े ॥ १२९ ॥

ऐँ वदवदपदं प्रोक्त्वा वाग्वादिनि ततः परम् ।
मम जिह्वाग्रे स्थिरेति भव सर्वपदं लिखेत् ॥ १३० ॥
सत्त्ववशङ्करि स्वाहा मन्त्रेण तदनन्तरम् ।
स्वीकुर्यात् साधकश्रेष्ठो मुमुक्षुः प्रसमीक्षया ॥ १३१ ॥

'ऐं वदवद' पद कहकर 'वाग्वादिनि', उसके बाद 'जिह्वाग्रे स्थिराभव', इसके बाद 'सर्व' पद, फिर 'सत्त्व वशङ्करि स्वाहा' तदनन्तर मुमुक्षु साधक इस मन्त्र को पढ़कर श्रेष्ठ विजया को देखते हुये उसे ग्रहण करे । मन्त्र का स्वरूप—'ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरा भव सर्वसत्त्ववशङ्करि स्वाहा' ॥ १३०-१३१ ॥

विजयासेवनस्यानुकल्पकथनम्

मार्गशीर्षादिभिर्मासैः क्रमात् संसेव्यतां त्रिभिः ।
दुग्धघृतमधुसुरावर्णानामनुपानकम् ॥ १३२ ॥

मार्गशीर्षादि मासों से लेकर तीन मासों में इस विजया का सेवन प्रारम्भ करे । घृत, दुग्ध, मधु और सुरा उसके अनुपान हैं ॥ १३२ ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं पञ्चकालकम् ।
क्रमात् संसेवनीया च सिद्धिदा सिद्धिमूलिका ॥ १३३ ॥

एक काल, दो काल, तीन काल अथवा पाँच बार इसका क्रमशः सेवन करना चाहिये । क्योंकि यह सिद्धि देने वाली कही गयी है तथा सिद्धि का मूल बतलाया गया है ॥ १३३ ॥

विजयासेवनस्यमन्त्रगुप्तिः

तथा तथा प्रकर्तव्यं सम्विदासवभोजनम् ।
यथा यथा न हि भवेत् प्राकट्यं पशुमेलके ॥ १३४ ॥

संवित् (विजया) तथा आसव का भोजन उन-उन प्रकारों से छिपाकर करे जिससे पशुसाधकों तक को भी पता न चले ॥ १३४ ॥

निर्जने चैव कर्तव्यं सदैव गुरुसन्निधौ ।
न पितुः सन्निधाने वा न मातुः सन्निधौ तथा ॥ १३५ ॥

सर्वथा एकान्त स्थान में इसका सेवन करना चाहिये । किन्तु गुरु के सन्निधान में सदैव सेवन करे । (शिव-शक्ति रूप) माता और पिता के सन्निधान में कदापि इसका सेवन न करे ॥ १३५ ॥

किम्वा पक्षिपतङ्गानां दर्शने नैव कारयेत् ।
कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम् ॥ १३६ ॥
गुरुं कुलपतिञ्चैव कुलमालां कुलाकुलम् ।
कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् ॥ १३७ ॥

अथवा पक्षि पतङ्गों के द्वारा देखे जाने पर भी विजयादि का सेवन न करे । कुलपुष्प, कुलद्रव्य, कुलपूजा, कुलजप, गुरु कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र और कुलध्यान सर्वथा प्रकाशित न करे ॥ १३६-१३७ ॥

प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात् प्रकाशाद्बन्धनादिकम् ।
प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात् प्रकाशाद्देवहिंसनम् ॥ १३८ ॥

इनके प्रकाशित होने पर सिद्धि में विघ्न होता है । प्रकाशित होने पर बन्धन भी प्राप्त हो सकता है, मन्त्र का नाश भी हो सकता है । किं बहुना, प्रकाश से देव के द्वारा हिंसा भी सम्भव है ॥ १३८ ॥

प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन ।
पूजाकाले तु सम्प्राप्ते यदि कोऽप्यत्र गच्छति ॥ १३९ ॥
दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम् ।
प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात्तत्प्रकाशं न दूषणम् ॥ १४० ॥

प्रकाश से मृत्यु भी हो सकती है । अतः कदापि मन्त्र प्रकाशित न करे । पूजाकाल के सम्प्राप्त हो जाने पर यदि कोई आ जावे; तब वैष्णवी मुद्रा प्रदर्शित कर विष्णु न्यास तथा स्तुति करे । यदि प्रकाशित करने से अपनी रक्षा हो तो वह प्रकाश दूषण नहीं कहा जाता ॥ १३९-१४० ॥

गोपनाद्यदि व्यक्तिः स्यान्न च व्यक्तिः कदाचन ।
वरं पूजा न कर्त्तव्या न च व्यक्तिः कदाचन ॥ १४१ ॥

गुप्त रहने पर भी यदि प्रकाशित हो जावे तो उसे प्रकाश नहीं कहा जाता; भले पूजा न कर सके, किन्तु इन सब को प्रकाशित कदापि न करे ॥ १४१ ॥

पूजाविधानम्

रक्तमाल्याम्बरधरो योषिद्युक्तो महाशयः ।
ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः ॥ १४२ ॥

साधक पूजा करते समय रक्त वर्ण की माला धारण करे । अन्तःकरण शुद्ध रखे । अपनी स्त्री को साथ लेकर पूजा करे । मुख ताम्बूल से परिपूर्ण रहे और धूपादि के आमोद द्रव्यों से सुगन्धित रहे ॥ १४२ ॥

देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।
अस्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां सुरभीकृतहस्तकः ॥ १४३ ॥

यतः देव बनकर ही देवता की अर्चना करनी चाहिये । अतः बिना देवस्वरूप बनाये अदेव होकर कदापि देवार्चन न करे । अस्त्र मन्त्र पढ़कर गन्ध (इत्रादि) तथा पुष्पों से अपने हाथ को सुगन्धित कर लेवें ॥ १४३ ॥

मार्जयेत् साधकश्रेष्ठो मूलमन्त्रं परस्परम् ।
निर्मञ्छनं त्रिधा कृत्वा अस्त्रेण वामपाणिना ॥ १४४ ॥

श्रेष्ठ साधक मूलमन्त्र को पढ़कर परस्पर (स्त्री और पुरुष) मार्जन करे । फिर निर्मञ्छन (मक्खन) को अस्त्र मन्त्र पढ़कर बायें हाथ से तीन भागों में प्रविभक्त करना चाहिए ॥ १४४ ॥

क्षिपेत्तद्दूरतः पुष्पं मन्त्री नाराचमुद्रया ।
अङ्गुष्ठाग्रे तु तर्जन्या संयोज्याधोर्ध्वरेखया ॥ १४५ ॥
अन्याङ्गुलीस्तथोर्ध्वञ्च नाराचः स्यात् प्रसार्यते ।
ध्यात्वा गुरुं न्यसेद्वामे दक्षिणे गणपतिं तथा ॥ १४६ ॥

फिर नाराच मुद्रा प्रदर्शित करते हुये पुष्प को दूर फेंक देवे । अधःरेखा एवं ऊर्ध्वरेखा सहित तर्जनी से अङ्गुष्ठ के अग्र भाग में संयुक्त करे । अन्य अङ्गुलियों को ऊपर उठाये रहे तो नाराच मुद्रा हो जाती है । फिर गुरु का ध्यान कर बाईं ओर तथा गणपति का ध्यान कर दाहिनी ओर न्यास करे ॥ १४५-१४६ ॥

निजदेवीं ततः पश्चान्मध्यदेशे च साधकः ।
पार्ष्णिघातकरास्फोट समुदञ्चितवक्त्रकैः ॥ १४७ ॥

तत्र तालत्रयं दद्यात् सशब्दं सम्प्रदायतः ।

इसके बाद साधक अपनी इष्टदेवी का ध्यान कर मध्यदेश में न्यास करे । फिर साधक पार्ष्णिघात (=पदप्रहार) तथा करास्फोट (चुटकी) वक्र (टेढ़ा) होकर करे । अपने सम्प्रदाय के अनुसार शब्द युक्त तीन बार वहीं पर ताली (थपोड़ी) बजावे ॥ १४७-१४८ ॥

प्राणायामविधानम्

प्राणायामैर्विना यस्य जपहोमार्चनादिकाः ॥ १४८ ॥
न भवन्त्येव सफला यत्नेनापि कृताः क्रियाः ।
जपस्य पुरतः कार्यं प्राणायामं समाहितैः ॥ १४९ ॥

जिसका हवन कर्म एवं अर्चन प्राणायाम के बिना होता है, वह सफल क्रिया नहीं होती; चाहे जितना भी प्रयत्नपूर्वक वह सम्पन्न की जाय । इसलिये जप से पहले सावधान साधक प्राणायाम अवश्य करे ॥ १४८-१४९ ॥

अन्यथा निष्फलाः सर्वा जपहोमार्चनादिकाः ।
ऋतुचन्द्रैर्वेदरसैर्नेत्ररामैर्यथाक्रमम् ॥ १५० ॥
मात्राभिः प्रणवं जप्त्वा पूरकुम्भकरेचकैः ।
वामा च मध्यमा चैव तथा दक्षिणनाडिभिः ॥ १५१ ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥ १५२ ॥

अन्यथा साधक द्वारा की गई सारी जप, होम एवं अर्चन की क्रिया निष्फल हो जाती है । ऋतु (छह) चन्द्र (एक) वेद (चार) रस (छह) नेत्र (दो) राम (तीन), क्रमशः इतनी मात्राओं में प्रणव का जप कर प्राणायाम करना चाहिए । वाम एवं दक्षिण नासिका का पुट कनिष्ठा, अनामिका तथा अङ्गुष्ठ अङ्गुलियों से पकड़ना चाहिये । किन्तु साधक तर्जनी मध्यमा का प्रयोग न करे । इसी को प्रणायाम कहते हैं ॥ १५०-१५२ ॥

(यद्वा) **प्राणायामं ततः कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा ।**
उच्चारयंस्तु प्रणवं वामेनैकेन मन्त्रवित् ॥ १५३ ॥
उदरं पूरयित्वा तु वायुना यावदास्थितिः ।
प्राणायामो भवत्येवं पूरको देहपूरकः ॥ १५४ ॥
पिधाय सर्वगात्राणि निश्वासोच्छ्वासवर्जितः ।
सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत् प्राणायाम स कुम्भकः ॥ १५५ ॥
मुञ्चेद्वायुं तथैकेन श्वासेनैकेन मन्त्रवित् ।

निश्वासयोगयुक्तस्तु वायुं वाह्येन रेचयेत् ॥ १५६ ॥

मूल मन्त्र से अथवा प्रणव से प्राणायाम इस प्रकार करना चाहिए । मन्त्रवेत्ता साधक प्रणव का उच्चारण करते हुये बाईं नासिका पुट से जितनी वायु से उदर पूर्ण हो जाय उतनी वायु खींच कर उदर को पूर्ण करे । इस प्रकार सारे शरीर को पूर्ण करने के कारण वह **पूरक** प्राणायाम हो जाता है । फिर साधक निश्वास-उच्छ्वास बिना लिये समस्त गात्र में उस वायु को रोककर किसी भरे हुये घड़े के समान निश्चल हो जावे; तो उसे **कुम्भक** प्राणायाम कहा जाता है । फिर मन्त्रवेत्ता साधक निःश्वास योग से युक्त होकर एक श्वास से ही सारी वायु बाहरी वायु के सहारे बाहर निकाल देवे तो उसे **रेचक** प्राणायाम कहते हैं; इसमें कोई संशय नहीं ॥ १५३-१५६ ॥

रेचकस्त्वेव सम्प्रोक्तः प्राणायामो न संशयः ।
जानुप्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम् ॥ १५७ ॥
क्रियते चाङ्गुलिस्फोटं सा मात्रा परिकीर्तिता ।
ततो द्वादशमात्राभिः पूरकः क्रियते बुधैः ॥ १५८ ॥

बिना शीघ्रता के अथवा बिना विलम्ब किये जानु की प्रदक्षिणा कर अङ्गुलि विस्फोट करे तो उसे मात्रा कहते हैं । इस प्रकार बारह मात्रा में किया गया प्राणायाम पूरक कहा जाता है ॥ १५७-१५८ ॥

तस्माद् द्विगुणमात्राभिः क्रियते रेचकः शुचिः ।
तस्माद् द्विगुणमात्राभिः क्रियते कुम्भकस्तथा ॥ १५९ ॥

उसे दूनी मात्रा में (चौबीस मात्रा) रेचक प्राणायाम किया जाता है; उससे भी दूनी (अड़तालिस) मात्रा में कुम्भक प्राणायाम किया जाता है ॥ १५९ ॥

भूतशुद्धिकथनम्

प्राणायामत्रयेणैवमेकैकं त्रितयात्मकम् ।
लिङ्गं कार्यं हृदिस्थं तु चैतन्यं सर्वसाक्षिणम् ॥ १६० ॥

इस प्रकार पूरक, कुम्भक तथा रेचक इन तीन-तीन प्राणायामों का एक-एक प्राणायाम होता है । इसके बाद साधक को सर्वसाक्षी चैतन्य लिङ्ग का हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥ १६० ॥

प्रणवेन विनिःसार्य ब्रह्मरन्ध्राद्बहिर्बुधः ।
तेनैव सम्पुटीकृत्य मस्तकोपरि विन्यसेत् ॥ १६१ ॥

भूतशुद्धि—फिर प्रणव मन्त्र के द्वारा उसे ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से बाहर निकाल देवे । फिर प्रणव के सम्पुट से उसे मस्तक के ऊपर स्थापित करे ॥ १६१ ॥

चैतन्यरहितं देहं बाह्यञ्चाभ्यन्तरं तथा ।
नाभिमण्डलमध्यस्थं वायुमण्डलमध्यगम् ॥ १६२ ॥
यं बीजं धूषरं तप्तं ध्यात्वा तं तं विशोधयेत् ।
अग्निमण्डलसंस्थेन रंबीजेनाग्निरूपिणा ॥ १६३ ॥
निर्दहेदथ तद्भस्मराशिदेहाकृतिर्भवेत् ।
भ्रूमध्यस्थं हृदिस्थं वा ध्यायेद्वरुणमण्डलम् ॥ १६४ ॥
अर्धचन्द्राकृतिं श्वेतं पद्मद्वयसदक्षिणम् ।
तत्रस्थेन वकारेण प्लावयेन्मधुरूपिणा ॥ १६५ ॥

इस प्रकार बाहर और भीतर शरीर जब चैतन्यरहित हो जावे, तब नाभि मण्डल में रहने वाले वायुमण्डल के मध्य में स्थित धवल वर्ण वाले तप्त यं बीज से उसे सुखा देवे । तदनन्तर साधक अग्नि मण्डल के मध्य में निवास करने वाले अग्नि स्वरूप 'रं' बीज से उसे जला देवे । इस प्रकार देह के भस्माराशि हो जाने पर भ्रूमध्य में अथवा हृदय के मध्य में रहने वाले वरुणालय के बीज 'वं' का ध्यान करना चाहिए । जो श्वेत वर्ण वाला, अर्द्धचन्द्राकृति दक्षिण सहित वाम हाथ में दो पद्म धारण किये हुये हैं; उसमें रहने वाले मधु स्वरूप उस 'वं' बीज से उस भस्मराशि को बहा देवे ॥ १६२-१६५ ॥

जीवं पार्थिवं न्यस्य चिन्तयेद्धेममण्डलम् ।
प्रणवेण द्विधाकृत्य तत्र चैतन्यरूपिणा ॥ १६६ ॥
मस्तकोपरि विन्यस्य चैतन्येन नियोजयेत् ।
अमृतप्लावितः पिण्डः स मर्त्यो धौतकल्मषः ॥ १६७ ॥

फिर उस पार्थिव शरीर में जीव को स्थापित कर हेममण्डल के समान उसका ध्यान करे । फिर उसे चैतन्य रूप प्रणव से दो भागों में प्रविभक्त करे और उसे मस्तक पर स्थापित कर चैतन्य युक्त करे । इस प्रकार अमृत से संप्लावित वह जीव पापरहित हो जाता है ॥ १६६-१६७ ॥

आत्मानं चिन्तयेत् पश्चाद्देवतारूपिणं ततः ।
प्राणायामञ्च कथितं भूतशुद्धिं तथापरम् ॥ १६८ ॥

तब साधक अपने को देवतारूप समझे । ग्रन्थकार कहते हैं कि प्राणायाम का वर्णन हमने पहले कर दिया है उसके बाद भूतशुद्धि भी कह दिया ॥ १६८ ॥

अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिश्च कथ्यते ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा भूतशुद्धिं ततश्चरेत् ॥ १६९ ॥

अब अन्य प्रकार से भूतशुद्धि कहते हैं । तीन प्राणायाम करने के पश्चात्

भूतशुद्धि करनी चाहिये ॥ १६९ ॥

भूतशुद्धिं विना पूजा विफला

भूतशुद्धिं विना कर्म जपहोमार्चनादिकम् ।
तावत्तद्विफलं सर्वं प्रकाशेनाप्यनुष्ठितम् ॥ १७० ॥

भूतशुद्धि किये बिना जप, होम और अर्चन प्रत्यक्ष रूप से किये जाने पर भी सभी व्यर्थ हो जाते हैं ॥ १७० ॥

भूतशुद्धिं विना यस्तु न्यासपूजां करोति हि ।
न्यासजालं वृथा तस्य पूजा सा विफला भवेत् ॥ १७१ ॥

जो भूतशुद्धि बिना किये ही न्यास और पूजा करता है; उसका समस्त न्यास जाल व्यर्थ होता है और पूजा भी निष्फल हो जाती है ॥ १७१ ॥

तस्मात्तु साधकश्रेष्ठो भूतशुद्धिं समाचरेत् ।
मूलाधारात्ततः प्राणं ब्रह्ममार्गेण तान्त्रिकः ॥ १७२ ॥
हंसेन पुष्करस्थाने परमात्मनि योजयेत् ।
संहारक्रमयोगेन पञ्चतत्त्वं समुद्धरेत् ॥ १७३ ॥

इसलिये श्रेष्ठ साधक को भूतशुद्धि अवश्य करनी चाहिए । तान्त्रिक मूलाधार से प्राणतत्त्व को ऊपर उठाकर ब्रह्ममार्ग से हंस मन्त्र से सहस्रार कमल पर रहने वाले परमात्मा में संयुक्त करे । फिर संहार क्रम के योग से पञ्च तत्त्व का उद्धार करना चाहिए ॥ १७२-१७३ ॥

शोषदाहप्लवान् कृत्वा वाय्वग्निसलिलाक्षरैः ।
अनेन विधिना मन्त्री भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ १७४ ॥

फिर वायु मन्त्र (यं) से शोषण करे । अग्नि मन्त्र (रं) से उसका दाह करे । वरुणमन्त्र (वं) से उसका प्लावन करे । इस प्रकार साधक को इस विधि से भूतशुद्धि करनी चाहिये ॥ १७४ ॥

स्वदेहे देवताजीवन्यासः

आत्मानं देवतारूपं विभाव्य साधकोत्तमः ।
स्वदेहे देवताजीवं विन्यसेत्तदनन्तरम् ॥ १७५ ॥

उत्तम साधक इस प्रकार अपने को देवतारूप समझकर अपने में देवता रूप जीव का न्यास करे ॥ १७५ ॥

पुष्पैर्वानामया वापि मनसा वा न्यसेद्बुधः ।

जीवन्यासे मनुः प्रोक्तो जीवन्यासेषु योजयेत् ॥ १७६ ॥

पुष्पों से अथवा अनामिका से अथवा मन से बुद्धिमान् न्यास करे । जीवन्यास में जो मन्त्र हमने कहा है उसे जीव न्यास में प्रयुक्त करे ॥ १७६ ॥

जीवन्यासमन्त्रः

मुखवृत्तं समुच्चार्य हंसस्तु विपरीतकः ।
क्रमात् प्राणा इह प्राणास्तथा जीव इह स्थितः ॥ १७७ ॥
अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि भूयोऽमुष्याः पदन्ततः ।
वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणपदान्यथ ॥ १७८ ॥
पश्चादिहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम् ।

मुखवृत्तं (ॐ) का उच्चारण कर हंसः का विपरीत (सोऽहं), अमुष्याः प्राणा इह प्राणाः अमुष्या जीव इह स्थितः अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि अमुष्याः वाङ्मनोनयन श्रोत्र घ्राणप्राणपदानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु, फिर दो (स्वाहा) यह मन्त्र प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र है । प्राण प्रतिष्ठा मंन्त्र का स्वरूप—'ॐ सोऽहं अमुष्या प्राणा इह प्राणा अमुष्या जीव इह च स्थितः अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्र घ्राण पाद प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' है ॥ १७७-१७९ ॥

अथवा पाशबीजञ्च लज्जा चाङ्कुशमेव च ॥ १७९ ॥
प्राणमन्त्रं ततः पश्चाच्छेषं पूर्ववदाचरेत् ।
जीवन्यासमनुः प्रोक्तो जीवन्यासेषु योजयेत् ॥ १८० ॥

प्राण प्रतिष्ठा का दूसरा मन्त्र—अथवा पाशबीज (आं), लज्जा (ह्रीं), अङ्कुश क्रों और प्राणमन्त्र हं शेष पूर्ववत् यह प्राण प्रतिष्ठा का मन्त्र है (आं ह्रीं क्रों हं शेष पूर्ववत्) । जीवन्यास में कहा गया मन्त्र जीवन्यास में प्रयुक्त करे । मन्त्र का स्वरूप—ॐ आं ह्रीं क्रों हं सोऽहं अमुष्याः प्राणा इह प्राणाः अमुष्या जीव इह च स्थितः अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्रघ्राणपादप्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ १७९-१८० ॥

ततः कुर्यात् स्वकल्पोक्तं न्यासादिकं सुसाधकः ।
षडङ्गानाञ्च मुद्राञ्च स्थानञ्च मन्त्रमुच्यते ॥ १८१ ॥

इसके बाद साधक अपने सम्प्रदायानुसार न्यास करे । अब षडङ्गों की मुद्रा स्थान और मन्त्र कहते हैं ॥ १८१ ॥

त्रिद्व्येकदशरात्रिद्विसंख्याङ्गुलिगतक्रमात् ।
हृदि मस्ते शिखायाञ्च कवचे लोचनास्त्रके ॥ १८२ ॥

नमः स्वाहा वषट् हुञ्च वौषट् फट् योजयेत् क्रमात् ।
ऋषिश्छन्दश्च संयुक्तं देवताबीजशक्तिकम् ॥ १८३ ॥
कीलितं ङेयुतं सर्वं विन्यसेदेषु साधकः ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादसर्वाङ्गके न्यसेत् ॥ १८४ ॥

षडङ्गन्यास—तीन, दो, एक, दस रात्रि (३) और दो संख्या में अङ्गुलियों पर न्यास करे । इसके बाद हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा शिखयै वषट्, कवचाय हुँ, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट् से अङ्ग न्यास करे । ऋषि, छन्द, देवता, बीज शक्ति और चतुर्थ्यन्त सभी कीलित मन्त्रों से शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद एवं सर्वाङ्ग में न्यास करे ॥ १८२-१८४ ॥

अङ्गषट्कं ततः कुर्यात् पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
पञ्चाशदक्षरन्यासे यद्विशेषस्तदुच्यते ॥ १८५ ॥
ललाटेऽनामिकामध्ये विन्यसेन्मुखवर्त्मके ।
तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामा च नेत्रयोः ॥ १८६ ॥

इसके बाद पूर्वोक्त विधि से षडङ्ग न्यास करे । पचास अक्षर के न्यास में जो विशेष है उसे कहता हूँ । ललाट में अनामिका मध्यमा से, मुख में तर्जनी मध्यमा से, नेत्र में वृद्धा (अङ्गुष्ठ) और अनामिका से न्यास करे ॥ १८५-१८६ ॥

अङ्गुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ नसोः ।
मध्यास्तिस्रो गण्डयोश्च मध्यमामोष्ठयोर्न्यसेत् ॥ १८७ ॥

दोनों कानों में अङ्गूठों से, कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ से दोनों नासिका में मध्यमायुक्त तीन (तर्जनी एवं अङ्गुष्ठ) अङ्गुलियों से गण्डस्थल में तथा केवल मध्यमा से दोनों ओष्ठों में न्यास करे ॥ १८७ ॥

अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमाङ्गके ।
मुखेऽनामां मध्यमाञ्च हस्ते पादे च पार्श्वयोः ॥ १८८ ॥

अनामा से दातों में, मध्यमा से शिर में, मुख में अनामिका से, मध्यमा से हाथ पैर और पार्श्व भाग में न्यास करे ॥ १८८ ॥

कनिष्ठानामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठे च विन्यसेत् ।
ताः साङ्गुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत् ॥ १८९ ॥

कनिष्ठिका, अनामिका और मध्यमा अङ्गुलियों से पीठ में न्यास करे । फिर अङ्गुष्ठ से युक्त उन कनिष्ठिका, अनामिका और मध्यमा अङ्गुलियों से नाभि देश में तथा सभी अङ्गुलियों से कुक्षि में न्यास करे ॥ १८९ ॥

हृदये च तलं पूर्वं अंशयोश्च ककुत्स्थले ।
हृत्पूर्वं हस्तपत्कुक्षिमुखेषु तलमेव च ॥ १९० ॥

हृदय, दोनों कन्धे तथा ककुत् में हाथ के तलवे से, हृदय के पूर्वभाग में, हृदय में, पैर में, कुक्षि एवं मुख में भी हाथ के तलवे से न्यास करे ॥ १९० ॥

एतास्तु मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिताः ।
अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः ॥ १९१ ॥

इतनी मातृका मुद्रायें हैं जिन्हें हमने क्रमशः कहा है । जो बिना जाने मनमानी न्यास करता है उसका न्यास निष्फल हो जाता है ॥ १९१ ॥

पञ्चाशदक्षरन्यासः क्रमेणैव प्रकाशितः ।
ओमाद्यन्त्यो नमोऽन्तो वा सबिन्दुर्बिन्दुवर्जितः ॥ १९२ ॥

पचास अक्षरों का न्यास अन्यत्र प्रकाशित है । (द्र. ३.६७) इन मातृकाओं के आदि में तथा अन्त में ॐ लगाकर न्यास करे, अथवा केवल अन्त में नमः लगाकर सविन्दु न्यास करे अर्थात् विन्दु (विसर्ग) युक्त न करे ॥ १९२ ॥

मायालक्ष्मीबीजपूर्वा न्यस्तव्या उच्यते बुधैः ।
अथवा केवलं सर्गबिन्दुयुक्तां कलान्विताम् ॥ १९३ ॥

बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि यह अक्षरन्यास माया बीज (ह्रीं) और लक्ष्मी बीज (श्रीं) लगाकर करना चाहिये । अथवा केवल विसर्ग कलायुक्त विन्दु अनुस्वार लगाकर ही न्यास करना चाहिये ॥ १९३ ॥

तार्त्तीयरुद्रशक्त्यन्तां स्मरादिकेशरान्विताम् ।
शक्तिपूर्वां श्रिया युक्तां सुधास्यां वा तनौ न्यसेत् ॥ १९४ ॥

स्मरादि (क्लीं) केशरान्वित तार्त्तीय (?) रुद्रशक्ति जिसके अन्त में हो उससे न्यास करे अथवा जिसके पूर्व में शक्ति (ह्रीं) हो, उसे श्रीं से युक्त सुधा मुख वाली से अपने शरीर में न्यास करे ॥ १९४ ॥

शक्तिश्रीकामबीजान्तां वेदादिशक्तिमातृकाम् ।
अजपा परमात्मा च द्विठप्रपञ्चयागकः ॥ १९५ ॥

अथवा वेदादि शक्ति मातृका (ॐ), शक्ति (ह्रीं), श्रीं, कामबीज (क्लीं) जिसके अन्त में हो (ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं) उससे न्यास करे । अजपा परमात्मा, फिर दो ठ (स्वाहा) यह प्रपञ्च याग वाला है ॥ १९५ ॥

रविसंख्यात्मिकां प्रोक्ता मातृकान्तस्वरूपिणीम् ।
यस्य यत्र रुचिर्गच्छेत्तद्रूपात्ततनौ च ताम् ॥ १९६ ॥

किसी के मत में रवि (१२) संख्यात्मिका मातृकास्वरूपिणी कही गई है । अत: जिसकी जिसमें रुचि हो उतने रूप वाली मातृका का अपने शरीर में न्यास करनी चाहिए ॥ १९६ ॥

विन्यस्य तन्मयो मन्त्री याति वागीश्वरीमयम् ।
स्पृष्ट्वा वानामया वापि मनसा वा न्यसेद्बुधः ॥ १९७ ॥
ऋष्यादिव्यापकान्तश्च स्वकल्पोक्तं समापयेत् ।
प्राणायामादिभिर्न्यासैः आत्मशुद्धिश्च जायते ॥ १९८ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये द्वितीयोल्लासः ॥२॥

इस प्रकार न्यास कर मन्त्री तन्मय होकर साक्षात् वागीश्वरी स्वरूप हो जाता है। अथवा अनामिका से स्पर्श कर, अथवा मन से ध्यान कर मन्त्रज्ञ साधक न्यास करे । इस प्रकार साधक ऋष्यादि न्यास से लेकर व्यापक पर्यन्त स्वकल्पोक्त न्यास समाप्त करे । प्राणायामादि योग से तथा न्यास से विद्वान् साधक की आत्मशुद्धि होती है ॥ १९७-१९८ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के द्वितीय उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २ ॥

तृतीय उल्लासः

...ꕥ...

अन्तर्यागनिरूपणम्

आत्मशुद्धिः समाख्याता अन्तर्यागश्च कथ्यते ।
अन्तर्यागविधिं कृत्वा बहिर्यागं समाचरेत् ॥ १ ॥

यहाँ तक आत्मशुद्धि कही गई । अब अन्तर्याग कहता हूँ । अन्तर्याग करके ही बहिर्याग करना चाहिये ॥ १ ॥

बहिर्यागे नाधिकारी अन्तर्यागविवर्जितः ।
बहिर्यागफलं नास्ति विनान्तर्यजनं कदा ॥ २ ॥
तस्मात् प्रयत्नतो वीरश्चान्तर्यागं समारभेत् ।

जो अन्तर्याग नहीं करता उसे बहिर्याग करने का अधिकार नहीं होता । क्योंकि बिना अन्तर्याग किये बहिर्याग का फल प्राप्त नहीं होता । इसलिये वीर साधक प्रयत्नपूर्वक अन्तर्याग करे ॥ २-३ ॥

मानसपूजाकथनम्

शिवशक्तिसमायोगात् सुधावृष्टिं विधाय च ॥ ३ ॥
तर्पयित्वा महादेवीं पद्मे पद्मे सुसाधकः ।
मूलाधारे समानीय सोऽहं सञ्चिन्तयेत्ततः ॥ ४ ॥

शिवशक्ति का संयोग कराकर तथा सुधा वृष्टि सम्पादन कर विज्ञ साधक (आज्ञादि) प्रत्येक पद्म में तर्पण करे । फिर उन्हें अपने मूलाधार में स्थापित कर उनका ध्यान करे ॥ ३-४ ॥

इत्यन्तर्यजनं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
यद्वान्तर्यजनं वक्ष्ये साधकस्य सुसिद्धये ॥ ५ ॥

यह अन्तर्यजन जिसे हमने कहा है, वह सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है । किं वा; साधक की भली प्रकार की सिद्धि के लिये दूसरे प्रकार का अन्तर्याग कह रहा हूँ ॥ ५ ॥

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम् ।
रत्नद्वीपं तु तन्मध्ये सुवर्णबालुकामयम् ॥ ६ ॥

अपने हृदय में उस सुधा सागर का; जो सर्वश्रेष्ठ है, ध्यान करे । उसके मध्य में सुवर्ण की बालुका से युक्त रत्नद्वीप का ध्यान करे ॥ ६ ॥

परितो भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम् ।
तत्र कल्पद्रुमं ध्यायेत् पञ्चाशदक्षरात्मकम् ॥ ७ ॥

उस रत्नद्वीप के चारों ओर पारिजात का ध्यान करे । उसमें पचास अक्षरों वाले कल्पवृक्ष का ध्यान करे ॥ ७ ॥

तन्मूले भावयेन्मन्त्री नानारत्नोपशोभितम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशं व्याप्तं ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ ८ ॥
शतयोजनविस्तीर्णं ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारशोभितम् ॥ ९ ॥

मन्त्रज्ञ साधक उस कल्पवृक्ष के मूल में अनेक रत्नों से परिपूर्ण उदीयमान सूर्य के समान सर्वत्र व्याप्त ब्रह्माण्ड मण्डल का ध्यान करे । जिसका विस्तार सौ योजन है, जिसमें सुवर्णयुक्त प्राकार वाला चार द्वारों से संयुक्त एक ज्योतिर्मय मन्दिर है ॥ ८-९ ॥

बहुचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ।
मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपैरलंकृतम् ॥ १० ॥
तन्मध्ये वेदिकां ध्यायेन्नानारत्नोपशोभिताम् ।
सुवर्णसूत्ररचितं चिन्तयेच्छत्रमुत्तमम् ॥ ११ ॥

जो अनेक चामरों एवं अनेक घण्टादिकों से तथा नाना प्रकार के वितानों से सुशोभित और गन्ध धूप से सर्वदा अलंकृत है । जहाँ चारों ओर मन्द वायु का सञ्चार हो रहा है । उस मन्दिर के बीच में अनेक रत्नों से सुशोभित वेदिका का ध्यान करे । सुवर्ण सूत्र से रचित सर्वश्रेष्ठ छत्र का ध्यान करे ॥ १०-११ ॥

विभावयेन्महायन्त्रं पीयूषपूरपूरितम् ।
पाद्यपात्रत्रयं कुर्यादर्घ्यपात्रत्रयं तथा ॥ १२ ॥

पुनः पीयूष (अमृत) से परिपूर्ण महायन्त्र का ध्यान करे । तदनन्तर तीन पाद्यपात्र तथा तीन अर्घ्यपात्र स्थापित करे ॥ १२ ॥

षडाचमनपात्राणि मधुपर्कत्रयं ततः ।
एकं तु भोगपात्रं तु साधकः षोडशे दले ॥ १३ ॥

छह आचमन पात्र, मधुपर्क के लिये तीन पात्र फिर षोडशदल पर एक भोगपात्र स्थापित करे ॥ १३ ॥

सहस्त्रारामृतेनैव पात्राणि पूरयेत्तथा ।
पीठपूजां ततः कुर्यात् स्वकल्पोक्तविधानतः ॥ १४ ॥

फिर सहस्त्रदल से निकले हुये अमृत से समस्त पात्रों को पूर्ण करे, तदनन्तर अपने सम्प्रदायानुसार पीठपूजा करे ॥ १४ ॥

पीठपूजाविधानम्

सर्वोपरि ततो ध्यायेत् पश्चिमाननपङ्कजम् ।
स्त्रवन्तममृतं नित्यं दिव्याङ्गकमलान्तरे ॥ १५ ॥

उस सभी के ऊपर पश्चिमाभिमुख कमल का ध्यान करे, जिससे दिव्याङ्ग वाले कमलों के बीच रहकर अमृत का स्त्रोत झरता रहता है ॥ १५ ॥

शिवशक्तिसमायोगादमृतानन्दनन्दिनीम् ।
स्वस्वरूपां समावाह्य परिवारगणैः सह ॥ १६ ॥

फिर शिवशक्ति के समायोग से उत्पन्न अमृतानन्द से आनन्दित होने वाली अमृत स्वरूपा भगवती का परिवारगणों के साथ आवाहन करे ॥ १६ ॥

मानसपूजोपचाराः

मानसैरुपचारैश्च दीयते द्रव्यमुत्तमम् ।
आसनं स्वागतं पृष्ट्वा कुशलं तदनन्तरम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर मानस उपचारों से उन्हें इन-इन उत्तम द्रव्यों को समर्पित करे । सर्व प्रथम आसन देकर स्वागत कहकर उनसे कुशल मङ्गल पूँछे ॥ १७ ॥

पाद्यं चरणयोर्दद्यान्मौलौ चार्घ्यं निवेदयेत् ।
सहस्त्रदलभृङ्गाराल्लम्बिकानालविच्युतम् ॥ १८ ॥
परमामृतपानीयं भावपुष्पैः समन्वितम् ।
स्वर्णपात्रे जलं कृत्वा दद्यादाचमनं मुखे ॥ १९ ॥

फिर पैर के लिये पाद्य प्रदान करे, शिर पर अर्घ्य प्रदान करे । फिर सहस्त्रदल वाले कमण्डल में लगी हुई टोंटी से झरते हुये भाव पुष्पों से समन्वित परमामृत रूप पानीय प्रदान करे । तदनन्तर स्वर्ण पात्र में पवित्र जल रखकर मुख में आचमन देवे ॥ १८-१९ ॥

मधुपर्कं मुखे दद्यात् पुनराचमनीयकम् ।

चतुर्विंशतितत्त्वेन गन्धं दद्याद्विचक्षणः ॥ २० ॥

तदनन्तर पुनः मुख में मधुपर्क डालकर आचमन करावे । फिर विचक्षण साधक चौबीस तत्त्वों का गन्ध प्रदान करे ॥ २० ॥

स्वयम्भूकुसुमं दद्यात् कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।
सप्ताष्टभावपुष्पैश्च सम्पूज्य धूपदीपकम् ॥ २१ ॥

स्वयम्भू पुष्प, कुङ्कुम (रोरी केशर) तथा रक्तचन्दन प्रदान करे । सात या आठ की संख्या में भाव पुष्प से पूजाकर धूप और दीप प्रदान करे ॥ २१ ॥

मनःकल्पितनैवेद्यं दद्याद्देव्यै मनोरमम् ।
तर्पयेच्च त्रिधा देवीं यथोक्तविधिना ततः ॥ २२ ॥

फिर भगवती को मन से कल्पित अत्यन्त मनोहर नैवेद्य प्रदान करे । फिर शास्त्र में कही गई विधि के अनुसार भगवती का तर्पण करे ॥ २२ ॥

षडङ्गं गुरुपङ्क्तिञ्च पूजयेदङ्गदेवताः ।
पूजयित्वा प्रयत्नेन स्नानीयं दापयेद्यथा ॥ २३ ॥

षडङ्ग न्यास, गुरुपंक्ति तथा अङ्ग देवताओं का पूजन कर स्नान के लिये जल प्रदान करे ॥ २३ ॥

स्ववामे मण्डलं कृत्वा रत्नसिंहासनान्वितम् ।
तत्र देवीं समानीय नानागन्धसमन्वितम् ॥ २४ ॥
उद्वर्तनादिकं कृत्वा तैलं नारायणादिकम् ।
दत्त्वा देव्यै प्रयत्नेन स्नानीयं दापयेत्ततः ॥ २५ ॥

अपनी बाईं ओर रत्नसिंहासन युक्त मण्डल निर्माण करे, उस पर देवी का आवाहन कर नाना प्रकार के गन्धयुक्त उद्वर्त्तन (उपटन) तथा नारायणादि तैल प्रयत्नपूर्वक प्रदान कर स्नानीय जल प्रदान करे ॥ २४-२५ ॥

सुवर्णकोटिकुम्भैश्च गन्धतोयसमन्वितैः ।
नानातीर्थजलेनैव स्नापयेत् परदेवताम् ॥ २६ ॥

अनेक प्रकार के गन्धजल से मिश्रित अनेक तीर्थों के जल से परिपूर्ण करोड़ों सुवर्ण के कलशों से परदेवता भगवती को स्नान करावे ॥ २६ ॥

दुकुलैर्मार्जितं गात्रं दुकूलं परिधापयेत् ।
नयने तेजसस्तत्त्वं प्रोञ्छयेत्तेन वै तनुम् ॥ २७ ॥
आकाशतत्त्वं श्रोत्रे च तेन वस्त्रं प्रकल्पयेत् ।

विधिवद्वन्दनं कृत्वा केशसंस्कारमाचरेत् ॥ २८ ॥

उनके शरीर को दुकूल (क्षौम वस्त्र) से पोंछकर (अधो) वस्त्र पहिनावे । फिर नेत्र पोंछकर उसमें तेज बढ़ाने वाला अञ्जन आदि प्रदान करे । दोनों कानों में आकाशतत्त्व का कुण्डल देवे और उसी से वस्त्र की कल्पना करे । तदनन्तर विधानपूर्वक वन्दना कर उनके केशों का संस्कार करे ॥ २७-२८ ॥

नानारत्नसमायुक्तकङ्कत्या साधकोत्तमः ।
पट्टगुच्छं केशपाशे नानारत्नसमाकुलम् ॥ २९ ॥

अनेक प्रकार के रत्नजटित कङ्कति (ककही) से केश शुद्ध करे । फिर अनेक रत्नों से जटित पट्टसूत्र से उनके केश का बन्धन करे ॥ २९ ॥

ललाटे तिलकं दद्यात् सिन्दूरं केशमध्यके ।
नागेन्द्रदन्तरचितं शङ्खं दद्यान्मनोहरम् ॥ ३० ॥

ललाट में तिलक प्रदान करे । तदनन्तर केश के मध्य भाग (सीमन्त) में सिन्दूर लगावे । फिर हाथी दाँत से बनी हुई मनोहर चूड़ियाँ प्रदान करे ॥ ३० ॥

हस्ते केयूरकञ्चैव कङ्कणं कटकं तथा ।
पादाङ्गुरीयकं दद्यान्नानारत्नोपशोभितम् ॥ ३१ ॥

हाथों में केयूर, कङ्कण एवं कटक प्रदान कर अनेक रत्नजटित अङ्गूठियाँ पैरों में भी प्रदान करे ॥ ३१ ॥

पादयोर्नूपूरं दद्यात् कट्याञ्च क्षुद्रघण्टिकाम् ।
शिरोरत्नं प्रदद्याच्च मुकुटं रत्ननिर्मितम् ॥ ३२ ॥

पैरों में पायजेब, कटि में काञ्ची, शिर में चूडामणि तथा मस्तक पर रत्ननिर्मित मुकुट प्रदान करे ॥ ३२ ॥

ताटङ्ककुण्डलं कर्णभूषणं सुपरिष्कृतम् ।
नयने कज्जलं दद्यान्नासाग्रे गजमौक्तिकम् ॥ ३३ ॥

अत्यन्त चमकदार कर्णफूल कानों में देवे । नेत्र में कज्जल और नासाग्रभाग में गजमुक्ता की नथ प्रदान करे ॥ ३३ ॥

ग्रीवापत्रं कण्ठभूषां मुक्तामणिविभूषितम् ।
आनन्दहारत्रितयं अङ्गुरीयकरत्नकम् ॥ ३४ ॥

मुक्ता और मणियों से उपशोभित ग्रीवा पत्र एवं कण्ठ का आभूषण प्रदान कर तीन लरियों वाला आनन्द हार एवं रत्नजटित अङ्गूठी देवे ॥ ३४ ॥

सर्वाङ्गलेपनं कार्यं गन्धचन्दनसिह्लकैः ।
काञ्चनाञ्चितकञ्चूलीमलक्तं रदनच्छदे ॥ ३५ ॥

गन्धयुक्त चन्दन तथा सर्वाङ्गलेपन करे । स्वर्णजटित कञ्चुली, अलक्तक (लाक्षा) तथा दाँतों की शोभा के लिये विहित वस्तु प्रदान करे ॥ ३५ ॥

सुवर्णपादुकां दत्त्वा प्रवालदन्तचिह्निताम् ।
मण्डपेषु समानीय रत्ननिर्मितदोलया ॥ ३६ ॥

प्रवाल (विद्रुम) एवं हाथी दाँत से जड़ी हुई सुवर्ण की पादुका प्रदान कर रत्ननिर्मित डोली में बैठाकर उन भगवती को मण्डप में प्रवेश करावे ॥ ३६ ॥

पुनः पाद्यादिकं दत्त्वा पूजयेत्तां सनातनीम् ।
गन्धादिकं ततो दत्त्वा भावपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥

पुनः पाद्यादि प्रदान कर उन सनातनी भगवती की पूजा करे । गन्धादि देकर भावात्मक पुष्पों से उनकी पूजा करे ॥ ३७ ॥

मानसपुष्पनामानि

अमायमनहङ्कारमरागममदं तथा ।
अमोहकमदम्भञ्च अद्वेषाक्षोभकौ तथा ॥ ३८ ॥
अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः ।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ॥ ३९ ॥

अमाय, अनहङ्कार, अराग, अमद, अमोहक, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभक, अमात्सर्य और अलोभ—ये दश पुष्प बुद्धिमानों ने (भावात्मक) कहे हैं । इसके अतिरिक्त अहिंसा सर्वश्रेष्ठ पुष्प है । इन्द्रियनिग्रह भी पुष्प है ॥ ३८-३९ ॥

दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम् ।
इति पञ्चदशैर्भावपुष्पैः सम्पूजयेच्छिवाम् ॥ ४० ॥

दयापुष्प, क्षमापुष्प तथा पाँचवाँ ज्ञानपुष्प है । इस प्रकार कुल पन्द्रह प्रकार के भावपुष्पों से भगवती की अर्चना करे ॥ ४० ॥

करवीरं जवा द्रोणं चम्पकं नागकेशरम् ।
अपराञ्च कदम्बञ्च पारिजातादिकं तथा ॥ ४१ ॥
दद्याद्देव्यै प्रयत्नेन माल्यं गन्धसमन्वितम् ।
सुमेखलां पद्ममालां पुष्पं नानाविधं तथा ॥ ४२ ॥

करवीर, जवा, द्रोण, चम्पक, नागकेशर, अपरा, कदम्ब, पारिजातादि पुष्पों

की सुगन्धित माला भगवती को प्रयत्नपूर्वक प्रदान करे । इसी प्रकार सुमेखला एवं पद्ममाला आदि नाना प्रकार के पुष्पों को भी समर्पित करना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥

सप्तद्वीपसमुद्भूतं दद्याद्देव्यै सुसाधकः ।
कुण्डगोलोद्भवञ्चैव धूपं दद्यात् समीरणम् ॥ ४३ ॥

किं बहुना, सातों द्वीपों में उत्पन्न होने वाले उत्तमोत्तम पुष्प भगवती को साधक प्रदान करे । साधक कुण्डगोलक में उत्पन्न तथा समीरण क्षेत्र का धूप प्रदान करे ॥ ४३ ॥

सहस्रारकर्णिका पात्रं तैलं स्याच्च परामृतम् ।
मूलाधारे वर्त्तिरूपं चिदग्निः स्यात् प्रदीपकम् ॥ ४४ ॥

सहस्रकर्णिका रूप पात्र में परामृत रूप तैल वाले मूलाधार रूप बत्ती से युक्त चिदग्नि का प्रदीप देवे ॥ ४४ ॥

आमूलाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं सुषुम्नाहतवायुना ।
अनाहतध्वनिमयीं घण्टामेतां निवेदयेत् ॥ ४५ ॥

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त लम्बी घण्टा जो सुषुम्ना वायु से अपने आप अनाहत रूप ध्वनि करता हो, ऐसा घण्टा भगवती को निवेदन करे ॥ ४५ ॥

नैवेद्यं षड्रसोपेतमम्बरं चामरं तथा ।
सूर्यञ्च दर्पणञ्चन्द्रमण्डलं छत्रमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

षड्रसों से युक्त नैवेद्य, अम्बर रूप चामर, सूर्य स्वरूप दर्पण तथा चन्द्रमण्डल रूप छत्र समर्पित करे ॥ ४६ ॥

सुधाम्भोधिं मांसशैलं मत्स्यराशिं फलानि च ।
सुपक्वञ्चरुकञ्चैव घृताक्तं परमान्नकम् ॥ ४७ ॥
भक्ष्यभोज्यं तथा यचोष्यं लेह्यं पेयञ्च चर्वणम् ।
दद्याच्छेषार्घ्यतोयेन पुनराचमनीयकम् ॥ ४८ ॥

अमृत का समुद्र, मांस का शैल, मत्स्य राशि तथा नाना प्रकार के फल, भली प्रकार से पकाया हुआ चरु, घृत से संयुक्त परमान्न--इस प्रकार भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय और चर्वण भगवती को समर्पित कर अर्घ्य पात्र के शेष जल से आचमन प्रदान करे ॥ ४७-४८ ॥

बाह्यचक्रं ततो दद्यान्मूलाधारोत्थवायुना ।
रजःसत्त्वगुणाढ्यञ्च कर्पूरचूर्णमिश्रितम् ॥ ४९ ॥
रत्नपात्रे परिष्कृत्य ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ।

तर्पयित्वा पुनर्देवीं पूजयेच्चाङ्गदेवताः ॥ ५० ॥

तदनन्तर मूलाधार से उठी हुई वायु से (शीतल एवं चञ्चल) बाह्य चक्र (पङ्खा) प्रदान करे । कर्पूर के चूर्ण से चूर्ण मिश्रित एवं सर्वथा परिष्कृत ताम्बूल को रत्नपात्र में रखकर प्रदान करे । पुनः भगवती का तर्पण कर अङ्ग देवता का पूजन करे ॥ ४९-५० ॥

विधाय तर्पणं तेषां देवीं सम्पूजयेत् पुनः ।
विधिवत् पूजनं कृत्वा तर्पयेत्तदनन्तरम् ॥ ५१ ॥

फिर अङ्गदेवता का तर्पण कर पुनः देवी का पूजन करे । इस प्रकार विधिवत् पूजन कर, तदनन्तर पुनः देवी का तर्पण करे ॥ ५१ ॥

अन्तर्मातृकया जप्ता समर्प्य च स्तुतिं पठेत् ।
पुष्पशय्याञ्च संस्कुर्यात्तत्र देवीं सुरेश्वरीम् ॥ ५२ ॥

अन्तर्मातृका वर्णों से जपकर वह जप देवी को समर्पित करे । तदनन्तर स्तुति करे । फिर वहीं पर देवी के लिये पुष्प शय्या का संस्कार करे ॥ ५२ ॥

मनोनर्त्तकतालैश्च शृङ्गारादिरसोद्भवैः ।
गीतैर्नानाविधैर्देवीं तोषयेत् साधकोत्तमः ॥ ५३ ॥

फिर श्रेष्ठ साधक शृङ्गारादि रसोत्पादक मन को आनन्दित करने वाले अनेक प्रकार के नृत्यों, तालों और गीतों से भगवती को सन्तुष्ट करे ॥ ५३ ॥

तस्मात् कामेश्वरी देवी प्रीता कामेश्वरश्च सः ।
मनस्यैक्यं विभाव्याथ साधकः सिद्धिभाग् भवेत् ॥ ५४ ॥

तब साधक अपने मन में ध्यान करे कि अब भगवती कामेश्वरी एवं कामेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो गये हैं । इस प्रकार की ऐक्य भावना करने से साधक सिद्धि का पात्र बन जाता है ॥ ५४ ॥

इत्यन्तर्यजनं प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
रक्तपद्मसहस्राणि मनसा यः प्रयच्छति ॥ ५५ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा देवीपुरे श्रीमान् ततो राजा क्षितौ भवेत् ॥ ५६ ॥

इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले अन्तर्याग का हमने वर्णन किया । जो भक्त लालवर्ण के हजार संख्या में कमलों को मन से समर्पित करता है । वह करोड़ों सहस्र कल्प तथा सैकड़ों करोड़ कल्प तक देवी लोक में निवास करता है फिर पृथ्वी में जन्म लेकर श्रीमान् राजा होता है ॥ ५५-५६ ॥

मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दातुमिच्छति ।
यो नरो भक्तिसंयुक्तः स दीर्घायुः सुखीभवेत् ॥ ५७ ॥

जो भक्त साधक मानस रूप से इन महादेवी को नैवेद्य प्रदान करने की मात्र इच्छा ही करता है उसे देवी की भक्ति प्राप्त होती है और वह दीर्घायु तथा सुख प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥

मनसापि च यो भक्त्या देव्यै कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
देवीगृहे वसेत् सोऽपि नरकाणि न पश्यति ॥ ५८ ॥

जो मन से भक्तिपूर्वक देवी के लिये प्रदक्षिणा का सङ्कल्प करता है वह देवी के गृह में निवास करता है और नरक में नहीं जाता ॥ ५८ ॥

नमनं मनसा देव्यै यो भक्त्या कुरुते नरः ।
सोऽपि लोकान् विजित्याशु शिवलोके महीयते॥ ५९ ॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवती को नमन करता है वह सभी लोकों से ऊपर शिवलोक में निवास करता है ॥ ५९ ॥

प्रकारान्तर्यजनम्

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् ।
गुरुध्यानं प्रकुर्वीत यथापूर्वं विशालधीः ॥ ६० ॥

अन्तर्यजन विधान—अब दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकार के फलों को देने वाला दूसरे प्रकार का अन्तर्यजन कहता हूँ । विशिष्ट बुद्धि वाला साधक पूर्व कथनानुसार पहले गुरु का ध्यान करे ॥ ६० ॥

स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते ।
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ६१ ॥

पुनः हृदय में निवास करने वाले पुष्कर तीर्थ में स्नान करे अथवा विन्दु तीर्थ में निवास करे । ऐसा करने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ६१ ॥

इडासुषुम्ने शिवतीर्थकेऽस्मिन्
ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे ।
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः
किं तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा ॥ ६२ ॥

इस शिवतीर्थात्मक शरीर में ज्ञान रूप जल से परिपूर्ण इडा और सुषुम्ना नाड़ी स्वरूप दो नदियाँ बहती हैं । जो साधक उन नदियों में बहते हुये ब्रह्मजल

से स्नान करता है, उसे गङ्गाजल में स्नान अथवा पुष्कर तीर्थ में स्नान का क्या प्रयोजन है ? ॥ ६२ ॥

इति स्नानं समुद्दिष्टमथ सन्ध्यां समाचरेत् ।

इस प्रकार हमने ब्रह्मजल से स्नान का विधान कहा । इसके बाद साधक सन्ध्याकर्म करे ॥ ६३ ॥

सन्ध्यानिरूपणम्

शिवशक्त्योः समायोगो यस्मिन्काले प्रवर्तते ॥ ६३ ॥
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रगीयते ।
चन्द्रर्कानलसङ्घट्टाद्गलितं यत् परामृतम् ॥ ६४ ॥
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम् ।
तर्पणं कथितं दिव्यमर्घ्यसाधनमुच्यते ॥ ६५ ॥

सन्ध्या निरूपण—जिस काल में शिवशक्ति का समायोग सम्पन्न होता है । कुलमार्ग का आचरण करने वाले समाधि में स्थित रहने वालों के लिये वही सन्ध्या प्रशस्त कही गई है । चन्द्रमा सूर्य और अग्निदेव के सङ्घर्ष से जो परामृत गलता है उस अमृतजल से परदेवता का तर्पण करे । यहाँ तक हमने दिव्य तर्पण कहा । अब अर्घ्य का साधन कहता हूँ ॥ ६४-६५ ॥

ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम् ।
कलासारेण सम्पूर्य तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्मरन्ध्र के नीचे जो उत्तम चन्द्र रूप पात्र है । उसे उसकी कलाओं से परिपूर्ण कर खेचरी (आकाशचारिणी) का तर्पण करे ॥ ६६ ॥

प्रसङ्गतः षट्चक्रकथनम्

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के ।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वरांश्च
हक्षौ कोदण्डमध्ये न्यसतु विमलधीर्न्याससम्पत्तिसिद्धौ॥ ६७ ॥

मूलाधार, लिङ्ग, नाभि, हृत्कमल, तालमूल (कण्ठ) और ललाट में जहाँ क्रमशः चार, छह, दशः, बारह, सोलह और दो पङ्खड़ियों वाले कमलों से युक्त क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र हैं । वहाँ क्रमशः मूलाधार में वं शं षं और सं इन चार अक्षरों से, लिङ्ग स्थित स्वाधिष्ठान में बं भं मं यं रं और लं इन छह अक्षरों से नाभि में जहाँ मणिपूर चक्र है वहाँ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं और फं इन दश अक्षरों से, हृत्कमल जहाँ

अनाहत चक्र है वहाँ कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं इन बारह अक्षरों से, तालु मूल कण्ठ में जहाँ विशुद्ध चक्र है वहाँ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं और अः इन सोलह स्वरों से तथा ललाट (भ्रू प्रदेश) जहाँ आज्ञा चक्र है वहाँ हं क्षं इन दो वर्णों से न्यास करे । इस प्रकार अन्त के वं से लेकर सं पर्यन्त, तदनन्तर मध्य के बं से लेकर लं पर्यन्त तथा आदि के कं से लेकर ठं पर्यन्त, पुनः ढं से लेकर फं पर्यन्त वर्णों से न्यास करना चाहिये ॥ ६७ ॥

इत्यन्तर्मातृकावर्णान् ध्यायेत् कण्ठच्छदक्रमात् ॥ ६८ ॥
षडङ्गमथ कुर्यात्तु येन देवीमयो भवेत् ॥ ६९ ॥

इस प्रकार कण्ठ में रहने वाले ककारादि क्षान्त पर्यन्त अन्तर्मातृका वर्णों का ध्यान करे । तदनन्तर षडङ्ग न्यास करे जिससे देवीमय बन जावे ॥ ६८-६९ ॥

हन्यमानहृदर्थोऽयं हृदयं स्याच्चिदात्मकम् ।
क्रियते तत् परत्वेन हृन्मन्त्रेण ततः परम् ॥ ७० ॥

यतः हृत् (पमः) अर्थ वाला हृदय हन्यमान (न्यास) कर लिये जाने पर सच्चिदानन्दात्मक हो जाता है । अतः उससे ही हृन्मन्त्र द्वारा हृदय का न्यास करे । यथा—सच्चिदानन्दाय नमः, हृदयाय नमः ॥ ६९ ॥

सर्वाङ्गादिगुणोत्तुङ्गे सम्विद्रूपे परात्मनि ।
क्रियते विषयाहारः शिरोमन्त्रेण देशिकैः ॥ ७० ॥

यतः आचार्यगण सर्वाङ्गादिगुणों में सर्वोत्तम संवित् रूप परमात्मा में शिरः मन्त्र से अपने सभी विषयों को आरोपित कर देते हैं । अतः उससे शिर में न्यास करे । यथा—संवित्रूपे परमात्मनि स्वाहा, शिरसे स्वाहा ॥ ७० ॥

हृच्छिवो रूपं चिद्धाम ममता भावना दृढा ।
क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण देशिकैः ॥ ७१ ॥

आचार्य लोग अपने देह की दृढ़ ममता को हृत् शिरः स्वरूप करते रहते हैं इसलिये शिखा मन्त्र द्वारा शिखा में न्यास करना चाहिये । यथा—हृच्छिरोरूप चिद्धाम्ने शिखायै वषट् ॥ ७१ ॥

मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा ।
सर्वतो मन्त्रवर्णेन क्रियते तस्य संवृतिः ॥ ७२ ॥

मन्त्र वाक्य के तेज से इस मन्त्रात्मक देह की यतः मन्त्र वर्ण द्वारा रक्षा की जाती है और शरीर को गोपनीय रखा जाता है । इसलिये उससे कवच न्यास किया जाता है । यथा—मन्त्रात्मक तेजसे नमः कवचाय हुं ॥ ७२ ॥

यद्ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि ।
हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्नेत्रसंज्ञितम् ॥ ७३ ॥

जो परमात्मा सर्वोत्तम तेज प्रदान करता है उस परमात्मा में हृदयादिमय तेज है, अतः उस तेज का नेत्र में न्यास करना चाहिये । यथा—ॐ संवृन्मय तेजसे नमः नेत्रयोः ॥ ७३ ॥

आध्यात्मिकादिरूपं यत् साधकस्य विनाशयेत् ।
अविद्याजातमन्त्रं तत् परं धाम समीरितम् ॥ ७४ ॥

साधक का अपना आध्यात्मिक रूप जो अविद्या से उत्पन्न अज्ञान को दूर कर देता है उसे परं धाम कहते हैं । उससे अस्त्र मन्त्र का न्यास करना चाहिये । यथा—'ॐ परं धाम अस्त्राय फट्' ॥ ७४ ॥

इति न्यासं विधायाथ ततो ध्यायेच्चिदात्मकम् ।
शक्तिद्वयपुटान्तःस्थहलक्षत्रयसंस्थितम् ॥ ७५ ॥
ज्योतिन्तत्त्वमयं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ।
अथ शृङ्गाटमध्यस्थशक्तिद्वयपुटीकृतम् ॥ ७६ ॥
सदा समरसं ध्येयं ध्यानं तत् कुलयोगिनाम् ।

इस प्रकार न्यास कर साधक शक्तियों के सम्पुट में स्थित ह ल क्ष इन तीन वर्णों पर स्थित चिदात्मक ज्योतितत्त्व का ध्यान करे जो कुलाकुल सम्प्रदायानुसार कहा गया है । जो शृङ्गाटक के मध्य में दो शक्तियों से सम्पुट किये गये सर्वदा समरस रूप में ध्येय है, वह कुलयोगियों का ध्यान है ॥ ७५-७७ ॥

(यद्वा) **किरणस्थं तदग्रस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम् ॥ ७७ ॥**
महाशून्ये लयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ।
निरालम्बे पदे शून्ये यत्तेज उपजायते ॥ ७८ ॥
तद्गर्भमभ्यसेन्नित्यं ध्यानमेतद्धि योगिनाम् ।
अथ पूजां प्रवक्ष्यामि यथातन्त्रानुसारतः ॥ ७९ ॥

अथवा चन्द्रमा और भास्कर के मध्य में रहने वाले जो किरण, उन किरणों के अग्रभाग में रहने वाले ज्योति रूप महालय में उसे लयकर योगी पूर्णानन्द में स्थिर हो जाता है । उस निरालम्ब अवस्था में जो तेज उत्पन्न होता है उसके गर्भ में रहने वाले तेज का अभ्यास करे । यही योगियों का ध्यान है । अब तन्त्र शास्त्र के अनुसार भगवती की पूजा विधि कहता हूँ ॥ ७७-७९ ॥

भगवती पूजाविधि

अर्चयन् विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् ।

न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥ ८० ॥

भगवती चण्डिका की इस प्रकार विषयात्मक पुष्पों से अर्चना करते ही साधक तत्क्षण भगवतीमय हो जाता है । उसमें तन्मयता बुद्धि जो आ जाती है उसको न्यास कहते हैं । अत: सोऽहंभाव से पूजा करनी चाहिये ॥ ८० ॥

पूर्वोक्तभावपुष्पानि दद्याद्देव्यै सुसाधकः ।
अथ वक्ष्ये जपं तत्र पद्मस्थवर्णमालया ॥ ८१ ॥

उत्तम साधक पूर्व में कहे गये भाव पुष्प भगवती को समर्पित करे । अब कमलों पर स्थित वर्णमाला से जपविधि कहता हूँ ॥ ८१ ॥

जपविधानम्

माला पञ्चाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम् ।
ग्रथिता कुण्डलीशक्तिः कलान्ते मेरुसंस्थितिः ॥ ८२ ॥

माला पञ्चाशिका कही गई है और शक्तिशिवात्मक सूत्र कहा गया है । माला का ग्रथन करने वाली कुण्डलिनीशक्ति है तथा कला के अन्त में सुमेरू का स्थान विद्यमान है ॥ ८१-८२ ॥

सबिन्दुं वर्णमुच्चार्य्य मूलमन्त्रं स्मरेत्ततः ।
अनुलोमविलोमाभ्यां यथाशक्ति जपञ्चरेत् ॥ ८३ ॥

जपविधि—विन्दु के सहित वर्ण का उच्चारण कर मूल मन्त्र का स्मरण करे । फिर सीधे और उलटे उनका जप करे । 'अं से क्षं' पुन: क्षं से अं यह प्रतिलोम अनुलोम का क्रम जानना चाहिये ॥ ८३ ॥

जप्त्वा समर्पयेत् पश्चात् स्वकल्पोक्तविधानतः ।
स्तुतिभिः सकलं तत्र समर्पणं पुनः पुनः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार जप सम्पादन करने के पश्चात अपने सम्प्रदायानुसार भगवती की स्तुति करते हुये समस्त जप समर्पित करे ॥ ८४ ॥

होमविधिकथनम्

अथ होमविधिं वक्ष्ये येन चिन्मयतां लभेत् ।
आत्मानमपरिच्छिन्नं ज्ञातव्यं साधकोत्तमैः ॥ ८५ ॥

होमविधि—अब होम का विधि-विधान बतलाता हूँ जिससे साधक चित्स्वरूप हो जाता है । उत्तम साधक अपने आप को देशकाल और अवस्था से सर्वथा अपरिच्छिन्न समझे ॥ ८५ ॥

आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः ।
एतद्रूपन्तु चित्कुण्डं चतुरस्त्रं विभावयेत् ॥ ८६ ॥

चित् रूप कुण्ड—आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा एवं ज्ञानात्मा इस प्रकार के चौकोर समतल चित्कुण्ड का ध्यान करे ॥ ८६ ॥

आनन्दमेखलारम्यं विन्दुत्रिवलयान्वितम् ।
अर्धमात्रायोनिरूपं ब्रह्मानन्दमयं भवेत् ॥ ८७ ॥

विन्दु रूप तीन वलियों (घुमाव) से युक्त आनन्द की मेखला बनावे । अर्धमात्रा को योनिरूप में समझे और स्वयं ब्रह्मानन्द रूप में रहे ॥ ८७ ॥

परदेवमये सर्वज्ञानदीपविजृम्भिते ।
सम्विदग्नौ हुनेद्धव्यं साधकः स्थिरमानसः ॥ ८८ ॥

फिर स्थिर चित्त वाला साधक परदेवमय (परमात्मस्वरूप) संवित् (ज्ञान) रूप वाली उस अग्नि में; जो सर्वज्ञानरूपी दीप से अत्यन्त प्रज्वलित हो रही है; हवि का होम करे ॥ ८८ ॥

शब्दाख्यं मातृकारूपमक्षवर्णविराजितम् ।
अक्षराणि हुतान्यत्र निःशब्दं ब्रह्म जायते ॥ ८९ ॥

(उपर्युक्त त्रिवली मेखला से युक्त कुण्ड की अग्नि में) अकार से लेकर क्षान्त वर्ण समुदाय, जो मातृका स्वरूप है, उसे शब्दब्रह्म नामक हवि से होम करे । उन अक्षरों के होम से शब्दरहित एक अनिर्वचनीय ब्रह्म उत्पन्न होता है ॥ ८९ ॥

कृत्याकृत्ये पापपुण्ये सङ्कल्पांश्च विकल्पकान् ।
धर्माधर्मौ साधकेन्द्रो हविस्त्वेन प्रकल्पयेत् ॥ ९० ॥

कृत्य-अकृत्य (कर्माकर्म), पाप-पुण्य, सङ्कल्प-विकल्प, धर्म और अधर्म को भी साधक हवि समझे ॥ ८७ ॥

मानसहोमः

चिदग्नौ जुहुयान्मन्त्री मूलान्तेन यथाक्रमात् ।
नाभिमण्डलचैतन्यरूपाग्नौ मनसा स्रुचा ॥ ९१ ॥

मन्त्रज्ञ साधक मातृका के अन्त में मूल मन्त्र लगाकर उस नाभि मण्डल चैतन्य रूप चिदग्नि में मन के स्रुचा से होम करे ॥ ९१ ॥

ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।
वह्निजायान्तमन्त्रेण दद्याच्च प्रथमाहुतिम् ॥ ९२ ॥

'ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा'—इस मन्त्र को पढ़कर प्रथम आहुति प्रदान करे ॥ ९२ ॥

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यमहम् ॥ ९३ ॥
वह्निजायान्तमन्त्रेण द्वितीयाहुतिमाचरेत् ।
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा ॥ ९४ ॥
धर्माधर्मौ कलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहम् ।
वह्निजायान्तमन्त्रेण तृतीयामाहुतिञ्चरेत् ॥ ९५ ॥

'धर्माधर्महविर्दीप्तो आत्माग्नौ मनसा स्रुचा । सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीः जुहोम्यहं स्वाहा'—इस श्लोक मन्त्र को पढ़कर द्वितीय आहुति देवे । 'प्रकाशाकाशहस्ताम्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा । धर्माधर्मौ कलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा' —इस मन्त्र को पढ़कर तीसरी आहुति प्रदान करे ॥ ९३-९५ ॥

अन्तर्निरन्तरनिबन्धनमेधमाने
मायान्धकारपरिपन्थिनि सम्विदग्नौ ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकाशि भूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादिशि वावसानम् ॥ ९६ ॥
इदन्तु पात्रभरितं महोत्तापपरामृतम् ।
पूर्णाहुतिमये वह्नौ पूर्णहोमं जुहोम्यहम् ॥ ९७ ॥
इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ९८ ॥
महान्तर्यजनं वक्ष्ये ब्रह्मयज्ञस्वरूपकम् ॥ ९९ ॥

इसके बाद 'अन्तर्निरन्तर निबन्धनमेधमाने' से लेकर 'पूर्णहोमं जुहोम्यहम्' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर पूर्णाहुति करे । इस प्रकार से अन्तर्याग सम्पादन कर साधक साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है । अब ब्रह्मयज्ञस्वरूप वाले महान् अन्तर्यजन को कहता हूँ ॥ ९६-९९ ॥

महान्तर्यजनम्

ब्रह्मयज्ञं महायज्ञं ब्रह्मज्ञानी यजेत् सदा ।
मनसा च मनो दृष्ट्वा यथा सिन्धुगता नदी ॥ १००॥
तथा सर्वशरीराणि महाशून्ये नियोजयेत् ।
यज्ञकर्त्ता महायोगी सर्वमन्त्रं जपेत् पुनः ॥ १०१ ॥

ब्रह्मज्ञानी मन से इस ब्रह्मयज्ञ स्वरूप महायज्ञ को करे । जिस प्रकार समुद्र में महानदी समाविष्ट होती दिखाई पड़ती है उसी प्रकार सारे शरीर को महाशून्य में

विलीन कर देवे । फिर यज्ञकर्ता महायोगी सर्वमन्त्र का जप करे ॥ १००-१०१ ॥

आत्मस्थः सर्वयज्ञस्तु बहिर्यज्ञविवर्जितः ।
कर्मयज्ञो मनोयज्ञः प्राणयज्ञो हुताशनः ॥ १०२ ॥

बहिर्यज्ञ को छोड़कर समस्त कर्मयज्ञ या मनोयज्ञ आत्मा में ही स्थित है जिसमें प्राणयज्ञ अग्नि है ॥ १०२ ॥

मन्त्रयज्ञः सुषुम्नान्तः सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥ १०३ ॥
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।
ब्रह्मवत् सर्वमार्गेषु सर्वकर्म समभ्यसेत् ॥ १०४ ॥

मन्त्रयज्ञ सुषुम्ना के भीतर होता है जिसके ध्यान से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है । 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि.............ब्रह्मकर्म समाधिना' पर्यन्त श्लोक मन्त्र सुषुम्ना के भीतर यज्ञ में विनियुक्त करे । सभी मार्गों में सारे कर्म को ब्रह्म समझकर ही साधक उसका अभ्यास करे ॥ १०३-१०४ ॥

बहिर्यागविधानम्

अथ वक्ष्ये बहिर्यागविधानं तन्त्रवर्त्मना ।
एषामन्यतमं कृत्वा यन्त्रराजं समालिखेत् ॥ १०५ ॥

तन्त्रशास्त्र के विधानानुसार आगे चलकर बहिर्याग का वर्णन करेगे । अन्तर्याग तथा बहिर्याग इन दो प्रकार के यज्ञों में कोई भी एक यज्ञ का सम्पादन कर यन्त्रराज (श्रीचक्र) लिखे ॥ १०५ ॥

चक्रराजलेखनविधिः

स्वार्णे वा राजते ताम्रे पाषाणे चाष्टधातुषु ।
(यद्वा) **गण्डकीतीरपाषाणे तथैव रुचिपीठके ॥ १०६ ॥**
श्रीखण्डसम्भवे पीठे रक्तचन्दनसम्भवे ।
यद्वा सुवर्णरूप्यादौ ताम्र वा दर्पणे तथा ॥ १०७ ॥
काश्मीरप्रभवे भूमौ यन्त्रं कुर्याद् यथाविधि ।
गोमयेन च संलिप्ते भूप्रदेशे मनोरमे ॥ १०८ ॥

स्वर्णपत्र, रजतपत्र, ताम्रपत्र, पाषण अथवा अष्टधातुओं पर, यद्वा गण्डकी नदी के पाषाण पर उसी प्रकार रुचिपीठ, श्रीखण्ड निर्मित पीठ, रक्तचन्दन के पीठ, सुवर्ण चाँदी एवं ताम्र तथा दर्पण काश्मीरी भूमि (कुङ्कुम केशरयुक्त भूमि) पर शास्त्र के अनुसार यथारुचि यन्त्र का निर्माण करे अथवा गोमय से उपलिप्त शुद्ध

मनोहर भू प्रदेश पर यन्त्र का लेखन करे ॥ १०६-१०८ ॥

सिन्दूररजसा वापि रक्ताभिः कुङ्कुमस्य वा ।
(यद्वा) **शुद्धे समे भूर्जपत्रे अथवान्ये ताम्रपट्टके ॥ १०९ ॥**

सिन्दूर के चूर्ण से, रक्तवर्ण के रङ्ग से अथवा कुङ्कुम से शुद्ध एवं समतल भूर्जपत्र पर अथवा ताम्रपट्ट पर यन्त्र लिखे ॥ १०९ ॥

शुष्के समे भूगृहे वा स्फटिके स्वर्णपट्टके ।
रत्ने वा कुलशक्तौ वा यन्त्रं कुर्यात् सुसाधकः ॥ ११० ॥

अथवा उत्तम साधक सूखे हुये समतल भूप्रदेश में, स्फटिक पर, स्वर्णपट्ट पर अथवा रत्न पर अथवा कुलशक्ति पर साधक यन्त्र लिखे ॥ ११० ॥

पट्टालकं विलिप्येत वक्ष्यमाणैकवस्तुना ।
स्वयम्भू कुसुमं कुण्डगोलोत्थं रोचनागुरुम् ॥ १११ ॥
काश्मीरं मृगनाभिञ्च मद्यञ्च मलयोद्भवम् ।
एष गन्धः समाख्यातः सर्वदा चण्डिकाप्रियः ॥ ११२ ॥

यदि काष्ठफलक पर लिखना हो तो आगे कही जाने वाली वस्तुओं में किसी एक से उसे लिम्पन करे । स्वयम्भू पुष्प अथवा कुण्ड और गोल से उत्पन्न पुष्प अथवा रोचना (हल्दी) अथवा अगुरु, काश्मीर (केशर), मृगनाभि (कस्तूरी), मद्य अथवा मलयागिरि में उत्पन्न चन्दन—यह सब गन्धद्रव्य चण्डिका को अत्यन्त प्रिय बतलाया गया है ॥ १११-११२ ॥

एतेन गन्धयोगेन चक्रराजं समालिखेत् ।
(यद्वा) **स्वयम्भूकुसुमेनैव कुण्डगोलेन वा पुनः ॥ ११३ ॥**

इन गन्धों से युक्त कर साधक श्रीचक्र यन्त्र लिखे अथवा केवल स्वयम्भू पुष्प से अथवा केवल कुण्डगोल से उत्पन्न गन्ध से यन्त्र लिखे ॥ ११३ ॥

तदा तस्य सर्वसिद्धिर्जायते नात्रसंशयः ।
(यद्वा) **चन्दनागुरुचन्द्रेण सिन्दूररजसापि वा ॥ ११४ ॥**

इस प्रकार से यन्त्र लिखने पर साधक को निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है इसमें संशय नहीं । चन्दन, अगुरु, कपूर अथवा सिन्दूर चूर्ण से भी यन्त्र लिखा जा सकता है ॥ ११४ ॥

कस्तूरीघुसृणैर्द्रव्यै रोचनालाक्षयापि वा ।
(यद्वा) **कुण्डगोलोद्भवैर्द्रव्यैः स्वयम्भूकुसुमेन च ॥ ११५ ॥**

कोमल कस्तूरी के सुगन्ध से, रोचना (हल्दी) से अथवा लाक्षा से यन्त्र लिखा जा सकता है अथवा कुण्ड-गोलोद्भव द्रव्य से अथवा स्वयम्भू पुष्प से भी यन्त्र लिखा जा सकता है ॥ ११५ ॥

रोचनालाक्षया युक्तैः कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।
सुवर्णरत्नलेखन्या सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ११६ ॥

रोचना एवं लाक्षा संमिश्रित कुङ्कुम, अगुरु और चन्दन से, सुवर्ण, अथवा रत्न की लेखनी से लिखा जाने वाला यन्त्र साधक की सभी कामनाओं की पूर्त्ति कर देता है ॥ ११६ ॥

(यद्वा) **पुष्पेण विलिखेद्वापि यन्त्रराजं सुसाधकः ।**
चन्द्रसूर्यातपं या वा अथवा बिल्वकण्टकैः ॥ ११७ ॥
चन्द्रसूर्यातपहोमोद्भवया विल्वकण्टकैः ।
एषामेकतमं लब्ध्वा स्वीययन्त्रं समुद्धरेत् ॥ ११८ ॥

अथवा साधक केवल पुष्पों से ही श्रीयन्त्र निर्माण करे । चन्द्रसूर्यातप से अथवा बिल्व के काँटे से भी यन्त्र लिखना चाहिये । चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि के होम किये गये काष्ठ शेष की लेखनी से अथवा बिल्वकण्टक में से किसी एक से अपने इष्ट श्रीयन्त्र का उद्धार करे ॥ ११७-११८ ॥

सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत् फलमाप्नुयात् ।
तत्फलं लभते वीरः कृत्वेष्टचक्रदर्शनम् ॥ ११९ ॥

साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है उतना फल केवल अपने इष्ट श्रीचक्र के दर्शन से वीर साधक प्राप्त कर लेता है ॥ ११९ ॥

नालोच्य कुलजं वर्त्म न ज्ञात्वा सूत्रधारणम् ।
न ज्ञात्वा सुषमां रेखां नालिख्य सुषमं मुखम् ॥ १२० ॥
तस्य सर्वं हरेद्देवो योऽस्मिन् यन्त्रे प्रपूजकः ।
अथ वक्ष्ये च शाक्तानां सामान्यं यन्त्रमुत्तमम् ॥ १२१ ॥

कुलमार्ग को बिना जाने हुये तथा सूत्र धारण के बिना एवं सुषमा रेखा को बिना जाने हुये और सुषम मुख को बिना लिखे हुये जो यन्त्र का पूजन करता है भगवती उसका सब कुछ हर लेती हैं । अब शाक्तों के लिये सामान्य किन्तु उत्तम यन्त्र निर्माण की विधि कहता हूँ ॥ १२०-१२१ ॥

सामान्ययन्त्रनिर्माणविधिः

यत्रापराजितापुष्पं जवापुष्पञ्च विद्यते ।

करवीरे रक्तशुक्ले द्रोणे वा यन्त्रराजके ॥ १२२ ॥
तत्र देवी वसेन्नित्यं तद्यन्त्रे चण्डिकार्चनं ।
पशोरालोकनं न स्यात्तथा कुर्यात् प्रयत्नतः ॥ १२३ ॥

जहाँ अपराजिता पुष्प अथवा जवा (गुड़हल) का पुष्प हो वहाँ तथा करवीर (कनेर) एवं रक्त शुक्ल वर्ण के द्रोण (अगस्त पुष्प) अथवा श्रीचक्र रूप यन्त्रराज जहाँ हो वहाँ देवी का निवास रहता है । उस यन्त्र में चण्डिकार्चन इस प्रकार करना चाहिये कि पशु भी देख न सके । अतः साधक प्रयत्नपूर्वक श्रीयन्त्र की पूजा करे ॥ १२२-१२३ ॥
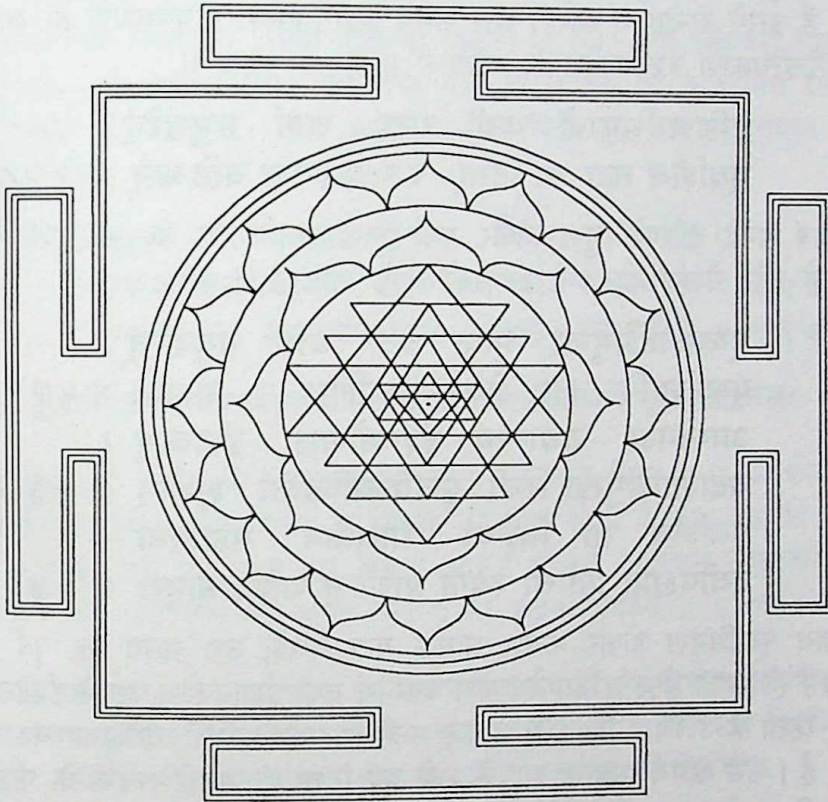
यदि दैवात् पशोरग्रे लिखनं विद्यते क्वचित् ।
देव्यङ्गक्षतिरेवात्र क्रियते पापबुद्धिना ॥ १२४ ॥

यदि दुर्भाग्यवश कहीं पशु के आगे ही यन्त्र लिखा गया तो उस पापबुद्धि ने भगवती के अङ्ग को क्षति ही पहुँचाई यन्त्र का लिखना तो दूर रहा ॥ १२४ ॥

उत्तराशामुखो भूत्वा यदा चक्रं समुद्धरेत् ।
उत्तराशा तदा सापि मूर्वाशैव न संशयः ॥ १२५ ॥

जब उत्तरदिशा में होकर यन्त्र लिखे उस समय वह उत्तर दिशा पूर्वदिशा हो जाती है इसमें संशय नहीं ॥ १२५ ॥

ईशकोणं तदेव स्यादाग्नेयञ्च न संशयः ।
पश्चिमाशामुखो मन्त्री यथाचक्रं समुद्धरेत् ॥ १२६ ॥
पश्चिमाशा तदा ज्ञेया पूर्वाशैव न संशयः ।
वायुकोणं तदाग्नेयमीशानं राक्षसं भवेत् ॥ १२७ ॥

आग्नेयकोण ईशान कोण हो जाता है इसमें संशय नहीं । जब मन्त्रज्ञ पश्चिम दिशा में मुख कर यन्त्र निर्माण करता है उस समय वह पश्चिम दिशा पूर्व दिशा हो जाती है इसमें सन्देह न करे । उस समय आग्नेयकोण वायव्यकोण हो जाता है और नैर्ऋत्यकोण ईशानकोण हो जाता है ॥ १२६-१२७ ॥

दक्षिणाभिमुखो मन्त्री यदा चक्रं समुद्धरेत् ।
पूर्वाशैव तदा सा दिक् रक्षःकोणन्तु वह्निकम् ॥ १२८ ॥

जब मन्त्री दक्षिणाभिमुख होकर यन्त्र लिखे उस समय वह भी पूर्वदिशा हो जाती है और नैर्ऋत्यकोण भी अग्निकोण हो जाता है ॥ १२८ ॥

पूर्व्वाशाभिमुखो भूत्वा यदा चक्रं समुद्धरेत् ।
पूर्व्वाशापि तदा ज्ञेया पूर्व्वाशैव न संशयः ॥ १२९ ॥
आग्नेयञ्च तथाग्नेयं ईशकोणञ्च ईशकम् ।
यदाशाभिमुखो मन्त्री पूजयेच्चण्डिकां शुभाम् ॥ १३० ॥
पूर्वाशैव सा विज्ञेया साधकेन महात्मना ।
देवीपश्चात् प्रतीची स्यात् प्राची तु चण्डिकापुरः ॥ १३१ ॥

जब पूर्वाभिमुख होकर मन्त्रज्ञ साधक यन्त्र लिखे; उस समय वह पूर्व दिशा पूर्वदिशा ही रहती है और आग्नेयकोण आग्नेय तथा ईशानकोण अपने ईशानकोण में ही रहता है । जिस दिशा में होकर मन्त्री कल्याणकारिणी चण्डिका का पूजन करता है । उस समय महात्मा साधक उसे पूर्व दिशा ही समझे । देवी के पीछे का भाग पश्चिम हो जाता है और चण्डिका के आगे का समस्त भाग पूर्व दिशा के रूप में होता है ॥ १२९-१३१ ॥

अन्येषाञ्चैव देवानां विधिश्चात्र प्रकथ्यते ।
पूज्यपूजकयोरन्तः पूर्व्वाशैव निगद्यते ॥ १३२ ॥

अन्य देवताओं के विषय में अब दिग्विचार की विधि कहता हूँ । पूज्य और पूजक के मध्य में पूर्व दिशा कही जाती है ॥ १३२ ॥

लिखित्वा पुरतो यन्त्रं स्थापयेदासनोपरि ।
सीसके कांश्यपात्रे वा रङ्गे वा साधकोत्तमः ॥ १३३ ॥

अपने सामने यन्त्र लिखकर उसे आसन पर स्थापित करे । सीसा पर, कांस्यपात्र में अथवा किसी रंग (वस्त्र) में स्थापित करे ॥ १३३ ॥

फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन ।
स्थापितं यदि लोभेन मोहेनाज्ञानतोऽपि वा ॥ १३४ ॥
कुलं वित्तमपत्यञ्च निर्मूलं याति सर्वथा ।
पुष्पं तत्र विनिक्षिप्य गन्धचन्दनसंयुतम् ॥ १३५ ॥

फलक पट (लकड़ी) अथवा भीत पर कदापि न रखे, यदि लोभवश मोहवश अथवा अज्ञान से वहाँ स्थापित कर दिया गया तो साधक का कुल वित्त सन्तान सर्वथा निर्मूल हो जाता है । इस प्रकार यन्त्र स्थापित कर गन्ध चन्दनयुक्त पुष्प उस पर अवश्य चढ़ा देना चाहिए ॥ १३५ ॥

अशून्यं स्थापयेच्चक्रं शून्ये विघ्नसमो भवेत् ।
स्वकल्पोक्तविधानेन देवीं ध्यात्वा सुसाधकः ॥ १३६ ॥
आत्माभेदेन सम्भाव्य पुष्पं दद्यात् स्वमूर्द्धनि ॥ १३७ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये तृतीयोल्लासः ॥३॥

श्रीचक्र को किसी भी प्रकार सर्वथा शून्य (बनाकर बिना पूजा के छोड़कर) नहीं रखना चाहिए । शून्य रखने से साधक को विघ्न होता है । साधक को अपने सम्प्रदायानुसार देवी का ध्यान कर अपनी आत्मा से उसे अभिजन समझकर यन्त्र पर चढ़ाये गये उस पुष्प को अपने मस्तक पर रखना चाहिये ॥ १३६-१३७ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के तृतीय उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥
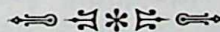
चतुर्थ उल्लासः

...❀...

मन्त्रविधानम्

अथ वक्ष्ये च मन्त्राणां विधानं यत्र यद्भवेत् ।

देवताभेदे वामदक्षिणभेदेन पूजाविधिः

बालां वा त्रिपुरां देवीं सव्यां वाप्यथ भैरवीम् ॥ १ ॥
कामेश्वरीञ्च कामाख्यां पूजयेच्च यथेच्छया ।
दाक्षिण्याद्वामभावाद्वा सर्वथा सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २ ॥

जहाँ जिस प्रकार का मन्त्र होना चाहिये उन मन्त्रों का विधान कहता हूँ। बाला त्रिपुरादेवी भैरवी कामेश्वरी कामाख्या इन्हें चाहे बायें चाहे दाहिने यथेच्छ पूजा करे। साधक दाहिने तथा बायें किसी प्रकार भी इनकी पूजा करने से सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ १-२ ॥

महामायां शारदाञ्च शैलपुत्रीं तथाम्बिकाम् ।
यथा तथा प्रकारेण वामदक्षिणतो यजेत् ॥ ३ ॥

महामाया, शारदा, शैलपुत्री और अम्बिका इनको भी जिस किसी भी प्रकार से बायें तथा दाहिने पूजा करे ॥ ३ ॥

श्मशानभैरवीं कालीं उग्रताराञ्च पञ्चमीम् ।
उच्छिष्टभैरवीञ्चैव तारां त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ४ ॥
उन्मुखीञ्चैव दुर्गाञ्च मर्द्दिनीं स्वप्नबोधिनीम् ।
एतास्तु वामभावेन पूज्या दक्षिणतां विना ॥ ५ ॥

श्मशानभैरवी, काली, उग्रतारा, पञ्चमी उच्छिष्टभैरवी, तारा, त्रिपुरसुन्दरी, उन्मुखी, दुर्गा, (महिष)मर्द्दिनी, स्वप्नबोधिनी इनका पूजन बाई ओर से करे। दक्षिण ओर से न करे ॥ ४-५ ॥

सिद्धिर्न जायते दक्षाल्लक्षजन्म यजेद् यदि ।
वामात् सर्वसमृद्धिः स्याद्देव्याः प्रियतरो भवेत् ॥ ६ ॥

इनकी दाहिनी ओर से पूजा करते रहने से सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं होती चाहे लाखों जन्म पर्यन्त पूजा क्यों न करे ? इनकी बाई ओर से पूजा करने पर साधक को सब प्रकार की समृद्धि प्राप्त होती है । ऐसा साधक देवी का अत्यन्त प्रियपात्र हो जाता है ॥ ६ ॥

दक्षिणेन लभेच्छापं मृते नरकमाप्नुयात् ।
ब्रह्मापि च भवेद्वामो विष्णुश्चैव सदाशिवः ॥ ७ ॥

दक्षिण भाग में इनकी पूजा करने से साधक को शाप का भागी होना पड़ता है और मरने पर नरक का भागी होना पड़ता है । इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव को कदापि बाईं ओर स्थापित न करे ॥ ७ ॥

विष्णोश्च वामिका मूर्त्तिर्नारसिंहान्वयो भवेत् ।
सा तु दक्षिणवामाभ्यां पूजनीया प्रयत्नतः ॥ ८ ॥

विष्णु की बाईं ओर स्थापित मूर्त्ति नृसिंह स्वरूपा हो जाती है । अतः वह बाईं अथवा दाहिनी दोनों ओर स्थापित कर प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

तथैव बालगोपालमूर्त्तिर्या परमात्मनः ।
मत्स्यमांसासवाभोगी लोलुपः स्त्रीषु सर्वदा ॥ ९ ॥

उसी प्रकार परमात्मा की बालगोपाल मूर्त्ति है वह मत्स्य, मांस, आसव का भोग करने वाली है और स्त्रियों में सदा लोलुप रहने वाली है ॥ ९ ॥

गणेशोऽपि च वेतालः कथितो वामनायकः ।
भैरवोऽपि भवेद्वामस्तथान्ये देवतादयः ॥ १० ॥

गणेश एवं वेताल वामनायक कहे जाते हैं, अतः भैरव तथा अन्य देवता वाम भाग में स्थापित करे ॥ १० ॥

एतास्तु वामभावेन पूजनीया विशेषतः ।
अन्याश्च चण्डिकादेव्या बालिकामूर्तयः स्मृताः ॥ ११ ॥

इन सभी देवताओं को वामभाग में स्थापित कर विशेष रूप से पूजन करना चाहिये । अन्य चण्डिकादि की मूर्त्ति बालिकामूर्त्ति कही जाती है । ११ ॥

लक्ष्म्याद्या वामिकामूर्त्ती रक्ता च दशभैरवी ।
वाग्भवी च सरस्वत्या बालिकामूर्तिरीरिता ॥ १२ ॥

लक्ष्मी आदि वामिका मूर्त्ति, रक्ता, दश भैरवी वाग्भवी एवं सरस्वती की मूर्त्ति बालिकामूर्त्ति कही जाती है ॥ १२ ॥

वामभावेन सिद्धिः स्याद्दाक्षिण्येन विना कदा ।
पूजकोऽपि भवेद्वामस्तथैव सततं गुरुः ॥ १३ ॥

इनकी वामभाव से पूजा करने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है । दक्षिणभाग में स्थापित करने से कब किस प्रकार किसी को सिद्धि प्राप्त हुई है ? इसी प्रकार पूजा करने वाला भी बाईं ओर रहे, गुरु भी बाईं ओर रहने चाहिये ॥ १३ ॥

यजेच्च मांसमत्स्येन मैथुनाद्यैर्विशेषतः ।
महाभैरवरूपेण तथा च रतिसङ्गमे ॥ १४ ॥

साधक रति सङ्गमकाल में भैरव का स्वरूप बनाकर (रहस्यात्मक) मांस, मछली तथा मैथुन से इनकी पूजा करे ॥ १४ ॥

नान्यथा जायते सिद्धिर्मन्त्राणाञ्च सुनिश्चियतम् ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चतत्त्वविनिर्णयम् ॥ १५ ॥

अन्यथा मन्त्रों की सिद्धि नहीं होती । यह सुनिश्चित है । अब पञ्चतत्त्व का निर्णय कह रहा हूँ ॥ १५ ॥

पञ्चतत्त्वविधानम्

अथ वक्ष्ये च पञ्चानां विधानं तन्त्रवर्त्मना ।
पञ्चामात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः ॥ १६ ॥
केवलैः पञ्चमैरेव सिद्धो भवति साधकः ।
केवलेनाद्ययोगेन साधको भैरवो भवेत् ॥ १७ ॥

अब तन्त्र मार्गानुसार पञ्चतत्त्व का विधान कह रहा हूँ । शाक्तों के लिये सुख और मोक्ष प्रदान करने के लिये पाँचवें (मैथुन) से बढ़कर और कोई तत्त्व नहीं है। साधक केवल पञ्चम तत्त्व (मैथुन) के प्रयोग से सिद्ध हो जाता है । केवल आद्य तत्त्व मद्य के प्रयोग से साधक भैरव हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

द्वितीयेन च तत्त्वेन पूजको ब्रह्मरूपभाक् ।
केवलेन तृतीयेन महाभैरवतां व्रजेत् ॥ १८ ॥

द्वितीय तत्त्व के प्रयोग से साधक ब्रह्मस्वरूप बन जाता है । केवल तृतीय मत्स्य तत्त्व के सेवन से महाभैरवता प्राप्त कर लेता है ॥ १८ ॥

चतुर्थेन तु तत्त्वेन भुवि पूजकनायकः ।
परेण परतां याति शिवतुल्यः स साधकः ॥ १९ ॥

चौथे तत्त्व मुद्रा के सेवन से साधक पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ पूजकों का नायक बन जाता है । (शिवशक्तिसामरस्य रूप) अन्य तत्त्वों के प्रयोग से वह साधक

शिवतुल्य पर स्वरूप बन जाता है ॥ १९ ॥

पञ्चमे न भवेद्भोगी सर्वसिद्धिपरायणः ।
यस्य भवेद्यदा नित्यं पञ्चतत्त्वस्य सम्भवः ॥ २० ॥
पञ्चतत्त्वे भवेद्वीरः शिववन्द्यः स साधकः ।

पाँचवें मैथुन तत्त्व के प्रयोग से साधक भोगी और सभी सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है । जिससे उसको निरन्तर पञ्च तत्त्व की प्राप्ति होती रहती है । पाँचों तत्त्व के सेवन से साधक वीर और शिव से भी वन्दनीय हो जाता है ॥ २० ॥

पञ्चतत्त्वविहीना पूजा निष्फला

पञ्चमेन विना देवीं पञ्चमीं पूजयेत्तु यः ॥ २१ ॥
स तु स्याड्डाकिनीभोग्यो नारकी ब्रह्मघातकः ।
अन्यमूर्तेस्तु दुर्गायाः पञ्चमेन विना सदा ॥ २२ ॥
निश्चितं नैव सिद्धिः स्याज्जपहोमाश्च तर्पणात् ।
तद्विहीनस्य या पूजा जपं वा तर्पणं पुनः ॥ २३ ॥
रौरवाय भवत्येव तस्य भ्रष्टस्य निश्चितम् ।
चण्डिकां पूजयेद्यस्तु विना पञ्चमकारकैः ॥ २४ ॥
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो धनम् ।
मकारपञ्चकं चैव देवताप्रीतिकारकम् ॥ २५ ॥

पञ्चम तत्त्व के बिना जो पञ्चमी देवी का पूजन करता है, वह डाकिनियों का भोजन एवं नारकी और ब्रह्मघ्न हो जाता है । अन्य मूर्त्तियों की अपेक्षा दुर्गा की पञ्चम तत्त्व के बिना जप, होम और तर्पण करने पर भी निश्चित रूप से सिद्धि नहीं प्राप्त होती । पञ्चम तत्त्व से रहित जप, पूजा और तर्पण उस भ्रष्ट साधक के रौरव का कारण बन जाते हैं । जो पञ्चम तत्त्व के बिना चण्डिका की पूजा करता है उसके चारो आयु, विद्या, यश और धन नष्ट हो जाते हैं । अतः पाँचों मकार देवताओं की प्रीति करने वाले होते हैं ॥ २१-२५ ॥

पञ्चमेन तु वीरेन्द्रः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ॥ २६ ॥
मकारपञ्चकं देवि देवताप्रीतिदायकम् ।
विना पञ्चोपचारं हि देवीपूजां करोति यः ॥ २७ ॥
योगिनीनां भवेद्भक्ष्यः पापङ्चैव पदे पदे ।

पञ्चम तत्त्व के सेवन से वीरेन्द्र साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है । मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—ये पञ्च मकार, हे देवि! देवताओं को प्रसन्न करने

वाले हैं । बिना पञ्चोपचार के जो देवी की पूजा करता है वह योगिनियों का भक्ष्य हो जाता है और उसे पद-पद पर पाप लगता है अत: बिना मद्य और मांस के देवी की सेवा न करे ॥ २६-२८ ॥

विना मांसेन मद्येन ना से नं श्च वि ली व पुम् ॥ २८ ॥
न मन्त्रसिद्धिमाप्नोति तस्माद् यत्नपरो भवेत् ।
प्रमादाद्यदि लुप्येत देवताशापमाप्नुयात् ॥ २९ ॥

यत: मद्य और मांस के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती । इसलिये इसके लिये इनसे पूजा करने का प्रयत्न करना चाहिये । प्रमादवश यह पूजा यदि नही होती तो देवता का शाप प्राप्त होता है ॥ २८-२९ ॥

यथाविधि यजेद्देवीं मकारपञ्चकैः सदा ।
तृप्त्यर्थं सर्वदेवानां तत्त्वज्ञानोद्भवाय च ॥ ३० ॥

साधक पञ्चमकारों से विधानपूर्वक देवी की पूजा करे । जिससे देवताओं की तृप्ति हो और तत्त्वज्ञान भी हो ॥ ३० ॥

मद्यादिलक्षणविधानम्

तेषाञ्च लक्षणं वक्ष्ये शोधनञ्च क्रमेण तु ।
मद्यस्य लक्षणं वक्ष्ये साधकानां हिताय च ॥ ३१ ॥

अब मद्यादि का लक्षण और शोधन क्रमश: दोनों कहता हूँ । सर्वप्रथम मद्य का लक्षण साधकों के हित के लिये कहता हूँ ॥ ३१ ॥

सत्ये क्रमाच्चतुर्वर्णैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः ।
त्रेतायां पूजिता देवी घृतेन सर्वजातिभिः ॥ ३२ ॥
मधुभिः सर्ववर्णैश्च पूजिता द्वापरे युगे ।
पूजनीया कलौ देवी केवलैरासवैश्च तैः ॥ ३३ ॥

सतयुग में चारो वर्ण क्रमश: दूध, घी, मधु और पिष्टक (दही) से, त्रेता में चारो वर्ण केवल घृत से, द्वापर युग में समस्त वर्ण मधु से, किन्तु कलियुग में चारों वर्णों को केवल आसव से उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२-३३ ॥

चतुर्युगेषु सम्पूज्या तुरीयैरासवैः सदा ।
तत्तु नानाविधं द्रव्यं कथ्यते तन्त्रवर्त्मना ॥ ३४ ॥

अथवा चारों युगों में चौथे आसव मात्र से चारो वर्णों को पूजा करनी चाहिये यह मद्य तन्त्र के मार्ग से अनेक द्रव्यों के रूप में कहा गया है ॥ ३४ ॥

वार्क्षं गौडं तथा पौष्पं क्षौद्रं फलसमुद्भवम् ।

सर्वोत्कृष्टं तु विज्ञेयं द्रव्यमन्नेन सम्भवम् ॥ ३५ ॥

वृक्ष से उत्पन्न, गुड़ का पुष्प का, क्षीद्र (मुनक्का) एवं फलों का मद्य बताया गया है । किन्तु अन्न रूप द्रव्य का मद्य सर्वोत्तम कहा गया है ॥ ३५ ॥

(अथवा) **पत्रपुष्पाङ्कुरफलमूलवल्कलधान्यजम् ।**
रसं वृक्षलताजातमैक्षवं दशविधं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

अथवा वृक्षपत्र पुष्प, अङ्कुर फल मूल वल्कल तथा धान्य से मद्य बनता है । इसी प्रकार लतासमूहों तथा ईक्षु (ऊख) के रस से भी दश प्रकार का मद्य बनाया जाता है ॥ ३६ ॥

पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम् ।
मधूत्थं सीधु माध्वीकं मैरेयं नारिकेलजम् ॥ ३७ ॥
मद्यान्येकादशैतानि भुक्तिमुक्तिकराणि च ।
द्वादशं तु सुरामद्यं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ ३८ ॥

पनस (कटहल) से, द्राक्षा (मुनक्का) से, महुआ से, खजूर से, तालवृक्ष से, ऊख से भी मद्य बनाया जाता है । मधु से उत्पन्न मद्य, सीधु माध्वीक, नारिकेलज और मैरेय इस प्रकार ग्यारह प्रकार के मद्य कहे गये हैं जो भक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करते हैं । किन्तु बारहवाँ सुरामद्य उत्तमोत्तम है ॥ ३७-३८ ॥

मधुपुष्परसोद्भूतमासवं तण्डुलोद्भवम् ।
सर्वसिद्धिकरी पैष्टी गौडी भोगप्रदायिणी ॥ ३९ ॥

महुवे के फूल का बना हुआ मद्य तथा चावल का बना हुआ मद्य सभी सिद्धियाँ प्रदान करता है । पैष्टी और गौडी मद्य भोगप्रदान करते हैं ॥ ३९ ॥

माध्वी मुक्तिकरी प्रोक्ता खार्जूरी रिपुनाशिनी ।
नारिकेलोद्भवा श्रीदा ऐक्षवं सुखवर्द्धनम् ॥ ४० ॥

माध्वी मद्य मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है । खार्जूरी मद्य शत्रु का नाशक है और नारिकेल का मद्य भी प्रदान करता है, ऐक्षव (गन्ने का) मद्य सुख बढ़ाता है ॥ ४० ॥

अन्यत्रापि—

गौडी पिष्टकजाततालतरुजा द्राक्षी च माध्वी तथा
खार्जूरी नवनारिकेल तरुजा गौडी च भोगप्रदा ।
पैष्टी सिद्धिकरी विपक्षदलनी ताली च द्राक्षी शुभा
अन्या या विहिता सदा शुभकरी मोक्षप्रदाः सप्तिकाः॥ ४१ ॥

अन्यत्र भी कहा गया है—गौड़ी, पैष्टी, तालवृक्षोद्भवा, द्राक्षा, माध्वी, खर्जूरी, नवीन नारिकेल से उत्पन्न और गौडी मद्य भोग प्रदान करते हैं; पैष्टी मद्य सिद्धि प्रदान करता है । ताड़ का मद्य विपक्ष का नाशक है और द्राक्षी (अङ्गूर) कल्याण कारक है । अन्य विहित सात प्रकार के मद्य शुभ तो करते ही हैं; मोक्ष भी प्रदान करते हैं ॥ ४१ ॥

अपक्वैश्च सुपक्वैश्च द्रव्यैरमृतसन्निभैः ।
तर्पणं परमेशान्याः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार अमृत के समान पके हुये अथवा बिना पके हुये द्रव्यों से बने उपर्युक्त मद्यों द्वारा परमेशानी को किया गया तर्पण समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है और वाञ्छित फल प्रदान करता है ॥ ४२ ॥

पञ्चशुद्धिविधानम्

आत्मस्थानमनुद्रव्यदेहशुद्धिञ्च पञ्चमीम् ।
यावन्न कुरुते मन्त्री तावद्देवार्चनं कुतः ॥ ४३ ॥

आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, मन्त्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि और पाँचवीं देह शुद्धि जब तक साधक न कर लेवे तब तक उसका पूजा में अधिकार नहीं होता ॥ ४३ ॥

असंस्कृतं पिबेद् द्रव्यं बलात्कारेण मैथुनम् ।
स्वप्रियेण हतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ४४ ॥
संशोधनमनाचर्य स्त्रीषु मद्येषु साधकः ।
कृतेऽपि सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति चण्डिका ॥ ४५ ॥

जो साधक स्त्री के विषय में बलात्कार से मैथुन करता है तथा मद्यों के विषय में संशोधन बिना किये ही उनका प्रयोग करता है उसके प्रयोग से साधक को हानि उठानी पड़ती है । क्योंकि ऐसा करने से चण्डिका कुपित हो जाती हैं और वह अपने प्रिय के साथ रौरव नरक में जाता है ॥ ४५ ॥

सुराशोधनकथनम्

तस्मात् संशोधनं वक्ष्ये यथा तन्त्रानुसारतः ।
वामभागे च षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् ॥ ४६ ॥

इस कारण मैं तन्त्रशास्त्र की विधि के अनुसार उनके संशोधन का प्रकार कह रहा हूँ । वामभाग में षट्कोण का निर्माण करना चाहिए और उसके मध्य में ब्रह्मरन्ध्र निर्माण करना चाहिए ॥ ४६ ॥

तद्बाह्ये मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं समालिखेत् ।

सामान्यार्घ्यजलेनैव प्रोक्षयेन्मण्डलं ततः ॥ ४७ ॥

उसके बाद गोला खींच कर चतुरस्र लिखे । तदनन्तर सामान्य अर्घ्य जल से उस मण्डल पर जल छिड़के ॥ ४७ ॥

अभ्यर्च्याधारशक्तिञ्च कुम्भस्याधारमास्तरेत् ।
तत्र सम्पूजयेद् वह्निमण्डलं तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥

वहाँ आधारशक्ति का पूजन कर कलश के लिये आधार स्थान आस्तृत करे । तदनन्तर वहाँ वह्निमण्डल का पूजन करे ॥ ४८ ॥

कुम्भनिर्माणविधिः

तत्र संस्थापयेत् कुम्भं सौवर्णं राजतं तथा ।
ताम्रं भूमिमयंवापि यद्वा लौहविवर्जितम् ॥ ४९ ॥

उस आधार पर सुवर्ण, अथवा रजत, अथवा ताँबा, अथवा मिट्टी का, अथवा धातुओं में लोहा छोड़कर जिस किसी भी द्रव्य से बने हुये कलश को स्थापित करना चाहिए ॥ ४९ ॥

सौव्वर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदं भवेत् ।
कांस्यं शान्तिकरञ्चैव मृण्मयं पुष्टिदं तथा ॥ ५० ॥

सुवर्ण निर्मित कलश भोग प्रदान करता है, रजत का कलश मोक्ष, कांसे का कलश शान्तिकारक तथा मिट्टी का कलश पुष्टि प्रदान करने वाला है ॥ ५० ॥

पञ्चाशदङ्गुलायाम उत्सेधः षोडशाङ्गुलः ।
कलसानां प्रमाणं तु मुखमष्टाङ्गुलं भवेत् ॥ ५१ ॥

उस कलश की गोलाई पचास अङ्गुल, ऊँचाई सोलह अङ्गुल होनी चाहिये । यह कलश का प्रमाण कहा गया । किन्तु उस कलश का मुख आठ अङ्गुल का होना चाहिये ॥ ५१ ॥

एषामेकतमं कुम्भं अस्त्रेण क्षालितं ततः ।
आधारे स्थापयित्वा तु पूजयेत् सूर्यमण्डलम् ॥ ५२ ॥

उपर्युक्त कहे हुये कलशों में किसी एक कलश को लेकर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से प्रक्षालन करना चाहिये । पुनः उसे आधारस्थान पर स्थापित कर सूर्यमण्डल की पूजा करे ॥ ५२ ॥

ततश्च कारणैर्दिव्यैः पूरयेन्मूलमुच्चरन् ।
भूषयेद्रक्तपुष्पेण रक्तमाल्येन साधकः ॥ ५३ ॥

रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य लेपयेद्रक्तचन्दनैः ।
सोममण्डलमभ्यर्च्य अमृतं परिभाव्य च ॥ ५४ ॥

फिर मूल मन्त्र का उच्चारण कर, दिव्य, सर्वकारणभूत जल (मद्य) से उसे पूर्ण करे । रक्त पुष्प और रक्तमाला से विभूषित करे । फिर लाल कपड़े से उसे वेष्टित करे और रक्तचन्दन का लेप करे । फिर सोम मण्डल की पूजा कर वहाँ से अमृतत्त्व प्राप्ति का ध्यान करे ॥ ५३-५४ ॥

चतुरस्त्रादिका पञ्चमुद्राः

विभावयेत्ततो द्रव्यमिष्टदेवस्वरूपकम् ।
प्रणमेद् भक्तिभावेन मुद्राभिः पञ्चसञ्ज्ञकैः ॥ ५५ ॥

इसके बाद द्रव्य (मद्य) को इष्टदेव के स्वरूप में ध्यान करे और भक्तिभाव से पञ्चसञ्ज्ञक मुद्राओं से उसे प्रणाम करे ॥ ५५ ॥

अधोमुखौ समौ कृत्वा भूमौ पाणितलद्वयम् ।
सकलाङ्गुलिभिः सम्यङ्मुद्रेयं चतुरस्त्रिका ॥ ५६ ॥

१. चतुरस्त्रिका मुद्रा—सम्पूर्ण अङ्गुलियों के साथ दोनों हाथ के तलवों को बराबर कर अधोमुख स्थापित करे तो यह चतुरस्त्रिका मुद्रा कही जाती है । ५६ ॥

अधोमुखं मुष्टियुग्मं संवृत्तं परिकीर्त्तितम् ।
अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ पुटाकारेण कारयेत् ॥ ५७ ॥
सम्पुटाख्यमहामुद्रा योजिता नतिकर्मणि ।
एतस्या एव मुद्रायाः कनिष्ठामूलदेशके ॥ ५८ ॥
अङ्गुष्ठौ च क्षिपेत्तत्र सम्पुटाञ्जलिरीरिता ।
मध्यमे सरले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते ॥ ५९ ॥
अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ।
सर्वा एकत्र संयोज्य अङ्गुष्ठपरिपीडिता ॥ ६० ॥
एषा तु परमा मुद्रा योनिमुद्रा प्रकीर्तिता ।

२. संवृत्त मुद्रा—दोनों हाथ की मुट्ठियों को अधोमुख स्थापित करे तो संवृत्त मुद्रा हो जाती है ।

३. सम्पुट मुद्रा—दोनों हाथों को परस्पर सम्मुख कर पुट के आकार में संयुक्त कर बनावे तो वह सम्पुट नामक मुद्रा बन जाती है । नमस्कार कर्म में इसका प्रयोग किया जाता है ।

४. सम्पुटाञ्जलि मुद्रा—इसी मुद्रा को बनाकर दोनों कनिष्ठा अङ्गुली के

मूल प्रदेश में दोनों अङ्गूठो को लगा देवे तो वह सम्पुटाञ्जलि मुद्रा कही जाती है ।

५. परमा मुद्रा—दोनों मध्यमा को सीधे रखकर उस पर तर्जनी अङ्गुली लगा देवे । इसी प्रकार दोनों अनामिका के मध्य में दोनों कनिष्ठा को स्थापित कर अङ्गुष्ठ से परिपीडित कर सब को एक में मिला देवे । यह परमामुद्रा कही जाती है । योनिमुद्रा पहले कह आये हैं ॥ ५७-६१ ॥

पञ्चमुद्रामन्त्रकथनम्

ह्रां नमश्चतुरस्त्रं स्यात् ह्रीं नमः संवृतस्तथा ॥ ६१ ॥
क्लां नमः सम्पुटं ज्ञेयं ब्लूं नमः सम्पुटाञ्जलिम् ।
सः नमो योनिमुद्रा स्यात् पञ्चमुद्राः प्रकीर्तिताः ॥ ६२ ॥

चतुरस्त्र मुद्रा में 'ह्रां नमः', संवृत्त मुद्रा में 'ह्रीं नमः, सम्पुट मुद्रा में क्लीं नमः, सम्पुटाञ्जलि में 'ब्लू नमः' तथा योनि मुद्रा में सः नमः पढ़े । इस प्रकार मन्त्रों के सहित पाँचों मुद्रायें कही गईं ॥ ६१-६२ ॥

भक्त्या विलोकयेद् द्रव्यं मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
प्रणवं वरुणं सेन्दु वामदेवञ्च ङेयुतम् ॥ ६३ ॥
वौषडन्तं समुच्चार्य पूजयेत् यन्त्रमुत्तमम् ।

तदनन्तर साधक मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये भक्तिपूर्वक मकारादि पञ्चद्रव्यों को देखे । प्रथम प्रणव (ॐ) विन्दु सहित वरुण (व) चतुर्थ्यन्त वामदेव (वामदेवाय) और अन्त में 'वौषट्' का उच्चारण करे । 'ॐ वं वामदेवाय वौषट् । इस मन्त्र से श्रीचक्र यन्त्र का पूजन करे ॥ ६३-६४ ॥

विषं कूर्चं ततः पशुपतये तदनन्तरम् ॥ ६४ ॥
अस्त्राय वर्मबीजञ्च फट्कारान्तः परो मनुः ।
अनेनादौ प्रपूज्यैव पथिकस्य बलिं हरेत् ॥ ६५ ॥

विषं (वं), कूर्च (हूँ), तदनन्तर 'पशुपतये', तदनन्तर 'अस्त्राय', फिर वर्मबीज (हूँ), तदनन्तर 'फट्' यह मन्त्र है । यथा—ॐ वं हूँ पशुपतये अस्त्राय हूँ फट्—यह मन्त्र है । इस मन्त्र से पूजा कर पथिक को बलि प्रदान करे ॥ ६४-६५ ॥

त्रिकोणवृत्तभूगेहं लिखेत् कुम्भसमीपतः ।
सिन्दूरकुङ्कुमाभ्याञ्च सर्वपथिकदेवताः ॥ ६६ ॥

कुम्भ के समीप पहले त्रिकोण, उसके बाद वृत्त, उसके बाद भूगेह लिखकर, सिन्दूर और कुङ्कुम से सभी पथिक देवताओं की पूजा कर, तदनन्तर उन्हें बलि प्रदान करे ॥ ६६ ॥

तत्र सम्पूजयित्वा च बलिं दद्यात्ततः परम् ।
सहेतुं सामिषान्नञ्च निधाय मनुमुद्धरेत् ॥ ६७ ॥
मायां लक्ष्मीं समुद्धृत्य सर्वपथिकदेवता ।
भ्यो हृन्मनुं समुच्चार्य अनेनोत्सृज्य साधकः ॥ ६८ ॥
उद्धृत्य वामहस्तेन भ्रामयेत् कलशोपरि ।
ततः क्षिप्त्वा बहिःस्थाने मूलमन्त्रं समुच्चरन् ॥ ६९ ॥

सहेतु 'मद्ययुक्त' सामिष अन्न स्थापित कर माया (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं), फिर सर्वपथिक देवताम्यो, फिर हृन्मन्त्र नमः उच्चारण करे । यथा—'ह्रीं श्रीं सर्वपथिक-देवताभ्यो नमः'—साधक इस मन्त्र को पढ़कर बलि देवे । फिर बायें हाथ से उस अन्न को कलश पर घुमावे । उसे किसी बाहरी स्थान में मूलमन्त्र का उच्चारण कर फेंक देवे ॥ ६७-६९ ॥

विकारहारिणीमन्त्रोद्धारः

धूपयित्वा ततो द्रव्यं विकारान्नाशयेत्ततः ।
मायां लक्ष्मीं पशुद्वन्द्वं सेन्दु दीर्घद्वयान्वितम् ॥ ७० ॥
छुरिका मेति शोभिनि विकारानस्य चान्तरम् ।
द्रव्यस्य हरयुग्मञ्च द्विठान्तं प्रजपेन्मनुम् ॥ ७१ ॥

फिर धूप देकर द्रव्य के विकारों को नष्ट कर देवे । विकारों के नाश करने का मन्त्र इस प्रकार है—माया (ह्रीं), लक्ष्मीं (श्रीं), फिर दो दीर्घ से युक्त दो बार पशु शब्द, फिर 'छुरिका मे शोभिनि', फिर विकारानस्य, फिर द्रवस्य, फिर दो बार हर शब्द, फिर द्विठान्त (स्वाहा) इस मन्त्र का जप करे । यथा—'ॐ ह्रीं श्रीं आं ईं पशु पशु छुरिका मे शोभिनि विकारानस्य द्रवस्य हर हर स्वाहा'—यह मन्त्र का स्वरूप है ॥ ७०-७१ ॥

विकारहारिणीं जप्त्वा चतुर्धा शोधनञ्चरेत् ।
अस्त्रेण ताडनं कुर्याद्वर्मणाभ्युक्षणं ततः ॥ ७२ ॥
मूलेन वीक्षणं कृत्वा प्रोक्षयेद्धृदयेन तु ।
मूलेन गन्धमादाय बहन्नासापुटे त्रिधा ॥ ७३ ॥
द्रव्यमध्ये लिखेद्योनिं तन्मध्ये च हसौर्लिखेत् ।
हसौः सहौः नमोनतेन पूजयेत् कुम्भमध्यके ॥ ७४ ॥

विकारहारिणी का जपकर चार प्रकार से शोधन करे । 'अस्त्रमन्त्र (हुंफट्) से ताडन कर, वर्म मन्त्र 'हुं' से अभ्युक्षण करे । मूल मन्त्र से देखे । 'नमः' मन्त्र से पुनः प्रोक्षण करे । मूल मन्त्र से द्रव्य का गन्ध ग्रहण कर, तीन बार उसे नासा में

लगावे फिर द्रव्य के मध्य में योनि (त्रिकोण) लिखे । उसके मध्य में 'ह्सौ' ह सौ सहौ' इसके अन्त में नमः मन्त्र से कुम्भ के मध्य में पूजा करे ॥ ७२-७४ ॥

आनन्देश्वरगायत्रीविधानम्

वाङ्माया कमला प्रोक्त्वा आनन्देश्वराय विद्महे ।
सुधादेव्यै धीमहीति तन्नोऽर्धनारीश्वरेति च ॥ ७५ ॥
प्रचोदयादिति जपेद् गायत्रीं दशधा सुधीः ।

आनन्देश्वर गायत्री मन्त्र—फिर 'ॐ वाङ् (ऐं), माया (ह्रीं), कमला (श्रीं) का उच्चारण कर 'आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै च धीमहि । तन्नो अर्धनारीश्वरः प्रचोदयात्' इस अर्धनारीश्वर गायत्री मन्त्र का सुधी साधक दश बार जप करे ॥ ७२-७६ ॥

ब्रह्मशापविमोचनमन्त्रोद्धारः

मायावह्नियुतं कामं रतिबिन्दुसमन्वितम् ॥ ७६ ॥
परमस्वामिनि पदं परमाकाश शून्य च ।
वाहिनि चन्द्रतः प्रान्ते सूर्याग्निभक्षिणीत्यपि ॥ ७७ ॥
पात्रं विश पदान्ते तु विश स्वाहा ततः परम् ।
त्रिधा च प्रजपेन्मन्त्रं ब्रह्मशापं विमोचयेत् ॥ ७८ ॥

ब्रह्मशापविमोचन मन्त्र—फिर माया (ह्रीं), वह्नि (र), इससे युक्त काम (क्लीं) रति विन्दु समन्वित परम (स्वामिनि) पद, फिर परमाकाश शून्य वाहिनि चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि पात्रं विश' इस पद के अन्त में, पुनः विश, फिर स्वाहा मन्त्र का जप तीन बार कर, फिर ब्रह्मशापविमोचन करे । उक्त मन्त्र का स्वरूप—'ॐ ह्रीं रं क्लीं रतिविन्दुसमन्वित परमस्वामिनि परमाकाशशून्यवाहिनि चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा' ॥ ७६-७८ ॥

वेदादि वारुणं बीजं षड्दीर्घस्वरभेदितम् ।
ब्रह्मशापपदस्यान्ते विमोचिताञ्च ङेयुताम् ॥ ७९ ॥
सुधादेव्यै नमोऽन्तञ्च दशधा प्रजपेन्मनुम् ।
मायां लक्ष्मीं क(म)दं सेन्दुं षड्दीर्घ स्वरवह्निमत् ॥ ८० ॥

वेदादि (ॐ), वारुणबीज (वं), षड्दीर्घ समन्वित आं ईं ऊं ऐं औं अः फिर ब्रह्मशाप पद के अन्त में, ङे से युक्त विमोचिता (विमोचितायै), सुधा देव्यै नमः इस मन्त्र का दश बार जप करे । मन्त्र का स्वरूप—ॐ आं ईं ऊँ ऐं औं अः वं फिर ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः ॥ ७९-८० ॥

कृष्णशापविमोचनमन्त्रोद्धारः

सुधाकृष्णस्वरूपान्ते शापं मोचय तत् परम् ।

अमृतं स्रावयद्वन्द्वं द्विठान्तं मनुमुत्तमम् ॥ ८१ ॥
दशधा परिसञ्जप्य कृष्णशापविमुक्तये ।

कृष्णशापविमोचन मन्त्र—माया (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं), काम (क्लीं), फिर वह्निमत् (रं) से युक्त षड्दीर्घ स्वर (आं ईं ऊँ ऐं औं अः) फिर सुधाकृष्णस्वरूप, फिर शापं मोचय, फिर 'अमृतं', फिर दो बार 'स्रावय', फिर दो ठान्त (स्वाहा), कृष्णशाप से विमुक्ति के लिये विज्ञ साधक इस मन्त्र का दश बार जप करे । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ह्रीं श्रीं क्लीं रं आं ईं ऊं ऐं औं अः अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा' ॥ ८१ -८२ ॥

शुक्रशापविमोचनमन्त्रोद्धारः

विषं विन्दुयुतं वान्तं दीर्घषट्कसमन्वितम् ॥ ८२ ॥
शुक्रशापपदं प्रोच्य विमोचितां तु ङेयुताम् ।
सुधादेव्यै हृदन्तञ्च दशधा सञ्जपेन्मनुम् ॥ ८३ ॥

शुक्रशापविमोचन मन्त्र—विष (व), जो विन्दुयुक्त हो (वं), वान्त (लं), फिर षड्दीर्घ समन्वित, फिर शुक्रशापपदं कहकर, ङे से युक्त विमोचित्त पद (विमोचितायै), फिर सुधादेव्यै, अन्त में हृत्पद नमः । इस मन्त्र का दश बार जप करे । 'वं लं आं ईं ऊं ऐं औं अः शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः'—यह मन्त्र का स्वरूप है ॥ ८२-८३ ॥

अथवान्यप्रकारेण शुक्रशापं विमोचयेत् ।
मायां कामेश्वरीं वाचं अमृते अमृतोद्भवे ॥ ८४ ॥
अमृतवर्षिणि प्रोक्त्वा कामबीजं ततोऽमृतम् ।
स्रावयद्वितयं शक्तिबीजं भार्गवमुद्धरेत् ॥ ८५ ॥
शापञ्च मोचय प्रोक्त्वा ज्ञानं देहि ततो वदेत् ।
सिद्धिसामर्थ्यमाभाष्य दहयुग्मं महापदं ॥ ८६ ॥
खेचरीपदतो मुद्रां तथा प्रकटयद्वयम् ।
अस्त्राय फट् द्विठान्तञ्च उद्धृत्य दशधा जपेत् ॥ ८७ ॥

अथवा एक अन्य प्रकार से शुक्रशापविमोचन करे । माया (ह्रीं), कामेश्वरी (क्लीं ह्रीं) वाच (ऐं), अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि कहकर, फिर कामबीज (क्लीं) फिर अमृत, फिर दो बार स्रावय, फिर शक्ति बीज (ह्रीं), 'भार्गव शापं मोचय' कहकर 'ज्ञानं देहि' कहे । फिर सिद्धिसामर्थ्य कहकर दो बार 'दह' कहे, फिर महाखेचरी मुद्रां कहकर, दो बार प्रकटय कहे, फिर अस्त्राय फट्, तदनन्तर दो ठान्त (स्वाहा) कहे । इस प्रकार मन्त्रोद्धार कर उसका दश बार जप करे ।

मन्त्र का स्वरूप—ह्रीं क्लीं ह्रीं ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि क्लीं अमृतं स्रावय स्रावय ह्रीं भार्गव शापं मोचय ज्ञानं देहि सिद्धिसामर्थ्यं दह दह महाखेचरी मुद्रां प्रकटय प्रकटय अस्त्राय फट् स्वाहा ॥ ८४-८७ ॥

अथवान्यत् प्रवक्ष्यामि शापत्रयविमोचनम् ।
सुराणाममृतं पूर्वं बलदेवेन धीमता ॥ ८८ ॥
समानीता प्रयत्नेन पानार्थं वारुणी सुरा ।
दत्तात्रयेण मुनिना शुक्रेण च महात्मना ॥ ८९ ॥
धीमता बलभद्रेण पुरा पीतोत्थितार्णवात् ।
वारत्रयं तु सञ्जप्य पठेदन्यतमं मनुम् ॥ ९० ॥

अब इसके बाद तीनों शापों का विमोचन करने के लिये अन्य मन्त्र कहता हूँ। 'सुराणाममृतं पूर्वं बलदेवेन धीमता.............पीतोत्थितार्णवात्' पर्यन्त श्लोक मन्त्र तीन बार जप करे । इस प्रकार शाप विमोचन के लिये दो श्लोक मन्त्रों में कोई एक मन्त्र पढ़े ॥ ८८-९० ॥

शिवशक्तियुतां वाणीं वरुणं क्षितिसंयुतम् ।
षड्दीर्घस्वरसम्भिन्नं नादविन्दुविभूषितम् ॥ ९१ ॥
अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणीति च ।
सुराशुक्रशापं प्रोच्य मोचयद्वितयं ततः ॥ ९२ ॥
अमृतं स्रावयद्वन्द्वं स्वाहा शापहरो मनुः ।
दशधा परिसञ्जप्य शापत्रयं विमोचयेत् ॥ ९३ ॥

अथवा शिव (हकार), शक्ति ह्रीं, वाणी (ऐं), क्षिति (ल) से संयुक्त वरुण (व), इसे षट् दीर्घ जो नाद विन्दु से विभूषित हो उसके बाद 'अमृते अमृतोद्भवे' 'अमृतवर्षिणि' इसके बाद 'सुराशुक्रशापं' पढ़कर दो बार मोचय शब्द पढ़े । फिर 'अमृतं', इसके बाद स्रावय दो बार, तदनन्तर 'स्वाहा' कहे । शाप को दूर करने वाले इस मन्त्र को दश बार पढ़कर तीनों शापों से सुरा को मुक्त करे । इस प्रकार 'हं ह्रीं ऐं लं वं आं ईं ऊं ऐं औं अः सुराशुक्रशापं मोचय मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा'—यह मन्त्र का स्वरूप है ॥ ९१-९३ ॥

त्रिशापमोचनीं जप्त्वा प्रकाशयुक्तां ततो जपेत् ।
मायां लक्ष्मीं ततो वाचं अमृते अमृतोद्भवे ॥ ९४ ॥
अमृतवर्षिणि प्रोच्य महाप्रकाशयुक्तेऽपि च ।
द्विठान्तञ्च समुच्चार्य उच्चरेत् कुब्जिकान्ततः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार त्रिशापमोचनी जप कर तदनन्तर प्रकाशयुक्ता मन्त्र पढ़े । माया

(ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं), फिर वाच (ऐं) फिर 'अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि' पढ़कर फिर 'महाप्रकाशयुक्ते' पढ़कर द्विठान्त (स्वाहा) पढ़े । उसके बाद कुब्जिका मन्त्र पढ़े । प्रकाशयुक्ता मन्त्र का स्वरूप—ॐ ह्रीं श्रीं ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि महाप्रकाशयुक्ते स्वाहा ॥ ९४-९५ ॥

कुब्जिकामन्त्रोद्धारः

प्रेतबीजं समुच्चार्य हसक्लीं हसरीं तथा ।
हसखफ्रेञ्च हसरीं भगवति ततो वदेत् ॥ ९६ ॥
अनुग्रहो हसप्रान्ते कुब्जिकेऽपि ततः परम् ।
सहखफ्रें युगं प्रोच्य सनोरेव ततो वदेत् ॥ ९७ ॥
घोरखप्राञ्च खसप्रीञ्च किलद्वयसमन्वितम् ।
विच्चोऽपि हसखान्त्रञ्च हसखब्लेञ्च हसरीं ॥ ९८ ॥
शिवशक्तिद्वयान्ते च मायां हस्त्रें ततो वदेत् ।
अनेन मनुना मन्त्री अमृतं परिचिन्तयेत् ।
तिरस्कारिणीं ततो ध्यायेत् पशुपाश विनाशिनीम्॥ ९९ ॥

कुब्जिका मन्त्र—प्रेत बीज (हं) उच्चारण कर 'हसक्लीं हसरीं हसखफ्रें हसरीं भगवतिं अनुग्रहो हसप्रान्ते कुब्जिके सहखफ्रें' इसे दो बार पढ़कर 'सन्नोरेव' तदनन्तर 'घोरे खप्राञ्च खसप्रीञ्च' फिर दो बार 'किल' फिर 'विच्चे हसखात्र हसखब्लें हसरीं', फिर अन्त में शिव (हं), शक्ति (ह्रीं), फिर माया (ह्रीं), फिर हस्त्रें कहे । इस मन्त्र से मन्त्रज्ञ अमृत का ध्यान करे । इसके बाद पशुपाश का विनाश करने वाली तिरस्कारिणी का इस प्रकार ध्यान करे ॥ ९६-९९ ॥

तिरस्करिणीविद्याध्यानम्

नीलं हयं समधिरुह्य पुरः प्रयान्तीं
नीलांशुकाभरणमाल्यविलेपनाढ्याम् ।
निद्रापुटेन भुवनानि तिरोदधानां
खड्गायुधा भगवती परिपातु भक्तान् ॥ १०० ॥

तिरस्करिणी विद्या का ध्यान—जो नील वर्ण वाले घोड़े पर सवार होकर आगे-आगे जा रही है । नील वस्त्र, नीलामभरण नील माल्य और नीलवर्ण के विलेपन से विभूषित है । जिसने निद्रापुट से सारे संसार को छिपा रखा है । ऐसी खड्ग आयुध वाली भगवती संसार का पालन करे ॥ १०० ॥

एवं ध्यात्वा जपेद्विद्याद्वयञ्च साधकोत्तम ।
मायां लक्ष्मीं समुद्धृत्य नमो भगवतीति च ॥ १०१ ॥

माहेश्वरि पदस्यान्ते सर्वपशुजनोद्धरेत् ।
मनश्चक्षुस्तिरस्करिणीं कुरुद्वन्द्वञ्च ठद्वयम् ॥ १०२ ॥

इस प्रकार भगवती तिरस्करिणी का ध्यान कर उत्तम साधक दो विद्याओं का जप करे । माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं), फिर 'नमो भगवति माहेश्वरि', फिर इस पद के अन्त में 'सर्वपशुजनमनश्चक्षुस्तिरकरिणीं कुरु कुरु स्वाहा' ॥ १०१-१०२ ॥

तिरस्करिणीविद्या निरूपणम्

अन्य तिरस्करिणीं वक्ष्ये मायां कामेश्वरीन्ततः ।
वाणीं ग्लैं तिरस्करिणि सकलेति जनेति च ॥ १०३ ॥
वाग्वादिनि पदस्यान्ते सकलपशु च ब्रूयात् ।
जनान्ते च मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वापदंततः ॥ १०४ ॥
घ्रणोक्तिञ्च तिरस्कान्ते रिणीं कुरुद्वयं ततः ।
ठद्वयञ्च सर्गयुतं द्विठान्तोऽयं महामनुः ॥ १०५ ॥

अब अन्य तिरस्करिणी विद्या कहता हूँ । माया (ह्रीं), फिर कामेश्वरीं ह्रीं क्लीं, फिर वाणी अर्थात् ऐं ग्लैं तिरस्करिणि सकलजन वाग्वादिनि सकलशुजन मनश्चक्षुः श्रोत्र जिह्वाघ्राणतिरस्करिणी कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा' यह दो ठान्त वाला मन्त्र है ॥ १०३-१०५ ॥

त्रिधा जप्त्वा च वीरेन्द्रस्त्रिकोणे चिन्तयेत्ततः ।
हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम् ॥ १०६ ॥

इस मन्त्र का तीन बार जप कर वीरेन्द्र साधक त्रिकोण में, जिसमें मन्त्रमय हंस पीठ है, उस पर शिवस्वरूप अपने गुरु का ध्यान करे ॥ १०६ ॥

अकथादित्रिपङ्क्त्या तु हलक्ष मध्यमण्डितम् ।
इति सञ्चिन्त्य तत्पश्चाद्द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ।
अथवान्यप्रकारेण द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ॥ १०७ ॥

आदि में जो अ क थ इन तीन पंक्तियों से युक्त है, तथा मध्य में ह ल क्ष से मण्डित है । इस प्रकार ध्यान कर द्रव्यशुद्धि करे, अथवा अन्य प्रकार से भी द्रव्यशुद्धि करे ॥ १०७ ॥

हंसवती ऋक्

ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिसदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृसद्वरसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥१०८॥
ऐं तृप्तोद्भव-सिद्धोद्भव-सर्वज्ञोद्भव-
सर्वजनकोद्भवाय अमृताय अमृतनाथाय

अमृतकुलकुम्भाय ऐँ फ्रें चल चल
पिव पिव कुलकुण्डलिनि अमृतकुण्डलिनि
अमृतं द्रव द्रव निर्झर निर्झर ऐँ ह्रीँ
कुलकुण्डलिनि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा ॥ १०९ ॥
प्रथमं प्रणवं हंसः शुचीति तदनन्तरम् ।
सद्वसुरन्तरीक्षेति सद्धोता वेदिसत्यथ ॥ ११० ॥
अतिथिर्दुरोणसदित्यर्धमस्या ऋचो भवेत् ।
नृसद्वरसदित्युक्ता सदृतोऽतिथ्यनन्तरम् ।
सद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ।
ऋतं बृहदित्यर्द्धञ्च अस्या ऋच उदाहृतम् ॥ १११ ॥

'ॐ हंसः...............अमृतं कुरु कुरु स्वाहा (४.१०९) पर्यन्त मन्त्र पढ़कर प्रथम प्रणव (ॐ) हंसः शुचि' इसके बाद सद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिसदतिथि-दुरोणसत्' यह ऋचा का आधा भाग होता है । इसके बाद 'नृसद्वरसद्' कह कर 'सदृतोऽतिथि' इसके बाद सद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् । (ऋ. ४.५८.३) यह ऋचा का शेष आधा भाग है ॥ ११०-१११ ॥

त्रिधा च सञ्जपेन्मन्त्रं अथवान्यतमं जपेत् ।
वाक् च तृप्तोद्भवस्यान्ते सिद्धोद्भव ततः परम्॥ ११२ ॥
सर्वज्ञोद्भव सर्वान्ते जनकोद्भव ङेयुतम् ।
अमृतायामृतं प्रोक्त्वा नाथाय पदतोऽमृत ॥ ११३ ॥
कुलकुम्भाय वाग्भवं फ्रैँ ततश्च चलयुग्मकम् ।
पिबद्वन्द्वं कुलं प्रोक्त्वा कुण्डलिनि ततो वदेत् ॥ ११४ ॥
अमृतपदतः कुण्डलिनीति अमृतं द्रव ।
द्वयं निर्झरयुग्मञ्च वाग्भवं भुवनेश्वरीम् ॥ ११५ ॥
कुलकुण्डलिनीं प्रोच्य अमृतं कुरुयुग्मकम् ।
द्विठान्तं मनुमुच्चार्य पाययित्वा च कुण्डलीम्॥ ११६ ॥
शिवशक्तिसमायोगं चिन्तयित्वा च साधकः ।
तस्मात् सुधां समुत्पाद्य पूरयेत् पात्रमुत्तमम् ॥ ११७ ॥

इस मन्त्र का तीन बार जप करे अथवा दो में से कोई एक मन्त्र का जप करना चाहिए । इसके बाद 'वाक् च तृप्तोद्भवा' के अन्त में सिद्धोद्भव, इसके बाद सर्वज्ञोद्भव, फिर चतुर्थ्यन्त 'सर्वजनकोद्भवाय', फिर 'अमृतायामृता' कहकर नाथाय (अमृतायामृतनाथाय), फिर अमृतकुलकुम्भाय, फिर वाग्भव (ऐं) फ्रें, फिर दो बार चल चल, फिर दो बार पिब पिब, फिर कुण्डलिनि अमृत कुण्डलिनि

अमृतं द्रव द्रव निर्झर निर्झर, फिर वाग्भव (ऐं), फिर कुलकुण्डलिनी कहकर 'अमृतं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्र का उच्चारण कर कुण्डलिनी को (अमृत) पिलाकर शिवशक्ति के समायोग का ध्यान कर, कलश स्थित सुधा निकाल कर, किसी पात्र को पूरा पूरा भर देवे ॥ ११२-११८ ॥

अनेनैव विधानेन द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ।
कालिकाया विशेषश्च वक्ष्येऽहं तन्त्रवर्त्मना ॥ ११९ ॥
एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ १२० ॥

साधक उक्त विधान से द्रव्यशुद्धि करे । अब कालिका के विषय में तन्त्रमार्ग के अनुसार कहता हूँ—

(१) एकमेवपरं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् । कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्—यह प्रथम श्लोक मन्त्र है ॥ ११९-१२० ॥

सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥ १२१ ॥

(२) सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे । अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्वि-मुच्यताम्—यह दूसरा श्लोक मन्त्र है ॥ १२१ ॥

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥ १२२ ॥

(३) वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि । तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु—यह तीसरा श्लोक मन्त्र है ॥ १२२ ॥

एवं मन्त्रत्रयेणैव अभिमन्त्र्य सुरां शुभाम् ।
प्रदद्यात् कालिकायै च ततो नैवेद्यभुग्भवेत् ॥ १२३ ॥

इस प्रकार इन तीन मन्त्रों से उस कल्याणकारिणी सुरा को अभिमन्त्रित करे । प्रथमत: उसे कालिका को नैवेद्य रूप में समर्पित करे । फिर स्वयं उस नैवेद्य का आस्वादन करे ॥ १२३ ॥

इति शुद्धित्रयं ज्ञेयं शापानां मोचनं परम् ।
एषामेकतमं कृत्वा ध्यायेदानन्दभैरवम् ॥ १२४ ॥

इस प्रकार हमने यहाँ तक तीन प्रकार की शुद्धि, फिर शाप विमोचन कहा । इस शुद्धि तथा शापविमोचन के मन्त्रों में किसी एक से शुद्धि एवं शापविमोचन कर साधक आनन्दभैरव का इस प्रकार ध्यान करे ॥ १२४ ॥

आनन्दभैरवध्यानम्

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥ १२५ ॥

आनन्दभैरव का ध्यान—जिनका प्रकाश (कान्ति) करोड़ों करोड़ों सूर्य के समान उग्र है, जो करोड़ों चन्द्रमा के प्रकाश के समान शीतल हैं और जो अट्ठारह भुजाओं, पाँच मुख तथा तीन नेत्रों से विभूषित हैं ॥ १२५ ॥

अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरि स्थितम् ।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १२६ ॥

जिनका निवास अमृत के समुद्र में है, जो ब्रह्मकमल पर स्थित हैं, बैल पर सवार हैं, नीलकण्ठ तथा सर्वाभरणभूषित हैं ॥ १२६ ॥

आकल्पखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुषलधारिणम् ॥ १२७ ॥

खट्वाङ्ग धारण किये हुये हैं; घण्टा और डमरू का बाजा बजा रहे हैं । जो देव पाश, अङ्कुश, गदा और मुषल धारण किये हुये हैं ॥ १२७ ॥

खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरशूलदण्डधृक् ।
खेटकमुण्डहस्तञ्च वरदाभयविग्रहम् ॥ १२८ ॥

खड्ग, खेटक, पट्टिश, मुद्गर, शूल, खेटक, मुण्ड और दण्ड धारण किये हुये हैं । जिनका विग्रह वर और अभय मुद्रा से युक्त है ॥ १२८ ॥

लोहितं देवदेवेशं द्रव्यमध्ये नियोजयेत् ।
तस्योत्सङ्गे सुरां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ॥ १२९ ॥

जिनके शरीर का वर्ण लोहित है इस प्रकार के देवदेवेश का ध्यान कर उन्हें द्रव्य के मध्य में स्थापित करे । उनके गोद में अयुतकोटिचन्द्रमा के समान प्रकाशवाली भगवती सुरा संस्थित हैं ॥ १२९ ॥

आनन्दभैरवीध्यानम्

हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
भुजाष्टदशसंयुक्तां सर्वायुधकरोद्यताम् ॥ १३० ॥

भगवती आनन्दभैरवी का ध्यान—जो हिमकुन्द एवं इन्दु के समान धवल वर्ण वाली हैं । जिनके पाँच मुख तथा तीन नेत्र तथा अट्ठारह भुजायें हैं । जिनके हाथों में सभी प्रकार के आयुध हैं ॥ १३० ॥

प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम् ।
अथवान्यप्रकारेण सुरादेवीञ्च चिन्तयेत् ॥ १३१ ॥

जो विशालाक्षी देवाधिदेव के सामने स्थित होकर हँस रही हैं। इस प्रकार की सुरादेवी का ध्यान करना चाहिए। अथवा साधक को अन्य प्रकार से भी सुरा देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ १३१ ॥

चन्द्रांशुसदृशीं श्वेतां वारुणीं ब्रह्मरूपिणीम् ।
शिरश्चन्द्राद्विगलन्तीं ध्यायेत्तं परदेवताम् ॥ १३२ ॥

वारुणी स्वरूपा जो देवी चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत वर्ण वाली ब्रह्मस्वरूपा है, शिरः स्थित चन्द्रमा के अमृत से आर्द्र हैं। इस प्रकार की परदेवता का सुरा में ध्यान करे ॥ १३२ ॥

एवं ध्यात्वा ततो वीरः पूजयेन्मन्त्रमुच्चरन् ।
आनन्दभैरवं देवमानन्दभैरवीं तथा ॥ १३३ ॥

इस प्रकार भगवती सुरा का ध्यान कर वीर साधक आनन्दभैरव तथा आनन्दभैरवी का मन्त्रपूर्वक इस प्रकार पूजन करे ॥ १३३ ॥

शिवचन्द्राद्यवर्णं तु कालभूवरुणानलम् ।
षष्ठस्वरान्वितं वायुं विन्दुनादविभूषितम् ॥ १३४ ॥
आनन्दभैरवायेति शिखामन्त्रं ततो वदेत् ।
ततः पूर्ववदुद्धृत्य विपरीतमुखं द्वयम् ॥ १३५ ॥
वायुबीजं वामनेत्रत्यानन्दभैरवीं ततः ।
ङेयुतां नेत्रमन्त्रञ्च कथितो मनुसत्तमः ॥ १३६ ॥

आदि में शिव वर्ण (ह), चन्द्र वर्ण सं, फिर काल (शं), भू (लं), वरुण (व), अनल (र), षष्ठ स्वर समन्वित वायु (यूं) जो बिन्दुनाद से विभूषित हो; इसके बाद आनन्दभैरवाय, फिर शिखा मन्त्र 'शिखायै वषट्', इसके बाद दोनों को विपरीत मुख कर वायु बीज यं, वामनेत्र ईं, फिर चतुर्थ्यन्त आनन्दभैरव्यै, फिर नेत्र मन्त्र नेत्रत्रयाय वौषट्, यह उत्तम मन्त्र उन दोनों की पूजा के लिये बतलाया गया है। मन्त्र का स्वरूप—हं सं शं लं वं रं यं आनन्दभैरवाय शिखायै वषट्। यं रं वं लं शं सं हं आनन्दभैरव्यै नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ १३४-१३६ ॥

पूजयित्वा द्रव्यमध्ये वरुणं वसुधा जपेत् ।
मूलञ्चोपरि सञ्जप्य अमृतं परिभावयेत् ॥ १३७ ॥

इस प्रकार द्रव्य के मध्य में उन दोनों का पूजन कर वरुण (वं) तथा वसुधा

(लं) का जप करे । पुनः उसके ऊपर मूल मन्त्र का जप कर उस द्रव्य में अमृत की भावना करे ॥ १३७ ॥

आवाहन्यादिमुद्राञ्च दर्शयेत्तदनन्तरम् ।
आवाहनीं दर्शयित्वा स्थापनीं तदनन्तरम् ॥ १३८ ॥
सन्निधापनमुद्राञ्च तथा च सन्निरोधनीम् ।
अवगुण्ठनमुद्राञ्च विधाय साधकोत्तमः ॥ १३९ ॥
अङ्गषट्कस्य मुद्राञ्च तालत्रयपुरःसरम् ।
दिग्बन्धनं प्रकुर्वीत छोटिकाभिरनन्तरम् ॥ १४० ॥

इसके बाद उन्हें आवाहन्यादि मुद्रा प्रदर्शित करे । प्रथम आवाहनी मुद्रा दिखावे, फिर स्थापनी, फिर सन्निधापनी, सन्निरोधिनी तथा अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शित करे । फिर उत्तम साधक तीन ताल देकर षडङ्ग मुद्रा और चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करे ॥ १३८-१४० ॥

परमीकरणं कृत्वा अमृतीकरणञ्चरेत् ।
धेनुमुद्रामृतीकृत्य द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ॥ १४१ ॥

पुनः परमीकरण मुद्रा प्रदर्शित कर, अमृतीकरणमुद्रा तथा धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर द्रव्यशुद्धि करे ॥ १४१ ॥

आलोकाज्जिघ्रणाद्ध्यानात् स्नानाद्द्रव्यं विशुध्यति ।
द्रव्यस्नानं ततः कुर्याद्दक्षे कृत्वा च चुल्लकम् ॥ १४२ ॥

तन्त्रशास्त्र में देखने से, सूँघने से, ध्यान करने से, स्नान कराने से, द्रव्य (मद्य) की शुद्धि कही गई है । दाहिने हाथ के चिल्लू में जल भरकर स्नान कराना चाहिये ॥ १४२ ॥

द्रव्यस्य चुल्लकं दक्षकरे कृत्वा तु साधकः ।
वामनासाङ्गुष्ठयोगात् पूजाद्रव्येषु निक्षिपेत् ॥ १४३ ॥

फिर साधक दाहिने हाथ के चिल्लू में उस द्रव्य (मद्य) को लेकर अँगूठे से बाईं नासिकापुट में लगाकर पूजाद्रव्य पर छोड़ देवे ॥ १४३ ॥

विन्दुं क्षिप्त्वा स्ववक्त्रे च मार्जयेद्धस्तयुग्मकम् ।
हस्ताभ्यां मार्जयेद्देहं मूलमन्त्रं समुच्चरन् ॥ १४४ ॥

उसका एक बिन्दु साधक को अपने मुख में डालकर दोनों हाथों का मार्जन करना चाहिए । फिर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये दोनों हाथों से अपने देह का मार्जन करे ॥ १४४ ॥

सुरानिरुक्तिः

एतत्तु कारणं दिव्यं सुरसङ्घनिषेवितम् ।
अतएव नाम तस्य सुरेति भुवनत्रये ॥ १४५ ॥

इस प्रकार यह कारण (मद्य) दिव्य हो जाता है जिसका पान समस्त देवगणों ने किया था । इसीलिये इसे त्रिलोकी में सुरा नाम से जाना जाता है ॥ १४५ ॥

सुरादर्शनफलम्

सुरा दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तद्गन्धाघ्राणमात्रेण शतक्रतुफलं लभेत् ॥ १४६ ॥

इस प्रकार के सुरा के दर्शन मात्र से साधक सारे पापों से मुक्त हो जाता है । उसके गन्ध के आघ्राणमात्र से सौ यज्ञों का फल होता है ॥ १४६ ॥

मद्यस्पर्शनमात्रेण तीर्थकोटीफलं लभेत् ।
तथा तत्पानतः साक्षाल्लभेत् मुक्तिं चतुर्विधाम् ॥ १४७ ॥

ऐसे मद्य के स्पर्शमात्र से साधक को करोड़ों तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त हो जाता है तथा उसके पीने मात्र से विद्वान् साधक साक्षात् चारों प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त कर लेता है ॥ १४७ ॥

इच्छाशक्तिः सुरामोदे ज्ञानशक्तिश्च तद्रसे ।
तत्स्वादे च क्रियाशक्तिः चेतः शोधनसाधना ॥ १४८ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये चतुर्थोल्लासः ॥४॥

सुरा के आघ्राण (सूँघने) से इच्छाशक्ति है और उसके रस में ज्ञानशक्ति है तथा उसके आस्वादन से क्रियाशक्ति बलवती होती है । इस प्रकार यह चित्त के शोधन की साधना है ॥ १४८ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के चतुर्थ उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ४ ॥
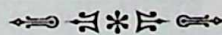
पञ्चम उल्लासः

...ॐ...

तन्त्रवर्त्मना मांसनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मांसानि तन्त्रवर्त्मना ।

मांसभेदकथनम्

मांसञ्च त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम् ॥ १ ॥

अब मैं तन्त्रमार्ग के अनुसार मांस के विषय में कहता हूँ । जलीय, भूचरीय और खेचरीय तीन प्रकार के मांस कहे गये हैं ॥ १ ॥

गोनरेभाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम् ।
महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ॥ २ ॥

गाय, बकरा, हाथी, घोड़ा, महिष, वराह, मृग और खड्ग (गैंडा) इन आठ के मांस को महामांस कहा जाता है । जिससे देवता प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

(यद्वा) गोऽजेभाश्ववराहाणां माहिषं मृगखड्गयोः ।
एतन्मांसाष्टकं प्रोक्तं चण्डिकाप्रीतिकारकम् ॥ ३ ॥

अथवा गाय, बकरा, हाथी, घोड़ा, वराह, महिष, मृग एवं गैंडा—इन आठ पशुओं के मांस चण्डिका को प्रीति प्रदान करने वाले कहे गए हैं ॥ ३ ॥

(यद्वा) अजाश्वावपि गण्डा च महिषश्चमरी तथा ।
वराहव्याघ्रभल्लूकशशकाः कूर्मकुक्कुटौ ॥ ४ ॥
कृष्णसारश्च हरिणस्तथा चित्रमृगा अपि ।
मनुष्यो गवयश्चैव शल्लकी च विशेषतः ॥ ५ ॥
हंसः पारावतश्चैव तथैव ग्रामकुक्कुटाः ।
विहिता बलयः प्रोक्ताश्चण्डिकाप्रीतिकारकाः ॥ ६ ॥

अथवा अजा, अश्व, हाथी, महिष, चमरी, वराह (शूकर), व्याघ्र, भल्लूक, शश (खरगोश), कूर्म, कुक्कुट, कृष्णसार मृग, सामान्य हरिण, चित्र हरिण, मनुष्य, गवय और विशेषकर शल्लक (शाही), हंस, पारावत एवं ग्रामकुर्क्कुट;

इतने बलि कर्म के लिये विहित पशु के माँस हैं, जो चण्डिका को प्रीति उत्पन्न करने वाले बतलाये गये हैं ॥ ४-६ ॥

एतेषां मांसदानेन सर्वसिद्धिः प्रजायते ।
एषामेकतमं लब्ध्वा तर्पणार्थं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥

इनके मांस द्वारा पूजा किये जाने पर सभी प्रकार की सिद्धि हो जाती है । इनमें एक का भी मांस प्राप्त हो जाय तो उससे देवी की पूजा करे ॥ ७ ॥

मांससन्दर्शनेनापि सुरादर्शनवत् फलम् ।
पितृदैवतयज्ञेषु वेदे हिंसा विधीयते ॥ ८ ॥

मांस के दर्शन से भी सुरादर्शन के समान फल प्राप्त होता है । वेद ने भी पितृयज्ञ एवं दैवयज्ञ में हिंसा का विधान कहा है ॥ ८ ॥

आत्मार्थं प्राणिनां हिंसा कदाचिन्नोदिता प्रिये ।
अनिमित्तं तृणं वापि छेदयेन्न कदाचन ॥ ९ ॥

हे प्रिये ! वेद ने कहीं भी अपने लिये हिंसा का विधान नहीं कहा है । बहुत क्या कहें बिना निमित्त के तृणच्छेदन भी कदापि नहीं करना चाहिए; हिंसा की बात तो बहुत दूर है ॥ ९ ॥

देवतार्थं पशुहनने न दोषः

देवतार्थं द्विजं गाञ्च हत्वा पापैर्न लिप्यते ।
मांसं विनापि पूजायां पापं स्याच्च पदे पदे ॥ १० ॥

देवता के लिये ब्राह्मण और गौ की हत्या भी पाप नहीं कही जाती । मांस के बिना पूजा में पद-पद पर पाप लगता है ॥ १० ॥

गन्धपुष्पाक्षतैः पूज्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ।
हन्यान्मन्त्रेण चानेन त्वभिमन्त्र्य पशुं ततः ॥ ११ ॥

मांस के साथ केवल गन्ध एवं पुष्पयुक्त अक्षत से भी पूजा कर लेनी चाहिये अन्यथा नरकगामी होना पड़ता है । तदनन्तर निम्न मन्त्र से पशु को अभिमन्त्रित कर उसका वध करना चाहिये ॥ ११ ॥

शिवोत्कृत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः ।
तद्बुद्धस्व पशो त्वं हि मा शिवस्त्वं शिवोऽसि हि ॥ १२ ॥
ब्रह्मा स्यात्पलले विष्णुर्गन्धे रुद्रश्च तद्रसे ।
परमात्मा तदानन्दे तस्मात् सेव्यमिदं प्रिये ॥ १३ ॥

इति हत्वा पशुं पश्चात् चारु पक्वं समाचरेत् ।
पूजासु आममांसानि दद्याद्वै साधकः क्वचित् ॥ १४ ॥

मन्त्र का स्वरूप—

शिवोत्कृत्तमिद पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः ।
तद्बुद्धस्व पशो त्वं हि माशिवस्त्वं शिवोऽसि हि॥
ब्रह्मा स्यात्पलले विष्णुर्गन्धे रुद्रश्च तद्रसे ।
परमात्मा तदानन्दे तस्मात् सेव्यमिदं प्रिये ॥

उपरोक्त श्लोक रूप पूर्ण मन्त्र को पढ़कर पशु का वध करने के पश्चात् उत्तमोत्तम चरु का निर्माण करना चाहिए । कहीं-कहीं कोई साधक पूजा में केवल कच्चा मांस समर्पित करते हैं ॥ १४ ॥

ऋते तु लोहितं शेषममृतं तत्तु जायते ।
संशोधयेत्तु मांसानि यथाशास्त्रप्रमाणतः ॥ १५ ॥

मारे गये पशु के रक्त को छोड़कर शेष अङ्ग का भाग अमृत बन जाता है । इसके बाद शास्त्र प्रोक्त विधि से उस मांस का संशोधन करे ॥ १५ ॥

मांसशोधनविधानम्

मांसशुद्धिं प्रवक्ष्यामि शाक्तानां सिद्धिहेतवे ।
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षयित्वा च साधकः ॥ १६ ॥

अब मैं शाक्त सम्प्रदाय वालों के कल्याण के लिये मांस शुद्धि की विधि कहता हूँ । साधक मूल मन्त्र के साथ अन्त में 'अस्त्राय फट्' पढ़कर मांस का प्रोक्षण करे ॥ १६ ॥

चतुर्धा शोधनं कुर्यात् पूर्वोक्तेन च वर्त्मना ।
शोषयेद्वायुबीजेन वह्निबीजेन सन्दहेत् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त विधि से उसका चार प्रकार से संशोधन करे । वायुबीज (यं) से उसका शोषण करे और अग्नि बीज (रं) से उसे जला देवे ॥ १७ ॥

शिवशक्तिसमायोगाद्वारुणेनामृतं कुरु ।
ततश्च सञ्जपेन्मन्त्रं मांसानां शोधनाय च ॥ १८ ॥

फिर 'शिवशक्तिसमायोगाद्वारुणेनामृतं कुरु' इस मन्त्र को जपकर मांस का शोधन करे ॥ १८ ॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्यं प्रतद्विष्णुस्ततः परम् ।
स्तवते मृगो न भीमः सम्प्रोच्य कुचरो भवेत् ॥ १९ ॥

गरिष्ठेति च यस्योरुषु त्रिषु प्रोक्तस्ततः परम् ।
विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वाः ॥ २० ॥

प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर 'प्रतद्विष्णुः' इसके बाद 'स्तवते मृगो न भीमः' पढ़कर 'कुचरो गरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु' इसके बाद 'विक्रमेणाधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा' पढ़े ॥ १९-२० ॥

पूर्व्वोक्ता दर्शयेन्मुद्रा आवाहन्यादिसंज्ञिका ।
मूलमन्त्रं जपेद्वीरः सप्त वारं ततः परम् ॥ २१ ॥

फिर पूर्वोक्त आवाहनी आदि मुद्रा प्रदर्शित करे । तदनन्तर वीर साधक मूल मन्त्र का सात बार जप करे ॥ २१ ॥

मत्स्यानां शोधनं वक्ष्ये यथातन्त्रानुसारतः ।

मत्स्यभेदकथनम्

पाठीनञ्च वोदालश्च तथा शकुलशालकौ ॥ २२ ॥
महाशकुलचित्री च खड्गी च जलवृश्चिका ।
अनेन विहिताः सर्वेऽपीमा मीनाः शुभप्रदाः ॥ २३ ॥

अब शास्त्र के अनुसार मत्स्य-मांस के शोधन का प्रकार कहता हूँ । पाठीन, वोदाल, शकुल, शालक, महाशकुल, चित्री, खड्गी और जलवृश्चिका' इस प्रकार विहित नाम वाले सभी मत्स्य कल्याणकारक होते हैं ॥ २२-२३ ॥

मत्स्यमांसशोधनम्

आदौ कुर्वीत मीनञ्च पूर्ववत् प्रोक्षणादिकम् ।
जपेन्मन्त्रं ततः पश्चान्मीनानाञ्च विशुद्धये ॥ २४ ॥
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ २५ ॥

सर्वप्रथम पूर्वोक्त विधि के अनुसार मीन का प्रोक्षण करना चाहिए । फिर मीनो की विशुद्धि के लिये—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

इस मन्त्र को पढ़कर मीन की शुद्धि करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

शेषं पूर्ववदाचर्य मुद्राञ्च परिशोधयेत् ।
व्रैहेयं मण्डलाकारं चन्द्रविम्बनिभं शुभम् ॥ २६ ॥
चारु पक्वमनोहारि शर्कराद्यैः प्रपूरितम् ।

पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्त्तिता ॥ २७ ॥
भ्रष्टधान्यादिकं यद्यच्चर्वणीयं प्रकल्पयेत् ।
तस्याः सञ्ज्ञा स्मृता मुद्रा महामोदप्रवर्धिनी ॥ २८ ॥

महामोदप्रवर्धिनी मुद्रा—शेष कार्य पूर्ववत् सम्पादन कर मुद्रा को शुद्ध करे । चन्द्रमा के समान अत्यन्त स्वच्छ, सर्वथा गोल, अच्छी तरह से पकाया गया, मनोहारी शर्करादि से युक्त, भ्राष्ट्र में भुजा हुआ धान का लावा चबाने के लिये प्रस्तुत करे । सन्त लोग उसी को महामोदप्रवर्धिनी मुद्रा कहते हैं ॥ २६-२८ ॥

मुदं रातीति मुद्रा स्याद्येनैका मुष्टिभेदतः ।
मुद्राञ्च प्रोक्षयेदादौ शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ २९ ॥

एक ही मुट्ठी के अनेक भेद से मुद्रा कही गई है 'मुदं ददातीति मुद्रा' इस व्युत्पत्ति के अनुसार यतः मुद्रा प्रसन्नता प्रदान करती है, अतः मन्त्र से शुद्धि हेतु पहले मुद्रा का प्रोक्षण करे । शेष पूर्ववत् करे ॥ २९ ॥

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ३० ॥
ॐ तद्विप्रासो विपणयवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ ३१ ॥
इति सञ्जप्य वीरेन्द्रः शेषं पूर्व्ववदाचरेत् ॥ ३२ ॥

फिर ॐ तद्विष्णोः परमं पदं...........विष्णोर्यत् परमं पदं' पर्यन्त मन्त्र का वीरेन्द्र साधक जप करे । शेष पूजन पूर्ववत् करे ॥ ३०-३२ ॥

कुण्डगोलोद्भवामृतविधानम्

अथ वक्ष्ये च कुण्डोत्थं देवताप्रीतिकारकम् ।
मद्यकुम्भसहस्रैस्तु मांसभारशतैरपि ॥ ३३ ॥
नैव तुष्टिर्भवेद्देव्याः कुण्डगोलोद्भवं विना ।
भगलिङ्गात्मिका देवी भगलिङ्गामृतात्मिका ॥ ३४ ॥

अब मैं देवता को प्रसन्न करने वाले कुण्डोत्थ अमृत के विषय में कहता हूँ । क्योंकि सहस्रों मदिरापूर्ण कलशों एवं तोल में सहस्रभार मांसो से देवी को उतनी सन्तुष्टि नहीं होती, जितनी कुण्डोद्भव अमृत से होती है । भगवती भगलिङ्गात्मिका है और भगलिङ्गामृतात्मिका भी है ॥ ३३-३४ ॥

देव्याः शुक्ररजोरूपत्वम्

शुक्ररूपा च शुक्रस्था रजोरूपा रजःस्थिता ।

विन्दुरूपा च विन्दुस्था रजोविन्दुस्वरूपिणी ॥ ३५ ॥

शुक्र में रहने वाली शुक्ररूपा है और रज में रहने वाली रजोरूपा है । विन्दु में रहने के कारण वह विन्दुरूपा है इसलिये रजोविन्दुस्वरूपिणी है ॥ ३५ ॥

भगलिङ्गप्रिया देवो भगलिङ्गामृतप्रिया ।
भगलिङ्गामृतेनैव तस्मात्तां परिपूजयेत् ॥ ३६ ॥

भगवती भगलिङ्गप्रिया एवं भगलिङ्गामृतप्रिया है । इसलिये भगलिङ्ग से उत्पन्न अमृत से उनका पूजन करे ॥ ३६ ॥

वीरद्रव्यस्य पानेन परस्त्रीरमणेन च ।
भगलिङ्गामृतेनैव देवीं यश्च प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥
न दुःखं जायते तस्य सिद्धमन्त्रो भवेन्नरः ।
कुलस्त्रीकुलपुष्पैश्च कुलद्रव्यैः कुलामृतैः ॥ ३८ ॥
सम्पूज्य लभते कामानष्टसिद्धींश्च साधकः ।
विना कुलोद्भवैर्द्रव्यैः पूजयेद्यश्च चण्डिकाम् ॥ ३९ ॥
जन्मान्तरसहस्त्रस्य सुकृतं तस्य नश्यति ।
द्रव्यशोधनमाचर्य शक्तिशोधनमाचरेत् ॥ ४० ॥

अत: वीरद्रव्य (मद्य) के पीने से, परस्त्री में रमण करने से तथा भगलिङ्ग से उत्पन्न अमृत से जो उनकी पूजा करता है, वह साधक दुःखी नहीं होता क्योंकि वह पुरुष सिद्ध हो जाता है । कुलस्त्री, कुलपुष्प, कुलद्रव्य, कुलामृत, इनसे पूजा करने से साधक अपना मनोरथ प्राप्त करता है तथा आठों सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं । कुल सम्प्रदाय से उत्पन्न द्रव्यों के बिना जो चण्डिका का पूजन करता है, उसके हजारों जन्म में किये गये समस्त सुकृत नष्ट हो जाते हैं । यहाँ तक द्रव्य (मद्य मांसादि) के शोधन की विधि कही गई । उसके करने के बाद शक्ति शोधन करना चाहिये ॥ ३७-४० ॥

शक्तिशोधनम्

यथा द्रव्यं तथा शक्तिं समानीय यथाक्रमम् ।
स्नापितां प्रमदां दिव्यां हेतुयुक्तां च दीक्षिताम् ॥ ४१ ॥
स्वकान्तां परकान्तां वा घृणालज्जाविवर्जिताम् ।
सालङ्कारां सुवेशाञ्च स्थापयेत् तूलिकोपरि ॥ ४२ ॥

जिस प्रकार द्रव्य (मद्य) लाने की विधि कही गई है, उसी क्रम से स्नान की हुई, मद से विह्वल, दिव्य (मदिरा) से मस्त, घृणा और लज्जा से विवर्जित, आभूषण युक्त, सुन्दर वेश वाली, ऐसी अपनी स्त्री तथा दूसरे की स्त्री लाकर रूई

के गद्दे पर स्थापित करे ॥ ४१-४२ ॥

न्यासजालं प्रकुर्वीत स्वकल्पोक्तविधानतः ।
मातृकान्यासमाचर्य कलान्यासं समाचरेत् ॥ ४३ ॥

उसके बाद अपने सम्प्रदायानुसार समस्त न्यास करे । प्रथमतः मातृका न्यास करे । फिर कला न्यास करे ॥ ४३ ॥

ह्रीङ्कारं तु ललाटे च क्लीङ्कारं वदने तथा ।
ऐङ्कारं हृदये चैव नाभौ ब्लूङ्कारमेव च ॥ ४४ ॥
स्त्रीङ्कारं विन्यसेद्गुह्ये पञ्चकामान् न्यसेद् बुधः ।
ऋष्यादिकं स्वकल्पोक्तं पाद्यादिभिस्ततो यजेत् ॥ ४५ ॥

उसके ललाट में ह्रींकार से, मुख में क्लींकार से, हृदय में ऐङ्कार से, नाभि में ब्लूङ्कार से और गुह्य में स्त्रीङ्कार मन्त्र से साधक न्यास करे । इसके बाद अपने सम्प्रदाय के अनुसार विद्वान् साधक ऋष्यादि न्यास कर पाद्यादि उपचारों से उनका पूजन करे ॥ ४४-४५ ॥

द्राविणीं विन्यसेद्योनौ मूलविद्यां ततः परम् ।
आधारे हृदये चैव भ्रुवोर्मध्ये न्यसेत् क्रमात् ॥ ४६ ॥

योनि में द्राविणी से न्यास कर, उसके बाद मूल विद्या से आधार, हृदय तथा दोनों भ्रुवों के मध्य में बुद्धिमान् साधक न्यास करे ॥ ४६ ॥

पुनर्मूलं ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेत् साधकपुङ्गवः ।
मूर्द्धादिपादपर्यन्तं न्यासं कुर्यात्ततः परम् ॥ ४७ ॥

फिर मूलमन्त्र से ब्रह्मरन्ध्र में साधक पुङ्गव न्यास कर मूर्धा से लेकर पाद पर्यन्त मूलमन्त्र से न्यास करे ॥ ४७ ॥

मैथुनकथनम्

मौलौ कुन्तलकर्षणं नयनयोराचुम्बनं गण्डयो-
र्दन्तेनाधरपीडनं हृदि हतिर्मुष्ट्या च नाभौ शनैः ।
कुक्षौ कण्ठकपोलमण्डलकुचश्रोणीषु देया नखाः
सीमन्ते लिखनं नखैरुरसिजं गृह्णीत गाढं ततः ॥ ४८ ॥
कुर्वीताविरतं मनोभवगृहे मातङ्गलीला इव ।
जङ्घाङ्गुष्ठपदोरुगुल्फहननं चान्योऽन्यतः कामिनोः ॥ ४९ ॥

फिर साधक उस स्त्री के शिर के बालों को कर्षण करे, नेत्र और गण्डस्थल का चुम्बन करे, दाँत से ओठ काटे, हृदय में मुट्ठी से धक्का दे । इसके बाद

नाभि, कुक्षि, कण्ठ, कपोल-मण्डल, कुच तथा श्रोणी में नखक्षत करे । सीमन्त में नख क्षत करे । तदनन्तर कस कर स्तन दबावे । फिर निरन्तर कामगृह में हाथी के तरह लीला करे । फिर परस्पर दोनों कामी एक दूसरे के जङ्घा, अङ्गुष्ठ, पैर, ऊरू और गुल्फ में हनन करे (इसका रहस्यार्थ कुछ और ही है)॥ ४८-४९ ॥

पाशबीजं वामनेत्रं कामवरुणभूयुतम् ।
एकादशस्वरेणाढ्यं चन्द्रबिन्दुसमन्वितम् ॥ ५० ॥
अमुकीं द्रावय स्वाहा विन्यसेत् साधकोत्तमः ।
वामा या चपलचित्ते रेतो मुञ्चद्वयं पठेत् ॥ ५१ ॥

फिर कामबीज (क्लीं), वरुण (वं) से युक्त पाशबीज (आं), तदनन्तर वामनेत्र (ई), फिर अ से लेकर एकादश स्वर पर्यन्त (अ-ए) जो चन्द्र विन्दु (अनुस्वार) से संयुक्त हो; उतना उच्चारण कर 'अमुकीं द्रावय स्वाहा' इस मन्त्र से उत्तम साधक न्यास करे । फिर 'वामा या चपलचित्ते रेतो मुञ्च मुञ्च' इसको पढ़े ॥ ५०-५१ ॥

वरुणं भूदक्षकर्ण युतञ्च कामबीजकम् ।
सोमवधूसमायुक्तं चन्द्रमन्त्यस्वरान्वितम् ॥ ५२ ॥
द्राविणीबीजं कथितं साधकानां हिताय च ।
तस्या योनौ न्यसेद्विद्यां रेत् थु मा तो च मै न त ॥ ५३ ॥
आत्मनि चिन्तयेद्देवीं शक्तिमाद्यास्वरूपिणीम् ।
निं घ येद् ङ्गे यो न र्ष लि मूलमुच्चार्य साधकः ॥ ५४ ॥

फिर वरुण एवं भू (वल), जो दक्षिण कर्ण (ऊकार) से युक्त (ब्लूँ) इस काम बीज को अन्त्य स्वर से युक्त चन्द्र (अनुस्वार) द्रा । इस प्रकार हमने द्राविणी बीज साधकों के हित के लिये कह दिया । उसकी योनि (= कुण्डलिनी) में विद्या न्यास करे । फिर मैथुन न करे (लिङ्गे न घर्षयेद् योनिं) (ततो मैथुन मा चरेत्) किन्तु अपनी आत्मा में आदि स्वरूपा महाशक्ति का ध्यान करे ॥ ५३-५४ ॥

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥ ५५ ॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः ।
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् मुखे जिह्वामृतं पिबेत् ॥ ५६ ॥

स्त्री के पास जाते हुये 'धर्माधर्महविर............जुहोम्यहम् स्वाहा' पर्यन्त मन्त्र का जप करे । जिसको मैने पहले भी कहा है । सर्वप्रथम मुख में (खेचरी मुद्रा से उत्पन्न) जिह्वा के अमृत का पान करे ॥ ५५-५६ ॥

कुलमद्यं समानीय वारुणेन च संस्कृतम् ।

वरुणं स्वरसंयुक्त पञ्चदीर्घसमन्वितम् ॥ ५७ ॥
वौं वरुणाय प्रणव मन्त्रराजेन शोधितम् ।
मुहुर्मुहुः पिबेत् पानं शक्तिजिह्वाविलोडितम् ॥ ५८ ॥
आत्मनि देवीसंयोगाद्देवीभूतां विचिन्त्येत् ।
आत्मनि शक्तिसंयोगादेकीभूतां विचिन्तयेत् ॥ ५९ ॥

इसके बाद वरुण (वं) मन्त्र से सुसंस्कृत कुल मद्य लाकर पञ्चदीर्घ स्वर समन्वित (आं ईं ऊँ ऐं औं से युक्त) वरुण (व) वां वीं वूं वै वौं, फिर प्रणव (ॐ) इस मन्त्र से शुद्धकर, शक्ति रूप जिह्वा को चलाते हुये, उस मद्य को बारम्बार पान करे और अपने में देवी से संयुक्त होने की भावना करे । फिर अपने में शक्ति के संयोग से एक होने की भावना करे ॥ ५७-५९ ॥

सूक्ष्मरूपकमात्मानं शक्तिं कुण्डलिरूपिणीम् ।
जिह्वां मूलमयीं चिन्त्य योनिञ्च कुलरूपिणीम् ॥ ६० ॥

साधक अपने को सूक्ष्मरूप वाला और शक्ति को कुण्डली रूपा समझे तथा जिह्वा को मूलमयी और योनि को कुलरूपिणी के रूप में ध्यान करे ॥ ६० ॥

कुलाकुलविभागेन आत्मानं नीयते त्वयि ।
शुद्धमन्त्रौषधेनैव रेत् म न नेः श्च प्र थ यो ॥ ६१ ॥
मथ्यमाने पुनस्तस्या जायते तत्त्वमुत्तमम् ।
तत्त्वत्यागे पठेन्मूलं साधकः स्थिरमानसः ॥ ६२ ॥

फिर कुलाकुलविभाग के द्वारा मै आप में अपने को स्थापित करता हूँ । इस प्रकार के भाव से योनि का प्रमथन (मात्र ध्यान द्वारा) करे (योनेः प्रमथनं चरेत्) । इस प्रकार शुद्ध मन्त्र एवं औषध से योनि के मन्थन करने से उत्तम तत्त्व (वीर्य) उत्पन्न होता है । जब वीर्य रूपतत्त्व का त्याग करने लगे तब स्थिरचित्त साधक मूलमन्त्र पढ़े ॥ ६१-६२ ॥

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्त्रुचा ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्ण अग्नौ जुहोम्यहम् ॥ ६३ ॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रं शुक्रत्यागे प्रकीर्त्तितः ।
शिवशक्तिसमायोगो यत्र यत्र प्रजायते ॥ ६४ ॥
तत्र तत्रैव संयोज्यं द्वयमेनं यथाक्रमात् ।
गृह्णीयात्तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुण्डोद्भवं स्मृतम् ॥ ६५ ॥

कुण्डोद्भवद्रव्य लक्षण—शुक्र के त्याग के समय 'प्रकाशाकाश.......... जुहोम्यहं स्वाहा' पर्यन्त मन्त्र कहा गया है । जिस-जिस स्थान पर शिवशक्ति का

समायोग हो, वहाँ-वहाँ उक्त दोनों मन्त्रों को पढ़कर उस द्रव्य (वीर्य) को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करे । उसको ही कुण्डोद्भव द्रव्य कहा जाता है ॥ ६३-६५ ॥

इदं कुण्डोद्भवं द्रव्यं कथितं सुरदुर्लभम् ।
गोलोद्भवं प्रवक्ष्यामि वीराणां सिद्धिहेतवे ॥ ६६ ॥

जिस कुण्डोद्भवद्रव्य को हमने ऊपर कहा है, वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है । अब वीरों की सिद्धि के लिये गोलोद्भव द्रव्य के विषय में कहता हूँ ॥ ६६ ॥

कुलीनां दीक्षितां मत्तां पतिहीनां विचक्षणाम् ।
सालङ्कारां हेतुयुक्तामनपत्यां मनोरमाम् ॥ ६७ ॥
सुन्दरीं शोभनां क्षीणां पीनोन्नतपयोधराम् ।
साधकाकाङ्क्षहृदयां कलाशास्त्रविचारिणीम् ॥ ६८ ॥
न्यासादिकं प्रकुर्वीत स्वकल्पोक्तविधानतः ।
पूर्वोक्तक्रमयोगेन तत्त्वमुत्पादयेत् सुधीः ॥ ६९ ॥
तत्त्वं गृह्णीयात् यत्नेन पूजार्थं साधकोत्तमः ।
इदं गोलोद्भवं द्रव्यं देवतातृप्तिकारकम् ॥ ७० ॥
ताम्रपात्रे गृहीत्वा तु तत्त्वद्रव्यं कुलोचितम् ।
नानागन्धसमायुक्तं कटुत्रयसमन्वितम् ॥ ७१ ॥

कुण्डगोलोद्भव द्रव्य—कुलीन, दीक्षित, युवावस्थासम्पन्न, कामातुर, पतिहीन, कामकला में विचक्षण सालङ्कार, मद्यपान किये हुये अपत्यरहिता, अत्यन्त सुन्दरी, शोभायुक्त, अत्यन्त पतली, पीन एवं उन्नत पयोधर वाली, साधक में आसक्त, कलाशास्त्र में निपुण, स्त्री में सुधी साधक अपने सम्प्रदाय के अनुसार न्यासादि कर पूर्वोक्त रीति से उसमें तत्त्व (ऊर्ध्वरेतस्) उत्पन्न करे । फिर उसे पूजा के लिये ग्रहण करे । यह गोलोद्भव द्रव्य देवताओं को प्रसन्न करने वाला होता है । अनेक प्रकार के गन्धों से युक्त कुलोचित उस द्रव्य में त्रिकटुकी (सोठ, कालीमिर्च एवं पीपर) मिलाकर ताम्रपात्र में पूजा के लिए स्थापित करे ॥ ६७-७१ ॥

कुण्डगोलोद्भवादीनां शोधनञ्च प्रचक्ष्यते ।
शोधयेत् कुण्डगोलादीन् नयत्वर्चासमाहितः ॥ ७२ ॥

अब कुण्डगोलोद्भव द्रव्य के शोधन का प्रकार कहता हूँ । शोधन किया हुआ कुण्डगोलद्रव्य अर्चा के लिये उपयुक्त होता है ॥ ७२ ॥

शोधनमन्त्राः

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ७३ ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ७४ ॥
प्लुं ज्लुं म्लुं ग्लुं ततः स्वाहा अमृतेति ततो वदेत् ।
अमृते अमृतोद्‌भवे अमृतवर्षिणीति च ॥ ७५ ॥
अमृतं स्रावय स्वाहा द्विरुच्चार्येत्यपि स्मरेत् ।
शेषं पूर्ववदाचर्य अथवान्यतमञ्चरेत् ॥ ७६ ॥

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ प्लुं ज्लुं म्लुं ग्लुं स्वाहा पर्यन्त मन्त्र पढ़कर 'अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय अमृतं स्रावय' इस मन्त्र को पढ़े । शेष क्रिया पूर्ववत् करे, अथवा कोई एक क्रिया करे ॥ ७३-७६ ॥

तारं कूर्चास्त्रमुच्चार्य शिवादित्रयविन्दुयुक् ।
वह्निजाया तारमाया श्रीबीजं सुरतिप्रिये ॥ ७७ ॥
तारमायारमास्त्रञ्च वह्निजायाञ्च वर्तुलम् ।
ततोऽमृतोद्‌भवायेति अमृतवर्षिणी परम् ॥ ७८ ॥
प्रिये देवि पदं शुक्रशापं मोचययुग्मकम् ।
वह्निजायान्तमन्त्रेण द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ॥ ७९ ॥

तार (ॐ), कूर्च (हूँ), फिर अस्त्र मन्त्र फट् का उच्चारण कर, फिर तीन विन्दु से युक्त शिवादि (शं षं सं), फिर वह्निजाया (स्वाहा), फिर तार (ॐ), माया ह्रीं, फिर श्रीबीज श्रीं, फिर सुरतिप्रिये, तदनन्तर तार (ॐ), माया (ह्रीं), अस्त्र (फट्), फिर वर्तुल (ॐ), 'अमृतोद्भवाय अमृतवर्षिणि प्रिये देवि शुक्रशापं मोचय शुक्रशापं मोचय' फिर अन्त में वह्निजाया 'स्वाहा' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर गोलोद्भव द्रव्य का संशोधन करे ॥ ७७-७९ ॥

वीर्यमेतत् समादाय विशेषार्घ्ये नियोजयेत् ।
तेनामृतेन देवेशीं तर्पयेत् साधकोत्तमः ॥ ८० ॥

फिर पूर्वोक्त कुण्डोद्भव द्रव्य लेकर भगवती को विशेषार्घ्य समर्पित करे और उस अमृतद्रव्य से भगवती को उत्तम साधक तर्पण करे ॥ ८० ॥

सान्निध्यं जायते देव्याः सर्वकाममुपालभेत् ।
अचिरान्मृत्युमाप्नोति द्वन्द्वं कृत्वा नराधमः ॥ ८१ ॥

ऐसा करने से देवी का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है और समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । देर में मृत्यु होती है और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है । उसमें सन्देह

करने वाला नराधम है ॥ ८१ ॥

शङ्काविहीनेन कुलाचारः कर्त्तव्यः

निर्विकल्पकचेतास्तु कुर्यादेवं समाहितः ।
शङ्कया जायते ग्लानिः शङ्कया दुःखभाजनम् ॥ ८२ ॥

साधक इस कार्य को निर्विकल्प (सन्देहरहित) चित्त होकर करे । क्योंकि शङ्का से ग्लानि होती है और शङ्का से दुःख का भाजन होना पड़ता है ॥ ८२ ॥

शङ्कया सर्वहानिः स्याच्छङ्कया धनहानिता ।
शङ्कया सिद्धिहानिः स्यात्तस्माच्छङ्कां परित्यजेत् ॥ ८३ ॥

इसमें शङ्का करने से सब कुछ नष्ट हो सकता है और शङ्का से धन की हानि भी सम्भव है । शङ्का से सिद्धि में बाधा होती है इसलिये शङ्का का सर्वथा त्याग करना चाहिए ॥ ८३ ॥

द्रव्याणांशक्तिभेदकथनम्

अथ वक्ष्यामि द्रव्याणां शक्तिभेदेन यद्भवेत् ।
स्वल्पाङ्गीं दीर्घकेशीं च साधकः शुद्धभावतः ॥ ८४ ॥
पुष्पगन्धा जवापुष्पैर्देवीं गन्धैश्च पूजयेत् ।
तस्याः पुष्पैः प्रयत्नेन सर्वकाममुपालभेत् ॥ ८५ ॥

इब सभी द्रव्यों में शक्तियों के भेद को कहता हूँ और उससे होने वाले परिणाम को भी कहता हूँ । छोटे अङ्गों वाली, लम्बे लम्बे केशों वाली और पुष्प के समान गन्ध वाली स्त्री का, जब पुष्प तथा सुगन्ध से अर्चन करता है तब उसके पुष्पों से प्रयत्नपूर्वक अर्चना करने वाला साधक सभी कामनायें पूर्ण कर लेता है ॥ ८४-८५ ॥

दीर्घाङ्गी दीर्घनयना श्यामा विलज्जिता सदा ।
सुगन्धा सा सुरताद्यैर्विल्वपत्रैः सुगन्धिता ॥ ८६ ॥
तस्याः पुष्पैः प्रयत्नेन देवीं सम्पूजयेत् पराम् ।
गौराङ्गी पुष्टजङ्घा या पुष्टहस्ता मदातुरा ॥ ८७ ॥
मदगन्धा च खार्जुरैः पलाशैः कुसुमैर्यजेत् ।
पुष्पगन्धा जगद्धात्री सा सदा कृष्णरूपिणी ॥ ८८ ॥

दीर्घ अङ्गों वाली विशाल नेत्रा, श्यामा, सर्वदा लज्जाशील, सुरतादि काल में बिल्वपात्र के सुगन्ध के समान सुगन्ध वाली स्त्री के पुष्प से प्रयत्नपूर्वक परा देवी का पूजन करे । गौराङ्गी, पुष्टजङ्घा, पुष्टहस्ता, मदनातुरा और मधुगन्धा के पुष्प में

खर्जूर एवं पलाश के पुष्पों से परा की पूजा करे । पुष्प के समान गन्ध वाली जगद्धात्री भगवती सर्वदा कृष्ण स्वरूपा है ॥ ८६-८८ ॥

कृशाङ्गी कृशमध्या च मधु दत्त्वा यजेत् पराम् ।
क्षीणाङ्गी च यदा कृष्णा दीर्घकेशी मदाकुला ॥ ८९ ॥
तीव्रगन्धा च मन्दारैर्नारिकेलोद्भवैः सदा ।
पुष्टा खर्वाऽसिताङ्गी या सा भवेन्मदनाश्रया ॥ ९० ॥
मधुगन्धा च गौडीभिः पद्मपुष्पैर्यजेत् पराम् ।
कृशाङ्गी गौरदीर्घा या सा परा शिशुमालिना ॥ ९१ ॥

कृशाङ्गी एवं सूक्ष्म कटि वाली स्त्री को मधु देकर परा भगवती की पूजा करे । क्षीण अङ्ग वाली, जब काली हो, दीर्घ केशो वाली एवं मदनातुरा एवं तीव्रगन्धा हो, तब उसके मन्दार एवं नारिकेल के समान वाले पुष्पों से परा देवी की पूजा करे । पुष्टा वामनी काली, जो मदन से आतुर हो और मधु के समान गन्ध वाली हो, तब उसके मद्य के समान एवं कमल के समान पुष्पों से परा देवी की पूजा करे । कृशाङ्गी, गौर दीर्घा तो साक्षात् परा है ही अतः उनकी शिशु (छोटे पुष्प की) माला से पूजा करे ॥ ८९-९१ ॥

साधकः पूजयेद्देवीं मल्लिकाभिर्विशेषतः ।
पुष्टा खर्वाऽसिताङ्गी या सेन्दीवरविकारकैः ॥ ९२ ॥
अस्या मैथुनसम्भूतैः केतकीगन्धयोजितैः ।
क्षीणा दीर्घा च गौराङ्गी मालतीगन्धयोजिताः ॥ ९३ ॥
सा भवेदङ्कुशा नाम्नी तस्या मैथुनभावुकैः ।
बन्धूकैर्यदि गौराङ्गी यानङ्गमेखला शुभा ॥ ९४ ॥
कर्पूरगन्धहारिद्रद्रव्यैस्तां परिपूजयेत् ।
आसां द्रव्यं गृहीत्वा तु तेनैव परिशोधयेत् ॥ ९५ ॥

साधक मल्लिका पुष्पों से विशेषरूप से भगवती की पूजा करे । पुष्टा, वामनी एवं श्वेत वर्ण वाली, उस मल्लिका-पुष्प के मैथुन से उत्पन्न कमल के समान गन्ध से, अथवा केतकी के समान गन्ध वाले पुष्प से परा भगवती की पूजा करे । क्षीणा, दीर्घा एवं कृशाङ्गी मालती के समान गन्ध वाली ऐसी स्त्री अङ्कुशा नाम वाली होती है । उसके साथ मैथुन से उत्पन्न बन्धूक पुष्प के समान पुष्पों से परा भगवती की पूजा करे । गौराङ्गी (स्त्री) तो साक्षात् शुभ तथा अनङ्गमेखला ही है । उन देवी का कर्पूर गन्ध से तथा हरिद्रा से पूजन करे । उनका द्रव्य लेकर उसीसे उसे शुद्ध करे ॥ ९३-९६ ॥

तत्तत्पुष्पैः प्रपूज्यैव सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।

ज्ञात्वा नैवं क्रमं यो हि यदि देवीं प्रपूजयेत् ॥ ९६ ॥
भवेद्धि विफलं सर्वं यज्ञेषु घृतवर्जितम् ।

इस प्रकार तत्तत्पुष्पों से परा देवी की पूजाकर योगी साधक समस्त सिद्धि प्राप्त कर लेता है । जो इस क्रम को जाने बिना परा भगवती की पूजा करता है उस देवी की सारी पूजा व्यर्थ हो जाती है जिस प्रकार बिना घृत के यज्ञ निष्फल हो जाता है ॥ ९६-९७ ॥

यदुक्ता दशमी शक्तिः सङ्कीर्णवृत्तिसंस्थिता ॥ ९७ ॥
गन्धमात्रं तु गृह्णीयाद्वर्णमात्रं न भेदयेत् ।
स्वयं स्रष्टा स्वयं विष्णुः स्वयं देवो महेश्वरः ॥ ९८ ॥

सङ्कीर्ण वृत्ति में रहने वाली जो एक दशमी शक्ति कही गई है । उसे वर्ण (जाति) मात्र से भिन्न न समझे । केवल उसका गन्ध ही ग्रहण करे क्योंकि उसके भी देवता ब्रह्मा एवं विष्णु तथा स्वयं महेश्वर हैं ॥ ९७-९८ ॥

साधकानन्दभावेन यजेद्देवीं कुलक्रमे ।
गजाश्वानां वृषाजानां नराणां शोणितारुणैः ॥ ९९ ॥

कुल क्रम में साधक को जिस प्रकार आनन्द प्राप्त हो उस विधि से देवी की पूजा करनी चाहिये । हाथी, घोड़ा, बैल, बकरा तथा मनुष्य के लालवर्ण वाले रक्त से परा की पूजा करे ॥ ९९ ॥

पञ्चतत्त्वप्रशंसा

कुण्डगोलोद्भवैर्मांसैः स्वयम्भूकुसुमैः सदा ।
मत्स्यैर्मद्यैश्च नैवेद्यैः प्रत्यक्षीक्रियते नरैः ॥ १०० ॥

कुण्डगोलोद्भव द्रव्य से, स्वयम्भू के पुष्पों से, मत्स्य एवं मद्य से, तथा नैवेद्य द्वारा अर्चना करने से साधक पराम्बा का प्रत्यक्ष कर सकता है ॥ १०० ॥

च यां थु दि ने रा मै म जातिभेदं न चाचरेत् ।
नाधर्मो जायते किञ्चिन्महामन्त्रस्य साधने ॥ १०१ ॥

मदिरा एवं मैथुन में (=मदिरायां मैथुन च) जातिभेद त्याग देवे क्योंकि महामन्त्र के साधन में किसी प्रकार का अधर्म नहीं होता ॥ १०१ ॥

सर्वसिद्धिर्भवत्येव पञ्चतत्त्वनिवेदनात् ।
द्रव्यशुद्धेरभावेन नित्यं कर्म न लोपयेत् ॥ १०२ ॥

मद्यादि पञ्चतत्त्वों के निवेदन से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । यदि द्रव्य शुद्धि का अभाव हो, तो नित्य कर्म का लोप न करे ॥ १०२ ॥

प्रमादाद्यदि लुप्येत रौरवं नरकं व्रजेत् ।
मकारपञ्चकं कृत्वा पुनर्जन्मं न विद्यते ॥ १०३ ॥

प्रमादवश यदि साधक के नित्य कर्म का लोप हो जावे, तो उसे नरक प्राप्त होता है । मकारपञ्चक का विधान करने से पुनः जन्म नहीं होता ॥ १०३ ॥

अतएव महाप्राज्ञः पञ्चतत्त्वेन पूजयेत् ।
येनावश्यं विधातव्यं मदिरादानपूजनम् ॥ १०४ ॥

इसलिये महाप्राज्ञ साधक पञ्चतत्त्वों से देवी का पूजन करे । जिसमें मदिरा देकर भगवती का आवश्यक पूजन सम्पन्न हो ॥ १०४ ॥

नष्टैः पर्युषितोच्छिष्टैर्दुर्गन्धैर्गन्धवर्जितैः ।
हेतुभिः परपात्रस्थैस्तर्पणं निष्फलं भवेत् ॥ १०५ ॥

सर्वथा विकृत अतएव विनष्ट एवं पर्युषित (बासी), उच्छिष्ट (जूठी), दुर्गन्ध तथा गन्धरहित दूसरों के पात्र में स्थित (हेतु=) मद्यों से भगवती का तर्पण न करे क्योंकि वह निष्फल है ॥ १०५ ॥

आमिषासवसौरभ्यहीनं यस्य मुखं भवेत् ।
प्रायश्चित्ती स वर्ज्यश्च पशुरेव न संशयः ॥ १०६ ॥

मांस एवं आसव के सुगन्धि से जिसका मुख रहित हो; वह प्रायश्चित्ती है; निन्द्य है, किं बहुना; साक्षात् पशु है ॥ १०६ ॥

यावदासवगन्धः स्यात्तावत् पशुपतिः स्वयम् ।
विनालिमांसगन्धेन पशुः पशुपतिः स्वयम् ॥ १०७ ॥

जब तक आसव में गन्ध है, तब तक वह स्वयं पशुपति है । इसी प्रकार गन्धरहित मांस वाला पशु भी स्वयं पशुपति है ॥ १०७ ॥

गत्स्यमांसविहीनेन द्रव्येणापि न तर्पयेत् ।
पिशितं तिलमात्रं तु तिलार्धमपि विन्दुना ॥ १०८ ॥
सकृत्तर्पणमात्रेण यज्ञकोटिफलं लभेत् ।
रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य पञ्चतत्त्वं तु रक्षयेत् ॥ १०९ ॥

मत्स्य एवं मांस रहित द्रव्य से भी भगवती का तर्पण न करे । तिल मात्र, अर्द्ध तिल मात्र या विन्दु मात्र के पिशित (मांस) से एक बार भी तर्पण करने से करोड़ों यज्ञों का फल होता है । पूजन के समय रक्त वस्त्रों से आच्छादित कर पञ्चतत्त्व की रक्षा करे ॥ १०८-१०९ ॥

पशुसन्निधौ वीरपूजा निषिद्धा

मकारपञ्चकैर्देवीं नार्चयेत् पशुसन्निधौ ।
संस्थापयेन्न दक्षे च द्रव्यशुद्धिरितीरिता ॥ ११० ॥

पशु साधक के सन्निधान में पञ्चमकारों से देवी की पूजा न करे । पशु साधक को अपने दक्षिण स्थापित न करे । इस प्रकार हमने द्रव्य की शुद्धि का भी विधान कह दिया ॥ ११० ॥

एतत्तु कथितं द्रव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
द्विजानामनुकल्पन्तु न साक्षाच्च विकल्पिनाम् ॥ १११ ॥

इस प्रकार सिद्धि प्रदान करने वाले द्रव्यों के विषय में हमने कहा । विकल्प चाहने वाले ब्राह्मणादि के लिये इसका साक्षात् प्रयोग नहीं करना चाहिये अत: उसका अनुकल्प कहता हूँ ॥ १११ ॥

कुलद्रव्यप्रतिनिधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्रव्यादिपरिकल्पनम् ।
ब्राह्मणस्ताम्रपात्रे तु मधुमद्यं प्रकल्पयेत् ॥ ११२ ॥

मद्य का विकल्प—अब ब्राह्मणादि के लिये मद्य के अनुकल्प के रूप में द्रव्यादि के विषय में कहता हूँ । ब्राह्मण ताम्रपात्र में मधु स्थापित कर उसमें मद्य की भावना करे ॥ ११२ ॥

अथवा ताम्रपात्रेषु गव्यं दद्याद् घृतं विना ।
नारिकेलोदकं कांस्ये गुडार्द्रकं तथैव च ॥ ११३ ॥

अथवा ताम्रपात्र में घृतरहित पञ्चगव्य रखकर उसे समर्पित करे । अथवा कांसपात्र में नारियल का पानी अथवा गुड एवं आदी प्रदान करे ॥ ११३ ॥

गौडी देया क्षत्रियेण माध्वी वैश्येन तत्र वै ।
सर्वं शूद्रेण दातव्यं यत्र वा तद्रुचिर्भवेत् ॥ ११४ ॥

क्षत्रिय गौडी और वैश्य माध्वी मद्य प्रदान करे । शूद्र इन सब वस्तुओं में जिसमें रुचि हो वह प्रदान करे ॥ ११४ ॥

(यद्वा) मत्स्यमांसादिविजया चाष्टगन्धैः सुमिश्रिता ।
सम्मर्द्य वटिकां कृत्वा संगृह्याथ विचक्षणः ॥ ११५ ॥

अब **मांस का विकल्प** कहते हैं—अष्टगन्ध से मिश्रित मत्स्य एवं मांसादि से युक्त विजया (भाँग) को एक में मल कर उसकी गुटिका (गोलियाँ) बनाकर उन्हें समर्पित करे ॥ ११५ ॥

तदभावे तु विजया जले संलोड्य तर्पयेत् ।
गुडमिश्रेण तक्रेण तर्पयेन्मधुयोजितम् ॥ ११६ ॥

उसके अभाव में केवल विजया जल में पीसकर भगवती का तर्पण कर समर्पित करे अथवा गुड़ से मिश्रित मट्ठे में मधु मिलाकर भगवती का उससे तर्पण करना चाहिए ॥ ११६ ॥

सौवीरेणाथवा कुर्यादितत्कर्म न लोपयेत् ।
मांसाभावे तु लसुनमार्द्रकं नागरन्तु वा ॥ ११७ ॥

अथवा सौवीर (?) से इस कर्म को करे । किन्तु मांस दान की प्रक्रिया का लोप न करे । मांस के अभाव में साधक लहशुन एवं आदी (=अदरख) और नागर (मोथा) का प्रयोग करे ॥ ११७ ॥

शूरणं मांसवटकं मूलं वान्यतमञ्चरेत् ।
मांसानुकल्पं कथितं मीनस्याथ विधिं शृणु ॥ ११८ ॥

अथवा शूरन अथवा मांस का वटक (?) अथवा मूलक में किसी एक को प्रदान करना चाहिए । यहाँ तक हमने मांस का अनुकल्प बतलाया । अब मीन की विधि सुनो ॥ ११८ ॥

माहिषं गवयं क्षीरं अजाक्षीरं तथैव च।
फलमूलञ्च यत्किञ्चिद्दग्धञ्चेदामिषं भवेत्॥ ११९ ॥

मीन का अनुकल्प—भैंस का दूध, गवय का दूध, बकरी का दूध अथवा यत्किञ्चित् फल मूल यदि इसे आग पर दग्ध कर दिया जावे तो वह आमिष हो जाता है ॥ ११९ ॥

कुण्डगोलादिप्रतिनिधिः

मीनस्य कथितं कल्पं कुण्डगोलोद्भवं शृणु ।
अपरापुष्पगर्भे तु कुलस्थानं मनोरमम् ॥१२० ॥
सर्वसुखं भवेत्तत्तु महाकामकलात्मकम् ।
हयारिकुसुमे नित्यं स्वयमस्ति सदाशिवः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार मीन का भी अनुकल्प हमने कह दिया । अब **कुण्डगोलोद्भव का विकल्प** सुनिए—अपराजिता के पुष्प के गन्ध में अत्यन्त मनोहर कुलदेवी का स्थान है । वह महाकाम कलात्मक है और सर्वसुखावह है । इसी प्रकार हयारि (करवीर) के पुष्प में स्वयं सदाशिव का निवास है ॥ १२०-१२१ ॥

तन्मुखे द्रव्यमादाय पुष्पमध्येतु चन्दनम् ।

रक्तकुङ्कुमरागं वा भिन्नं तत्त्वं शिवात्मकम् ॥ १२२ ॥
योजयेच्छिवशक्त्योस्तु ऐक्यं सम्भावयन् धिया ।
क्षणं विचिन्त्य तत्रैव सम्पूज्य परमेश्वरीम् ॥ १२३ ॥

उसके मुख में द्रव्य डालकर तथा हयारि (करवीर) के मध्य में रक्तचन्दन डालकर उसे ग्रहण करे । अथवा रक्तकुङ्कुम के समान पराम्बा है, उससे भिन्न श्वेत-तत्त्व शिवात्मक है । इस प्रकार शिवशक्त्यात्मक दोनों तत्त्वों को एक में मिलाकर बुद्धिपूर्वक ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार क्षणमात्र ध्यान कर साधक परमेश्वरी का पूजन करे ॥ १२२-१२३ ॥

जप्त्वा तदेव कुण्डोत्थं द्रव्यं परमदुर्लभम् ।
अन्तरादधिकं ज्ञेयं एतद्द्रव्यं सुदुर्लभम् ॥ १२४ ॥

फिर मूल मन्त्र का जप करे । इस प्रकार का कुण्डोत्थ द्रव्य परम दुर्लभ है इसे सभी अन्य द्रव्यों से अधिक समझना चाहिए । इस प्रकार का द्रव्य सर्वथा दुर्लभ है ॥ १२४ ॥

यद्यच्च कथितं द्रव्यमनुकल्पं विकल्पिनाम् ।
आदाय पूजयेद्देवीमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥ १२५ ॥

इस प्रकार हमने विकल्प चाहने वालों के लिये अनुकल्प का विधान कहा । इन्हीं को लेकर परमेश्वरी परा भगवती की पूजा करे । अन्यथा पूजा निष्फल हो जाती है ॥ १२५ ॥

अकृत्वा पञ्चमे पूजां न लब्ध्वा गुरुसम्मतिम् ।
स्वहस्तेन पशुं हत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १२६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये पञ्चमोल्लासः ॥५॥

जो इन पाँचों द्रव्यों से परमेश्वरी की पूजा नहीं करता और गुरु की सम्मति लिए बिना ही तथा अपने हाथ से स्वयं पशु का मारण करता है, वह रौरव नरक में जाता है ॥ १२६ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के पञ्चम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

षष्ठ उल्लासः

...৩❀৩...

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि अर्घ्यस्य विधिमुत्तमम् ।
गृहीत्वाज्ञां महादेव्या विशेषार्घ्यं समाचरेत् ॥ १ ॥

अर्घ्य विधान—अब इसके बाद अर्घ्य की सर्वोत्तम विधि कहता हूँ । महादेवी की आज्ञा लेकर विशेषार्घ्य का निर्माण करना चाहिये ॥ १ ॥

आत्मदेवीद्वयोर्मध्ये भूमौ चक्रं लिखेत्ततः ।
त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं वृत्तं भूगृहसंयुतम् ॥ २ ॥

साधक अपने और देवी के मध्य में अर्घ्यपात्र स्थापित कर भूमि पर चक्र का निर्माण करे और त्रिकोण, फिर षट्कोण, फिर वृत्त, इसके बाद भूगृह का निर्माण करना चाहिये ॥ २ ॥

मध्ये मायां समालिख्य प्रोक्षयेत्तदनन्तरम् ।
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण सामान्यार्घ्यजलेन च ॥ ३ ॥

मध्य में माया (ह्रीं) लिखकर उसके बाद आदि में मूल मन्त्र एवं अन्त में अस्त्र मन्त्र पढ़कर सामान्य अर्घ्य के जल से उसका प्रोक्षण करना चाहिये ॥ ३ ॥

आधारशक्तिमभ्यर्च्य पूजयेत् पीठदेवताः ।
चतुरस्त्रे पूर्णशैलमुड्डीयानं जलन्धरम् ॥ ४ ॥
पूजयेत् कामरूपञ्च पूर्वादिक्रमयोगतः ।

फिर आधार शक्ति की पूजा कर पीठ, देवता का पूजन करना चाहिये । इस प्रकार चतुरस्त्र के पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्णशैल, उड्डीयान, जलन्धर और कामरूप की पूजा करे ॥ ४-५ ॥

अङ्गषट्कं यजेत्तत्र षट्कोणेषु च मन्त्रवित् ॥ ५ ॥

तदनन्तर मन्त्रवेत्ता को षट्कोणों में षडङ्ग की पूजा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

मूलमन्त्रं त्रिकोणेषु सम्पूज्य साधकोत्तमः ।

आधारशक्तिं मध्ये च सम्पूज्य तदनन्तरम् ॥ ६ ॥

उत्तम साधक त्रिकोण में मूलमन्त्र का पूजन कर मध्य में आधारशक्ति की पूजा करे ॥ ६ ॥

आधारपात्रादिवर्णनम्

अस्त्रेण क्षालिताधारं स्थापयेत्तत्र साधकः ।
आधारेण विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति मातरः ॥ ७ ॥

फिर अस्त्र मन्त्र (फट्) पढ़कर, आधार का प्रक्षालन कर, उसे वहीं स्थापित करे । क्योंकि बिना आधार के मातृकाओं के गिरने का भय रहता है । अतः आधार के बिना उनको प्रसन्नता नहीं होती ॥ ७ ॥

तस्माद्विधिवदाधारं कल्पयेत् कुलनायिके ।
आधारं त्रिपदं प्रोक्तं षट्पदं वा चतुष्पदम् ॥ ८ ॥
अथवा वर्तुलाकारं कुर्यादाधारमुत्तमम् ।
एषामन्यतमं स्थाप्य पूजयेत् कुलवर्त्मना ॥ ९ ॥

इसलिये कुलनायिका के निमित्त विधिपूर्वक आधार की स्थापना अवश्य करनी चाहिये । वह आधार तीन पैर का, चार पैर का अथवा छह पैर का कहा गया है अथवा वह गोलाकार होना चाहिये । इनमें किसी भी प्रकार का उत्तम आधार कुलमार्ग के अनुसार स्थापित करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा सम्पूज्य तेन वर्त्मना ।
आदौ सेन्दुं महाकालं वह्निमण्डलं ङेयुतम् ॥ १० ॥
हृदन्तं मन्त्रमुच्चार्य आधारे पूजयेत्ततः ।
तत्र सम्पूजयेद्वह्नेः कलादशकं सञ्ज्ञया ॥ ११ ॥

फिर पूर्ववत् मण्डल बनाकर कुलमार्गानुसार उसकी पूजा करे । सर्वप्रथम इन्दु (अनुस्वार) से युक्त महाकाल (मं), फिर चतुर्थ्यन्त वह्निमण्डल (वह्निमण्डलाय), अन्त में हृत् (नमः) मन्त्र का उच्चारण कर आधार मण्डल की पूजा करे । उसपर अग्नि की दशो कलाओं का पूजन करे ॥ १०-११ ॥

वह्नेः कलादशकम्

धूम्रार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहेऽपि च ॥ १२ ॥
यादिसेन्दुक्षकारान्ता अब्जाद्याः परिकीर्तिताः ।
ङेयुता वै नमोऽन्ताश्च कला वह्नेरितीरिताः ॥ १३ ॥

धूम्रा, अर्चिरुष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहा और कव्यवाहा—ये अग्नि की दश कलायें हैं । ॐ वं आदि में अब्ज (?) पुनः यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं पर्यन्त दश मन्त्र उनके बीजाक्षर हैं । चतुर्थ्यन्त, उनके नाम तथा अन्त में नमः लगाकर उनका पूजन करना चाहिये । यथा—ॐ अं धूम्रायै नमः, ॐ यं अर्चिरुष्मायै नमः इत्यादि ॥ १२-१३ ॥

अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण क्षालितं पात्रमुत्तमम् ।
स्वर्णरौप्यशिलाकूर्मकपालालाबुमृण्मयम् ॥ १४ ॥
नारिकेलशङ्खताम्रमुक्ताशुक्तिसमुद्भवम् ।
पुण्यवृक्षसमुद्भूतं पात्रं कुर्यान्मनोरमम् ॥ १५ ॥

फिर मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' अस्त्र मन्त्र से प्रक्षालित कर उत्तम पात्र में; जो सुवर्ण, चाँदी, कूर्म, कपाल अलाबु, मिट्टी, नारिकेल, शङ्ख, ताँबा, मोती अथवा शुक्ति का बना हो अथवा किसी पुण्य वृक्ष के काष्ठ से निर्मित हो; उसका निर्माण करे ॥ १२-१५ ॥

(यद्वा) **काञ्चनरौप्यकाचताम्रजनितं मुक्ताकपालोद्भवं**
विश्वामित्रमयञ्च कामदमिदं हैमं प्रियं स्फाटिकम् ।
भावप्रीतिमदष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं
कापालं स्फुटमन्त्रसिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम् ॥ १६ ॥

(अथवा) जो सुवर्ण, चाँदी, सीसा, ताँबे का अथवा मोती अथवा कपाल हो; अथवा विश्वामित्रमय हो; ऐसा पात्र कामनाओं की पूर्त्ति करता है । हेम अथवा स्फटिक निर्मित पात्र भाव और प्रीति तो उत्पन्न करता ही है; आठो प्रकार की सिद्धियाँ भी प्रदान करता है । नारिकेल का पात्र और कापाल पात्र स्पष्ट रूप से मन्त्रसिद्धि प्रदान करता है । मोती का पात्र मुक्ति प्रदान करता है ॥ १६ ॥

(यद्वा) **सौवर्णरौप्यताम्राणि सर्वसिद्धिकराणि च ।**
शान्तिके च शिलापात्रं स्तम्भे चैव तु मृण्मयम् ॥ १७ ॥
नारिकेलं सर्ववश्ये मोक्षे चैव तु मौक्तिकम् ।
ज्ञानप्रदं कपालं स्यान्मारणे लौहमुत्तमम् ॥ १८ ॥

(अथवा) सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, निर्मित पात्र सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करते हैं शान्ति कार्य में शिलापात्र, स्तम्भन में मिट्टी का, वशीकरण में नारिकेल का पात्र, मोक्ष में मोती का पात्र, ज्ञान प्राप्ति में कपाल पात्र, मारण में लोहे का पात्र प्रशस्त कहा गया है ॥ १७-१८ ॥

कुर्यात् स्वर्णमयं पात्रं विश्वामित्रं कपालकम् ।

शङ्खं ज्ञानप्रदं मुक्ताशुक्तिविद्याप्रदायिनी ॥ १९ ॥

अथवा स्वर्णमय पात्र, विश्वामित्र पात्र कपाल पात्र तथा शङ्ख पात्र ज्ञानप्रद है। मोती और शुक्तिपात्र विद्याप्रद है ॥ १९ ॥

कपालालावूपात्राणि योगसिद्धिकराणि च।
पुण्यवृक्षजपात्राणि सर्वपापहराणि च ॥ २० ॥

कपाल और अलाबू (लौकी का) पात्र योग की सिद्धि करने वाले हैं और पुण्य वृक्षों के काष्ठ से बने पात्र सभी प्रकार के पापों को दूर करते हैं ॥ २० ॥

उक्तेष्वेतेषु पात्रेषु पात्रमेकं प्रकल्पयेत्।
षोडशाङ्गुलविस्तार षष्ठाङ्गुलसमुच्छ्रयम् ॥ २१ ॥
अथवापि तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धं वापि कारयेत्।
एकाङ्गुलं तथा सार्धं षट्कञ्च वै प्रमाणतः ॥ २२ ॥

उपर्युक्त कहे गये पात्रों में कोई एक पात्र निर्माण करे। जिसका विस्तार १६ अङ्गुल और ऊँचाई छह अङ्गुल हो। अथवा उसका आधा; अथवा उस आधे का भी आधा पात्र निर्माण करे; अथवा कम से कम प्रमाण में साढ़े छह अङ्गुल लम्बा और एक अङ्गुल ऊँचा पात्र निर्माण करे ॥ २१-२२ ॥

अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं सच्छिद्रं परिवर्ज्जयेत्।
न योजयेद् भग्नपात्रं स्वप्रादेशं प्रशस्यते ॥ २३ ॥

इससे छोटा से भी छोटा पात्र हो सकता है किन्तु उसे सच्छिद्र नहीं होना चाहिये। टूटा-फूटा पात्र उपयोग में नहीं लाना चाहिये। अपने प्रादेश मात्रा (= एक बित्ता) का पात्र प्रशस्त कहा गया है ॥ २३ ॥

एषामेकतमं पात्रं स्थापयेत् त्रिपदोपरि।
मण्डलं पूर्ववत् कृत्वा पूजयेत् पूर्ववर्त्मना ॥ २४ ॥

इनमें से कोई एक पात्र त्रिपद पर स्थापित करे। उस पर पूर्ववत् मण्डल निर्माण करे और उसका पूजन पूर्व की भाँति करे ॥ २४ ॥

सूर्यस्य मण्डलं तत्र चिन्तयित्वाथ पूजयेत्।
स्वराद्यं विन्दुसहितं ङेयुतम् अर्कमण्डलम् ॥ २५ ॥

उस मण्डल में सूर्यमण्डल का ध्यान कर उनका पूजन करे। आदि में विन्दुसहित स्वरादि मन्त्र से चतुर्थ्यन्त लगाकर सूर्यमण्डल की पूजा करे। यथा— 'ॐ अं आं इं ईं उं ऊँ एं ऐं ओं औ अं अः सूर्यमण्डलाय नमः पूजयामि' इत्यादि ॥ २५ ॥

नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य पूजयित्वार्घ्यपात्रकम् ।
कलाः सम्पूजयेत्तत्र भानोर्द्वादशसञ्ज्ञकाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार 'नमोऽन्त' पर्यन्त मन्त्र का उच्चारण कर अर्घ्यपात्र की पूजा कर सूर्य के द्वादश कलाओं की उसमें पूजा करे ॥ २६ ॥

द्वादशसूर्यकलाः

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ॥ २७ ॥

तपिनी, तापनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि ,सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा—ये द्वादश कलाओं के नाम है ॥ २७ ॥

कभाद्याश्च ठडान्ता वै विन्दुयुक्ता यथाक्रमात् ।
बीजाद्याश्च कला ज्ञेयाश्चतुर्थ्याद्या नमोऽन्विताः ॥ २८ ॥

आदि में क से लेकर भ पर्यन्त वर्ण तथा अन्त में ठ से लेकर ड पर्यन्त मातृका वर्णों से, कला के आदि अक्षरयुक्त बीज से चतुर्थ्यन्त लगाकर उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ २८ ॥

इमाः कलाः सुसम्पूज्याः पात्रञ्च पूजयेत्ततः ।
रक्तचन्दनपुष्पैश्च सुगन्धैः सुमनोहरैः ॥ २९ ॥
ततश्च पूरयेत् पात्रं त्रिभागं कुम्भहेतुतः ।
वरुणं मूलमन्त्रञ्च विलोममातृकां पठन् ॥ ३० ॥

इन कलाओं की पूजा कर लेने के पश्चात् उस पात्र की भी लाल चन्दन तथा मनोहर सुगन्धित लाल पुष्पों से पूजा करे । फिर कुम्भ में रहने वाले हेतु (मद्य) से उस पात्र के तीन भाग को वरुण (व) मूल मन्त्र तथा विलोम (उल्टे) क्रम से मातृका वर्णों को पढ़ते हुये पूर्ण करे ॥ २९-३० ॥

जलेन भागमेकं तु पूरयेत् साधकोत्तमः ।
तत्र दूर्वाक्षतारक्तपुष्पचन्दनसंयुतम् ॥ ३१ ॥
पूर्वोद्धृतं कुण्डगोलं विल्वपत्रं क्षिपेत्ततः ।
मांसं मत्स्यं विनिक्षिप्य मुद्राञ्चैव विशेषतः ॥ ३२ ॥

शेष एक भाग जल से पूर्ण करे । उसमें दूर्वा, अक्षत, रक्तपुष्प, रक्तचन्दन, संयुक्त पूर्वोद्धृत कुण्ड गोल तथा बिल्वपत्र डाल देवे । मांस एवं मत्स्य डालकर विशेष रूप से मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ३१-३२ ॥

नानासुगन्धिकञ्चैव नवरत्नं विनिक्षिपेत् ।

एलालवङ्गकक्ष्वेलजातीफलसमन्वितम् ॥ ३३ ॥
चन्द्रचन्दनकस्तूरीरोचनागुरुकुङ्कुमम् ।
स्वयम्भूकुसुमं कुण्डगोलोत्थञ्चाष्टगन्धकम् ॥ ३४ ॥
तत्र क्षिप्त्वा च वीरेन्द्रः पूजयेच्चन्द्रमण्डलम् ।
सबिन्दुं वामकर्णञ्च ङेयुतं सोममण्डलम् ॥ ३५ ॥
हृदन्तं मनुमुच्चार्य पात्रमध्ये प्रपूजयेत् ।
कला सोमस्य तत्रैव द्विरष्टसंख्यका यजेत् ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य तथा नवरत्न भी प्रक्षिप्त करे। फिर इलायची, लवङ्ग, कक्कोल, जाती फल सहित कपूर, चन्दन, कस्तूरी, रोचना, अगुरु, कुङ्कुम, स्वयम्भू, कुसुम, कुण्डगोलोद्भव तथा अष्टगन्ध डालकर वीरेन्द्र साधक विन्दु के सहित वामकर्ण ऊँ के बाद चतुर्थ्यन्त सोममण्डल, अन्त में हृत् नमः पढ़कर इस मन्त्र से पात्र के मध्य में (साधक सोममण्डल की) पूजा करे। फिर उसी पात्र में चन्द्रमा की सोलह कलाओं का यजन करे। (ॐ ऊँ सोममण्डलाय नमः) ॥ ३३-३६ ॥

षोडशसोमकलाः

अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टि रतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा॥ ३७ ॥
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः ।
अकाराद्या विन्दुयुता ङेयुताश्च नमोऽन्तिकाः ॥ ३८ ॥
पूज्याः सर्वाः प्रयत्नेन कला ज्ञेया विधोरिमाः ।
पूर्ववत्तीर्थमावाह्य पूर्ववन्मण्डलं लिखेत्॥ ३९ ॥

अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा एवं पूर्णामृता—ये सभी कामदायिनी सोलह कलायें सोलह स्वरों से उत्पन्न हुई हैं। अतः क्रमशः विन्दुयुक्त अकारादि सोलह स्वरों से इन कलाओं को चतुर्थ्यन्त तथा अन्त में नमः लगाकर इन चन्द्रमा की कलाओं का पूजन करे। यथा—'ॐ अं अमृतायै नमः' इत्यादि इन सभी कलाओं की प्रयत्नपूर्वक पूजा करे। तब उस चन्द्रमण्डल में साधक पूर्ववत् तीर्थों का आवाहन कर पुनः पूर्ववत् मण्डल निर्माण करे ॥ ३७-३९ ॥

पूर्ववन्मन्त्रमुच्चार्य आनन्दभैरवं यजेत् ।
आनन्दभैरवीं देवीं तत्र सम्पूज्य देशिकः ॥ ४० ॥

फिर विद्वान् साधक पूर्ववत् मन्त्र का उच्चारण कर आनन्दभैरव तथा आनन्दभैरवी की पूजा करे ॥ ४० ॥

निजेष्टदेवतां तत्रावाहयेच्च ततः परम् ।
आवाहन्यादिमुद्राश्च साधको दर्शयेत्ततः ॥ ४१ ॥
स्वकल्पोक्तविधानेन मुद्राः सन्दर्शयेत्ततः ।
दर्शयित्वा ततो मुद्रामिष्टदेवं यजेत्ततः ॥ ४२ ॥

इसके बाद साधक अपने इष्ट देवता का आवाहन कर उन्हें आवाहनी सन्निधापनी आदि मुद्रा अपने सम्प्रदायानुसार प्रदर्शित करे । इस प्रकार मुद्रा प्रदर्शित करने के बाद पुनः इष्टदेव की पूजा करे ॥ ४१-४२ ॥

पूर्ववच्च षडङ्गानि त्रिकोणानि प्रपूजयेत् ।
अकथादित्रिरेखायां मध्ये मायां समालिखेत् ॥ ४३ ॥
हसौ मध्ये च संलिख्य पूर्वादिचातुरस्त्रिके ।
सम्पूजयेत्ततः पश्चात् पञ्चरत्नं सुसाधकः ॥ ४४ ॥

पूर्ववत् षडङ्गों का तथा त्रिकोण का पूजन करे । फिर अ क थादि तीन रेखाओं के मध्य में माया (ह्रीं) मन्त्र लिखे । फिर हसौ लिखकर चतुष्कोण के पूर्वादि चारो दिशाओं में पञ्चरत्न की उत्तम साधक पूजा करे ॥ ४३-४४ ॥

पञ्चरत्नपूजाविधानम्

पञ्चान्तकं क्षितियुतं दक्षकर्णसमन्वितम् ।
गगनान्ते च रत्नेभ्यो नमोऽन्तमनुमुद्धरेत् ॥ ४५ ॥

प्रथम मन्त्र—दाहिने कर्ण (उ) से समन्वित क्षिति (ल), फिर पञ्चान्तक ग, फिर गगन, उसके अन्त में रत्नेभ्यो नमः । इस प्रकार मन्त्र का उद्धार करे । यथा—लुं गं गगनरत्नेभ्यो नमः ॥ ४५ ॥

शीतलं शक्रसंयुक्तमग्रबिन्दुविभूषितम् ।
स्वर्गपदं समुच्चार्य रत्नेभ्यो नम इत्यपि ॥ ४६ ॥

द्वितीय मन्त्र—फिर शक्र (ल) से संयुक्त शीतल (व), जो अग्रविन्दु से विभूषित हो, फिर 'स्वर्ग' पद का उचारण कर 'रत्नेभ्यो नमः' का उच्चारण करे । यथा—'लं वं स्वर्गरत्नेभ्यो नमः ॥ ४६ ॥

पञ्चमं देवराजञ्च दक्षश्रोत्रसमन्वितम् ।
पातालपद रत्नेभ्यो नमोऽन्तश्चापरो मनुः ॥ ४७ ॥

तृतीय मन्त्र—पञ्चम (व) दक्षश्रोत्र (उ) से समन्वित देवराज (ल), फिर 'पातालरत्नेभ्यो नमः' का उच्चारण करे । यह अन्य (तृतीय) मन्त्र है । यथा—वं लुं पातालरत्नेभ्यो नमः ॥ ४७ ॥

महाकालं क्षितियुतं दक्षकर्णसमन्वितम् ।
मर्त्यरत्ने ततः पश्चाद्भ्यो नमोऽत्र समुद्धरेत् ॥ ४८ ॥
वामपादं क्षितियुतं दक्षश्रवणभूषितम् ।
नागपदं समुच्चार्य रत्नेभ्यो नम इत्यपि ॥ ४९ ॥

चतुर्थ मन्त्र—फिर महाकाल (श), जो दक्षकर्ण (उ) से समन्वित क्षिति (ल) से युक्त हो, फिर मर्त्यरत्नेभ्यो नमः—इस प्रकार यह चतुर्थ मन्त्र है । यथा—लुं शं मर्त्यरत्नेभ्यो नमः ।

पञ्चम मन्त्र—फिर दक्ष कर्ण (उ) से भूषित क्षिति (ल) फिर वामपाद (ह), फिर 'नागरत्नेभ्यो' पद और नमः का उच्चारण करे—इस प्रकार यह पञ्चम मन्त्र है । यथा—लुं हं नागरत्नेभ्यो नमः ॥ ४८-४९ ॥

इति मध्ये सुसम्पूज्य त्रिरेखासु ततः परम् ।
वाग्भवान्ते च दिव्यौघं गुरुसञ्ज्ञाञ्च पादुकाम् ॥ ५० ॥
पूजयामि ततः पश्चादेवम्बिधं त्रयं यजेत् ।
सिद्धौघं मानवौघञ्च पूजयित्वा मनुं जपेत् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार मध्य में पूजन कर तीनो रेखाओं में 'एं दिव्यौघ गुरुपादुकां पूजयामि' फिर 'ऐं सिद्धौधगुरुपादुकां पूजयामि' फिर 'मानवौघ गुरुपादुकां पूजयामि' से क्रमशः पूजा कर निम्न मन्त्र का जप करे ॥ ५०-५१ ॥

अमृतेश्वरीमन्त्रः

अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेह्यकुलरूपिणि ॥ ५२ ॥

अखण्डैक रसानन्द करे........................निधेह्यकुलरूपिणि' यह प्रथम श्लोक मन्त्र है ॥ ५२ ॥

अकुलस्थामृताकारे शुद्धिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्त्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥ ५३ ॥

अुकलस्थामृताकारे........क्लिन्नरूपिणि यह दूसरा श्लोक मन्त्र है ॥ ५३ ॥

तद्रूपेणैकरस्यञ्च दत्त्वा ह्येतत् स्वरूपिणि ।
भूत्वा परामृताकारं मयि चित्स्फुरणं कुरु ॥

तद्रूपेणैकरस्यञ्च.........चित्स्फुरणं कुरु यह तीसरा मन्त्र है ॥ ५४ ॥

इति मन्त्रत्रयेणैवमभिमन्त्र्य ततः परम् ।
ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतमशेषरससम्भवम् ॥ ५५ ॥

आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह ।
वाग्भवं पञ्चमं क्षौणीं वामश्रोत्रसमन्वितम् ॥ ५६ ॥
क्षौं जूं सं अमृतेऽमृतोद्भवेऽमृतेश्वरि ।
अमृतवर्षिणि प्रोच्य अमृतं स्रावयद्वयम् ॥ ५७ ॥
वह्निजायान्तमुच्चार्य चोद्धरेदपरन्ततः ।
वाग्भवं वदयुग्मञ्च वाग्वादिनि ततः परम् ॥ ५८ ॥
वाङ्मनः पदमाभाष्य क्लिन्ने क्लेदिनि तत्परम् ।
क्लेदयद्वितयं महामोक्षं कुरुद्वयं वदेत् ॥ ५९ ॥
कामबीजं शक्तिबीजं मोक्षं कुरुद्वयं वदेत् ।
प्रेतबीजं समुच्चार्य हसौर्नमस्ततः परम् ॥ ६० ॥
अनेनैव विधानेन अभिमन्त्र्य ततः परम् ।
आनन्दभैरवं देवमानन्दभैरवीमपि ॥ ६१ ॥
त्रिवारं मूर्ध्नि सन्तर्प्य मुद्राः सन्दर्शयेत्ततः ।
पूर्वोक्ताश्चातुरस्राद्याः शङ्खमुद्रां ततः परम् ॥ ६२ ॥

इस प्रकार तीन मन्त्र से अर्घ्य का अभिमन्त्रण कर 'ब्रह्माण्ड खण्डसम्भूत..... ..पीयूषरसमावह' पर्यन्त पढ़कर वाग्भव (ऐं) पञ्चम (व) जो वाम श्रोत्र (उ) से समन्वित हो फिर क्षोणी ल तदनन्तर क्षौं जू सं अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि' उच्चारण कर अमृतं, फिर दो बार स्रावय, तदनन्तर वह्निजाया (स्वाहा) इस प्रकार मन्त्र का उद्धार करे । इसके बाद दूसरे मन्त्र का वाग्भव (ऐं), फिर दो बार वद, उसके बाद 'वाग्वादिनी', फिर 'वाङ्मनः' पद कहकर क्लिन्ने क्लेदिनि, उसके बाद दो बार क्लेदय, फिर 'महामोक्षं' कहकर दो बार 'कुरु' का उच्चारण करे । पुनः कामबीज (क्लीं), शक्तिबीज (ह्रीं), फिर मोक्षं, इसके बाद दो बार 'कुरु कुरु' कहे, इसके बाद प्रेत बीज 'हं' का उच्चारण कर 'ह्सौः नमः' पद उच्चारण करे । इस मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित कर 'आनन्दभैरव देव' तथा 'आनन्दभैरवी' के शिर पर तीन बार तर्पण कर पश्चात् पूर्वोक्त चातुरस्रादि; उसके बाद शङ्ख मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ५५-६२ ॥

शङ्खमुद्राकथनम्

वामाङ्गुल्यस्तथा शिलष्टाः संयुक्ताः सुप्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठ संसृष्टा मुद्रैषा शङ्खसंज्ञिका ॥ ६३ ॥

दाहिने हाथ से बायें अङ्गूठे को पकड़कर, मुट्ठी को उतान कर, अङ्गुष्ठ को फैला देवे, बायें हाथ की अङ्गुलियों को उसी प्रकार से एक में गूँथकर दाहिने हाथ के अङ्गूठे से मिला देवे तो वह शङ्ख मुद्रा बन जाती है ॥ ६३ ॥

मत्स्यमुद्राकथनम्

अधोमुखं दक्षपाणिं वामञ्चैव तथाविधम् ।
उपर्युपरियोगेन मिलिताः सरलाङ्गुलीः ॥ ६५ ॥
अङ्गुष्ठौ चालयेत् किञ्चिन्मुद्रैषा मत्स्यसंज्ञिता ।
मत्स्यमुद्राञ्च सन्दर्श्य धेनुमुद्राञ्च दर्शयेत् ॥ ६६ ॥

दाहिना हाथ नीचे रखे, बायें को जैसे-तैसे रहने दे, ऊपर से अङ्गुलियाँ सीधी रहें, धीरे-धीरे दो अङ्गूठों को चलाता रहे, तो वह मत्स्य मुद्रा बन जाती है। इस प्रकार मत्स्य मुद्रा प्रदर्शित करने के बाद धेनु मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ६५-६६ ॥

अवगुण्ठ्य ततः पश्चात् योनिमुद्रां च दर्शयेत् ।
त्रितालछोटिकाभिश्च दिग्बन्धनं ततश्चरेत् ॥ ६७ ॥

फिर अवगुण्ठन मुद्रा दिखाकर योनिमुद्रा प्रदर्शित करे । फिर तीन ताल देकर चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करे ॥ ६७ ॥

अष्टधा मूलविद्यां च जप्त्वा तु चिन्तयेत्ततः ।
इष्टदेवस्वरूपञ्च विभाव्य साधकोत्तमः ॥ ६८ ॥

फिर उत्तम साधक मूलमन्त्र को आठ बार जपकर अपने इष्टदेव के स्वरूप का ध्यान करे ॥ ६८ ॥

आर्घ्यस्य स्थापनं प्रोक्तं सर्वशास्त्रेषु सिद्धिदम् ।
तथा च सिद्धविद्यानामाचारः कथ्यतेऽधुना ॥ ६९ ॥

यहाँ तक सभी शास्त्रों में कहे गये अर्घ्य स्थापन की विधि हमने कही जो सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है । अब सिद्धविद्या के अनुसार उसके अनुष्ठान की विधि कहता हूँ ॥ ६९ ॥

ततः शङ्खं वीरपात्रं स्थापयेन्मध्यभागतः ।
श्रीविद्योक्तविधानेन ततः पूजां समाचरेत् ॥ ७० ॥

शङ्ख पात्र और वीर पात्र मध्य भाग में स्थापित करे । फिर श्री विद्या में कही गई विधि के अनुसार परा भगवती की पूजा करे ॥ ७० ॥

सिद्धविद्याचारः

विसर्जनावधि वीरो नोद्धरेन्न च चालयेत् ।
तस्माद्विन्दुं विनिक्षिप्य सामान्यार्घ्ये ततः परम् ॥ ७१ ॥

जब तक विसर्जन न हो जावे, तब तक इन दोनों पात्रों को न उठावे, न

चलावे । मात्र कुशा के द्वारा उस जल का विन्दु मात्र जल सामान्य अर्घ्य पात्र में डाल देवे ॥ ७१ ॥

पात्रसंख्यानिर्णयः

देव्यर्घ्यकुम्भयोर्मध्ये पात्राणि स्थापयेद् यथा ।
गुरोः पात्रं घटस्यान्ते तदन्ते भोगपात्रकम् ॥ ७२ ॥

तदनन्तर देवी के लिये स्थापित अर्घ्य पात्र और कुम्भ के मध्य में, जिस प्रकार पात्र स्थापन करना चाहिये, उसे कहता हूँ । कलश के अन्त में गुरु पात्र और उसके बाद भोगपात्र स्थापित करे ॥ ७२ ॥

तदन्ते शक्तिपात्रञ्च योगिनीनां तदन्तिके ।
तदन्ते वीरपात्रञ्च बलिपात्रं तदन्तिके ॥ ७३ ॥
पाद्यमाचमनीयञ्च पात्राणि स्थापयेद्बुधः ।
उत्तमं नवपात्राणि सप्तपात्राणि मध्यमम् ॥ ७४ ॥

उसके अन्त में शक्तिपात्र, उसके सन्निकट योगिनी पात्र, उसके सन्निकट वीरपात्र, फिर बलिपात्र, फिर पाद्य आचमनीय पात्र साधक स्थापित करे । नव पात्र उत्तम कहे गये हैं, सात पात्र मध्यम कहे गये हैं ॥ ७३-७४ ॥

केचिद्वदन्ति मन्त्रज्ञाः पञ्चपात्राणि मध्यमम् ।
अधमं तानि पात्राणि एकपात्रं न कारयेत् ॥ ७५ ॥

कोई मन्त्रज्ञ पाँच पात्रों को स्थापित करे तो उसे मध्यम कहते हैं । तीन पात्र का स्थापन अधम कहा गया है । अतः एक पात्र कदापि स्थापित न करे ॥ ७५॥

एकपात्रं न कुर्वीत यदि साक्षात् कुलेश्वरः ।
मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति विघ्नाश्चैव पदे पदे ॥ ७६ ॥
इह लोके च दारिद्र्यं मृते च पशुतां व्रजेत् ।

साक्षात् कुलेश्वर हो, तो भी एक पात्र स्थापित न करे । क्योंकि एक पात्र के स्थापन से मन्त्र विरुद्ध हो जाते हैं और पद पद पर विघ्न उपस्थित होता है । इस लोक में दरिद्रता प्राप्त होती है और मरने पर पशुता प्राप्त होती है ॥ ७६-७७ ॥

देवीपात्रं गुरोः पात्रं भोगपात्रं त्रयं मतम् ॥ ७७ ॥
पूजापात्रं बलेः पात्रं पञ्चपात्रेष्वयं विधिः ।
शक्तेः पात्रं वीरपात्रं सप्तपात्रेष्वयं विधिः ॥ ७८ ॥

यदि तीन पात्र स्थापन करना हो, तो साधक को मात्र देवपात्र, गुरुपात्र तथा भोगपात्र ही स्थापित करना चाहिए । पाँच पात्र में, उसके अतिरिक्त पूजा पात्र और

बलि पात्र बढ़ा देवे । सात पात्र में उन पात्रों के अतिरिक्त शक्ति पात्र और वीर पात्र बढ़ा देवे ॥ ७७-७८ ॥

पूजापात्रञ्च विज्ञेयं योगिनीनाञ्च पूजने ।
पाद्यमाचमनीयञ्च नवपात्रेष्वयं विधिः ॥ ७९ ॥

इसी प्रकार योगिनी की पूजा में पाद्य पात्र और आचमनीय पात्र इन दो पात्रों को बढ़ा देवे । नव पात्रों की स्थापन की यह विधि है ॥ ७९ ॥

पात्रस्थापनाविधिः

पात्राणां स्थापनं वक्ष्ये यथातन्त्रविधानतः ।
कुम्भस्य दक्षिणे कुर्यात्त्रिकोणं वृत्तभूगृहम् ॥ ८० ॥

अब तन्त्रशास्त्र के विधानानुसार अन्य पात्रों के स्थापन की विधि कहता हूँ । कलश के दक्षिण में त्रिकोण, फिर वृत्त, फिर भूगृह निर्माण करे ॥ ८० ॥

पूर्ववत् प्रोक्षणादिञ्च कृत्वाधारं विनिक्षिपेत् ।
तत्र सम्पूजयेद्वह्निमण्डलं तदनन्तरम् ॥ ८१ ॥

उन पात्रों को क्रमशः पूर्ववत् प्रोक्षणादि कर आधार पर स्थापित करे । उस पर वह्निमण्डल की पूजा करे ॥ ८१ ॥

प्रक्षाल्य पूर्ववत् पात्रं आधारे स्थापयेत्ततः ।
अभ्यर्च्य मण्डलं तत्र सूर्यस्य पूरयेत्ततः ॥ ८२ ॥

साधक पुनः पात्र का पूर्ववत् प्रोक्षणादि कर आधार पर उसे स्थापित करे और उस पर सूर्यमण्डल की पूजा करे । फिर उस सूर्यपात्र को कलश के जल से पूर्ण कर देना चाहिए ॥ ८२ ॥

कुम्भामृतेन सम्पूज्य सोमस्य मण्डलं यजेत् ।
कुण्डगोलं क्षिपेत्तत्र कुसुमं गन्धचन्दनम् ॥ ८३ ॥

तदनन्तर कुम्भामृत से सोममण्डल की पूजा करे । उसमें कुण्डगोल डाले तथा पुष्प, गन्ध और चन्दन डाल देवे ॥ ८३ ॥

षट्कोणं वृत्तभूपूरं लिखित्वा पूजयेत्ततः ।
अङ्गषट्कं कोणषट्कं मुद्राः पूर्ववदाचरेत् ॥ ८४ ॥

षट्कोण, वृत्त, भूपुर लिख कर, उस पर अङ्गषट्क और कोण षट्क की पूजाकर पूर्ववत् मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ८३-८४ ॥

दिग्बन्धनं विधायाथ तालत्रयपुरःसरम् ।

अष्टधा मूलमन्त्रञ्च जप्त्वा बिन्दुं क्षिपेत्ततः ॥ ८५ ॥

तदनन्तर तीन बार ताली बजाकर, दिग्बन्धन कर, आठ बार मूल मन्त्र जपकर, उसमें बिन्दुमात्र जल प्रक्षिप्त करे ॥ ८५ ॥

तर्पणविधिः

विशेषार्घ्यस्य वीरेन्द्रो गुरूंश्च परितर्पयेत् ।
स्वस्वनामयुतान् दिव्यान् सिद्धमानवसङ्ज्ञकान् ॥ ८६ ॥

इस प्रकार निर्मित विशेषार्घ्य से वीरेन्द्र साधक दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ नामक गुरुओं का तर्पण करे ॥ ८६ ॥

तर्पयित्वा स्वीयमूर्ध्नि मुद्रया तत्त्वसञ्ज्ञया ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च वामहस्तस्य सर्वदा ॥ ८७ ॥
कथिता तत्त्वमुद्रेयं योजिता तर्पणे बुधैः ।
गुरुं परगुरुञ्चैव परापरगुरुं तथा ॥ ८८ ॥
परमेष्ठिगुरुञ्चैव तर्पयेत्तदनन्तरम् ।
विशेषार्घ्यामृतेनैव तर्पयेन्निजदेवताम् ॥ ८९ ॥
पञ्चधा सप्तधा वापि हृत्सरोजे तु साधकः ।

फिर तत्त्व सञ्ज्ञक मुद्रा से अपने शिर पर तर्पण करे । बायें हाथ के अङ्गूठे एवं अनामिका अङ्गुलियों के योग को तत्त्वमुद्रा कहते हैं । इसके बाद साधक गुरु, परम गुरु, परापरगुरु तथा परमेष्ठि गुरु का तर्पण करे । फिर केवल विशेषार्घ्य के जल से ही वह साधक अपने इष्टदेवता का हृत्कमल में पाँच या सात बार का तर्पण करे ॥ ८७-८९ ॥

तत्त्वशुद्धिकथनम्

गुरूणां पात्रदक्षे च भोगपात्रं प्रकल्पयेत् ॥ ९० ॥
पूर्ववत् पात्रं संस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं समाचरेत् ।
भोगपात्रामृतेनैव सम्मार्ज्य करयुग्मकम् ॥ ९१ ॥
दक्षकरे सवृत्तञ्च नवयोनिं समालिखेत् ।
कलायसदृशं तत्र क्षिपेच्छुद्धिचतुष्टयम् ॥ ९२ ॥

फिर साधक गुरु पात्र के दक्षिण ओर भोग पात्र स्थापित करे । पूर्ववत् पात्र स्थापित कर पुनः तत्त्वशुद्धि करे । फिर भोगपात्र के अमृत से अपने दोनों हाथ का मार्जन कर दाहिने हाथ में वृत्त के सहित कलाय (मटर) के सदृश नवयोनि निर्माण करे । फिर उसे चार बार शुद्ध करे ॥ ९०-९२ ॥

देहशुद्धिनिरूपणम्

अङ्गुष्ठमध्यमानामायोगैरेकञ्च धारयेत् ।
वामहस्तस्य विप्रेन्द्रः स्वीकुर्यात्तदनेन तु ॥ ९३ ॥
मायाञ्च कमलाबीजं शिवशक्तिसदाशिवम् ।
ङेन्तं विद्याकलात्मानं सविन्दुं षोडश स्वरम् ॥ ९४ ॥
उच्चार्य वाग्भवं मूलं आत्मतत्त्वेन तत्परम् ।
स्थूलदेहं ततः पश्चात् शोधयामि पदात् द्विठः ॥ ९५ ॥

(१) बायें हाथ की अङ्गूठा, अनामिका और मध्यमा अङ्गुलियों को मिलाकर एक को धारण करे । माया (ह्रीं), कमला बीज (श्रीं), 'शिवशक्ति सदाशिवाय विद्या कलात्मने' उच्चारण कर सविन्दु षोडशस्वर का उच्चारण कर वाग्भव (ऐं) तथा मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'आत्मतत्त्वेन स्थूल देहं शोधयामि (स्वाहा)' यह शोधन का प्रथम मन्त्र है ॥ ९३-९५ ॥

अनेनाधःशुद्धिखण्डं स्वीकृत्य तदनन्तरम् ।
मायां लक्ष्मीं ततो मायाकलानियतिशब्दतः ॥ ९६ ॥
कलात्मशुद्धविद्याञ्च रागञ्च पुरुषात्मने ।
कादिपञ्चकवर्गञ्च बिन्दुयुक् कामबीजकम् ॥ ९७ ॥
मूलमन्त्रं ततो विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहकम् ।
शोधयामि ततः स्वाहा स्वीकुर्यादपरन्ततः ॥ ९८ ॥

(२) इस शोधन मन्त्र को पढ़कर अधोभाग की शुद्धि की कल्पना कर पुनः माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं), तदनन्तर 'मायाकलानियति कलात्मशुद्ध विद्या राग पुरुषात्मने' पढ़कर वर्गादि पाँच वर्ग, जो सविन्दुक हों, उनका उच्चारण कर कामबीज (क्लीं) सहित मूल मन्त्र पढ़कर 'विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहकं शोधयामि स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़े ॥ ९६-९८ ॥

लज्जां लक्ष्मीं प्रकृत्यहङ्कार बुद्धिमनःश्रोत्रत्वक् ।
चक्षुस्ततोरसनाघ्राणवाक्पाणिपदं तथा ॥ ९९ ॥
पायूपस्थपदं शब्दस्पर्शरूपं ततो रसः ।
गन्धाकाशपदं वायुतेजः सलिलशब्दतः ॥ १०० ॥
भूम्यात्मने समुच्चार्य विन्दुयुग्यादिवर्णकम् ।
शक्तिबीजं स्वमन्त्रञ्च शिवतत्त्वेन तत्परम् ॥ १०१ ॥
परं देहं शोधयामि स्वाहा चैव तृतीयकम् ।

(३) इसके बाद लज्जा (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं), प्रकृति एवं अहङ्कार, बुद्धि,

मनः, श्रोत्र, त्वक्, चक्षुः, रसन, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायूपस्थ, शब्द, स्पर्शरस, गन्धाकाश, वायु, तेजः, सलिल भूम्यात्मने पर्यन्त उच्चारण कर; 'विन्दुयुग्यादि वर्णकं शक्ति बीजं स्वमन्त्रं च शिवतत्त्वेन परं देहं शोधयामि स्वाहा'—यह शोधन का तृतीय मन्त्र है; इसको पढ़े ॥ ९९-१०२ ॥

स्वीकृत्य च पुनर्मायां लक्ष्मीबीजं समुच्चरेत् ॥ १०२ ॥
पुनः शिवादिकं प्रोच्य मायादिकं ततः परम् ।
प्रकृत्यादिकमुच्चार्य पञ्चाशन्मातृकान्ततः ॥ १०३ ॥
बालाञ्च मूलविद्याञ्च सर्वतत्त्वेन तत्परम् ।
तत्त्वत्रयाश्रितं जीवं शोधयामि ततः स्वाहा ॥ १०४ ॥
स्वीकुर्यादमुना युग्मं दक्षवामक्रमेण तु ॥ १०५ ॥

(४) फिर माया (ह्रीं), फिर लक्ष्मी बीज (श्रीं) कहकर 'शिवादि मायादि प्रकृत्यादि' का उच्चारण कर 'पञ्चाशन्मातृकां बालां मूलविद्यां च सर्वतत्त्वेन तत्त्वाश्रितं जीवं शोधयामि स्वाहा' पर्यन्त श्लोक मन्त्र को दायें-बायें क्रम से दो बार पढ़ना चाहिए ॥ १०४-१०५ ॥

ॐ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि
ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि
सोऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि
अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा ॥ १०६ ॥

इसके बाद ॐ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि सोऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा (१)

ॐ तामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि
ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि
तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु
माम् अवतु वक्तारं स्वाहा ॥ १०७ ॥

फिर ॐ तामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु माम् अवतु वक्तारं स्वाहा (२)

ॐ छन्दसामृषयो गावो यच्छन्दोह्यमृता भुवसामन्द्रोः
मेधया स्पृणोतु भुवि स्रुवं मेणोपायतु स्वाहा ॥ १०८ ॥

फिर ॐ छन्दसामृषयो गावो यच्छन्दोह्यमृता भुवसामन्द्रोः मेधया स्पृणोतु भुवि स्रुवं मेणोपायतु स्वाहा (३)

वाससा करयुग्मञ्च स्पृष्ट्वा देहञ्च शोधयेत् ।
पाणिभ्यां सर्वदेहञ्च प्रोञ्छयेदिति शोधनम् ॥ १०९ ॥
क्षालयेद्धस्तयुगलमथवान्यतमञ्चरेत् ॥ ११० ॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़कर वस्त्र से दोनों हाथों का स्पर्श कर देह का संशोधन करे । फिर दोनों हाथों से अपने समस्त शरीर का प्रोक्षण करे; अथवा दोनों हाथ का प्रक्षालन करे । दो में से एक विधि सम्पादित करे ॥ १०६-११० ॥

तत्त्वशुद्धिमन्त्राः

ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ १११ ॥

फिर ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना......................भूयासं स्वाहा (१)

ॐ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ११२ ॥

ॐ पृथिव्यप्तेजोवा.............विपाप्मा भूयासं स्वाहा (२)

ॐ प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्राणि मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ११३ ॥

ॐ प्रकृत्यहङ्कार............विपाप्मा भूयासं स्वाहा (३)

ॐ त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ ११४ ॥

ॐ त्वक्चक्षुः............विपाप्मा भूयासं स्वाहा (४)

ॐ पाणिपादपायूपस्थशब्दा मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा॥ ११५

ॐ पाणिपादपायु............विपाप्मा भूयासं स्वाहा (५)

ॐ स्पर्शरूपगन्धरसाकाशानि मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ १ ॥

ॐ स्पर्शरूप............विपाप्मा भूयासं स्वाहा (६)

ॐ वायुतेजःसलिलभूम्यात्मानो मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ११७ ॥

ॐ वायुतेजः............विपाप्मा भूयासं स्वाहा (७)

सप्तमन्त्रमिदञ्चैव पठेत्तत्त्वविशुद्धये ॥ ११८ ॥

तदनन्तर इन सात मन्त्रों को तत्त्वशुद्धि के लिये पढ़े ॥ १११-११८ ॥

तत्त्वशुद्धिं विधायाथ स्थापयेच्छक्तिपात्रकम् ।
योगिनीनाञ्च संस्थाप्य वीरपात्रं ततः परम् ॥ ११९ ॥
बलिपात्रं ततः पश्चात् पाद्यपात्रञ्च सन्दिशेत् ।
आचमनीयपात्रञ्च पूर्ववत् स्थापयेद्बुधः ॥ १२० ॥

इस प्रकार तत्त्वशुद्धि सम्पादन कर शक्तिपात्र स्थापित करे । फिर योगिनियों का पात्र स्थापन कर तदनन्तर वीरपात्र स्थापित करे । इसके बाद बलिपात्र, फिर पाद्यपात्र और फिर आचमनीयपात्र पूर्ववत् स्थापित करे ॥ ११९-१२० ॥

योगिनीपात्रतत्त्वेन तर्पयेद्रश्मिवृन्दकम् ।
बलिपात्रामृतेनैव वटुकादींश्च तर्पयेत् ॥ १२१ ॥

योगिनीपात्र के तत्त्व से रश्मि समूहों का तर्पण करे, बलिपात्रस्थ अमृत से वटुकादि का तर्पण करे ॥ १२१ ॥

तत्तदभावतो वीरः सामान्यार्घ्येण तर्पयेत् ।
देवीपात्रामृतं बिन्दुं पूजाद्रव्योपरि क्षिपेत् ॥ १२२ ॥

उन उनके अभाव में वीर साधक केवल सामान्य अर्घ्य के जल से ही उनका तर्पण करे । देवी पात्रस्थ अमृत बिन्दु को साधक पूजा के लिये एकत्रित द्रव्यों पर छिड़क देवे ॥ १२२ ॥

आत्मदेहञ्च सम्प्रोक्ष्य भावयेद्देवतामयम् ।
भोगपात्रामृतं बिन्दुं स्वीकुर्यात्तदनन्तरम् ॥ १२३ ॥

फिर अपने शरीर का प्रोक्षण कर उसमें देवतामयत्त्व की भावना करे । इसके बाद भोग पात्रस्थ अमृत विन्दु अपने शरीर पर छिड़क देवे ॥ १२३ ॥

बलिपञ्चकनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बलिपञ्चकमुत्तमम् ।
यावन्नो वटुके दद्यात् योगिन्यां सर्वभूतके ॥ १२४ ॥
क्षेत्रपाले तथा राजराजेश्वरे च साधकः ।
अकृत्वा बलिदानं हि कथं पूजां समाचरेत् ॥ १२५ ॥

बलि पञ्चक निरूपण—अब इसके बाद सर्वोत्तम बलि पञ्चक कहता हूँ । क्योंकि जब तक साधक बटुक, योगिनियों, सर्वभूत क्षेत्रपाल तथा राजराजेश्वर को

बलि प्रदान नहीं करता तब तक वह विद्वान् साधक पूजा किस प्रकार से कर सकता है ॥ १२४-१२५ ॥

अदत्त्वा क्षेत्रेपालाय कथं क्षेत्रेषु पूजयेत् ।
अदत्त्वा वटुकादीनां यः पूजयति चण्डिकाम् ॥ १२६ ॥
पूजा च विफला तस्य देवीशापः प्रजायते ।

क्षेत्रपाल को बलि प्रदान किये बिना वह किस प्रकार क्षेत्र में पूजा कर सकता है । बटुकादि को बलि दिये बिना जो चण्डिका की पूजा करता है, उसकी पूजा निष्फल तो होती ही है देवता का शाप भी उसे लगता है ॥ १२६-१२७ ॥

दक्षिणे वटुके देयः उत्तरे योगिनीबलिः ॥ १२७ ॥
सर्वभूते बलिं दद्यात् क्षेत्रपालस्य पश्चिमे ।
राजराजेश्वरे मध्ये बलिं दद्यात् सुसाधकः ॥ १२८ ॥

दक्षिण दिशा में बटुक को उत्तर दिशा में योगिनियों को बलि देना चाहिये । क्षेत्रपाल और सर्वभूतों के लिये पश्चिम में तथा उत्तम साधक राजराजेश्वर को मध्य में बलि देवे ॥ १२७-१२८ ॥

दक्षिणादिचतुर्दिक्षु पूर्ववन्मण्डलं लिखेत् ।
प्रोक्षणं पूर्ववत् कृत्वा वटुकं तत्र चिन्तयेत् ॥ १२९ ॥

दक्षिण आदि चारो दिशाओं में पूर्व की भाँति मण्डल बनावे । फिर पूर्ववत् प्रोक्षण कर बटुक का इस प्रकार चिन्तन करे ॥ १२९ ॥

बटुकध्यानम्

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिः
तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती ।
क्रमसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतु
र्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥ १३० ॥

बटुक का ध्यान—जिनके हाथ में कपाल शोभित हो रहा है । कानों में कुण्डल और हाथ में दण्ड धारण किये हुये है । घोर अन्धकार के समान सर्वथा नील वर्ण वाले तथा सर्प का यज्ञोपवीत पहने हुये हैं, इतना ही नही; जो यज्ञ तथा पूजा कार्यों में समस्त विघ्नों के विच्छेद के हेतु हैं । साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाले ऐसे बटुकनाथ सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करे ॥ १३० ॥

इति ध्यात्वा तु सम्पूज्य पूर्वोक्तबलिमाचरेत् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च बटुकस्य बलिं हरेत् ॥ १३१ ॥

इस प्रकार बटुक का ध्यान कर पूजन के उपरान्त पूर्व में कही गई विधि के अनुसार साधक दक्षिण दिशा में उन्हें अङ्गुष्ठ और अनामिका अङ्गुलियों से बलि प्रदान करे ॥ १३१ ॥

विषं माया रमा देवीपुत्रवटुकनाथतः ।
पिङ्गलपदतो जटाभास्वर प्रोच्य पिङ्गल ॥ १३२ ॥
त्रिनेत्र च इमं बलिं पूजां गृह्णयुगन्ततः ।
वह्निजायान्तमुच्चार्य वटुकस्य महात्मनः ॥ १३३ ॥
अनेन बलिमुत्सृज्य यागिनीश्चिन्तयेत्ततः ॥ १३४ ॥

विष (म), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), फिर 'देवीपुत्र बटुकनाथ पिङ्गल जटा-भास्वर पिङ्गल त्रिनेत्र इमं बलिं पूजा गृह्ण गृह्ण स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण कर महात्मा बटुक के लिये बलि त्याग कर योगिनियों का ध्यान करे ॥१३२-१३४॥

योगिनीध्यानकथनम्

योगिन्यः कामरूपा निखिलगुणतास्तप्तकान्तस्वभावा
मत्ताः कङ्कालमालाकलितकुचतटी रक्तवस्त्रोत्तरीयाः ।
लिङ्गं पाशं कपालं शृणिमपि दधतः सुस्मिताः सुप्रसन्नाः
भक्तानां साधकानामभिलषितफलं दीयमानाः सुवेशाः ॥ १३५॥

योगिनियों का ध्यान—योगिनियाँ कामस्वरूपा हैं (इच्छानुसार वेष धारण करने वाली), सम्पूर्ण गुणों से युक्त है, तपाये गये सुवर्ण के समान इनके शरीर की कान्ति है, सर्वदा मस्त रहती हैं, इनके कुचों पर कङ्काल (प्रेत की हड्डी) की माला है, रक्त वस्त्र तथा रक्तवर्ण की चादर पहने हुये हैं, लिङ्ग, कपाल, पाश और शृणि (अङ्कुश) धारण किये हुये हैं, मन्द स्मित से युक्त तथा प्रसन्न रहने वाली हैं, इनका वेश अत्यन्त सुन्दर है और ये अपने भक्तों के समस्त अभीष्टों को पूर्ण करने वाली हैं ॥ १३४ ॥

एवं ध्यात्वा प्रपूज्यैव पश्चादपि बलिं ददेत् ।
अङ्गुष्ठमध्यमानामा योगिनीभ्यो बलिं हरेत् ॥ १३६ ॥

इस प्रकार योगिनियों का ध्यान कर पूजा करने के उपरान्त इन्हें अङ्गुष्ठ, मध्यमा एवं अनामिका अङ्गुलियों द्वारा उत्तर दिशा में बलि प्रदान करे ॥ १३६ ॥

तारं लज्जां रमां सर्वसिद्धिश्च योगिनीभ्यः ।
सर्वाभ्यो मातृकाभ्यश्च इत्युत्सृज्य बलिं ददेत् ॥ १३७ ॥

तार (ॐ), लज्जा (ह्रीं), रमा (श्रीं), सर्वसिद्धिञ्च योगिनीभ्यः, सर्वाभ्यो मातृकाभ्यश्च'—इस मन्त्र से बलि का त्याग करना चाहिये ॥ १३७ ॥

विषं मायां ततः सर्वभूतेभ्यश्च ततः परम् ।
सर्वभूतपतिं प्रोच्य भ्यो नमोऽन्तं समुच्चरेत् ॥ १३८ ॥
सर्वभूतबलिं दत्ता क्षेत्रपालबलिं हरेत् ।
ततः सञ्चिन्तयेत् क्षेत्रनायकं सिद्धिहेतवे ॥ १३९ ॥

विश (मं), माया (ह्रीं), फिर 'सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यः नमः' इस मन्त्र का उच्चारण कर सर्वभूतों को बलि देवे । पुनः अपनी सिद्धि के लिये क्षेत्रपाल को बलि देने के लिये क्षेत्रनायक का इस प्रकार ध्यान करे ॥ १३८-१३९ ॥

क्षेत्रपालध्यानम्

निर्वाणं निर्विकल्पं निरुपमसकलं निर्विकारं क्षकारं
हूङ्कारं वज्रदंष्ट्रं हुतवहवदनं रौद्रमुन्मत्तभावम् ।
फट्कारं बद्धनागं भ्रुकुटितटमुखं भैरवं शूलपाणिं
खट्वाङ्गं व्योमनीलं डमरुकसहितं क्षेत्रपालं नमामि॥ १४० ॥

क्षेत्रपाल का ध्यान—जो सर्वथा निर्वाण, निर्विकल्प, निरुपम, सकल (कलासहित), निर्विकार और क्षकार युक्त हैं, हुङ्कार करने वाले हैं, जिनके दाँत वज्र के समान परिपुष्ट हैं, मुख से निरन्तर अग्नि की ज्वाला निकल रही है, जो रौद्र (महाभयानक) और उन्मत्त भाव से युक्त हैं, फटकार करते हुये नागों को बाँधे हुये हैं, जिनका मुख भ्रू से लेकर कटि पर्यन्त लम्बा है, ऐसे महाभयानक शब्द करने वाले, हाथ में त्रिशूल धारण किये, खट्वाङ्ग युक्त, आकाश के समान नीलवर्ण वाले, डमरु बजाते हुये क्षेत्रपाल को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४० ॥

क्षेत्रपालबलिप्रदानम्

इति ध्यात्वा तु सम्पूज्य बलिं पश्चान्निवेदयेत् ।
विशं मायां रमाबीजं क्षकारं विन्दुभूषितम् ॥ १४१ ॥
षड्दीर्घस्वरसम्भिन्नं स्वस्थान क्षेत्रपाल च ।
इमं बलिं पदस्यान्ते पूजां गृह्णयुगं ततः ॥ १४२ ॥
स्वाहान्तमन्त्रमुच्चार्य क्षेत्रपालबलिं दिशेत् ।
क्षेत्रपालबलिं दत्त्वा मध्ये दद्यात्ततः परम् ॥ १४३ ॥
इत्युत्सृज्य बलिं दद्याद्राजराजेश्वराय च ।
बलिपात्रामृतेनैव तर्पयेद्वटुकादिकम् ॥ १४४ ॥

इस प्रकार क्षेत्रपाल का ध्यान कर बाद में बलि प्रदान करे । उसके पश्चात् विष (मं), माया बीज (श्रीं), रमा बीज (श्रीं), विन्दुभूषित क्षकार (क्षं), षड् दीर्घ स्वर (आं ईं ऊं ऐं औं अः) का उच्चारण कर 'स्वस्थान क्षेत्रपाल इमं बलिं पूजां

गृह्ण गृह्ण स्वाहा' पर्यन्त मन्त्र का उच्चारण कर क्षेत्रपाल को पश्चिम दिशा में बलि देवे। इस प्रकार क्षेत्रपाल को बलि देकर मध्य में राजराजेश्वर को बलि देवे और बलि पात्रामृत से बटुकादि का तर्पण करे ॥ १४१-१४४ ॥

एकत्र वा पञ्चबलिं दद्याद्व्यापकमण्डले ।
वामभागे स्थिते चैव सर्वविघ्नहरो भवेत् ॥ १४५ ॥

अथवा व्यापक मण्डल बनाकर एक ही स्थान पर पाँचों को बलि देवे। यदि साधक द्वारा वामभाग में स्थापित कर उन्हें बलि दी जाय तो उससे समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं ॥ १४५ ॥

दक्षिणे वटुकं दद्यादुत्तरे योगिनीबलिम् ।
पूर्वे भूः बलिं दद्यात् क्षेत्रपालस्य पश्चिमे ॥ १४६ ॥
राजराजेश्वरं मध्ये बलिं दद्यात् सुसाधकः ॥ १४७ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

अथवा बटुक को दक्षिण दिशा में और योगिनियों को उत्तर दिक् में, सर्वभूतों को पूर्व में एवं क्षेत्रपाल को पश्चिम में तथा राजराजेश्वर को मध्य में उत्तम साधक बलि प्रदान करे ॥ १४६-१४७ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के षष्ठम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

सप्तम उल्लासः

...✿...
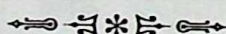
पूजाविधिः

अथ वक्ष्ये च पूजाया विधानं यत्र यद्‌भवेत् ।
पूजादौ च जपादौ च जपस्यान्ते तथैव च ॥ १ ॥
पूजान्ते चाग्निकार्यान्ते प्राणायामत्रयं चरेत् ।
प्राणायामषडङ्गञ्च कृत्वा साधकसत्तमः ॥ २ ॥
पीठपूजां प्रकुर्वीत स्वकल्पोक्तविधानतः ।
स्वकल्पोक्तविधानेन ध्यात्वा देवीं समाहितः ॥ ३ ॥

पूजा विधान—अब मैं पूजा के विषय में जहाँ जैसा विधान होना चाहिये उसे कहता हूँ । पूजा के आदि और अन्त में इसी प्रकार जप के आदि एवं अन्त में तथा अग्नि कार्य के आदि और अन्त में तीन-तीन प्राणायाम करे । इसके बाद उत्तम साधक प्राणायाम और षडङ्ग कर अपने सम्प्रदायानुसार पीठ पूजा करे । तदनन्तर अपने सम्प्रदायानुसार सावधान हो देवी का ध्यान करे ॥ १-३ ॥

हृत्सरोजात् समानीय नासापुटपथा सुधीः ।
तेजोमयीं महादेवीं दीपाद्दीपान्तरं यथा ॥ ४ ॥
पुष्पाञ्जलौ ततः पश्चान्मन्त्रमध्ये समानयेत् ।
आवाहन्यादिमुद्राश्च दर्शयेत्तदनन्तरम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार एक दीप से अन्य दीप जलाया जाता है, उसी प्रकार तेजोमयी महादेवी को हृत्कमल से उठाकर नासा पुट से बाहर निकालकर पुष्पाञ्जलि में स्थापित करे । फिर उस पुष्पाञ्जलि से मन्त्र में स्थापित करे । इसके बाद आवाहनी आदि मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ५ ॥

आवाहन्यादिमुद्रानिरूपणम्

१. आवाहनीमुद्रा

२. स्थापनीमुद्रा

ऊर्ध्वाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत् ।
इयं तु विपरीता चेत्तदा वै स्थापनी भवेत् ॥ ६ ॥

मुद्रा निरूपण—ऊपर की हुई अञ्जुलि नीचे की ओर कर देवे तो आवाहनी मुद्रा हो जाती है और जब इसी मुद्रा का विपरीत अर्थात् ऊपर की ओर उठा देवे तो स्थापनी मुद्रा हो जाती है ॥ ६ ॥

३. सन्निधापनीमुद्रा
४. सन्निरोधनीमुद्रा

मिलितं मुष्टियुगलं सन्निधापनरूपिणी ।
अन्तरङ्गुष्ठमुष्टिभ्यां सन्निरोधनरूपिणी ॥ ७ ॥

दोनों मुट्ठियों को एकमें मिला देवे और दोनों अङ्गूठों को ऊपर उठा दें तो सन्निधापनी मुद्रा हो जाती है । यदि अङ्गूठों को भीतर कर मुट्ठी बाँधें तो सन्निरोधनी मुद्रा हो जाती है ॥ ७ ॥

५. अवगुण्ठनीमुद्रा

एतस्या एव मुद्रायास्तर्जन्यौ सरले यदि ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती ॥ ८ ॥

इसी मुद्रा में यदि दोनों तर्जनियों को सीधी रखकर वामावर्त्त घुमा देवे तो अवगुण्ठनी मुद्रा हो जाती है ॥ ८ ॥

६. सकलाकृतिमुद्रा
७. परमीकरणीमुद्रा
८. धेनुमुद्रा

देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिः ।
अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठप्रसारितकराङ्गुलिः ॥ ९ ॥
महामुद्रेति कथिता परमीकरणे बुधैः ।
परिवृत्य करौ पश्चात् तर्जनीमध्यमायुगम् ॥ १० ॥
कनिष्ठानामिकायुग्मं परस्परयुतं कुरु ।
धेनुमुद्रेयमाख्याता अमृतीकरणे बुधैः ॥ ११ ॥

देवताङ्ग में न्यास से सकलाकृति मुद्रा बन जाती है । परमीकरण में प्रयुक्त होने वाले दोनों हाथों के दोनों अङ्गूठों को परस्पर एक दूसरे में ग्रथित करे और शेष सभी अङ्गुलियाँ फैलाये रखे, तो वह महामुद्रा बन जाती है । फिर अमृतीकरण के लिए दोनों हाथ की कनिष्ठा और अनामिका अङ्गुलियों के अग्रभाग को परस्पर एक में मिला देवे; पुनः तर्जनी और मध्यमा को भी इसी प्रकार परस्पर एक दूसरे में मिला देवे तो यह धेनुमुद्रा बन जाती है ॥ ९-११ ॥

स्वस्वकल्पोक्तविधिना मुद्राः सन्दर्शयेत्ततः ।

दर्शयित्वा ततो मुद्रां तालत्रयपुरःसरम् ॥ १२ ॥
छोटिकाभिर्दिग्बन्धनं कृत्वा जीवं न्यसेत्ततः ।
लेलिहामुद्रया यन्त्रं स्पृष्ट्वा पञ्चकुशेन वा ॥ १३ ॥

९. लेलिहामुद्रा

तर्जनीमध्यमानामाः समं कृत्वा अधोमुखम् ।
अनामायां क्षिपेद्वृद्धां ऋजुं कृत्वा कनिष्ठिकाम्॥ १४ ॥
लेलिहेति च विख्याता जीवन्यासे प्रकीर्तिता ।
मूलमन्त्रेण दीप्तात्मा अर्घ्यद्रव्योदकेन च ॥ १५ ॥
त्रिवारं प्रोक्षयेद्धीमान् देवशुद्धिरितीरिता ।
ततः सम्पूजयेद्देवीं षोडशैरुपचारकैः ॥ १६ ॥

तदनन्तर अपने सम्प्रदायानुसार मुद्रा प्रदर्शित करे । मुद्रा प्रदर्शित करने के पश्चात् तीन बार ताली बजाते हुए चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करे । तदनन्तर जीवन्यास करे । लेलिहा मुद्रा से अथवा पाँच कुशों से यन्त्र का स्पर्श करे । दोनों हाथों की तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अङ्गुलियों को परस्पर मिलाकर नीचे करे तथा दोनों अङ्गूठों को अनामिका पर स्थापित कर दोनों कनिष्ठा को सीधे रखे तब वह लेलिहा मुद्रा बन जाती है । जीवन्यास में इसका प्रयोग किया जाता है । फिर उत्साहपूर्वक साधक मूलमन्त्र से अर्घ्यद्रव्य के जल से देवता के ऊपर तीन बार जल छोड़े—इस प्रकार देवशुद्धि कही गई है । तदनन्तर षोडशोपचारों से देवी की पूजा करे ॥ १२-१६ ॥

षोडशोपचारपूजनम्

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च ॥ १७ ॥
गन्धपुष्पे तथा धूपदीपनैवेद्यवन्दनाः ।
(अथवा) पाद्यार्घ्याचमनस्नानवसनाभरणानि यच ॥ १८ ॥
गन्धपुष्पे धूपदीपनैवेद्याचमनं ततः ।
ताम्बूलमर्चनास्तोत्रं तर्पणञ्च ततः परम् ॥ १९ ॥

षोडशोपचार निरूपण—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आमरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और प्रार्थना—ये सोलह उपचार कहे गये हैं ।

अथवा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, अर्चना, स्तोत्र और उसके बाद तर्पण—ये सोलह उपचार होते हैं ॥ १७-१९ ॥

अर्घ्यं पाद्यं निवेद्याथ तथैवाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनञ्च गन्धप्रसूनके ततः ॥ २० ॥
धूपदीपौ च नैवेद्यं दशोपचारकं स्मृतम् ।

अर्घ्य एवं पाद्य को निवेदन कर, आचमन, मधुपर्क, पुनः आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य—ये दश उपचार कहे गये हैं ॥ २० ॥

गन्धादयो नैवेद्यान्तः पूजा पञ्चोपचारिका ॥ २१ ॥

गन्ध से लेकर नैवेद्य पर्यन्त पाँच उपचार कहे गये हैं ॥ २१ ॥

उत्तमादिभेदेन त्रिविधा पूजा

उत्तमा मध्यमा चैव बुधैरुक्ताऽधमा क्रमात् ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां पत्रेण तदभावतः ॥ २२ ॥
तदभावे सर्षपेण श्वेतेनाऽपि विशेषतः ।
तदभावेऽक्षतेनैव दूर्वया तदभावतः ॥ २३ ॥
अभावे वारिणा वापि तदभावे च मानसैः ।

बुद्धिमान् साधकों ने इन्हें क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम उपचार की सञ्ज्ञा दी है । उन (= पञ्चोपचार) के अभाव में केवल पुष्प और जल से, उसके भी अभाव में मात्र पुष्प से, उसके भी अभाव में श्वेत सर्षप से, उसके भी अभाव में मात्र अक्षत से, उसके भी अभाव में दूर्वा से, उसके भी अभाव में केवल जल से, उसके भी अभाव में मात्र मन से पूजा करनी चाहिये ॥ २२-२४ ॥

मूलान्ते देवतानाम ङेयुतञ्च समुद्धरेत् ॥ २४ ॥
देयद्रव्यपदोल्लेखं कृत्वा च तदनन्तरम् ।
हृदयेन तु पाद्यञ्च शिरसार्घ्यं निवेदयेत् ॥ २५ ॥

मूल मन्त्र पढ़कर देवता के नाम का चतुर्थ्यन्त कर मन्त्र का उद्धार करना चाहिये । फिर देय (समर्पण) द्रव्य का नाम लेकर 'हृदयाय नमः' उच्चारण कर पाद्य तथा शिर पर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये ॥ २४-२५ ॥

वारुणेनाचमनं प्रोक्तं तेनैव मधुपर्ककम् ।
शिखामन्त्रेण गन्धञ्च पुष्पं नेत्रेण दापयेत् ॥ २६ ॥

'वं' मन्त्र से आचमन, तथा उसी से मधुपर्क देवे । 'शिखायै वषट्' से गन्ध तथा 'नेत्रत्रयाय वौषट्' से पुष्प निवेदन करे ॥ २६ ॥

निवेदयामि वदने दद्यात् सर्वं सुसाधकः ।
पाद्यादिकं निवेद्याथ स्नानीयञ्च निवेदयेत् ॥ २७ ॥

फिर 'निवेदयामि' कहकर साधक मुख में सब कुछ देवे । पाद्यादि निवेदन कर स्नान के लिये सामग्री प्रदान करे ॥ २७ ॥

देवीस्नाननिरूपणम्

ततश्च पादुके दत्त्वा सुरक्ते स्नानमन्दिरे ।
नानारत्नसमायुक्तस्वर्णसिंहासनान्विते ॥ २८ ॥
तत्रानीय महादेवीं साधकः शुद्धभावतः ।
घृतेनोद्वर्तनं कार्यं मनसा तदनन्तरम् ॥ २९ ॥
सुगन्धिदिव्यतैलेन देवकन्यासहस्रकैः ।
सहस्रैः स्वर्णकुम्भैश्च सुगन्धजलपूरितैः ॥ ३० ॥
आसिञ्चेद् भक्तिभावेन भवानीं भक्तवत्सलाम् ।
नानातीर्थोदकैः शुद्धैर्गन्धराजसहस्रकैः ॥ ३१ ॥

अत्यन्त मनोहर उस स्नानागार रूप मन्दिर में ही पादुका देकर अनेक प्रकार के रत्नों से जटित स्वर्ण सिंहासन पर साधक शुद्ध भाव से ले आकर देवता को बैठावे । तदनन्तर घृत का उद्वर्त्तन करे । तदनन्तर मन से सहस्रों देव कन्याओं के द्वारा सुगन्धित दिव्य तैल लगवा कर, अनेक तीर्थों से लाये गये सुगन्धित जलों से परिपूर्ण सहस्रों सुवर्णमय कलशों के शुद्ध जल से भक्तिभावपूर्वक भक्तवत्सला भगवती को स्नान करावे ॥ २८-३१ ॥

नागकन्यासहस्रैस्तु किन्नरैरप्सरोगणैः ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयेत्तदनन्तरम् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर सहस्रों नागकन्याओं द्वारा तथा सहस्रों किन्नर अप्सराओं द्वारा पञ्चामृत और पञ्चगव्य से स्नान करावे ॥ ३२ ॥

नारिकेलोदकेनैव तथेक्षुवारिणा ततः ।
सप्तमृत्तिकया युक्त शीतलेन जलेन च ॥ ३३ ॥
शीतलोष्णोदकेनैव तथा रत्नोदकेन च ।
सुवासितजलेनैव देव्याः स्नानं समाचरेत् ॥ ३४ ॥

फिर नारिकेल के जल से, तदनन्तर ऊख के रस से, फिर सप्त मृत्तिका युक्त शीतल जल से स्नान करावे । पुनः साधक शीतल और उष्ण दोनों ही प्रकार के जल से, फिर उसके बाद रत्नोदक से, तत्पश्चात् सुगन्धित जल से महाभगवती देवी को स्नान करावे ॥ ३३-३४ ॥

सहस्रशीर्षमन्त्रेण पावमान्या तथैव च ।
भृङ्गाराष्टककुम्भैस्तु देव्याः स्नानं विधाय च ॥ ३५ ॥

फिर 'सहस्रशीर्षा' ऋचा से तथा पावमानी मन्त्र से स्वर्ण निर्मित आठ कलशों से स्नान करावे ॥ ३५ ॥

उपचाराः

ततः शुद्धैर्दुकूलैश्च गात्रमार्जनमाचरेत् ।
कार्पासं वाल्कलं वार्क्षं कोषजं वस्त्रमिष्यते ॥ ३६ ॥

इसके बाद शुद्ध दुकूल (पट्टवस्त्र) से भगवती के गात्र का मार्जन करावे, कपास निर्मित वल्कल का, वृक्ष की छाल या पत्तों का अथवा रेशमी वस्त्र देने का विधान है ॥ ३६ ॥

रक्तकौषेयवस्त्रञ्च महादेव्यै प्रशस्यते ।
सपीताम्बरकौषं वा स्वदेवाय च उत्सृजेत् ॥ ३७ ॥

लाल वर्ण का रेशमी वस्त्र भगवती को अत्यन्त अभीष्ट है, अथवा पीताम्बर का वस्त्र अपने इष्टदेव को देना चाहिये ॥ ३७ ॥

विचित्रं सर्वदेवेभ्यो दिव्यांशुकं निवेदयेत् ।
नीलरक्तं तु यद्वस्त्रं तत्सर्वत्र विवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

सभी देवताओं के लिये विचित्र दिव्य वस्त्र देने का विधान है किन्तु नीली में रंगा हुआ वस्त्र सर्वत्र वर्जित है ॥ ३८ ॥

विचित्ररागविपुलं लग्नहीनं विवर्जयेत् ।
वस्त्रं दद्यान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ॥ ३९ ॥

विचित्र रूप में रंगा हुआ और बहुत बड़ा लग्न (किनारा) रहित वस्त्र सर्वथा निषिद्ध है । इस प्रकार का वस्त्र केवल महादेवी को दिया जा सकता है । अन्य देवी देवताओं को कदापि न देवे ॥ ३९ ॥

रक्तवस्त्रं रक्तमाल्यं रक्तालङ्करणं तथा ।
दत्त्वाऽङ्गलेपनं कार्यं गन्धचन्दनसिह्लकैः ॥ ४० ॥

रक्त वस्त्र, रक्त माला, रक्त आभूषण, महाभगवती को प्रदान कर गन्ध, चन्दन और सिह्लक भगवती के अङ्ग में लेपन करे ॥ ४० ॥

पुनश्च पादुके दत्त्वा मनोरमे सुसाधकः ।
यन्त्रमध्ये समानीय नमस्कुर्यात् समाहितः ॥ ४१ ॥

तदनन्तर उत्तम साधक मनोहर पादुका प्रदान करे । फिर यन्त्र में भगवती को पधरा कर भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार करे ॥ ४१ ॥

पुनः पाद्यादिकं दत्त्वा पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।
यथोत्पन्नं फलं पुष्पं तथा दद्याच्च पत्रकम् ॥ ४२ ॥

पुनः पाद्य आदि देकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करे । ऋतुकाल में होने वाले फल पुष्प तथा पत्र प्रदान करे ॥ ४२ ॥

पुष्पाञ्जलिप्रदानेन न भवेन्नियमस्त्वयम् ।
नाधोमुखं फलं दद्यादिति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ४३ ॥

फिर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । किन्तु अनियम न करे । अधोमुख फलप्रदान न करे । यह शास्त्रों का निश्चय है ॥ ४३ ॥

ज्ञानमुद्रा

ज्ञानाख्यमुद्रया चैव पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु ज्ञानमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ४४ ॥

भगवती का पूजन ज्ञानमुद्रा से करे । अङ्गूठा और तर्जनी को एक में मिला देने पर ज्ञानमुद्रा कही जाती है ॥ ४४ ॥

मध्यमानामिकाभ्यां तु अङ्गुष्ठाग्रेण साधकः ।
दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

मध्यमा, अनामिका तथा अङ्गुष्ठ के अग्रभाग को एक में मिला कर मूल मन्त्र पढ़ते हुये विमल गन्ध प्रदान करना चाहिये ॥ ४५ ॥

यथा गन्धं तथा चैव धूपं दद्याद्विचक्षणः ।
मध्यमानामिकाभ्यां तु मध्यपर्वणि देशिकः ॥ ४६ ॥
अङ्गुष्ठाग्रेण धूपञ्च धृत्वा च विनिवेदयेत् ।
उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः ॥ ४७ ॥
अनामिकाङ्गुष्ठयोगे नैवेद्यं तु निवेदयेत् ।
अन्यत् सर्वं स वीरः प्रदद्याज्ज्ञानमुद्रया ॥ ४८ ॥

जिस प्रकार गन्ध का विधान कहा गया है उसी प्रकार धूप भी प्रदान करे । मध्यमा अनामिका के मध्य पर्व में अङ्गुष्ठ के अग्र भाग को स्थापित कर उससे धूप पात्र हाथ में लेकर धूप देवे । मूल मन्त्र सहित गायत्री मन्त्र से नैवेद्य को तीन बार ऊपर उठाकर अनामिका और अङ्गूठे को मिलाकर नैवेद्य समर्पित करे । वह वीर साधक शेष उपचार ज्ञानमुद्रा से प्रदर्शित करे ॥ ४६-४८ ॥

दधिमधुघृतेनैव मधुपर्कः प्रकीर्तितः ।
पायसं कृशरं दद्यात् पाल्यन्नं मधुसंयुतम् ॥ ४९ ॥

पिष्टकं मोदकञ्चैव दुग्धं दधि तथा फलम् ।
ताम्बूलञ्च ततो दद्यात् कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ५० ॥

दही, मधु, घृत मिलाने से मधुपर्क बन जाता है । फिर पायस (खीर), कृशर (खिचड़ी) तथा मधुसंयुक्त शाली धान का भात समर्पित करे । पिष्टक, मोदक, दूध, दही, फल तथा कपूर से वासित ताम्बूल प्रदान करे ॥ ५० ॥

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरा ।
पुनर्माल्यं प्रदातव्यं गन्धवन्दनपङ्कजम् ॥ ५१ ॥

प्रत्येक उपचारों के समर्पण में बीच-बीच में जल भी देते रहना चाहिये । इसके बाद पुनः माल्य, गन्ध, चन्दन तथा कमल पुष्प देना चाहिये ॥ ५१ ॥

दर्पणं चामरं छत्रं पादुकाञ्च निवेदयेत् ।
विधिवत् पूजनं कृत्वा तर्पयेत्तत्त्वमुद्रया ॥ ५२ ॥

फिर दर्पण, चामर, छत्र तथा पादुका समर्पण करना चाहिये । इस प्रकार विधिवत् पूजन कर भगवती का तत्त्व मुद्रा से तर्पण करना चाहिये ॥ ५२ ॥

तत्त्वमुद्रा

अङ्गुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य सर्वदा ।
अङ्गुष्ठे भैरवो देवोऽनामायां चण्डिका सदा ॥ ५३ ॥

बायें हाथ के अङ्गूठा तथा अनामिका अङ्गुली के योग से तत्त्वमुद्रा बन जाती है । क्योंकि अङ्गूठे में भैरव देव तथा अनामिका में चण्डिका का सर्वदा निवास रहता है ॥ ५३ ॥

तर्पणविधिः

अनामाङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेत् कुलसन्ततिम् ।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्याञ्च वश्यकर्मणि तर्पयेत् ॥ ५४ ॥

अनामिका एवं अङ्गुष्ठ को मिलाकर कुलसन्तति का तर्पण करे । किन्तु वश्यकर्म में अङ्गूठा एवं मध्यमा को मिलाकर तर्पण करे ॥ ५४ ॥

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्तम्भने तर्पयेत्ततः ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेदभिचारके ॥ ५५ ॥

स्तम्भन में कनिष्ठा तथा अङ्गूठे से तर्पण करना चाहिये और अभिचाार (मारण) प्रयोग में तर्जनी और अङ्गूठे को मिलाकर तर्पण करना चाहिये ॥ ५५ ॥

एवं सन्तर्प्य देवेशीं कुलद्रव्यैर्यथाविधि ।

तर्पणञ्चाष्टधा कार्यं सकृद्वापि यथेच्छया ॥ ५६ ॥

इस प्रकार कुलद्रव्य से यथाविधि देवी का तर्पण करे । यह तर्पण आठ संख्या में करे अथवा मात्र एक बार करे । साधक की जैसी इच्छा हो ॥ ५६ ॥

नार्चयेदेकहस्तेन् तर्पयेन्नैकपाणिना ।
तर्पयित्वामहादेवीं स्वीयक्रममथाचरेत् ॥ ५७ ॥

एक हाथ से पूजा तथा एक हाथ से तर्पण न करे । महादेवी का तर्पण कर तदनन्तर अपने सम्प्रदायानुसार पूजा विधान करे ॥ ५७ ॥

देवतामन्तिकं कुर्यात् कुसुमैर्विहितैः सदा ।
पूजाकाले देवताया नोपरि भ्रामयेत् करम् ॥ ५८ ॥

शास्त्रविहित पुष्पों से पूजा कर देवता का सदैव सन्निधान प्राप्त करे । पूजा के समय देवता के ऊपर हाथ न घुमावे ॥ ५८ ॥

देव्यनुज्ञां गृहीत्वा तु पूजयेदङ्गदेवताः ।
ध्यात्वा गुरुकुलं धीरो रश्मिवृन्दं तथैव च ॥ ५९ ॥

फिर देवता की आज्ञा लेकर आवरण के देवताओं का गुरुकुलों का तथा रश्मिवृन्दों का ध्यान कर देवताओं की पूजा करे ॥ ५९ ॥

अङ्गदेवतापूजाविधिः

स्व स्व स्थाने समावाह्य पूजयेत्तदनन्तरम् ।
विना यो हि गुरोः पूजामिष्टदेवं यजेद् यदि ॥ ६० ॥
निष्कृतिर्नास्ति तस्यैव नरकार्णवकोटिषु ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुपूजां समाचरेत् ॥ ६१ ॥

आवरण के उन अङ्ग देवताओं को अपने-अपने स्थान पर आवाहन कर पश्चात् पूजन करे । यदि कोई साधक गुरु की पूजा के बिना इष्टदेव की पूजा करता है, उसका करोड़ों नरक समुद्र से उद्धार नहीं होता । इसलिये सब प्रयत्न करके भी गुरु की पूजा करे ॥ ६०-६१ ॥

गुरुपूजा

दिव्यौघा गुरवो ह्येव सिद्धौघा गुरवस्तथा ।
मानवौघाः समासेन पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ६२ ॥

दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा मानवौघ गुरुओं का साधक को प्रयत्नपूर्वक संक्षेप में पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

अथवा सर्वशास्त्रेषु गुरवः पूर्वसूचिताः ।
येषु येषु च मन्त्रेषु ये ये ऋषिगणाः स्मृताः ॥ ६३ ॥
ते ते पूज्याः सपर्यादौ सङ्क्षेपाद् गदितं मया ।
अज्ञात्वा गुरुनामानि गुरुत्रितयमर्चयेत् ॥ ६४ ॥

अथवा सभी गुरु शास्त्रों में कह दिये गये हैं और जिन जिन मन्त्रों में जो जो ऋषि कहे गये हैं उन-उन गुरुओं तथा ऋषियों की संक्षेप में पूजा करे । यदि गुरुओं का नाम न ज्ञात हो, तब तीन गुरुओं की अर्चना करे ॥ ६३-६४ ॥

चतुष्टयं वा सङ्कोचो न च कार्यं ततः परम् ।
गुरुः परगुरुश्चैव परापरगुरुस्ततः ॥ ६५ ॥
परमेष्ठिगुरुश्चैव कथिता गुरव शुभाः ।
न जानामि गुरोर्नाम वंशशुद्धिः कदाचन ॥ ६६ ॥
त्वत्पादाम्बुजरेणूनां कर्णमादेहि दासताम् ।
इति स्तवेन संस्तुत्य तस्मिन्निजगुरुं यदि ॥ ६७ ॥
तन्नाम्ना पूजयेद्यस्तु तेन पूजा गुरोर्भवेत् ।

अथवा चार गुरुओं की पूजा करे । सङ्कोच न करे । गुरु, परमगुरु, परापरगुरु और परमेष्ठी गुरु—ये कल्याणकारी गुरु कहे गये हैं । 'न जानामि.................. ....कर्णमादेहि दासताम्' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर, उनकी स्तुति कर, उसमें अपने गुरु का नाम लेकर यदि सुधी साधक पूजा करे तो समस्त गुरुओं की पूजा उसी में गतार्थ हो जाती है ॥ ६५-६८ ॥

गुरुपूजां विना चैव यदि पूजां समाचरेत् ॥ ६८ ॥
तद्दोषशमने चैव कुलपूजां समाचरेत् ।
पूर्ववत्तर्पणं कृत्वा रश्मिवृन्दं प्रपूजयेत् ॥ ६९ ॥

यदि गुरु की पूजा के बिना कोई साधक देवी की पूजा करता है तो उस दोष की शान्ति के लिये कुलपूजा अवश्य करनी चाहिए । फिर पूर्ववत् तर्पण कर रश्मिवृन्दों की पूजा करे ॥ ६८-६९ ॥

यत्र यत्र स्थितिश्चैव तत्र तं नार्चयेद्यदि ।
तन्मांसरुधिरेणैव पारणं तस्य जायते ॥ ७० ॥

जिस देवता की जहाँ स्थिति है उनकी पूजा यदि वहाँ नहीं हुई, तो पूजा करने वाले के मांस से उस देवता की तृप्ति होती है ॥ ७० ॥

एकपीठे पृथक् पूजां विना यन्त्रं करोति यः ।
अङ्गाङ्गित्वं परित्यज्य देवताशापमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥

जो यन्त्र के अतिरिक्त एक पीठ पर अङ्गाङ्गि (प्रधान और आवरण) भाव त्याग कर पूजा करता है, उसे देवता का शाप प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

आवाह्य देवतामेकामर्चयंश्चान्यदेवताम् ।
उभाभ्यां लभते शापं मन्त्री चञ्चलमानसः ॥ ७२ ॥

इतना ही नहीं जो साधक, एक देवता का आवाहन कर अन्य देवताओं का पूजन करता है, ऐसा चञ्चल मन वाला साधक दोनों देवताओं का शाप प्राप्त करता है ॥ ७२ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्वस्वस्थाने यथाक्रमात् ।
सम्पूज्य देवताः सर्वास्तर्पयेत्तदनन्तरम् ॥ ७३ ॥

इसलिये अपने अपने स्थान पर क्रम के अनुसार सभी देवताओं की पूजा कर उनका तर्पण करना चाहिये ॥ ७३ ॥

ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तींश्च पूजयित्वा च तर्पयेत् ।
पुनः सम्पूजयेद् देवीमुपचारैश्च विस्तरैः ॥ ७४ ॥

तदनन्तर ब्रह्माणी इत्यादि आठ शक्तियों की पूजाकर उनका तर्पण करे । फिर अपने इष्टदेवी का विस्तृत उपचारों से पूजन करे ॥ ७४ ॥

आसनं प्रथमं दद्यात् रौप्यं दारुजमेव वा ।
वस्त्रं वा चार्मणं कोषं मण्डपस्योत्तरे सृजेत् ॥ ७५ ॥

सर्वप्रथम अपनी इष्टदेवी को चाँदी का, अथवा काष्ठ का, अथवा वस्त्र का, अथवा मृगचर्मादि का, अथवा रेशम का आसन देवे ॥ ७५ ॥

पाद्यं दत्त्वा महादेव्यै चार्घ्यं दद्यात्ततः परम् ।
श्यामा दूर्वा पङ्कजञ्च विष्णुक्रान्तासमन्वितम् ॥ ७६ ॥
गन्धपुष्पाक्षतजवाकुशाग्रतिलसर्षपैः ।
सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम् ॥ ७७ ॥

इसके बाद महादेवी को पाद्य देकर अर्घ्य प्रदान करे । फिर श्यामा दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता से युक्त गन्ध, पुष्प, अक्षत, जवा, कुशाग्र, तिल, श्वेत सर्षप और दूर्वा मिलाकर अर्घ्य प्रदान करे । इस प्रकार का अर्घ्य सभी देवताओं के लिये प्रशस्त कहा गया है ॥ ७६-७७ ॥

केवलं तोयमात्रेण तदाचमनमिष्यते ।
वासितन्तु सुगन्धाद्यैः कर्त्तव्यं यदि लभ्यते ॥ ७८ ॥

मन्त्री साधक को यदि कोई सुगन्धित पदार्थ प्राप्त हो जावे तो उसे मिलाकर आचमन करावे ॥ ७८ ॥

गन्धाष्टकम्

अर्घ्यादिकं प्रदद्यात्तु गन्धाष्टकं निवेदयेत् ।
चन्दनागुरुकर्पूरं चोरकुङ्कुमरोचनाः ॥ ७९ ॥
जटामांसी कपिजटा शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः ।
नानाविधानि पुष्पाणि वसनाभरणानि च ॥ ८० ॥

अर्घ्यादि प्रदान कर अष्ट गन्ध निवेदन करे । चन्दन, अगुरु, कपूर, चोर, कुङ्कुम, रोचना, जटामांसी, कपिजटा—ये महाशक्ति के गन्धाष्टक कहे गये हैं । इसके बाद साधक अनेक प्रकार के पुष्प एवं अनेक प्रकार के आभरण एवं अलङ्करण समर्पित करे ॥ ७९-८० ॥

मालां दद्यात्ततो देव्यै गन्धचन्दनमिश्रितम् ।
सर्वाङ्गलेपनं दद्याद् धूपं दद्यात्ततः परम् ॥ ८१ ॥

इसके बाद देवी को माला देकर गन्ध, चन्दन मिश्रित सर्वाङ्गलेपन देवे । इसके बाद धूप देवे ॥ ८१ ॥

धूपनिर्माणनिरूपणम्

उशीरं चन्दनं कुष्ठमगुरुं गुग्गुलुं तथा ।
मधुना घृतसंयुक्तो धूपोऽयं चण्डिकाप्रियः ॥ ८२ ॥

उशीर, चन्दन, कुष्ठ, अगुरु, गुग्गुलु तथा मधु से मिश्रित यह धूप सर्वदा चण्डिका को प्रिय है ॥ ८२ ॥

(अथवा) **रोगरोगहररोगदकेशाः सुरतरुजतुलघुपत्रविशेषाः ।**
वक्रतारहितवारिजमुद्रा धूपवर्तिरिह सुन्दरि भद्रा ॥ ८३ ॥

रोग (), रोगहर (), रोगद (), केशर (), सुरतरु (), जतु (लाह), लघुपत्र (), वक्रतारहित वारिजमुद्रा (), इन सबसे बनाई गई धूपबत्ती; हे सुन्दरि ! श्रेष्ठ होती है ॥ ८३ ॥

हरितकीमुस्तमथो नखी च मांसी जतुशैलजदेवदारुः ।
कुष्ठं गुडः सर्जरसस्तथैव दशाङ्गधूपः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ ८४ ॥

अथवा हरतिकी (हर्र), मुस्ता (नागरमोथा), नखी, जटामांसी, जतु (लाह), शैलज (शिलाजीत), देवदार, कुष्ठ, गुड़ और सर्ज (सहिजन) का रस—ये दश धूप के अङ्ग मुनीन्द्रों ने कहे हैं ॥ ८३-८४ ॥

(अथवा) **अगुरुशीरगुग्गुलुशर्करामधुचन्दनैः ।**
धूपयेदाज्यसंमिश्रैर्नोचैर्देवस्य देशिकः ॥ ८५ ॥

अथवा अगुरु, उशीर, गुग्गुल, शर्करा, मधु और चन्दन में घृत मिलाकर देवता के नीचे साधक धूप प्रदान करे ॥ ८५ ॥

केवलं गुग्गुलं धूपमगुरुं वापि सन्दिशेत् ।
एषामेकतमं कृत्वा निवेद्य शास्त्रवर्त्मना ॥ ८६ ॥
न भूमौ स्थापयेद्धूपमासने च घटेऽपि वा ।

अथवा केवल गुग्गुल का धूप, अथवा अगुरु का धूप, इन दोनों में किसी एक का धूप शास्त्रीय मार्ग से प्रदर्शित करे । पृथ्वी पर, आसन पर, अथवा कलशे पर, धूप स्थापित नहीं करना चाहिये ॥ ८६ ॥

कुलदीपदानविधिः

घृतप्रदीपं प्रथमं तिलतैलोद्भवं ततः ॥ ८७ ॥

घी का दीपक, तदभावे तिल तेल का दीपक समर्पित करना चाहिये ॥ ८७ ॥

सार्षपं फलनिर्यासजातं वा वारिजोद्भवम् ।
प्रणवं जयध्वनिपदं मातः स्वाहा ततः परम् ॥ ८८ ॥
अनेन पूजयेद् घण्टामनेन परिवादयेत् ।
तैजसं दारुजं वापि आर्त्तिक्यं दीपवृक्षकम् ॥ ८९ ॥

अथवा सरसों के तेल का, आवा फल का निर्यास अथवा जल में उत्पन्न किसी विशेष वृक्ष से उत्पन्न (नारियल) तेल का दीपक देना चाहिये । तदनन्तर ध्वनि 'ॐ जय मातः स्वाहा' इस मन्त्र से घण्टा का पूजन कर उसे बजावे । दीपक किसी तैजस पदार्थ से, अथवा काष्ठ से, अथवा मिट्टी से, अथवा किसी दीप वृक्ष का बना हुआ होना चाहिये ॥ ८८-८९ ॥

अत्र दीपं प्रदातव्यं भूमौ नहि कदाचन ।
एवं दीपं प्रकुर्वीत नेत्ररञ्जनकारकम् ॥ ९० ॥

पृथ्वी पर दीप कभी भी स्थापित न करे, इस प्रकार का दीप जो देखने में आँखों को सुख प्रदान करे उसे प्रशस्त कहा गया है ॥ ९० ॥

घृतदीपं दक्षिणे तु स्ववामे तैलदीपकम् ।
अभितो दीपयेन्मन्त्री दीपमालां घृतल्पताम् ॥ ९१ ॥

घी का दीपक अपने दाहिने तथा तेल का दीपक अपने बायें स्थापित करे अथवा घृत का दीपक बनाकर दीप माला चारों ओर जलावे ॥ ९१ ॥

कर्पूरवर्तिकायुक्तां तेनैव वा परिप्लुताम् ।
वर्त्ता कर्पूरगन्धिन्या सर्पिषा तिलजेन वा ॥ ९२ ॥
आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशशालिनः ।
दीपाबलिं ततो दत्त्वा कुलदीपं निवेदयेत् ॥ ९३ ॥

तदनन्तर कपूर की बत्ती से युक्त पर्याप्त कपूर पूर्ण हो इस प्रकार का (सर्वथा सुगन्ध युक्त दीपक), अथवा केवल कपूर की बत्ती, अथवा सरसों के तेल से युक्त बत्ती, अथवा तिल के तेल की बत्ती से युक्त दीपक, जो सुगन्ध पूर्ण हो, उसे ऊँचे उठाकर देवता को प्रदर्शित करे । इस प्रकार साधक दीपमाला देकर कुल दीप निवेदन करे ॥ ९२-९३ ॥

सौवर्णे राजते कांस्ये स्थानके कुङ्कुमेन तु ।
दलाष्टकयुतं पद्मं विलिख्य तत्र साधकः ॥ ९४ ॥

साधक सुवर्ण, अथवा चाँदी अथवा काँसे से बने हुये किसी पात्र में कुङ्कुम से अष्टदल कमल लिखे ॥ ९४ ॥

यवगोधूमदुग्धाद्यैः कृत्वेन्दुरूपकं चरुम् ।
अष्टपत्रेषु मध्ये च स्थापयित्वा ततः परम् ॥ ९५ ॥
नवदीपं क्षिपेत्तत्र मूलमन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
सप्तधा तत्र उत्तोल्य नवधा भ्रामयेत्ततः ॥ ९६ ॥
निर्मञ्छयेन्महादेवीं मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
ततश्च साधकश्रेष्ठश्चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ९७ ॥

यव एवं गेहू के आटे से तथा गोदुग्ध से चन्द्रमा के समान स्वच्छ चरू बनाकर उसे कमल के आठ पत्रों में एवं मध्यम में स्थापित करे । फिर उसमें मूलमन्त्र से नवदीपक भी रखे और मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुये, सात बार उसे नीचे से ऊपर कर, नव बार घुमा कर महादेवी की आरती करे । इसके बाद श्रेष्ठ साधक चक्र मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ९५-९७ ॥

चक्रमुद्रालक्षणम्

दक्षिणेतरहस्तस्य वृद्धागर्भकनिष्ठिका ।
दक्षिणे योजयित्वा तु कनिष्ठे गर्भके बुधः ॥ ९८ ॥
वामे च यदक्षिणाङ्गुष्ठं साधको विनियोजयेत् ।
अन्योन्ययोगतश्चैव चक्रमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ९९ ॥

चक्रमुद्रा लक्षण—बायें हाथ की कनिष्ठा अङ्गुली को बायें अङ्गूठे के भीतर रखकर उसे दाहिने हाथ में मिला देवे । इसी प्रकार बायें हाथ में दाहिने अङ्गूठे के

भीतर कनिष्ठा अङ्गुली स्थापित कर उसे मिला देवे, तो एक दूसरे में मिल जाने पर वह चक्र मुंद्रा बन जाती है ॥ ९८-९९ ॥

प्रदत्त्वा कुलदीपञ्च नैवेद्यं तु प्रदापयेत् ।
तैजसेषु च पात्रेषु प्रस्तरे वाऽब्जपत्रके ॥ १०० ॥
यज्ञदारुमये वापि नैवेद्यं कल्पयेद् बुधः ।
सर्वाभावे तु माहेये स्वहस्तघटिते यदि ॥ १०१ ॥

इसके बाद कुलदीप प्रदान कर नैवेद्य प्रदान करे । यह नैवेद्य किसी तैजस पात्र में, प्रस्तर में, कमलपत्र में अथवा यज्ञीय वृक्ष के काष्ठ से बने हुये पात्र में बुद्धिमान् साधक स्थापित करे । यदि उक्त सब पात्रों का अभाव हो तो केवल मिट्टी के पात्र में ही नैवेद्य प्रदान करे । किन्तु वह मिट्टी का पात्र अपने द्वारा ही बना हुआ होना चाहिये ॥ १००-१०१ ॥

न दद्यात् वाल्कले लौहे दत्ते नरकमाप्नुयात् ।
यद्योग्यं सर्वपात्रे तु तन्निधाय निवेदयेत् ॥ १०२ ॥

वृक्ष के वल्कल में अथवा लोहे के पात्र में नैवेद्य नही देना चाहिए । ऐसा करने से नरक प्राप्त होता है । जहाँ जैसी योग्यता हो उसी प्रकार के पात्र में नैवेद्य प्रदान करे ॥ १०२ ॥

अन्नतोयैर्यथा सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ।
न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि ॥ १०३ ॥

अर्घ्यपात्र में स्थित जल यदि अन्न मिश्रित जल से संस्पृष्ट हो जावे, तो कदापि उस अर्घ्य को न देवे । भले ही अनेक विधि से वह दिया जाय, किन्तु भगवती उसे ग्रहण नहीं करती ॥ १०३ ॥

नैवेद्यं षड्रसोपेतं नानाविधफलं तथा ।
नानाविधानि द्रव्याणि दत्त्वा देव्यै प्रयत्नतः ॥ १०४ ॥
मद्यं निवेद्य मांसञ्च मत्स्यं मुद्रां ततः परम् ।
दत्त्वा देव्यै प्रयत्नेन अन्नं बहुविधं तथा ॥ १०५ ॥
विविधं व्यञ्जनं रम्यं कषायं तिक्तसंयुतम् ।
कट्वम्लमधुरञ्चैव परमान्नं सशर्करम् ॥ १०६ ॥

छह रसों से, अनेक प्रकार के फलों से एवं अनेक प्रकार के द्रव्यों से युक्त नैवेद्य प्रयत्नपूर्वक देकर मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा प्रदान कर अनेक प्रकार का अन्न, विविध व्यञ्जन, कषाय, तिक्त, कटु, खट्टा, मधुर, रस तथा शर्करायुक्त परमान्न निवेदित करे ॥ १०४-१०६ ॥

शर्करादुग्धखण्डादिभावितं पिष्टकं तथा ।
दुग्धं दधि तथा तक्रं नवनीतं सशर्करम् ॥ १०७ ॥

शर्करा, दुग्ध, खाँड में डुबोये गये रसीले आँटे से बने पदार्थ, दूध, दही, मट्ठा तथा शर्करायुक्त नवनीत प्रदान करे ॥ १०७ ॥

शर्करामोदकं दद्यादन्यं नानाविधं तथा ।
चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भक्ष्यं भोज्यं निवेदयेत् ॥ १०८ ॥

शर्करा से बना हुआ मोदक तथा अन्य चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भक्ष्य और भोज्य पदार्थ निवेदन करे ॥ १०८ ॥

अशक्तौ मनसा दद्यादेतत् कर्म न लोपयेत् ।
चुल्लुकञ्च ततो दत्त्वा प्राणमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ १०९ ॥

यदि उक्त पदार्थों के समर्पण की शक्ति न हो, तो केवल मन से ही समर्पण करे, किन्तु कर्म का लोप न करे । इसके बाद कुल्ला कराकर प्राणमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १०९ ॥

प्राणादिपञ्चमुद्रा

वृद्धानामाकनिष्ठाभिः प्राणमुद्रा समीरिता ।
वृद्धामध्यातर्जनीभिरपानस्य प्रकीर्तिता ॥ ११० ॥

प्राण एवं अपान मुद्रा लक्षण—वृद्धा (अङ्गूठा), अनामिका और कनिष्ठा अङ्गुलियों को एक में मिला देने पर प्राणमुद्रा बन जाती है । इसी प्रकार अङ्गूठा मध्यमा और तर्जनी के मिला देने से अपान मुद्रा बन जाती है ॥ ११० ॥

वृद्धानामामध्यमाभिर्व्यानमुद्रा प्रदर्शिता ।
कनिष्ठाभिन्नसर्वाभिरुदानस्य समीरिता ॥ १११ ॥

व्यान एवं उदान मुद्रा लक्षण—अङ्गूठा, अनामिका और मध्यमा के योग से व्यान मुद्रा होती है और कनिष्ठा को छोड़कर समस्त अङ्गुलियों के योग से उदान मुद्रा बन जाती है ॥ १११ ॥

समानमुद्रा सर्वाभिरङ्गुलीभिः प्रदर्शिता ।
प्राणापानौ तथा व्यान उदानश्च समानकः ॥ ११२ ॥
चतुर्थ्यन्तोऽग्निजायान्तस्ताराद्यो मुद्रिकामनुः ।
वामहस्ते प्रासमुद्रा प्रासवत् परिकीर्तिता ॥ ११३ ॥

समान मुद्रा लक्षण—सभी अङ्गुलियों के योग से समान मुद्रा बन जाती है ।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इनमें चतुर्थ्यन्त कर अन्त में स्वाहा तथा आदि में प्रणव लगाकर उक्त मन्त्र पढ़कर मुद्रा प्रदर्शित करे, यथा—'ॐ प्राणाय स्वाहा', 'ॐ अपानाय स्वाहा' इत्यादि । बायें हाथ से प्रास मुद्रा, प्रास (भाले) के समान आकार बनाकर प्रदर्शित करे ॥ ११२-११३ ॥

पुनराचमनीयञ्च दत्त्वा देव्यै सुसाधकः ।
स्वयम्भूकुसुमं कुण्डगोलोत्थं रोचनागुरुम् ॥ ११४ ॥
कस्तूरीकुङ्कुमारक्तचन्दनानि प्रदापयेत् ।
गन्धपुष्पं तथा माल्यं रक्तपुष्पादिभूषणम् ॥ ११५ ॥

फिर उत्तम साधक महादेवी को आचमन प्रदान कर स्वयम्भू कुसुम, कुण्डगोलोत्थ, रोचना, अगुरु, कस्तूरी, कुङ्कुम, रक्तचन्दन, गन्ध, पुष्प, माला, रक्तपुष्प तथा रक्तवर्ण का आभूषण प्रदान करे ॥ ११४-११५ ॥

सिन्दूरं कज्जलं दद्यादलक्तं पट्टगुच्छकम् ।
द्रोणापराजितापुष्पं करवीरं जवां तथा ॥ ११६ ॥
प्रयत्नेन प्रदातव्यं चण्डिकाप्रीतिकारकम् ।
दत्ते चैव जवापुष्पे पट्टवस्त्रफलं लभेत् ॥ ११७ ॥

सिन्दूर, कज्जल, अलक्तक, पट्टगुच्छ, द्रोण, अपराजिता का पुष्प, करवीर (कनइल), जपा आदि का पुष्प भगवती को प्रयत्नपूर्वक प्रदान करे । क्योंकि इनके प्रदान से भगवती प्रसन्न होती है । केवल जपा (उड़हुल) पुष्प के प्रदान से पट्टवस्त्र (पटुआ से बने हुये) देने का फल प्राप्त होता है ॥ ११६-११७ ॥

अपरायाश्च माहात्म्यं वक्तुं नहि कदाचन ।
ताम्बूलञ्च ततो दद्यात् कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ११८ ॥
पुनर्माल्यं प्रदातव्यं गन्धचन्दनसंयुतम् ।
दर्पणं पादुकां छत्रं चामरं व्यजनादिकम् ॥ ११९ ॥
अजादिबलिदानेन चण्डिकां तोषयेत्ततः ।

स्वहस्तेन पशुच्छेद निषेधः

यत्नतस्तु बलिं दद्यान्न हन्यादात्मना पुनः ॥ १२० ॥

अपरा का माहात्म्य तो वाणी कथन से परे है । इसके बाद कपूर की सुगन्धि से युक्त ताम्बूल समर्पित करे । फिर गन्ध एवं चन्दन संयुक्त माल्य अर्पण करे । इसी प्रकार दर्पण, छत्र, चामर एवं पङ्खा प्रदान करे । अजा की बलि देकर चण्डिका को प्रसन्न करे । प्रयत्नपूर्वक भगवती को बलि देवे, किन्तु स्वयं उसकी हत्या बुद्धिमान् साधक न करे ॥ ११८-१२० ॥

स्वहस्तैर्न पशुं हन्यात् स्वतो हिंसां विवर्जयेत् ।
यदि हन्यात् प्रमादेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १२१ ॥

साधक अपने स्वयं हाथों से पशु का वध न करे । स्वयं अपने द्वारा की जाने वाली हिंसा वर्जित है । भूल से पशुहत्या करने वाला वह रौरव नरक का भागी होता है ॥ १२१ ॥

छागादीनि बलिं दत्त्वा धूपदीपं निवेदयेत् ।
गृहीत्वा शोणितं पात्रे स्वकीयं हृदयोद्भवम् ॥ १२२ ॥
तोयसैन्धवसंयुक्तं शर्करामधुसंयुतम् ।
प्रदद्याच्च महादेव्यै सर्वसौभाग्यहेतवे ॥ १२३ ॥

बकरे आदि की बलि देकर धूप दीप प्रदान करना चाहिए । फिर अपने हृदय का रक्त निकाल कर किसी पात्र में रखकर सेंधा नमक पानी में मिलाकर, उसमें शर्करा और मधु डालकर, अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिए भगवती को अर्पित करना चाहिए ॥ १२२-१२३ ॥

अभ्युक्ष्य रुधिरं धीरो वाग्भवेन प्रदापयेत् ।
शक्तिबीजेन वा दद्यान्नाभेरूर्ध्वमधो नहि ॥ १२४ ॥

धीर साधक उस रुधिर का अभ्युक्षण कर वाग्भव (ऐं) मन्त्र से उसे शक्ति को प्रदान करे । भगवती के नाभि के ऊपरी भाग में उसे समर्पित करे; नीचे के भाग में नहीं ॥ १२४ ॥ '

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा तर्पयेन्निजदेवताम् ।
ततश्च साधकश्रेष्ठो मन्त्रशुद्धिं माचरेत् ॥ १२५ ॥

फिर तीन पुष्पाञ्जलि देकर, उन अपने देवता का तर्पण करे । इसके बाद श्रेष्ठ साधक अपने मन्त्र को शुद्ध करे । १२५ ॥

गृहीत्वा मातृकावर्णं मूलमन्त्राक्षराणि च ।
क्रमात् क्रमाद् द्विरावृत्तिर्मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥ १२६ ॥

मातृका वर्ण का उच्चारण कर उसमें अपने मन्त्र के एक-एक अक्षरों को दो बार सम्पुटित करे । इस प्रकार मन्त्र की शुद्धि कही गई ॥ १२६ ॥

वाचिकादिभेदेन त्रिविधो जपः

आदौ मन्त्रविशुद्धार्थं जपं कुर्यात्ततः परम् ।
जपश्च त्रिविधं प्रोक्तं वाचिकोपांशुमानसम् ॥ १२७ ॥

जप के लक्षण एवं भेद—मन्त्र की शुद्धि के लिये सर्वप्रथम जप करे। यह जप तीन प्रकार का कहा गया है। प्रथम वाचिक, दूसरा उपांशु और तीसरा मानस—ये उस मन्त्र शुद्धि के भेद हैं ॥ १२७ ॥

जिह्वौष्ठाधरसंस्फूर्त्तेर्जपो यश्च प्रजायते ।
तज्जपं वाचिकं विद्धि जिह्वामात्रमुपांशुकम् ॥ १२८ ॥

जिसमें जिह्वा, ओठ और अधर स्फुरित (सञ्चलित) होता है वह जब वाचिक जप कहा जाता है। जिसमें मन्द मन्द केवल जिह्वा ही चले उसे उपांशु जप कहा जाता है ॥ १२८ ॥

मनसा मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसं स्मृतम् ।
वाचिकस्य शतं ज्ञेयं एकोत्तरमुपांशुना ॥ १२९ ॥
तस्माच्छतगुणं प्रोक्तं मानसं जपमुत्तमम् ।
(अथवा) **निगदश्च तथा ज्ञेयः स्पष्टवाचा निगद्यते ॥ १३० ॥**

मन से मन्त्र के वर्णों का ध्यान करना मानस जप कहा जाता है। केवल एक संख्या में किया गया उपांशु जप सौ वाचिक जप के तुल्य है, उस उपांशु जप का सौ गुना एक संख्या वाला जप मानस जप के बराबर होता है। अथवा जो स्पष्टवाणी में उच्चारण कर जप किया जाता है, वह निगद (वाचिक) जप कहा जाता है ॥ १३० ॥

अव्यक्तस्तु स्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्त्तितः ।
मानसश्च स बोद्धव्यश्चिन्तनाक्षररूपवान् ॥ १३१ ॥

अत्यन्त गुप्त रूप से, किन्तु मुख का सञ्चालन जिसमें हो, उसे उपांशु कहते हैं। अक्षर मात्र मन से चिन्तन करना मानस जप कहा जाता है ॥ १३१ ॥

निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं सुसाधकैः ।
उपांशुस्मरणेनैव तुल्यं भवति सर्वथा ॥ १३२ ॥

साधक के द्वारा स्पष्टोच्चारणपूर्वक निगद रूप से एक लाख की संख्या में किया गया जप एक संख्या वाले उपांशु जप के तुल्य होता है ॥ १३२ ॥

उपांशुलक्षमात्रं तु यज्जप्तं साधकेन च ।
मानसोच्चारणात्तुल्यं जायते साधकस्य च ॥ १३३ ॥

साधक के द्वारा एक लाख की संख्या में किया गया उपांशु जप एक संख्या वाले मानस जप के तुल्य होता है ॥ १३३ ॥

प्राणायामं षडङ्गञ्च कृत्वा ऋष्यादिकञ्चरेत् ।

स्वगुरुं मूर्ध्नि सञ्चिन्त्य हृदि देवीं ततः परम् ॥ १३४ ॥
स्वयं कामकलारूपं भावयन् जपमारभेत् ।
जपस्यादौ शिवां ध्यायेत् ध्यानस्यान्ते पुनर्जपेत् ॥ १३५ ॥

यह जप, प्राणायाम, षडङ्ग न्यास तथा ऋष्यादिन्यास करने के अनन्तर करना चाहिये । मस्तक में गुरु का ध्यान तथा हृदय में भगवती के ध्यान के अनन्तर जप करे। जप के पूर्व अपने को माहेश्वरी के रूप में ध्यान करे । इस प्रकार भगवती शिवा का ध्यान कर तदनन्तर जप आरम्भ करे ॥ १३४-१३५ ॥

जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति साधकः ।
ध्यानं कृत्वा जपेन्मन्त्रं गुरुक्तक्रमतो बुधः ॥ १३६ ॥

जप ध्यान करने वाला साधक शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करता है, गुरु आदि का क्रमशः ध्यान कर मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ १३६ ॥

सर्वे मन्त्राः सिद्धिदाः स्युः सत्यमेव न संशयः ।
ततः सम्पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ॥ १३७ ॥

ऐसा करने से सभी मन्त्र सिद्धि प्रदान करते हैं । जप के आरम्भ काल में माला यत्नपूर्वक जल से प्रक्षालित करे । फिर उसकी पूजा करे ॥ १३७ ॥

मालापूजा

ॐ ह्रीँ अक्षमालायै हृन्मन्त्रेण प्रपूजयेत् ।
ॐ माले माले महामाले सर्वसिद्धिस्वरूपिणि ॥ १३८ ॥
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।

मालाजपविधिः

पूजयित्वा ततो मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ १३९ ॥
हृत्समीपे समानीय न तु वामेन संस्पृशेत् ।

'ॐ ह्रीं अक्षमालायै नमः' मन्त्र से माला का पूजन करे । फिर 'ॐ माले माले.................सिद्धिदा भव' पर्यन्त मन्त्र पढ़े । इस प्रकार पूजन कर माला को दाहिने हाथ में ग्रहण करे । उसे हृदय के पास ले आवे । बायें हाथ से माला का कदापि स्पर्श न करे ॥ १३८-१३९ ॥

विना यन्त्रञ्च मन्त्रञ्च कवचं मन्त्रशून्यतः ॥ १४० ॥
मालाञ्च वामहस्तेन मृत्युचिह्नस्य लक्षणम् ।
संख्या कृता मृत्तिका च अक्षतञ्च तथैव च ॥ १४१ ॥

बिना यन्त्र एवं मन्त्र के कवच व्यर्थ हो जाते हैं । बायें हाथ से ली गई माला

यह मृत्यु का चिह्न है । मट्टी एवं अक्षत द्वारा की गई जप संख्या—ये भी उसी प्रकार मृत्यु के कारण हैं ॥ १४०-१४१ ॥

मध्यमाया मध्यभागे स्थापयित्वा समाहितः ।
तर्जन्या न स्पृशेन्मालामङ्गुष्ठाग्रेण चालयेत् ॥ १४२ ॥

मध्यमा और अनामिका के मध्य भाग में माला स्थापित कर समाहित मन हो जप करे । तर्जनी से माला का स्पर्श न करे । अङ्गूठे के अग्रभाग से माला सरकावे ॥ १४२ ॥

पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्म समाचरेत् ।
निःसेतुश्च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति ॥ १४३ ॥

दोनों के पार्श्व के सेतु (मनियों का मध्य भाग) लेकर जप करे, क्योंकि बिना सेतु के जल नीचे बह जाता है ॥ १४३ ॥

मन्त्रस्तथैव प्रणवो द्विजानां सेतुरीरितः ।
शूद्राणां चन्द्रविन्दुस्थ औकारः सेतुरुच्यते ॥ १४४ ॥

द्विजातियों के लिये मन्त्र का सेतु प्रणव (ॐ) है । शूद्रों के लिये चन्द्रविन्दु (अनुस्वार) युक्त 'औं' वर्ण है ॥ १४४ ॥

शूद्राणामादिसेतुर्वा द्विसेतुर्वा यथेच्छया ।
द्विसेतवः समाख्याताः सर्वथैव द्विजातयः ॥ १४५ ॥

अथवा शूद्र का अकार सेतु है, अथवा दो सेतु हैं, द्विजाति विशेष रूप से दो सेतु वाले कहे गये हैं ॥ १४५ ॥

यथा मन्त्रं तथा स्तोत्रं कवचञ्च तथाविधम् ।
सेतुं विना भवेद्व्यर्थं तस्मात् सेतुं समाचरेत् ॥ १४६ ॥

सेतु (प्रणव) के बिना जिस प्रकार मन्त्र व्यर्थ हो जाता है उसी प्रकार स्तोत्र और कवच भी व्यर्थ हो जाते हैं । इसलिये सुधी साधक को सेतु में कवच का प्रयोग करना चाहिए ॥ १४६ ॥

प्रत्येकं बीजमादाय अङ्गादूर्ध्वेन मन्त्रवित् ।
पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजन्तु संस्पृशेत् ॥ १४७ ॥
अङ्गुष्ठेन विना यस्य निष्फलः स जपः सदा ।
एवमुक्तविधानेन विलम्बं त्वरितं त्यजेत् ॥ १४८ ॥
मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य प्रजपेत् साधकोत्तमः ।
गणनाविधिमुल्लङ्घ्य यो जपेत्तज्जपं पुनः ॥ १४९ ॥

गृह्णन्ति राक्षसास्तेन गणयेत् सर्वदा बुधः ।
अथवा करमालायां मातृकायां तथैव च ॥ १५० ॥

बीज (मनियों) को ऊपर उठाकर प्रत्येक बीज (मनियों) से जप करे । जो जप करते हुए पूर्व बीज (पहली मनियाँ) को छोड़कर दूसरी मनियों का स्पर्श करता है, अथवा बिना अङ्गूठा लगाये जप करता है, वह जप निष्फल हो जाता है । इस प्रकार 'शनैः शनैः' जप करे । विलम्ब से अथवा जल्दीबाजी से मन्त्र का उच्चारण न करे । उत्तम साधक मेरु को प्रदक्षिण कर जप करे । जो बिना गणना किये जप करता है, उसके द्वारा किये गये समस्त जप राक्षस ग्रहण कर लेते हैं । इसलिये जप की सर्वदा गणना करनी चाहिये । कर माला में तथा मातृका वर्णों के द्वारा गणना करनी चाहिये ॥ १४७-१५० ॥

नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन ।
नित्यजपे च होमे च यत्र संख्या न चोदिता ॥ १५१ ॥

जपसंख्या

तत्रेयं गणना प्रोक्ता अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि त्रिंशद्वापि कदाचन ॥ १५२ ॥

नित्य जप करमाला से करे । किन्तु काम्य जप करमाला पर कदापि न करे । नित्य जप में, होम में, जहाँ संख्या का निर्देश नहीं है, वहाँ इस प्रकार संख्या समझनी चाहिये—एक हजार आठ, अथवा एक-सौ आठ, अथवा तीस की संख्या समझनी चाहिये ॥ १५१-१५२ ॥

त्रिंशन्न्यूनं न कुर्याच्च नित्यजापे च साधकः ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा प्राणायामं विधाय च ॥ १५३ ॥

साधक नित्य संख्या वाले जप में तीस संख्या से कम जप कदापि जप न करे । इस प्रकार यथाशक्ति जप करे । फिर प्राणायाम करे ॥ १५३ ॥

जपसमर्पणं

गोपयित्वा ततो मालां सप्रसूनार्घ्यवारिणा ।
तेजोमयं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत् ॥ १५४ ॥

तदनन्तर माला को गुप्त कर पुष्प सहित अर्घ्य के जल से तेजोमय जपफल भगवती के हाथ में समर्पित कर देवे ॥ १५४ ॥

प्रणामविधिः

गुह्यातीति समर्प्याथ स्तुवन् घण्टाञ्च वादयेत् ।
त्रिविधेन नतिं कुर्यादष्टाङ्गकविधानकैः ॥ १५५ ॥

'गुह्यातिगुह्य' इत्यादि मन्त्र पढ़कर जप समर्पित कर घण्टा बजाते हुये स्तुति करे। तदनन्तर अष्टाङ्ग विधि द्वारा तीन बार भगवती को नमस्कार करे ॥ १५५ ॥

चिबुकेन मुखेनाथ नासया मस्तकेन च ।
ब्रह्मरन्ध्रेण कर्णाभ्यां यद्भूमेः स्पर्शनं भवेत् ॥ १५६ ॥

चिबुक, मुख, नासिका, मस्तक, ब्रह्मरन्ध्र, दोनों कान, इनके द्वारा जो भूमि का स्पर्श किया जाता है उसे अष्टाङ्ग प्रणाम कहा जाता है ॥ १५६ ॥

(अथवा) **उरः शिरोदृष्टिजानुमनश्चरणवाक्करैः ।**
अष्टाङ्गनमनं ज्ञेयं नित्यहोमं ततः परम् ॥ १५७ ॥

अथवा वक्षःस्थल, शिर, दृष्टि, जानु, मन, चरण, वाणी एवं हाथ इन आठ अङ्गों से भगवती को नमन करे। तदनन्तर नित्य होम सम्पादन करे ॥ १५७ ॥

नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिलेषु समाचरेत् ।
न कुर्यात् काम्यहोमं वै विना कुण्डेन मन्त्रवित्॥ १५८ ॥

नित्य नैमित्तिक होम स्थण्डिल (वेदी) पर करे। किन्तु मन्त्रवेत्ता काम्य होम कुण्ड के बिना न करे ॥ १५८ ॥

स्वदक्षिणे लिखेद्धस्तप्रमाणं चतुरस्रकम् ।
अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं वालुकाभिः समन्ततः ॥ १५९ ॥
तत्र मध्ये च षट्कोणं लिखित्वा प्रोक्ष्य पूजयेत् ।
आधारशक्तिमभ्यर्च्य पूर्ववच्च षडङ्गकम् ॥ १६० ॥

बालुका के द्वारा अपने दाहिने हाथ के प्रमाण का चौड़ा एक अङ्गुल चौकोर वेदी निर्माण करे। उसके बीच में षट्कोण बनाकर प्रोक्षण कर उसकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् आधार शक्ति का तथा षडङ्ग का पूजन करे ॥ १५९-१६० ॥

ततो वह्निं समुज्ज्वाल्य क्रव्यादंशं परित्यजेत् ।
शब्दास्त्रमनुना मन्त्री नैर्ऋत्यां ज्वलदग्निकम् ॥ १६१ ॥

फिर उसपर आग को प्रज्वलित कर उसमें से क्रव्यात् अंश को अस्त्र मन्त्र (फट्) से निकाल कर उस जलते अग्नि को नैर्ऋत्य दिशा में फेंक देवे ॥ १६१ ॥

आत्मनोऽभिमुखं कृत्वा वह्निं संस्थापयेद् बुधः ।
अग्निं प्रज्वाल्य मूलेन ज्वालिनीञ्च प्रदर्शयेत् ॥ १६२ ॥

अपने सम्मुख वेदी पर अग्नि स्थापन की विधि इस प्रकार है, मूल मन्त्र से अग्नि को प्रज्वलित कर ज्वालिनी मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ १६२ ॥

ज्वालिनीमुद्रा

मणिबन्धौ समौ कृत्वा करौ तु प्रसृताङ्गुली ।
मध्यमे मिलिते कृत्वा तन्मध्येऽङ्गुष्ठकौ क्षिपेत् ॥ १६३ ॥
इयं स्याज्ज्वालिनी मुद्रा परमा होमकर्मणि ।
अग्निं सम्पूजयित्वा तु शिवशक्तिसमागमात् ॥ १६४ ॥
वह्निमध्ये समावाह्य इष्टदेवीं समाहितः ।
आवाहन्यादिका मुद्रा दर्शयित्वा तु रक्षयेत् ॥ १६५ ॥

दोनों मणिबन्धों को समान रखे, हाथ की अङ्गुलियों को फैला देवे, फिर दोनों मध्यमा अङ्गुलियों को एक में मिलाकर, उसके मध्य में दोनों अङ्गूठो को स्थापित कर दे तो ज्वालिनी मुद्रा बन जाती है, जो होम कर्म में प्रशस्त बतलायी गई है । फिर अग्नि का पूजन कर उसमें शिवशक्ति के एक में मिले हुये रूप का आवाहन करना चाहिए । तदनन्तर इष्टदेवी को आवाहनी आदि मुद्रा प्रदर्शित कर साधक अग्नि की रक्षा करे ॥ १६३-१६५ ॥

सम्पूज्य च महादेवीं हव्यं संशोधयेत्ततः ।
संस्थाप्य हवनीयञ्च पूर्ववत् प्रोक्षणञ्चरेत् ॥ १६६ ॥
चतुर्धा शोधनं कृत्वा आज्यस्थाली तु सन्दिशेत् ।
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा पूजयेत् पूर्ववर्त्मना ॥ १६७ ॥
अत्र पात्रं विनिक्षिप्य हव्यं तत्र निधापयेत् ।
दशधा मूलमन्त्रेण अभिमन्त्र्य हुनेत्ततः ॥ १६८ ॥
प्रणवं भूस्ततः स्वाहा इदमग्निञ्च ङेयुतम् ।
तारं भुवो वह्निजाया इदञ्च वायवे पदम् ॥ १६९ ॥
ॐ स्वः स्वाहा इदं प्रोच्य प्रजाधिपतये ततः ।
इत्याहुतित्रयं हुत्वा महाव्याहृतिसाङ्कम् ॥ १७० ॥

तदनन्तर महादेवी की पूजा कर हव्य का संशोधन करे । हव्य को किसी पात्र में स्थापित कर पूर्ववत् प्रोक्षण करे । इस प्रकार चार बार संशोधन कर फिर आज्य स्थाली में मण्डल बनाकर उसका पूर्ववत् पूजन करे । उसमें घृत डाले । हव्य को भी वही स्थापित करे । फिर मूलमन्त्र से दस बार अभिमन्त्रित कर हवन प्रारम्भ करे । प्रणव (ॐ), इसके बाद 'भू स्वाहा इदमग्नये' इस मन्त्र से प्रथम आहुति, तार (ॐ), इसके बाद 'भुवः स्वाहा इदं वायवे', इस मन्त्र से द्वितीय आहुति । 'ॐ स्वः स्वाहा इदं प्रजाधिपतये', इस मन्त्र से तृतीय आहुति देवे । इस प्रकार महाव्याहृति सञ्ज्ञक तीन आहुति देवे ॥ १६६-१७० ॥

हव्ये वह्नौ तथा देव्यां आत्मन्यैक्यं विभावयेत् ।

षडङ्गमनुना षट्कमाहुतिं जुहुयात्ततः ॥ १७१ ॥

इसके अनन्तर हवि, अग्नि देवता तथा अपनी आत्मा में एकता की भावना करते हुये षडङ्ग मन्त्र से छह आहुति देवे ॥ १७१ ॥

मूलान्ते देवतानाम ङेयुक्तञ्च समुच्चरेत् ।
ततः स्वाहा समुच्चार्य अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १७२ ॥
हविषा च हुनेद्धीर तिलेन पललेन वा ।
अष्टोत्तरशतं वापि तदर्द्धं वापि साधकः ॥ १७३ ॥
अथवाष्टदशं कुर्यान्नित्यहोमे त्वयं विधिः ।

प्रथम मूलमन्त्र, इसके बाद चतुर्थ्यन्त देवता का नाम, तदनन्तर स्वाहा का उच्चारण कर एक हजार आठ आहुति हवि से, अथवा तिल से, अथवा मांस से देवे, अथवा एक सौ आठ आहुति, अथवा उसकी आधी, अथवा अट्ठारह आहुति प्रदान करे। नित्य होम का यह विधान है ॥ १७२-१७३ ॥

मांसेन मधुना चाज्यैर्मत्स्यैः पुष्पैस्तिलैस्तथा ॥ १७४ ॥
यवैर्धान्यैश्च मुद्राभिः कुलपुष्पैस्तथा फलैः ।
अपामार्गैर्विल्वपत्रैर्भृङ्गराजैः सुशोभनैः ॥ १७५ ॥

पुष्पनामानि

करवीरैर्जवापुष्पैरपराद्रोणकिंशुकैः ।
पद्मैश्च कुमुदैः कुन्दैर्नीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥ १७६ ॥
सौगन्धिकैश्च बन्धूकैः केशरैश्चम्पकैस्तथा ।
जातीभिर्मालतीभिश्च मल्लिकाभिः कदम्बकैः ॥ १७७ ॥
मनोरमैः प्रसूनैश्च फलैः पत्रैर्यथाविधि ।
अनेन विधिना मन्त्री देव्या होमं समाप्य च ॥ १७८ ॥

मांस, मधु, घृत, मत्स्यखण्ड, पुष्प, तिल, यव, धान्य, मुद्रा, कुलपुष्प, फल, अपामार्ग, बिल्वपत्र, उत्तम प्रकार के भृङ्गराज (भङरैया), करवीर (कनइल), जवा पुष्प, अपरा, द्रोण, किंशुक, कमल, कुमुद, कुन्द, नीले अथवा रक्तवर्ण के उत्पल, सौगन्धिक, बन्धूक, केशर, चम्पक, जाती, मालती, मल्लिका, कदम्ब और इसी प्रकार मनोरम फलों, पुष्पों एवं पत्रों से विधान के अनुसार आहुति देवे। मन्त्रज्ञ इस प्रकार भगवती का होम समाप्त करे ॥ १७४-१७८ ॥

होमसमाप्तिः

पञ्चप्राणाहुतीर्मूलैः षडङ्गानां षडहुतोः ।
गुरुवृन्दं रश्मिवृन्दं समावाह्य हुनेत्ततः ॥ १७९ ॥

फिर प्राणमन्त्र के द्वारा पाँच आहुति एवं षडङ्ग से छह आहुति देकर गुरुवृन्दों को तथा रश्मिवृन्दों को आहुति देवे ॥ १७९ ॥

क्रमादेकाहुतिं हुत्वा प्रत्येकेन सुसाधकः ।
आहुतित्रितयं हुत्वा पुनर्देव्यै प्रयत्नतः ॥ १८० ॥

गुरुओं तथा रश्मिवृन्दों को क्रमशः एक-एक आहुति देकर उत्तम साधक फिर प्रयत्नपूर्वक द्रव्यों की तीन आहुति देवे ॥ १८० ॥

पुनराचमनीयं तु दत्त्वा वह्नौ समानयेत् ।
संहारमुद्रया देवीं ॐ अग्नये ततः परम् ॥ १८१ ॥
वह्निजायान्तमन्त्रेण आहुतित्रितयं हुनेत् ।
विसृज्याग्निञ्च देवीञ्च शङ्खघण्टाञ्च वादयेत् ॥ १८२ ॥

फिर अग्नि में आचमन देकर देवी को सहार मुद्रा प्रदर्शित करे । फिर 'ॐ अग्नये स्वाहा' मन्त्र पढ़कर तीन आहुति प्रदान करे । तदनन्तर अग्नि एवं देवी का विसर्जन कर शङ्ख और घण्टा बजावे ॥ १८१-१८२ ॥

तर्पयित्वा ततो देवीं चक्रस्थां परमेश्वरीम् ।
देव्यङ्गमूर्ध्नि संहत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १८३ ॥

फिर चक्र स्थित परमेश्वरी का तर्पण कर देवी के चरण कमलों में मस्तक रखकर शेष कर्म करे ॥ १८३ ॥

निवेदित पञ्चतत्त्वग्रहणफलकथनम्

ततश्च कौलिकैः सार्द्धं पानं कुर्यात् कुलामृतम् ।
पञ्चतत्त्वं महादेव्यै दत्त्वा न स्वीकरोति यः ॥ १८४ ॥
नैवेद्यादि तथा सोऽपि देवीनां शापभाग्भवेत् ।
रोगी दुःखी दरिद्रश्च भूत्वा नरकमाप्नुयात् ॥ १८५ ॥

इसके बाद कौलमार्गियों के साथ कुलामृत का पान करना चाहिए । महादेवी को मद्यादि पाँच तत्त्व एवं नैवेद्यादि प्रदान कर जो उसे स्वयं नहीं ग्रहण करता वह देवी के द्वारा शाप प्राप्त करता है । वह रोगी, दुःखी और दरिद्र होकर नरक प्राप्त करता है ॥ १८४-१८५ ॥

पानस्य त्रैविध्यम्

एकाकी नाचरेत् पानं कौलिकैर्मायया सह ।
पानञ्च त्रिविधं प्रोक्तं दिव्यवीरपशुक्रमात् ॥ १८६ ॥

दिव्यं देव्यग्रतः पानं वीरमेकान्तवासिनाम् ।
संस्कारादिविहीनं यत्तत् पानं पाशवं स्मृतम् ॥ १८७ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये सप्तमोल्लासः ॥७॥

मद्यपान के तीन प्रकार—अकेले कभी मद्यपान न करे । कौलों और माया (स्त्रियों) के साथ पान करना चाहिए । मद्यपान के तीन प्रकार बतलाये गये हैं—दिव्य, वीर और पशु । देवी के भक्तों के साथ किया गया पान दिव्यपान कहलाता है । एकान्त में किया गया मद्यपान वीर पान होता है तथा संस्कारादि रहित मद्यपान पशुपान कहा जाता है ॥ १८६-१८७ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के सप्तम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

अष्टम उल्लासः

...
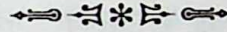
अन्नपूर्णायाः पूजाध्यानादि विधानम्

क्रमं तस्य प्रवक्ष्यामि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
अन्नमध्ये त्वष्टपत्रं पद्मं निर्माय तत्र वै ॥ १ ॥

अब नैवेद्य समर्पण के क्रम को कहता हूँ । जिससे चारों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति होती है । अन्न के मध्य में अष्टपत्र कमल का निर्माण करना चाहिये ॥ १ ॥

कारणैः पूर्णपात्रं तु संस्थाप्य तत्र साधकः ।
षड्दीर्घमायया चैव षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
ततो ध्यायेदन्नपूर्णां परमानन्ददायिनीम् ॥ २ ॥

वहाँ मद्य से भरा पूर्णपात्र स्थापित करे, फिर ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इस षड्दीर्घ माया से अङ्गन्यास कर परमानन्ददायिनी अन्नपूर्णा का इस प्रकार ध्यान करे ॥ २॥

अन्नपूर्णाध्यानकथनम्

आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वीन्
दुग्धान्न पूर्णामितरेण च रत्नपात्रम् ।
भिक्षान्नदाननिरतां नव हेमवर्णा
मम्बां भजे सकलभूषणभूषिताङ्गीम् ॥ ३ ॥

अन्नपूर्णा का ध्यान—जो अपने दाहिने हाथ में दूध और अन्न से भरी हुई दर्वी (=सूप) तथा बायें हाथ में रत्न पात्र लेकर निरन्तर अन्नदान की भिक्षा में निरत हैं । जिनके शरीर का वर्ण तप्त सुवर्ण के समान चमकीला है । इस प्रकार सम्पूर्ण भूषणों से अलंकृत माता अन्नपूर्णा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

एवं ध्यात्वा महादेवीं तत्रावाह्य सुसाधकः ।
तत्त्वमुद्रां प्रदर्श्याथ इदमन्नामृतं वदेत् ॥ ४ ॥
पूरयद्वन्द्वमुच्चार्य नमः स्वाहा ततः परम् ।

तत्र सन्तर्पयेद्भक्त्या अन्नपूर्णा यजेत्ततः ॥ ५ ॥

इस प्रकार ध्यान कर साधक उस अष्टपत्र कमल में महादेवी का आवाहन कर तत्वमुद्रा प्रदर्शित कर 'इदमन्नामृतं पूरय पूरय स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़े । पुनः अन्नपूर्णा का वहीं तर्पण कर भक्तिपूर्वक उनका यजन करे ॥ ४-५ ॥

तारञ्च भुवनेशानीं श्रीबीजं कामबीजकम् ।
हृदन्ते भगवत्यन्ते माहेश्वरीपदं लिखेत् ॥ ६ ॥
अन्नपूर्णे अग्निजाया त्वन्नपूर्णामनूत्तमः ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा स्तुत्वा देवीं समाहितः ॥ ७ ॥
अर्चयित्वा तु देवेशीं कौलिकान्नार्चयन्ति ये ।
पापिष्ठास्ते चण्डिकायाः प्रसादभाजनं नहि ॥ ८ ॥

तार (ॐ), भुवनेशानी (ह्रीं), श्रीबीज (श्रीं), फिर कामबीज (क्लीं), का उच्चारण कर, 'नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' यह अन्नपूर्णा का सर्वोत्तम मन्त्र है । इस मन्त्र का यथाशक्ति जपकर समाहित चित्त से स्तुति कर उनका कौलिक अर्चन करे । जो पापी कौलिक अन्नपूर्णा का अर्चन नहीं करते, वे अन्नपूर्णा के कृपापात्र नहीं होते ॥ ६-८ ॥

नैवेद्यं पुरतो न्यस्तं दर्शनात् स्वीकृतं त्वया ।
साधुभक्तस्य जिह्वायामश्नामि कमलेक्षणे ॥ ९ ॥

हे मातः! यह नैवेद्य हमने आपके समीप स्थापित किया है जिसे आपने अपनी दृष्टि से स्वीकार भी किया है । हे कमले! अब इस अन्न को मैं उत्तम कोटि के साधुओं की जीभ से भोजन कराना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

वसन्ति तस्य जिह्वायां शिवशक्त्यादिदेवताः ।
तस्मात् कौलिकवक्त्रेषु होतव्यं साधकोत्तमैः ॥ १० ॥

यतः साधुजनों की जिह्वा पर शिवशक्त्यात्मक देवता का निवास रहता है, इसलिये कौलिकों को उनके मुख में हवन करना चाहिये ॥ १० ॥

चण्डिकायाः प्रियाकाङ्क्षी देवीभक्तान् यजेत् सदा ।
कौलानां लक्षणं वक्ष्ये यथातन्त्रानुसारतः ॥ ११ ॥

चण्डिका की कृपा चाहने वाला साधक ऐसे देवी भक्तों को भोजन अवश्य करावे । अब तन्त्र के अनुसार कौलिकों के लक्षण कहता हूँ ॥ ११ ॥

कौललक्षणम्

निवृत्तदुःखसन्तुष्टा विद्यागमविमत्सराः ।

कुलज्ञानरताः शान्ताः शिवभक्ता दृढव्रताः ॥ १२ ॥
कीर्त्यमाने कुले येषां रोमाञ्चगद्गदस्वराः ।
आनन्दाश्रुयुता वीराः कथिताः कौलिकेश्वराः ॥ १३ ॥

जो सर्वदा दुःख को दूर कर सन्तुष्ट रहते हैं, विद्या आगम (मन्त्रशास्त्र) से युक्त हैं और मात्सर्यरहित हैं, कुलज्ञान में निरत, शान्त, शिवभक्त और दृढ़व्रत रहते हैं, कौलधर्म के निरूपणकाल में जो रोमाञ्च एवं गद्गद् स्वर वाले हो जाते हैं और उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती है, ऐसे वीर कौलिकेश्वर कहे जाते हैं ॥ १२-१३ ॥

सर्वधर्मोऽधिको लोके कुलधर्मः शिवोदितः ।
इति ये निश्चितधियः प्रोक्तास्ते कौलिकोत्तमाः ॥ १४ ॥

यतः शिवोपदिष्ट होने से यह कौलधर्म लोक में सबसे अधिक प्रचलित है इस प्रकार की निश्चित बुद्धि वाले सर्वश्रेष्ठ कौलिक कहे गये हैं ॥ १४ ॥

कुलार्चनप्रशंसा

यो भवेत् कुलतत्त्वज्ञः कुलशास्त्रविशारदः ।
कुलार्चनरतपुंसां कौलिकः सोऽधिकः सदा ॥ १५ ॥

जो कुलतत्वज्ञ एवं कुलशास्त्र में विशारद हैं, वह साधक सभी कुलार्चन करने वाले पुरुषों में श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

कुलभक्तान् कुलाचारान् कुलज्ञानान् कुलव्रतान् ।
प्रीतो भवति यो दृष्ट्वा कौलिकः स शिवप्रियः ॥ १६ ॥

जो कुलभक्त कुलाचार, कुलज्ञान और कुलव्रत में निरत कौलों को देखकर प्रसन्न होता है वह शिवप्रिय कौलिक है ॥ १६ ॥

पञ्चतत्त्वस्वीकरणात् मूलमन्त्रार्थतत्त्ववित् ।
देवतागुरुभक्तश्चेत् कौलिकः स्याच्च दीक्षया ॥ १७ ॥

कौलिकलक्षण—पञ्चतत्व (मद्य मांसादि) को स्वीकार करने वाला एवं मूलमन्त्र के अर्थ का तत्त्ववेत्ता, देवता और गुरु का भक्त तथा दीक्षा सम्पन्नजनों को कौलिक कहा जाता है ॥ १७ ॥

दुर्लभं सर्वलोकेषु कुलाचार्यस्य दर्शनम् ।
यः शक्तीः स्वयमाहूय कुलाभिज्ञांस्तथैव च ॥ १८ ॥
अभ्यर्च्य देवताबुद्ध्या गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
मादिभिः पञ्चमुद्राभिः सद्भक्त्या परितोषयेत् ॥ १९ ॥

तेषु तुष्टेषु सन्तुष्टाः शिवाद्याः सर्वदेवताः ।
कुलज्ञानी वसेद् यत्र स देशः पुण्यभाजनः ॥ २० ॥

ऐसे सभी लोकों में इस प्रकार के कुलाचार्य का दर्शन होना सर्वथा दुर्लभ है जो स्वयं शक्ति का तथा कुलमार्ग के ज्ञानियों का आवाहन कर उनका देवता बुद्धि से अभ्यर्चन कर गन्ध, पुष्प, अक्षतों से मकारादि पञ्चद्रव्यों से एवं पञ्चमुद्राओं से भक्तिपूर्वक अर्चन कर सन्तुष्ट करे वह श्रेष्ठ है । क्योंकि ऐसे कौलों के अर्चन से न केवल सभी देवता अपितु शिवादि सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं । कुलज्ञानी का जिस देश में निवास होता है वह प्रदेश सर्वाधिक पुण्यशाली है ॥ १८-२० ॥

दर्शनादर्चनात्तस्य त्रिसप्तकुलमुद्धरेत् ।
कुलज्ञानिनमालोक्य स्वगृहेऽन्यगृहे स्थितम् ॥ २१ ॥
समायान्ति मुदा तत्र योगिन्यो योगिभिः सह ।
प्रविश्य कुलयोगीशं भुञ्जते पितृदेवताः ॥ २२ ॥

साधक ऐसे कौलों का दर्शन एवं पूजन कर अपनी इक्कीस पीढ़ियों का तरन-तारन कर देता है । अपने घर में तथा अन्य के घर में रहने वाले कुलज्ञानी को देखकर योगिनियाँ प्रसन्नतापूर्वक योगियों के साथ वहाँ पहुँच जाती हैं । पितर और देवता भी कुलयोगीशों के शरीर में प्रविष्ट होकर उस साधक के पास वहाँ भोजन करते हैं ॥ २१-२२ ॥

यत् कृतं कुलनिष्ठानां तद्देवानां कृतं भवेत् ।
देवाः कुलप्रियाः सर्वे तस्मात् कौलिकमर्चयेत् ॥ २३ ॥

कौलिकों द्वारा किया गया कर्म देवता भी स्वीकार करते हैं । देवता भी कौलिकों से प्रसन्न रहते हैं । इसलिये विद्वान् एवं कुलाचार युक्त कौलिकों की अर्चना अवश्य करनी चाहिये ॥ २३ ॥

ब्रह्मेन्द्राच्युतरुद्रादिदेवता मुनिराक्षसाः ।
कुलधर्मपरा ह्येते मानुषेषु च का कथा ॥ २४ ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्रादि, देवता एवं मुनि और राक्षस—ये सभी कुलधर्म को मानने वाले हैं । फिर मनुष्यों की बात ही क्या? ॥ २४ ॥

न तुष्टा चण्डिकाऽन्यत्र तथातः स्यात् सुपूजिता ।
कौलिकेन्द्रेऽर्चिते सम्यग् यथा तुष्टा हि चण्डिका ॥ २५ ॥

कौलिकों के अर्चन से भगवती चण्डिका जितनी प्रसन्न होती हैं उतनी अन्य देवों के पूजन से सम्यक्तया सन्तुष्ट नहीं होतीं । अतः श्रेष्ठ कौलिकों की पूजा अवश्य करनी चाहिये ॥ २५ ॥

यत् फलं कौलिकेन्द्राणां पूजनाल्लभते सुधीः ।
तत्फलं नाप्नुयात्तीर्थैस्तपोव्रतमखैः सदा ॥ २६ ॥

सुधी साधक कौलिकेन्द्रों के पूजन से जितना फल प्राप्त करता है उतना फल तीर्थ, तप, व्रत एवं यज्ञों के करने से नहीं प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

तन्निन्दायां दोषः

पूजनाज्जपनाद्धोमात् सुकृतं विविधं तथा ।
कौलिकस्य भवेद् व्यर्थं कौलिकं योऽवमानयेत् ॥ २७ ॥

जो कौलिकों का अपमान करता है, उसके पूजा और जप से होने वाले सभी सुकृत विनष्ट हो जाते हैं ॥ २७ ॥

श्मशानं तद्गृहं विद्धि पापिष्ठः श्वपचाधमः ।
कुलनिष्ठं परित्यज्य यच्चान्यस्मै प्रदीयते ॥ २८ ॥

जो कौलों का परित्याग कर अन्यों को देता है उसका घर श्मशान है । उसे पापिष्ठ और श्वपच (=चाण्डाल) समझना चाहिये ॥ २८ ॥

तद्दानं निष्फलं विद्याद्दाताऽपि नरकं व्रजेत् ।
पापाचारसमायुक्तं सर्वलोकबहिष्कृतम् ॥ २९ ॥
त्रायते हि कुलद्रव्यं कुलयोगीश्वरार्पितम् ।
कौलिकेन्द्रः सकृद्भुङ्क्ते पुण्यं कोटिगुणं भवेत् ॥ ३० ॥

उस परित्यक्त कौल का किया हुआ दान निष्फल है । उसे देने वाला स्वयं भी नरक का भागी होता है क्योंकि कुलयोगीश्वरों को अर्पित किया गया दान, कुलद्रव्य, पाप के आचरण में लगे हुये सर्वलोक बहिष्कृत जनों की भी रक्षा करता है । अतः यदि किसी के अन्न को एक कौलिकेन्द्र भोजन कर ले तो उसको करोड़ गुना फल प्राप्त होता है ॥ २९-३० ॥

कुलधर्मप्रशंसा

किं पुनर्बहुभिर्भुक्तैस्तत् पुण्यं नैव गण्यते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वथा ॥ ३१ ॥
कुलधर्मपरो भूत्वा कुलज्ञानिनमर्चयेत् ।
नन्दन्ति पितरः सर्वे गायन्ति च पितामहाः ॥ ३२ ॥

फिर जिसके अन्न को बहुत से कौलों ने भोजन कर लिया, तो उसके पुण्य की गणना नहीं हो सकती । इसलिये सभी अवस्थाओं में, सदा कौलिक बनकर, कुलमार्ग के ज्ञाताओं का अर्चन करना चाहिये । ऐसा करने से उसके समस्त

पितर प्रसन्न होते हैं तथा पितामह उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

प्रपितामहाश्च नृत्यन्ति कौलिके गृहमागते ।
यज्ञकोटिफलं तस्य वाजपेयशतानि च ॥ ३३ ॥

बहुत क्या कहें ? कौलिक के अपने घर आ जाने पर प्रपितामह प्रसन्नता से नाचनें लगते हैं और उसे करोड़ो यज्ञों का तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

ददाति कौलिकेभ्यश्च विन्दुमात्रालिसङ्गमात् ।
पृथिवी हेमपूर्णा च कल्पकोटिप्रदानतः ॥ ३४ ॥
तत्फलं स्पर्शनाज् ज्ञानात् कौलिके यागमन्दिरे ।
कौलिकेषु प्रसन्नेषु प्रसन्ना चण्डिका भवेत् ॥ ३५ ॥

जो कौलिकों को विन्दु मात्र मद्य का सङ्गम कराने से, यागमन्दिर में उसके स्पर्श से, उसके ज्ञान से, इतना पुण्य होता है जितना स्वर्णपूर्णा पृथ्वी के करोड़ो बार देने से होता है । कौलिक के प्रसन्न हो जाने पर स्वयं भगवती चण्डिका प्रसन्न हो जाती हैं ॥ ३४-३५ ॥

संस्मृतः कीर्तितो दृष्टो वन्दितो भाषितोऽपि वा ।
पुनाति कुलधर्मिष्ठश्चण्डालोऽपि यदृच्छया ॥ ३६ ॥

कुलधर्म का पालन करने वाले चाण्डाल का भी इच्छा से स्मरण करने से, कीर्त्तन करने से, दर्शन करने से, वन्दना करने से और सम्भाषण करने से मनुष्यों को पवित्र कर देता है ॥ ३६ ॥

सर्वज्ञो वापि मूर्खो वा उत्तमो वाऽधमोऽपि वा ।
सर्वथैव शिवः सोऽपि तस्माद्यत्नात् समर्चयेत् ॥ ३७ ॥

सर्वज्ञ अथवा मूर्ख, उत्तम अथवा अधम कौल भी साक्षात् शिव है । इसलिये उसकी यत्नपूर्वक अर्चना करे ॥ ३७ ॥

स धन्यः खलु लोकेषु पुरुषः क्षीणकल्मषः ।
यत्समीपं समायान्ति कुलाचार्याश्च साधकाः ॥ ३८ ॥

इस लोक में वह पुरुष धन्य है; वही अत्यन्त पुण्यशाली है, जिसके समीप कुलाचार्य अथवा कुलसाधक आते-जाते रहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ कौलान् समानीय शक्तीश्चैव विशेषतः ।
स्वशक्तिं वीरशक्तिं वा दीक्षितां गृहिणीमथ ॥ ३९ ॥

पाययित्वा पिबेद् द्रव्यमिति शास्त्रस्य निर्णयः ।
अनिवेद्य तु यः शक्तौ कुलद्रव्यं निषेवते ॥ ४० ॥
पूजा च विफला तस्य देवता न प्रसीदति ।

कौलों को तथा विशेष रूप से शक्तियों (युवती) को अपनी शक्ति को अथवा वीरशक्तियों को अथवा कौल सम्प्रदाय से दीक्षित स्त्री को मद्य द्रव्य पिला कर तब स्वयं अपने पान करे ऐसा शास्त्रों का निश्चय है । जो कुलद्रव्यों का शक्तियों के पान कराये बिना कुलद्रव्य का सेवन करता है, उसकी सारी पूजा निष्फल है । देवता उसके ऊपर प्रसन्न नहीं होते ॥ ३९-४० ॥

विना यन्त्रेण या पूजा विना मांसेन तर्पणम् ॥ ४१ ॥
विना शक्त्या तु यत्पानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।
आहूतो यो निवर्तेत अनाहूतोऽपि यो विशेत् ॥ ४२ ॥
चक्रमध्ये स पापी स्यात् सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
तिरश्चां योनिमालम्ब्य नरकान् प्रतिपद्यते ॥ ४३ ॥

यन्त्र के बिना की गई पूजा, मांस के बिना किया गया तर्पण और शक्ति के बिना किया गया स्वयं मद्यपान वह सब निष्फल होता है । जो इस चक्र कार्य में बुलाये जाने पर भी लौट जाता है अथवा जो बिना बुलाये वहाँ प्रविष्ट हो जाता है, वह पापी होता है और समस्त धर्म से बहिष्कृत हो जाता है । वह पशु पक्षी की योनि में जन्म लेकर नरक में जाता है ॥ ४१-४३ ॥

चक्रविधिः

पूजास्थाने प्रयत्नेन आसनानि प्रदापयेत् ।
ततः कौलाः स्त्रियः सर्वा प्रक्षाल्य पाणिपादकम् ॥ ४४ ॥
प्रणम्य प्रविशेच्चक्रं मुद्राभिः पञ्चसञ्ज्ञकैः ।
स्त्रीणामन्यतमं स्थानं पुंसामन्यतमं पृथक् ॥ ४५ ॥

पूजा स्थान पर प्रयत्नपूर्वक सभी को बैठने का स्थान देना चाहिए । फिर कौलिकगण और सभी स्त्रियाँ हाथ पैर धोकर वहाँ बैठें । चक्र में प्रवेश करने वाले कौलिक को प्रणाम कर तथा पञ्चमुद्रा प्रदर्शित कर उसमें प्रवेश करना चाहिए । वहाँ स्त्री के लिए अन्य स्थान तथा कौलिक पुरुषों के लिये अन्य योग्य स्थान निर्मित होने चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

अथवा मिथुनं कृत्वा क्रमात् समुपवेशयेत् ।
पङ्क्त्याकारेण वा सम्यक् चक्राकारेण वाऽथवा ॥ ४६ ॥

अथवा स्त्री-पुरुष का जोड़ा बनाकर क्रमशः बैठावे, अथवा पंक्ति के आकार

में, अथवा चक्र के समान गोलाकार रूप में बैठावे ॥ ४६ ॥

चक्रमध्ये तु मूढात्मा जातिभेदं करोति यः ।
तं भक्षयन्ति योगिन्यस्तं शपेच्चण्डिका सदा ॥ ४७ ॥

जो मूर्ख चक्र के मध्य में जाति भेदकर के बैठाता है उसे योगिनियाँ भक्षण कर जाती हैं । चण्डिका का शाप तो लगता ही है ॥ ४७ ॥

चक्रमध्ये जातिभेदनिषेधः

जातिभेदो न चक्रेऽस्मिन् सर्वे शिवसमाः स्मृताः ।
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ ४८ ॥

साधक इस चक्र के मध्य में जाति भेद न करे क्योंकि सभी शिव के समान हैं । भैरवी चक्र के प्रवेश काल में सभी वर्ण द्विजाति हो जाते हैं; कोई अछूत नहीं होता है ॥ ४८ ॥

निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ।
रहस्यमार्गनिरता ये ये वर्णा भवन्ति हि ॥ ४९ ॥
ते ते विप्राः सर्वथैव सत्यं सत्यं न संशयः ।
स्वर्गादिपुण्यलोकेषु देवादन्यो यथा न हि ॥ ५० ॥
तथैव चक्रमध्ये तु देवाः सर्वे हि मानवाः ।
वेदेऽपि स्थितमेवं हि सर्वं ब्रह्मेति चाब्रवीत् ॥ ५१ ॥

भैरवी चक्र के निवृत्त हो जाने पर सभी वर्ण पृथक्-पृथक् हो जाते हैं । जो-जो वर्ण रहस्य (कौल) मार्ग के अनुगामी हैं वे सभी विप्र हैं; यह बात सत्य सत्य है; इसमें संशय नहीं । जिस प्रकार स्वर्गादि पुण्य लोक में केवल देवता मात्र का निवास है। उसी प्रकार चक्र के मध्य में सभी मनुष्य देवता है । वेद में भी 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' ऐसा कहा गया है ॥ ४९-५१ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन चक्रमध्ये तु साधकाः ।
पुरुषाः शिवरूपाश्च देवीरूपाः स्त्रियः सदा ॥ ५२ ॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या ? चक्र के मध्य में रहने वाले सभी साधक शिव स्वरूप हैं और स्त्रियां देवी स्वरूपा हैं ॥ ५२ ॥

शिवशक्तिधिया सर्वाश्चक्रमध्ये समर्चयेत् ।
संस्काराज्ज्येष्ठक्रमतो ललाटे गन्धचन्दनैः ॥ ५३ ॥
शक्तीनां साधकानाञ्च तिलकञ्च सहाक्षतम् ।
कृत्वा विलेपनं माल्यं प्रदद्यात् साधकोत्तमः ॥ ५४ ॥

चक्र के मध्य में समाविष्ट सभी लोगों को शिव और शक्ति स्वरूप समझकर अर्चना करे । इसमें संस्कार के अनुसार ज्येष्ठ और कनिष्ठ का विचार करना चाहिये । जिसका पहले संस्कार हुआ है वह ज्येष्ठ और जिसका बाद में संस्कार हुआ है उसे कनिष्ठ समझना चाहिये । पुरुष साधक के ललाट में गन्धयुक्त चन्दन लगावे और स्त्री साधक के ललाट में अक्षत सहित तिलक लगावे । फिर उत्तम साधक इत्रादि का विलेपन कर माला पहनावे ॥ ५३-५४ ॥

अलिपानविधिः

न स्थूलं न हि सूक्ष्मञ्च पात्रं कृत्वा मनोरमम् ।
नयनाग्निवाणसंख्यातैः कर्षन्तु साधकेन च ॥ ५५ ॥
हेतुपानं प्रकर्तव्यमित्युक्तं कुलसाधने ।
इत्यप्यधिकपानं तु न कर्त्तव्यं तु साधकैः ॥ ५६ ॥

मद्य परोसने का पात्र बहुत मोटा अथवा बहुत पतला नहीं होना चाहिये । उसे सुन्दर अवश्य होना चाहिये । साधकों को दो, तीन, अथवा पाँच कर्ष (=पसर) परिमाण में मद्य पान करना चाहिये । साधक को इससे अधिक मात्रा में मद्य का पान नहीं करना चाहिये ॥ ५५-५६ ॥

कराभ्यां पात्रमुद्धृत्य द्वितीयञ्च यथाक्रमात् ।
ततः श्रीगुरुपादाय साक्षात् परशिवाय च ॥ ५७ ॥
समांसं देवताबुद्ध्या समर्पयेद्यथाक्रमात् ।
दत्त्वामृतरसं पूर्णं गुरवे तदनन्तरम् ॥ ५८ ॥
योषिद्भ्यस्त्ववशेषं तु वीरेभ्यश्च ततः परम् ।
कुलजाय कुलीनाय कुलभक्ताय दापयेत् ॥ ५९ ॥
गुरुभ्यो गुरुपात्रञ्च शक्तिभ्यः शक्तिपात्रकम् ।
वीरेभ्यो वीरपात्रञ्च भोगपात्रं स्वयं पिबेत् ॥ ६० ॥

हाथ से पात्र उठाकर मांस सहित मद्य को श्रीगुरु के चरण कमलों में तथा सदाशिव को क्रमानुसार समर्पण करे । सर्वप्रथम उस अमृतमय रस को गुरु के लिये देकर उसके बाद स्त्रियों को देवे । तदनन्तर सम्पूर्ण वीर साधकों को देवे । फिर कुल युक्त एवं कुलीन तथा कुलभक्तों को देवे । गुरु को गुरु के लिये समर्पित पात्र और शक्ति को शक्ति के लिए समर्पित पात्र एवं वीर साधकों को वीर के लिए देय पात्र को दे तथा भोग पात्र स्वयं पान करे ॥ ५७-६० ॥

साक्षाद्यदि गुरुर्न स्यात्तदा तोये विसर्जयेत् ।
सुधाबुद्ध्या ततः सर्वे गृहीत्वा पात्रमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

ध्यानं कुर्यात् सुधादेव्या यथाशास्त्रप्रमाणतः ।

यदि साक्षात् गुरु न प्राप्त हो, तो उनका भाग जल में छोड़ देवे । फिर सभी कौल अमृत बुद्धि से उत्तम पात्र को लेकर शास्त्रानुसार उस मद्य में सुधा बुद्धि से इस प्रकार ध्यान करे ॥ ६१-६२ ॥

सुधादेवीध्यानम्

समुद्रे मथ्यमाने तु क्षीराब्धौ सागरोत्तमे ॥ ६२ ॥
तत्रोत्पन्नां सुधां देवीं कन्यकारूपधारिणीम् ।
गोमूत्रसदृशाकारां फेनामृतसमुद्भवाम् ॥ ६३ ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां नीरजायतलोचनाम् ।
आनन्दशिखरे जात आनन्दश्च महेश्वरः ॥ ६४ ॥
तयोर्योगाद् भवेद् ब्रह्मा विष्णुश्च शिव एव च ।
तस्मादिमां सुरादेवीं पूर्णोऽहं तां भजाम्यहम् ॥ ६५ ॥

क्षीर समुद्र के मन्थन के समय, कन्या रूप धारण कर यह सुधा उत्पन्न हुई है, जिनका आकार गोमूत्र के समान है और जो फेनामृत से उत्पन्न हुई है । जिनके नेत्र कमल के सदृश है और अट्ठारह भुजायें हैं । आनन्द शिखर पर आनन्द स्वरूप भगवान् महेश्वर उत्पन्न हुये हैं । उन दोनों के संयोग से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की उत्पत्ति हुई है । इस कारण पूर्ण स्वरूप हुआ मैं उस सुधा देवी की सेवा करता हूँ ॥ ६२-६५ ॥

एवं ध्यात्वा मूलमन्त्रं सप्तवारं जपेत्ततः ।
तस्योपरि ततो वीरः पञ्च मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ ६६ ॥
धेनुयोनिं ततः पश्चाद्दर्शयेच्च पुनः पुनः ।
तालत्रयछोटिकाभिः कुर्वीत दिक्षु बन्धनम् ॥ ६७ ॥

इस प्रकार सुरा का ध्यान कर साधक्र मूल मन्त्र का सात बार जप करे । इसके बाद उस सुरा पर वीर साधक पञ्चमुद्रा प्रदर्शित करे । सबके बाद बारम्बार धेनु मुद्रा तथा योनि मुद्रा प्रदर्शित करे । फिर तीन बार ताली बजाकर चुटकी से दिग्बन्धन करे ॥ ६६-६७ ॥

पूर्ववत्तर्पयेत् मूर्ध्नि आनन्दभैरवं तथा ।
आनन्दभैरवीं देवीं गुरुपङ्क्तिं प्रयत्नतः ॥ ६८ ॥
इष्टदेवं रश्मिवृन्दं गणेशं क्षेत्रपालकम् ।
वटुकं भैरवञ्चैव योगिनीं डाकिनीं तथा ॥ ६९ ॥
महाभूतान् विघ्नदांश्च तर्पयेच्च यथाक्रमात् ।

पूर्णाभिषेकहीनानां पाने नाधिकारः

अयष्ट्वा भैरवं देवमकृत्वा गुरुतर्पणम् ॥ ७० ॥
पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत् ।
गुरुपङ्क्तीरसन्तर्प्यरश्मिवृन्दं तथैव च ॥ ७१ ॥
यः पिवेत् कौलिको द्रव्यं तस्य पानं तु पाशवम्।

फिर पूर्ववत् आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी तथा गुरुपंक्ति के शिर पर तर्पण करे, फिर इष्टदेवी, रश्मिवृन्द, गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक भैरव, योगिनियों एवं डाकिनियों महाभूतों तथा अन्य विघ्नकारी राक्षसादिकों का क्रमशः तर्पण करे । भैरव की पूजा किये बिना तथा गुरुओं के तर्पण किये बिना पशुपान विधि में सुधा पानकर वीर मार्गानुगामी भी नरक प्राप्त करता है । इसी प्रकार गुरुपंक्ति तथा रश्मिवृन्द का बिना तर्पण किये जो कौलिक मद्य पी लेता है उसका पान पशु के समान हो जाता है ॥ ६८-७२ ॥

कौलज्ञानं विना योऽपि तद्द्रव्यं भौक्तुमिच्छति ॥ ७२ ॥
स महापातकी भूयात् सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
सेवेत मद्यमांसानि भ्रष्टश्च पातकी भवेत् ॥ ७३ ॥

जो कौलशास्त्र के ज्ञान के बिना उन द्रव्यों का भोजन करना चाहता है, अथवा मद्य-मांस का सेवन करता है, वह भ्रष्ट तथा महापातकी एवं सर्वधर्म बहिष्कृत होता है ॥ ७२-७३ ॥

मन्त्रार्थस्मरणार्थं तु मनसः स्थैर्यहेतवे ।
भेदपाशविनिर्मुक्तो मद्यपानं समाचरेत् ॥ ७४ ॥

मन्त्र के अर्थ का स्मरण मन की स्थिरता के लिये बतलाया गया है । अतः योगी साधक भेदपाश से विनिर्मुक्त होकर सब को अभेद दृष्टि से देखते हुये मद्य पान करे ॥ ७४ ॥

सेवेत यः सुखार्थाय मद्यादीनि स पातकी ।
पाशयेद्देवताप्रीत्यै तत्त्वमांसानि साधकः ॥ ७५ ॥

जो अपने आनन्द के लिये मद्य का सेवन करता है; वह पापी है । इसलिये साधक तत्त्व और मांस का सेवन देवता की प्रीति के लिये करे ॥ ७५ ॥

पञ्चमुद्रां निषेवेत अन्यथा पातकी भवेत् ।
यागकालं विनाऽन्यत्र दूषणं जायते सदा ॥ ७६ ॥

यागकाल में पञ्चमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये अन्यथा पाप लगता है ।

यागकाल से अन्यत्र पञ्चमुद्रा प्रदर्शित करने से दोष लगता है ॥ ७६ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति परत्र न परां गतिम् ॥ ७७ ॥

जो शास्त्र की मर्यादा त्यागकर मनमानी करता है उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती? किं बहुना परलोक में गति की प्राप्ति तो सर्वथा दूर है ॥ ७७ ॥

स्वेच्छया वर्तमानो यो दीक्षासंस्कारवर्जितः ।
न तस्य सद्गतिः काऽपि तपसा सुकृतादिभिः ॥ ७८ ॥

जो दीक्षासंस्कार से रहित होकर मनमानी आचरण करता है उसकी तपस्या से तथा अनेक पुण्यों से भी सद्गति नहीं होती ॥ ७८ ॥

पूर्णाभिषेकयुक्तानां पानमत्यन्तमिष्यते ।
पूर्णाभिषेकहीनानां पानमत्यन्तदुर्गतिः ॥ ७९ ॥

जिनका पुण्याभिषेक हो गया है उन्हें पान अवश्य करना चाहिये किन्तु पुण्याभिषेक विहीन के लिये वह पान दुर्गति प्रदान करता है ॥ ७९ ॥

अकृत्वा कौलिकाचारमयष्ट्वा गुरुपादुकाम् ।
येऽस्मिन् चक्रे प्रवर्तन्ते तेषां हिंसन्ति भैरवाः ॥ ८० ॥

कौलिकाचार का सम्पादन किये बिना तथा गुरुपादुका का पूजन किये बिना जो इस चक्र में सम्मिलित होता है भैरवगण उसकी हिंसा कर देते हैं ॥ ८० ॥

अदीक्षितैरनाचारैर्मुद्रामन्त्रविवर्जितैः ।
जपपूजां विना नैव न कार्यं द्रव्यभक्षणम् ॥ ८१ ॥

बिना दीक्षा लिये, आचाररहित मुद्रा तथा मन्त्र से विवर्जित एवं जप पूजा न करने वालों को इन द्रव्यों का भक्षण नहीं करना चाहिये ॥ ८१ ॥

भक्षणान्नरकं याति निष्कृतिर्नैव जायते ।
मन्त्रसंस्कारशुद्धात्मा अलिपानं समाचरेत् ॥ ८२ ॥

उसके बिना जो पञ्चद्रव्य का भक्षण करता है उसे नरक की प्राप्ति होती है और ऐसे का कोई प्रायश्चित्त नहीं है । अतः मन्त्र संस्कारों द्वारा आत्मा को शुद्ध करने वालों को मद्यपान करना चाहिये ॥ ८२ ॥

जायते देवताभावो भवबन्धविमोचकः ।
विचारयेत्ततो वीरः सत्तर्केण विशेषतः ॥ ८३ ॥

आत्म शुद्धि से युक्त मद्यपान करने से साधक देवताभाव प्राप्त कर लेते हैं;

जिससे संसार बन्धन कट जाता है । इस कारण वीर साधक उत्तम तर्क से इस सिद्धान्त पर विचार करे ॥ ८३ ॥

धर्मशास्त्रोक्तपाननिषेधविचारः

सिद्धान्नं भुञ्जते विप्राश्चूर्णं शम्बूकसम्भवम् ।
काञ्जिकं कासमर्दञ्च तथैव च शिवाघृतम् ॥ ८४ ॥
एतेषु यदि न दोषस्तदा सर्वं न दोषभाक् ।
सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥ ८५ ॥
इति मन्वादिशास्त्रेषु निषेधः परिनिश्चितः ।
मोहादज्ञानतः पीत्वा प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ८६ ॥

ब्राह्मण लोग यदि सिद्धान्न एवं शूद्र द्वारा पीसे गये आँटे को खा सकते हैं और काञ्जिक, कासमर्द (), गाय का घृत यदि खा सकते हैं तथा यदि इसमें दोष नहीं मानते तो सब कुछ खा लेने में कोई दोष नहीं । जो यह कहा गया है कि 'ब्राह्मण मोहवश सुरा पानकर अग्निवर्णा पिघला हुआ लोहे की सुरा पीवे' इस प्रकार जो मद्यपान का निषेध मन्वादि शास्त्रों में निश्चय किया है वहाँ अथवा अज्ञानवश पी लेने पर प्रायश्चित्त की व्यवस्था कही गई है ॥ ८४-८६ ॥

यत्पाने दूषणं प्रोक्तं प्रायश्चित्तं तदैव हि ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य वेदशास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ ८७ ॥
ज्ञानतो भैरवीचक्रे ज्ञानिनां नैव दूषणम् ।
गुरुं स्मरन् पिबन्मद्यं खादन्मांसं न दोषभाक् ॥ ८८ ॥

यहाँ स्वतन्त्र रूप से मद्यपान में पाप होने के कारण प्रायश्चित्त कहा गया है । किन्तु ज्ञानियों के लिये देवता और पितरों की शास्त्र विधि के अनुसार अर्चना कर भैरवी चक्र में ज्ञानपूर्वक मद्यपान करने पर कोई दोष नहीं होता । गुरुओं का स्मरण कर मद्यपान तथा मांस खाने में कोई दोष नहीं होता ॥ ८७-८८ ॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
यथा क्रतुषु विप्राणां सोमपानं विधीयते ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार यज्ञ-यागादि कार्यों में सोमपान करने से दीक्षित विप्रों को कोई दोष नहीं लगता उसी प्रकार दीक्षित कौलिक को मांस भक्षण एवं मद्यपान और मैथुन में कोई दोष नहीं होता ॥ ८९ ॥

मद्यपानं तथा कार्यं समये भोगमोक्षदम् ।
फलार्थिनामहङ्कारवतां दूषणमेव हि ॥ ९० ॥

यज्ञादि में विधिपूर्वक किया गया मद्यपान भोग और मोक्ष प्रदान करता है, किन्तु फलेच्छया अहङ्कारवादियों के लिये तो वह दूषण ही है ॥ ९० ॥

निरहङ्कारिणाञ्चैव न निषेधो न वा विधिः ।
पानेभ्र्रान्तिर्भवेद् यस्य घृणा स्याद्रक्तरेतसोः ॥ ९१ ॥
शुचौ चाऽशुद्धताभ्रान्तिः पापशङ्का च मैथुने ।
स भ्रष्टः पूजयेच्चण्डीं देवीमन्त्रं कथं जपेत् ॥ ९२ ॥

जिनमें अहङ्कार का सर्वथा अभाव है, उनके लिये न कोई निषेध है और न कोई विधि है । जिसे रक्त (रज) एवं रेतः (बीज) पान में घृणा एवं भ्रान्ति हो, इसी प्रकार मैथुन में पाप की शङ्का हो, इस प्रकार के शुद्ध पदार्थों में अशुद्धता की भ्रान्ति वाला पुरुष सर्वथा भ्रष्ट है । वह देवी मन्त्र का जप भला किस प्रकार कर सकता है? ॥ ९१-९२ ॥

रोगी दुःखी भवेत् सोऽपि रौरवं नरकं व्रजेत् ।
तस्मादद्वैतभावेन साधकः पञ्चमं भजेत् ॥ ९३ ॥

ऐसा सर्वथा भ्रष्ट पुरुष सर्वदा रोगी एवं दुःखी तो होता ही है उसे रौरव नरक की प्राप्ति भी होती है । इसलिये वीर साधक अद्वैतभाव से पञ्चमकारादि द्रव्यों का सेवन करे ॥ ९३ ॥

चक्रानुष्ठानम्

पात्रं ब्रह्मा सुरा विष्णू रसादो रुद्र एव च ।
आनन्दः शेखरः प्रोक्त आनन्दस्तु सदाशिवः ॥ ९४ ॥
मद्यं तु भैरवो देवो मदः शक्तिः समीरिता ।
अहो भुक्तञ्च मद्यं हि मोहयेत् त्रिदशानपि ॥ ९५ ॥

पात्र को ब्रह्मा, सुरा को विष्णु, रसपान करने वाला रुद्र आनन्द शेखर एवं सदाशिव हैं । मद्य साक्षात् भैरव उसका मद् (नशा) शक्ति है । अहा ! जिसने मद्य पी लिया वह देवताओं को भी मोहित कर लेता है ॥ ९४-९५ ॥

सुरा शक्तिः शिवो मांसं

सुरा शक्तिः शिवो मांसं तद्भोक्ता भैरवः स्वयम् ।
तयोरैक्यसमुत्पन्नमानन्दं मोक्ष उच्यते ॥ ९६ ॥

अथवा सुरा स्वयं शक्ति है, शिव मांस है, उसके भोक्ता स्वयं भैरव है, उन दोनों के संयोग से उत्पन्न हुआ आनन्द मोक्ष कहा जाता है ॥ ९६ ॥

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे प्रतिष्ठितम् ।

तस्याभिव्यञ्जकं मद्यं योगिभिस्तेन पीयते ॥ ९७ ॥

आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है, जो देह में प्रतिष्ठित है । उस आनन्द का अभिव्यञ्जक मद्य है इस कारण योगी लोग सदैव उसका पान करते हैं ॥ ९७ ॥

एवं विचिन्त्य मतिमान् तत्त्वशोधनमाचरेत् ।
पूर्ववद्विधिना वीरः पात्रस्य वन्दनं चरेत् ॥ ९८ ॥

बुद्धिमान् पुरुष ऐसा सोचकर तत्वशोधन करे । वीर साधक सर्वप्रथम पात्र की इस प्रकार वन्दना करे ॥ ९८ ॥

प्रथमपात्रवन्दनमन्त्रः

श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृताप्लावितं
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीगणमहासिद्धैः समासेवितम् ।
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात्त्रिखण्डामृतं
वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम् ॥ ९९ ॥

प्रथम पात्र वन्दना—श्री महाभैरव के शिखर (मस्तक) से झरते हुये चन्द्रामृत से परिपूर्ण, क्षेत्रपाल तथा योगिनी गणों से सेवित, अत्यन्त महान् आनन्द का समुद्र, साक्षात् त्रिखण्डामृत से युक्त एवं हाथ में स्थित अत्यन्त विशुद्धि प्रदान करने वाले इस पात्र की मैं सर्वप्रथम वन्दना करता हूँ ॥ ९९ ॥

विमर्श—पञ्च पात्रवन्दना सर्वोल्लास तन्त्र में इसी प्रकार है (द्र० ३५.१७) ।

वन्दयित्वा ततः पात्रं पठेद् भक्तिपरायणः ।
जानताऽजानता वापि यन्मया क्रियते शिवे ॥ १०० ॥
तव कृत्यमिदं सर्वमिति मत्वा क्षमस्व मे ।
इति स्तुत्वा महादेवीमन्योन्य वन्दनञ्चरेत् ॥ १०१ ॥

इस प्रकार पात्र की वन्दना कर भक्तियुक्त साधक 'जानताजानतावापि......... क्षमस्व मे' पर्यन्त मन्त्र पढ़े । इस प्रकार महादेवी की वन्दना कर एक-दूसरे कौलों की परस्पर वन्दना करे ॥ १००-१०१ ॥

अनुज्ञां पुरतो लब्ध्वा गृह्णामीति स्वयं वदेत् ।
जुषस्वेत्यनुज्ञातो गुरुणा वा कुलीनकैः ॥ १०२ ॥

फिर भगवती की सर्वप्रथम आज्ञा लेकर 'गृह्णामि' यह वाक्य स्वयं कहे । तदनन्तर गुरु के द्वारा अथवा कुलाचार्य के द्वारा जुषस्व (पान करे) ऐसी आज्ञा प्राप्त करे ॥ १०२ ॥

चक्रानुष्ठानम्

गृह्णीयाच्च स्वयं सिद्धो बद्धपद्मासनः सुधीः ।
सव्येनोद्धृत्य पात्रञ्च मुद्रां कृत्वाऽपसव्यतः ॥१०३ ॥
विलासाद्धनभोगेन न कुर्याद्द्रव्यभक्षणम् ।
नोद्धरेदेकहस्तेन न पिबेदेकपाणिना ॥ १०४ ॥

तदनन्तर सुधी साधक पद्मासन बाँधकर स्वयं सिद्ध बन कर अपसव्य मुद्रा प्रदर्शित करते हुये बाएँ हाथ में पात्र लेकर दाएँ हाथ से उसमें मद्य उड़ेले । विलास प्रदर्शित करते हुये द्रव्य भक्षण न करे । एक हाथ से मद्य न उड़ेले और न एक हाथ से उसका पान ही करे ॥ १०३-१०४ ॥

ततः सञ्चिन्तयेद् देवीं प्रकृतिं परमां कलाम् ।
आत्ममूलत्रिकोणस्थे कोटिसूर्यसमप्रभे ॥ १०५ ॥
कुण्डलीशक्तिचिद्वह्नौ हुनेद् द्रव्यं समन्त्रकम् ।
सशब्दं न पिबेद्द्रव्यं न बिन्दुं पातयेदधः ॥ १०६ ॥

मद्य उडेल लेने के बाद परम कलाभूता प्रकृति देवी का ध्यान करे । करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले आत्ममूल त्रिकोण में रहने वाली कुण्डली शक्ति रूप चिद् अग्नि में मन्त्रपूर्वक द्रव्य का होम करे । मुख से शब्द करते हुये द्रव्य पान न करे । उसका एक बिन्दु भी नीचे न गिरावे ॥ १०५-१०६ ॥

सशब्दं यो मुखं कुर्यात् कुलदेव्यास्तु तर्पणे ।
रौरवं नरकं याति यावदाहुतसंप्लवम् ॥ १०७ ॥

जो कुलदेवी के तर्पण के समय मुख से शब्द करता है; जब तक प्रलय नहीं होता तब तक वह रौरव नरक में पड़ता है ॥ १०७ ॥

विना चर्व्वेण यत्पानं केवलं विषवर्द्धनम् ।
तस्मात् प्रचर्वयेच्चर्व्वं यथाक्रमविधानतः ॥ १०८ ॥

चबाने वाले पदार्थ को खाये बिना जो मद्यपान किया जाता है, वह विष ही बढ़ाता है । इस कारण विधानपूर्वक यथेच्छ चर्वण कर मद्यपान करे ॥ १०८ ॥

एकासने निविष्टा ये भुञ्जानाश्चैकभाजने ।
एकपात्रे पिबेद्द्रव्यं ते यान्ति नरकं किल ॥ १०९ ॥

जो एक आसन पर स्थित होकर एक ही पात्र में भोजन करते हैं, अथवा एक पात्र में मद्यपान करते हैं, वे नरक के भागी होते हैं ॥ १०९ ॥

उच्छिष्टं न स्पृशेच्चक्रे कुलद्रव्याणि सर्वथा ।

बहिः प्रक्षाल्य च करौ कुलद्रव्याणि दापयेत् ॥ ११० ॥

साधक चक्र में उच्छिष्ट हाथ से कुलद्रव्य का स्पर्श न करे । बाहर हाथ धोकर तब कुलद्रव्य का परिवेषण करे ॥ ११० ॥

नैकहस्तेन दातव्यं न मुद्रावर्जितं सदा ।
निष्ठीवनं मलं मूत्रमधोवायुविसर्जनम् ॥ १११ ॥

मुद्रारहित होकर एक हाथ से मद्य न देवे । उस समय थूकना, मलमूत्र तथा अधोवायु का त्याग न करे ॥ १११ ॥

चक्रमध्ये तु यः कुर्यात् स भवेद्योगिनीपशुः ।
परीहासं प्रलापञ्च वितण्डां बहुभाषणम् ॥ ११२ ॥
औदासीन्यं भयं क्रोधं चक्रमध्ये विवर्जयेत् ।
न पादाभ्यां स्पृशेत् पात्रमधमाङ्गेन सर्वथा ॥ ११३ ॥

चक्र के मध्य में जो ऐसा करता है वह योगिनियों का पशु बनता है । इसलिये परीहास, प्रलाप, वितण्डा, वकवाद, उदासीनता, भय, क्रोध, चक्र के मध्य में वर्जित करे । पैर से अथवा किसी निचले शरीर भाग से पात्र का कदापि स्पर्श न करे ॥ ११२-११३ ॥

न पात्रं चालयेत् स्थानान्न कुर्यात् पात्रसङ्करम् ।
सशब्दं नोद्धरेत् पात्रं तथैव च न पूरयेत् ॥ ११४ ॥

एक स्थान पर स्थित पात्र का सञ्चालन न करे । न पात्रों को परसङ्कर (उच्छिष्ट) करे । मुख से शब्द करते हुये पात्र न उठावे और न ही उसे मद्य से पूर्ण करे ॥ ११४ ॥

नान्योन्यं ताडयेत् पात्रं न पात्रमानयेदधः ।
साधारं नोद्धरेत् पात्रमनाधारे न निःक्षिपेत् ॥ ११५ ॥
रिक्तपात्रं न कुर्वीत न पात्रं भ्रामयेत् कदा ।
न पात्रं लङ्घयेद्धीमान् उत्क्षिप्य न च पातयेत् ॥ ११६ ॥
समीनञ्च पुनः पात्रं प्रदद्याच्च यथाक्रमम् ।
वन्दयेच्च पुनः पात्रं इमं मन्त्रं स्मरेद्बुधः ॥ ११७ ॥

एक पात्र को दूसरे पात्र से ताड़ित न करे । पात्र नीचे न रखे, आधार पर रखे हुये पात्र को न उठावे और न उसे आधार से बाहर रखे । पात्र को रिक्त न रखे और उसे कदापि न घुमावे । बुद्धिमान् साधक पात्र का लङ्घन न करे और ऊपर उठाकर उसे न पटके । मद्य परोसने के बाद बारी-बारी से दूसरे पात्र में

मछली रख कर परोसे । फिर उसकी वन्दना करे और विद्वान् साधक इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥ ११५-११७ ॥

द्वितीयपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ हैमं मीनरसावहं दयितया दत्तञ्च पेयादिभिः
किञ्चिच्चञ्चलरक्तपङ्कजदृशा तस्यै समावेदितम् ।
वामे स्वादु विशुद्धिशुद्धिकरणं पाणौ निधायात्मके
वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुनाऽऽनन्दैकसम्वर्द्धनम् ॥ ११८ ॥
पूर्ववत्तर्पणं कृत्वा तृतीयञ्च समाचरेत् ।
मुद्रया सहितं धृत्वा वन्दयेत् पात्रमुत्तमम् ॥ ११९ ॥

द्वितीय पात्र वन्दना का मन्त्र—किञ्चित् चञ्चल तथा रक्त कमल के समान नेत्रों वाली स्त्री ने भगवती देवी को प्रत्यर्पण कर, अपने बायें हाथ में रखकर, पेयादि से समलङ्कृत, अत्यन्त सुस्वादु मत्स्य का यह सरस पदार्थयुक्त पात्र, जो विशुद्ध को शुद्ध करने वाला है वह आप कौलिक साधक को दिया जा रहा है । अतः आनन्द बढ़ाने वाले इस द्वितीय पात्र की मैं वन्दना करता हूँ । पुनः उससे देवी का तर्पण कर तृतीय पात्र प्रदान करे । मुद्रा प्रदर्शित कर उस पात्र को रखकर उसकी वन्दना करे ॥ ११८-११९ ॥

तृतीयपात्रवन्दनमन्त्रः

सर्वाम्नायकलाकलापकलितं कौतूहलद्योतकं
चन्द्रोपेन्द्रमहेन्द्रशम्भुवरुणब्रह्मादिभिः सेवितम् ।
ध्यातं देवगणैः परं मुनिगणैर्मोक्षार्थिभिः सर्वदा
वन्देपात्रमहं तृतीयमधुना स्वात्मावबोधक्षमम् ॥ १२० ॥

तृतीय पात्र वन्दना—मैं आत्मबोध कराने में सर्वथा सक्षम इस तृतीय पात्र की वन्दना करता हूँ जो सभी आम्नाय के कला कलापों से मनोहर है, कौतूहल का द्योतक है, चन्द्र, विष्णु, महेन्द्र, शम्भु तथा वरुणादि से सुसेवित है और मोक्ष की इच्छा करने वाले समस्त मुनिगणों तथा देवगणों से ध्यातव्य है ॥ १२० ॥

पूर्ववत्तर्पयित्वा तु चतुर्थं वन्दयेत्ततः ॥ १२१ ॥

चतुर्थपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ मद्यं मीनरसावहं हरिहरब्रह्मादिभिः पूरितं
मुद्रामैथुनधर्मकर्मनिरतं क्षाराम्लतिक्ताश्रयम् ।
आचार्याष्टकसिद्धिभैरवकलामांसेन संशोधितं
पायात् पञ्चमकारतत्त्वसहितं पात्रं चतुर्थं नमः ॥ १२२ ॥

चतुर्थ पात्र वन्दना—उस पात्र से तर्पण कर पुनः चतुर्थ पात्र सामने रखकर वन्दना करे । पञ्चमकार तत्त्व सहित यह चतुर्थ पात्र हमारी रक्षा करे । इसे नमस्कार है । यह मीन के रस से युक्त मद्य है जिसे हरिहर, ब्रह्मादि देवों ने पूर्ण किया है । यह मुद्रा मैथुनादि धर्म कर्म में निरत (संयुक्त) रहता है । क्षार, अम्ल और तिक्त है आचार्याष्टक तथा सिद्ध भैरव के द्वारा कलमांस के द्वारा शुद्ध किया गया है ॥ १२१-१२२ ॥

पूर्ववत्तर्पयित्वा तु पञ्चमं वन्दयेत्ततः ॥ १२३ ॥

पञ्चम पात्र वन्दना—उससे भी पूर्ववत् तर्पण कर साधक पञ्चम पात्र की वन्दना करे ॥ १२३ ॥

पञ्चमपात्रवन्दनमन्त्रः

आधारे भुजगाधिराजवलये पात्रं महीमण्डलं
मद्यं सप्तसमुद्रवारिपिशितं चाष्टौ च दिग्दन्तिनः ।
सोऽहं भैरवमर्चयन् प्रतिदिनं तारागणै रक्षितै
आदित्यप्रमुखैः सुरासुरगणैराज्ञाकरैः किङ्करैः ॥ १२४ ॥

भुजगाधिराज भगवान् शेष के फणि मण्डल रूप आधार पर मही मण्डलरूप पात्र है । उसके चारो ओर रहने वाला सात समुद्रों का जल मद्य है और दिशाओं के गज मांस हैं । जिन भैरव के तारागण आदित्यादि प्रमुख देव तथा सुरासुरगण किङ्कर हैं, उनसे रहित रहकर मैं भैरव देव की पूजा करता हूँ ॥ १२४ ॥

प्रपिबेत् तु ततः षष्ठं पात्रं सम्पूज्य मन्त्रवित् ॥ १२५ ॥

इस प्रकार मद्यपान करे फिर मन्त्रवेत्ता साधक को षष्ठपात्र का पूजन करना चाहिए ॥ १२५ ॥

षष्ठपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ रुद्रं चामरभद्रपीठपरमानन्दोदितं दीपनं
वामां राज्यमनोरमां शुभकरां सायुज्यसाम्राज्यकम् ।
नानाव्याधिभवान्धकूपहरणं जन्मान्तरं नाशनं
श्रीमत् सुन्दरितर्पणं हरिरसं पात्रञ्च षष्ठं भजे ॥ १२६ ॥

षष्ठ पात्र वन्दना—मैं महाश्री से युक्त महासुन्दरी त्रिपुरा को तृप्त करने वाले हरिरस युक्त षष्ठ पात्र का भजन करता हूँ । जो श्री रुद्र को चामर भद्र (शक्ति) पीठ पर परमानन्द का उदय करने वाला है, प्रकाशयुक्त है, उनकी अत्यन्त सुन्दरी वामा जो सबकी कल्याणकारिणी है, उनसे युक्त रहकर साम्राज्य प्रदान करता है और अनेक प्रकार की व्याधि तथा संसार रूपी अन्धकूप का विनाशक तथा जन्मान्तर का भी नाशक है ॥ १२६ ॥

पूर्ववत् तर्पणं कृत्वा सप्तमञ्च समर्चयेत् ॥ १२७ ॥

पूर्ववत् तर्पण कर साधक सप्तम पात्र की अर्चना करे ॥ १२७ ॥

सप्तमपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितूर्यपरमं चैतन्यं साक्षिप्रदं
विद्युद्भास्करसन्निभं द्युतिधरं ज्योत्स्नाकलाव्यापितम् ।
इडापिङ्गलमध्यगा त्रिवलया स्यात्कुण्डली चोर्ध्वगा
पात्रं सप्तमपूरणेन परमानन्दाधिकं पातु माम् ॥ १२८ ॥

जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयावस्था में परम चैतन्य एवं साक्षी रहने वाला है, बिजली के समान जाज्वल्यमान प्रकाश करने वाला, ज्योत्स्ना तथा समस्त कलाओं से व्याप्त है, जिसके मध्य में इष्ट पिङ्गला है जो तीन वृत्त में फैला है ऐसा ऊर्ध्वगामिनी कुण्डलिनी रूपी सत्पात्र सप्तम से पूर्ण होकर परमानन्द से भी अधिक होकर मेरी रक्षा करे ॥ १२८ ॥

एभिः प्रबन्ध्य पात्राणि स्वयं साधकसत्तमः ।
लभेत सर्वकर्माणि देहान्ते भैरवो भवेत् ॥ १२९ ॥
पीत्वा सप्तमपात्रञ्च शान्तिस्तोत्रं पठेत्ततः ॥ १३० ॥

साधक सत्तम इस प्रकार सातों पात्रों को बाँधकर अपना सारा मनोरथ पूर्ण करता है तथा शरीर छूट जाने पर भैरव हो जाता है । इस प्रकार सातो पात्र पानकर शान्ति स्तोत्र का पाठ करे ॥ १२९-१३० ॥

शान्तिस्तोत्रम्

यस्यार्चनेन विधिना किमपीह लोके
धर्मप्रसिद्धमिति कामफलं प्रसूते ।
तं सन्ततं सकलसाधकचित्तवृत्तिं
चिन्तामणिं कुलगणाधिपतिं नमामि ॥ १३१ ॥

शान्तिस्तोत्र—जिसका विधिपूर्वक किया गया अर्चन सिद्ध धर्म होने के कारण समस्त कामनायें पूर्ण करता है, समस्त साधकों की चित्तवृत्ति में सतत् विद्यमान रहने वाले चिन्तामणि स्वरूप गणाधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ । अब बटुक की स्तुति करते हैं ॥ १३१ ॥

बटुकस्तुति

रक्ताम्बरं ज्वलनपिङ्गजटाकलापं
भालावलीकुटिलचन्द्रधरं प्रचण्डम् ।

बालार्कधातुकनकाचलधातुवर्णं
देवीसुतं वटुकनाथमहं नमामि ॥ १३२ ॥

बटुकस्तुति—रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किये, देदीप्यमान, पीली-पीली जटा-कलाप वाले मस्तक पर द्वितीया का वक्र चन्द्र धारण किये हुये, अत्यन्त उग्र स्वरूप वाले, उदित सूर्य तथा सुवर्ण सदृश सुमेरु पर्वत के धातु के समान कान्ति वाले बटुकनाथ का मैं पूजन करता हूँ ॥ १३२ ॥

हरतु कुलगणेशो विघ्नसङ्घानशेषा-
नुदयतु कुलचर्या पूर्णतां साधकानाम् ।
पिबतु वटुकनाथः शोणितं निन्दकानां
दिशतु सकलकामान् कौलिकानां गणेशः ॥ १३३ ॥

कुलगणेश कौलिक सम्प्रदाय वालों के समस्त विघ्न को दूर करें । साधको की कुलचर्या पूर्ण होकर उदीयमान रहे । कुल सम्प्रदाय की निन्दा करने वालों का रक्त श्री बटुकनाथ पान करें । श्री गणेश उन कौलिकों की सारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥ १३३ ॥

धर्मो जयत्वखिललोकसुखावहोऽयं
नश्यत्वधर्ममखिलं बहुदुःखमूलम् ।
आशीर्वचांसि समन्त्वमृतोपमानि
शापाः पतन्तु समयद्विषि योगिनीनाम् ॥ १३४ ॥

सारे लोक को सुख प्रदान करने वाला धर्म विजय प्राप्त करे और समस्त दुःखों का मूलभूत अधर्म नष्ट हो जावे । योगिनियों का अमृत के समान आशीर्वाद कुलधर्म का पालन करने वालों को प्राप्त हो तथा उससे द्वेष करने वालों पर उनका शाप एक साथ गिरे ॥ १३४ ॥

याश्चक्रक्रमभूमिकावसतयो नाडीषु याः संस्थिताः
याः कायोद्‌गतरोमकूपनिलया याः संस्थिता धातुषु ।
उच्छ्‌वासोर्मिमरुत्तरङ्गनिलया निश्वासवाताश्च या-
स्ता देव्यो रिपुपक्षभक्षणपरास्तृप्यन्तु कौलार्चिताः ॥ १३५ ॥

जो चक्रक्रम की भूमि में निवास करने वाली है, जो शरीर की नाड़ियों में रहने वाली हैं, शरीर से निकलने वाले रोमकूपों में जिनका घर है, जो धातुओं में भी संस्थित हैं, निःश्वास रूप लहरों से वायु तरङ्ग ही जिनके गृह हैं, ऐसी ये सभी देवियाँ कौलों से पूजित एवं अर्चित होकर कौल साधक के शत्रुओं को खाकर तृप्त हो जावें ॥ १३५ ॥

देहस्थाखिलदेवता गजमुखाः क्षेत्राधिपा भैरवा
योगिन्यो वटुकाश्च यक्षपितरो वेतालकाश्चेटकाः ।
अन्ये भूचराः खेचरा दिविचरा भूताः पिशाचा ग्रहा-
स्तृप्यन्तां कुलपुत्रकस्य पिबतः पानं सदीपं चरुम् ॥ १३६ ॥

शरीर में रहने वाले समस्त देवगण, गणेश, क्षेत्रपाल, भैरव, योगिनियाँ, बटुक, यक्ष, पितृगण, बेताल एवं चेटक इनके अतिरिक्त भूचर, खेचर, स्वर्ग में विचरण करने वाले भूत, पिशाच तथा ग्रहगण इस कौलिक के द्वारा पान एवं सदीप चरु के भोजन से तृप्त हो जावें ॥ १३६ ॥

सत्यञ्चेत् गुरुवाक्यमेव पितरौ देवाश्च चेत् योगिणो
प्रीता चेत् परदेवता यदि भवेद् वेदा प्रमाणं हि चेत् ।
शाक्तेयं यदि दर्शनं भवति चेत् आज्ञाऽप्यमीधाऽपि चेत्
सत्यञ्चापि च कौलधर्मपरमं स्यान्मे जयः सर्वदा ॥ १३७ ॥

यदि गुरुजनों के वाक्य पितृगण, देवगण, योगिनीगण और परदेवता यदि प्रसन्न हों, किं बहुना यदि वेद का तथा शक्ति दर्शन का प्रामाण्य यदि सत्य हो तथा उनकी आज्ञा यदि कभी निष्फल न हो और यह कौलधर्म यदि सत्य हो, तो मेरी सर्वदा जय होवे ॥ १३७ ॥

शिवाद्यवनिपर्यन्तं ब्रह्मादिस्तम्बसंयुतम् ।
कालाग्न्यादिशिवान्तञ्च जगद् यज्ञेन तृप्यतु ॥ १३८ ॥

शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त, ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (कीट विशेष) पर्यन्त, कालाग्नि से लेकर शिवा पर्यन्त, सारा जगत् कौल साधक के इस यज्ञ से तृप्त हो जावे ॥ १३८ ॥

सम्पूजकानां परिपालकानां
जितेन्द्रियाणाञ्च तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञः
करोतु शान्तिं भगवान् गणेशः ॥ १३९ ॥

पूजा करने वाले, प्रजाओं का पालन करने वाले, जितेन्द्रिय, तपोधन, देश, राष्ट्र, कौलिक तथा राजा को भगवान् गणेश शान्ति प्रदान करें ॥ १३९ ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु शान्तिं सर्वजनाः सुखीभवन्तु ॥ १४० ॥

सारे जगत् का कल्याण हो, जगत् के समस्त प्राणी परस्पर एक दूसरे का

हित करें। सभी दोष शान्त हो जावें तथा सभी लोग सुखी रहें ॥ १४० ॥

नन्दन्तु कुलयोगिन्यो नन्दन्तु कुलपुत्रकाः ।
नन्दन्तु च कुलाचार्या ये चान्ये कुलपालकाः ॥ १४१ ॥

कुलयोगिनियाँ प्रसन्न रहें। कुल सम्प्रदाय के अनुगामी प्रसन्न रहें। इसी प्रकार कुल सम्प्रदाय के आचार्य तथा कुलमार्ग के प्रतिपालक प्रसन्न रहें ॥ १४१ ॥

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विभीषन्तु च दूषकाः ।
अवस्था शाम्भवी नोऽस्तु प्रसनोऽस्तु गुरुःसदा ॥ १४२ ॥

सभी साधक प्रसन्न रहें, कुलसम्प्रदाय को बुरा कहने वाले सर्वदा भययुक्त बने रहें। मेरी अवस्था सदाशिव के समान हो जावे तथा मेरे गुरु प्रसन्न रहें ॥ १४२ ॥

अनेककोट्यः कुलयोगिनीना-
मन्तर्बहिः कौलिकचक्रसंस्थाः ।
निपीयमानेन परामृतेन
प्रीताः प्रसन्ना वरदा भवन्तु ॥ १४३ ॥

ये ये पापधियः सुदूषणरता मन्निन्दकाः पूजने
देवाचारविमर्दनष्टहृदया भ्रष्टाश्च ये साधकाः ।
दृष्ट्वा च क्रमपूर्वमर्चनविधौ ये कौलिका दूषका-
स्ते ते यान्तु विनाशमत्र समये श्रीभैरवस्याज्ञया ॥ १४४ ॥

मनुष्यों के भीतर बाहर तथा कौलिक के चक्र में अनेक करोड़ की संख्या में रहने वाली योगिनियाँ इस परामृत के पान से प्रसन्न होकर वर प्रदान करें। जो-जो भी छिद्रान्वेषण करने वाले पापी मेरी पूजा की निन्दा करते हैं, देवाचार के निरन्तर उल्लङ्घन करते रहने के कारण जिनका हृदय नष्ट हो गया है और जो-जो भी भ्रष्ट साधक हैं; मेरी पूजा देखकर मेरे क्रमपूर्वक अर्चन में जो कौलिक दोष लगाते हैं; वे सभी महाभैरव की आज्ञा से विनष्ट हो जावें ॥ १४३-१४४ ॥

साधकानाञ्च द्वेष्टारः सदैवाम्नाय दूषकाः ।
डाकिनीनां मुखे यान्तु तृप्तास्ते पिशितैः सदा ॥ १४५ ॥

साधकों से द्वेष करने वाले, कौलमार्ग को दोष दृष्टि से देखने वाले—ये सभी डाकिनियों के मुख में जावें। उनके मांस से डाकिनियाँ तृप्त हो जावें ॥ १४५ ॥

इति स्तोत्रं पठन् पानं कुर्यात् साधकसत्तमः ॥ १४६ ॥

इन स्तोत्रों का पाठ करते हुये उत्तम साधक पान करे ॥ १४६ ॥

अष्टमपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ मूढाज्ञानकदम्बकाननकठोराग्निस्वरूपां परां
ज्ञानध्वान्तसमस्तसंशयधिया पूर्णं सुधाधारया ।
भोगं मोक्षकरं सभावशकरं मूर्ध्नि ज्वलन्तीं परां
देवीं वक्षसि सञ्जपन्ननुदिनं पात्रं भजे चाष्टमम् ॥ १४७ ॥

अष्टमपात्र वन्दना—मूढ़, अज्ञानरूप कदम्ब के वन को भस्म करने के लिये प्रचण्ड अग्नि स्वरूप तथा शिरः प्रदेश में देदीप्यमान भगवती परा का हृदय में निरन्तर ध्यान करते हुये प्रतिदिन मैं ज्ञान प्राप्ति के बाधक अज्ञान तथा समस्त संशयों का भेदन करने वाली सुधा धारा से पूर्ण, भोग, मोक्ष प्रदान करने वाले, सभा को वश में करने वाले इस अष्टम पात्र का सेवन करता हूँ ॥ १४७ ॥

पूर्ववत्तर्पणं कृत्वा नवमञ्च प्रपूजयेत् ॥ १४८ ॥

उससे भगवती का तर्पण कर नवम पात्र का पूजन करे ॥ १४८ ॥

नवमपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ मन्ये ब्रह्ममयं समस्तजगतां सारं महत् शाश्वतं
दुर्ज्ञेयं भवभोगचञ्चलधिया स्थूलाकृतिं ध्यायताम् ।
अस्माकं द्रवरूपतां करुणया प्राप्तं तदेतद्दुतं
तत्पात्रं नवमं पिबेच्च नियतं भुक्तिञ्च मुक्तिप्रदम् ॥ १४९ ॥

नवम पात्र वन्दना—मैं इसे समस्त जगत् के महान् सार स्वरूप अत्यन्त महान् ब्रह्ममय समझता हूँ । स्थूल आकृति का ध्यान करने वाले संसार के भोग में चञ्चल बुद्धि वालों के लिये यह सर्वथा दुर्ज्ञेय है । आश्चर्य की बात यह है कि वह परब्रह्म मेरे ऊपर करुणा कर मुझे द्रवरूप में प्राप्त हो गया है । इस नवम पात्र का जो भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाला है मैं पान करता हूँ ॥ १४९ ॥

सहस्रारे गुरुं ध्यायन् हृदि देवीं तथैव च ।
जिह्वाग्रे जपसाधनं शिवोऽहमिति चिन्तयन् ।
यथाविधिसमभ्यर्च्य जुहुयात् कुण्डलीमुखे ॥ १५० ॥

सहस्रार में गुरु का ध्यान करते हुये हृदय में देवी का तथा जिह्वा के अग्रभाग में 'शिवोऽहम्' का चिन्तन करते हुये यथाविधि अर्चन कर कुण्डलिनी के मुख में हवन करे । अब दशम पात्र का पूजन कहते हैं ॥ १५० ॥

दशमपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ वामे चन्द्रमुखी मुखे च मधुरं पात्रं कराम्भोरुहे

मूर्ध्नि श्रीगुरुचिन्तनं भगवतीध्यानास्पदं मानसम् ।
जिह्वायां जपसाधनं परिणतं कौलक्रमाभ्यासनं
तत्पात्रं दशमं पिबेच्च परमं भुक्तिञ्च मुक्तिप्रदम् ॥ १५१ ॥

दशम पात्र वन्दना—जिसके वामभाग में चन्द्रमुखी, मुख में माधुर्ययुक्त मद्य, हाथ में मद्यपात्र, मस्तक में गुरु का ध्यान और मन भगवती में ध्यानास्पद है, जिह्वा पर जप का साधन, जो कौलिकों के अभ्यास में परिणत हो चुका है, ऐसा मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले इस दशम पात्र को पीता हूँ ॥ १५१ ॥

नाहं कर्त्ता कारयिता न च कार्य
नाहं भोक्ता भोजयिता न च भोज्यम् ।
नाहं दुःखी दुःखयिता न च दुःखं
सोऽहं प्रत्यक्चित्स्वरूपोऽहमात्मा ॥ १५२ ॥

मैं कर्त्ता नहीं हूँ, कराने वाला भी नहीं हूँ, इसी प्रकार मैं भोक्ता, भोजयिता तथा भोज्य भी नहीं हूँ, न मैं दुःखी हूँ, न दुःख देने वाला हूँ और न दुःख हूँ। मैं केवल प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ ॥ १५२ ॥

एवं सञ्चिन्त्य वीरेन्द्रः पुनः पानं समाचरेत् ॥ १५३ ॥

इस प्रकार ध्यानकर वीरमार्ग शिरोमणि पुनः पात्र का पान करे ॥ १५३ ॥

एकादशपात्रवन्दनमन्त्रः

ॐ वामां वामकरे सुधाञ्च अधरे मन्त्रं जपन्मानसे
वीणावेणुरवावयन्त्रविधिवद्गायन्ति पञ्चोप्सरसः ।
क्रीडाकेलिकुतूहलेन कमलालावण्यलीलोरसः
पानोल्लासविलासपूर्णसमये पात्रञ्च एकादशम् ॥ १५४ ॥

ग्यारहवें पात्र की वन्दना—मेरी बायीं ओर अत्यन्त सुन्दरी वामा है, अधर में सुधा है, मन में मन्त्र का जप है, बिना किसी वाद्य यन्त्र के वीणा और वेणु का शब्द हो रहा है। जहाँ पाँच अप्सरायें गान कर रही हैं। क्रीडाकेलि के कुतूहल से कमला के समान सुन्दरी स्त्री का लीलायुक्त हृदय है। ऐसे पान के उल्लास तथा विलासपूर्ण काल में इस ग्यारहवें पात्र की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १५४ ॥

स्वपात्रस्थितहेतुञ्च न दद्याद् भैरवाय च ।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्याद् देवताशापमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥

अपने पात्र में स्थित मद्य भैरव को न देवे। भैरव को दे देने पर सिद्धि की हानि होती है तथा देवता का शाप भी प्राप्त होता है ॥ १५५ ॥

क्वचित्यदृच्छया प्राप्तमन्यमन्यन्तु भक्तितः ।
आदाय स्वीयपात्रञ्च पिबेद् द्रव्यं गुरुं स्मरन् ॥ १५६ ॥

कहीं यदृच्छा से प्राप्त अथवा भक्तिपूर्वक अन्यान्य लोगों द्वारा दिया गया मद्य अपने पात्र में लेकर गुरु का स्मरण करते हुये पान करे ॥ १५६ ॥

गुरुशक्तिसूतानाञ्च गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः ।
उच्छिष्टं भक्षयेत् स्त्रीणां ताभ्यो नोच्छिष्टमर्पयेत् ॥ १५७ ॥

गुरु की शक्ति (स्त्री में) उत्पन्न होने वालों का एवं छोटे-बड़े गुरुओं का उच्छिष्ट भोजन कर लेवे; अथवा स्त्रियों का उच्छिष्ट भक्षण कर ले, किन्तु उन्हें उच्छिष्ट न देवे ॥ १५७ ॥

अन्यथा चक्रमध्ये तु पतनं साधकस्य च ।
शक्त्युच्छिष्टं पिबेद्द्रव्यं वीरोच्छिष्टञ्च चर्वणम् ॥ १५८ ॥

यदि कोई साधक चक्र के मध्य में स्त्रियों को उच्छिष्ट प्रदान करता है तो उसका पतन हो जाता है, शक्ति (स्त्री) का उच्छिष्ट मद्यपान करे और वीरोच्छिष्ट चर्वण ग्रहण करे ॥ १५८ ॥

शक्तिवीरप्रसादेन किं न सिध्यति भूतले ।
कनिष्ठेभ्यः स्वशिष्येभ्यश्चोच्छिष्टञ्च प्रदापयेत् ॥ १५९ ॥

यदि शक्ति और वीर साधक प्रसन्न हो जावें, तो पृथ्वी पर कौन सी ऐसी सिद्धि है जो प्राप्त न हो? सिद्धि प्राप्ति के बाद अपने से छोटे को तथा अपने शिष्य को उच्छिष्ट दिया जा सकता है ॥ १५९ ॥

दद्यात् स्नेहेन योऽन्येभ्यः स भवेदापदां पदम् ।
यावन्न चलते दृष्टिर्यावन्न चलते मनः ॥ १६० ॥
तावत् पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतःपरम् ।
मन्त्रार्थस्फुरणार्थाय ब्रह्मज्ञान स्थिराय च ॥ १६१ ॥
अलिपानं प्रकर्तव्यं लोलुपो नरकं व्रजेत् ।
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा च महीतले ॥ १६२ ॥
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।

जो स्नेहवश अपना उच्छिष्ट अन्यों को देता है; वह आपत्तियों का स्थान बन जाता है । जब तक दृष्टि चञ्चल न हो, जब तक मन अन्यत्र चञ्चल न हो अर्थात् चैतन्यता बनी रहे; तब तक पान करे । इसके बाद पान पशुपान हो जाता है । मन्त्र के अर्थ के स्फुरित होने के लिये तथा ब्रह्मज्ञान के स्थिर रहने के लिये

मद्यपान करना चाहिये । लोलुप बुद्धि से पान करने वाला नरकगामी होता है । एक बार पान करे, पुनः पान करे, पुनः-पुनः पान कर पृथ्वी पर गिरे । फिर उठकर पीये क्योंकि ऐसा करने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १६०-१६३ ॥

अलिमीनाङ्गनासङ्गे यत् सुखं जायते नृणाम् ॥ १६३ ॥
तदेव मोक्षो विदुषामबुधानाञ्च पातकम् ।
चक्रमध्ये घटे भग्ने पात्रे च पतिते तथा ॥ १६४ ॥
द्रव्यस्य पतने भूमौ भिन्ने पात्रे तथैव च ।
दीपनाशे च तच्छान्त्यै पुनश्चक्रं समाचरेत् ॥ १६५ ॥

मद्य, मछली और अङ्गना के साथ सङ्गम करने में मनुष्यों को जो सुख होता है वही विद्वान् पुरुषों का मोक्ष है । भले वह मूर्खों के लिये पातक हो । चक्र के मध्य में कलश के फूट जाने पर, पात्र के टूट जाने पर, अथवा गिर जाने पर, अथवा द्रव्य के पृथ्वी पर गिर जाने पर, पात्र के फूट जाने पर, दीपक के बुझ जाने पर, शान्ति के लिये पुनः चक्र का आयोजन करे ॥ १६३-१६५ ॥

पाययित्वा यथायोग्यं पीत्वा च साधकोत्तमः ।
पूर्ववत् तर्पयेद्देवीं परिवारसमन्विताम् ॥ १६६ ॥

उस पुनः चक्र के आयोजन में पुनः कौलों को पान करावे । स्वयं भी पान कर उत्तम साधक आवरण सहित देवी का तर्पण करे ॥ १६६ ॥

पुनर्माल्यादिकं दत्त्वा गन्धचन्दनमिश्रितम् ।
धूपं दीपं ततः पश्चाद्दर्पणं चामरं तथा ॥ १६७ ॥

पुनः गन्ध एवं चन्दन मिश्रित माल्य प्रदान करे, धूप, दीप देकर पश्चात् दर्पण तथा चामर प्रदान करे ॥ १६७ ॥

नैवेद्यं शङ्खघण्टाञ्च वादयेत् सुमनोहरम् ।
यथाशक्ति स्तवं कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य साधकः ॥ १६८ ॥

उत्तम नैवेद्य देकर मनोहर शङ्ख एवं घण्टा बजावे । तदनन्तर साधक यथाशक्ति स्वयं प्रदक्षिणा करे ॥ १६८ ॥

आत्मसमर्पणम्

सपुष्पार्घ्यामृतं नीत्वा आत्मानञ्च समर्पयेत् ।
ॐ इतः पूर्वं ततः प्राणबुद्धिदेहं ततो वदेत् ॥ १६९ ॥
धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तावस्थासु च ।
कर्मणा मनसा वाचा हस्ताभ्याञ्च ततः पद्भ्याम् ॥ १७० ॥

उदरेण च शिश्ना यत् कृतं यत् स्मृतं ततः ।
यदुक्तं प्रोच्य तत्सर्वं मां मदीयञ्च संलिखेत् ॥ १७१ ॥
सकलं श्रीमदिष्टान्ते देवता च पदे ततः ।
समर्पणं ततः पश्चादेतेनैव समर्पयेत् ॥ १७२ ॥
देवीपदे ततो दत्त्वा क्षमस्वेति वदेत्ततः ।
पुनराचमनीयञ्च दद्याद्देव्यै पुनः पुनः ॥ १७३ ॥

पुष्प सहित अर्घ्यामृत तथा स्वयं अपने को समर्पण करे । उसका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ इतः ततः प्राण बुद्धिदेहं धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तावस्थासु कर्मणा मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्ना यत् कृतं यत् स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं मां मदीयञ्च सकलं श्रीमदिष्ट देवता समर्पणम्' । इस प्रकार मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि देवी के पैरों में रखकर 'क्षमस्व' इतना कहे; फिर साधक देवी को पुनः आचमन देवे ॥ १६९-१७३ ॥

अर्घ्यदानम्

समस्तावरणं देव्या अङ्गे लीनं विभाव्य च ।
अर्घ्यपात्रं ततः पश्चादुत्तोल्य साधकोत्तमः ॥ १७४ ॥
देव्युपरि त्रिधा भ्राम्य निवेदयेत्ततः परम् ।
तेजोमयीं महादेवीं संहारमुद्रया हृदि ॥ १७५ ॥
नासापथात् समानीय निर्माल्यवासिनीं यजेत् ।
निर्माल्यकुसुमैर्देवीं प्रणम्य गुरुपादुकाम् ॥ १७६ ॥

फिर समस्त आवरण देवताओं को देवी में लीन होने का ध्यान कर पश्चात् अर्घ्यपात्र ऊपर उठाकर उत्तम साधक देवी के ऊपर तीन बार घुमाकर निवेदित करे । पुनः नासिका के मार्ग से संहार मुद्रा द्वारा तेजोमयी महादेवी निर्माल्यवासिनी को अपने हृदय में पधरा कर उनका यजन करे । निर्माल्य के पुष्पों से गुरुपादुका को प्रणाम करे ॥ १७४-१७६ ॥

पूजासमाप्तिः

भक्तिभावे ततः पश्चात् प्राणायामषडङ्गकौ ।
कृत्वा सोऽहं विभाव्याथ साधकः स्थिरमानसः ॥ १७७ ॥

तदनन्तर भक्तिभाव से प्राणायाम और षडङ्गन्यास कर स्थिरचित्त हो साधक अपने में 'सोऽहं' की भावना करे ॥ १७७ ॥

ब्रह्मरन्ध्रे गुरोः स्थाने यन्त्रलेपञ्च धारयेत् ।
नास्तिकेभ्यो न पशुभ्यो न मूर्खेभ्यो प्रदापयेत् ॥ १७८ ॥

ब्रह्मरन्ध्र में जहाँ गुरु का निवास है, वहाँ यन्त्र का लेप स्थापित करे। चण्डिका देवी का नैवेद्य नास्तिक, पशु तथा मूर्खों को कदापि न देवे ॥ १७८ ॥

कुलीनाय च दातव्यमथवा जलमध्यतः ।
नैवेद्यं चण्डिकादेव्या वाञ्छन्ति विबुधाः सदा ॥ १७९ ॥

वह प्रसाद कुलमार्ग वालों को दे, अथवा जल में फेंक देवे । चण्डिका देवी का नैवेद्य तो देवता लोग भी चाहते हैं ॥ १७९ ॥

तस्माद्देयं सदा पुष्पं ब्रह्मणे विष्णवेऽपि च ।
मह्यं शुक्राय सूर्याय गणेशाय यमाय च ॥ १८० ॥

इसलिये चण्डिका समर्चित पुष्प ब्रह्मा को, विष्णु को, अथवा मुझे (भैरव) को, अथवा शुक्र, सूर्य, गणेश, अथवा यम को देवे ॥ १८० ॥

अग्नये वरुणायापि वायवे धनदाय च ।
ईशानाय महादेवीसाधकाय प्रकल्पयेत् ॥ १८१ ॥

चण्डिका देवी का नैवेद्य अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान तथा महादेवी के साधक को देवे ॥ १८१ ॥

अथवा तरुमूले च गर्ते वा शुचिदेशके ।
यत्नतः साधकश्रेष्ठो निर्माल्यानि समर्पयेत् ॥ १८२ ॥

अथवा वृक्ष के मूल में डाल देवे, अथवा किसी उत्तम प्रदेश में गड्ढ़ा खोदकर रख देवे । इस प्रकार साधक निर्माल्य को यत्नपूर्वक कहीं योग्य स्थान में समर्पण करे ॥ १८२ ॥

शक्तिभ्यः साधकेभ्यश्च दत्त्वा निर्म्माल्यचन्दनम् ।
माल्यं गन्धं ततो दत्त्वा आत्मदेहं ततोऽर्पयेत् ॥ १८३ ॥

सभी शक्तियों एवं सभी साधकों को निर्माल्य और चन्दन देकर माल्य एवं गन्ध देवे । इसके बाद स्वयं अपने को समर्पित कर देवे ॥ १८३ ॥

अथवा कारयेत् पानं मधुना वीरसाधकः ।
श्रीपात्रग्रहणं कृत्वा आदौ चक्रं करोति यः ॥ १८४ ॥
पशुपानं भवेत्तस्य प्रायश्चित्ती स साधकः ।
अर्घ्यामृतं ततो वीरः सामयिकेभ्यो निवेदयेत् ॥ १८५ ॥

अथवा वीर साधक मधु के साथ पान करा देवे । जो पहले श्री पात्र ग्रहण कर चक्र निर्माण करता है, उसका वह पान पशुपान हो जाता है, ऐसा साधक

प्रायश्चित्ती हो जाता है । इसके बाद अर्घ्यामृत सभी सामयिको (अन्तर्याजियों) को प्रदान करे ॥ १८४-१८५ ॥

शेषतत्त्वग्रहणविधिः

ततश्च साधकश्रेष्ठः शेषमात्मनि योजयेत् ।
प्रबन्धे पूर्णपात्रञ्च प्रगृह्य साधकोत्तमः ॥ १८६ ॥

देहं मन्त्रमयं विधाय पुरतः कृत्वा गुरोर्वन्दनं
श्रीपात्रं कुलविद्यया विलसितं संशोध्य दिव्यामृतम्।
विद्यापीठचतुष्टयं शिवशिवे सन्तर्प्य सिद्धिक्रमा-
दास्वाद्यापि पिबेद्रसं सुखकरं दुःखस्य निर्मूलनम् ॥ १८७ ॥

इसके बाद श्रेष्ठ साधक रस शेष का स्वयं आस्वादन करे । प्रबन्ध में उत्तम साधक पूर्ण पात्र लेकर, प्रथम देह को मन्त्रमय बनाकर, तदनन्तर गुरु की वन्दना करे । कुलविद्या मन्त्र से श्री पात्रयुक्त दिव्यामृत का संशोधन करे । फिर सिद्धिक्रम से चार विद्यापीठों में शिव शिवा का सन्तर्पण कर, दुःख को निर्मूलन करने वाले, सर्वदा सुखकारी, उस दिव्य रस का स्वयं आस्वादन करे ॥ १८६-१८७ ॥

महापातकयुक्तो वा बहुपापान्वितोऽपि वा ।
अर्घ्यस्य विन्दुमात्रेण मुक्तो भवति पातकात् ॥ १८८ ॥

ब्रह्महत्यादि महापाप करने वाले तथा अनेक पाप करने वाले पापी इस अर्घ्य के विन्दु मात्र जल से सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥ १८८ ॥

एवं पानं समाचर्य स्वीकृत्य पूर्णपात्रकम् ।
न्युब्जीकुर्याच्च तद्भूमौ तत्र पुष्पं क्षिपेद् बुधः ॥ १८९ ॥

इस प्रकार पान का आचरण स्वीकार कर, उस पूर्णपात्र को उलटकर भूमि में स्थापित कर देवे । फिर उस पर पुष्प रख देवे ॥ १८९ ॥

तदमृतस्निग्धभूमौ मायाबीजं विलिख्य च ।
कनिष्ठाङ्गुलिना वामहस्तस्य तिलकं तथा ॥ १९० ॥

उस पानामृत से संसिक्त भूमि में साधक माया बीज (ह्रीं) लिखकर बायें हाथ की कनिष्ठा अङ्गुली से मस्तक में तिलक लगावे ॥ १९० ॥

अनेन मनुना मन्त्री मूलाद्येन समाहितः ।
यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा ॥ १९१ ॥
स एव दासतां यातु यदि शक्रसमो भवेत् ।
ततः प्रक्षाल्य वीरेन्द्रो गोपयेत् पात्रमुत्तमम् ॥ १९२ ॥

तिलक का मन्त्र इस प्रकार है । मन्त्रज्ञ साधक आदि में मूल मन्त्र पढ़कर 'यं यं स्पृशामि................यदि शक्रसमो भवेत्' यह श्लोक तिलक लगाने का मन्त्र है । इसके बाद पात्र का प्रक्षालन कर विद्वान् साधक उसे किसी गुप्त स्थान में स्थापित कर देवे ॥ १९१-१९२ ॥

ततो यथाक्रमेणैव प्रसादं परिवेश्य च ।
भोजयेच्च ततो विद्वान् स्त्रीभिश्च साधकैः सह ॥ १९३ ॥

तदनन्तर क्रमानुसार प्रसाद परोस कर उन स्त्रियों तथा साधकों के साथ स्वयं भी प्रसाद भक्षण करे ॥ १९३ ॥

भुक्त्वा दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दनसंयुतम् ।
ताम्बूलाभरणादींश्च तथा तल्पं सुसाधकः ॥ १९४ ॥

भोजन करने के अनन्तर उन लोगों को गन्ध चन्दन युक्त माला प्रदान करे और ताम्बूल, आभरण तथा शयन के लिये शय्या प्रदान करे ॥ १९४ ॥

सेविते च कुलद्रव्ये कुलतत्त्वार्थदर्शिनः ।
जायते भैरवावेशः सर्वत्र समदर्शनः ॥ १९५ ॥

कुलद्रव्य के सेवन से कुलतत्व के पारदर्शियों को सर्वत्र समदर्शन कराने वाला भैरवावेश उत्पन्न होता है ॥ १९५ ॥

न्तं वा ग त च्छ रं पि मा कौलिकं न निवारयेत् ।
वारणात् त्रिपुरा रुष्टा ततो हानिस्तु जायते ॥ १९६ ॥

न्तं वा ग त च्छ रं पि मा (मातरं वापि गच्छन्तं) इस प्रकार भैरव के आवेश में प्रमादवश माता के पास सन्निधान करने वाले साधकों को मना न करे । मना करने से त्रिपुरा रुष्ट हो जाती है, जिससे हानि की सम्भावना होती है ॥ १९६ ॥

कौलिकः पशुगामी च परशक्तिं रमेद् बलात् ।
गोष्ठीमध्ये तु यत्नेन स्पर्शं तस्य न कारयेत् ॥ १९७ ॥

जो पशुगामी कौलिक दूसरों की स्त्रियों से बलात्कारपूर्वक रमण करता है । गोष्ठी में यत्नपूर्वक उसका स्पर्श भी कदापि न करे ॥ १९७ ॥

र्यां वा तां गि भा नीं सु भ यो दद्यात् कुलयोगिने।
मधुमत्ताय वीराय पुण्यं तस्य न गण्यते ॥ १९८ ॥

र्यां वा तां गि भा नीं सु भ (भागिनीं वा सुतां भार्यां) बहन, लड़की या अपनी स्त्री इन्हें मद्य से मस्त कुलयोगियों को जो प्रदान करता है उसके पुण्य की इति श्री नहीं है ॥ १९८ ॥

कुलं कुलाय यो दद्यात् सोऽपि योनौ न जायते ।
भगरूपा च सा देवी रेत:प्रीता च सर्वदा ॥ १९९ ॥

जो कुलमार्गी को कुल (शक्ति) प्रदान करता है, वह पुन: योनि में उत्पन्न नहीं होता । भगरूपा वह देवी सर्वदा रेत: (वीर्य) से प्रसन्न रहती है ॥ १९९ ॥

रेत:समर्पणं तस्यै मद्यैर्मांसैः समं सदा ।
ध्यात्वा कुण्डलिनीं शक्तिं रमन् रेतो विमुञ्चयेत् ॥ २०० ॥

मद्य, मांस के साथ उस शक्ति में रेत: (वीर्य) का समर्पण करे, कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करते हुये साधक खेचरी मुद्रा से रमण करते हुये योनि में वीर्य (=आनन्द) समर्पण करे ॥ २०० ॥

अमन्त्रा तु यदा नारी बलाद् यत्नाद्वा लभ्यते ।
आत्मदेहस्वरूपेण तत्कर्णे मन्त्रमुत्सृजेत् ॥ २०१ ॥

जो स्त्री बलात् अथवा किसी प्रयत्न से प्राप्त हो गई है, तो आत्मदेह स्वरूप समझकर उसके कान में मन्त्र का उत्सर्जन करे ॥ २०१ ॥

ततः सा शक्तिरूपा स्याद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
रतिकाले च दीक्षायामभिषेकं समाचरेत् ॥ २०२ ॥

ऐसा करने से वह शक्तिरूपा भोग और मोक्ष देने वाली हो जाती है । अत: रतिकाल में तथा दीक्षाकाल में अभिषेक अवश्य करना चाहिये ॥ २०२ ॥

सुरया रेतसा वापि जलेन चन्दनाम्बुना ।
सम्भोगेऽभिषिचेन्नारीं रण्डाञ्च मन्त्रवर्जिताम् ॥ २०३ ॥

सामान्य स्त्री का तथा रण्डा नारी का मद्य, वीर्य, जल अथवा घिसे चन्दन से सम्भोगकाल में अभिषेक करना चाहिये ॥ २०३ ॥

आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुच्चरेत् ।
नमः शब्दं समुच्चार्य इमां शिक्तं ततो वदेत् ॥ २०४ ॥
पवित्रीकुरुशब्दान्ते मम शक्तिं कुरुद्वयम् ।
वह्निजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥ २०५ ॥

'बाला त्रिपुरायै नम: इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरु कुरु स्वाहा' यह शुद्धि का मन्त्र कहा गया है ॥ २०४-२०५ ॥

अनेन मनुना चैव अभिषिक्ताः स्त्रियः सदा ।
रममाणो भवेन्नित्यं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २०६ ॥

उपर्युक्त मन्त्र से अभिषिक्त की गई स्त्री से रमण करने वाला साधक समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है ॥ २०६ ॥

इहलोके परंभोगं भुक्त्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ।
रम्भा शच्युर्वशी मुख्या या नारी गगने भुवि ॥ २०७ ॥
पाताले च स्थिता या च तस्या नाथस्तु कौलिकः ।
तस्य वर्ज्या च या नारी कथ्यते तन्त्रवर्त्मना ॥ २०८ ॥

इस प्रकार से स्त्री के साथ रमण करने वाला साधक इस लोक में सुख प्राप्त करता है और परलोक में मुक्ति प्राप्त करता है । रम्भा, शची, उर्वशी, जितनी भी पाताल एवं स्वर्ग में रहने वाली श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं उन सभी के स्वामी कौलिक हैं । अब जो नारी वर्जित हैं, उन्हें तन्त्रशास्त्र के अनुसार कहता हूँ ॥ २०७-२०८ ॥

त्रिपुरैव गुरुः साक्षात्तत्पत्नी तत्स्वरूपिणी ।
मनसा कर्मणा वाचा रमणं तत्र वर्जयेत् ॥ २०९ ॥

कौलिक के लिए वर्ज्य स्त्री—गुरु साक्षात् त्रिपुरा स्वरूप है, उसकी पत्नी (गुरुपत्नी) भी त्रिपुरा स्वरूप है, अतः उसके साथ मन, वचन और कर्म से भी रमण वर्जित है ॥ २०९ ॥

तस्या एव पदे भक्तो मुक्तिमप्यचिराल्लभेत् ।
गुरोः स्नुषा च कन्या च स्वपुत्री मन्त्रपुत्रिका ॥ २१० ॥

गुरुपत्नी के चरण कमलों का भक्त साधक उसकी सेवा करने से थोड़े ही काल में मुक्ति प्राप्त कर लेता है । गुरु की पतोहू, गुरुकन्या और अपनी पुत्री इन सभी को (जप) मन्त्र की कन्या समझना चाहिये ॥ २१० ॥

एतस्या रमणं वर्ज्यं ब्रह्मविन्मानसेन च ।
कौलिकस्य च पत्नी वै साक्षात् सिद्धीश्वरी शिवा ॥ २११ ॥
तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत् ।
माताऽपि गौरवाद्वर्ज्या शिवहीना तथैव च ॥ २१२ ॥

ब्रह्मवेत्ता मन से भी इनके साथ कदापि रमण की इच्छा न करे । कौलिक की पत्नी साक्षात् सिद्धेश्वरी शिवा है । अतः कुलमार्गानुसारी साधक की पत्नी से रमण करने वाला साक्षात् नरक का भागी होता है । माता का गौरव सबसे ऊँचा है अतः प्रयत्नपूर्वक उसके साथ रमण वर्जित है । इसी प्रकार शिवहीना से भी रमण वर्जित बतलाया गया है ॥ २११-२१२ ॥

अन्यस्थाने विचारे तु देवीशापः प्रजायते ।

मन्त्रमाता च पुत्री च भगिनी च कुलाङ्गना ॥ २१३ ॥
नं रमेत् कौलिको नित्यमेताः सम्यक् समर्चयेत् ।
(यद्वा) **गुरुवीरवधूं त्यक्त्वा रम्याः सर्वाश्च योषितः ॥ २१४ ॥**

अन्य स्थान (विषय) में रमण के विषय में विचार करने से साधक को देवी का शाप लगता है । मन्त्र की माता, पुत्री, भाञ्जी तथा कुलाङ्गनाओं से कौलिक रमण न करे किन्तु इनका नित्य पूजन अवश्य करे । अथवा गुरुपत्नी, वीरपत्नी को छोड़कर सभी स्त्रियों से रमण किया जा सकता है ॥ २१३-२१४ ॥

सन्दिग्धानां द्वैतज्ञानिनां पञ्चतत्त्वग्रहणे निषेधः

एता वर्ज्याः प्रयत्नेन सन्दिग्धानाञ्च सर्वदा ।
अद्वैतानाञ्च कुत्रापि निषेधो नैव विद्यते ॥ २१५ ॥

इन्हें प्रयत्नपूर्वक वर्जित करे । किन्तु सन्दिग्ध स्त्रियों से सर्वदा सशङ्कित रहे । अद्वैत मत मानने वालों के लिये तो कहीं भी निषेध नहीं है ॥ २१५ ॥

मातृगर्भस्थबीजेन शिशुरेव न संशयः ।
गर्भनिःसारकाले तु बालको हि दिगम्बरः ॥ २१६ ॥
अननीजठराद्योनिरन्ध्रद्वाराद्बहिर्भवन् ।
जननीयोनिसम्बन्धःसुतः शिश्नाऽधिगच्छति ॥ २१७ ॥
एवं विचार्यमाणे तु को न स्याद्गुरुतल्पगः ।
निर्विकारतया नात्र भवेत् नह्यन्यथा ततः ॥ २१८ ॥

लड़का तो माता के गर्भ में उसके बीज से बनता है और गर्भ से निकलने के समय बालक सर्वथा दिगम्बर (नङ्गा) रहता है और माता के पेट से योनि के छिद्र से निकल कर बाहर आता है । उस समय माता की योनि से लड़के के शिश्न का सम्बन्ध होता है । इस प्रकार विचार करने पर कौन गुरुतल्पग नहीं होता? किन्तु निर्विकार होने से उसे अन्यथा (कुत्सित) नहीं कहा जाता ॥ २१६-२१८॥

अतएव यदा यस्य वासना कुत्सिता भवेत् ।
तदा दोषाय भवति नान्यथा दूषणं क्वचित् ॥ २१९ ॥

इससे यह सिद्ध हुआ कि जब कभी वासना कुत्सित होती है, तभी दोष लगता है । अन्यथा दोष नहीं लगता ॥ २१९ ॥

निर्विकल्पमना भूत्वा चिन्मयीं समुपासयेत् ।
तदारूढेषु वीरेषु कार्याकार्यं न विद्यते ॥ २२० ॥

अतः निर्विकल्प (बिना वासना के) होकर चिन्मयी की उपासना करने वाले के

लिये और उसके आचरण में संलग्न वीर पुरुषों (कौलों) के लिये कार्याकार्य का विचार नहीं होता ॥ २२० ॥

तस्माद्द्वैतरूपेण सर्वयोनिं विचारयेत् ।
निश्चयं मुक्तिमाप्नोति सहस्त्रयोनिदर्शनात् ॥ २२१ ॥

इसलिये अद्वैत भावना वाले को किसी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिये, वह सब योनियों से सम्बन्ध कर सकता है । भले हजारों योनियों में रमण करे किन्तु उसकी मुक्ति निश्चित है ॥ २२१ ॥

अनाचारः सदाचारः कुकार्यं कार्यमुत्तमम् ।
अमेध्यमपि मेध्यं स्याद्द्वैतानाञ्च निश्चितम् ॥ २२२ ॥

अद्वैतवादियों के लिये अनाचार, सदाचार है, कुत्सित कार्य भी उत्तम कार्य है और अपवित्र भी पवित्र है । यह निश्चित सिद्धान्त है ॥ २२२ ॥

अपेयमपि पेयं स्यादभोज्यं भोज्यमेव च ।
अगम्याऽपि च गम्या स्याद्द्वैतानां सुनिश्चितम् ॥ २२३ ॥

उनके लिये अपेय भी पेय है, अभोज्य भी भोज्य है, अगम्य भी गम्य है और यह भी अद्वैतों के लिये निश्चित है ॥ २२३ ॥

न विधिर्न निषेधश्च न पुण्यं न च पातकम् ।
न स्वर्गो नैव नरकमद्वैतानाञ्च निश्चितम् ॥ २२४ ॥

उन अद्वैतवादियों के लिये न कोई विधि है और न कोई निषेध है, न पुण्य है, न पाप है, न स्वर्ग है, न नरक है । यह मत निश्चित है ॥ २२४ ॥

यत्र यत्र निषेधश्च विधिर्वा परिकथ्यते ।
तत्र तत्रापि बोद्धव्यं सन्दिग्धानां सुनिश्चितम् ॥ २२५ ॥

जहाँ-जहाँ विधि है और जहाँ-जहाँ निषेध है, वह सब निश्चित रूप से सन्देह करने वालों के लिये ही कहा गया है ॥ २२५ ॥

सर्वथैव गुरोरग्रे अद्वैतं नैव कारयेत् ।
तस्माच्च यत्नतो वीरो गुरुयोनिं परित्यजेत् ॥ २२६ ॥

गुरु के आगे सर्वथा अद्वैत मार्ग का अनुसरण न करे । इसलिये वीर साधक गुरु की स्त्री के साथ कदापि रमण न करे ॥ २२६ ॥

अद्वैतद्वैतभेदेन पूजनं कथितं महत् ।
पञ्चतत्त्वमसंयुक्तं पञ्चमं यस्तु कारयेत् ॥ २२७ ॥

इस प्रकार हमने अद्वैत तथा द्वैत भेद से पूजा का विधान कहा, जो पाँच मकार युक्त तत्वों से युक्त है । अतः पाँचों वस्तु से पूजा करे ॥ २२७ ॥

तस्य पूजा च सा नष्टा प्रायश्चित्ती स साधकः ।
तत्त्वहीनं कृतं कर्म जपकर्म च निष्फलम् ॥ २२८ ॥

पञ्चतत्त्वरहित किया गया कर्म तथा जप निष्फल होता है, पञ्चतत्व से रहित पूजा नष्ट है । ऐसा साधक प्रायश्चित्ती होता है ॥ २२८ ॥

शाम्भवी कुप्यते तेभ्यो ब्रह्महत्या दिने दिने ।
चक्रं त्यक्त्वा तु देवेशीं पूजयेत्तर्पणं विना ॥ २२९ ॥
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशोबलम् ।

पञ्चतत्त्वविहीन पूजा करने वालों पर शाम्भवी (त्रिपुरा) कुपित होती हैं । उसे प्रतिदिन ब्रह्महत्या का पाप लगता है । जो साधक चक्र का परित्याग कर तर्पण-रहित देवेशी का पूजन करता है, उसके आयु, विद्या, यश एवं बल चारों ही नष्ट हो जाते हैं ॥ २२९-२३० ॥

चक्रमध्ये तु यद्दृष्टं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ २३० ॥
प्रभाते तन्न वक्तव्यं साधकेन महात्मना ।
नित्यपूजा च कथिता साधकानां सुसिद्धये ॥ २३१ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये अष्टमोल्लासः ॥८॥

चक्र के मध्य में रात्रि के समय, जो भी अच्छा या बुरा जो भी दिखाई पड़े, साधक उसे प्रातःकाल में प्रकाशित न करे । इस प्रकार साधकों की सिद्धि के लिये हमने नित्य पूजा का विधान कहा ॥ २३०-२३१ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के अष्टम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ८ ॥
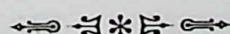
नवम उल्लासः

...༺❀༻...

इति गुप्ततरं श्रेयं गन्धर्वस्य क्रमं शुभम् ।
अत्यन्तगोपनाद्यस्तु पञ्चतत्त्वेन पूजयेत् ॥ १ ॥
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मन्दभाग्योऽपि पूजनात् ।
तस्मात् पूजां सदा कुर्यात् सिद्धार्थी सिद्धिसंग्रहः ॥ २ ॥

इस प्रकार इस कल्याणकारी गन्धर्व क्रम को अत्यन्त गुप्त समझना चाहिये । जो अत्यन्त गुप्त रखकर पञ्चतत्व से श्री महाभगवती का पूजन करता है । वह भले ही अभागा हो, किन्तु गुप्त पूजन प्रकार से उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । इसलिये सिद्धि चाहने वाला अथवा सिद्धियों का सङ्ग्रह करने वाला सदैव महाभगवती का पूजन करे ॥ १-२ ॥

पूजाफलकथनम्

पूजाफलेन दौर्भाग्यं दुःखदारिद्र्यनिग्रहम् ।
सर्वप्रशमनं याति ईश्वरो जायते भुवि ॥ ३ ॥

इस प्रकार के पूजा करने के फलस्वरूप दुर्भाग्य और दारिद्र्य का विनाश हो जाता है उसकी समस्त (ग्रहजन्य) अशान्ति शान्त हो जाती है और वह ऐश्वर्ययुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

अर्चनक्षणभङ्गेन विकला योगिनी भवेत् ।
पूजाहीनोऽशुचिर्नित्यं गर्हितः सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

उस पूजा एवं अर्चनक्षण में विघ्न पड़ने से योगिनी विकल हो जाती हैं । पूजारहित व्यक्ति अपवित्र रहता है, अतः वह समस्त पूजातिरिक्त कार्यों में निन्दित होता है ॥ ४ ॥

पूजां विहाय यो मूढो मन्त्रं जपति नित्यशः ।
तज्जपं विफलं विद्यात् स मन्त्री पातकी भवेत् ॥ ५ ॥

जो मूर्ख बिना पूजा किये नित्य मन्त्र का जप करता है । उसका सारा किया गया जप निष्फल समझना चाहिये और वह स्वयं भी पापी हो जाता है ॥ ५ ॥

विद्यां संगृह्य पूजायां श्रद्धा यस्य न विद्यते ।
स महापातकी भूत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

विद्या प्राप्त कर लेने पर भी जिसकी श्रद्धा पूजा में नहीं होती, वह महापातकी होकर अन्य जन्म में पशुयोनि प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

पूजाहीनस्य मांसेन रुधिरेण विशेषतः ।
पारणं योगिनीनाञ्च भैरवाणां भवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥

पूजारहित व्यक्ति के मांस से, विशेष रूप से उनके रुधिर से योगिनियों का तथा भैरवों का पारण होता है ॥ ७ ॥

तस्मात् पूजां सदा कुर्यात् सिद्ध्यर्थी मानसेऽथवा ।
यद्गेहे पूजयेद् देवीं सदैव तत्र पूजनम् ॥ ८ ॥

इसलिये सिद्धि चाहने वाला व्यक्ति सदैव पूजा करे । वह पूजा मन में करे अथवा जिस घर में पूजा प्रारम्भ करे उसमें नित्य पूजा करे ॥ ८ ॥

दिवसे पूजानिषेधः

अतिगुप्तेन तत्कार्यं दिवसे नैव सर्वथा ।
दिवसे पञ्चमैः पूजा राष्ट्रहानिं करोति हि ॥ ९ ॥

महाभगवती की पूजा अत्यन्त गुप्त रूप से करनी चाहिये । दिन में तो सर्वथा पूजा न करे क्योंकि दिन में पञ्चमकारों के पूजन से राष्ट्र की हानि होती है ॥ ९ ॥

साधकस्य महाक्षोभं प्रददाति सुनिश्चितम् ।
तस्मात् पञ्चमकारेण दिवसे नैव सर्वदा ॥ १० ॥

दिन में पञ्चमकार द्वारा की गई पूजा साधक में निश्चित रूप से क्षोभ (चाञ्चल्य और पागलपन) उत्पन्न करती है । इसलिये पञ्चमकारों द्वारा सर्वदा दिन में पूजा नही करे ॥ १० ॥

उत्तमादिभेदेन त्रिविधा पूजा

उत्तमा नित्यपूजा स्यात् पर्वपूजा च मध्यमा ।
मासपूजाऽधमा प्रोक्ता मासादूर्ध्वं पशुर्भवेत् ॥ ११ ॥

नित्य पूजा उत्तम कही गई है । प्रतिवर्ष (अमावस्या एवं पूर्णमासी पर) की गई पूजा मध्यम तथा मास-मास पर की जाने वाली पूजा अधम कही गई है । मास के बाद की जाने वाली पूजा पशु पूजा हो जाती है उससे कोई फल प्राप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

पशोर्भूयः प्रवेशेच्छा यदि स्याद्दीक्षयेत् पुनः ।
विहितैर्मादिभिर्द्रव्यैर्मासादूर्ध्वं समाचरेत् ॥ १२ ॥

यदि पशुभाव वाला साधक कौल धर्म में पुनः प्रवेश करना चाहे; तो उसे फिर दीक्षा देनी चाहिये । एक महीना के ऊपर हो जाने पर, वह पुनः विहित मांसादि से महादेवी की पूजा करे ॥ १२ ॥

प्रशस्तकालनिर्णयः

कृष्णाष्टमी चतुर्दश्यमावस्याथ च पूर्णिमा ।
संक्रान्तिः पञ्चपर्वाणि पुण्यादि दिवसेषु च ॥ १३ ॥
सम्पत्तौ च यजेल्लाभे तपोदीक्षाव्रतोत्सवे ।
पीठोपगमने वीराकुलपीठस्य दर्शने ॥ १४ ॥
देशिकागमने पुण्यतीर्थदैवतदर्शने ।
एवमादिषु कालेषु विशेषदिवसेषु च ॥ १५ ॥
गुरुजन्मदिने प्राप्ते तद्गुरोस्तद्गुरोरपि ।
मानवौघादिपुंसाञ्च स्वजन्मदिवसेऽपि च ॥ १६ ॥
एकादश्यां व्यतीपाते कर्मलोपं न कारयेत् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ १७ ॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्द्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, सङ्क्रान्ति—ये पाँच पर्व बतलाये गये हैं । इसके अतिरिक्त सभी पुण्य दिन तथा सम्पत्ति में भी यजन करे। इसी प्रकार तप, दीक्षा, व्रत के उत्सव में, पीठ पर आसीन होने पर, वीरपीठ एवं कुलपीठ के दर्शन काल में, आचार्य के पधारने पर, पुण्यतीर्थ एवं देवता दर्शन इत्यादि कालों के उपस्थित होने पर तथा विशेष, विशेष दिनों के प्राप्त होने पर, गुरु के जन्मदिन एवं उनके भी गुरु के जन्मदिन में, मानवौघादि पुरुषों के जन्मदिन में और अपने जन्मदिन में भी, एकादशी तथा व्यतीपात उपस्थित होने पर कर्मलोप न करे । अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियों में प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ १३-१७ ॥

न लङ्घयेदष्टमीञ्च लङ्घनात् पातकी भवेत् ।
इति पूर्वापरे प्राप्ते पञ्चतत्त्वैश्च साधकः ॥ १८ ॥

विशेष कर अष्टमी में पूजोल्लङ्घन न करे क्योंकि उस दिन पूजा का अतिक्रमण करने से पाप लगता है । इस प्रकार पूर्वपक्ष अथवा अपरपक्ष (कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष) के प्राप्त होने पर साधक पञ्चतत्त्वों से पूजा करे ॥ १८ ॥

पूजां कुर्यात् प्रयत्नेन अन्यथा सिद्धिहा भवेत् ।

बहिःपूजाविधानेन गन्धर्वो वापि किन्नरः ॥ १९ ॥
राजाऽपि साधको वापि नान्यः कोऽपि महीतले।
यतिर्वा भूपतिर्वापि नान्योऽस्ति पूजकः क्वचित्॥ २० ॥

पूजा प्रयत्नपूर्वक मन लगाकर करे, अन्यथा सिद्धि में हानि उठानी पड़ती है। जो विधानपूर्वक बहिः पूजा करता है; गन्धर्व, किन्नर या राजा कोई साधक पृथ्वी में उसकी समानता नहीं कर सकता । यति, भूपति तथा अन्य पूजक उसकी समानता नहीं कर सकते ॥ १९-२० ॥

न देवः पर्वताग्रेषु न देशे विष्णुसद्मनि ।
देवश्चिदानन्दमयो हृदि भावेन दृश्यते ॥ २१ ॥

देवता पर्वत के ऊँचे शिखरों पर अथवा विष्णु के मन्दिर में निवास नहीं करते। आनन्दमयता ही देवता का स्वरूप है जो भाव से दिखाई पड़ते हैं ॥ २१॥

यत्र यत्र दृढा भक्तिर्यदा यस्य महात्मनः ।
तत्र तत्र महादेवी प्रकाशमनुगच्छति ॥ २२ ॥

इसलिये जिस महात्मा की जहाँ-जहाँ दृढ़ भक्ति होती है, महात्मा लोगों को वहाँ-वहाँ महाभगवती का दर्शन प्रकाशरूप से प्रत्यक्ष हो जाता है ॥ २२ ॥

सिद्धक्षेत्रकथनम्

अथ वक्ष्ये फलाधिक्यं पूजायां यत्र जायते ।
वाराणस्यां महापूजा सम्पूर्णफलदायिनी ॥ २३ ॥

अब मैं जहाँ-जहाँ पूजा करने से अधिक फल की प्राप्ति होती है, उन-उन स्थानों को कहता हूँ । वाराणसी में की गई महापूजा साधक को सम्पूर्ण फल प्रदान करती है ॥ २३ ॥

स्थानभेदेन पूजाफलभेदः

ततस्तु द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारकायां विशेषतः ॥ २४ ॥

पुरुषोत्तम क्षेत्र में पूजा करने से उसको दूना फल प्राप्त होता है । विशेष रूप से द्वारका में पूजा करने से उसका भी दूना फल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

सर्वक्षेत्रेषु तीर्थेषु पूजा द्वारावतीसमा ।
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा ॥ २५ ॥

ऐसे तो सभी तीर्थों एवं पुण्य क्षेत्रों में पूजा का फल द्वारावती (हरिद्वार) के

समान ही होता है किन्तु विन्ध्य क्षेत्र में तथा गङ्गा में उसका शतगुणा फल प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

आर्यावर्त्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्त्ते तथैव च ।
विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयागे पुष्करेषु च ॥ २६ ॥

आर्यावर्त मध्यदेश एवं ब्रह्मावर्त देश में की गई पूजा विन्ध्यक्षेत्र में की गई पूजा के फल के समान होती है । किन्तु प्रयाग एवं पुष्कर में उसका चौगुना फल प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोयानदीजले ।
तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डे च निश्चितम् ॥ २७ ॥

करतोया के जल में उसका भी चौगुना फल प्राप्त होता है । नन्दि कुण्ड में निश्चित रूप से उसका भी चौगुना फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पीशस्य च सन्निधौ ।
ततः सिद्धीश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ॥ २८ ॥

जल्पेश्वर के सन्निधान में उसका भी चौगुना फल होता है । उसके बाद सिद्धेश्वरी की योनि में पूजा करने से उसका भी दूना फल प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ।
तत्समा कामरूपे च सर्वत्रैव जले स्थले ॥ २९ ॥

फिर उसका भी चौगुना फल लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के जल में पूजा करने से प्राप्त होता है । उतना ही फल कामरूप क्षेत्र में तथा सर्वत्र जल एवं स्थल में पूजा करने से होता है ॥ २९ ॥

सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा ।
देवीपूजा तथा शक्त्यां कामरूपे सुरालये ॥ ३० ॥

जिस प्रकार विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं और महालक्ष्मी सर्वोत्तम देवी है उसी प्रकार कामरूप के मन्दिर में की गई पूजा सर्वश्रेष्ठ पूजा होती है ॥ ३० ॥

कुलार्णवे—

कामरूपञ्च द्विविधं व्यक्तं गुप्तं महेश्वरि ।
करतोयानदीपूर्वं यावद्दिक्करवासिनी ॥ ३१ ॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
त्रिकोणं कृष्णवर्णञ्च कामरूपमुदाहृतम् ॥ ३२ ॥

कुलार्णव तन्त्र में कहा भी है—हे महेश्वरि ! कामरूप क्षेत्र व्यक्त (प्रगट) और गुप्त (अप्रगट) भेद से दो प्रकार का कहा गया है । पूर्व में करतोया नदी से प्रारम्भ कर दिक्करवासिनी पर्यन्त तीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा कहा गया है । इस प्रकार का त्रिकोण और काले वर्णों वाला कामरूप क्षेत्र बतलाया गया है ॥ ३१-३२ ॥

द्विविधः कामरूपः

व्यक्तं तत्रैव विज्ञेयं गुप्तञ्चैव गृहे गृहे ।
व्यक्ताद् गुप्तं महापुण्यं लभ्यते साधकोत्तमैः ॥ ३३ ॥

इसे व्यक्त कामरूप क्षेत्र कहा गया है । किन्तु गुप्तकाम रूप क्षेत्र प्रत्येक घर में है ऐसा समझना चाहिये । व्यक्त की अपेक्षा गुप्त अत्यन्त पुष्पोत्पादक तीर्थ है जो साधकों को महापुण्य से प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

देवीक्षेत्रं कामरूपं विन्द्यादन्यन्न तत्समम् ।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ॥ ३४ ॥

यह कामरूप क्षेत्र देवी क्षेत्र है । अन्य कोई इसकी समता नहीं कर सकता । देवी तो अन्यत्र कहीं-कहीं मन्दिर में ही रहती हैं, किन्तु कामरूप क्षेत्र में देवी प्रत्येक गृह में विराजमान है ॥ ३४ ॥

ततः शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता सुमेरौ शिवलिङ्गके ॥ ३५ ॥

कामरूप क्षेत्र की अपेक्षा सौगुना फल नीलकूट के मस्तक पर विराजमान देव का बतलाया गया है और उसका भी दूना फल सुमेरु पर्वत के शिवलिङ्ग में पूजा करने से प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्याश्च योनिषु ।
ततः शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ॥ ३६ ॥

उसका भी दूना फल शैलपुत्री की योनि में पूजा का है और उसका भी सौगुना फल कामाख्या के योनिमण्डल में पूजा करने से होता है ॥ ३६ ॥

तत्समापि च सा पूजायोषितां योनिमण्डले ।
पीठानां परमं पीठं कामरूपं महाकुलम् ॥ ३७ ॥

स्त्रियों के योनिमण्डल में पूजा करने से कामाख्या योनिमण्डल का फल समान रूप से प्राप्त होता है । सभी पीठों की अपेक्षा कामरूप महाकुल सर्वोत्तम कहा गया है ॥ ३७ ॥

ततः शतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
यत्र कोटिगुणैः सार्द्धं माया महिषमर्दिनी ॥ ३८ ॥

उससे भी सौगुना फल वाला कामाख्या योनिमण्डल है । इसमें करोड़ों गुना फल के साथ महिषमर्दिनी महामाया का निवास है ॥ ३८ ॥

यत्पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं गुप्तं सर्वसुखावहम् ।
यतो देवाश्च देव्यश्च मुनयश्चैव भावजाः ॥ ३९ ॥
सर्वेऽप्याविर्भवन्त्यत्र तेन गुप्तं महाकुलम् ।

यह पीठ ब्रह्मदेव का मुख है और सर्वथा गुप्त तथा सर्वसुखावह है । जहाँ भाव द्वारा सभी देव तथा सभी देवियाँ उत्पन्न होती हैं । इस कारण वह महाकुल सर्वथा गुप्त है ॥ ३९-४० ॥

कामाख्यायां महायोनौ पूजां यः कृतवान् सकृत्॥ ४० ॥
स चेह लभते कामान् परत्र शिवतां व्रजेत् ।
अत्र यत्क्रियते पूजा सकृद्वा साधकेन च ॥ ४१ ॥
विहाय सर्वपीठानि तस्य देहे वसेत् शिवा ।
अथ वक्ष्यामि सामान्य पूजायाः क्रममुत्तमम् ॥ ४२ ॥

जिसने कामाख्या रूप महायोनि की एक बार भी पूजा कर ली है । वह इस लोक में अपनी सारी कामनायें प्राप्त कर लेता है तथा मरने के बाद परलोक में साक्षात् शिव हो जाता है । साधक एक बार भी यदि वहाँ पूजा कर लिया तो महाभगवती शिवा समस्त पीठों को छोड़कर उसके शरीर में ही निवास करने लगती हैं । अब सामान्य पूजा का सर्वश्रेष्ठ क्रम कहता हूँ ॥ ४० - ४२ ॥

सामान्यपूजाक्रमः

आदावृष्यादिकन्यासः करशुद्धिस्ततः परम् ।
अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ॥ ४३ ॥

साधक सर्वप्रथम ऋष्यादि न्यास करे, इसके बाद हस्तप्रक्षालन कर करशुद्धि करे । तदनन्तर अङ्गुलीन्यास, व्यापकन्यास तथा हृदयादिन्यास करे ॥ ४३ ॥

तालत्रितयदिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम् ।
ध्यानं पूजा जपश्चेति सर्वतन्त्रेष्वयं विधिः ॥ ४४ ॥

तीन ताल देकर दिग्बन्धन करे । तदनन्तर प्राणायाम, फिर क्रमशः ध्यान, पूजा और जप करे । सभी तन्त्रों में सामान्य पूजा का यह क्रम है ॥ ४४ ॥

जपार्थं सर्वमन्त्राणां विन्यसेत्तु लिपिं विना ।

कृतञ्च निष्फलं विद्यात् तस्मादादौ लिपिं न्यसेत् ॥ ४५ ॥

सभी मन्त्रों के जप में भूतलिपि का न्यास किये बिना जो जप किया जाता है वह निष्फल हो जाता है, इसलिये सर्वप्रथम भूतलिपि न्यास अवश्य करे ॥ ४५ ॥

शिवाबलिकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शिवाया बलिमुत्तमम् ।
न ददाति बलिं यस्तु शिवायाः शिवताप्तये ॥ ४६ ॥
स पापिष्ठौ नाधिकारी कुलदेव्यास्तु पूजने ।
पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ॥ ४७ ॥
शिवारावेण तस्यास्तु सर्वं नश्यति निश्चितम् ।
पूजा जपविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च ॥ ४८ ॥
गृहीत्वाशापमासाद्य शिवा रोदिति निर्जने ।
अवश्यमन्नपानेन नियतं तोषयेच्छिवाम् ॥ ४९ ॥

बलिदान प्रयोग—अब इसके बाद शिवा भगवती के बलिदान का प्रकार कहता हूँ । जो शिवता प्राप्ति के लिये महाभगवती शिवा को बलि प्रदान नहीं करता वह महापापी है । कुलदेवी के पूजन में उसका अधिकार नहीं है । जो साधक निर्जन वन में पशुरूपा शिवा (शृगाली) का पूजन अर्चन नहीं करता शिवा राव (शृगाली का फेत्कार शब्द) के साथ उसके किये गये समस्त जप विधान नष्ट हो जाते हैं । शिवा उसके यत्किञ्चित् पुण्य को लेकर उसे शाप देकर उस निर्जन वन में रोने लगती है । इसलिये अन्न पानादि द्वारा उन शिवा भगवती को साधक अवश्य सन्तुष्ट करे ॥ ४६-४९ ॥

एकया भुज्यते यत्र शिवायाश्चैव निश्चितम् ।
तदैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परमदुर्लभा ॥ ५० ॥

यदि एक भी शिवा (शृगाली) निश्चित रूप से भोजन कर लेती है, तो उसी समय साधक से सभी शक्तियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, जो अन्य सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ कहा गया है ॥ ५० ॥

पशुशक्तिर्नरशक्तिः पक्षिशक्तिस्तु सर्वदा ।
पूजिता विगुणं कर्म सगुणं साधयेद् यतः ॥ ५१ ॥
तेन सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं पूजनं महत् ।
राजादिभयमापन्ने ग्रहादिभयमेव च ॥ ५२ ॥
शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् ।

यतः पशुशक्ति, नरशक्ति और पक्षिशक्ति सर्वदा पूजित होने पर साधक के विकृत कर्मों को भी सगुण बना देती हैं । इसलिए राजादि द्वारा भय उपस्थित होने पर सभी प्रयत्नों से उनका पूजन करना ही चाहिये अथवा ग्रहादिभय भय उपस्थित होने पर साधक शुभ और अशुभ कर्म का विचार कर भगवती के लिये बलि प्रदान करे ॥ ५१-५३ ॥

विल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः ॥ ५३ ॥
मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ।
गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि ॥ ५४ ॥
शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ।
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनप्रियः ॥ ५५ ॥

बिल्वमूल में सर्वथा एकान्त में श्मशान में सन्ध्या काल में मांसप्रधान बलि इस श्लोक मन्त्र से निवेदन करे—

गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि ।
शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ॥

कुलजनप्रिय द्रव्य रूप इस मन्त्र का उच्चारण कर भगवती को बलि प्रदान करे ॥ ५३-५५ ॥

कालीकालीति वक्तव्यस्तत्रोमा शिवारूपिणी ।
पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह ॥ ५६ ॥

इसके बाद 'काली-काली' इतना शब्द और कहे, फिर तो शिवस्वरूपिणी उमा पशुरूप धारण कर अपने परिवार गणों के साथ साधक के समक्ष स्वयं उपस्थित हो जाती हैं ॥ ५६ ॥

भक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सुस्वरा ।
तदेव मङ्गलं तस्य नान्यथा साधकस्य च ॥ ५७ ॥

बलि भोजन करने के पश्चात् यदि वह शिवा (शृगाली रूपा उमा) ईशानकोण में ऊपर मुख कर सुस्वर से रोती है । तब उससे साधक का मङ्गल समझना चाहिये, अन्यथा नहीं ॥ ५७ ॥

यदि न भुज्यते तत्र तदा नैव शुभं भवेत् ।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये बलिं दद्यात् प्रयत्नतः ॥ ५८ ॥

यदि वह बलि भोजन नहीं करती तो साधक का कल्याण नहीं समझना चाहिये, नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्मों में प्रत्यनपूर्वक बलि देनी चाहिये ॥ ५८ ॥

कुलपूजाविधानम्

अति गुप्तेन कर्तव्यं बलिदानं शुभावहम् ।
कुलपूजां प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रविधानतः ॥ ५९ ॥

यतः यह बलिदान शुभकारी होता है अतः अत्यन्त गुप्त रूप से करना चाहिये । अब शास्त्रों में जिस प्रकार कुलपूजा का विधान है उसे कहता हूँ ॥ ५९॥

कुलागमे

यथा कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः ।
कुलतिथौ कुलर्क्षे च कुलपूजां समाचरेत् ॥ ६० ॥

कुलागमतन्त्र में कही गई विधि—कुलवार में, कुलाष्टमी एवं चतुर्दशी विशेषकर कुलतिथि तथा कुलनक्षत्रों में कुलपूजा करनी चाहिये ॥ ६० ॥

योगिनीपूजनं यत्र प्रधानं कुलपूजनम् ।
यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः ॥ ६१ ॥
तथा कुलतिथौ देवी पूजिता वरदायिनी ।
नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ॥ ६२ ॥
तथैव कौलिकानाञ्च नित्यता कुलपूजने ।
एकरात्रं द्विरात्रं वा नहि चेत् कुलपूजनम् ॥ ६३ ॥
तदा तं साधकं त्यक्त्वा लयमेष्यति चण्डिका ।
कुलपूजासमं नास्ति पुण्यमन्यज्जगत्त्रये ॥ ६४ ॥

जिसमें योगिनी पूजन प्रधान होता है वही कुलपूजन कहा जाता है जिस प्रकार विष्णुतिथि (एकादशी) में पूजा किये जाने पर विष्णु वाञ्छित फल प्रदान करते हैं उसी प्रकार कुलतिथि में पूजा किये जाने पर देवी वर प्रदान करती है जिसका प्रकार नित्यकर्म में, नित्यश्राद्ध, सन्ध्यावन्दन तथा पितृतर्पण नित्य है । उसी प्रकार कौलिकों के लिये कुलपूजन नित्यकर्म हैं । यदि एक रात या दो रात में कुलपूजा नहीं की गई तो उस साधक का परित्याग कर चण्डिका अन्तर्हित हो जाती है । कुलपूजा के समान पुण्यकर्म तीनों जगत् में नहीं है ॥ ६१-६४ ॥

तस्माद् यः पूजयेद् भक्त्या भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम् ।
अनधीतोऽप्यशास्त्रज्ञो गुरुभक्तो दृढव्रतः ॥ ६५ ॥
कुलपूजारतो यस्तु स मे प्रियतरो भवेत् ।
इच्छासिद्धिफलं दद्यात् पूजिता सुवधूरिव ॥ ६६ ॥

इसलिये जो भक्तिपूर्वक कुलपूजा करता है, वह भोग और मोक्ष दोनों का

भाजन बन जाता है । जिसने अध्ययन नहीं किया, जिसे शास्त्र का ज्ञान नहीं है, किन्तु यदि वह गुरुभक्त, दृढ़व्रत, और कुलापूजा करता है तो हे भैरव! वह मेरा अत्यन्त प्रिय भक्त है । भगवती चण्डिका उसे वाञ्छानुकूल फल प्रदान करती हैं । जिस प्रकार उत्तम वधू की पूजा वाञ्छा प्रदान करती है ॥ ६५-६६ ॥

अपूजिता यदा देवी दुःखदा कुवधूरिव ।
कुलपूजान्तरायं तु यः करोति हि दुर्मतिः ॥ ६७ ॥
स याति नरके घोरे एकविंशतिभिः कुलैः ।
विगुणं यत्र यद्यत् स्यात् सगुणं कुलपूजनात् ॥ ६८ ॥

किन्तु यदि देवी की पूजा नहीं की जाती तो वह कुत्सित वधू के समान दुःख प्रदान करती है । जो दुष्ट कुल पूजा में बाधा उत्पन्न करता है, वह अपनी २१ पीढ़ी के साथ घोर नरक में जाता है । जो कार्य सर्वथा विगुण एवं विकृत है, वे सभी कुलपूजन के प्रभाव से गुणयुक्त हो जाते हैं ॥ ६७-६८ ॥

कुलावलोकनं चेत् स्यात् कुतः प्रोक्षणमार्जनम् ।
क्व स्नानं क्व च वा शुद्धिः क्व च न्यासविशोधनम् ॥ ६९ ॥

यदि कुलपूजा का दर्शन हो गया, तो प्रोक्षण, मार्जन, स्नान, शुद्धि, न्यास तथा विशोधन की आवश्यकता नहीं रह गई ॥ ६९ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलपूजां समाचरेत् ।
लभते सर्वसिद्धिञ्च नात्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥

इसलिये सभी प्रयत्न द्वारा कुलपूजा अवश्य करे । समस्त सिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसलिये कुलपूजा में विचार की आवश्यकता नहीं ॥ ७० ॥

कुलवारतिथिनक्षत्रादिविधानम्

कथ्यते कुलवारादिनिर्णयः सिद्धिहेतवे ।
द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥

अब कुल सम्प्रदायोक्त वार तिथि नक्षत्रादि का विधान करते हैं । द्वितीया, दशमी षष्ठी—ये तिथियाँ कुलाकुल (शिवशक्त्यात्मक) कही गई हैं ॥ ७१ ॥

विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः ।
रविः सोमो गुरुः शौरिश्चत्वारश्चाकुला मताः ॥ ७२ ॥

सम सञ्ज्ञक तिथियाँ कुल कही गई हैं । शेष अकुल कही गई हैं । रवि सोम गुरु और शनैश्चर—ये अकुल माने गये हैं ॥ ७२ ॥

भौमशुक्रौ कुलाख्यौ च बुधवारः कुलाकुलः ।

वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम् ॥ ७३ ॥
कुलानि समधिष्ठानि शेषाण्यकुलभानि च ।
तिथिवारे च नक्षत्रे चाकुले स्थायिनोऽजयः ॥ ७४ ॥
कुलर्क्षे जयिनो नित्यं साम्यञ्चैव कुलाकुले ।
पौर्णमास्यन्तमासेन तिथिकृत्यं विधीयते ॥ ७५ ॥
महाष्टम्येव विज्ञेया कुलाष्टमी सुसिद्धिदा ।
कथितः कुलवारादिनिर्णयः सिद्धिहेतवे ॥ ७६ ॥

मङ्गल और शुक्र कुल (शक्ति) दिन है और बुधवार कुलाकुल है । वारुण () आर्द्रा, अभिजित् और मूल कुलनक्षत्र हैं, उससे शेष अकुल सञ्ज्ञक नक्षत्र हैं । अकुल सञ्ज्ञक तिथि एवं वार और नक्षत्रों में स्थायी पराजित होता है, कुल सञ्ज्ञक नक्षत्र विजय देने वाले हैं । कुलाकुल में दोनों बराबर हैं । पौर्णमासी के अन्त तक रहने वाले मास के हिसाब से तिथियों का कृत्य कहा गया है । महाष्टमी (नवरात्र की अष्टमी) कुलाष्टमी है, जो सर्व प्रकार की सिद्धि देती है । सिद्धि के लिये हमने यहाँ तक कुलवार और कुलतिथि इत्यादि का कथन किया ॥७३-७६॥

स्नानं पाद्यार्घ्यपर्यन्तं स्वकल्पोक्तं विधाय च ।
लाक्षारसतद्वदहे वीरस्तूलिकां रचयेत्ततः ॥ ७७ ॥

इसके बाद साधक अपने सम्प्रदायानुसार स्नान, पाद्य, अर्घ्य आदि की सामग्री एकत्रित करे । वीर साधक लाक्षारस के समान लाल वर्ण की तूलिका (रूई की गद्दी) उसी दिन निर्माण करे ॥ ७७ ॥

कुलकन्यानिरूपणम्

नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
ब्राह्मणी भद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ॥ ७८ ॥
मालाकारस्य कन्या च नवकन्याः प्रकीर्तिताः ।
(यद्वा) **चण्डाली चर्मकारी च मागधीपुक्कसी तथा ॥ ७९ ॥**
श्वपची खण्डिका चैव कैवर्त्ती विटयोषितः ।
कुलाष्टकं तु कथितमकुलाष्टकमुच्यते ॥ ८० ॥

नट की कन्या, कापालिक की कन्या, वेश्या की कन्या, धोबी की कन्या, नाऊन की कन्या, ब्राह्मणी, भद्र (मल्लाह) की कन्या तथा गोपाल (यादव) की कन्या और माली की कन्या—इस प्रकार नव कन्यायें कही गई हैं । अथवा चण्डाली, चर्मकारी, मागधी, पुक्कसी (नीच), श्वपची, खण्डिका, कैवर्त्ती तथा विट् (धूर्त्त परस्त्रीगामी) की कन्यायें कुलाष्टक कन्यायें कही गई हैं । अब अकुलाष्टक कन्यायें कहता हूँ ॥ ७८-८० ॥

अकुलाष्टक कन्याकथनम्

कल्मषी चैव शौण्डी च शस्त्रजीवी च राक्षसी ।
गोमुखी रजकी शिल्पी वेनकी च तथाष्टमी ॥ ८१ ॥

कल्मषी, शौण्डी (कलावारी), शास्त्रजीवी, राक्षसी, गोमुखी, रजकी, शिल्पी, बेनकी (ढरकारिन)—ये आठ कन्यायें अकुलाष्टक हैं ॥ ८१ ॥

(यद्वा) **गणिका शौण्डिकी चैव कैवर्त्ती रजकी तथा ।**
तन्तुकारी चर्मकारी मातङ्गी पुक्कसी तथा ॥ ८२ ॥

(अथवा) गणिका, शौण्डिकी (कलवारिन्), कैवर्त्ती (मल्लाहिन), रजकी (धोबिन), तन्तुकारी (जुलाहिन), चर्मकारी (चमाइन), मातङ्गी (चाण्डालिन) एवं पुक्कसी (पञ्चमवर्ण की अत्यन्त नीच)—ये आठ कन्यायें अकुलाष्टक कही गई हैं ॥ ८२ ॥

(यद्वा) **नटी कापालिकी वेश्या पुक्कसी योगिनी तथा ।**
रजकी रज्जकी चैव सैरिन्ध्री च विलासिनी ॥ ८३ ॥
खटिका घटिका चैव तथा गोपालकन्यका ।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ॥ ८४ ॥
उक्तजात्यङ्गनाभावे भैरवीं तद्गतां यजेत् ।

अथवा नटी, कापालिकी, वेश्या, पुक्कसी (चाण्डाल से भी नीच), योगिनी, रजकी, रञ्जकी (रङ्गने वाली), सौरिन्ध्री (दासी), विलासिनी, खटिका (खटिक की कन्या), घटिका, गोपाल कन्या, अथवा विशेष रूप से कामभाव प्रगट करने वाली सभी कुलाङ्गनायें अकुलाष्टक कही गई हैं । यदि ऊपर बतलायी गई जाति वाली कन्यायों का अभाव हो, तो साधक केवल भैरवी की उपासना करने वाली शक्ति की पूजा करे ॥ ८३-८५ ॥

शक्तिपूजाविधिः

मन्त्रतन्त्रसमायुक्ताः समयाचारपालिकाः ॥ ८५ ॥
अवीराश्च व्रतपरा योगमुद्राधरास्तथा ।
गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः ॥ ८६ ॥
सङ्गोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सिद्धिदायिकाः ।
दीक्षिता मनुना येन केन मूलेन वा पुनः ॥ ८७ ॥

मन्त्र-तन्त्र को जानने वाली, कौलधर्म के समयों तथा आचारों का पालन करने वाली, अवीरा (पति पुत्रहीना) व्रत परायणा, योग की मुद्रा धारण करने वाली, गुरुभक्ता, देवभक्ता, घृणा और लज्जारहित, अपने को प्रगट न करने वाली ऐसी तरुणी स्त्रियों का पूजन सिद्धि प्रदान करता है अथवा जिस किसी मन्त्र द्वारा

दीक्षित तरुणी की पूजा से सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८५-८७ ॥

वर्ज्या नारीकथनम्

तत्र वर्ज्या च या नारी कथ्यते तन्त्रमार्गतः ।
विकृतां विधवां व्यङ्गीं वृद्धाञ्चैव तपस्विनीम् ॥ ८८ ॥
हीनाङ्गीं हीनवसनां कुटिलां कलहप्रियाम् ।
लोकवेदविरुद्धाञ्च तथा निष्ठुरभाषिणीम् ॥ ८९ ॥
मिथ्याप्रलापनिरतां मिथ्याचारमदोत्सुकाम् ।
ईर्ष्यादिदोषसंयुक्तां प्रमत्ताञ्च विवर्जयेत् ॥ ९० ॥

वर्ज्य कन्यायें—अब जिस प्रकार की नारियाँ पूजा में वर्जित हैं; उन्हें तन्त्र मार्ग के अनुसार कहता हूँ । विकृत (कुरूपा), विधवा, टेढे अङ्ग वाली, वृद्धा, तपस्विनी, हीनाङ्गी, वस्त्र से रहित (नङ्गी), कुटिल, झगड़ालू, लोक वेद से विरुद्ध आचरण करने वाली, निष्ठुरभाषिणी, मिथ्या प्रलाप करने वाली (झूठी), मिथ्या आचरण करने वाली, मद्य के नशे में धुत, ईर्ष्यालु और पागल स्त्रियों की पूजा कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ८८-९० ॥

विकृतास्यामदीक्षितां सविकल्पकमानसाम् ।
वर्षीयसीं पापरतां क्रूरामत्यन्तलोलुपाम् ॥ ९१ ॥
अतर्कमानसां दीनां वर्जयेत् साधकोत्तमः ।
ततः समानयेद् वीरः पूर्वोक्ताष्टकुलोद्भवाम् ॥ ९२ ॥

विकृत मुख वाली, दीक्षारहित, नित्य सन्देह करने वाली, अत्यन्त वृद्धा, पापाचारिणी, अत्यन्त निर्दयी, अत्यन्त लोभ करने वाली, अतर्कमानसा (जिनका विचार ज्ञात न हो) तथा दीन स्वभाव वाली स्त्रियों को उत्तम साधक पूजा में वर्जित करे । इसके बाद विज्ञ साधक पूर्व में बतलायी गई (७८-८०) अष्टकुल वाली कन्याओं को ले आवे ॥ ९१-९२ ॥

अक्रूराञ्च सुरूपाञ्च सालङ्कारां सुदीक्षिताम् ।
घृणाह्रींवर्जितां शान्तां शिववाक्यदृढव्रताम् ॥ ९३ ॥
गुरुदेवपदे भक्तां युवतीं साधिकां पराम् ।
स्वकान्तां परकान्तां वा विदग्धां चारुहासिनीम् ॥ ९४ ॥

जो क्रूरता से रहित, स्वरूपवती, सालङ्काराः, दीक्षा प्राप्त की हुई, घृणा एवं लज्जा रहित, शान्त और शिववाक्य (=कौलाचार) में निष्ठा रखने वाली हों, गुरु और देवता के चरणों में भक्ति रखने वाली हो, युवती एवं उत्कृष्ट साधिका हों, इस प्रकार की चाहे अपनी स्त्री, अथवा पराई स्त्री, अथवा मनोहर हँसने वाली

विदग्धा वेश्या हो, उसे पूजा के लिये ले आवे ॥ ९३-९४ ॥

तस्यै पाद्यादिकं दत्त्वा स्थापयेत्तूलिकोपरि ।
साधयेत् सिद्धिमतुलां साधकः स्थिरमानसः ॥ ९५ ॥

साधक उसे पाद्यादि प्रदान कर रूई के गद्दे पर स्थापित करे और स्थिर चित्त हो उसी से अपनी सिद्धि साधन करे ॥ ९५ ॥

पूजाकाले शुभाः प्रोक्ताः शक्तयः सहजा बुधैः ।
तस्या देहे स्वकल्पोक्तन्यासजालं प्रविन्यसेत् ॥ ९६ ॥

बुद्धिमानों ने पूजा कार्य में सहज (अपनी पत्नी) शक्ति की प्रशंसा की है । उसके शरीर में अपने सम्प्रदायानुसार न्यास करे ॥ ९६ ॥

देवी परा भगवती जगदाधाररूपिणी ।
ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्च योनिरुत्पत्तिकारिणी ॥ ९७ ॥
सा योनिः सर्वभूतानां सृष्टिस्थितिलयात्मिका ।
गुणत्रयसमापन्ना वाक्यत्रयविभाविनी ॥ ९८ ॥
शृङ्गाररूपमापन्ना त्रिकोणाकारतां गता ।
भगरूपेण सर्वेषां भूतानां देहमध्यगा ॥ ९९ ॥
शिवसन्निधिमास्थाय रत्यर्थं लिङ्गरूपिणी ।
सर्वेषां जननी सा तु रत्यर्थं रमणी परा ॥ १०० ॥

जगत् की आधारभूता, परा स्वरूपा, देवी भगवती, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति करने वाली योनि स्वरूपा है । वही योनि सम्पूर्ण प्राणीमात्र की सृष्टि स्थिति तथा लय करने वाली हैं । सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त है । मध्यमा पश्यन्ती और वैखरी वाक्य स्वरूपा है । वह शृङ्गार रूप धारण कर त्रिकोण के आकार में हो गई है तथा त्रिकोणाकार भगरूप से समस्त प्राणियों के शरीर में निवास करती है । शिव सन्निधि प्राप्त कर वही रति के लिये लिङ्ग रूप धारण कर लेती है । वह सभी प्राणियों की माता है और रति के लिये परा स्वरूपा होकर रमणी भी हो जाती है ॥ ९७-१०० ॥

योनिप्रशंसा

पुंसो योनिः स्त्रियो योनिर्भगदा भगरूपिणी ।
यस्यां तु जायते जन्तुस्तस्यां चान्ते प्रलीयते ॥ १०१ ॥

वही पुरुष के जन्म का कारण है । वही स्त्री के जन्म का कारण है । सौभाग्य देने वाली तथा भगरूपिणी है । उसी में जन्तु का जन्म होता है तथा उसी में वह लीन भी हो जाता है ॥ १०१ ॥

त्रिशक्तिसहिता योनिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
देवी भगवती ख्याता भगवांश्च सदाशिवः ॥ १०२ ॥

यह योनि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की जन्मदात्री होने के कारण त्रिशक्ति के सहित है । यह देवी रूप में भगवती आदि नामों से कही जाती है तथा सदाशिव रूप में भगवान् (ऐश्वर्य सम्पन्न) नाम से कहे जाते हैं ॥ १०२ ॥

एकैव परमा देवी भगलिङ्गस्वरूपिणी ।
सर्वेषां योनिरूपेण सा देवी भगरूपिणी ॥ १०३ ॥

यही एक परा देवी भग लिङ्ग दोनों स्वरूपों वाली है । सभी प्राणियों का जन्म देने के कारण वह देवी भगरूपिणी भी है ॥ १०३ ॥

योनिस्था योनिमध्यस्था योनिरूपस्वरूपिणी ।
त्रिकोणा सा त्रिगुणा सा त्रिदैवतमयी परा ॥ १०४ ॥

वह योनि के अन्त में तथा मध्य में रहने वाली योनिस्वरूपिणी है और वही त्रिकोण; वही त्रिगुणा है तथा वही त्रिदेवतामयी परा है ॥ १०४ ॥

संयोगे चातुरी याया पूर्णता पञ्चमी स्मृता ।
तस्माद्योनौ यजेद् देवीं नित्यमानन्दरूपिणीम् ॥ १०५ ॥

वही संयोग के लिये आतुर रहती है । संयोग के पूर्ण हो जाने पर पञ्चमी हो जाती है । इसलिये आनन्दस्वरूपिणी उस परा देवी का यजन योनि में ही करना चाहिये ॥ १०५ ॥

प्रक्षाल्य गन्धतोयेन धूपयित्वाऽम्बुधूपकैः ।
सिन्दूररजसा चैव योनौ चक्रं समालिखेत् ॥ १०६ ॥

साधक गन्धयुक्त जल से योनि का प्रक्षालन करे और धूप से धूपित करे । फिर उस योनि में सिन्दूर के रज से चक्र लिखे ॥ १०६ ॥

स्वकल्पोक्तविधानेन तत्र देवीं प्रपूजयेत् ।
सर्वयोषिन्मये देवि सर्वकामार्थदायिनि ॥ १०७ ॥
कामेश्वरि कामभूते कामुके सन्निधिं कुरु ।
अनेनाऽऽवाहयेद् देवीं स्वीयक्रममथाचरेत् ॥ १०८ ॥

उस चक्र में अपने सम्प्रदायानुसार देवी का पूजन करे । 'सर्वयोषिन्मये..... सन्निधिं कुरु' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर चक्र में देवी का आवाहन करे । तदनन्तर अपने क्रम के अनुसार पूजा करे ॥ १०७-१०८ ॥

पञ्चमीपूजने चैव वर्ज्यं स्वकुलमन्त्रकम् ।
यावत् पुंसां प्रसङ्गोऽत्र तावत् स्वैरं विवर्जयेत् ॥ १०९ ॥

पञ्चमी के पूजन में अपने सम्प्रदायभूत कुल मन्त्रों का उच्चारण न करे । जब तक पुरुष के साथ प्रसङ्ग रहे, तब तक स्वेच्छाचार वर्जित रखे ॥ १०९ ॥

यदि शङ्कास्पदं तत्र तदा देवीं विसर्जयेत् ।
प्रमादाद्यदि पापात्मा तत्सङ्गमनुगच्छति ॥ ११० ॥
तदा कुष्ठीभवेत् सद्यो निन्दितां सिद्धिमाप्नुयात् ।
मद्यं मांसं विना यस्तु कुलपूजां समाचरेत् ॥ १११ ॥
जन्मान्तरसहस्रस्य सुकृतं तस्य नश्यति ।
विधिवत् पूजनं कृत्वा जप्त्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥ ११२ ॥
तस्यां यन्त्रं समालिख्य पुनस्तस्यां निवेदयेत् ।
यावत् सा विह्वला न स्यात्तावत्तां न विसर्जयेत् ॥ ११३ ॥

यदि शङ्का हो तो उसी समय देवी का विसर्जन कर देवे । यदि पापबुद्धि से वह पापात्मा साधक उसके साथ सङ्गम करता है । तब वह सद्यः कोढ़ी हो जाता है और निन्दित सिद्धि प्राप्त करता है । जो मद्य, मांस के बिना कुलपूजा करता है; उसके हजारों जन्म के किये गये समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार विधिवत् पूजन, जप, स्तुति तथा प्रणाम कर उसी में यन्त्र लिखना चाहिए । फिर उसी में समर्पण करना चाहिए । जब तक यह देवी विह्वल न हो जाय, तब तक उसका विसर्जन नहीं करना चाहिए ॥ ११०-११३ ॥

विसर्जनं विधायैव शक्तीच्छा यदि विद्यते ।
तस्या आज्ञां गृहीत्वा तु रेत् मै नं र्व च वन् थु पू ॥ ११४ ॥
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
मद्यं मांसं तथा चान्यं यत्किञ्चित् कुलसाधनम् ॥ ११५ ॥
तस्यै दत्त्वा ततः शेषं गुरवे विनिवेद्य च ।
तदनुज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा शेषमात्मनि योजयेत् ॥ ११६ ॥

यदि शक्ति की इच्छा हो तो उसका विसर्जन कर देवे । फिर उसकी आज्ञा लेकर (पूर्ववत् मैथुनं चरेत्) पूर्ववत् स्त्री सङ्गम करते हुये जप करे । शेष कार्य पूर्व की तरह सम्पादन करे । कुल पूजा के साधनभूत मद्य, मांस तथा अन्य यत्किञ्चिद् पदार्थ पहले उस शक्ती को देवे । फिर गुरु को निवेदन करे । फिर उनकी आज्ञा लेकर स्वयं अपने ग्रहण करे ॥ ११४-११६ ॥

शक्तये दक्षिणां दत्त्वा सोऽहं सच्चिन्तयेत्ततः ।

कुलपूजनमेतत्तु कथितं सिद्धिहेतवे ॥ ११७ ॥

तदनन्तर शक्ति को दक्षिणा देकर 'सोऽहम्' मन्त्र का ध्यान करे । इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करने के लिये हमने कुल पूजन का विधान कहा ॥ ११७ ॥

देवीयजनविधानम्

सङ्क्षेपयजनं वक्ष्ये यथा तन्त्रानुसारतः ।
आलिङ्गनं भवेन्यासश्चुम्बनं ध्यानमीरितम् ॥ ११८ ॥

देवी यजन निरूपण—अब कौलागमतन्त्र के अनुसार संक्षेप में देवीयजन का प्रकार आपको कहता हूँ । देवी का आलिङ्गन, न्यास, चुम्बन एवं ध्यान बतलाया गया है ॥ ११८ ॥

शीत्कारं यजनं प्रोक्तं नैवेद्यं नखलेखनम् ।
पानं जिह्वामृतं ज्ञेयं रमणञ्च जपो भवेत् ॥ ११९ ॥

देवी का शीत्कार यजन है । स्तनादि पर नखक्षतादि नैवेद्य है । जिह्वामृत का स्वाद पान है और रमण यह जप कहा गया है ॥ ११९ ॥

आनन्दस्तवनं विद्धि रेतःपातो विसर्जनम् ।
अद्वैतज्ञानमाश्रित्य सदा देवीं समर्चयेत् ॥ १२० ॥

रति में प्राप्त होने वाला आनन्द ही स्तुति है और रेतःपात विसर्जन है । इस प्रकार अद्वैतज्ञान का आश्रय लेकर सर्वदा देवी का अर्चन करे ॥ १२० ॥

अश्वमेधशतेनापि ब्रह्महत्याशतेन वा ।
पुण्यपापैर्न लिप्यन्ते येषां ब्रह्म हृदि स्थितम् ॥ १२१ ॥

जिनके हृदय में परब्रह्म विराजमान हैं, वे सौ अश्वमेध के पुण्य से तथा सैकड़ों ब्रह्महत्या के पाप से लिप्त नहीं होते ॥ १२१ ॥

पृथिव्यां यानि कर्माणि जिह्वोपस्थनिमित्तकम् ।
जिह्वोपस्थपरित्यागी कर्मणा किं करिष्यति ॥ १२२ ॥

इस पृथ्वी में जितने भी कर्म किये जाते हैं, उनमें जिह्वा और उपस्थ दो ही निमित्त माने गये हैं । किन्तु जिसने जिह्वा और उपस्थ का परित्याग कर दिया है । वह कर्म कर के भी क्या करेगा ? ॥ १२२ ॥

तावत् कर्माणि कुर्वीत यावज्ज्ञानं न जायते ।
पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः ॥ १२३ ॥
जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः ।

नहि ध्यानात् परो मन्त्रो न देवस्त्वात्मनः परः ॥ १२४ ॥

जब तक ज्ञान नहीं होता, तभी तक कर्म करने की आवश्यकता है । करोड़ों पूजा के समान स्तोत्र हैं, करोड़ों स्तोत्रों के समान जप है, करोड़ों जप के समान ध्यान है करोड़ों ध्यान के समान लय है । ध्यान से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं और आत्मा को छोड़कर कोई देवता नहीं ॥ १२३-१२४ ॥

नानुसन्धात् परा पूजा न हि तृप्तेः परं फलम् ।
मन्त्रोदकैर्विना सन्ध्यां जपहोमैर्विना तपः ॥ १२५ ॥
उपचारैर्विना पूजां योगी नित्यं समाचरेत् ।
देहो देवालयो देवि जीवो देवः सदाशिवः ॥ १२६ ॥

ब्रह्मज्ञानी योगी बिना सामग्री सम्पादन के परा की पूजा कर लेता है और बिना तृप्त किये समस्त फल प्राप्त कर लेता है, बिना मन्त्र और बिना जल के सन्ध्या कर लेता है । किं बहुना, जप होम बिना किये ही उसका तप हो जाता है। बिना उपचार के ही वह समस्त पूजा कर लेता है । हे देवि! यह शरीर देवालय है, जीव देव है और सदाशिव है ॥ १२५-१२६ ॥

त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहम्भावेन पूजयेत् ।
जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः॥ १२७ ॥

योगी अज्ञान का निर्माल्य त्याग देवे और 'सोऽहं' भाव से भगवती परा की पूजा करे । जीव शिव है, शिव जीव है और वही जीव केवल शिव है ॥ १२७ ॥

पाशबद्धः पशुः, पाशमुक्तः शिवः

पाशबद्धः पशुर्देवि पाशमुक्तः सदाशिवः ।
तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यात् तुषाभावे तु तण्डुलम् ॥ १२८ ॥

हे देवि ! पाश से बद्ध पशु है । पाश से मुक्त सदाशिव है । जब तक तुष (भूसी) से युक्त है, तब तक ब्रीहि है । किन्तु जब वह तुष (भूसी) से रहित हो जाता है, तब केवल चावल कहा जाता है ॥ १२८ ॥

कर्मबद्धः सदा जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ।
ध्यायतां क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमं त्विह ॥ १२९ ॥
यद्भवेत्तन्महापुण्यं तस्यान्तो नैव गम्यते ।
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥
तत्सर्वं पातकं हन्यात्तमः सूर्योदये यथा ॥ १३० ॥

जो कर्म में बँधा है वह जीव है, जो सर्वथा कर्म से मुक्त है वह सदाशिव है।

अत्यन्त श्रद्धा के साथ क्षणमात्र ध्यान करने वाले योगियों को जितना बड़ा पुण्य होता है, उसका अन्त नहीं होता। जो क्षणमात्र भी 'अहं ब्रह्मास्मि' का ध्यान करता है, वह ध्यान करने वाले का सारा पाप इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे सूर्य का उदय संसार के सारे अन्धकार को नष्ट कर देता है ॥ १२९-१३० ॥

योगीन्द्रलक्षणम्

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलैः दत्ता च पृथ्वी द्विजे
नूनं तेन सुतर्पिताश्च पितरो देवाश्च सम्पूजिताः ।
यज्ञानाञ्च सहस्त्रमेवमखिलं तेनैव सर्वं कृतं
यस्य ब्रह्म विचारणे क्षणमपि प्राप्तञ्च धैर्यं मनः ॥ १३१ ॥

ब्रह्म ध्यान में निमग्न जिस योगी का एक क्षण के लिये भी मन स्थिर हो गया, उसने समस्त तीर्थों के जल से स्नान कर लिया और समस्त पृथ्वी का दान ब्राह्मण को कर दिया। निश्चय ही उसके पितृगण भली प्रकार से तृप्त हो गये और उसने देवताओं का पूजन कर लिया। किं बहुना, उसने समस्त यज्ञ हजारों बार सम्पादन कर लिया ॥ १३१ ॥

व्रतक्रतु तपस्तीर्थदानदेवार्चनादिषु ।
यत्फलं कोटिगुणितं तदेवाप्नोति तत्त्ववित् ॥ १३२ ॥

तत्त्ववेत्ता योगी को व्रत, क्रतु, तप, तीर्थ, दान एवं देवार्चन के करने से जितना फल होता है उसका करोड़ गुना फल उसे ब्रह्मध्यान से स्वयं प्राप्त हो जाता है ॥ १३२ ॥

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा ।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाऽधमाधमा ॥ १३३ ॥

सहजावस्था उत्तमा कही जाती है। ध्यान, धारणा मध्यमावस्था है। जप, स्तुति, अधमा तथा होम पूजा अधमाधमावस्था कही गई है ॥ १३३ ॥

उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्याज्जपचिन्ता तु मध्यमा ।
शास्त्रचिन्ताऽधमा ज्ञेया लोकचिन्ताऽधमाधमा ॥ १३४ ॥

तत्त्व चिन्ता उत्तमा, जप चिन्ता मध्यमा, शास्त्र चिन्ता अधमा और लोक चिन्ता अधमाऽधमा जानना चाहिये ॥ १३४ ॥

यो निन्दास्तुतिशीलेषु सुखदुःखारिबन्धुषु ।
समश्चेत् स तु योगीन्द्रो हर्षाहर्षविवर्जितः ॥ १३५ ॥

जो निन्दा या स्तुति करने वालों में सुख-दुःख और शत्रु-बन्धु में हर्ष-द्वेष भाव

नहि ध्यानात् परो मन्त्रो न देवस्त्वात्मनः परः ॥ १२४ ॥

जब तक ज्ञान नहीं होता, तभी तक कर्म करने की आवश्यकता है। करोड़ों पूजा के समान स्तोत्र हैं, करोड़ों स्तोत्रों के समान जप है, करोड़ों जप के समान ध्यान है करोड़ों ध्यान के समान लय है। ध्यान से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं और आत्मा को छोड़कर कोई देवता नहीं ॥ १२३-१२४ ॥

नानुसन्धात् परा पूजा न हि तृप्तेः परं फलम् ।
मन्त्रोदकैर्विना सन्ध्यां जपहोमैर्विना तपः ॥ १२५ ॥
उपचारैर्विना पूजां योगी नित्यं समाचरेत् ।
देहो देवालयो देवि जीवो देवः सदाशिवः ॥ १२६ ॥

ब्रह्मज्ञानी योगी बिना सामग्री सम्पादन के परा की पूजा कर लेता है और बिना तृप्त किये समस्त फल प्राप्त कर लेता है, बिना मन्त्र और बिना जल के सन्ध्या कर लेता है। किं बहुना, जप होम बिना किये ही उसका तप हो जाता है। बिना उपचार के ही वह समस्त पूजा कर लेता है। हे देवि! यह शरीर देवालय है, जीव देव है और सदाशिव है ॥ १२५-१२६ ॥

त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहम्भावेन पूजयेत् ।
जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः॥ १२७ ॥

योगी अज्ञान का निर्माल्य त्याग देवे और 'सोऽहं' भाव से भगवती परा की पूजा करे। जीव शिव है, शिव जीव है और वही जीव केवल शिव है ॥ १२७ ॥

पाशबद्धः पशुः, पाशमुक्तः शिवः

पाशबद्धः पशुर्देवि पाशमुक्तः सदाशिवः ।
तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यात् तुषाभावे तु तण्डुलम् ॥ १२८ ॥

हे देवि ! पाश से बद्ध पशु है। पाश से मुक्त सदाशिव है। जब तक तुष (भूसी) से युक्त है, तब तक ब्रीहि है। किन्तु जब वह तुष (भूसी) से रहित हो जाता है, तब केवल चावल कहा जाता है ॥ १२८ ॥

कर्मबद्धः सदा जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ।
ध्यायतां क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमं त्विह ॥ १२९ ॥
यद्भवेत्तन्महापुण्यं तस्यान्तो नैव गम्यते ।
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥
तत्सर्वं पातकं हन्यात्तमः सूर्योदये यथा ॥ १३० ॥

जो कर्म में बँधा है वह जीव है, जो सर्वथा कर्म से मुक्त है वह सदाशिव है।

अत्यन्त श्रद्धा के साथ क्षणमात्र ध्यान करने वाले योगियों को जितना बड़ा पुण्य होता है, उसका अन्त नहीं होता । जो क्षणमात्र भी 'अहं ब्रह्मास्मि' का ध्यान करता है, वह ध्यान करने वाले का सारा पाप इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे सूर्य का उदय संसार के सारे अन्धकार को नष्ट कर देता है ॥ १२९-१३० ॥

योगीन्द्रलक्षणम्

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलैः दत्ता च पृथ्वी द्विजे
नूनं तेन सुतर्पिताश्च पितरो देवाश्च सम्पूजिताः ।
यज्ञानाञ्च सहस्रमेवमखिलं तेनैव सर्वं कृतं
यस्य ब्रह्म विचारणे क्षणमपि प्राप्तञ्च धैर्यं मनः ॥ १३१ ॥

ब्रह्म ध्यान में निमग्न जिस योगी का एक क्षण के लिये भी मन स्थिर हो गया, उसने समस्त तीर्थों के जल से स्नान कर लिया और समस्त पृथ्वी का दान ब्राह्मण को कर दिया । निश्चय ही उसके पितृगण भली प्रकार से तृप्त हो गये और उसने देवताओं का पूजन कर लिया । किं बहुना, उसने समस्त यज्ञ हजारों बार सम्पादन कर लिया ॥ १३१ ॥

व्रतक्रतु तपस्तीर्थदानदेवार्चनादिषु ।
यत्फलं कोटिगुणितं तदेवाप्नोति तत्त्ववित् ॥ १३२ ॥

तत्त्ववेत्ता योगी को व्रत, क्रतु, तप, तीर्थ, दान एवं देवार्चन के करने से जितना फल होता है उसका करोड़ गुना फल उसे ब्रह्मध्यान से स्वयं प्राप्त हो जाता है ॥ १३२ ॥

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा ।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाऽधमाधमा ॥ १३३ ॥

सहजावस्था उत्तमा कही जाती है । ध्यान, धारणा मध्यमावस्था है । जप, स्तुति, अधमा तथा होम पूजा अधमाधमावस्था कही गई है ॥ १३३ ॥

उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्याज्जपचिन्ता तु मध्यमा ।
शास्त्रचिन्ताऽधमा ज्ञेया लोकचिन्ताऽधमाधमा ॥ १३४ ॥

तत्त्व चिन्ता उत्तमा, जप चिन्ता मध्यमा, शास्त्र चिन्ता अधमा और लोक चिन्ता अधमाऽधमा जानना चाहिये ॥ १३४ ॥

यो निन्दास्तुतिशीलेषु सुखदुःखारिबन्धुषु ।
समश्चेत् स तु योगीन्द्रो हर्षाहर्षविवर्जितः ॥ १३५ ॥

जो निन्दा या स्तुति करने वालों में सुख-दुःख और शत्रु-बन्धु में हर्ष-द्वेष भाव

त्याग कर समदृष्टि रखता है, वही योगीन्द्र है ॥ १३५ ॥

निस्पृहो नित्यसन्तुष्टः समदर्शी जितेन्द्रियः ।
आस्ते देहे प्रवासीव स योगी परतत्त्ववित् ॥ १३६ ॥

जो सर्वथा निःस्पृह, नित्य सन्तुष्ट, समदर्शी और जितेन्द्रिय है और देह में प्रवासी के समान निवास करता है, वह परतत्त्ववेत्ता योगी है ॥ १३६ ॥

निःसङ्कल्पो निर्विकल्पो निर्जितोपाधिवासनः ।
निजस्वरूपनिर्मग्नः स योगी परतत्त्ववित् ॥ १३७ ॥

जो सङ्कल्परहित एवं विकल्परहित है, जिसने वासनारूपी उपाधि पर विजय प्राप्त कर लिया है, जो निरन्तर अपने स्वरूप में ही निमग्न रहता है वही परतत्त्ववेत्ता महान् योगी है ॥ १३७ ॥

यथा पङ्ग्वन्धबधिरक्लीवोन्मत्तजडादयः ।
निवसन्ति च सर्वत्र स योगी परमो मतः ॥ १३८ ॥

जिस प्रकार लंगड़े, अन्धे, बधिर, क्लीव, उन्मत्त और जड़ सब जगह रहते हैं, उसी प्रकार से सर्वत्र रहने वाला योगी सर्वोत्कृष्ट योगी है ॥ १३८ ॥

पञ्चमुद्रासमुत्पन्नः परमानन्दनिर्भरः ।
य आस्ते स तु योगीन्द्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १३९ ॥

पञ्चमुद्रा से उत्पन्न होने वाले परमानन्द में जो परिपूर्ण रहता है और सर्वत्र सभी आत्मा में अपने को देखता है वही योगीन्द्र है ॥ १३९ ॥

येन युक्तेन मनसा प्रसन्ना चण्डिका भवेत् ।
तेन सन्तुष्टहृदयैः सेव्या देवी न संशयः ॥ १४० ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

जिनके द्वारा भगवती चण्डिका प्रसन्न हों, उस वस्तु से सन्तुष्ट हृदय वाले भक्तजन भगवती की सेवा करें । इसमें संशय कदापि न करे ॥ १४० ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के नवम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

दशम उल्लासः

कौलाचारविधानम्

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यथातन्त्रानुसारतः ।
सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारतत्परः ॥ १ ॥

अब तन्त्र मार्ग के अनुसार कौलाचार का वर्णन करता हूँ । सदाचारी कौल साधक समस्त प्राणियों के हित में लगा रहे और कौलों के समय (=विधि-विधान) तथा आचार में तत्पर रहे ॥ १ ॥

समयाचारकथनम्

अनित्यकर्मसन्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः ।
मन्त्रधारणमात्रेण शिवभावेन तत्परः ॥ २ ॥

अनित्यकर्म का त्याग करे । नित्यकर्मानुष्ठान तत्परतापूर्वक कर मन्त्र के धारण मात्र से शिवभाव में लीन रहे ॥ २ ॥

परस्यां देवतायां तु सर्वकर्मनिवेदकः ।
येषाञ्च निश्चलाभक्तिर्गुरौ देवे मनावपि ॥ ३ ॥
तेषां सिद्धिर्भवेदाशु नान्यथा कल्पकोटिषु ।

गुरुमाहात्म्यम्

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ ४ ॥
गुरुर्मनुर्गुरुर्जापो गुरुरेव परन्तपः ।
तेषां सिद्धिर्भवेदाशु नाभक्तस्य कदाचन ॥ ५ ॥

अपना सभी कर्म पर देवता में अर्पण करे । जिनकी भक्ति गुरु देवता और मन्त्र में निश्चल है, कभी विचलित नहीं होती, उनको शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है अन्यथा करोड़ों कल्पों में भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती । गुरु महात्म्य-जिनके लिये गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु स्वरूप है तथा महेश्वर हैं । गुरु ही मन्त्र है, गुरु ही जप हैं, गुरु ही श्रेष्ठ तप हैं । उनको शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है, किन्तु जो गुरुभक्त नहीं हैं उसे कदापि सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥ ३-५ ॥

प्रातरेव गुरुं ध्यायेत् ब्रह्मरन्ध्रे च साधकः ।
सम्पूज्य सकलं कर्म कुर्यात्तस्याऽऽज्ञया सदा ॥ ६ ॥

साधक प्रात:काल में ही ब्रह्मरन्ध्र में गुरु का ध्यान करे । उनका पूजन कर उनकी आज्ञा लेकर समस्त कर्म सम्पादन करे ॥ ६ ॥

विंशतिः पुरुषान् वापि सप्त पञ्चत्रयोऽपि वा ।
अज्ञात्वा गुरुवंशानां शिष्यश्चेन्नष्टसन्ततिः ॥ ७ ॥

जो शिष्य गुरु के वंशों में २१ पुस्त, सात पुस्त, अथवा पाँच पुस्त, अथवा तीन पुस्त तक नाम नहीं जानता, उसकी सन्तति नष्ट हो जाती है ॥ ७ ॥

गुरुवंशगौरवम्

ध्यात्वा गुरुकुलं नैव नष्टमार्गो भविष्यति ।
नष्टमार्गान् मन्त्रविद्ये न तादृक्सिद्धिगोचरे ॥ ८ ॥

गुरुकुलों का ध्यान करने से शिष्य के मार्ग का नाश नहीं होता । जिनके मार्ग नष्ट हो जाते हैं, उनकी मन्त्र और विद्या दोनों ही सिद्धि प्रदान नहीं करतीं ॥ ८ ॥

गुरूणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् सन्ततिक्रमः ।
तन्त्रमन्त्राश्च विद्याश्च निष्फला नात्र संशयः ॥ ९ ॥

यदि गुरुओं एवं उनके शिष्यों में सन्तति क्रम नहीं (निर्वंश) है तो उनके तन्त्र, मन्त्र और विद्यायें निष्फल हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ९ ॥

स्ववंशादधिको ज्ञेयो गुरुवंशः शुभावहः ।
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् मन्त्रदः पिता ॥ १० ॥

अपने वंश की अपेक्षा गुरु वंश अधिक कल्याणकारी होता है । जन्म देने वाले पिता और मन्त्र देने वाले गुरु में गुरु ही श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ १० ॥

अस्मान् मन्येत सततं पितुरप्यधिकं गुरुम् ।
गमनं पूजनं स्वप्नं भोजनं रमणं तथा ॥ ११ ॥
गृहीत्वाऽऽज्ञां गुरोः कुर्यात्तस्य सिद्धिर्विना जपात् ।

इस कारण साधक को अपने पिता की अपेक्षा मन्त्र देने वाले गुरु का अधिक सम्मान करना चाहिये । साधक जाना-आना, पूजा, शयन, भोजन एवं रमण गुरु की आज्ञा लेकर ही सम्पादन करे । ऐसे साधक शिष्य को बिना जप के ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ११-१२ ॥

गुरौ मनुष्यबुद्धिञ्च मन्त्रे चाक्षरभावनाम् ॥ १२ ॥

प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ।
गुरौ मानुषबुद्ध्या न पश्येत् शिष्यः कदाचन ॥ १३ ॥

गुरु में मनुष्य बुद्धि रखने वाला, मन्त्र में अक्षर की भावना वाला और देव प्रतिमाओं में प्रस्तर बुद्धि रखने वाला साधक नरकगामी होता है । शिष्य गुरु को मनुष्य बुद्धि से कदापि न देखे ॥ १२-१३ ॥

कदाचिन्न लभेत् सिद्धिं मन्त्रैर्वा देवतार्चनैः ।
श्रीगुरुं प्राकृतैः सार्द्धं ये स्मरन्ति वदन्ति च ॥ १४ ॥

जो मन्त्री साधक गुरु को साधारण मनुष्य के समान देखते हैं अथवा स्मरण करते हैं, या बातचीत करते हैं, उन्हें मात्र मन्त्र से अथवा देवतार्चन से सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥ १४ ॥

तेषां हि सुकृतं सर्वं पातकं भवति क्षणात् ।
चापल्यं परिहासञ्च गुरोः साक्षाद्विवर्जयेत् ॥ १५ ॥

जो इस प्रकार गुरु को देखते हैं उनके समस्त सुकृत पाप रूप में परिणत हो जाते हैं । अतः गुरु के सामने चपलता तथा परिहास न करे ॥ १५ ॥

वृथा तु पूजनं मुद्रा क्रियते मन्दबुद्धिभिः ।
श्रीगुरौ संस्थिते साक्षात् किं वृथा ध्यानयोगतः ॥ १६ ॥

जब गुरु स्वयं सामने विद्यमान रहें, तो मन्द बुद्धि वाले व्यर्थ ही पूजा और मुद्रा प्रदर्शित करते हैं । इसलिए जब गुरु प्रत्यक्ष विद्यमान है तब ध्यान और योग व्यर्थ है ॥ १६ ॥

गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यदेवताम् ।
स याति नरकं घोरं सा पूजा विफला भवेत् ॥ १७ ॥

गुरु के सन्निधान में जो अन्य देवताओं का पूजन करता है, वह नरक जाता है और उसकी सारी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥ १७ ॥

यतः सर्वत्र मन्त्राणां गुरुपूजा गरीयसी ।
तदग्रे मन्त्रतन्त्राणां भाषणं नैव कारयेत् ॥ १८ ॥

यतः सभी मन्त्रों की अपेक्षा गुरुपूजा अत्यन्त श्रेष्ठ है । अतः गुरु के आगे मन्त्र तन्त्रों का व्याख्यान न करे ॥ १८ ॥

पूजिते गुरुपादे वै सर्वदेवः सुखी भवेत् ।
सर्वेषां मन्त्रतन्त्राणां पिताऽसौ यः सदाशिवः ॥ १९ ॥

गुरुपाद की पूजा कर लेने मात्र से सभी देवता सुखी हो जाते हैं । क्योंकि गुरु सभी मन्त्र तन्त्रों के पिता हैं और वही सदाशिव हैं ॥ १९ ॥

अन्यदेवसपर्या वा अन्यदेवस्य कीर्तनम् ।
गुरुदेवं विना चैव तदग्रे नरकं व्रजेत् ॥ २० ॥

जो गुरुदेव की सपर्या त्याग कर उनके आगे ही अन्य देव का पूजन करता है, या अन्य देव का कीर्त्तन करता है, वह नरकगामी होता है ॥ २० ॥

गुरोः प्रीतिकरं कर्म यः कुर्यात् साधकोत्तमः ।
तस्याऽऽशु सिद्धयः सर्वाः सन्ति पादतले सदा ॥ २१ ॥

जो उत्तम साधक गुरु को प्रसन्न करने वाले समस्त कर्मों को करता है, उसके पैर के नीचे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है ॥ २१ ॥

कायेन मनसा वाचा यो भक्तश्चरणे गुरोः ।
तस्य सिद्धिर्भवेदाशु पूजाहोमजपादृते ॥ २२ ॥

शरीर, मन और वाणी से जो भक्त गुरु के चरणों में भक्ति रखता है, पूजा एवं होम के बिना भी उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २२ ॥

गुरुभक्तिविहीनश्चेत् हानिस्तस्य पदे पदे ।
प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा प्रत्यहं प्रणमेद् गुरुम् ॥ २३ ॥

जो गुरु में भक्ति नहीं रखता, उसे पद पद पर हानि उठानी पड़ती है । चाहे गुरु प्रत्यक्ष हों, चाहे परोक्ष हों, गुरु को नित्य प्रणाम करना चाहिये ॥ २३ ॥

गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यञ्च विवर्जयेत् ।
दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वञ्च गुरोरग्रे न कारयेत् ॥ २४ ॥

गुरु के प्रत्यक्ष रहने पर किसी अन्य की पृथक् पूजा न करे । उच्छृङ्खलता न करे, किसी को दीक्षा न दे, शास्त्रीय व्याख्यान तथा अपना प्रभुत्व गुरु के सामने प्रगट न करे ॥ २४ ॥

सर्वथा तुष्टिमुत्पाद्य गुरोः प्रसादमालभेत् ।
ऋणदानं तथाऽऽदानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ॥ २५ ॥
न कुर्याद् गुरुणा सार्द्धं शिष्योऽपि च कदाचन ।
आज्ञाभङ्गोऽर्थहरणं गुरोरप्रियवर्तनम् ॥ २६ ॥

गुरु को सन्तुष्ट कर उनकी प्रसन्नता प्राप्त करे । गुरु के साथ कर्जे का लेनदेन वस्तुओं का क्रय-विक्रय शिष्य कदापि न करे । गुरु की आज्ञा न टाले,

उनका धन न लेवे । गुरु से अप्रिय व्यवहार न करे ॥ २५-२६ ॥

गुरुद्रोहमिदं प्राहुः यः कुर्यात् स च पातकी ।
स्नेहद्रव्यनियोगञ्च नाऽनिवेद्य गुरौ चरेत् ॥ २७ ॥

ऐसा करना साक्षाद् गुरुद्रोह ही कहा गया है, अतः जो ऐसा करता है । वह पापी है गुरु के द्वारा चाही जाने वाली वस्तु तथा द्रव्यादि गुरु को ही समर्पित करे । बिना उनके समर्पण के स्वयं उसका उपयोग न करे ॥ २७ ॥

अनिवेद्य तु यः कुर्यात् स भवेद् ब्रह्मघातकः ।
गुरुनाम न भाषेत जपकालादृते क्वचित् ॥ २८ ॥

जो साधक बिना निवेदन किये गुरु के अभीष्ट द्रव्य का स्वयं उपयोग करता है, वह ब्रह्मघातक है, इसलिए जपकाल के अतिरिक्त और किसी काल में गुरु का नाम न लेवे ॥ २८ ॥

श्रीनाथ देव स्वामीत्यभिवादे साधने वदेत् ।
गुरुं तुङ्कृत्य हुङ्कृत्य वाचा निर्भर्त्स्यं यः कदा॥ २९ ॥

अभिवादन करते समय; अथवा साधन काल में श्रीनाथदेव तथा स्वामी इत्यादि पद से गुरु को सम्बोधित करना चाहिए । जो गुरु को त्वं शब्द से, हुङ्कार शब्द से तथा वाणी से धमकाता है, वह कुत्सित होता है । पता नहीं वह किस दुर्गति को प्राप्त करेगा ॥ २९ ॥

देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताः ।
सिद्धिं सिद्धाधिवासांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत् ॥ ३० ॥

देवता, गुरु, गुरुस्थान, क्षेत्र, क्षेत्राधिदेवता, सिद्धि तथा सिद्धि का अधिवास स्थान इनके पूर्व में श्री शब्द लगाकर बोलना चाहिये ॥ ३० ॥

विकल्प्य कुलशास्त्राणि भवन्ति कुलराक्षसाः ।
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुञ्चावमानयेत् ॥ ३१ ॥
शुनो योनिशतं गत्वा चण्डालत्वमवाप्नुयात् ।
गुर्वग्रे न तपः कुर्यान्नोपवासव्रतादिकम् ॥ ३२ ॥

जो इस प्रकार के कुल शास्त्रों का खण्डन करता है, वह कुल राक्षस होता है जो एकाक्षर प्रदान करने वाले गुरु की भी अवमानना करता है, वह सौ जन्म पर्यन्त कुत्ता बनकर चाण्डाल के घर जन्म लेता है । गुरु के आगे तपस्या न करे, उपवास न करे और व्रतादि भी न करे ॥ ३१-३२ ॥

तीर्थयात्राञ्च यः कुर्यान्न कुर्यादात्मशुद्धये ।

न नियोगं गुरोर्दद्याद् दुष्टतां न विभावयेत् ॥ ३३ ॥

गुरु के रहते आत्मशुद्धि के लिये तीर्थ यात्रा न करे । गुरु को आज्ञा न देवे और उनसे किसी प्रकार की दुष्टता न करे ॥ ३३ ॥

यस्मिन् द्रव्ये गुरोरस्ति स्पृहा नानुभवेत्ततः ।
अवश्यं यदि वाञ्छा स्यादनुभूयात्तदाज्ञया ॥ ३४ ॥

जिस द्रव्य में गुरु की इच्छा उत्पन्न हो गई हो, उसका उपयोग स्वयं अपने लिये न करे । यदि स्वयं भी उस वस्तु के उपयोग में स्पृहा उत्पन्न हो गई हो, तो उनकी आज्ञा लेकर ही उपयोग करे ॥ ३४ ॥

यस्तिलार्धं तदर्धं वा गुरुस्वमुपजीवति ।
मोहाल्लोभात् पतेद्यस्तु नरके च त्रिसप्तके ॥ ३५ ॥
बह्वल्पं हि गुरोर्द्रव्यं अदत्तं स्वीकरोति यः ।
तिरश्चां योनिमालम्ब्य क्रव्यादैर्भक्ष्यते सदा ॥ ३६ ॥

जो शिष्य लोभवश अथवा मोहवश गुरु के तिलमात्र, अथवा उसके भी आधे मात्र गुरु के धन का उपयोग कर जीता है, वह पतित होता है और इक्कीस नरकों में जाता है । जो गुरु का धन उनके बिना दिये हुये चोरी से अपने उपयोग में लाता है, वह तिर्यक् योनि में जन्म लेकर मांसभक्षी पशुओं के द्वारा भक्षण किया जाता है ॥ ३५-३६ ॥

गुरुद्रव्याभिलाषी च गुरुस्त्रीगमनोत्सुकः ।
पतितस्यापि तस्यापि प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३७ ॥

जो मन्त्री साधक गुरु के द्रव्य की अभिलाषा करता है; अथवा गुरु की स्त्री में सम्भोग की कामना करता है, ऐसे पतित एवं कामी साधक के लिये धर्मशास्त्रों में कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३७ ॥

तत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात् ।
गोब्राह्मणवधं कृत्वा यत्पापं समवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥

गौ एवं ब्राह्मण का वध करने से जितना पाप लगता है, उतना पाप गुरु के सामने झूठ बोलने से लगता है । इसलिये गुरु से झूठ न बोले ॥ ३८ ॥

शक्तिच्छायां गुरुच्छायां देवच्छायां न लङ्घयेत् ।
यद्यत्र गुरुणा सार्द्धं स्वपित्युपविशेत्तु यः ॥ ३९ ॥
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

शक्ति (स्त्री) की छाया, गुरु की छाया तथा देवता की छाया का लङ्घन न

करे। जो अपने पिता को गुरु के साथ एक आसन पर बैठाता है वह तब तक घोर नरक प्राप्त करता है जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ३९-४० ॥

गुरुवाक्यहतं कृत्वा आत्मवाक्यं तु रोपयेत् ॥ ४० ॥
गुरुं जेतुं मनो यस्य पच्यते नरकार्णवे ।
अनेकधा पशोरन्नं भुञ्जते ये च कौलिकाः ॥ ४१ ॥
तेभ्यः प्रकुप्यते' देवी तत्सङ्गं नैव कारयेत् ।
लक्षत्रयञ्जपेल्लोपां लक्षं वाऽप्यजपां जपेत् ॥ ४२ ॥

जो साधक गुरु की बात काटकर अपनी बात प्रतिष्ठापित करता है, अथवा शास्त्रार्थ में गुरु को भी जीतने की इच्छा करता है वह घोर नरक में पड़ता है । जो कौलिक अनेक प्रकार के पशुओं का अन्न भोजन करते हैं, देवी उन पर क्रोध करती हैं । अतः साधक उनका सङ्ग न करे । यदि किसी प्रकार यह पाप हो जाय तो तीन लाख लोपा (मुद्रा) का जप करे, अथवा एक लाख अजपा (हंसः सोऽहं) का जप करे ॥ ४०-४२ ॥

होमयेद्धविषाऽऽज्येन निष्पापः स्यात्तदा ध्रुवम् ।
गुरुणाऽऽलोकितः शिष्य उत्तिष्ठेदासनं त्यजेत् ॥ ४३ ॥

हविष्य अन्न से हवन करे, तो साधक निश्चय ही पाप रहित हो जाता है । गुरु द्वारा देखे जाने पर साधक आसन का त्याग कर उठ जावे ॥ ४२ ॥

गुरुणा सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लङ्घयेत् ।
रभसं मैथुनं मिथ्या यो वदेद् गुरुमन्दिरे ॥ ४४ ॥
स याति नरकं घोरं शम्भुना परिभाषितम् ।
न विशेदासने धीरो देवतागुरुसन्निधौ ॥ ४५ ॥

गुरु जो भी अच्छा बुरा कहे, उसका लङ्घन न करे । जो गुरु के घर में रहकर बलात्कार करता है, मैथुन करता है, अथवा झूठ बोलता है, वह घोर नरक में जाता है, ऐसा शम्भु ने कहा है । देवता और गुरु के सन्निधान में धीर साधक आसन पर न बैठे ॥ ४४-४५ ॥

गुरोः सिंहासनं देयं ज्येष्ठानामुत्तमासनम् ।
देश्यासनं कनिष्ठानामितरेषां समासनम् ॥ ४६ ॥

गुरु को सिंहासन देवे । अपने से ज्येष्ठ को तथा आचार्य को उत्तम आसन प्रदान करे । अपने से छोटे तथा इतर लोगों को अपने ही समान आसन पर बैठावे ॥ ४६ ॥

रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं दैवतं गुरुम् ।
फलपुष्पादिकं नीत्वा यथा शक्त्या समर्पयेत् ॥ ४७ ॥

राजा, देवता और गुरु का दर्शन रिक्त हाथ से न करे । अपनी शक्ति के अनुसार फलपुष्पादि समर्पित करे ॥ ४७ ॥

एवं यो नाचरेन्मन्त्री ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत् ।
आलिङ्गनप्रदानेन गुरौ तुष्टे सकृद्यदि ॥ ४८ ॥
तदा किम्वा न लभते साधका गुरुसेवकाः ।

गुरुत्यागात् नरकगामित्वम्

गुरुत्यागे ध्रुवो मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता ॥ ४९ ॥

जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार के आचरणों का पालन नहीं करता, वह ब्रह्मराक्षस होता है । गुरु के चरणों के दबाने पर एक बार भी गुरु के सन्तुष्ट हो जाने पर गुरु का सेवक उसी समय क्या-क्या नहीं प्राप्त कर लेता । गुरु के त्याग करने पर मृत्यु निश्चित है और उनके द्वारा प्रदत्त मन्त्र त्याग से साधक को दरिद्रता प्राप्त होती है ॥ ४८-४९ ॥

गुरुमन्त्रपरित्यागाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ।
गुरुत्यागकरः शिष्यः प्रायश्चित्ती भवेद्ध्रुवम् ॥ ५० ॥

अतः गुरु द्वारा दिये गये मन्त्र के त्याग से रौरव नरक निश्चित है । गुरु का त्याग करने वाला शिष्य निश्चय ही प्रायश्चित्त का अधिकारी है ॥ ५० ॥

लक्षं श्रीपादुकामन्त्रं जप्त्वा पापात् प्रमुच्यते ।
मन्त्रत्यागकरः शिष्यस्तत्सङ्गं नैव कारयेत् ॥ ५१ ॥

यदि किसी प्रकार ऐसा पाप बन जाए; तो श्रीपादुका मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । जो शिष्य गुरु मन्त्र का त्याग करता है; उसका साथ कभी न करे ॥ ५१ ॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं होमतर्पणतः शुचिः ।
ब्रह्मापराशरव्यासविश्वामित्रादयः पुनः ॥ ५२ ॥
गुरुषुश्रूषणात् सिद्धिं प्राप्तास्ते भुवनत्रये ।
शिवो गुरुप्रसादेन सर्ववित्सर्वगः प्रभुः ॥ ५३ ॥

गुरु त्यागी साधक एक लाख मन्त्र का जप कर होम एवं तर्पण सें शुद्ध होता है । विश्वामित्र, पराशर, व्यास और ब्रह्मदेव भी गुरु की सेवा से सिद्धि प्राप्त किये हैं । यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है कि शिव भी गुरु (राम) की कृपा से ही

सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी हुये हैं ॥ ५२-५३ ॥

साधकः शिव एव स्याद् गुरौ तुष्टे सकृद् यदि ।
तदा किम्वा न लभन्ते साधका गुरुसेवकाः ॥ ५४ ॥

यदि गुरु एक बार भी प्रसन्न हो जावें, तब साधक शिव ही हो जाता है । फिर गुरु के नित्य सेवक गुरु को प्रसन्न कर क्या प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ५४ ॥

तस्मादेव प्रयत्नेन गृरुसेवां समाचरेत् ।
सर्वदा गोपयेदेनं गुरुञ्च मनुमेव च ॥ ५५ ॥

इसलिये साधक प्रयत्नपूर्वक गुरु सेवा करे और अपनी सेवा एवं गुरु तथा मन्त्र को सदा गुप्त रखे ॥ ५५ ॥

गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानहौ तथा ।
स्नानोदकं तथा छायां लङ्घयेन्न कदाचन ॥ ५६ ॥

गुरु की शय्या, आसन, वाहन, पादुका (खड़ाँऊ), जूता, स्नानीय जल तथा छाया कदापि लङ्घन न करे ॥ ५६ ॥

वृथा कालं न गमयेद् द्यूतक्रीडादिना सुधीः ।
गमयेद् देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥ ५७ ॥

द्यूतक्रीड़ा, शतरञ्ज आदि खेलों में अपना समय नष्ट न करे । अतः साधक अपना समय देवपूजा, जप, याग तथा स्तुतियों के द्वारा सफल बनावे ॥ ५७ ॥

गुरोः कृपालापकथास्तोत्रागमावलोकनैः ।
गमयेदनिशं कालं न वदेत् परदूषणम् ॥ ५८ ॥

गुरु द्वारा किये गये कृपा, बातचीत, भगवत्कथा, स्तोत्र तथा शास्त्रावलोकनादि में ही निरन्तर अपना काल व्यतीत करे । दूसरे की निन्दा वर्णित रखे ॥ ५८ ॥

रागलोभमदक्रोधपैशुन्यादि विवर्जयेत् ।
कुलाचारं गुरुं देवं मनसाऽपि न निन्दयेत् ॥ ५९ ॥

इतना ही नहीं राग, लोभ, परनिन्दा और क्रोध वर्जित करे । कुलाचार, गुरुनिन्दा तथा देवनिन्दा मन से भी न करे ॥ ५९ ॥

पूजां ध्यानं जपं होमं यथा कर्मचतुष्टयम् ।
प्रत्यहं साधकः कुर्यात् स्वयञ्चेत् सिद्धिमिच्छति ॥ ६० ॥

साधक यदि स्वयं अपने लिये सिद्धि चाहता हो तो पूजा, ध्यान, जप और होम इन चारों कर्मों को नित्य करे ॥ ६० ॥

परदारादिसङ्गतिः वर्जनीया

कन्यायोनिं पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम् ।
नालोकयेत् परद्रव्यं परदाराश्च वर्जयेत् ॥ ६१ ॥

कन्या योनि, (बन्दर, कुत्ता आदि) पशुओं की क्रीड़ा, नङ्गी स्त्री, जिसका स्तन उभर रहा हो उस युवती कन्या, पर द्रव्य तथा परस्त्री का अवलोकन सर्वदा वर्जित रखे ॥ ६१ ॥

न निन्देद् व्रतिनं विप्रं वेदाङ्गसंहितास्तथा ।
पुराणागमशास्त्राणि कल्पांश्चापि न दूषयेत् ॥ ६२ ॥

अनुष्ठान में लगे रहने वाले ब्राह्मण की, वेदाङ्गों की, वेदसंहिताओं की, पुराण एवं आगमशास्त्र तथा कल्पों को दूषित न करे (दोष न लगावे) ॥ ६२ ॥

अन्यमन्त्रार्चने श्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम् ।
एकस्यावाहनं कृत्वा नान्यसाधनमाचरेत् ॥ ६३ ॥

किसी अन्य मन्त्र के अर्चन में अपनी श्रद्धा न करे और प्रमादवश अन्य मन्त्र का पूजन भी कदापि न करे । इसी प्रकार आवाहन किसी दूसरे देवता का और साधना (सामग्री) किसी अन्य देव को समर्पित करे, यह भी निषिद्ध है ॥ ६३ ॥

अन्यस्य स्मरणाद् दुःखं योगिनीशापमालभेत् ।
अपमृत्युभवेत्तस्य मृते च नरकं व्रजेत् ॥ ६४ ॥

इसी प्रकार अपने इष्ट देव तथा गुरु प्रदत्त मन्त्र को त्याग कर अन्य मन्त्र का स्मरण एवं जप करे तो साधक दुःख प्राप्त करता है । उसे योगिनियाँ शाप देती हैं और उसकी अपमृत्यु होती है तथा मरने पर वह नरकगामी होता है ॥ ६४ ॥

किमधिकञ्चापरैः साध्यं तस्याः सर्वं यतो लभेत् ।
कुलदर्शनशास्त्राणि कुलद्रव्याणि कौलिकान् ॥ ६५ ॥
सेवकान् प्रेरकान् वापि वाचकान् दर्शकांस्तथा ।
शिक्षकान् मोक्षकान् वापि योगिनीसिद्धिरूपकान् ॥ ६६ ॥

स्त्रीनिन्दा न कर्त्तव्या

कन्यां कुमारिकां नग्नामुन्मत्तामपि योषितम् ।
न निन्देन्न जुगुप्सेत न हसेन्नावमानयेत् ॥ ६७ ॥

इससे अधिक और बात क्या कहें कि उसका साध्य, किं बहुना, सब कुछ योगिनियाँ ले लेती हैं । कुलदर्शन, कुलशास्त्र, कुलद्रव्य, कौलिक, कुलसेवक, कुलप्रेरक, कुलवाचक, कुलदर्शक, कुलशिक्षक, कुलमोक्षक एवं योगिनी गणों की

सिद्धि करने वाले कुमारी कन्या, नग्न स्त्री एवं उन्मत्त (पागल) स्त्री की भी निन्दा न करे । इनसे घृणा भी न करे । साधक इनसे हँसी-मजाक भी न करे और न ही इनका अपमान करे ॥ ६५-६७ ॥

नाप्रियं नानृतं ब्रूयात् कस्यापि कुलयोगिनः ।
कुरूपेति निकृष्टेति न वदेत् कुलयोषितम् ॥ ६८ ॥

कुल सम्प्रदाय के योगियों से अप्रिय भाषण तथा झूठी बात कभी न कहे । कुल सम्प्रदाय में दीक्षित युवती स्त्री को 'यह कुरूपा है' या 'यह निकृष्टा है' ऐसा न कहे ॥ ६८ ॥

परीक्षयेन्न भक्तांश्च वीराणाञ्च कृताकृतम् ।
या काचिदङ्गना लोके सा मातृकुलसम्भवा ॥ ६९ ॥

कुल (=शाक्त) भक्तों की तथा वीरों के कार्य की परीक्षा न करे । इस जगत् में जितनी भी अङ्गनायें हैं, वे सभी हमारे मातृकुल में ही उत्पन्न हुई हैं, सदैव ऐसा विचार रखे ॥ ६९ ॥

कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनितानामतिक्रमात् ।
स्त्रीणां शतापराधेन पुष्पेणापि न ताडयेत् ॥ ७० ॥

स्त्रियों के अतिक्रमण (अपमान) से योगिनियाँ कुपित हो जाती हैं । स्त्रियों के सौ अपराध किये जाने पर भी पुष्प से भी उनको प्रताड़ित न करे ॥ ७० ॥

कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च तत्त्वद्रव्यापहारणम् ।
कुलरोधप्रहारञ्च वर्जयेन्मतिमान् सदा ॥ ७१ ॥

कुलस्त्री की निन्दा, वीर साधक की निन्दा, पञ्चद्रव्य एवं तत्त्वों का अपहरण, कुलरोध, कुलप्रहार इन सभी कार्यों को बुद्धिमान् साधक सदा वर्जित करे ॥ ७१ ॥

स्त्रीमयञ्च जगत् सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत् ।
न हिंसेदखिलान् जन्तून्न निन्देद्वामलोचनाम् ॥ ७२ ॥

सारे जगत् को स्त्रीमय तथा स्वयं को भी उसी प्रकार समझे । किसी भी जीव की हत्या न करे और स्त्रियों की निन्दा से भी दूर रहे ॥ ७२ ॥

न निन्देद्दक्षिणं वामं देववाक्यं तथैव च ।
न निन्देत् शक्तिसिद्धान्तं शक्तिपूजनतत्परः ॥ ७३ ॥

दक्षिण-पन्थ तथा वामपन्थ की, उसी प्रकार देव-वाक्य की तथा शक्ति-सिद्धान्त की शक्ति की पूजा करने वाला साधक निन्दा न करे ॥ ७३ ॥

न निन्देद् वृद्धवाक्यं तु न निन्देद् वेदवादिनम् ।
न निन्देद् बहुमान्यञ्च न निन्देच्च पतिव्रताम् ॥ ७४ ॥

वृद्ध के वाक्यों की तथा वेद मार्गानुसारी की, सर्वाधिक सम्मानित व्यक्ति की तथा पतिव्रता स्त्री की निन्दा न करे ॥ ७४ ॥

न निन्देद् देवलोकादीन्न निन्देत् समयस्थितान् ।
न निन्देद् बहुलं मांसं निन्दां सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ७५ ॥

देवलोकों की, मर्यादा में स्थित रहने वालों की, काले पुरुष की तथा मांस की निन्दा, किं बहुना, किसी की भी निन्दा न करे ॥ ७५ ॥

प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम् ।
विरूपां मुक्तकेशीञ्च कामार्त्ताञ्च न निन्दयेत् ॥ ७६ ॥

पागल, चाण्डालिन, कन्या, पुष्पवती स्त्री, वृद्धा स्त्री, कुरूपा, बिखरे बालों वाली एवं कामार्त्त स्त्री की भी निन्दा न करे ॥ ७६ ॥

स्त्रीः शक्तिरूपिणी

शक्तिमयं जगत् सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत् ।
शक्तिरूपा यतो देवी सृष्टिमध्ये व्यवस्थिता ॥ ७७ ॥

सारा जगत् शक्तिमय समझे तथा स्वयं को भी वैसा ही समझे । क्योंकि इस सारे सृष्टि के मध्य में स्वयं देवी ही शक्ति रूप में विद्यमान है ॥ ७७ ॥

शक्तेः सृष्टिः समुत्पन्ना शक्तौ च लीयते पुनः ।
तस्मात् शक्तिः प्रधाना च पूजनीया प्रयत्नतः ॥ ७८ ॥

यह सारी सृष्टि ही शक्ति से उत्पन्न है, फिर उसी में इसका लय भी होता है इसलिये शक्ति प्रधान है, उनकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ७८ ॥

भक्षयेद्योषिता सार्द्धं जुहुयादग्निसम्मुखे ।
आरक्तवसनां नारीं यत्नाद् भक्त्या समानयेत् ॥ ७९ ॥

भोजन स्त्री के साथ करे । अग्नि में हवन करे और लाल वस्त्र वाली नारी को प्रतिष्ठा के साथ अपने घर में ले आवे ॥ ७९ ॥

शक्तिपूजां सदा कुर्यात् प्रसन्ना येन जायते ।
सुखं शक्तिप्रसन्ने तु दुःखं तद्वर्जनाद् भवेत् ॥ ८० ॥

सर्वदा शक्ति की इस प्रकार पूजा करे, जिससे वह प्रसन्न रहे । शक्ति के प्रसन्न होने पर सुख होता है और उसे दुःखी करने में दुःख होता है ॥ ८० ॥

शाक्तव्यवहारः

भक्ष्यं भोज्यं तथा पेयं गन्धं पुष्पं तथा पुनः ।
शक्तौ निवेद्य प्रथमं तथा चाऽऽभरणादिकम् ॥ ८१ ॥
तत्पश्चादात्मसात् कुर्यात् सिद्ध्यर्थी साधकश्च यः ।
शक्तौ दर्पं घृणां लज्जां वर्जयेत् क्रोधदर्शनम् ॥ ८२ ॥

भक्ष्य, भोज्य, पेय, गन्ध, पुष्प तथा आभरणादि उत्तम पदार्थ सर्वप्रथम शक्ति को ही समर्पण करे । इसके बाद सिद्धि चाहने वाला साधक स्वयं अपने उपयोग में लावे । साधक शक्ति से कभी भी घमण्ड, घृणा एवं लज्जा तथा क्रोध प्रदर्शित न करे ॥ ८१-८२ ॥

कदाचिद्दर्परूपेण पुष्पेणापि न ताडयेत् ।
शक्तौ न विस्मयं कार्यं यस्मात् क्रुद्धा च चण्डिका ॥ ८३ ॥

भय प्रदर्शित करने के लिये आवेश में पुष्प से भी शक्ति की ताड़ना न करे । शक्ति को कभी भय प्रदर्शित न करे । जिससे चण्डिका के क्रुद्ध होने की सम्भावना रहती है ॥ ८३ ॥

विस्मिते बहुलं नाशं मृत्युलाभमवाप्नुयात् ।
मृतेऽपि नरकं याति श्रियमाप्नोति पूजनात् ॥ ८४ ॥

शक्ति को भयभीत करने से अपना सर्वनाश हो जाता है और केवल मृत्यु ही हाथ आती है । मरने पर भी नरक ही प्राप्त होता है । किन्तु शक्ति पूजन से महालक्ष्मी प्राप्त होती हैं ॥ ८४ ॥

चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भक्ष्यं भोज्यं गृहं सुखम् ।
सर्वञ्च युवतीरूपं भावयेत् यतमानसः ॥ ८५ ॥

चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भक्ष्य, भोज्य, गृह और सुख इन्हें समाहित चित्त हो युवतीरूप समझे ॥ ८५ ॥

कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः ।
यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिस्तु जायते ॥ ८६ ॥

उत्तम कुल में उत्पन्न हुई युवती को देखकर सावधानी से नमस्कार करे क्योंकि बहुत भाग्य से कुलजा स्त्रियों के दर्शन होते हैं ॥ ८६ ॥

तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ।
बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा ॥ ८७ ॥
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।

तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमपि चाप्रियम् ॥ ८८ ॥
सर्वथा न च कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।
स्त्रियो देव्यः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम्॥ ८९ ॥

युवती के दर्शन होते ही उनकी मानसिक पूजा सम्पन्न करे । बाला जवानी की मस्ती से इठलाती हुई, अथवा वृद्धा, अथवा सुन्दरी, कुत्सिता तथा महादुष्टा स्त्रियों को नमस्कार कर उनका विसर्जन करे । उनके ऊपर प्रहार, निन्दा, कुटिलता, अप्रिय सर्वथा न करे । ऐसा करने से सिद्धि में विघ्न होता है । स्त्रियाँ साक्षाद् देवी हैं स्त्रियाँ प्राण है और स्त्रियाँ आभूषण हैं ॥ ८७-८९ ॥

स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रिया अपि ।
न पश्येत् पतितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम् ॥ ९० ॥
दिवसे न रमेन्नारीं तद्योनिं न निरीक्षयेत् ।
विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि ॥ ९१ ॥

सर्वदा स्त्री के साथ रहे । उनके न मिलने पर स्वयं अपनी स्त्री के साथ निवास करे । पतिता, नग्ना, पगली तथा उभरते हुये स्तनों वाली स्त्री का दर्शन न करे । दिन में स्त्री सम्भोग न करे । उनकी योनि कदापि न देखे । क्योंकि विपरीत रति में वे हृदय के ऊपर (मृत्यु रूप में) आ जाती हैं ॥ ९०-९१ ॥

स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियः ।
जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपञ्चरेत् ॥ ९२ ॥

स्त्री से द्वेष कदापि न करे । विशेष रूप से उनका पूजन ही करे । जहाँ जप करना हो वहाँ महाशङ्ख स्थापित कर जप करे ॥ ९२ ॥

जपे कालशुच्यादि नियमो नास्ति

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात् कुलजां शुभाम् ।
मांसमत्स्यदधि क्षौद्रभक्ष्यद्रव्ये यथारुचि ॥ ९३ ॥
भोज्यान्नासनभक्तानि भुक्त्वा भक्ष्यं चरेज्जपम् ।
विना पीत्वा सुरां भुक्त्वा मांसं गत्वा रजस्वलाम्॥ ९४ ॥
यो जपेच्चण्डिकां देवीं दुःखं तस्य पदे पदे ।

कुलमार्ग में उत्पन्न कल्याणकारिणी स्त्री के अपने पास से जाते हुये, उनको स्पर्श करते हुये, उनको देखते हुये, तदनन्तर स्वयं मांस, मत्स्य, दधि, क्षुद्र भोजन व स्वकीय इच्छानुसार द्रव्य, भोज्यान्न, आसन तथा भक्ष्य भोजन कर जप करे । जो साधक बिना सुरापान किये, बिना मांस का भोजन किये, रजःस्वला से बिना सम्भोग किये चण्डिका देवी का जप करता है उसे पद-पद पर दुःख उठाना

पड़ता है ॥ ९३-९५ ॥

कौलिकमाहात्म्यम्

अन्तःशाक्ता बहिःशैवाः सभायां वैष्णवा मताः ॥ ९५ ॥
नानावेशधराः कौला विचरन्ति महीतले ।

कौल मार्गी भीतर से शाक्त, बाहर से शैव तथा सभा के मध्य में वैष्णव इस प्रकार नानारूप धारण कर पृथ्वी में विचरण करते हैं ॥ ९५-९६ ॥

कुलपूजादिलिङ्गैस्तु रहितो विष्णुतत्परः ॥ ९६ ॥
गच्छन् स्वपन् भ्रमन् वापि स्खलन् विष्णुपरायणः ।
हरिनाम्ना जातभावो भावाखिलविचेष्टितः ॥ ९७ ॥
जय विष्णो हरे ब्रह्मन् नानार्थपरविस्तरैः ।
स्मर्त्तव्या च महादेवी कुलीनैर्विपिने गृहे ॥ ९८ ॥

जिस प्रकार जो कुलपूजादिकों के चिह्न से रहित विष्णु का भक्त चलते, सोते, भ्रमण करते, गिरते पड़ते भी उसे भगवान् के नाम लेते ही महाभाव उत्पन्न हो जाता है । वह 'जय विष्णो हरे ब्रह्मन्' इन नामों को लेकर महाभाव की सारी चेष्टायें करने लगता है, उसी प्रकार अनेक प्रयोजनों के विस्तार से कुलीन (कुल मार्ग का उपासक) वन में अथवा घर में महादेवी का स्मरण करे ॥ ९६-९८ ॥

रात्रौ जपः प्रशस्तः

रात्रौ पर्यटनञ्चैव रात्रौ च शक्तिपूजनम् ।
न करोति कथञ्चैव साधकः कौलिको भवेत् ॥ ९९ ॥

कुलमार्ग का उपासक रात्रि में पर्यटन न करे और रात्रि में शक्ति का पूजन भी न करे तो वह किस प्रकार कौलिक साधक कहा जा सकता है ॥ ९९ ॥

बधिराद् विहरेदेकः सदा सङ्गविलङ्घितः ।
दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न च ॥ १०० ॥

कुलमार्ग का उपासक बधिर बनकर सदैव अकेला रहे । वह किसी का साथ न करे । उसके लिये दिशा और काल का नियम नहीं है । स्थिति आदि का भी नियम नहीं है ॥ १०० ॥

न जपे कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि ।
स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र शक्तिमन्त्रस्य साधने ॥ १०१ ॥

जप में अर्चा में बलि में उसके लिये कोई काल का नियम नहीं है किं बहुना कुलमार्ग की उपासना करने वाले के लिये शक्तिमन्त्र की साधना में उसकी

इच्छानुसार ही नियम होता है ॥ १०१ ॥

स्नानादिमानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः ।
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ॥ १०२ ॥

उसका मानस स्नानादि शौच तथा मानस जपादि भी होता रहता है उसका मानस दिव्य पूजन तथा मानस तर्पणादि भी हो जाता है ॥ १०२ ॥

सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ।
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ॥ १०३ ॥

कौलिक के लिये सभी काल कल्याणकारी है कोई भी काल अशुभ नहीं है उनके लिये दिन रात-सन्ध्या तथा महानिशा का कोई भेद नहीं है ॥ १०३ ॥

वस्त्रासनस्थानगेह देहस्पर्शादिधारिणः ।
शुद्धिं न चाचरेत्तत्र निर्व्विकल्पं मनश्चरेत् ॥ १०४ ॥

अन्य के वस्त्र आसन स्थान गृह तथा शरीर के स्पर्श हो जाने पर उन्हें शुद्धि की आवश्यकता नहीं है वे नि:सन्देह होकर सर्वदा विचरण करे ॥ १०४ ॥

नात्र शुद्धेरपेक्षास्ति न चामेध्यादिदूषणम् ।
य एवं चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामार्थसिद्धिभाक् ॥ १०५ ॥

अमेध्यादि दूषित पदार्थों के दोष से उन्हें शुद्ध होने की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये । जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार का विचार रखता है उसे सभी काम और अर्थ की प्राप्ति हो जाती है ॥ १०५ ॥

गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ॥ १०६ ॥

ऐसे कौलिक की वाणी सभा के मध्य में गद्य पद्यमयी उभयात्मक हो जाती है प्रतिवादी उसके दर्शनमात्र से हताश हो जाते हैं ॥ १०६ ॥

राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः ।
सर्वदेवमयं देहं सर्वदेवमयीं तनूम् ॥ १०७ ॥

राजागण भी उस साधक के दास बन जाते हैं फिर साधारण मनुष्य की बात ही क्या? कौलिक साधक अपने देह को सर्व देवमय तथा अपनी तनू को सर्वदेवमयी समझे ॥ १०७ ॥

आत्मानं देवतारूपं अद्वैतं परिचिन्तयेत् ।
आत्मा च परमात्मा च जगद्व्यापी स्वयं विभुः ॥ १०८ ॥

अपने को देवता स्वरूप तथा अद्वैत रूप में समझे । आत्मा को जगद्व्यापी स्वयं विभु परमात्मा समझे ॥ १०८ ॥

आत्मानं ब्रह्मरूपं च सर्वदा परिचिन्तयेत् ।
शत्रवश्चापि मित्रन्ति साक्षाद्दासन्ति भूमिपाः ॥ १०९ ॥

साधक अपने को सर्वदा ब्रह्म रूप समझे । ऐसे साधक के शत्रु भी मित्र के समान आचरण करते हैं और राजा भी दासवत् हो जाते हैं ॥ १०९ ॥

वाचयन्ति यशः सर्वे साधकानां सुनिश्चितम् ।
दुर्मुखाः सुमुखाः सर्वे गर्विता प्रणमन्ति च ॥ ११० ॥

सभी इस प्रकार के साधकों के यश का गान करते हैं, निष्ठुरभाषी सुमुख हो जाते हैं और अहङ्कारी प्रणाम करने लगते हैं ॥ ११० ॥

बाधकाः साधका यान्ति साधकस्य विशेषतः ।
सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः ॥ १११ ॥

विशेष रूप से बाधा उत्पन्न करने वाले व्यक्ति साधक हो जाते हैं । बिना स्नान किये अथवा भोजन कर देवी का पूजन न करे ॥ १११ ॥

महानिशाशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।
अत्यन्तरोगयुक्तो वा शुचिर्वाऽप्यथवाऽशुचिः ॥ ११२ ॥
अकालेऽप्यथवा काले अधिकारी सदैव हि ।
कृतार्थं मन्यमानस्तु सन्तुष्टनिजमानसः ॥ ११३ ॥

महानिशा (अर्धरात्रि) में या किसी अपवित्र प्रदेश में मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करे । चाहे अत्यन्त रोगी हो, अथवा शुचि हो, अथवा अशुचि हो, चाहे काल हो, चाहे अकाल हो, अपने को कृतार्थ मानने वाला, अपने मन को सन्तुष्ट रखने वाला भक्त चण्डिका पूजन का अधिकारी है ॥ ११२-११३ ॥

नाधर्मो विद्यते किञ्चित् किञ्चिद्धर्मो महान् भवेत् ।
कुलान्नञ्चैव भुञ्जीत कुलीनेन सह स्वपेत् ॥ ११४ ॥

ऐसे अधिकारी को कोई पाप नहीं लगता । किन्तु महान् पुण्य ही होता है । अधिकारी साधक को कौल मार्गियों के साथ भोजन करना चाहिये और उनके साथ शयन भी करना चाहिये ॥ ११४ ॥

कुलप्रसङ्गः कर्त्तव्यः कुलीनैर्न पशोः क्वचित् ।
यस्मिन्मन्त्रे य आचारस्तस्य धर्मस्तु तादृशः ॥ ११५ ॥

कुल मार्ग के उपासकों के साथ कुल मार्ग की चर्चा करे । किन्तु पशु मार्ग वाले साधक के साथ कुलमार्ग की चर्चा न करे । क्योंकि जिस मन्त्र में जैसा आचार है, उसका धर्म भी उसी प्रकार का होता है ॥ ११५ ॥

तद्धस्तावचितं भोज्यं तद्धस्तावचितं जलम् ।
तद्धस्तावचितं पुष्पं देवताभ्यो निवेदयेत् ॥ ११६ ॥

उनके हाथ का दिया हुआ भोजन, उनके हाथ से लाया गया जल और उनके हाथ से लाये गये पुष्प देवताओं को समर्पित करना चाहिये ॥ ११६ ॥

षडङ्गन्यासमाचर्य ध्यात्वा रात्रौ जपेत् सुधीः ।
सदाकालं जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिपरायणः ॥ ११७ ॥

सुधी साधक रात्रि में षडङ्ग न्यास करे और देवी का ध्यान कर, तदनन्तर जप करे । सब प्रकार की सिद्धि चाहने वाला सभी कालों में जप करे ॥ ११७ ॥

न दोषः सर्वदा जापे सर्वदेशेऽपि सर्वदा ।
जपनिष्ठो जपेद्यस्तु सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ ११८ ॥

सभी देशों में, सर्वदा जप करने में, कोई दोष नहीं है, जो जप में निष्ठा रखते हुये जप करता है, उसे समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥ ११८ ॥

सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञः प्रशस्यते ।
रात्रौ जपैकमात्रेण सिद्धिदा चण्डिका भवेत् ॥ ११९ ॥

सभी यज्ञों की अपेक्षा जपयज्ञ श्रेष्ठ है । रात्रि में मात्र एक संख्या के जप से चण्डिका सिद्धि प्रदान कर देती हैं ॥ ११९ ॥

इडायाञ्च गते रात्रौ शक्तिमन्त्रं जपेद् यदि ।
पिङ्गलायां गते जीवे पुंमन्त्रं प्रजपेत् सदा ॥ १२० ॥

रात्रि में जब इडा नाड़ी (नासिका में) प्रवाहित होती हो, तो शक्ति मन्त्र (स्वाहान्त) मन्त्र का जप करे । जब पिङ्गला नाड़ी में जीव हो तब साधक पुंमन्त्र (हुं फट्) मन्त्र का जप करे ॥ १२० ॥

न चेज्जन्मसहस्त्रैस्तु नैव सिद्धिः प्रजायते ।
कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव वा ॥ १२१ ॥

यदि साधक ऐसा नहीं करता, तो सहस्त्रों जन्म पर्यन्त जप करते रहने से उसे सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती । उक्त प्रकार से जप करते रहने से साधक सफल होता है, उसे स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ॥ १२१ ॥

भ्रान्तिरत्र न कर्त्तव्या सिद्धिहानिः प्रजायते ।
विस्मिता विलयं यान्ति पशवः शास्त्रमोहिताः ॥ १२२ ॥

जप में भ्रान्ति न करे । ऐसा करने से सिद्धि में हानि होती है । पशु लोग शास्त्र में मोहित होकर भयभीत हो विनष्ट हो जाते हैं ॥ १२२ ॥

विशुद्धचित्तोऽत्र भवेत् सिद्धिः स्यादपवर्गदा ।
एतैस्तु तत्क्षणात् सिद्धिर्विस्मयो नास्ति चापरः ॥ १२३ ॥

जप में विशुद्ध चित्त होने से अपवर्ग (मोक्ष) देने वाली सिद्धि होती है । इन नियमों के पालन करने से तत्क्षण सिद्धि प्राप्त होती है । इसमें कोई दूसरे प्रकार का संशय नहीं करना चाहिये ॥ १२३ ॥

कुलभ्रष्टस्य निष्कृतिर्नास्ति

सर्वाचारपरिभ्रष्टः कुलाचारं समाचरेत् ।
कुलाचारपरिभ्रष्टो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १२४ ॥

जो सभी प्रकार के आचारों से परिभ्रष्ट हो चुका है, उसे इस कुलाचार का पालन करना चाहिये । किन्तु कुलाचार से भी भ्रष्ट हो जाने वाला रौरव नरक प्राप्त करता है ॥ १२४ ॥

शास्त्रेषु निष्कृतिर्द्रष्टा महापातकिनामपि ।
कुलभ्रष्टस्य कुत्रापि न द्रष्टा निष्कृतिः क्वचित् ॥ १२५ ॥

शास्त्रों ने महापातकियों के लिये उद्धार का उपाय बताया है । किन्तु कुलमार्ग से भी भ्रष्ट हो जाने वाले के लिये उद्धार का कहीं कोई उपाय नहीं है ॥ १२५ ॥

आपदं दुरितं रोगो दारिद्र्यं कलहो भयम् ।
योगिनीनां प्रकोपश्च स्खलितानि पदे पदे ॥ १२६ ॥

कुलमार्ग से परिभ्रष्ट आपत्ति, पाप, रोग, दारिद्र्य, कलह, भय और योगिनियों का प्रकोप तथा पदे पदे पराभव प्राप्त करता है ॥ १२६ ॥

कुलाचारी योगिनीप्रियः

भ्रंशमानः प्रणष्टश्च तेजोहीनश्च दुर्मतिः ।
निन्दितः सर्वविद्विष्टो विह्वलः सङ्गवर्जितः ॥ १२७ ॥
देशाद्देशान्तरं याति कार्यहानिश्च सर्वदा ।
तत्रापि कुलमार्गस्थाः शाकिन्यः कुलपालिकाः ॥ १२८ ॥
भक्षयन्ति पुरा तासां वरो दत्तो मयैव तु ।

तस्मादाचारवान् वीरो योगिनीनां प्रियो भवेत् ॥ १२९ ॥

कुलमार्ग से भ्रष्ट होते ही साधक प्रनष्ट, तेजोहीन, दुर्बुद्धि, निन्दित, सब का विद्वेषी, विह्वल (पागल) और सङ्गवर्जित हो जाता है । वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक डोलता फिरता है । सर्वदा उसके कार्य में हानि होती रहती है । इतना होने पर भी कुलमार्ग की शाकिनियाँ उसे खा जाती है । क्योंकि मैंने ही उन्हें इस प्रकार का वरदान दिया है । इस कारण कुलमार्ग का आचरण करने वाला वीर ही योगिनियों का प्रिय होता है ॥ १२७-१२९ ॥

कुलाचारेण देवत्वं योगिनीवीरमेलनम् ।
तिर्यग्योनिं समाप्नोति कौलिकस्तद्विपर्ययात् ॥ १३० ॥

कुलाचार से देवत्व की प्राप्ति होती है । योगिनियाँ और वीर उन्हीं को प्राप्त होते हैं । किन्तु कौल मार्ग प्रतिकूल आचरण करने से कौलिक साधक को तिर्यक् योनि (पशुपक्षी) प्राप्त होती है ॥ १३० ॥

आज्ञासिद्धिर्भवेत्तस्य आचारपालनात् सदा ।
संस्कारस्य विहीनत्वाद् गुरुवाक्यस्य लङ्घनात् ॥ १३१ ॥
आचारवर्जनाच्चैव कौलिकः पतितो भवेत् ।
भोगो मोक्षायते तस्य पातकं सुकृतायते ॥ १३२ ॥
मोक्षायते च संसारः साधकशुद्धभावतः ।
पञ्चतत्त्वेन कर्त्तव्यं सदैव पूजनं महत् ॥ १३३ ॥

जो आचार का परिपालन करता है उसे आज्ञा सिद्धि प्राप्त होती है । किन्तु संस्कार रहित होने से तथा गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन करने से एवं आचार का वर्जन करने से कौलिक पतित हो जाता है । जो साधक शुद्ध भाव से कौल मार्ग का पालन करता है, उसके लिये भोग मोक्ष के समान हो ज़ाता है तथा पाप सुकृत के समान हो जाता है । अतः भगवती चण्डिका की पूजा पञ्चतत्त्व के पदार्थों से करनी चाहिये ॥ १३१-१३३ ॥

अतिगुप्तेन कर्त्तव्यं सर्वथैव सुनिश्चितम् ।
इत्याचारपरः श्रीमान् जपपूजापरायणः ॥ १३४ ॥
पालकः कुलतत्त्वानां परतत्त्वे प्रलीयते ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामाश्रयः साधको भवेत् ॥ १३५ ॥

कुल पूजा अत्यन्त गुप्त रूप से करनी चाहिये । इस प्रकार के आचरणों वाला श्रीमान् जप एवं पूजा परायण तथा कुल तत्त्व का पालन करने वाला निश्चित रूप से परतत्त्व में विलीन हो जाता है और ऐसा साधक अणिमादि अष्टसिद्धियों

का आश्रय बन जाता है ॥ १३४-१३५ ॥

प्रायश्चित्तं भृगोः पातं सन्न्यासं व्रतधारणम् ।
कायक्लेशञ्च नास्तिक्यं तीर्थयात्रामुपोषणम् ॥ १३६ ॥
वर्जयेच्च प्रयत्नेन यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।

पञ्चमहापातकानि

वीरहत्या वृथापानं वीरद्रव्यापहारिता ॥ १३७ ॥
वीरस्त्रीगमनञ्चापि तत्संसर्गाच्च पञ्चमम् ।
महापातकमित्युक्तं सर्वथा परिवर्जयेत् ॥ १३८ ॥

कुलमार्गानुगामी प्रायश्चित्त, भृगुपतन (ऊँचे पर्वतादि से गिरकर आत्मघाती), सन्यास व्रत, कायक्लेश, नास्तिक्य (यदि अपना कल्याण चाहे तो) तीर्थयात्रा एवं उपवास प्रयत्नपूर्वक वर्जित रखे । वीर साधक की हत्या, वृथा मद्यपान, वीरद्रव्य का अपहरण, वीर की स्त्री के साथ सम्भोग और इन सभी प्रकार के पापों को करने वाले का साथ—ये कुल सम्प्रदाय में पाँच महापातक कहे गये हैं । कौलिक इन पाँचों महापातकों का त्याग कर देवे ॥ १३५-१३७ ॥

कुसुम्भं नालिकाञ्चैव चिञ्चामेव न खादयेत् ।
भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्यात् सिद्धविद्याप्रपूजकः ॥ १३९ ॥

कुसुम्भ-नारिकेल-चिञ्चा न खावे । यदि प्रमाद वश खा लेवे तो उस सिद्ध विद्या प्रपूजक को चान्द्रायण व्रत करना चाहिये ॥ १३८ ॥

इक्षुखण्डं न भुञ्जीत शिवा कालीति नो वदेत् ।
न छेदयेत् कदम्बञ्च त्रिपुरापूजकः सदा ॥ १४० ॥

कुलपूजक ऊख का बना हुआ खाँड़ न खावे, शिवा-काली यह नाम न लेवे तथा त्रिपुरा की पूजा करने वाला कदम्ब वृक्ष का छेदन न करे ॥ १४० ॥

प्रमादाद्यदि कुर्वीत सुन्दरीशापमाप्नुयात् ।
कुलधर्मं समाश्रित्य आचारं यो न पालयेत् ॥ १४१ ॥
यथेच्छाचारिणस्तस्य महापातकिनः सदा ।
निष्कृतिर्नास्ति तस्यैव महारौरवसङ्कुले ॥ १४२ ॥

यदि प्रमादवश उक्त कार्यों को करता है, तो उसे सुन्दरी भगवती का शाप लगता है । कुल धर्म की दीक्षा लेकर जो कौलाचार का पालन नहीं करता, ऐसे यथेच्छाचारी, महापातकी का महारौरव से उद्धार नहीं होता ॥ १४१-१४२ ॥

स सदा पशुरित्युक्तो देवताशापमाप्नुयात् ।

गुप्तप्रकटसम्भूतं ज्ञानाज्ञानकृतं तथा ॥ १४३ ॥
निषिद्धाचरणं यत्र कुत्रापि यदि जायते ।
प्रायश्चित्तं तत्र तत्र कर्त्तव्यं साधकेन च ॥ १४४ ॥

वह सर्वदा पशु बना रहता है । उसे पर देवता का शाप प्राप्त होता है । गुप्त रूप से या प्रकट रूप से, जान में अथवा अनजान में, यदि निषिद्धाचरण जहाँ-कहीं भी हो जाय; तो वहाँ-वहाँ कुल साधक को प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये ॥ १४३-१४४ ॥

निषिद्धाचरणे सम्यक् पापस्य गुरुलाघवम् ।
देशं कालं वयो वित्तं सम्यक् ज्ञात्वा यथाविधि ॥ १४५ ॥
प्रायश्चित्तं गुरोः कुर्यात् सर्वपापविशुद्धये ।
शिष्योऽपि खलु तत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १४६ ॥

निषिद्धाचरण हो जाने पर साधक शिष्य पापों के गुरु-लाघव का, देशकाल, अवस्था तथा वित्त का यथाविधि ज्ञान कर; गुरु के पाप से शुद्धि करने के लिये स्वयं प्रायश्चित करे । शिष्य भी स्वयं से पाप हो जाने पर गुरु के द्वारा उपदिष्ट प्रायश्चित्त करे ॥ १४५-१४६ ॥

अथवा सर्वपापानां गुरुनामजपः स्मृतः ।
जाम्बूनदस्य कलुषं परिशुद्धं यथाऽग्निना ॥ १४७ ॥
अनाचारस्य मालिन्यं प्रायश्चित्ताऽग्निना दहेत् ।
लक्षं नाम्नो गुरोर्जापे सर्वपापाद्विशुद्ध्यति ॥ १४८ ॥

अथवा शिष्य अपने द्वारा किये गये सभी पापों से निवृत्ति के लिये गुरु के नाम का केवल जप करे । जिस प्रकार सुवर्ण अग्नि से तपाये जाने पर अपना सारा कालुष्य छोड़ देता है, उसी प्रकार प्रायश्चित्त रूपी अग्नि से निषिद्धाचरण का मालिन्य दूर हो जाता है । गुरु के नाम का एक लाख जप करने से सारे पापों से मुक्ति हो जाती है ॥ १४७-१४८ ॥

अथवाऽप्यजपालक्षं लोपालक्षत्रयं तथा ।
जपान्मुच्येत पापेभ्यः सर्वेभ्यः साधकः सदा ॥ १४९ ॥

अथवा अजपा (हंसः सोऽहं) का एक लाख अथवा लोपा (मुद्रा) का तीन लाख जप करे तो साधक सदैव के लिये सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१४९॥

लोपामुद्रामन्त्रोद्धारः

वियच्छून्ययुतः शक्तिः सविसर्गोऽजपामनुः ।

वियच्छक्तिस्ततः कामः क्षौणी च परमेश्वरी ॥ १५० ॥
आकाशं भृगुकामौ च शिवः शक्रश्च पार्वती ।
चन्द्रोऽनङ्गो धरादेवी लोपामुद्रा प्रकाशिता ॥ १५१ ॥

अजपा एवं लोपामुद्रा मन्त्र—वियत् (ह) शून्य युक्त विन्दुयुक्त (हं), शक्ति स जो विसर्ग युक्त हो (सः), यह अजपा मनु (=मन्त्र) है । (हंसः) वियत् (ह), शक्तिः (स) कामः (क), क्षोणी (ल), इसके बाद परमेश्वरी (ह्रीं), फिर आकाश (ह), भृगु (स), काम (क), शिव (ह), शक्र (ल), पार्वती (ह्रीं), चन्द्र (स), अनङ्ग (क), धरा (ल), (ह्रीं) इस मन्त्र को लोपामुद्रा ने प्रकाशित किया है । ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं' यह अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा उपासित त्रिपुरा मन्त्र है ॥ १५०-१५१ ॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन रहस्यं कथ्यतेऽधुना ।
वर्णाश्रमाणां सर्वेषामाचारः सद्गतिप्रदः ॥ १५२ ॥

इस विषय में बहुत क्या कहा जाय । अब रहस्य कहता हूँ । सभी का वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण करने से सद्गति प्राप्त होती है ॥ १५२ ॥

गुरुः शिष्यपापम् आप्नोति

प्रजादोषश्च राजानं जायादोषं पतिं यथा ।
तथा प्राप्नोत्यसन्देहः शिष्यपापं गुरुः सदा ॥ १५३ ॥

जिस प्रकार प्रजा का पाप राजा को लगता है, स्त्री द्वारा किया गया पाप पति को लगता है, उसी प्रकार शिष्य द्वारा किया गया पाप निश्चित रूप से गुरु को लगता है ॥ १५३ ॥

गुरुस्त्रिवारमाचारं कथयेच्च स्वशिष्यके ।
न गृह्णाति हि शिष्यश्चेत् तदा पापं गुरोर्न हि ॥ १५४ ॥

इस कारण गुरु अपने शिष्य को तीन बार आचार का उपदेश करे । यदि शिष्य उसे ग्रहण न करे, तो गुरु को दोष नहीं लगता ॥ १५४ ॥

कुलशास्त्रं पशुभ्यः गोप्तव्यम्

कुलधर्मप्रसङ्गन्तु पशूनां पुरतस्त्यजेत् ।
कदाचिन्नैव कुर्याद्धि शूद्राग्रे वेदपाठवत् ॥ १५५ ॥

पशु साधकों के सामने कुलधर्म का विषय प्रगट न करे । विशेष कर शूद्र के आगे उसी प्रकार, उसकी व्याख्या न करे, जिस प्रकार शूद्र के आगे वेद पाठ नहीं किया जाता ॥ १५४ ॥

पीठक्षेत्रागमाम्नायं तद्विद्याचारकौलिकान् ।
कुलद्रव्यादिकञ्चापि न वदेत् पशुसन्निधौ ॥ १५६ ॥

पीठाम्नाय, क्षेत्राम्नाय, आगमाम्नाय, उन-उन विद्याओं के आचरण करने वाले कौलिकों तथा कुलद्रव्यादि पशु साधक के सन्निधान में प्रगट न करे ॥ १५६ ॥

यथा रक्षति चौरेभ्यो धनधान्याम्बरादिकम् ।
कुलधर्मं तथा चैव पशुभ्यः परिरक्षयेत् ॥ १५७ ॥

जिस प्रकार अपने धन धान्य वस्त्रादि की चोरों से रक्षा की जाती है, उसी प्रकार कुलधर्म की रक्षा पशुओं से करनी चाहिये ॥ १५७ ॥

सुगुप्तकौलिकाचारमनुगृह्णन्ति देवताः ।
वाञ्छदासिद्धिमवाप्नोति नाशयन्ति प्रकाशकान् ॥ १५८ ॥

जो कौलाचार को गुप्त रखता है, प्रगट नहीं करता, उसके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं । देवगण उसकी रक्षा करते हैं, देवगण कौलाचार का प्रकाशन करने वाले का नाश कर देते हैं ॥ १५८ ॥

या देवी भुवनेश्वरी त्रिभुवनलोकोद्धृता ह्यग्रतो
विद्यासृष्टिकृता स्वकीयवपुषो वर्णाश्रिता देवता ।
सा नित्या सकला गृहस्थनिलया कान्तादृता कोमला
नित्यं पञ्चगुणैर्भजस्व तपसा भोगेन तां साधक! ॥१५९ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये दशमोल्लासः॥१०॥

जिस देवी भुवनेश्वरी ने सर्वप्रथम त्रिभुवन लोक को प्रगट किया । जिसने अपने शरीर से विद्या की और वर्ण के आश्रित देवता की भी सृष्टि की । हे साधक! उस नित्या, सकला, आदरणीया, कान्ता, कोमला, गृहस्थों के घर में रहने वाली भगवती भुवनेश्वरी का पञ्चगुणों से, तपस्या से तथा भोगार्पण से नित्य भजन करना चाहिए ॥ १५९ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के दशम उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १० ॥

एकादश उल्लासः

...❧❀☙...
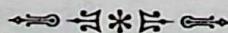
भावनिरूपणम्

पश्चादिभेदेन भावस्य त्रैविध्यम्

अथ भावं प्रवक्ष्यामि यथा तन्त्रानुसारतः ।
भावस्तु त्रिविधः प्रोक्तो दिव्यवीरपशुक्रमात् ॥ १ ॥

अब तन्त्र के अनुसार भाव के विषय में कहता हूँ । दिव्य, वीर और पशु के भेद से भाव तीन प्रकार के कहे गये हैं ॥ १ ॥

तद्‌भेदेन गुरुमन्त्रदेवतानां त्रैविध्यम्

गुरुश्च त्रिविधश्चैव तथैव मन्त्रदेवता ।
आद्यभावो महान् श्रेयान् सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ २ ॥

उसी प्रकार गुरु तथा मन्त्र एवं देवता भी तीन-तीन प्रकार के कहे गये हैं । उसमें से प्रथम दिव्य-भाव महान् है और कल्याणकारी है तथा समस्त सिद्धियों को देने वाला है ॥ २ ॥

द्वितीयो मध्यमश्चैव तृतीयो विश्वनिन्दितः ।
बहुजापात्तथा होमात् कायक्लेशादि विस्तरैः ॥ ३ ॥
न भावेन विना चैव यन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः ।
किं वीरसाधनैर्लक्षैः किम्वाऽऽकृष्टकुलाकुलैः ॥ ४ ॥
किं पीठपूजनेनैव किं कन्याभोजनादिभिः ।
स्वकुले प्रीतिदानेन किं परेषान्तथैव च ॥ ५ ॥
किं जितेन्द्रियभावेन किं कुलाचारकर्मणा ।
यदि भावविशुद्धात्मा न स्यात् कुलपरायणः ॥ ६ ॥

दूसरा वीर भाव मध्यम है, किन्तु तीसरा पशुभाव विश्वभर में निन्दित है । भाव के बिना बहुत कायक्लेश के द्वारा किये गये जप होमादि से यन्त्र एवं मन्त्र फल प्रदान नहीं करते । अनेक प्रकार के वीर साधनों से, लाखों बार कुलाकुल के

आकर्षण से, पीठ पूजन से तथा कन्यकादि को भोजन प्रदान से कोई लाभ नहीं होता । साधक यदि भाव से विशुद्धात्मा तथा कुल परायण नहीं है तो अपने कुल को प्रसन्न रखने से, उन्हें सन्तुष्ट रखने से, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने से तथा कुलाचारों एवं चित्त कर्म के सम्पादन से भी कोई लाभ प्राप्त नहीं होता ॥ ३-६ ॥

भावेन लभते मुक्तिं भावेन कुलवर्धनम् ।
भावेन गोत्रवृद्धिः स्याद् भावेन कायशोधनम् ॥ ७ ॥

भाव से मुक्ति प्राप्त होती है । भाव से ही कुल की वृद्धि होती है, भाव से गोत्रशुद्धि होती है और सद्भाव से शरीर शुद्ध होता है ॥ ७ ॥

किं न्यासविस्तरेणैव किं भूतशुद्धिविस्तरैः ।
किं वृथा पूजनेनैव यदि भावो न जायते ॥ ८ ॥

यदि भाव नही है तो न्यास के विस्तार से या भूतशुद्धि के विस्तार से तथा पूजा से कोई लाभ नहीं होता । अत: भाव के बिना सभी कर्म व्यर्थ हैं ॥ ८ ॥

केन वा पूज्यते विद्या न वा केन प्रजप्यते ।
फलाभावश्च नियतं भावाभावात् प्रजायते ॥ ९ ॥

यदि भाव का अभाव है तो फल का भी अभाव होता है । फिर किस कारण महाविद्या की उपासना तथा किस कारण जपानुष्ठान किया जाय ॥ ९ ॥

दिव्यभावनिरूपणम्

प्रथमं दिव्यभावस्तु कथ्यते तन्त्रवर्त्मना ।
यद्वर्णं देवता यत्र तत्तेजःपुञ्जपूरितम् ॥ १० ॥

अब तन्त्र मार्ग के अनुसार दिव्यभाव का प्रथमत: वर्णन करता हूँ । जहाँ पर जिस वर्ण के देवता हैं; वह स्थान (=मन्दिर) उन देवता के तेज:पुञ्ज से परिपूर्ण रहता है ॥ १० ॥

तेजोमयं जगत् सर्वं विभाव्य मूर्त्तिकल्पनम् ।
तत्तन्मूर्त्तिमयैर्मन्त्रैः स्वेन स्वेनैव वा पुनः ॥ ११ ॥
आत्मानं तन्मयं दृष्ट्वा सर्वं भावं तथैव च ।
तत्सर्वं योषिति ध्यात्वा चिन्तयेद्यतमानसः ॥ १२ ॥

यह सारा जगत् तेजोमय है; इसी विचार से मूर्त्ति की कल्पना है । तत्तन्मूर्त्तिमय मन्त्रों से अथवा स्व स्व मन्त्रों से अपने को तन्मय देखकर; उसी प्रकार सभी भावों को योषित् (स्त्री मात्र) में भी देखकर; समाहित चित्त हो कुल साधक ध्यान करे ॥ ११ ॥

अष्टाब्दात् षोडशाब्दान्तं युवतीति प्रचक्ष्यते ।
तत्र भावप्रकाशश्चेत् स भावः परमो मतः ॥ १३ ॥

आठ वर्ष से सोलह वर्ष की अवस्था वाली योषित् अर्थात् 'युवती' कही जाती है। यदि उसमें देवी का भाव प्रकाशित होता है तो वह भाव ही सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है ॥ १३ ॥

चरणान्मूलपर्यन्तं पीत्वा पीत्वा पुनः पिबेत् ।
तस्या नखमणिज्योत्स्नाखण्डिताघतमो भवेत् ॥ १४ ॥

साधक उसके चरण से मूल पर्यन्त भाग का बारम्बार नेत्रों से पान कर उसके नखरूपी मणि की ज्योत्स्ना से अपना सारा पाप नष्ट कर देता है ॥ १४ ॥

विमर्श—रामकृष्ण परमहंस इसी प्रकार के शक्ति के उपासक थे। वह अपनी भार्या में ही देवी रूप का दर्शन करते थे।

स्निग्धान्तःकरणो वीरो निर्विकारः सदा भवेत् ।
सुवृत्तजानुना चारुजङ्घोरुजघनश्रिया ॥ १५ ॥
नाभिरोमावली वक्षःस्थलैः पीनपयोधरैः ।
ग्रीवानयनपर्यन्तं केशाग्रैः प्रकरस्मितैः ॥ १६ ॥
यावमधुमदापूर्णदिव्यभावविलोकितैः ।
स्निग्धेन्द्रियश्च सन्तुष्टश्चतुर्वर्गपदाश्रयः ॥ १७ ॥

किन्तु वह वीर साधक उस योषित् पर अन्तःकरण से प्रेम करते हुये भी विर्विकार रहे। इसके बाद उसके गोल वृत्ताकार जानु से, मनोहर जङ्घा, ऊरू और जघन की शोभा से, नाभि, रोमावली, वक्षःस्थल तथा पीन पयोधर से, ग्रीवा से लेकर नेत्र पर्यन्त केशाग्र से तथा उसके मन्द-मन्द मुस्कान से, मधु एवं मस्तीपूर्ण दिव्यभाव के अवलोकन से, सर्वदा अविचलेन्द्रिय एवं सन्तुष्ट हो जावे, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का आश्रय है ॥ १५-१७ ॥

कामकलापूजा

ततः कामकलां ध्यायेत् साधकः स्थिरमानसः ।
निवृत्तिकाले पुनस्तस्या भावपूर्णामृतैर्निजम् ॥ १८ ॥
मुखं विन्दुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम् ।
तदधः सपरार्धञ्च चिन्तयेत्तदधोमुखम् ॥ १९ ॥
सर्वविद्यामृतापूर्णं सर्ववाग्विभवप्रदम् ।
सर्वार्थसाधकञ्चैव सर्वरञ्जनकारकम् ॥ २० ॥

सर्वदेवादिभूतञ्च सर्वदेवनामस्कृतम् ।
सर्वाह्लादनसम्पूर्णं सर्वमोहनकारणम् ॥ २१ ॥
सर्वार्थसाधनञ्चैव सर्ववश्यप्रवर्त्तकम् ।
एवं कामकलाध्यानं सुगोप्यं साधकोत्तमैः ॥ २२ ॥

कामकला का ध्यान—इसके बाद साधक उसकी कामकला (ईं) का स्थिर चित्त हो ध्यान करे । ध्यान की निवृत्ति के बाद पुनः अपने भावपूर्ण चित्त से बिन्दु के आकार वाला मुख, उसके नीचे दो स्तन मण्डल, उनसे नीचे अधोमुख रहने वाली रोमावली युक्त, सर्व विद्यामृतापूर्ण, सम्पूर्ण वाग्विभव प्रदान करने वाली, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली, सब को प्रसन्न करने वाली, सबकी उत्पत्ति का स्थान, सभी देवों से नमस्कृत, सभी प्रकार की प्रसन्नता से पूर्ण, सब को मोहित करने वाली, सर्वार्थसाधिका सब को वश में करने वाली इस प्रकार की कामकला का उत्तम साधक ध्यान करे और उसे सुगोप्य रखे ॥ १८-२२ ॥

एतद्रूपं तु चात्मानं चिन्तयेत् साधकः सदा ।
मेढ्रस्थाने शिवाकारमाधारे कनकप्रभम् ॥ २३ ॥
नाभिस्थं सूर्यविम्बाभं तरुणादित्य वर्चसम् ।
हृदि वह्निशिखाकारं तदूर्ध्वे भास्करद्युतिम् ॥ २४ ॥
कण्ठे दीपशिखाकारं घण्टा वैदूर्यसन्निभम् ।
लम्बिके चन्द्रविम्बाभं भ्रूमध्ये रत्नवद्रुचिम् ॥ २५ ॥
नयने विश्वतेजश्च चिन्तयेदेषु साधकः ।

सदाशिव का ध्यान—इसके बाद साधक अपने को इस प्रकार के रूप में ध्यान करे । मेढ्र (लिङ्ग) स्थान में शिव का आकार, जो आधार में सुवर्ण के समान चमकीला, नाभि में तरुणादित्य के समान तेजस्वी, सूर्य बिम्ब के समान, हृदय में अग्नि की शिखा के समान, उसके ऊपर सूर्य के समान प्रकाश करने वाले, कण्ठ में दीप शिखा के आकार वाले, गला में वैदूर्य के समान, लम्बिका में चन्द्र बिम्ब के समान, आभा वाले, भ्रूमध्य में रत्न की द्युति के समान आभा वाले, नेत्र में विश्व एवं तैजस स्वरूप सदाशिव का चिन्तन करे ॥ २३-२६ ॥

धृत्वा स्पृष्ट्वाऽथवा दृष्ट्वा ध्यात्वा कामकलातनूम् ॥ २६ ॥
कुलेषु तत्कलारूपमकुले परिचिन्त्य च ।
क्षणं तद्वद्विमर्शेन जायते भावसञ्चयः ॥ २७ ॥

फिर कामकला को पकड़कर, अथवा स्पर्शकर, अथवा देखकर, अथवा ध्यान कर, कुल में कलारूप तथा अकुल में भी उसी प्रकार ध्यान कर, क्षण मात्र में विचार करने से उस साधक में भाव का सञ्चय हो जाता है ॥ २६-२७ ॥

कुलीनो जायते यस्मात्तत् सर्वं कथितं शुभम् ।
कुले साक्षाद् यतस्तत्त्वं देवी तिष्ठति तत्त्वतः ॥ २८ ॥

इस प्रकार जिससे साधक कुलोपासक बन जाता है वह उपाय हमने प्रदर्शित किया । क्योंकि कुल में सभी तत्त्व तथा स्वयं देवी भी तत्त्वयुक्त होकर विद्यमान रहती है ॥ २८ ॥

तेन तत्कुलशास्त्राङ्गे पूजनीया प्रयत्नतः ।
कुलदेवी चाद्या देवी निश्चला यस्य विद्यते ॥ २९ ॥
स धन्यः पुरुषो लोके निश्चलो यत एव सः ।
इति कामकलाध्यानं कथितं सर्वसिद्धिदम् ॥ ३० ॥

इसलिये उस कुलशास्त्र के अङ्ग में देवी की पूजा करनी चाहिये । जिसमें यह आद्या कुलदेवी निश्चल होकर निवास करती है, इनकी जिसने पूजा की वह पुरुष धन्य है । वही लोक में सर्वथा निश्चल है । यहाँ तक हमने सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाला काम कला का ध्यान कहा ॥ २९-३० ॥

परयोषाधिका ज्ञेया निजस्त्री प्रीतिवर्द्धिनी ।
आगते स्वागतं कुर्याज्ल्लीलायोगात् स्वलीलया ॥ ३१ ॥

कुल पूजा के लिये दूसरे की स्त्री अधिक (श्रेष्ठ) मानी गई है । अपनी स्त्री में कुल पूजा से प्रीति बढ़ती है । यदि भगवती की लीला योग से, अथवा स्वयं अपनी लीला से स्त्री स्वयं आ जावे, तो उसका स्वागत करना चाहिये ॥ ३१ ॥

तल्पाच्चोत्थाप्य हस्ताग्रे धृत्वा सम्वेशयेत्तः ।
वामभागसमासीनां सुवेशीं कामरूपिणीम् ॥ ३२ ॥
ध्यात्वा कामकलां तत्र विन्द्वादिपूर्वविग्रहाम् ।
गन्धमाल्यं ततो दत्त्वा कुलद्रव्याणि योजयेत् ॥ ३३ ॥

अपने आसन से उठकर, उसके हाथ का अग्रभाग पकड़कर, सर्वप्रथम आसन पर बैठावे । इस प्रकार वामभाग में बैठी हुई, सुवेशा, कामरूपिणी देवी के विन्द्वादि पूर्वकथित विग्रह वाले कामकला का ध्यान करे । इसके बाद गन्ध माल्य प्रदान कर उसके सामने कुलद्रव्य स्थापित करे ॥ ३२-३३ ॥

हेतुयुक्तं सताम्बूलं दत्त्वा भुक्त्वा च साधकः ।
पृच्छेत् कुलकथां सर्वां लौकिकालौकिकादिकाम्॥ ३४ ॥

मद्य युक्त ताम्बूल देकर, साधक स्वयं भोजन कर, उससे लौकिक तथा अलौकिक कुलकथा के विषय में पूछे ॥ ३४ ॥

तस्यां निन्दाभयक्रोध कटूक्तियोजनं यदि ।
करोति कुलशास्त्रज्ञः सिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

यदि साधक उससे निन्दा, भय, क्रोध तथा कटूक्ति (निष्ठुर भाषण) युक्त व्यवहार करता है, तो वह कुलशास्त्र का ज्ञाता साधक सिद्ध होकर भी निश्चित रूप से विनष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

हित्वा दोषादिकं तत्र स्नेहवृष्टीव शिक्षया ।
भावयेन्न कटूक्त्या वै कृते तु निष्फलं भवेत् ॥ ३६ ॥

उसके दोषों की ओर ध्यान न देकर, स्नेह दृष्टि से देखते हुये उसे शिक्षा देवे। किन्तु निन्दा, भय एवं क्रोध युक्त निष्ठुर वचन न बोले; क्योंकि ऐसा करने से उसे कोई फल नहीं होता ॥ ३६ ॥

कुलशास्त्रे रहस्यं तु कुलमूलं ततो जगत् ।

उसे कुलशास्त्र के रहस्य की इस प्रकार शिक्षा देवे कि यह सारा जगत् कुल से उत्पन्न हुआ है ॥ ३७ ॥

वरं कुलमनोस्त्यागो वरं कुलगुरोरपि ॥ ३७ ॥
न त्यागयोग्यं स्वकुलं दृष्टदोषेण सर्वथा ।
स्वकुले कुलबाहुल्यं यदि स्याद् भाग्ययोगतः ॥ ३८ ॥

कुल मन्त्र का त्याग तथा कुलगुरु का त्याग भले ही हो जावे; किन्तु दोषों के दिखाई पड़ने पर भी अपने कुल (स्त्री) का त्याग उचित नहीं है । यदि भाग्यवशात् अपना कुल (स्त्री) हो तो कुल की बहुलता होती है ॥ ३७-३८ ॥

समरूपं विधातव्यं वैपरीत्यं परित्यजेत् ।
पृथक् स्थानं पृथग्ध्यानं पृथक्पूजा पृथक् स्तुतिः ॥ ३९ ॥
न कर्त्तव्या प्रयत्नेन किमेभिर्बहुजल्पितैः ।
वीरापत्यकुले चैव वीरपत्नीकुलेऽपि च ॥ ४० ॥
सदा तिष्ठति देवेशि नात्र कार्या विचारणा ।
तासां निश्वासयोगेन तद्देशश्चैव नश्यति ॥ ४१ ॥

अपने कुल (स्त्री) से समता का व्यवहार करना चाहिये विरुद्ध व्यवहार सर्वथा वर्जित करे । उससे अलग स्थान में अलग रहकर ध्यान, अलग पूजा और अलग प्रार्थना कदापि नहीं करनी चाहिये । प्रयत्नपूर्वक वर्जित करनी चाहिये । इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ? महाभगवती वीरापत्य कुल में तथा वीरपत्नी कुल में सर्वदा निवास करती हैं । इसमें विचार की आवश्यकता नहीं है । यदि कुल स्त्री ने

दुःखपूर्वक श्वास लिया तो सारा देश नष्ट हो जाता है ॥ ३९-४१ ॥

प्रमोदादमृतस्नानं देव्याः स्यान्नात्रसंशयः ।
कुलजा सा महायुद्धे वीरास्फालननादिनी ॥ ४२ ॥

जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न होकर निवास करती हैं वहाँ स्वयं भगवती अमृत में स्नान करती हैं इसमें संशय नहीं । ऐसी कुलजा महायुद्ध में बड़े-बड़े वीरों को भी आस्फालित कर देती है अर्थात् पराभूत कर देती है ॥ ४२ ॥

न दोषमनुगच्छन्ती पालयन्ती यतो जगत् ।
मात्सर्यं पतिविद्वेषः कटूक्तिः कलहादिकम् ॥ ४३ ॥
नीचाभिगमनाच्चैव न सा देवी हरप्रिया ।
एवं कुलं परित्यज्य साधयेत् सिद्धिमात्मनः ॥ ४४ ॥

जिसमें दोष नहीं है ऐसी वह सारे जगत् का पालन करती है । किन्तु जिसमें मात्सर्य, पति द्वेष, निष्ठुर भाषण, कलहादि दोष हैं और जो नीचों के साथ अभिगमन करती है, वह शिव को प्रिय नहीं लगती । ऐसी दूषित कुलजा (स्त्री) का परित्याग कर साधक अपनी सिद्धि करे ॥ ४३-४४ ॥

फलपाकविधानम्

फलपाकविधानं किं कथ्यते तन्त्रवर्त्मना ।
वीरपत्नी च परमा स्वयमेव महेश्वरी ॥ ४५ ॥

अब जो स्त्री पूजा के योग्य हैं, तन्त्र मत के अनुसार उनकी पूजा से प्राप्त होने वाला फल कहता हूँ । वीर साधक की पत्नी स्वयं परमानन्दकारिणी तथा स्वयं महेश्वरी है ॥ ४५ ॥

तत्सुता कुलविद्यानामाद्या रौद्री सनातनी ।
तद्वधू भुवनेशानी सर्वमन्त्रप्रबोधिनी ॥ ४६ ॥

उस वीर साधक की कन्या कुल विद्या नाम वाली है और वही आद्या, रौद्री एवं सनातनी है । उसकी वधू (पतोहू) भुवनेशानी सर्वमन्त्रप्रबोधिनी है ॥ ४६ ॥

न्यायतोऽन्यायतो वापि वीरपत्नी गुरुर्यदि ।
दीक्षणादेव सर्वार्थसाधकः साधको भवेत् ॥ ४७ ॥

न्याय (विधिपूर्वक) अथवा अन्याय (विना विधि) से यदि वह वीर पत्नी मन्त्र-दात्री हो गई हो तो उसकी दीक्षा मात्र से साधक सर्वार्थसाधक बन जाता है ॥४७॥

यदि भाग्यवशाद्देवि वीरपत्नी तु लभ्यते ।
फलपाकं तत्र कृत्वा किं न सिध्यति भूतले ॥ ४८ ॥

हे देवि ! यदि भाग्यवश मन्त्र के लिये वीरपत्नी मिल जावे, तो उसमें फल पाक (=सिद्धि) करके साधक के लिये कौन-सा ऐसा मनोरथ संसार में है जो सिद्ध न हो ॥ ४८ ॥

फलपाकविधानं तु सर्वदेवनमस्कृतम् ।
दृष्टादृष्टाफलञ्चैव देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ ४९ ॥
आयान्ति फलपाकार्थं तस्माद्यत्नविशेषतः ।
विसर्जनं विधातव्यं गोपनं भावशक्तिकम् ॥ ५० ॥

फलपाक विधान, सर्वदेवनमस्कृत एवं दृष्ट तथा अदृष्ट फल वाला है । इस फल पाक (=सिद्धि) के लिये देवता, गन्धर्व एवं किन्नर आते हैं । इसलिये इसमें विशेषतः प्रयत्न करता रहे । इस (आगन्तुक सिद्धि) का विसर्जन करे और भावशक्ति को गुप्त रखे ॥ ४९-५० ॥

पातिव्रत्यप्रशंसा

तत्तत्कल्पविधानेन कुलं कुर्यात् सुशिक्षितम् ।
यतः पतिव्रताधर्मात् धर्मो नास्ति जगत्त्रये ॥ ५१ ॥

वीर साधक कुल (स्त्री) को तत्तत् कल्पों में विहित विधान के अनुसार सुशिक्षित करे । उसे यह बतावे कि पतिव्रता धर्म से बढ़कर तीनों जगत् में कोई धर्म नहीं है ॥ ५१ ॥

पतिः प्राणप्रदो नित्यं पतिरेव परा गतिः ।
पतिरेव परं ब्रह्म पतिः प्राणाधिकः प्रभुः ॥ ५२ ॥

पति ही स्त्री में प्राण देने वाला है । पति ही स्त्रियों के लिये परा गति है । पति स्त्रियों के लिये परंब्रह्म है । पति प्राण से भी अधिक समर्थ है ॥ ५२ ॥

सर्वतीर्थमयः स्वामी सर्वदेवमयः पतिः ।
सर्वदेवीमयश्चैव पतिरेवमहागुरुः ॥ ५३ ॥

पति सर्वदेवमय है; पति ही स्वामी तथा सर्वतीर्थमय है । पति सर्वदेवीमय तथा महागुरु भी पति ही है ॥ ५३ ॥

सर्वदेवमयं हित्वा या नारी परगोचरा ।
शूकरी गर्दभी काको श्रृगाली जायते ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

ऐसे सर्वदेवमय पति का त्याग कर जो स्त्री पर पुरुष के साथ हो जाती है वह दूसरे जन्म में शूकरी, गर्दभी, काकी और श्रृगाली निश्चित रूप से होती है ॥५४॥

अहं तु पुत्रवद्देवि नात्र भीतिर्न च त्रपा ।

तव लिङ्गे यो हि याति पतिरूपधरः क्वचित् ॥ ५५ ॥

हे देवि! मैं तो आपके पुत्र के समान हूँ । अतः मुझसे भय एवं लज्जा मत करो क्योंकि जो पतिरूप धारण कर आपके पास जाता है वह आपका स्वरूप ही हो जाता है ॥ ५५ ॥

मूलमन्त्रजप्ततोयं तद्गात्रे देयमीश्वरि ।
तदा यदि बहिर्न स्यात्तदा स्वपतिरेव हि ॥ ५६ ॥
इत्यादिशिक्षया कार्याः शिक्षिताः कुलयोषितः ।
आगत्योपविशेत् पार्श्वे मुखं वीक्ष्य स्थिरा भवेत् ॥ ५७ ॥
पतिभावेङ्गिते दक्षा हृष्टा स्यात् पतिदर्शने ।
उत्तरे नोत्तरं दद्यात् व्याहरेच्छुभकर्मणि ॥ ५८ ॥

हे ईश्वरि ! इतना कहकर साधक मूल मन्त्र का जप करे और उसके शरीर पर जल छिड़के । इतने पर भी यदि वह बाहर न जावे । तब उसका पति स्वयं ही उस कुलयोषित् को उक्त प्रकार की शिक्षा देकर शिक्षित बनावे । फिर वह कुलयोषित् पार्श्व में आकर, पति का मुख देखकर, स्थिर हो जावे । ऐसी कुलमार्ग से शिक्षित स्त्री पति का भाव, उसके सङ्केत मात्र से जान लेवे और उसके दर्शन से सन्तुष्ट हो जावे । उसके कहने पर उत्तर न देवे । शुभ कर्म में स्वयं उससे बातचीत करे ॥ ५६-५८ ॥

रक्षां कृत्वा विधानेन साधकः स्थिरमानसः ।
योगिनीनां महापूजा बटुकानां तथैव च ॥ ५९ ॥

तदनन्तर साधक स्थिर चित्त हो, विधानपूर्वक अपनी रक्षा कर, योगिनियों तथा बटुक देवता की महापूजा करे ॥ ५९ ॥

कार्या विघ्नविनाशार्थं कुलवारर्क्षयोगतः ।

विघ्न विनाश के लिये—ये सभी कार्य कुलशास्त्र में कहे गये दिन, वार एवं नक्षत्रों में विधिपूर्वक करे ॥ ६० ॥

तासां मूलतरोर्मूले मूलविद्याञ्च कालिकाम् ॥ ६० ॥
विसर्जनविधौ कुर्यात् साधकः कुलपातनम् ।
यद्रूपे प्रीतिरेतस्य कुलस्य कुलवित्तमः ॥ ६१ ॥
तद्रूपं विग्रहं कृत्वा साधकः स्थिरमानसः ।
तत्र बीजार्पणं कृत्वा कुर्वन्ति कुलरक्षणम् ॥ ६२ ॥

मूल नक्षत्र वाला वृक्ष (साखू) के मूल में साधक योगिनियों की पूजा कर मूल

विद्या तथा कालिका भगवती का विसर्जन करते समय कुलपातन (वीर्य) करे । उसके कुल स्त्री की जिस रूप से प्रसन्नता हो, वैसा रूप धारण कर स्थिरचित्त हो, बीजार्पण कर कुल की रक्षा करे ॥ ६१-६२ ॥

लिङ्गैर्वाक्यैः पदैश्चैव ज्ञात्वा कुलसमुद्भवम् ।
देवजातं नरैर्जातं यथार्थकुलशास्त्रतः ॥ ६३ ॥
ज्ञात्वा कुलविभागं तु पञ्चमात् परतो बुधः ।
सप्तमाष्टममासाद्वा वृक्षमध्ये सरोवरे ॥ ६४ ॥
हस्तं दत्वा पादुकाख्यां विद्यां संहारयोगतः ।
जपेदष्टसहस्त्रं वै स्वयं वृक्षात् पतिष्यति ॥ ६५ ॥
पादुकां पूजयामीति कथितः पादुकामनुः ।

चिह्नों, वाक्यों और पदों से तथा यथार्थ कुल शास्त्र से उसमें देवजात तथा नरजात का ज्ञान कर पाँचवें मास, सातवें मास, अथवा आठवें मास में विद्वान् साधक कुल का विभाग समझ कर, सरोवर स्थित किसी वृक्ष के नीचे, पादुका पर हाथ रखकर, संहार मुद्रा से, प्रथम कहे गये 'पादुकां पूजयामि' इस मन्त्र का आठ सहस्त्र जप करे । उसी समय वृक्ष से फल गिरेगा ॥ ६३-६६ ॥

एवं कृते यत् पतितं तत्फलं देवनिर्मितम् ॥ ६६ ॥

ऐसा करने से जो फल गिरा है, उसे देवनिर्मित समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

स्वस्वामिकञ्च पतति वैपरीत्यागमागमात् ।
एतल्लिङ्गफलं ज्ञात्वा आनीय क्षालयेत्ततः ॥ ६७ ॥
गन्धद्रव्यं कटुद्रव्यं दत्त्वा च साधकोत्तमः ।
धेनुमुद्रामृतीकृत्य होमं कुर्यादलक्षितः ॥ ६८ ॥

संहार मुद्रा द्वारा इस मन्त्र से किये गये जप से आगत होने के कारण उस फल का स्वयं अपने को मालिक समझे । स्वस्वामिक इस प्रकार चिह्न द्वारा फल का ज्ञानकर उस फल को लाकर प्रक्षालित करे । फिर गन्ध, द्रव्य तथा कटु द्रव्य देकर वह साधक धेनु मुद्रा दिखाकर उसका अमृतीकरण करे । फिर गुप्त रूप से उसका हवन करे ॥ ६७-६८ ॥

रात्रावेवं विधायैव यज्ञशेषं भुजेत्ततः ।
भुक्तमात्रे तु तस्मिन् वै चिरजीवी क्षितौ भवेत् ॥ ६९ ॥

इस प्रकार की सारी क्रिया रात्रि में ही करे । फिर यज्ञशेष भोजन करे । उस यज्ञशेष रूप फल के भोजन करने से मन्त्रज्ञ साधक इस पृथ्वी तल पर चिरञ्जीवी बन जाता है ॥ ६९ ॥

मुख्या मधुमती तस्य करस्था भोगदायिनी ।
नित्या मधुमती तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ७० ॥

ऐसा करने वाले साधक के हाथ में भोग प्रदान करने वाली श्रेष्ठ मधुमती विद्या, जो नित्य एवं माधुर्यपूर्ण है, आ जाती है । इसमें संशय नहीं ॥ ७० ॥

मधुमत्याः फलञ्चैव कथयामि शृणुष्व मे ।
सुधाधारासमा वाणी वक्त्रात्तस्य प्रजायते ॥ ७१ ॥

मधुमती विद्या—अब मैं मधुमती विद्या का फल कह रहा हूँ उसे सुनिए । ऐसे मधुमती विद्या की सिद्धि करने वाले साधक के मुख से अमृत की धारा के समान वाणी निकलती है ॥ ७१ ॥

सर्वज्ञः सर्वशास्त्राणामधीशः कुलनायकः ।
चन्द्रसूर्यावधि श्रीमान् भुनक्ति बहुलं सुखम् ॥ ७२ ॥

वह कुलनायक सर्वज्ञ तथा सभी शास्त्रों का अधीश्वर हो जाता है । जब तक सूर्य और चन्द्रमा है, तब तक वह श्री से संयुक्त होकर नाना प्रकार के सुखों को भोगता है ॥ ७२ ॥

देवकन्याप्सरोभिश्च दिव्यगन्धर्वचारणैः ।
नानाविलाससम्पन्नैः कलाकुशलकोविदैः ॥ ७३ ॥
नृत्यगीतैश्च बहुलैर्नानोपायरसायनैः ।
अमृताद्यैः प्रीतिकरैर्देवभोग्यैः सुदुर्लभैः ॥ ७४ ॥
देवकन्याहस्तगतैरथमारुह्यसोत्सुका ।
आयाति साधकाकाङ्क्षहृदया परमेश्वरी ॥ ७५ ॥

कामकला में कुशल, कामकला की ज्ञाता देव कन्याओं एवं अप्सराओं के और अनेक प्रकार के काम विलास सम्पन्न दिव्य गन्धर्व एवं चारणों द्वारा किये गये नृत्य, गीतों तथा उनके द्वारा समर्पित अनेक प्रकार के उपायनों, रसायनों द्वारा प्रसन्न करने वाले अत्यन्त दुर्लभ, देवताओं के द्वारा भोग्य के योग्य अमृतादि पदार्थों का वह साधक भोग करता है । उस साधक के द्वारा इच्छा व्यक्त किये जाने पर देव कन्याओं के हाथ से चलाये गये रथों पर बैठकर स्वयं परमेश्वरी वहाँ आ जाती हैं ॥ ७३-७५ ॥

यत्र कामेश्वरो देवश्चिन्तारसमुपागतः ।
तत्रैवाऽऽयान्ति सततं देवकन्याः सहस्रशः ॥ ७६ ॥
इन्द्रयोग्यां पुरीं कृत्वा वसन्ति साधकैः सह ।
तत्रोपगतपीठस्था भुक्त्वा तु बहुलं सुखम् ॥ ७७ ॥

चिरकालं भुवि स्थित्वा चान्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ।

जहाँ भगवान् कामेश्वर ध्यान रस में मग्न रहते हैं, वहीं पर हजारों की संख्या में देव कन्यायें स्वयं आ जाती हैं । इस प्रकार वे सभी उस स्थान को इन्द्र के योग्य पुरी स्वर्गपुरी बनाकर उस साधक के साथ निवास करती है । साधक इस प्रकार भूलोक में नाना प्रकार के भोगों को भोगता है और अन्त में मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ७६-७८ ॥

साधकानां कुलज्ञानां न दोषः फलपातने ॥ ७८ ॥
एतत्फलनिपातार्थं कुलप्राप्त्या पदे पदे ।
विघ्नं करोति सर्वत्र निजसङ्कोचकारणात् ॥ ७९ ॥

कुल धर्म के ज्ञाता द्वारा उस फल के तोड़ने पर कोई दोष उसे नहीं लगता । इस फल के गिराने से कुलमार्ग की प्राप्ति हो जायेगी इस आशङ्का से सर्वत्र पद-पद पर योगिनियाँ विघ्न करती हैं । क्योंकि उस फल की प्राप्ति से योगिनियों की प्रतिष्ठा में, सङ्कोच होकर कमी आती है ॥ ७८-७९ ॥

फलं वृक्षोपरि तथा विघ्नमाचरित ध्रुवम् ।
फलवृक्षस्य हानिश्चेत् कदाचिद्दैवयोगतः ॥ ८० ॥
साधकोऽपि भवेदत्र तदा च सविकल्पकः ।
तावन्न कुलपूजा स्याद्यावत्तु निष्कृतिर्भवेत् ॥ ८१ ॥
तावन्निजकुलालापा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।
एतत् कार्यविधाने तु योग्यो नास्तीह भूतले ॥ ८२ ॥

जब तक वृक्ष पर फल है, तब तक योगिनियाँ विघ्न उत्पन्न करती हैं । यदि दुर्भाग्यवश फल वाला वह वृक्ष ही समाप्त हो गया, ऐसी अवस्था में साधक को सविकल्पक सन्देहयुक्त होना चाहिये । अतः तब तक कुलपूजा वर्जित रखे, जब तक उसकी निष्कृति (प्रायश्चित्त) नहीं कर लेता ॥ ८०-८२ ॥

अतिदूरस्थिते देशे नामवर्णविवर्जिते ।
करोति यदि तत्र स्याद्विघ्नं वा फलपातनम् ॥ ८३ ॥
न दोषैस्तत्र बाध्यन्ते साधकाः कुलसेवकाः ।
विघ्नप्रधानमेतत्तु कदाचित् फलसाधनम् ॥ ८४ ॥

नाम वर्ण विवर्जित, अत्यन्त दूर रहने वाले देश में, यदि ऐसा करता है अर्थात् वहाँ यदि कोई विघ्न उपस्थित करता है, अथवा फल गिरा देता है, तब कुलसेवक साधक दोष से लिप्त नहीं होते । अतः फल साधन रूप कार्य अत्यन्त विघ्न युक्त है ॥ ८३-८४ ॥

सङ्केतेनैव कर्त्तव्यं सर्वत्र फलसाधनम् ।
स्वफलं समनुप्राप्य क्रियते यदि पामरैः ॥ ८५ ॥
फलं भवति तेनैव पापेन बध्यते ध्रुवम् ।
दिव्यभावः साधकेन्द्रो मर्त्त्यो शक्रसमो भवेत् ॥ ८६ ॥

सङ्केत से ही फल साधन की क्रिया का सर्वत्र सम्पादन करे । यदि पामर जन अपना फल प्राप्त कर लेने पर भी इस क्रिया को करते हैं तो उसके फलस्वरूप उस पाप के द्वारा निश्चित रूप से वह (अर्धसिद्धि प्राप्त साधक) मारा भी जाता है। अतः जो मनुष्य दिव्य भाव सम्पन्न हो जाता है, वह इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली हो जाता है ॥ ८५-८६ ॥

एष ते कथितो दिव्यो भावः परसुखावहः ।
न देयो यस्य कस्यापि पशोः गोप्यः प्रयत्नतः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार पराशक्ति से प्राप्त होने वाला सुखकारी दिव्य भाव का वर्णन हमने किया । इसे जैसे तैसे किसी निठल्लू को नहीं देना चाहिये और पशुभाव वालों से तो सदैव गोपन करना चाहिये ॥ ८७ ॥

वीरभाववर्णनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वीरभावञ्च मध्यमम् ।
निर्द्वन्द्वमानसो भूत्वा हृदि कामकलातनुः ॥ ८८ ॥
निशि पूजा प्रकर्त्तव्या हेतुयुक्तः सदा भवेत् ।
निजं कुलं समादाय स्वयं भैरवरूपधृक् ॥ ८९ ॥

वीरभाव विधान—अब इसके बाद मध्यम वीरभाव को कहता हूँ । साधक निर्द्वन्द्व (चिन्तारहित) भाव से हृदय में कामकला का शरीर धारण कर रात्रि में पूजा करे । साधक सदैव मद्यपान (हेतु) से युक्त रहे । अपनी कुल (स्त्री) प्राप्तकर स्वयं भैरव का स्वरूप धारण करे ॥ ८८-८९ ॥

कुलञ्च भैरवीरूपं तद्गात्रे न्यासविस्तरम् ।
विन्यसेत् सकलं न्यासं नवयोन्यात्मकं तथा ॥ ९० ॥

अपने कुल (स्त्री) को भैरवी रूप बनाकर, उसके शरीर में नवयोन्यात्मक न्यास सहित, समस्त न्यास करे ॥ ९० ॥

प्रसूनतूलिकामध्ये पुष्पप्रकरसङ्कुले ।
नानागन्धसमाकीर्णं कुलद्रव्येण यन्त्रकम् ॥ ९१ ॥

अनेक पुष्प समूहों से संयुक्त, पुष्प के समान कोमल रूई के गद्दे पर,

कुलद्रव्य के द्वारा अनेक प्रकार के सुगन्ध से युक्त यन्त्र का निर्माण करे ॥ ९१ ॥

लिखित्वा पूजयेच्छक्तौ घटस्थापनपूर्वकम् ।
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा पूर्वोक्तैकतमं घटम् ॥ ९२ ॥
संस्थाप्य हेतुनाऽऽपूर्य ब्राह्मणादिविभेदतः ।
तत्र मन्त्रं विलिख्यादौ यद्यत्कुलसमुद्भवम् ॥ ९३ ॥

फिर घट स्थापनपूर्वक शक्ति स्थान में पूजन करे । पूर्वोक्त रीति से मण्डल निर्माण कर, पूर्वोक्त कहे गये कलशों में, कोई एक कलश स्थापित करे । उसे ब्राह्मणादि से अलग रखकर मद्य से परिपूर्ण करे । फिर उसमें कुलमन्त्र में होने वाले तत्तन्मन्त्रों को लिखे ॥ ९१-९३ ॥

ध्यात्वेष्टदेवतां तत्र जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याऽथ अमृतं तद्विचिन्तयेत् ॥ ९४ ॥

तदनन्तर इष्टदेवता का ध्यान कर १०८ बार मन्त्र का जप करे । फिर धेनु मुद्रा प्रदर्शित कर उस मद्य में अमृत की भावना करे ॥ ९४ ॥

दृष्टाऽर्घ्यस्य तु पात्रं वै नृत्यन्ति योगिनीगणाः ।
इन्द्रादयः सुराः सर्वे नृत्यन्ति मधुलोलुपाः ॥ ९५ ॥

उस अर्घ्यपात्र को देखते ही योगिनियाँ नाचने लगती हैं तथा उस मद्य रूप मधु के लिये लोलुप होकर इन्द्रादि देवगण भी नाचने लगते हैं ॥ ९५ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नृत्यन्ति हर्षतत्पराः ।
अर्घ्यपात्रं त्रिधा कृत्वा गुरवे चैकभागकम् ॥ ९६ ॥
एकं कुलाय दत्त्वा वै एकेन देवतर्पणम् ।
पीत्वा कुलरसं पूर्ण नानालङ्कारभूषितः ॥ ९७ ॥
आनन्दरूपवान् भूत्वा पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
तत्तत्कल्पोक्तविधिना तत्तन्मन्त्रं प्रपूज्य च ॥ ९८ ॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवादि देवता अत्यन्त प्रसन्न हो उठते हैं । पुनः उस अर्घ्यपात्र का तीन भाग करे । एक भाग गुरु को समर्पित करे और एक कुल (शक्ति) को देकर एक से तर्पण करे । तर्पण शेष कुल-रस को पीकर अनेक अलङ्कारों से भूषित आनन्द स्वरूप धारण कर परमेश्वरी का पूजन करे । तत्तत् कल्पोक्त प्रकार से तत्तन्मन्त्रों से पूजा करे ॥ ९६-९८ ॥

विसर्जनं विधायाथ स्वकुले योजयेत्ततः ।
भक्तिस्वरसपानेनदेवी भुनक्ति चामृतम् ॥ ९९ ॥

तत्तत्कुलरसास्वादैर्देव्याः प्रीतिः प्रजायते ।
तत्फलग्रहणादेव सुमेरुश्रृङ्गरोहणम् ॥ १०० ॥

पूजन के बाद विसर्जन कर उसे अपने कुल (स्त्री) में समर्पित करे । उसकी भक्ति रस पान से देवी स्वयं अमृत का भोजन करती है । उस कुल के रसास्वादन से देवी को अत्यन्त प्रसन्नता होती है । उस फल को ग्रहण कर साधक सुमेरु के श्रृङ्ग पर चढ़ जाता है अर्थात् देवत्व को प्राप्त कर लेता है ॥ ९९-१०० ॥

लतालिङ्गनमात्रेण सुधाधौतकलेवरः ।
मूलयोगे कृते तत्र जपेदष्टसहस्रकम् ॥ १०१ ॥

वहाँ पर लता (कुलस्त्री) के आलिङ्गन मात्र से उस साधक का शरीर अमृत के समान स्वच्छ हो जाता है । इस प्रकार मूल याग सम्पादन कर आठ सहस्र जप करे ॥ १०१ ॥

जपस्यान्तं हविर्द्रव्यं गृहीत्वा तेन तर्पयेत् ।
विधाय तर्पणं चैव प्रदक्षिणमनुव्रजन् ॥ १०२ ॥
कल्पोक्तेन प्रणम्याऽथ स्तोत्रेण तोषयेत्ततः ।
इदं वीरकुलं चैव सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ १०३ ॥

साधक जप कर लेने के अनन्तर हवि द्रव्य लेकर उससे तर्पण करे । तदनन्तर तर्पण कर प्रदक्षिणा करे । अपने सम्प्रदायानुसार भगवती को प्रणाम कर स्तोत्रों से स्तुति कर भगवती को सन्तुष्ट करे । यही अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर वीरभाव की विधि है ॥ १०२-१०३ ॥

यद्देशे विद्यते वीरस्तत्कुलं चैव तत्सुतः ।
न च मारीभयं तत्र न च राजभयादिकम् ॥ १०४ ॥

ऐसा वीर, उसका लड़का, उसका कुल, जिस देश में निवास करता है, वहाँ महामारी का भय तथा राजभयादि किसी प्रकार का भय नहीं होता ॥ १०४ ॥

सुमङ्गलं सदा तत्र धनपुत्रविवर्धनम् ।
लक्ष्मीर्वाणी सदा तत्र सुस्थिरा भवति ध्रुवम् ॥ १०५ ॥

ऐसे स्थान पर निवास करने वालों का नित्य मङ्गल होता है । उनके धन, पुत्र तथा आयु की अभिवृद्धि होती है । किं बहुना, वहाँ महालक्ष्मी और वाणी सुस्थिर रहती है ॥ १०५ ॥

मन्त्रपुष्पं प्रबोधिन्यामवश्यं ब्रह्ममूलतः ।
योजनीयं प्रयत्नेन न च विघ्नं प्रवर्तते ॥ १०६ ॥

प्रबोधिनी में ब्रह्ममूल (ॐ) से मन्त्र पुष्प द्वारा भगवती की प्रयत्नपूर्वक पूजा करने से विघ्न नहीं होता ॥ १०६ ॥

नान्यवीरेण तद्योगं ग्रहणे दैवतैरपि ।
योगिनीभिर्न लुप्तं तन्न च पापेन युज्यते ॥ १०७ ॥

देवताओं के ग्रहण के लिये वही योग है, अन्य काल प्रशस्त नहीं । योगिनियाँ भी उसे लोप नहीं कर सकतीं और उससे साधक को कोई पाप भी नहीं लगता ॥ १०७ ॥

यत्र तत्र कुजे वारे श्मशाने गमने कृते ।
पूजाफलं भवेत्तत्र सप्तवासरसम्मितम् ॥ १०८ ॥

जिस किसी स्थान में, अथवा श्मशान में, भौमवार के दिन भगवती को प्रणाम करने से, सातों दिन के पूजा का फल प्राप्त हो जाता है ॥ १०८ ॥

चतुर्दश्यां गते तत्र पक्षपूजाफलं लभेत् ।
न गते नार्च्चिते स्थाने पशुरेव न संशयः ॥ १०९ ॥

चतुर्दशी तिथि को यदि श्मशान में जाकर देवी को प्रणाम करे, तो पक्ष के पूजा का फल प्राप्त हो जाता है । विहित स्थान पर न जाने से, स्थान पर पूजा न करने से वह वीर पशु ही रहता है, इसमें संशय नहीं ॥ १०९ ॥

नान्यस्मादधिको देव इति चिन्तापरायणः ।
साधके क्षोभमापन्ने देव्याः क्षोभः प्रजायते ॥ ११० ॥

इस देवता से बढ़कर कोई अन्य देव नहीं है, अथवा है, इस प्रकार की चिन्ता करने वाले संशयान्वित साधक के हृदय में क्षोभ होने से भगवती स्वयं क्षुब्ध हो जाती हैं ॥ ११० ॥

तस्माद्यत्नाद् भोगयुक्तो भवेद्वीरवरः सुधीः ।
भोगेन मोक्षमाप्नोति भोगेन कुलसाधनम् ॥ १११ ॥

इसलिये वीरभाव वाला श्रेष्ठ साधक निश्चिन्त हो, प्रयत्नपूर्वक भोगयुक्त होकर पूजा करे । क्योंकि भोग से मोक्ष प्राप्त होता है और भोग से ही कुलसिद्धि प्राप्त होती है ॥ १११ ॥

यद्यद्वदति निद्राति यत्करोति यदर्च्चति ।
तत्सर्वं कुलरूपं तु ध्यात्वा च विहरेत् सुधीः ॥ ११२ ॥

सुधी वीर साधक जो-जो कहता है—जैसी-जैसी निद्रा लेता है, जो-जो करता

है, जैसी-जैसी अर्चना करता है, वह सब कुल (शक्ति) स्वरूप ही है ऐसा ध्यान कर जगत् में विहार करे ॥ ११२ ॥

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने निर्जने वने ।
शून्यागारे नदीतीरे निःसङ्गो विहरेन्मुदा ॥ ११३ ॥

वीरों के जप के लिये स्थान निर्जन प्रदेश, श्मशान, निर्जन वन, शून्यागार और नदी तट कहे गये हैं । इसलिये वह सङ्गरहित हो प्रसन्नतापूर्वक उन-उन स्थानों में विचरण करे ॥ ११३ ॥

वीराणां जपकालस्तु सर्वदैव प्रशस्यते ।
सर्वपीठे सर्वदेशे कर्तव्यं नात्र संशयः ॥ ११४ ॥

वीरों के जप के लिये सभी काल प्रशस्त है, सभी पीठों में, सभी देशों में और सब काल जप करे । इसमें संशय कदापि न करे ॥ ११४ ॥

वीरसाधनकार्यञ्च कर्त्तव्यं वीरपुरुषैः ।
दिव्यैरपि च कर्तव्यं पशुभिर्न च पामरैः ॥ ११५ ॥

ऐसे तो वीर साधना का कार्य वीर पुरुषों को करना चाहिये, दिव्य पुरुष भी उसे कर सकते हैं । किन्तु पामर और पशु कदापि न करे ॥ ११५ ॥

वरं पामरकार्यञ्च न पशोरिति निश्चयः ।
यच्च देव्याः पुरा प्रोक्तं शाश्वतं मन्त्रसाधनम् ॥ ११६ ॥
अञ्जनं गुटिकादींश्च कुर्याद्वीरो महाबलः ।
दिव्यवीरे न भेदोऽस्ति यो भेदः स तु कथ्यते ॥ ११७ ॥

उत्तम दिव्य कार्य तथा पामर कार्य, पशुओं के लिये निश्चित रूप से नहीं है महादेवी ने पहले जो शाश्वत अञ्जन गुटिकादि के साधन का मन्त्र कहा है, उसे महाबलवान् वीर करे और दिव्य साधक भी करे । यद्यपि दिव्य और वीर साधक में कोई भेद नहीं है फिर भी जो भेद है, उसे कह रहा हूँ ॥ ११६-११७ ॥

दिव्यवीरयोर्भेदकथनम्

दिव्यसाधकस्य लक्षणम्

शान्तो विनीतो मधुरः कलालावण्यसंयुतः ।
दिव्यश्च देववत् प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ॥ ११८ ॥

दिव्य साधक के लक्षण—दिव्यभाव का उपासक शान्त, विनीत, मधुर, कला और लावण्य से संयुक्त रहता है और वह प्रायः देवता की तरह रहता है किन्तु वीर उच्छृङ्खल स्वभाव का होता है ॥ ११८ ॥

विभूतिभूषणो वापि चन्दनेनापि लेपितः ।
आकारगोपनो वापि व्यक्तो वा दिव्यसाधकः ॥ ११९ ॥

दिव्य साधक विभूति के भूषण से युक्त या चन्दनानुलिप्त रहता है और अपने आकार (स्वरूप) को गुप्त रखता है अथवा कभी प्रकट भी रखता है ॥ ११९ ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गो वैष्णवो वाप्यवैष्णवः ।
असंस्कृतः संस्कृतो वा नित्यसिक्तः कुलेश्वरः ॥ १२० ॥

दिव्य साधक अपने शरीर में लाल चन्दन लेप किये रहता है, वैष्णव अथवा अवैष्णव, संस्कृत अथवा असंस्कृत रूप में रहकर नित्य (शक्ति) में आसक्त तथा कुलेश्वर बना रहता है ॥ १२० ॥

अपमाने च पूजायां हृष्टपुष्टः सदा भवेत् ।
देवनिन्दापरो वापि तत्पूजादिपरोऽपि वा ॥ १२१ ॥

उसे मान अथवा अपमान में हृष्ट पुष्ट रहना चाहिये । चाहे वह देवता की निन्दा करे अथवा उनकी पूजा करे ॥ १२१ ॥

पूजारतस्तद्रहितः कुलाकुलमते स्थितः ।
निजभावसमायुक्तो देववत् विहरेत् क्षितौ ॥ १२२ ॥

चाहे पूजा करे, चाहे पूजारहित रहे, वह कुलाकुल मत में स्थित रहकर, अपने भाव में रहकर, देवता की तरह पृथ्वी में विहार करे ॥ १२२ ॥

वेदहीने द्विजे चैव यथा न श्रुतिसंस्क्रिया ।
विष्णुभक्तिं विना चैव भक्तिर्न प्रभवेद्यथा ॥ १२३ ॥

जिस प्रकार वेदरहित ब्राह्मण में वेद का संस्कार नहीं होता और जिस प्रकार विष्णु की भक्ति के बिना भक्ति उत्पन्न नहीं होती ॥ १२३ ॥

शक्तिज्ञानं विना मुक्तिर्यथा हास्याय कल्पते ।
गुरुं विना यथा तन्त्रे नाधिकारः कथञ्चन ॥ १२४ ॥
पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवर्जिता ।
कुलं विना यथा वीरो देव्या वा मम साधकः ॥ १२५ ॥

जिस प्रकार शक्ति की उपासना के बिना मुक्ति हास्यास्पद हो जाती है अथवा जिस प्रकार गुरु के ज्ञान के बिना तन्त्र में किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं होता । जिस प्रकार पतिहीन स्त्री अपने कर्मों से विवर्जित रहती है । उसी प्रकार कुल (शक्ति) ज्ञान के बिना दिव्य साधक अथवा वीर मेरा साधक अथवा कुलाधिकारी नहीं हो सकता ॥ १२४-१२५ ॥

नाधिकारीति कौलेयस्तस्माद् भावपरो भवेत् ।
विना कुलेन दिव्यानां वीराणाञ्च तथैव च ॥ १२६ ॥
मन्त्रसिद्धिर्न जायेत जन्मकोटिशतैरपि ।
अविनीतं कुलं यस्य स कथं मम पूजकः ॥ १२७ ॥

इसलिये कौल भाव परायण होवे । बिना कौल बने दिव्य, वीर तथा पशुओं को सैकड़ों जन्म पर्यन्त प्रयत्न करने पर भी मन्त्र सिद्धि नहीं होती । जिसका भाव कुल (शक्ति के प्रति) विनयरहित है, भला वह साधक किस प्रकार मेरा पूजक हो सकता है ॥ १२६-१२७ ॥

तस्माद्यत्नात् सदा कार्यं यथा स्याद्विनयान्वितम् ।
भावाभावात् कुले शास्त्रे नाधिकारः कथञ्चन ॥ १२८ ॥

इसलिये प्रयत्नपूर्वक ऐसा कार्य करना चाहिये, जिससे कुलमार्ग के उपासक विनयी बनें । यदि दिव्यभाव या वीरभाव नहीं है, तो ऐसे साधक को इस शास्त्र का अधिकार कदापि प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १२८ ॥

तेन भावविशुद्धस्तु साधकः कौलिको भवेत् ।
इदं वीरकुलञ्चैव दिव्यादपि मनोरमम् ॥ १२९ ॥

इस कारण भाव से विशुद्ध साधक ही कौलिक हो सकता है । अतः ऐसा वीरभाव दिव्यभाव से भी मनोरम (श्रेष्ठ) है ॥ १२९ ॥

पशुभावनिरूपणम्

पशुभावं प्रवक्ष्यामि तृतीयं सर्वनिन्दितम् ।
यथाविधि पशोर्विद्यां गृहीत्वा भावतत्परः ॥ १३० ॥

पशु भाव के लक्षण—अब सर्व निन्दित तृतीय पशुभाव को कहता हूँ । साधक पशु विद्या को यथाविधि ग्रहण कर भाव में तत्पर हो जावे ॥ १३० ॥

प्रथमं पूर्वमेवार्थं यत्नतः शुद्धिमाचरेत् ।
न मत्स्यभोजनं कुर्यान्न स्त्रियं मनसा स्मरेत् ॥ १३१ ॥

सर्वप्रथम यत्नपूर्वक अपनी शुद्धि करे । मत्स्य भोजन न करे और स्त्री का चिन्तन मन से भी त्याग देवे ॥ १३१ ॥

परद्रव्ये न लोभः स्यान्न भोगो मानसो भवेत् ।
सिन्धुतीरे पर्वते वा कानने वा सुरालये ॥ १३२ ॥
विल्वमूले विवक्ते तु पुण्यक्षेत्रे सुशोभने ।
न शूद्रदर्शनं कुर्यात् कौटिल्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ १३३ ॥

दूसरे के द्रव्य का लोभ न करे । भोग का स्मरण तो मन से भी न करे, सिन्धु (समुद्र या नदी) का तट, पर्वत, वन, देवमन्दिर, विल्वमूल, सर्वथा एकान्त, पुण्यक्षेत्र और मनोहर स्थान में निवास करे । शूद्र का दर्शन न करे । कुटिलता दूर से ही त्याग देवे ॥ १३२-१३३ ॥

देवता शुभ्रवर्णा तु ध्यातव्या सुसमाहितैः ।
त्रिसन्ध्यं देवपूजा स्यात् त्रिसन्ध्यं जपमाचरेत् ॥ १३४ ॥

समाहित चित्त हो शुभ्र वर्ण वाली शक्ति देवता का ध्यान करे । तीनों सन्ध्याओं में देवपूजा और जप करे ॥ १३४ ॥

रात्रौ मालाञ्च यन्त्रञ्च स्पृशन् नैव कदाचन ।
न मन्त्रमुच्चरेद् भुक्त्वा मौनी स्यात् सर्वकर्मसु ॥ १३५ ॥

रात्रि के समय माला एवं यन्त्र का स्पर्श न करे और भोजन कर मन्त्र का उच्चारण न करे तथा सभी कामों में मौन रहे ॥ १३५ ॥

पर्वकाले स्त्रियं नैव गच्छेद्वै साधकोत्तमः ।
पुष्पं गन्धं जलं चैव स्वयमानीय पूजयेत् ॥ १३६ ॥

उत्तम पशु साधक पर्वकाल में स्त्री सङ्गम न करे । पुष्प, गन्ध और जल स्वयं लाकर पूजन करे ॥ १३६ ॥

मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत् ।
ऋतुकालं विना गच्छेन्न च स्वस्त्रियमादरात् ॥ १३७ ॥

मैथुन एवं मैथुन की चर्चा तथा उसकी गोष्ठी वर्जित करे । अपनी स्त्री के पास मैथुन के लिए ऋतुकाल के अतिरिक्त अन्य काल में आदर किये जाने पर भी न जावे ॥ १३७ ॥

पुराणश्रवणे श्रद्धा वेदवेदाङ्गतत्परः ।
न रात्रौ भोजयेद्विद्वांस्ताम्बूलञ्च तथैव च ॥ १३८ ॥

पुराणों के श्रवण में श्रद्धा रखे । वेद और वेदाङ्ग के अध्ययन, अध्यापन में तत्पर रहे । विद्वान् रात्रि के समय ब्राह्मण भोजन न करावे तथा रात्रि के समय ताम्बूल का चर्वण भी न करे ॥ १३८ ॥

गुरुणा यद्यदादिष्टं तत्सर्वं यत्नतश्चरेत् ।
स्वजातकुसुमं चैव हेतुद्रव्यं तथैव च ॥ १३९ ॥
एतत्स्पृष्ट्वा त्रिरात्रञ्च पञ्चगव्येन शुध्यति ।
रक्तवस्त्रं न गृह्णीयात् देवीभक्तिपरायणः ॥ १४० ॥

गुरु जो-जो भी आज्ञा दे; प्रयत्नपूर्वक उसका पालन करे। स्वयम्भू पुष्प तथा मद्यादि द्रव्य का स्पर्श भी न करे। किसी प्रकार स्पर्श होने पर तीन रात्र पर्यन्त पञ्चगव्य का पान करने से शुद्धि होती है। देवी में भक्ति रखने वाला पशु साधक रक्त वस्त्र धारण न करे ॥ १४० ॥

विष्णुतन्त्रोक्तकल्पादि तदनुष्ठानमेव च।
कार्यं वीरकथालापं न कुर्याद्वीरवन्दितम् ॥ १४१ ॥

विष्णु तन्त्रोक्त कहे गये कल्पादि तथा उसमें कहे गये यज्ञ-यागादि अनुष्ठान करे। पशु साधक वीर भाव की चर्चा न करे और वीर भाव वालों की वन्दना भी न करे ॥ १४१ ॥

नित्यश्राद्धं गवां ग्रासं सन्ध्यावन्दनमेव च।
तीर्थस्नानं पीठदेशे गमनं धर्मतत्परः ॥ १४२ ॥

नित्य श्राद्ध, गो-ग्रास, सन्ध्या-वन्दन, तीर्थ-स्नान एवं पीठों में यात्रा तथा धर्म में तत्पर रहे ॥ १४२ ॥

दीक्षितादीक्षितभेदेन पशोर्द्वैविध्यम्

पशुस्तु द्विविधश्चैवाऽदीक्षितो दीक्षितस्तथा।
दीक्षितस्याऽधिकारोऽस्ति पूजायां चैव निश्चितम् ॥ १४३ ॥

पशु दो प्रकार के कहे गये हैं। पहला अदीक्षित दूसरा दीक्षित। दीक्षित का कुल पूजा में निश्चित रूप से अधिकार है ॥ १४३ ॥

गुरुत्वे तस्य कुत्रापि नाधिकारश्च सर्वदा।
पूर्वस्य नाधिकारोऽस्ति पूजादेशगतागतौ ॥ १४४ ॥

किन्तु दीक्षा देकर गुरु बनने का उसे किसी प्रकार भी अधिकार नहीं है। अदीक्षित का चण्डिका पूजा में तथा कुल प्रोक्त स्थान एवं गोष्ठी में जाने आने का अधिकार नहीं है ॥ १४४ ॥

पूर्वस्तु कौलिकैः सर्वैर्बहिः कार्यः स्वदेशतः।
पूर्वदर्शनमात्रेण कुलदर्शनमाचरेत् ॥ १४५ ॥

सभी कौलिकों को चाहिये कि अदीक्षित पशु को अपने देश से बाहर निकाल दे। यदि उसका दर्शन हो गया तो कौल का दर्शन करे ॥ १४५ ॥

ब्रह्महत्यादिकं पापं वरं सह्यं कथञ्चन।
पूर्वस्य दर्शनं नैव सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ॥ १४६ ॥

ब्रह्महत्यादि पाप भले ही सह्य हो सकता है, किन्तु अदीक्षित पशु का दर्शन सह्य नहीं है, यह सुनिश्चित सत्य है, सत्य है ॥ १४६ ॥

देव्यात्मा सोऽपि नियतं विभुत्वाद्यद्यपि ध्रुवम् ।
तथापि जायते शङ्का तदा देव्याः पदे पदे ॥ १४७ ॥

यद्यपि देवी सर्वव्यापक हैं, उसमें भी निश्चित रूप से देवी की आत्मा है तथापि देवी को उसमें रहने से प्रतिक्षण शङ्का बनी रहती है ॥ १४७ ॥

वरं कुलपरित्यागं वरं स्वकुलहिंसनम् ।
वरं स्वकुलकुत्सा स्याद्वरं स्वकुलनिन्दनम् ॥ १४८ ॥
वरं स्वकुलहानिस्तु वरं स्वकुलकुट्टनम् ।
कायेन मनसा वाचा वरं स्वकुलपातनम् ॥ १४९ ॥
न च कुर्यात् पूर्वसङ्गं देव्यङ्गक्षयकारणात् ।
कुलशास्त्रे द्वयं पापं गरिष्ठो भवति ध्रुवम् ॥ १५० ॥

अपने कुल का त्याग, अपने कुल की हिंसा, अपने कुल की निन्दा, अपने कुल से घृणा, अपने कुल की हानि, अपने कुल का कुट्टन, किं बहुना, शरीर, मन और वाणी से अपने कुल का पतन भले ही हो जावे, फिर भी अदीक्षित पशु का साथ कभी न करे । ऐसे पशु साधक का साथ देवी के अङ्ग में व्रण के समान क्षयकारक कहा गया है । ऐसे तो कुलशास्त्र में दो पाप निश्चित रूप से बहुत बड़े कहे गये हैं ॥ १४८-१५० ॥

स्वकुले महती निन्दा परयोगे तथैव च ।
तस्मादपि महत् पापं पशुसङ्गात् प्रजायते ॥ १५१ ॥

पहला अपने कुल की निन्दा करना तथा परयोग की महती निन्दा का होना । किन्तु उससे भी अधिक पाप पशु साधक के सङ्ग से उत्पन्न होता है ॥ १५१ ॥

गोलोकेन सहाऽऽलापात् पशोः सम्भाषसंस्कृतात् ।
न सिध्यन्ति महामन्त्राः सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ॥ १५२ ॥

पशु मार्ग वाले से बातचीत तथा पशु साधक से संस्कृत किये गये मन्त्र सिद्ध नहीं होते, यह बात सत्य है और निश्चित है ॥ १५२ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानमगम्यागमनं तथा ।
स्तेयं संसर्ग एवैते महापातकजातयः ॥ १५३ ॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, अगम्य (निषिद्ध) स्त्री में गमन, सुवर्णादि की चोरी तथा ऐसे लोगों के साथ संसर्ग—ये पाँच महापातक कहे गये हैं ॥ १५३ ॥

दीक्षादेव नश्यन्ति जपान्नश्यन्ति चापरे ।
वीरहत्या वृथापानं वीरजायाश्च सङ्गमः ॥ १५४ ॥
एतद्ग्रन्थैकदेशस्य गुरोरर्थावलोपनम् ।
ज्ञात्वा वीरवरञ्चापि तन्निन्दा तदकीर्त्तनम् ॥ १५५ ॥
न च तस्मै धनारोपस्तेयमित्यभिधीयते ।

ऐसे लोगों को कुल की दीक्षा देने मात्र से उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अन्य लोग कहते हैं कि कुल मन्त्र का जप करने से उक्त पाप नष्ट हो जाते हैं । वीर हत्या ब्रह्महत्या है और वृथापान सुरापान है । वीर की स्त्री से सङ्गत अगम्या गमन है । गुरु के द्वारा इस ग्रन्थ के एकदेश को (अवयव) पढ़कर उसे भूल जाना वीर सम्प्रदाय में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति की निन्दा है, उसका नाम न लेना और उसे धन प्रदान न करना इसे स्तेय कहते हैं ॥ १५४-१५६ ॥

पशुसङ्गः वर्जनीयः

पशुना यः समालापः समा शय्या समासनम् ॥ १५६ ॥
एकत्र भोजनं चैव संसर्गश्च ततः परम् ।
संसर्गपातकं प्रोक्तं कुलीनस्य महात्मनः ॥ १५७ ॥
पातकं न च तेषां वै सङ्क्षये पुण्यसञ्चयम् ।
प्रभवन्ति न तीर्थानि न गङ्गा न च काशिका ॥ १५८ ॥
महाविद्याजपादेव चत्वारि पातकानि च ।
नश्यन्ति न च संसर्गः क्षयं याति कदाचन ॥ १५९ ॥

पशु के साथ बातचीत करना, उसके साथ बैठना, शयन करना, एक साथ भोजन करना, उसके अनन्तर उससे संसर्ग रखना, यह महात्मा कौलिकों के लिये पाँचवाँ संसर्ग नामक महापाप है । उक्त पाप को नष्ट करने में पुण्य सञ्चय, समस्त तीर्थ, गङ्गा, काशी इत्यादि भी समर्थ नहीं होते । चार महापातक तो महाविद्या के जप से नष्ट हो जाते हैं । किन्तु पशु संसर्गजन्य पाप कभी भी नष्ट नहीं होता ॥ १५६-१५९ ॥

अज्ञानात् पशुसंसर्गो यदि दैवात् प्रजायते ।
तदा द्वादशवर्षाख्यं व्रतार्थं यत्नमाचरेत् ॥ १६० ॥

यदि अनजान में पशु संसर्ग हो जाय, तो उसके लिये द्वादश वर्ष नामक व्रत का प्रायश्चित्त करे ॥ १६० ॥

कुलीनायाः समीपस्थः कुलसेवापरायणः ।
उच्छिष्टभोजी तन्नामप्रजापी तत्पतेरपि ॥ १६१ ॥

तदन्ते तां समभ्यर्च्य यत्नैश्च परितोष्य च ।
शुचिर्भूत्वा पुनर्विद्यां गृहीत्वा शुद्धिमाप्नुयात् ॥ १६२ ॥

द्वादशाख्य व्रत इस प्रकार का कहा गया है—कुलीना स्त्री के समीप में रहकर कुल सेवा में परायण रहे । उसका उच्छिष्ट भोजन करे । उसके नाम का और उसके पति का जप करे । उसके बाद उसकी पूजा करे, प्रयत्नपूर्वक उसे सन्तुष्ट करे । इस प्रकार पवित्र होकर पुनः गुरु से महाविद्या ग्रहण कर अन्त में शुद्ध होता है ॥ १६१-१६२ ॥

व्रताशक्तो यदि भवेत् सुवर्णैः परितोषकृत् ।
दद्यात् कुलाय पापानां क्षयार्थं साधकोत्तमः ॥ १६३ ॥

यदि श्रेष्ठ साधक व्रत में अशक्त हों, तो संसर्ग पाप के क्षय के लिये किसी कुलीन (कुलोपासक) को सुवर्ण प्रदान कर उसे सन्तुष्ट करे ॥ १६३ ॥

ज्ञानात् संसर्गमासाद्य मरणान्नैव शुध्यति ।
मृते च भासकाकादि योनिमालम्ब्य सर्वतः ॥ १६४ ॥
नानाक्लेशसमायुक्तो नरकान् प्रतिपद्यते ।
न चैनं दीक्षयेन्नाम न चास्य दर्शनञ्चरेत् ॥ १६५ ॥

किन्तु ज्ञानपूर्वक पशु का संसर्ग करने वाला मरने पर भी शुद्ध नहीं होता । मर जाने के बाद भास (बाज) एवं काक आदि योनि प्राप्त कर अनेक क्लेश प्राप्त करने के बाद वह नरकगामी होता है । अतः भूलकर भी इन्हें न देखे, और न इन्हें दीक्षा देवे ॥ १६४-१६५ ॥

देवीशास्त्रकथाश्चात्र प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
कर्मणा मनसा वाचा पशुशास्त्रादिपूजनम् ॥ १६६ ॥
प्रकुर्वन्ति महापापास्त्यज्यास्ते कुलसाधकैः ।
निषेधे कुलशास्त्राणि साधकः सर्वदा चरेत् ॥ १६७ ॥

इनसे देवी या शास्त्र के कथाओं की चर्चा न करे । जो दो महापापी कर्म, मन और वाणी से पशु शास्त्रादि का पूजन करते हैं, वे महापापी हैं । अतः कुलमार्ग के उपासक उनका त्याग कर देवे । साधक उनके निषेध में सर्वदा कुल शास्त्रों का प्रयोग करे ॥ १६६-१६७ ॥

पशुशास्त्राणि सर्वाणि वर्जयेत् परदारवत् ।
श्वचर्मस्थं यथा क्षीरं न देयं स्याद्द्विजेष्वपि ॥ १६८ ॥
तथा पशुमुखाद्धर्मो न श्रोतव्यश्च कौलिकैः ।
अश्रद्दधाना ये चात्र कुलधर्मेषु कौलिकाः ॥ १६९ ॥

न पातकान्निवर्तन्ते यावदाहूतसंप्लवम् ।
कौलाः पशुव्रताश्चैव पक्षद्वयविडम्बकाः ॥ १७० ॥
केशसंख्या स्मृताय यावत्तावत्तिष्ठन्ति रौरवे ।

कौल समस्त पशुशास्त्रों का, परस्त्री गमन के समान निषेध करे । जिस प्रकार कुत्ते के चमड़ी में पकाया गया दूध ब्राह्मणादि के लिये निषिद्ध है, उसी प्रकार पशु साधक के मुख से उपदिष्ट धर्म, कौलों के लिये अग्राह्य है । अतः जो कौलिक ऊपर कहे गये कौल धर्म में श्रद्धा नहीं रखते, वे उस पाप से जगत् के प्रलयपर्यन्त मुक्त नहीं होते । जो कौल और पशुव्रतधारी अपने अपने पक्ष वालों को वञ्चित करते हैं, वे केश संख्या (साढ़े तीन करोड़) पर्यन्त वर्ष तक रौरव नरक में निवास करते हैं ॥ १६८-१७१ ॥

दीक्षणात् पूजनाद्धोमात्तथा दृष्ट्यवलोकनात् ॥ १७१ ॥
यत्किञ्चिज् ज्ञानमात्रेण पशुना निर्जितो यदि ।
तस्य सर्वं हरेद्देवी शापं दत्त्वा सुनिश्चितम् ॥ १७२ ॥

पशुमार्गगामी ने दीक्षा से, पूजन से, होम से तथा दृष्टि के अवलोकन से, अथवा अपने समस्त ज्ञान मात्र से जो पुण्य प्राप्त किया है; भगवती उसे शाप देकर उसका सब कुछ हर लेती है; यह निश्चित है ॥ १७१-१७२ ॥

पशोर्विद्यां समादाय यदि पूजापरो भवेत् ।
तस्य वक्त्रं समालोक्य कुलवक्त्रं विलोकयेत् ॥ १७३ ॥

पशु मार्गगामी से यदि किसी ने महाविद्या का मन्त्र ले लिया, तो उसका मुँह देखकर कौलों के मुख के दर्शन करने पर ही प्रायश्चित्त होता है ॥ १७३ ॥

एवं न चेत् कुलीनस्य विद्याहानिस्तु जायते ।
पशूपदिष्टं यत्किञ्चित् क्रियते कुलसाधकैः ॥ १७४ ॥
तत्तत्कर्म सदा तेषामभिचाराय कल्पते ।

यदि कोई कौल साधक ऐसा नहीं करता तो उसके विद्या की हानि होती है । पशुओं के द्वारा उपदिष्ट यत्किञ्चित् धर्म यदि कोई कुलसाधक अनुष्ठित करता है, तो उस साधक का उस प्रकार का अनुष्ठित सारा धर्म उसके मृत्यु का कारण बन जाता है ॥ १७४-१७५ ॥

या याः सर्वा महाविद्याश्चण्डिकायाः सुनिश्चितम् ॥ १७५ ॥
पशुदृष्टिनिपातेन साधकं नाशयेद् ध्रुवम् ।
यदि दैवात् पशोर्विद्यां लभते कुलजैर्नरैः ॥ १७६ ॥
द्विजस्य कालिकां प्रार्थ्य पुनर्विद्यामुपालभेत् ।

चण्डिका की निश्चित रूप से जो जो महाविद्यायें हैं वे पशु साधक की दृष्टि के पड़ते ही उस पशु साधक का सर्वनाश कर देती हैं । यदि किसी कौल ने संयोगवशात् पशु से विद्या प्राप्त कर ली, तो वह महाकाली की प्रार्थना कर पुनः विद्या प्राप्त करे ॥ १७५-१७७ ॥

अज्ञानाद् यत् कृतं मातर्नाऽऽलोच्य कुलकौलिकम् ॥ १७७ ॥
क्षमस्व मातस्तत्पापं हर देवि कृपां कुरु ।
एवं प्रार्थ्य महायत्नै रत्नैः स्वर्णादिविस्तरैः ॥ १७८ ॥
सम्पूज्य कुलदाम्पत्यमष्टम्यां यत्नतो नयेत् ।
भ्रष्टस्य चाऽष्टमी चेति तिथिरेव न चान्यथा ॥ १७९ ॥

'अज्ञानात्.............कृपां कुरु' पर्यन्त श्लोक मन्त्र द्वारा महाकाली की प्रार्थना कर यत्नपूर्वक कौलिक दम्पती का पूजन करे और स्वर्णादि द्वारा सन्तुष्ट करे । फिर अष्टमी तिथि को मन्त्र ग्रहण करे । क्योंकि भ्रष्ट के लिये अष्टमी तिथि का विधान है अन्य का नहीं ॥ १७७-१७९ ॥

दीक्षाकालः स एव स्यान्नान्यः कालः प्रशस्यते ।
भ्रष्टा बहुविधाः सन्ति यद्यत्र कुलसाधकाः ॥ १८० ॥
पशुशिष्यसमो नास्ति सत्यं सत्यं न चान्यथा ।
कुलाचारं पशौ गुप्तं तत्तु तेषां परं विदुः ॥ १८१ ॥

कौलिक के लिये दीक्षाकाल ही प्रशस्त काल है अन्य काल नहीं । यद्यपि अनेक प्रकार के भ्रष्ट कुल साधक हैं; तथापि पशु के समान कोई भ्रष्ट नहीं है । यह सत्य है, सत्य है, झूठ नहीं । उसमें जो साधक कुलाचार को पशु साधक से गुप्त रखता है वही सर्वश्रेष्ठ है ॥ १८०-१८१ ॥

एतच्छास्त्रप्रसङ्गो वा एतत् पुस्तकदर्शनम् ।
पशोरग्रे न कर्त्तव्यं प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥ १८२ ॥

इस शास्त्र की चर्चा, अथवा इस पुस्तक का दर्शन पशुगामी को न करावे चाहे प्राण भले ही देना पड़े ॥ १८२ ॥

कृत्वा सूर्यमुखं दृष्ट्वा स्मर्त्तव्यः कुलनायकः ।
निर्जीवे काष्ठलोष्ठे वा शर्करायां तृणेऽपि वा ॥ १८३ ॥
सर्वत्र चिन्तिता देवी न पशोर्मन्त्रविग्रहे ।
चेतनाधिष्ठितं सर्वं सुखं दुःखं प्रकल्पितम् ॥ १८४ ॥
तत्रैव चेतनाभावान्नियमो नास्ति तादृशः ।
तस्माद् देव्याश्च सर्वस्वं देवीपूजापरायणैः ॥ १८५ ॥

यदि कदाचित् किसी कुलनायक ने ऐसा कर दिया तो उसे सूर्य का दर्शन करना चाहिये । निर्जीव में, काष्ठ में, मिट्टी के ढेले में, शर्करा में, तृण में, इन सभी निर्जीव पदार्थों में यद्यपि भगवती का वास है, किन्तु पशु के द्वारा ग्रहण किये गये मन्त्र में भी भगवती का वास नहीं रहता । यदि कहा जाय कि सुख-दुःख तो चेतनाधिष्ठित और प्रकल्पित हैं, किन्तु मन्त्र में चेतना का अभाव है, इसलिये उसके ग्रहण से कुछ नहीं होगा, किन्तु ऐसा नियम नहीं है । इसलिये देवी की पूजा करने वाले कौलिक पशु साधक के कल्याण के लिये देवी का सर्वस्वभूत मन्त्र गुप्त रखे ॥ १८३-१८५ ॥

गोप्तव्यं सर्वथा चैव पशोः कल्याणहेतवे ।
सर्वथा तत्र भावौ द्वौ न प्रकाश्यौ कदाचन ॥ १८६ ॥
सभावश्च विभावश्च पशुर्द्वेधा व्यवस्थितः ।
सभावः पशुभावेन जन्मत्रयविभावनात् ॥ १८७ ॥
वीरभावो भवेदेव ततो देवः प्रजायते ।
दैवाच्च जायते वीरो वीराद्देवः प्रजायते ॥ १८८ ॥
दैवे वीरे न सन्देहः साम्यमित्यभिधीयते ।

पशु में सर्वथा दो भाव रहते हैं, जो कभी प्रकाश के योग्य नहीं होते । सभाव और विभाव भेद से पशु दो प्रकार के बतलाये गये हैं । सभाव उसे कहते हैं जो पशुभाव में तीन जन्म तक रहकर वीरभाव को प्राप्त हो जाता है । इसके बाद दिव्य भाव में प्रतिष्ठित हो जाता है । इस प्रकार दिव्यभाव से वीरभाव और वीरभाव से दिव्यभाव में होता रहता है । दिव्य और वीरभाव बराबर हैं उसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ १८६-१८८ ॥

भावनिर्णयोऽनिर्वचनीयः

भावस्तु मनसो धर्मः स हि शाब्दः कथं भवेत् ॥ १८९ ॥
तस्माद्भावो न वक्तव्यो दिङ्मात्रं समुदाहृतम् ।
यथेक्षुगुडमाधुर्य्यं जिह्वया ज्ञायते सदा ॥ १९० ॥

भाव तो मन का धर्म है, फिर उसे शब्द द्वारा किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है? जिस प्रकार ऊख से बने गुड़ का स्वाद जिह्वा ही जानती है अन्य नहीं । उसी प्रकार भाव भी मन का विषय है । वह वाणी से प्रगट नहीं किया जा सकता है ॥ १८९-१९० ॥

तस्माद्भावो विभावस्तु मनसा परिभाव्यते ।
एक एव महाभावो नानात्वं भजते यतः ॥ १९१ ॥

इसलिये भाव और विभाव का अनुभव मन करता है । इस तरह एक ही महाभाव अनेक रूपों से प्रगट होता है ॥ १९१ ॥

उपाधिभेदभावेन भावभेदो लयिष्यति ।
आनन्दघनसन्दोहः प्रभुः प्रकृतिरूपधृक् ॥ १९२ ॥
रसरूपी स एवाऽऽत्मा स प्रभुः परमो महान् ।
श्रोतव्यः स च मन्तव्यो निध्यातव्यः स एव हि ॥ १९३ ॥
साक्षात् कार्यस्ततो वीरैरागमैर्विविधैस्तथा ।
श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यो मननादिभिः ॥ १९४ ॥
सोपपत्तिभिरेवायं ध्यातव्यो गुरुदेशितैः ।
तदा स एव सर्वात्माप्रत्यक्षीभवति ध्रुवम् ॥ १९५ ॥

उपाधि भेद से भाव भेद होता है । आनन्दघन सन्दोह प्रभु प्रकृति का रूप धारण करते हैं । वही रस स्वरूप आत्मा, वही प्रभु, वही परमात्मा, वही महान् हैं और वहीं श्रोतव्य, मन्तव्य एवं निदिध्यासन के योग्य हैं । वही वीरों के द्वारा अनेक आगमों से साक्षात्कार के योग्य हैं । श्रुति वाक्यों से वही श्रोतव्य हैं । मननादि से वही मन्तव्य हैं और गुरु के उपदेशों तथा अनेक प्रकार की उपपत्तियों (युक्तियों) से ध्यातव्य हैं । ऐसा करने से वे परमात्मा निश्चित रूप से प्रत्यक्ष हो जाते हैं ॥ १९२-१९५ ॥

तस्मिन् देहे तु भगवान् प्रत्यक्षः परमेश्वरः ।
भावैर्बहुविधैश्चैव भावस्तत्रापि लीयते ॥ १९६ ॥

प्रत्येक देह में, अनेक भावों से, भगवान् प्रत्यक्ष रहते हैं, किन्तु वहाँ भी भाव गुप्त रहता है ॥ १९६ ॥

भुक्त्वा नानाविधं ग्रासं गवि चैको यथा रसः ।
दुग्धाद्यभ्यासयोगेन नानात्वं भजते यतः ॥ १९७ ॥

जिस प्रकार गाय अनेक प्रकार के ग्रास खाकर उसका एक मात्र दुग्ध रस बना देती है । फिर वही दूध अनेक प्रकार के व्यवहार से अनेक प्रकार का बन जाता है वैसे ही मानव शरीर में भाव गुप्त रहते हैं ॥ १९७ ॥

तृणेन जायते चैव रसस्तस्मात् परो रसः ।
तस्माद्दधि ततो हव्यं तस्मादपि रसोदयः ॥ १९८ ॥

तृण से दुग्ध रस उत्पन्न होता है । उस दुग्ध से अन्यान्य रस बनते हैं, दूध से दही, उससे घी, फिर उससे भी वीर्यादि भी अनेक रस बनते हैं ॥ १९८ ॥

स एव कारणं तस्य तत् कार्यं न च कथ्यते ।
दृश्यते च सदा तत्र न कार्यं नापि कारणम् ॥ १९९ ॥

गाय ही कारण है, उसके कितने कार्य हैं, यह कहा नहीं जा सकता । किन्तु उसमें न तो कार्य दिखाई पड़ता है न कारण ॥ १९९ ॥

तथैवायं स एवाऽऽत्मा नानाविग्रहयोनिषु ।
जायेज्जनिष्यते जातः कार्यभेदादि भाव्यते ॥ २०० ॥

उसी प्रकार यह एक ही आत्मा तत्तद् योनियों में जाकर अनेक विग्रह धारण किया है । आगे चलकर अनेक विग्रह धारण करेगा और अब तक धारण करता रहा है । उसके कार्य भेदादि लक्षित होते हैं ॥ २०० ॥

स जातः स मृतो बद्धः स मुक्तः स सुखी पुमान् ।
स स्त्रीर्नपुंसकः सोऽपि स एवाऽनङ्ग एव सः ॥ २०१ ॥

वह जो उत्पन्न होता है वही मरता है, वह बद्ध है, वह मुक्त है, वह सुखी है, दुःखी है, पुरुष है, स्त्री है, नपुंसक है और वही निराकार है ॥ २०१ ॥

नानाध्यानसमायोगान्नानात्वं भजते यथा ।
एक एव स एवात्मा रसरूपी सनातनः ॥ २०२ ॥

उसी प्रकार वह एक ही रस रूपी सनातन आत्मा भक्तों के ध्यान के अनुसार अनेक रूपों में प्रत्यक्ष हो जाता है ॥ २०२ ॥

अव्यक्तः स च सुव्यक्तः प्रकृत्या क्रियते ध्रुवम् ।
तस्मात् प्रकृतियोगेन ज्ञायते नान्यया क्वचित् ॥ २०३ ॥

प्रकृति उसे अव्यक्त (गुप्त) करती है, प्रकृति उसे प्रकट करती है, अतः वह प्रकृति द्वारा ही जाना जाता है । अन्य द्वारा नहीं, यह बात निश्चित है ॥ २०३ ॥

विना घटत्वयोगेन न प्रत्यक्षो यथा घटः ।
इतराद् भिद्यमानोऽपि न भेदमुपगच्छति ॥ २०४ ॥

जैसे घटत्व ज्ञान के बिना घट का प्रत्यक्ष नहीं होता और इतर से भिन्न होकर भी वह भेद रूप से दिखाई नहीं पड़ता ॥ २०४ ॥

न भेदं पुरुषो याति विना शक्तिं कथञ्चन ।
न प्रयोगैर्न च ज्ञानैर्न श्रुत्या न गुरुक्रमात् ॥ २०५ ॥

चाहे कितना प्रयोग हो, कितना ज्ञान हो, कितनी श्रुति, कितने गुरु हों, शक्ति के बिना पुरुष भिन्न दिखाई नहीं पड़ता ॥ २०५ ॥

प्रकृत्यैव ब्रह्मज्ञानस्य वर्णनम्

प्रकृत्या ज्ञायते ब्रह्म प्रकृत्या लीयते पुनः ।
प्रकृत्याऽधिष्ठितं सर्वं प्रकृत्या वाञ्छितं जगत् ॥ २०६ ॥

प्रकृति से ब्रह्मज्ञान होता है, प्रकृति से समस्त विश्व का लय होता है, सारा जगत् प्रकृति से अधिष्ठित (व्याप्त) है, सब प्रकृति की देन है ॥ २०६ ॥

प्रकृत्या भेदमाप्नोति प्रकृत्या लीयतेऽखिलम् ।
न वस्तु प्रकृतिर्नैव न पुमान् परमेश्वरः ॥ २०७ ॥

प्रकृति से भेद होता है, प्रकृति में लीन होकर एक होता है, वस्तुतः प्रकृति कोई वस्तु नहीं है और परमेश्वर पुरुष नहीं हैं ॥ २०७ ॥

तयोः समरसं ज्ञानं वस्तुतत्त्वं परं पदम् ।
उभयोः समवायस्तु वस्तुतत्त्वं सुनिश्चितम् ॥ २०८ ॥

प्रकृति पुरुष की समरसता वस्तु तत्त्व है जो परपद कहा जाता है । इससे निश्चय हुआ कि दोनों का एकीकरण वस्तुतत्त्व है ॥ २०८ ॥

ज्ञायतेऽस्मिन् स्वयं प्राज्ञश्चित्स्वरूपः पुमानसौ ।
निर्विकारः सर्वदैव प्रमाणागोचरः पुमान् ॥ २०९ ॥

बुद्धिमान् इसी में चित्स्वरूप पुरुष का ज्ञान करता है । वह पुरुष निर्विकार है और सभी प्रमाणों से परे हैं ॥ २०९ ॥

व्यक्तो भवति सर्वत्र स्वयमात्मा स्वयम्भूवः ।
उपायाः सन्ति बहवो ज्ञातुं ब्रह्म सनातनम् ॥ २१० ॥

उस स्वयम्भू की आत्मा सर्वत्र स्वयं व्यक्त है । उस सनातन ब्रह्म के ज्ञान के लिये अनेक उपाय हैं ॥ २१० ॥

तथापि प्रकृतेर्योगात् क्षिप्रं प्रत्यक्षतां व्रजेत् ।
सांयात्रिकाः कुले देशे यथा नावं प्रगृह्य च ॥ २११ ॥
नानादेशं समुत्तीर्य समुद्रं विशते चिरात् ।
तत्तटे नावमास्थाय क्षणाद् यान्ति यथा पुनः ॥ २१२ ॥
वैजात्यं नास्ति चेत्तत्र कथं तत्तद्धि कारणम् ।
तस्मात् परम्परायातास्ते हि कारणतां गताः ॥ २१३ ॥

फिर भी प्रकृति के योग से उसका शीघ्र प्रत्यक्ष होता है । जैसे मल्लाह किसी कुल वाले देश से नाव लेकर अनेक देशों को पार करता हुआ समुद्र में बहुत

काल के बाद पहुँचता है। फिर उसके तट पर नाव बाँधकर पुनः चला आता है। यदि उसमें वैजात्य नहीं है तो तत्-तत् कारण किस प्रकार बन सकता है। इसलिये परम्परा से आने के कारण ही कारण हो जाते हैं ॥ २११-२१३ ॥

न कारणानि ते चैव साक्षात् प्रकृतिकारणम् ।
स्त्रीभावः प्रकृतिर्ज्ञेयः पुम्भाव पुरुषो मतः ॥ २१४ ॥

वे कारण भी कारण नहीं हैं, प्रकृति साक्षात् कारण है। स्त्रीभाव प्रकृति है और पुम्भाव पुरुष कहा गया है ॥ २१४ ॥

ज्ञप्तिज्ञेयविभागेन ज्ञायतां साधकोत्तमैः ।
घटप्रत्यक्षतायां तु आलोको व्यञ्जको यथा ॥ २१५ ॥

इसे उत्तम साधक ज्ञाप्ति एवं ज्ञेय के विभाग से समझें। जिस प्रकार घट के प्रत्यक्ष होने में आलोक (प्रकाश) उसका व्यञ्जक हैं ॥ २१५ ॥

चक्षुरादि ततः किञ्चिदधिकं निर्विकल्पनम् ।
घटत्वं पुनरेतस्य भेदकारणमेव हि ॥ २१६ ॥

उसी प्रकार घट रूप विषय के निर्विकल्पक ज्ञान में चक्षु एवं प्रकाश ही कारण है। घट और घट में रहने वाला घटत्व तो भेद मात्र है ॥ २१६ ॥

तथा न व्यक्तिविषये त्वन्ये व्यञ्जकतां गताः ।
साक्षात्कारणमेवैतत् प्रकृतिश्चैव निश्चितम् ॥ २१७ ॥

उसी प्रकार परब्रह्म की अभिव्यक्ति में कोई अन्य व्यञ्जक नहीं है। ब्रह्म की अभिव्यक्ति में प्रकृति हि साक्षात् कारण है, यह निश्चित है ॥ २१७ ॥

दिव्यभावो वीरभावो यस्य देहे व्यवस्थितः ।
एकेन जन्मना तस्य परं प्रत्यक्षमाप्नुयात् ॥ २१८ ॥

जिस साधक के शरीर में दिव्यभाव एवं वीरभाव व्यवस्थित है, वह एक ही जन्म में परब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है ॥ २१८ ॥

जीवन्मुक्तः स एवाऽऽत्मा भोगार्थमटते महीम् ।
देवीपुत्रः स एवाऽऽत्मा भैरवः परिकीर्त्तितः ॥ २१९ ॥

यह आत्मा जीवन्मुक्त होकर भी भोग के लिये पृथ्वी में विचरण करता है। वही आत्मा देवी पुत्र होकर भैरव कहा जाता है ॥ २१९ ॥

दिव्यवीरपशुभिः स्वस्वमार्गेण पूजा कर्त्तव्या

भावत्रयाणां मध्ये तु द्वौ भावौ सुप्रतिष्ठितौ ।

न वक्तव्यौ मुक्तिमार्गौ कुलसारौ कुलोत्तमौ ॥ २२० ॥

दिव्य, वीर, और पशु भाव में दिव्य एवं वीर दो भाव अत्यन्त श्रेष्ठ है । वे दोनों मुक्ति के मार्ग हैं कुल धर्म के सार हैं, और कुलोत्तम हैं जिन्हें कहा नहीं जा सकता क्योंकि भाव से ही देवी प्रत्यक्ष हो जाती हैं ॥ २२० ॥

यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तैर्भावैर्नार्चयेद्यदि ।
दशाहक्रमयोगेन भ्रष्टो भवति साधकः ॥ २२१ ॥
नोपदिशेत्तत्र भावं न पूजां तत्र सन्दिशेत् ।
कुलान्मन्त्रं गृहीत्वा तु भावशुद्धिः प्रजायते ॥ २२२ ॥
तस्माद् भावपरो भूत्वा देवीं सम्पूजयेत् सुधीः ॥ २२३ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
एकादशः उल्लासः ॥ ११ ॥

इन दो भावों में जो भाव जिसके हृदय में हैं उसी भाव से भगवती की यदि दश दिन पर्यन्त लगातार अर्चना नहीं की जाती तो साधक भ्रष्ट हो जाता है । अतः उसे भाव का उपदेश न करे और पूजा की आज्ञा न दे । पुनः कुलमन्त्र के ग्रहण करने पर ही उसके भावों की शुद्धि होती है इसलिये बुद्धिमान् साधक भाव में तल्लीन होकर परमेश्वरी की पूजा करे ॥ २२१-२२३ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के एकादश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

द्वादश उल्लासः

...ॐ...

मालाविधानम्

अथ वक्ष्ये च मालानां विधानं तन्त्रवर्त्मना ।

जपविधिः

आरभ्याऽनामिकामध्यात् प्रादक्षिण्येन वै क्रमात् ॥ १ ॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पामरः ॥ २ ॥

अब तन्त्र की विधि के अनुसार माला का विधान कहता हूँ । अनामिका के मध्य पर्व से प्रदक्षिण क्रम से आरम्भ कर तर्जनी के मूल पर्व पर्यन्त दश पर्वों पर जप करना चाहिये । तर्जनी के अग्र तथा मध्य पर्व से जो जप करता है, वह पामर है ॥ १-२ ॥

चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो धनम् ।
शक्तिमाला समाख्याता सर्वमन्त्रप्रदीपनी ॥ ३ ॥
(अथवा) अनामिकात्रयं पर्व कनिष्ठा च त्रिपर्विका ।
मध्यमायास्त्रयं पर्व तर्जनीमूलपर्विका ॥ ४ ॥
अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत किञ्चित् सङ्कोचयेत्तलम् ।
अङ्गुलीनां वियोगे तु छिद्रेषु क्षरते जपः ॥ ५ ॥

इस प्रकार से जप करने वाले साधक के आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों नष्ट हो जाते हैं । हमने जिसे पहले कहा है, वही सर्व मन्त्र प्रदीपनी जप माला है । अथवा अनामिका का तीन पर्व, कनिष्ठा का तीन पर्व, मध्यमा का तीन पर्व एवं तर्जनी का मूल पर्व, तर्जनी इनके द्वारा जप करना चाहिये । इसमें किसी अङ्गुली का व्यवधान नहीं होना चाहिये । हाथ के तलवे को कुछ सङ्कुचित करे । अङ्गुलियों के व्यवधान करने से जप का क्षरण हो जाता है ॥ ३-५ ॥

विमर्श—अङ्गुली का व्यवधान न हो इससे ग्रन्थकार का तात्पर्य यह है कि कनिष्ठा के अग्र पर्व से आरम्भ कर अनामिका के नीचे से तीन पर्व अपर तक,

पुनः मध्यमा के ऊपर से तीन पर्व नीचे तक, पुनः तर्जनी के मूल तक जप करना चाहिये । ऐसा करने से अङ्गुलियों का व्यवधान नहीं होगा ।

अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने ।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ६ ॥

अङ्गुलियों के अग्रभाग से जो जप किया जाता है और मेरु को लाँघकर जो जप किया जाता है तथा पर्व के गाँठ पर जो जप किया जाता है, वह निष्फल होता है ॥ ६ ॥

मालाभेदकथनम्

नित्यजापे महादेवि करमाला शुभप्रदा ।
अक्षमांला तथाऽन्या च सर्वथा सिद्धये पुनः ॥ ७ ॥

माला विधान—हे महादेवि! नित्यजाप में कर माला से किया गया जप शुभ कारक होता है इसके अतिरिक्त अन्य अक्षमाला भी सिद्धि प्रदान करती हैं ॥ ७ ॥

(अथवा) **मुक्ताफलमयी माला राज्यमोक्षप्रदायिनी ।**
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं सर्वराजवशङ्करी ॥ ८ ॥

(अथवा) मोती की माला राज्य एवं मोक्ष प्रदान करती है, वह माला समस्त सिद्धि तो प्रदान करती ही है, सम्पूर्ण राजाओं को भी वश में करती है ॥ ८ ॥

यथा मुक्ताफलमयी तथा स्फाटिकनिर्मिता ।
रुद्राक्षमालिका मोक्षे भवेत् सर्वसुसिद्धिदा ॥ ९ ॥

जो मोती की माला का फल है वही स्फटिकमाला का भी है । रुद्राक्ष की माला मोक्ष तो देती ही है, सम्पूर्ण सिद्धियाँ भी प्रदान करती है ॥ ९ ॥

प्रवालामालिका वश्ये लक्ष्मीविद्याप्रदा मता ।
तथा माणिक्यमाला च साम्राज्यफलदायिनी ॥ १० ॥

प्रवाल (मूँगा) की माला लक्ष्मी एवं विद्या प्रदान करती है । माणिक्य की माला से किया गया जप साम्राज्य का फल प्रदान करता है ॥ १० ॥

पुत्रजीवकमाला तु विद्यालक्ष्मीप्रदायिनी ।
पद्माक्षमालया लक्ष्मीर्जायते च महद्धनम् ॥ ११ ॥

पुत्रजीव की माला विद्या एवं लक्ष्मी प्रदान करती है, पद्माक्ष (कमलगट्टा) की माला से महालक्ष्मी एवं महाधन की प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥

रक्तचन्दनमाला तु वश्यसौभाग्यदायिका ।

रुद्राक्षमालिका सूते जपेन स्वमनोरथान् ॥ १२ ॥

रक्त चन्दन की माला वश्य तथा सौभाग्यप्रदान करती है । रुद्राक्ष की माला द्वारा किया गया जप मनोरथ पूर्ण करता है ॥ १२ ॥

पद्माक्षैः शत्रुहा माला कुशग्रन्थ्या तु पापहा ।
पुत्रजीवभवा माला पुत्रं वितनुतेऽचिरात् ॥ १३ ॥

पद्माक्ष की माला शत्रु का नाश करती है । कुशग्रन्थि की माला पापहारिणी है । पुत्रजीव की माला थोड़े ही समय में पुत्र प्रदान करती है ॥ १३ ॥

हिरणमयी कामदा स्यात् प्रवालैः पुष्कलं धनम् ।
सौभाग्यं स्फाटिकी माला रुद्राक्षेऽक्षयकामदा ॥ १४ ॥

हिरण्यमयी कामप्रदान करती है प्रवाल से पुष्कलधन होता है स्फटिक माला से सौभाग्य की प्राप्ति तथा रुद्राक्षं अक्षय काम प्रदान करने वाला है ॥ १४ ॥

शाक्तानां स्फाटिकीमाला रक्तचन्दनसम्भवा ।
पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शङ्खैः सहस्रकम् ॥ १५ ॥

शाक्तों के लिये स्फटिक की माला तथा रक्त चन्दन की माला, पुत्रजीव की माला की अपेक्षा दश गुणा तथा शङ्ख की माला की अपेक्षा सौ हजार गुना फल प्रदान करने वाली होती है ॥ १५ ॥

प्रवालैः पद्मरागैश्च तथाऽयुतगुणं भवेत् ।
अयुतं स्फाटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥ १६ ॥

प्रवाल मूंगा और पद्मराग मणि की माला से जप करने पर दस हजार गुना फल होता है, स्फटिक से भी अयुत गुना और मोती की माला से लाख गुना फल होता है ॥ १६ ॥

पद्माक्षैर्दशलक्षं स्याद्राजतैः कोटिरुच्यते ।
सौवर्णैर्दशकोटिः स्यादनन्तं रक्तचन्दनैः ॥ १७ ॥

पद्माक्ष (=कमलगट्टा) से दश लाख गुना और चाँदी की माला से करोड़ों गुना फल कहा गया है सुवर्ण की माला से दश करोड़ गुना तथा रक्त चन्दन की माला से अनन्त फल होता है ॥ १७ ॥

इन्द्राक्षैश्च महासिद्धिं तनुते मालिका सदा ।
रक्तचन्दनमालाभिः शिवत्वं लभते ध्रुवम् ॥ १८ ॥

इन्द्राक्ष () से बनी मालिका सदैव महासिद्धि प्रदान करती है और रक्त चन्दन

की माला के द्वारा किया गया जप शिवत्व प्रदान करता है ॥ १८ ॥

कुशग्रन्थेन रुद्राक्षैरनन्तफलदा भवेत् ।
गुञ्जायाः सर्वसिद्धिः स्याद्बिल्वकाष्ठेन सिद्धिदा ॥ १९ ॥

कुशग्रन्थि की माला तथा रुद्राक्ष की माला अनन्त फल देने वाली कही गयी है । गुञ्जा की माला से सब प्रकार की सिद्धि तथा बिल्व काष्ठ की माला अभीष्ट सिद्धि देती है ॥ १९ ॥

शङ्खेन रचिता माला सर्वसौभाग्यदायिका ।
सामान्य कथिता माला विशेषात् कथ्यतेऽधुना ॥ २० ॥

शङ्ख की बनी हुई माला सर्वसौभाग्यदायिका है । इस प्रकार सामान्य माला के विषय में कहा गया । अब देवता विशेष की माला के विषय में कहता हूँ ॥ २०॥

देवताविशेषस्य मालावर्णनम्

रक्तेन चन्दनेनापि बालामालां प्रकल्पयेत् ।
दन्तेन कालिकायास्तु राजदन्तेन मेरुणा ॥ २१ ॥

देवता विशेष की माला—बाला (त्रिपुरसुन्दरी) की प्रसन्नता के लिये रक्तचन्दन की माला का निर्माण करना चाहिये । कालिका के लिये द्राँत की माला और राजदन्त का मेरु बनाना चाहिये ॥ २१ ॥

उग्रताराजपे शस्ता महाशङ्खस्य मालिका ।
उन्मुख्याश्च तथा ज्ञेया मोक्षदा मालिका भवेत् ॥ २२ ॥

उग्रतारा महाविद्या के जप के लिये महाशङ्ख की माला प्रशस्त कही गई है । उसी प्रकार की माला उन्मुखी महाविद्या के लिये भी बनावे, ऐसी माला मोक्ष-दायिनी होती है ॥ २२ ॥

वैष्णवाणां पद्मबीजैर्मालिका तुलसी मता ।
गजदन्तैर्गणेशे तु शैवे रुद्राक्ष उच्यते ॥ २३ ॥

वैष्णवों के लिये कवलगट्टा तथा तुलसी की माला कही गई है । गणेश (गाणपत्य सम्प्रदाय) के लिये हाथी के दाँत की माला तथा शैवों के लिये रुद्राक्ष की माला प्रशस्त कही गई है ॥ २३ ॥

गर्दभानां वराहाणां दन्तैरप्यभिचारके ।

मालायां बीजसंख्याकथनम्

अष्टोत्तरशता माला चतुःपञ्चाशिकाऽपि वा ॥ २४ ॥

मारण कार्य में गदहे तथ सूअर के दाँत की माला होनी चाहिये । माला में बीज की संख्या एक सौ आठ अथवा ८५ होनी चाहिये ॥ २४ ॥

षट्त्रिंशद्रचिता माला उत्तमाधममध्यमाः ।
अथवा मातृकासंख्या माला कार्या प्रयत्नतः ॥ २५ ॥

इसी प्रकार छत्तीस बीज की संख्या भी विहित है जो क्रमशः उत्तम, मध्यम एवं अधम कही गई है । अथवा मातृकाओं की जितनी संख्या (५१) कही गई है उतनी संख्या वाली माला प्रयत्नपूर्वक निर्माण करनी चाहिये ॥ २५ ॥

सप्तविंशतिभिः कार्या सर्वसाधारणे जपे ।
पञ्चविंशतिभिर्मोक्षार्थी धनार्थी त्रिंशता जपेत् ॥ २६ ॥

सर्वसाधारण मन्त्र के जप में सत्ताईस बीज की संख्या, मोक्ष के लिये पच्चीस बीज की संख्या तथा धन के लिये तीस बीज की संख्या वाली माला से जप करना चाहिये ॥ २६ ॥

पुष्ट्यर्थी सप्तविंशत्या पञ्चदश्यभिचारके ।
अष्टोत्तरशतैः सर्वा सिद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ २७ ॥

पुष्टि के लिये सत्ताईस बीज वाली, मारण कर्म में पन्द्रह बीज वाली माला तथा एक सौ आठ बीज वाली माला सभी सिद्धि प्रदान करती है ऐसा मनीषियों का कथन है ॥ २७ ॥

पञ्चाशद्भिः सर्वकार्यं कर्त्तव्यं नात्र संशयः ।
सुवृत्तं सुन्दरं बीजंबदरीबीजमालिकम् ॥ २८ ॥

पचास बीज वाली माला से सभी कार्य करे; इसमें सन्देह न करे । इसी प्रकार गोले आकार वाली मनोहर बदरी बीज की माला भी सभी सिद्धि देती है ॥ २८ ॥

मालाग्रथनविधानम्

शिल्पिने दक्षिणां दत्त्वा गृहीत्वा साधकोत्तमः ।
संस्कारञ्च ततः कुर्यात् यथाशास्त्रप्रमाणतः ॥ २९ ॥

साधक शिल्पी को दक्षिणा देकर माला ग्रहण करे । फिर शास्त्र के अनुसार माला का संस्कार करे ॥ २९ ॥

अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति यो नरः ।
सर्वं तद्विफलं विन्द्यात् क्रुद्धा भवति चण्डिका ॥ ३० ॥

जो मनुष्य असंस्कृत माला से मन्त्र जाप करते हैं उस जप का उन्हें कोई

फल नहीं होता; बल्कि चण्डिका उससे कुपित ही होती हैं ॥ ३० ॥

पुण्यस्त्रीरचितं सूत्रं कार्पासं वाऽथ पट्टकम् ।
पङ्कजोद्‌भवसूत्रञ्च तथा च शणसूत्रकम् ॥ ३१ ॥

माला ग्रथित करने के लिये कपास का अथवा पटुआ का सूत्र पुण्य स्त्री द्वारा निर्मित हो अथवा कमल (नाल) का अथवा सन का सूत्र होना चाहिये ॥ ३१ ॥

कोषकारस्य सूत्रेण ग्रथयेदक्षमालिकाम् ।
स्वर्णादिसम्भवं सूत्रं त्रिगुणैस्त्रिगुणीकृतम् ॥ ३२ ॥

अथवा रेशम के सूत्र से जप माला गूँथनी चाहिये अथवा स्वर्ण का सूत्र होना चाहिये । पहले तीन गुना करे और फिर उसका भी तीन गुना सूत्र करे ॥ ३२ ॥

शुक्लं रक्तं तथा कृष्णं शान्तिवश्याभिचारके ।
रक्ते मुक्तिमवाप्नोति श्वेतैर्योगादिसाधनम् ॥ ३३ ॥

शान्ति कार्य में सूत्र का वर्ण शुक्ल, वश्य कर्म में रक्त तथा मारण (अभिचार) कर्म में काला होना चाहिये । रक्त सूत्र ग्रथित माला से मुक्ति मिलती है तथा श्वेत सूत्र वाली माला से योगादि की सिद्ध होती हैं ॥ ३३ ॥

पीतैः कामं यशस्यञ्च कृष्णे रोगादिसम्भवः ।
नित्ये नैमित्तिके शस्तं शुक्लं रक्तं तथा शुभम् ॥ ३४ ॥

पीत वर्ण के सूत्र से बनी माला से कामना की सिद्धि तथा यश की अभिवृद्धि होती है । काले सूत्र से रोगादि उत्पन्न होते हैं । नित्य एवं नैमित्तक कार्य में शुक्ल सूत्र तथा रक्त सूत्र विहित है ॥ ३४ ॥

बीजानि च तथा सूत्रं पञ्चगव्ये द्वयं क्षिपेत् ।
प्रक्षाल्य मूलमन्त्रेण ग्रथयेदथ सूत्रकम् ॥ ३५ ॥

माला के ग्रथन के लिये सर्वप्रथम बीज और सूत्र इन दोनों को पञ्चगव्य में डाल कर मूल मन्त्र से प्रक्षालन करना चाहिये । फिर सूत्र में बीज का ग्रथन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

गुरुश्वशुरजामातृपुत्रैः स्वयमनन्यधीः ।
तैरेव ग्रथितां मालां कारयेन्नाऽन्यतः क्वचित् ॥ ३६ ॥

अपने से अनन्य बुद्धि रखने वाले गुरु, श्वशुर, जामाता (दमाद) तथा पुत्रों के द्वारा माला गुथवानी चाहिये, अन्यों से नहीं ॥ ३६ ॥

कान्तया रचिता माला द्रुतसिद्धिकरी मता ।

एकैकमणिमादाय ब्रह्मग्रन्थिं विनिर्दिशेत् ॥ ३७ ॥

स्त्री के द्वारा ग्रथित माला शीघ्र सिद्धि प्रदान करती है । एक एक मनियाँ लेकर उसमें ब्रह्मग्रन्थि लगावे ॥ ३७ ॥

ग्रन्थिहीनं न कर्त्तव्यं स्पृष्टास्पृष्टेन दूष्यति ।
शैवे च वैष्णवे सौरे गणेशे श्रीकरेऽपि च ॥ ३८ ॥
बीजस्पर्शे पुनः कुर्यात्संस्कारं यत्नतः सुधीः ।

ग्रन्थिहीन माला निर्माण न करे । वह स्पृष्ट होने पर तथा अस्पृष्ट होने पर सब प्रकार से दूषित है । शैव, वैष्णव, सौर अथवा गाणपत्य एवं श्रीकर सम्प्रदाय के चाहे कितने भी श्रीमान् क्यों न हों उनके द्वारा माला का बीज स्पर्श हो जाने पर पुनः उसका संस्कार करना चाहिये ॥ ३८-३९ ॥

दूषणं यत्र नास्त्येव ग्रन्थिहीनोऽपि नित्यशः ॥ ३९ ॥
कालिकात्वरितयोस्तु वज्राद्याः षट्कभेदके ।
तोतलावनवासिन्योर्वाराह्याद्याविशेषतः ॥ ४० ॥
अन्यायाश्चण्डिकादेव्या ग्रन्थिहीना विधीयते ।
एकैकमणिमादाय साधकः स्थिरमानसः ॥ ४१ ॥
ब्रह्मग्रन्थिं ततो दद्यात् हृदये तारमास्मरन् ।
स्वयमेव जपेन्मन्त्रमन्यः प्रणवमुच्चरेत् ॥ ४२ ॥

अब जो माला ग्रन्थि रहित है और जिस माला के स्पर्श में दोष नहीं लगता उसे कहता हूँ । कालिका और त्वरिता की माला जो वज्रादि नाम वाली छह भेदों से कही गयी है उसके विशेष कर तोतला, वनवासिनी एवं वाराही आदि की माला तथा अन्य चण्डिकादि की माला ग्रन्थिरहित ही बनानी चाहिये । साधक स्थिरचित्त हो एक एक मणि लेकर 'ॐ' पूर्वक भगवती का स्मरण करते हुये ब्रह्म गाँठ देवे । प्रणव का उच्चारण कोई दूसरा करे, साधक मन्त्र का जप करे ॥३९-४२ ॥

गोपुच्छसदृशी कार्या अथवा सर्परूपिणी ।
मेरुमेकं विधायाथ मालान्ते साधकोत्तमः ॥ ४३ ॥
अर्चयच्च गुरुं ध्यायन् न्यासमन्त्रञ्च दक्षिणे ।
वामतोऽपि भवेद्देवं ध्यानतः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

माला गोपुच्छ के समान अथवा सर्परूपिणी होनी चाहिये । साधकोत्तम माला के अन्त में एक मेरू निर्माण करे । गुरु का ध्यान कर उसका अर्चन करे । सुमेरु मे न्यास दाहिने ओर से करे, इसी प्रकार बायें ओर से भी करे । तदनन्तर ध्यान करे ऐसा करने से सिद्धि होती है ॥ ४३-४४ ॥

यो मेरुः तं गुरुं विन्द्यान्मन्त्रबीजन्तु दक्षिणे ।
एवं निष्पाद्य मालाञ्च प्रतिष्ठाञ्च समाचरेत् ॥ ४५ ॥

जो मेरु है उसे गुरु समझना चाहिये और मन्त्र बीज दाहिनी ओर स्थापित करे। इस प्रकार माला का निर्माण कर उसकी प्रतिष्ठा करे ॥ ४५ ॥

मालासंस्कारक्रमविवेचनम्

अनुलोमविलोमाभ्यां मातृकान्तरितां न्यसेत् ।
पञ्चगव्ये क्षिपेन्मालां शिवमन्त्रेण मन्त्रिताम् ॥ ४६ ॥

मातृकार्पण (अ से लेकर क्ष पर्यन्त) के अनुलोम और विलोम क्रम से (अ-- क्ष अनुलोम क्ष................अ प्रतिलोम क्रम से) प्रत्येक बीज में न्यास करे । फिर शिवमन्त्र से अभिमन्त्रित कर माला को पञ्चगव्य में डाल देवे ॥ ४६ ॥

सान्तं शक्रस्वरारूढं नादविन्दुविभूषितम् ।
कथितं शिवमन्त्रञ्च साधकानां हिताय च ॥ ४७ ॥

साधकों के हित के लिये शिवमन्त्र इस प्रकार बतलाया गया है—सान्त (ह) जो शक्र स्वर (औ) तथा नाद विन्दु (अनुस्वार से विभूषित हो) वह शिवमन्त्र कहा गया है; यथा—(हौं) ॥ ४७ ॥

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयेन्मूलमुच्चरन् ।
घृतं क्षीरं तथा नीरं शर्करामधुसंयुतम् ॥ ४८ ॥
पञ्चामृतमिदं ख्यातं प्रत्येकन्तु पलं पलम् ।
पलार्धं गोमयं क्षीरं प्रस्थं दधि तथा समम् ॥ ४९ ॥
गोमूत्रं प्रस्थमानं स्यादाज्यञ्चैव तदर्धकम् ।
मूलेन मन्त्रितं कृत्वा योजयेत् पञ्चगव्यकम् ॥ ५० ॥

तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये पञ्चामृत और पञ्चगव्य से माला को स्नान करावे । घी, दूध, जल, शर्करा और मधु को एक-एक पल लेकर एक साथ मिला देने से पञ्चामृत बन जाता है, अर्थात् पञ्चामृत में प्रत्येक का परिमाण एक एक पल होना चाहिये । आधा पल गोमय, दूध और दही, एक-एक प्रस्थ बराबर घी, दूध, जल, शर्करा और मधु इनको एक में मिलाने से पञ्चामृत बनता है । एक प्रस्थ गोमूत्र उसका आधा घी इनको मूल मन्त्र से एक में मिला देवे तो पञ्चगव्य बन जाता है ॥ ४८-५० ॥

अशीतलजलेनैव स्नापयेत्तदनन्तरम् ।
क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन मार्जयेत् ॥ ५१ ॥

मालासंस्कारमन्त्र:

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवेऽभवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ ५२ ॥

सद्योजात मन्त्र—इसके बाद माला को गर्भ जल में स्नान करावे और पञ्चगव्य से प्रक्षालन करे। फिर सद्योजातम्' इस मन्त्र से मार्जन करे । 'ॐ सद्योजातम्.........भवोद्भवाय नम:'—यह सद्योजात मन्त्र है ॥ ५१-५२ ॥

चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत् ॥ ५३ ॥

फिर चन्दन, अगुरु तथा गन्ध से वामदेव मन्त्र द्वारा अर्चन करे ॥ ५३ ॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः
कालाय नमः कलविकरणाय नमः ।
बलाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः
सर्व भूतदमनाय नमो नम उन्मनाय नमः ॥ ५४ ॥

वामदेव मन्त्र—'ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नम: श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नम:, कालाय नम: कलविकरणाय नम:, बलाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नम: सर्व भूतदमनाय नमो नम उन्मनाय नम:'—पर्यन्त वामदेव मन्त्र है ॥ ५४ ॥

सुधूपैर्धूपयेत्ताञ्च अघोरमनुना बुधः ।
ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ५५ ॥

अघोर मन्त्र—फिर बुद्धिमान् साधक अघोर मन्त्र से उत्तम धूप द्वारा माला को धूप प्रदान करे । 'ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य: सर्वत: सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य:'—यह अघोर मन्त्र है ॥ ५५ ॥

गन्धचन्दनकुङ्कुमैर्लेपयेत्पुरुषेण च ॥ ५६ ॥
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ५७ ॥

तत्पुरुषमन्त्र—तदनन्तर तत्पुरुष मन्त्र द्वारा गन्ध, चन्दन और कुङ्कुम द्वारा माला को अनुलिप्त करे । 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्र: प्रचोदयात्'—यह तत्पुरुष मन्त्र है ॥ ५६ ॥

मन्त्रयेच्च ततो धीरः प्रत्येकञ्च शतं शतम् ।
ईशानमनुना मेरुं शतं चैव ततः परम् ॥ ५८ ॥
ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्

ब्रह्माधिपतिः ब्रह्मणोऽधिपतिः शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम् ॥५९॥

इसके बाद धीर पुरुष एक-एक मनियों को सौ-सौ बार अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर 'ईशान मन्त्र से सौ बार सुमेरु को अभिमन्त्रित करे ॥ ५८ ॥

ईशान मन्त्र—'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ब्रह्माधिपतिः ब्रह्मणोऽधिपतिः शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्' यह ईशान मन्त्र है ॥ ५९ ॥

मालाप्राणप्रतिष्ठाविधानम्

ततः संस्थापयेन्मालां स्वर्णादिपीठके बुधः ।
पद्माकारेषु चाश्वत्थपत्रेषु स्थापयेच्च वा ॥ ६० ॥

इस क्रिया के अनन्तर साधक सुवर्णादि निर्मित पीठ पर माला स्थापित करे। अथवा कमल पर अथवा पीपल के पत्र पर भी माला स्थापित करे ॥ ६० ॥

पीठे वापि च संस्थाप्य पूजयेत् स्वीयदेवताम् ।
साङ्गावरणसंयुक्तामुपचारैः सुविस्तरैः ॥ ६१ ॥

अथवा किसी भी पीठ पर माला स्थापित करे । तदनन्तर अङ्गावरण सहित अपनें इष्ट देवता की विस्तृत उपचारों से पूजा करे ॥ ६१ ॥

एकैकक्रमयोगेन बीजानां साधकोत्तमः ।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत अष्टोत्तरशतं ततः ॥ ६२ ॥

फिर उत्तम साधक एक-एक बीज में के क्रम से एक-सौ आठ बार उसमें प्राण प्रतिष्ठा करे ॥ ६२ ॥

मालाप्राणप्रतिष्ठा मन्त्रः

प्राणशक्तिसमारूढं औकारविन्दुरूपधृक् ।
प्रणवं अक्षमालाधिपतये तदनन्तरम् ॥ ६३ ॥
हृदन्तं मूलमुच्चार्य पूजयेन्मालिकां क्रमात् ।
तिलेन घृतयुक्तेन शक्त्या होमं प्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥

प्राणशक्ति (ह), उस पर औ विन्दु युक्त, फिर प्रणव, तदनन्तर 'अक्ष मालाधिपतये, इसके बाद हृत् (नमः), इस मन्त्र से प्राण प्रतिष्ठा कर माला की पूजा करे । (हौं ॐ अक्षमालाधिपतये नमः) यह प्राण प्रतिष्ठा का तथा पूजा का मन्त्र कहा गया । फिर घी मिश्रित तिल से होम करे ॥ ६३-६४ ॥

होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत् ।
तारोऽक्षमालाधिपतये सुसिद्धादिं वदेत्ततः ॥ ६५ ॥

सर्वमन्त्रार्थसाधिनीतिसाधयद्वितयं पुनः ।
सिद्धिंप्रकल्पय स्वाहा अभिमन्त्रितमालया ॥ ६६ ॥
मूलमन्त्रं जपेत्तत्र अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि जप्त्वा मालां समर्पयेत् ॥ ६७ ॥

यदि होम करने में असमर्थ हो तो दूना जप करे । इसके बाद 'तार (ॐ), फिर 'अक्षमालाधिपतये सुसिद्धादि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सिद्धिं प्रकल्पय स्वाहा' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित माला के द्वारा मूल मन्त्र का आठ हजार की संख्या में जप करे अथवा एक-सौ आठ की संख्या में जप करे । इतने जप के पश्चात् गुरु शिष्य के हाथ में माला समर्पित करे ॥ ६५-६७ ॥

शिष्यहस्ते ततः सोऽपि जपेदष्टसहस्रकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि जप्त्वा मालाञ्च गोपयेत् ॥ ६८ ॥

फिर शिष्य भी आठ हजार की संख्या में अथवा एक सौ आठ की संख्या में जप करे और माला को गुप्त रखे ॥ ६८ ॥

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्त्या तु साधकः ।
गुरोरभावे मालायाः संस्कारं स्वयमाचरेत् ॥ ६९ ॥

साधक शिष्य यथाशक्ति गुरु को दक्षिणा देवे । यदि गुरु न हों तो स्वयं माला का संस्कार करे ॥ ६९ ॥

मालाप्रदर्शनं वर्जनीयः

गुरुं प्रकाशयेद्विद्वान् न तु मन्त्रं कदाचन ।
अक्षमालाञ्च मुद्राञ्च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥ ७० ॥

विद्वान् भले ही अपने गुरु को प्रकाशित कर दे, किन्तु मन्त्र कदापि प्रकाशित न करे, उसे गुप्त ही रखे । बहुत क्या ! अक्षमाला और मुद्रा गुरु को भी न दिखावे ॥ ७० ॥

भूतराक्षसवेतालाः सिद्धगन्धर्वचारणाः ।
हरन्ति प्रकटाद्यस्मात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥ ७१ ॥

यतः मन्त्रादि के प्रकट (प्रकाशित) करने से भूत, राक्षस, बेताल, सिद्ध, गन्धर्व और चारण उसका अपहरण कर लेते हैं । अतः साधक उसे यत्नपूर्वक गुप्त रखे ॥ ७१ ॥

जपान्यसमये मालां पूजयित्वा तु गोपयेत् ।
अशुचिर्न स्पृशेन्मालां शुचौ न प्रकल्पयेत् ॥ ७२ ॥

जप कर लेने के बाद माला की पूजा कर उसको गुप्त रखे । अपवित्रता की अवस्था में माला का स्पर्श न करे और अपवित्र स्थान में उसे न रखे ॥ ७२ ॥

हस्तात् पतति चेन्माला न जप्तव्या त्र्यहं बुधैः ।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं जपेन्मन्त्रं सहस्रकम् ॥ ७३ ॥

यदि माला हाथ से गिर जावे तो बुद्धिमान् साधक तीन दिन पर्यन्त जप न करे । तदनन्तर प्रायश्चित्त कर एक सहस्र मन्त्र का जप करे ॥ ७३ ॥

(अथवा) **करभ्रष्टे शब्दकृते जपेदष्टोत्तरं शतम् ।**
जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं प्रथयित्वा शतं जपेत् ॥ ७४ ॥

अथवा माला के हाथ से गिर जाने पर स्वयं बोलने पर एक सौ आठ बार पुनः जप करे । सूत्र के जीर्ण हो जाने पर, उसे पुनः गूँथकर एक सौ की संख्या में जप करे ॥ ७४ ॥

छिन्ना भवति चेन्माला पूजां कृत्वा ततोऽधिकाम्।
गुरूणां शिल्पिनाञ्चैव पूजां कृत्वा तु साधकः ॥ ७५ ॥
प्रतिष्ठां पूर्ववत् कृत्वा पुनर्जापं समाचरेत् ।
एवंविधा सर्वमाला सर्वदेवे प्रतिष्ठिता ॥ ७६ ॥

यदि माला छिन्न (टूट) जावे, तब साधक उससे भी अधिक, अपने गुरु की तथा शिल्पी की पूजा कर पूर्ववत् माला की प्रतिष्ठा करे । तब उस पर जप प्रारम्भ करे । इस प्रकार की माला में समस्त देवताओं का निवास होता है ॥ ७५-७६ ॥

अक्षमालापूजाकथनम्

अथान्यां सम्प्रवक्ष्यामि मालां कुलमयीं पराम् ।
कुण्डगोलोद्भवैर्द्रव्यैः स्वयम्भूकुसुमेन च ॥ ७७ ॥
रोचनाकुङ्कुमेनैव अक्षमालां समर्चयेत् ।
कर्पूरागुरुकस्तूरी तथा मृगमदेन च ॥ ७८ ॥

अब कौलिकों के प्रयोग की परा कुलमयी माला कहता हूँ । कुण्डगोलोद्भव द्रव्यों से, स्वयम्भू पुष्प से, रोचना कुङ्कुम, कपूर, अगुरु, कस्तूरी तथा मृगमद से अक्ष माला की पूजा करनी चाहिये ॥ ७७-७८ ॥

अक्षमालामुपस्कृत्य प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ।
अथातः सप्रवक्ष्यामि मालां सर्वोत्तमोत्तमाम् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार अक्षमाला का संस्कार कर उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा करे । अब सर्वोत्तम से भी उत्तम माला कहता हूँ ॥ ७९ ॥

यस्य विज्ञानमात्रेण मन्त्राः सिध्यन्ति तत्क्षणात् ।
अनुलोमविलोमेन मन्त्रमातुर्विभेदतः ॥ ८० ॥
मन्त्रेणाऽन्तरितं वर्णं वर्णेनाऽन्तरितं मनुम् ।
कुर्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रदीपिनीम् ॥ ८१ ॥

जिसके जान लेने मात्र से तत्क्षण मन्त्र की सिद्धि हो जाती है । मन्त्र माता के भेद से उसके अनुलोम-विलोम द्वारा जिसका निर्माण किया जाता है अर्थात् एक मन्त्र के बाद एक वर्ण, फिर एक वर्ण के बाद एक मन्त्र । इस क्रम से वर्णमयी माला का निर्माण कर इससे सारे मन्त्रों में तेज आ जाता है ॥ ८०-८१ ॥

चरमार्णं मेरुरूपं लङ्घयेन्न कदाचन ।
एतद्रहस्यं परमं नाऽऽख्येयं यस्य कस्यचित् ॥ ८२ ॥

अन्तिम वर्ण 'क्ष' का उल्लङ्घन कदापि न करे । यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य है । इसे जैसे-तैसे निठल्लू को उपदेश नहीं करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अनुलोमविलोमस्थैर्बिन्दुयुङ्मातृकाक्षरैः ।
क्षमेरुकैः साष्टवर्गैः क्लृप्तया वर्णमालाया ॥ ८३ ॥

विन्दु युक्त मातृका अक्षरों के अनुलोम-विलोम से युक्त 'क्ष' मेरु वाले एवं आठ वर्गों (अ - क्ष (१) क- से प- (५) य व (१) श ष स ह (१) =८) से युक्त, प्रत्येक अनुस्वार सहित वर्णों से युक्त, प्रत्येक अक्षर वाले मन्त्र शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करते हैं ।

विमर्श—'अ' इसके बाद मन्त्र का अनुस्वार युक्त एक अक्षर, फिर आ, फिर मन्त्र का अनुस्वार युक्त दूसरा अक्षर, यह अनुलोम क्रम है । हं फिर मन्त्र का पहला सानुस्वार अक्षर, इस प्रकार के अनुलोम विलोम वाले मातृकाओं से युक्त मन्त्रों के प्रत्येक वर्ण होने चाहिये ॥ ८३ ॥

प्रत्येकं वर्णयुङ्मन्त्रा जप्ताः स्युः क्षिप्रसिद्धिदाः ।
सविन्दुं वर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेत् सुधीः ॥ ८४ ॥

मातृकावर्ण के साथ मन्त्र के वर्ण को भी सानुस्वार उच्चारण करना चाहिये । इस प्रकार से साधक को जप करना चाहिये ॥ ८४ ॥

क्षं मेरुं कल्पयित्वा तु जपेत्तन्नाऽभिलङ्घयेत् ।
अथ यन्त्रप्रतिष्ठानं कथयामि प्रसङ्गतः ॥ ८५ ॥

'क्षं' को मेरु समझे और उसका उल्लङ्घन न करे । अब प्रसङ्ग प्राप्त यन्त्र की प्रतिष्ठा की विधि कहता हूँ ॥ ८५ ॥

यन्त्रप्रतिष्ठाविधानम्

सुवर्णं रजतं ताम्रं श्रेष्ठं मध्यमथाऽधमम् ।
ताम्रे लक्षगुणं प्रोक्तं रौप्ये कोटिगुणं भवेत् ॥ ८६ ॥

श्रेष्ठ, मध्यम और अधम तीन प्रकार के यन्त्र कहे गये हैं । सुवर्ण, रजत और ताम्रपट्ट पर यन्त्र श्रेष्ठ है । ताम्र पट्ट का यन्त्र लक्षगुणा और पीतल पर कोटिगुणा फल होता है ॥ ८६ ॥

सुवर्णेऽनन्तफलदं स्फाटिकेऽपि तथा समम् ।
एकतोलं द्वितोलं वा त्रितोलं पञ्चतोलकम् ॥ ८७ ॥
रसतोलं चतुस्तोलं सप्ततोलं पलन्तु वा ।
साधकस्य मनोज्ञं वा कृत्वा पीठे सुसाधकः ॥ ८८ ॥
पूर्वोक्तधातुद्रव्यैश्च सुन्दरं सुमनोहरम् ।
सुरेखं सुमुखं यन्त्रं लेखयित्वा विधानतः ॥ ८९ ॥

सुवर्ण यन्त्र अनन्त फल प्रदान करता है, स्फटिक का यन्त्र भी उतना ही फल देता है । उसका परिमाण एक तोला, दो तोला, तीन तोला, पाँच तोला, छह तोला, चार तोला या सात तोला जो साधक के लिये रुचिकर हो, इस प्रकार का यन्त्र किसी पीठ पर पूर्वोक्त धातुओं के द्रव्य से सुन्दर, मनोहर, उत्तम रेखा वाला, सुमुख विधानपूर्वक यन्त्र लिखे ॥ ८७-८९ ॥

अथवा प्रतिमां कृत्वा निजदेवस्वरूपिणीम् ।
प्रतिष्ठाञ्च ततः कुर्याद् यथाशास्त्रप्रमाणतः ॥ ९० ॥

अथवा अपने इष्ट देवता की मनोहर प्रतिमा निर्माण कर उसमें शास्त्रीय विधि के अनुसार प्राणप्रतिष्ठा करे ॥ ९० ॥

स्नात्वा सङ्कल्पयेन्मन्त्री ततो न्यासादिकञ्चरेत् ।
पञ्चगव्यं ततः कृत्वा शिवमन्त्रेण शोधितम् ॥ ९१ ॥
तत्र यन्त्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन समाकुलम् ।
तस्मादुद्धृत्य तच्चक्रं स्थापयेत् स्वर्णपट्टके ॥ ९२ ॥
पञ्चामृतेन सुस्नाप्य शीतलेन जलेन च ।
वाससा जलमुत्तोल्य स्थापयेद्धेमपीठके ॥ ९३ ॥

फिर स्नान कर पूजा का सङ्कल्प करे । फिर न्यास आदि क्रिया करे । फिर पूर्वोक्त शिव मन्त्र (हौं) मन्त्र से शुद्ध पञ्चगव्य में मन्त्रज्ञ साधक प्रणव मन्त्र पढ़कर यन्त्र को डाल देवे । फिर उस चक्र को, वहाँ से निकालकर, स्वर्ण के पट्ट पर स्थापित करे । फिर उसे पञ्चामृत से, अथवा शीतल जल से स्नान करावे । वस्त्र

से उसका जल पोंछकर सुवर्ण निर्मित पीठ पर स्थापित करे ॥ ९१-९३ ॥

पीठपूजां विधायाथ कुशैर्यन्त्रञ्च संस्पृशन् ।
प्रणवं यन्त्रराजाय विद्महे तदनन्तरम् ॥ ९४ ॥
महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात् ।
गायत्रीमिति सञ्जप्य शतमष्टोत्तरं ततः ॥ ९५ ॥

तदनन्तर पीठपूजा कर कुशा समूह से यन्त्र का स्पर्श करते हुये 'ॐ यन्त्र-राजाय' से आरम्भ कर 'प्रचोदयात्' पर्यन्त इस यन्त्र की गायत्री का एक-सौ आठ बार जप करे ॥ ९४-९५ ॥

आवाह्य पूजयेद् देवीं जीवन्यासपुरःसरम् ।
उपचारैः षोडशभिर्नानाविधरसायनैः ॥ ९६ ॥

फिर उसमें देवी का आवाहन कर प्राण प्रतिष्ठा सहित षोडश उपचारों से एवं अनेक प्रकार के रसायनों से देवी की पूजा करे ॥ ९६ ॥

नानाविधफलैर्द्रव्यैर्नानाङ्गरागविस्तरैः ।
स्वकल्पोक्तविधानेन सम्पूज्य परमेश्वरीम् ॥ ९७ ॥

अनेक प्रकार के फल, अनेक प्रकार के द्रव्य, अनेक प्रकार के राग आदि द्वारा अपने सम्प्रदाय के अनुसार परमेश्वरी का पूजन करे ॥ ९७ ॥

ततो जाप्यं सहस्रं तु कुर्यादीप्सितसिद्धये ।
बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेच्चक्रमुत्तमम् ॥ ९८ ॥

तदनन्तर मनोरथ सिद्धि के लिये एक सहस्र जप कर बलिदान कर उस चक्र को प्रणाम करे ॥ ९८ ॥

अष्टोत्तरशतं होमं घृतेन कारयेत् सुधीः ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात्तथा च शिल्पिने ततः ॥ ९९ ॥

फिर सुधी साधक एक सौ आठ की संख्या में घी का होम कर गुरु को दक्षिणा देवे और कारीगर को भी सन्तुष्ट करे ॥ ९९ ॥

देवताप्रतिष्ठा

देवतायाः प्रतिष्ठानमेवं तु कारयेद् बुधः ।
न्यासादिकं स्वकल्पोक्तं गायत्रं तत्र सन्दिशेत् ॥ १०० ॥

बुद्धिमान् साधक इसी प्रकार देवता की प्रतिष्ठा करे । उसमें अपने सम्प्रदायानुसार न्यास एवं उसकी गायत्री द्वारा प्रतिष्ठा करे ॥ १०० ॥

देवतायाः प्रतिष्ठाने विशेषेः कथितो मया ।
अथ वक्ष्यामि मन्त्राणां पुरश्चरणमुत्तमम् ॥ १०१ ॥

देवता की प्रतिष्ठा में होने वाली विशेषता हमने कह दी । अब मन्त्रों के पुरश्चरण के विषय में कहता हूँ ॥ १०१ ॥

पुरश्चरणकथनम्

भाग्यहीनोऽपि मूर्खोऽपि यद्बोधादमरो भवेत् ।
साधयेत् सिद्धिसकलान् साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १०२ ॥

मन्त्रों के पुरश्चरण—जिसके ज्ञान मात्र से भाग्यहीन भी मनुष्य देवत्व प्राप्त कर लेता है और समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है । किं बहुना साक्षात् सिद्धेश्वर बन जाता है । उस पुरश्चरण की प्रक्रिया मैं कहता हूँ ॥ १०२ ॥

आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेन यथाविधि ।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ॥ १०३ ॥

पुरस्क्रिया के आरम्भ में शास्त्र में कहे गये नियमों का पालन करे । पुरस्क्रिया के अनन्तर मन्त्र की सिद्धि होती है, तभी मन्त्रज्ञ उसके अनुष्ठान का अधिकारी होता है, अन्यथा नहीं ॥ १०३ ॥

पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः ।
किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः ॥ १०४ ॥

पुरश्चरण करने पर ही मन्त्र फलदायक होते हैं । होम, जप एवं मन्त्र के न्यास के विस्तार मात्र से कोई फल नहीं होता ॥ १०४ ॥

वश्याय सर्वमन्त्राणां यदि न स्यात् पुरस्क्रिया ।
जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः ॥ १०५ ॥
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।
पुरस्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं जीव उच्यते ॥ १०६ ॥

यदि पुरश्चरण क्रिया न की जावे तो मन्त्र वश में नहीं होते । जिस प्रकार जीव रहित देह किसी भी कर्म में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार पुरश्चरण रहित मन्त्र फलप्रद नहीं होते । अतः मन्त्रों का पुरश्चरण प्रधान होने से वहीं पुरश्चरण उसका जीव कहलाता है ॥ १०५-१०७ ॥

तस्मादादौ पुरश्चर्यां कृत्वा साधकसत्तमः ।
प्रयोगञ्च ततः कुर्यात् साधकः सिद्धिहेतवे ॥ १०७ ॥

इसलिये उत्तम साधक सर्वप्रथम पुरश्चरण करे । तब मन्त्र सिद्धि हो जाने पर

उसका प्रयोग करे ॥ १०७ ॥

स्थानभेदे फलभेदकथनम्

ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ स्वेच्छया मतम् ।
नगरात् परतः क्रोशं क्रोशयुग्ममथाऽपि वा ॥ १०८ ॥
आहारादिविहारार्थं तावतीं भूमिमाक्रमेत् ।
गृहे जपः समः प्रोक्तो नद्यां शतगुणः स्मृतः ॥ १०९ ॥

पुरश्चरण के लिये गाँव से दूर, एक कोश की दूरी पर, नदी के तीर पर, जहाँ उसकी इच्छा हो, नगर से चारों ओर एक कोश अथवा दो कोश की दूरी पर, इसी प्रकार आहार-विहार के लिये जितनी भूमि की आवश्यकता हो, उतनी भूमि स्वायत्त करे। घर पर किया गया जप सम फल वाला और नदी के तट पर किया गया जप सौ गुना फल प्रदान करता है ॥ १०८-१०९ ॥

पुण्यारण्ये तथाऽऽरामे सहस्त्रगुण उच्यते ।
अयुतं पर्वते पुण्यं लक्षं भागीरथीजले ॥ ११० ॥
कोटिर्देवालये प्राहुरनन्तं शिवसन्निधौ ।
यत्र वा कुत्रचिद् देशे लिङ्गे वै पश्चिमामुखे ॥ १११ ॥
स्वयम्भूर्बाणलिङ्गे वा इतरे वा तदन्तिके ।
प्रयागे सुरनद्यां वा वाराणस्यां वराहके ॥ ११२ ॥
उज्जटे पर्वते वापि श्मशाने गहनान्तरे ।
एकलिङ्गे शून्यगेहे चतुष्पथे शिवान्तिके ॥ ११३ ॥
एकवृक्षगिरौ वापि वटमूले शिवालये ।
महानिशिपुरश्चर्यां कुर्यादेषु स्थलेषु च ॥ ११४ ॥

पुण्यारण्य में तथा वाटिका आदि में किया गया जप हजारों गुना फल देता है। पर्वत पर दश हजार गुना तथा भागीरथी के जल में लाख गुना फल देता है। देवालय में करोड़ गुना तथा शिव के सन्निधान में अनन्त फल देता है। जिस किसी भी ऐसे प्रदेश में; जहाँ पश्चिमाभिमुख शिवलिङ्ग हो, स्वयम्भू लिङ्ग, वाणलिङ्ग, अथवा अन्य लिङ्ग के समीप में जप करे। प्रयाग, गङ्गा नदी वाराणसी, वराहक्षेत्र, उज्जट पर्वत, श्मशान, किसी गहन स्थान में, एकलिङ्ग, शून्यगृह, चतुष्पथ, शिव सन्निधान, एक वृक्ष वाले पर्वत, वटमूल और शिवालय—इन स्थानों में अर्धरात्रि के समय पुरश्चरण करे ॥ ११०-११४ ॥

विघ्ननिवारणार्थं पूजाविधानम्

क्षीरवृक्षस्य काष्ठानि दशास्त्रमन्त्रितानि वै ।

पूर्वादिक्रमतो वीरः स्थापयेत् कीलकानि च ॥ ११५ ॥

क्षीरी वृक्ष के काष्ठ को दश बार अस्त्र मन्त्र (हुं फट्) से अभिमन्त्रित कर उसकी कीली पूर्वादि दिशाओं में गाड़कर वीर साधक जप करे ॥ ११५ ॥

इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ।
वायुं कुबेरमीशानं ब्रह्मानन्तौ ततः परम् ॥ ११६ ॥
स्वस्वदिक्षु प्रपूज्यैव बलिं पश्चान्निवेदयेत् ।
ईशानशक्रयोर्मध्यमूर्ध्वं ज्ञेयं सदा बुधैः ॥ ११७ ॥
वरुणासुरयोर्मध्यमधश्च परिकथ्यते ।
क्षेत्रे च कीलिते मन्त्री न विघ्नैः परिभूयते ॥ ११८ ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा एवं अनन्त की अपनी-अपनी दिशाओं में पूजा कर बलिदान करे । बुद्धिमान पुरुष को ईशान एवं पूर्व के मध्य ऊर्ध्व दिशा तथा वरुण एवं निर्ऋति के मध्य में अधः दिशा समझनी चाहिये । इस प्रकार क्षेत्र को कीलित कर जप करने वाला मन्त्री विघ्न से पराभूत नहीं होता ॥ ११६-११८ ॥

क्षेत्रपालं गणेशञ्च विधिवत्तत्र पूजयेत् ।
दीपस्थाने च वीरेन्द्रो यथाविधि पुरःसरम् ॥ ११९ ॥
मण्डलं तत्र कुर्वीत चतुर्द्वारात्मकं ततः ।
शुचिः पूर्वदिने भूत्वा साधकः स्थिरमानसः ॥ १२० ॥

साधक बलिदान के लिये क्षेत्रपाल और गणेश की विधिवत् पूजा करे । जहाँ दीप स्थापित करना हो, उस स्थान पर चतुर्द्वारात्मक मण्डल बनावे । साधक पूर्व दिन में शुचि एवं सावधान रहे ॥ ११९-१२० ॥

प्रातः स्नात्वा च गायत्रीं सहस्रं प्रयतो जपेत् ।
ज्ञाताज्ञातस्य पापस्य क्षयार्थं प्रथमं पुनः ॥ १२१ ॥
विप्रान् सन्तर्पयेत् सम्यग्भोजनात् सादरादिभिः ।
बहुभिर्वस्त्रभूषाभिः सम्पूज्य गुरुमात्मनः ॥ १२२ ॥
आरभेच्च जपं पश्चात् तदनुज्ञापुरःसरम् ।
आरम्भकाले नियतं परयोषां प्रपूज्य च ॥ १२३ ॥
दीक्षितां वस्त्रपुष्पाद्यैः स्वयं संयतमानसः ।

प्रातःकाल स्नानोपरान्त एक हजार गायत्री का जप करे । तदनन्तर सर्वप्रथम ज्ञाताज्ञात पाप के क्षय के लिये उत्तमोत्तम भोजन कराकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे और अनेक वस्त्र एवं आभूषणों से अपने गुरु की पूजा करे । फिर उनकी आज्ञा

लेकर जप प्रारम्भ करे । जपारम्भ काल में साधक नियमपूर्वक दूसरे की स्त्री जो दीक्षित हो, उसकी वस्त्र एवं पुष्प आदि आभूषणों से पूजा करे और इन्द्रियों को वश में रखे ॥ १२१-१२४ ॥

पायसं पिष्टकं चैव नानारससमन्वितम् ॥ १२४ ॥
दुग्धं दधि तथा तक्रं नवनीतं सशर्करम् ।
ऐक्षवं मोदकं चैव नानाविधरसायनम् ॥ १२५ ॥
नानाविधफलं चैव नानागन्धविलेपनम् ।
चन्दनं मृगनाभिञ्च श्रीखण्डं कुङ्कुमं तथा ॥ १२६ ॥
आसनं पादुकां वस्त्रं तथा चाऽऽभरणादिकम् ।
धूपदीपञ्च कौषेयं पुष्पमालां तथा परम् ॥ १२७ ॥
पञ्चतत्त्वं कुलाष्टञ्च शून्यगेहे समानयेत् ।
द्वारदेशे ततो वीरः पूजयेद् द्वारदेवताम् ॥ १२८ ॥

फिर पायस (खीर), पिष्टक (पूआ), जो अनेक रसों से पूर्ण हो, दूध, दही, मट्ठा, नवनीत, शर्करा, गुड़ अनेक प्रकार के मोदक, अनेक प्रकार के फल, अनेक प्रकार के इत्रादि विलेपन पदार्थ, चन्दन, मृगनाभि (कस्तूरी), श्री खण्ड, कुङ्कुम, आसन, पादुका (खड़ाऊँ), वस्त्र अनेक प्रकार के आभूषण, धूप, दीप, रेशमी, वस्त्र, पुष्प-माला, इसके अतिरिक्त मधु, मांसादि, पञ्चत्त्व और कुलाष्टक इन सभी वस्तुओं को शून्यगृह में लाकर एकत्रित करे । फिर वीर साधक द्वारदेवता की पूजा करे ॥ १२४-१२८ ॥

गणेशं वटुकं चैव क्षेत्रपालञ्च योगिनीम् ।
चतुर्द्वारेषु सम्पूज्य पूर्वादिक्रमतो बुधः ॥ १२९ ॥
तेभ्यो बलिं प्रदद्यात्तु साधकश्च ततः परम् ।
भूतापसरणं कृत्वा दीपस्थानं समाचरेत् ॥ १३० ॥

गणेश, बटुक, क्षेत्रपाल और योगिनी इनकी पूर्वादि क्रम से चारों द्वारों पर पूजा कर साधक पूजा के बाद उनको बलि प्रदान करे और भूतापसारण कर दीपक किसी निश्चित स्थान पर स्थापित करे ॥ १२९-१३० ॥

नानालङ्काररचितो विहितासनमाश्रितः ।
स्वकल्पोक्तं विधायाऽथ प्रोक्षयेत्तदनन्तरम् ॥ १३१ ॥
अर्घ्योदकेन सम्भारमात्मानञ्च ततः परम् ।

इसके बाद अनेक प्रकार के अलङ्कारों से भूषित होकर, अपने आसन पर बैठकर, अपने सम्प्रदायानुसार अर्घ्योदक स्थापित कर, उस अर्घ्योदक से यज्ञ की

समस्त सामग्री का तथा स्वयं अपने को प्रोक्षित करे ॥ १३१-१३२ ॥

नानालङ्कारसंयुक्तमर्घ्योदकविशोधितम् ॥ १३२ ॥
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तीरष्टौ सुखं नयेत् ।
अष्टकन्यारूपभेदं विलोमयाऽऽमर्शचेष्टितम् ॥ १३३ ॥

कुलाष्टक कन्या पूजन—तदनन्तर अर्घ्योदक से सर्वथा संशुद्ध, अनेक अलङ्कारों से संयुक्त, अष्ट शक्तियों को बुलाकर, उनका अमृतीकरण करे । फिर सुखपूर्वक उन्हें बिठावे । ये अष्ट कन्यायें अनुलोम एवं विलोम जाति वाली हों, जिनके रूप में भी परस्पर भेद हो ॥ १३२-१३३ ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा ।
वेश्या नापितकन्या च रजकी योगिनी तथा ॥ १३४ ॥
विदग्धाः सर्वजातीनां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः ।
ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसञ्ज्ञकाः ॥ १३५ ॥

ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा—ये चार प्रकार की कन्यायें, जो अपने कुल की भूषण हैं, इसके बाद वेश्या, नापित कन्या, रजकी तथा योगिनी—ये प्रकार की विलोम जाति की चार कन्यायें । इस प्रकार कुल आठो जाति की कन्यायें, जो विदग्धा (चतुर) हों वो प्रशस्त कही गई हैं और समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली बतलाई गयी हैं । इनका ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या आदि नामकरण भी करना चाहिये ॥ १३४-१३५ ॥

आसनं प्रथमं दत्त्वा स्वागतञ्च पुनः पुनः ।
अर्घ्यं पाद्यञ्च पानीयं मधुपर्कं जलंततः ॥ १३६ ॥
स्नापयेद् गन्धपुष्पाद्भिः केशसंस्कारमाचरेत् ।
धूपयित्वा ततः केशान् कौषेयञ्च निवेदयेत् ॥ १३७ ॥

सर्वप्रथम इन कन्याओं को आसन प्रदान करना चाहिये । तदनन्तर स्वागत पूँछना चाहिये । तदनन्तर अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क और पुनः आचमनीय देना चाहिये । इनको सुगन्ध युक्त जल से स्नान कराकर केश संस्कार करे । इनके केशों को धूपित करे एवं रेशमी वस्त्र पहनावे ॥ १३६-१३७ ॥

ततः स्थानान्तरे पीठे आस्तीर्य पादुकायुगम् ।
दत्त्वा तत्र समासीनां नानालङ्कारभूषणैः ॥ १३८ ॥
भूषयित्वाऽनुलेपञ्च गन्धं माल्यं निवेदयेत् ।
तां तां शक्तिं ततो ध्यायेद् यथाक्रमविधानतः ॥ १३९ ॥

फिर दो पादुका पहना कर, किसी अन्य स्थान में बने हुये पीठ पर बिठावे

वहाँ बैठाकर अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत कर, गन्ध, माल्य निवेदन करे, फिर क्रमानुसार उन ब्राह्मणी आदि कन्याओं का जो तत्-तत् शक्ति स्वरूपा हैं उनका इस प्रकार ध्यान करे ॥ १३८-१३९ ॥

ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तिध्यानम्

हंसारूढां सुवर्णाभां चतुर्वक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
ब्रह्मकूर्चाब्जदण्डाक्षसूत्राणि करपङ्कजैः ॥ १४० ॥
दधतीं चारुरूपाञ्च जटामुकुटमण्डिताम् ।
स्त्र्यलङ्कारसमायुक्तां ब्रह्माणीं संस्मरेत् सुधीः ॥ १४१ ॥

१. ब्रह्माणी का ध्यान—हंस पर बैठी हुई, सुवर्ण के आभा के समान जाज्वल्यमान कान्ति वाली, चारमुख एवं तीन नेत्रों से संयुक्त, अपने हाथों में ब्रह्मकूर्च, कमल, दण्ड एवं अक्षमाला धारण किये हुये, अत्यन्त सुन्दर वेश तथा जटा, मुकुट मण्डित, स्त्रियोचित अलङ्कारों से विभूषित ब्रह्माणी का साधक को ध्यान करना चाहिए ॥ १४०-१४१ ॥

माहेश्वरीं वृषारूढां शुक्लां नेत्रत्रयान्विताम् ।
कपालं डमरुं बाणं शूलं टङ्कमभीतिदम् ॥ १४२ ॥
कराब्जैर्दधतीं चन्द्रचूडारत्नविभूषिताम् ।
त्रिनेत्रां कुङ्कुमनिभां कौमारीं शिखिवाहनाम् ॥ १४३ ॥
शक्तिपाशाङ्कुशाभीतिकरां चारुविभूषिताम् ।
वैष्णवीं गरुडारूढां श्यामां मधुमदाकुलाम् ॥ १४४ ॥
घण्टां शङ्खं कपालञ्च चक्रञ्च करपङ्कजैः ।
दधानां पीतवसनां मुक्तामणिविभूषिताम् ॥ १४५ ॥

२. माहेश्वरी का ध्यान—बैल पर चढ़ी हुई, शुक्ल वर्ण वाली, तीन नेत्रों संयुक्त, कपाल, डमरु, बाण, शूल, टङ्क एवं अभयमुद्रा अपने हाथों में धारण किये हुये, चन्द्रमा रूप चूड़ामणि को धारण किये हुये माहेश्वरी का ध्यान करे ।

३. कौमारी का ध्यान—तीन नेत्रों वाली, कुङ्कुम के समान लाल वर्ण वाली, मोर पर चढ़ी हुई, शक्ति, पाश, अङ्कुश एवं अभय मुद्रा धारण की हुई उत्तम भूषणों वाली कौमारी का ध्यान करे ।

४. वैष्णवी का ध्यान—गरुड़ के ऊपर चढ़ी हुई, श्यामा, मधु के मद से इठलाती हुई, अपने हाथों में घण्टा, शङ्ख, कपाल और चक्र लिये हुई, पीत वस्त्र और अनेक प्रकार के मुक्ता एवं मणियों का आभूषण धारण किये हुये वैष्णवी शक्ति का ध्यान करे ॥ १४२-१४५ ॥

वराहवाहिनीं धूम्रां वराहसदृशाननाम् ।
फलकां मूषलं चैव वरं खड्ग तथा परम् ॥ १४६ ॥
पाणिपङ्कजविभ्राणां चारुभूषणभूषिताम् ।
इन्द्रनीलप्रभामैन्द्रीमैरावतनिषेदुषीम् ॥ १४७ ॥
चन्द्रवक्त्राञ्च दधतीं वज्रशङ्खधनुः शरान् ।
नानालङ्काररचितां सदा भक्तानुरागिणीम् ॥ १४८ ॥

५. वाराही का ध्यान—वराह पर चढ़ी हुई, धूम्र वर्ण वाली, वराह सदृश मुख वाली, हाथ में फलका (ढाल), मूसल, वर और खड्ग धारण किये हुये वाराही शक्ति का ध्यान करे ।

६. इन्द्राणी का ध्यान—इन्द्रनील की कान्ति से युक्त, ऐरावत पर चढ़ी हुई, चन्द्रमा के समान मनोहर मुख वाली, हाथ में व्रज, शङ्ख, धनुष-बाण लिये हुये, अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत, भक्तों के ऊपर अनुराग करने वाली इन्द्राणी का ध्यान करे ॥ १४६-१४८ ॥

भीमवक्त्राञ्च चामुण्डां मुण्डमालावलीयुताम् ।
साट्टहासां शवासीनां मणिमुक्ताविराजिताम् ॥ १४९ ॥
कपालं खेटकं शूलं खड्गञ्च करपङ्कजैः ।
विभ्राणां नीलमेघाभां भावयेद् भक्तवत्सलाम् ॥ १५० ॥

७. चामुण्डा का ध्यान—भयानक मुख वाली, मुण्डमाला धारण की हुई, अट्टहास करती हुई, शवासन पर विराजमान, मणि-मुक्ता के आभूषणों से सुशोभित, कपाल, खेटक, शूल एवं खड्ग अपने हाथों में लिये हुये, नीलमेघ के समान काले वर्णों वाली भक्तवत्सला भगवती चामुण्डा का मन्त्रज्ञ साधक को ध्यान करना चाहिए ॥ १४९-१५० ॥

सिंहासनां महालक्ष्मीं पीताभां रत्नभूषिताम् ।
मातुलुङ्गफलाभीतिमालापद्मविधारिणीम् ॥ १५१ ॥

८. महालक्ष्मी का ध्यान—सिंह के आसन पर बैठी हुई, पीताम्बर पहने हुये, रत्नों से भूषित, मातुलुङ्ग का फल, अभय, कमल तथा अक्षमाला हाथों में लिये हुये इस प्रकार की महालक्ष्मी का ध्यान करे ॥ १५१ ॥

एवं ध्यात्वा क्रमाद्वीर आवाहन्यादिमुद्रया ।
तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां प्रपूजयेत् ॥ १५२ ॥

इस प्रकार तत्तन्महाशक्तियों के स्वरूपों का ध्यान कर वीर साधक आवाहनी आदि मुद्राओं से उनका आवाहन कर उनके शिर पर पूजन करे ॥ १५२ ॥

पुनः पाद्यादिकं दत्त्वा साधकः स्थिरमानसः ।
भोज्यमण्डलमध्ये तु स्वर्णादिस्थानके ततः ॥ १५३ ॥
चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भोज्यं भक्ष्यं निवेदयेत् ।
अदीक्षिताश्चेत्तत्रैव ततो मायां निवेदयेत् ॥ १५४ ॥
तासां सव्येषु कर्णेषु ततः स्तोत्रं पठेन्नरः ।

फिर समाहित चित्त वाला साधक उन शक्तियों को पाद्यादि उपचार प्रदर्शित करे । इनके स्वर्णादिपात्रों में रखे हुये भोज्य मण्डलों के चर्व्य, चोष्य, लेह्य पेय भोज्य एवं भक्ष्य पदार्थों को निवेदित करे । यदि वे अदीक्षित हों तो उन्हें माया (ह्रीं) मन्त्र देवे । इसके बाद साधक तत्तत् महाशक्तियों के बायें कान में तत्तत् स्तोत्र इस प्रकार निवेदन करे ॥ १५३-१५५ ॥

ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तिस्तोत्रम्

मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १५५ ॥

१. 'मातर्देवि.................मन्त्रसिद्धि प्रयच्छ मे' ब्रह्माणी के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १५५ ॥

माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १५६ ॥

२. 'माहेशि.................प्रयच्छ मे' माहेश्वरी के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १५६ ॥

कौमारि सर्वविघ्नेशि कुमारक्रीडने वर ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १५७ ॥

३. 'कौमारि.................प्रयच्छ मे' कौमारी के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १५७ ॥

विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १५८ ॥

४. 'विष्णुरूपधरे...........प्रयच्छ मे' वैष्णवी के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १५८ ॥

वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १५९ ॥

५. 'वाराहि वरदे............प्रयच्छ मे' वाराही के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १५९ ॥

शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १६० ॥

६. 'शक्ररूपधरे.........प्रयच्छ मे' इन्द्राणी के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १६० ॥

चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते भयनाशिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १६१ ॥

७. 'चामुण्डे.................प्रयच्छ मे' चामुण्डा के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १६१ ॥

महालक्ष्मि महोत्साहे क्षोभसन्तापनाशिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १६२ ॥

८. 'महालक्ष्मी..............प्रयच्छ मे' महालक्ष्मी के बायें कान में साधक यह श्लोक मन्त्र कहे ॥ १६२ ॥

मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते ।
एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १६३ ॥

'मितिमातृमये.............विश्वरूपे नमोऽस्तु ते' सभी देवियों के वाम कर्ण में इस स्तुति को पढ़े ॥ १६३ ॥

एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः ।
विदग्धाञ्च समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते ॥ १६४ ॥

जो साधक कर्मारम्भ में विदग्धा (कन्या) को देखकर इस स्तुति का पाठ करते हैं । उनके कार्य में विघ्न नहीं होता ॥ १६४ ॥

कुलीनस्य द्वारदेव्यः कथितास्तव पुत्रक ।
दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नाऽर्चयेद् यदि ॥ १६५ ॥
तस्य पूजाफलं सर्वं लीयते यक्षराक्षसैः ।
यदि व्रीडापरा सा तु भोजयेत्तद्गृहाद् बहिः ॥ १६६ ॥
स्थित्वा स्तोत्रं पठेत्तावद्यावत्तृप्तिः प्रजायते ।
आचम्य मुखवासादिताम्बूलञ्च निवेदयेत् ॥ १६७ ॥

हे पुत्रक ! यहाँ तक हमने कौलों के सम्प्रदायानुसार द्वार देवियों का वर्णन

किया । दीक्षा काल के आरम्भ में अथवा नित्यपूजा काल में यदि साधक इनकी अर्चना नहीं करते तो उसकी पूजा के समस्त फल यक्ष और राक्षस ग्रहण कर लेते हैं । यदि वे अत्यन्त लज्जा के कारण वहाँ भोजन नहीं करना चाहती तो उन्हें घर के बाहर भोजन कराना चाहिये । उस काल में इस स्तोत्र का तब तक पाठ करना चाहिए; जब तक वे कुमारियाँ भोजन से तृप्त नहीं हो जाती । पुनः भोजनोपरान्त उन्हें आचमन करावे और मुखवासादि के लिये ताम्बूलादि शुद्धि द्रव्य समर्पित करे ॥ १६५-१६७ ॥

ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दन पंकिलम् ।
बिन्दुयुक्तस्य दीर्घस्य एकैकान्ते नियोजयेत् ॥ १६८ ॥
स्वस्वनाम चतुर्थ्यन्तं हृन्मनुं तदनन्तरम् ।
मन्त्राणि कथितान्येव तासां वीरस्ततो जपेत् ॥ १६९ ॥

फिर विन्दु युक्त दीर्घ मन्त्रों से (आं ई ऊँ ऐं औं अं अः) इस मन्त्र से एक एक को 'ॐ ब्रह्माण्यै नमः' ॐ माहेश्वर्यै नमः इत्यादि नामों से उनका नामकरण करे । उनके मन्त्रों को हमने पहले कह दिया है । वीर साधक पुनः उसी मन्त्र का जप करे ॥ १६८-१६९ ॥

यथाशक्ति क्रमाज्जप्त्वा समर्प्याऽथ स्तुतिं पठेत् ।
विसृज्य च नमस्कृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत् ॥ १७० ॥

यथाशक्ति क्रमशः उस मन्त्र का जप करे तथा स्तुति का पाठ करे । अन्त में साधक वरदान की प्रार्थना करते हुये उनका विसर्जन करे और वर प्राप्त कर आनन्दित हो जावे ॥ १७० ॥

अन्या यदि नाऽऽगच्छन्ति निजकन्या निजानुजा ।
अग्रजा वा मातुलानी माता वा तत्सपत्निका ॥ १७१ ॥
वयसा जातितो वापि हीनाऽपि परमा कला ।
पूज्याः कुलरसैः सर्वा निजाहङ्कारवर्जितैः ॥ १७२ ॥

यदि अन्य जाति की कन्यायें न आवें, तो साधक अपनी कन्या अथवा अपनी बहन, अपनी जेठी बहन, भाभी, माता अथवा स्वकीय सौतेली माता अथवा अन्य जो जाति एवं अवस्था से भी हीन हों, उनकी पूजा साधक अहङ्काररहित होकर कुलरसों से करे ॥ १७१-१७२ ॥

सर्वाभावे एकतरा पूजनीया प्रयत्नतः ।
संस्कृताऽसंस्कृता वापि जननी वापि निष्पतिः ॥ १७३ ॥

साधक उक्त सभी के अभाव में केवल एक ही की प्रयत्नपूर्वक पूजा करे ।

चाहे संस्कृत हो, चाहे असंस्कृत हो, चाहे माता ही क्यों न हो, चाहे विधवा ही क्यों न हो, उसकी ही पूजा करे ॥ १७३ ॥

पूर्वाभावेऽपरा पूज्या देव्यंशा योषितो यतः ।
एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र निश्चितम् ॥ १७४ ॥

पूर्व पूर्व के अभाव में साधक पर पर की पूजा करे । क्योंकि समस्त स्त्रियाँ ही देवी का स्वरूप हैं । यदि कुलशास्त्र का ज्ञाता एक ही है तो निश्चित रूप से वह पूजार्ह है ॥ १७४ ॥

सर्वत्रैव सुराः पूज्याः ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
एका चेद्युवती तत्र पूजिता चाऽवलोकिता ॥ १७५ ॥
सर्वा एव परा देव्यः पूजिताः साधकोत्तमैः ।
आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्त्तौ विशेषतः ॥ १७६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशादि देवताओं की पूजा करनी चाहिये । साधक ने यदि एक ही देवी की पूजा की अथवा शुद्धभाव से उनका अवलोकन ही कर लिया; तो उसने सभी देवियों की पूजा कर ली । अत: अपने लक्ष्य की पूर्ति के आदि, अन्त एवं मध्य में विशेष रूप से इनकी पूजा करे ॥ १७५-१७६ ॥

न पूजयति चेत् कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते ।
पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परजन्मनि ॥ १७७ ॥

यदि लक्ष्यपूर्ति के लिये आरम्भ, मध्य में तथा अन्त में शक्ति की पूजा नहीं होती, तो वह कार्य विघ्न पड़ने से नष्ट हो जाता है । पूर्वार्जित पुण्य का भी फल नहीं होता, इस जन्म के पुण्यफल की बात तो बहुत दूर है ॥ १७७ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
देवीनां क्रोधसन्तापशमनं विघ्ननाशनम् ॥ १७८ ॥

अत: यदि साधक सभी प्रयत्न से अपना हित चाहे, तो इतना अवश्य विचार करे कि देवी की पूजा, उसके क्रोध और सन्ताप का शमन करने वाली है और विघ्नों का विनाश करने वाली है ॥ १७८ ॥

सर्वथा च प्रयत्नेन पूजयेत् कुलयोषितम् ।
शक्तिपूजां समाप्याऽथ प्रकृतञ्च समाचरेत् ॥ १७९ ॥

अत: कार्यारम्भ में सब प्रकार से कुलयोषित की पूजा अवश्य करे । इस प्रकार शक्ति की पूजा समाप्त कर प्रकृत कार्य आरम्भ करे ॥ १७९ ॥

स्वकल्पोक्तविधानेन देवीं सम्पूजयेत्ततः ।

प्रातरेव ततः पश्चाज्जपेन्मध्यन्दिनावधि ॥ १८० ॥

शक्तिपूजा के बाद साधक अपने सम्प्रदायानुसार देवी की पूजा करे । फिर प्रात:काल से आरम्भ कर मध्याह्न पर्यन्त मन्त्र का जप करे ॥ १८० ॥

अन्यूनं नातिरिक्तञ्च न दिनञ्चाऽतिलङ्घयेत् ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाथ साधकः ॥ १८१ ॥
स्नानं कुर्याच्छुद्धतोयैर्हविष्यान्नं सुभोजयेत् ।
एकग्रामे स्थितो नित्यं गत्वा वन्देत्ततो गुरुम् ॥ १८२ ॥

विद्वान् साधक प्रतिदिन समान संख्या में जप करे । न्यून अथवा अधिक न करे । एक दिन का भी व्यवधान न डाले, निरन्तर प्रतिदिन जप करे । प्रतिदिन एक काल, द्विकाल अथवा त्रिकाल में शुद्ध जल से स्नान करे । हविष्यान्न भोजन करे । यदि गुरु अपने ही ग्राम के रहने वाले हैं तो वहाँ जाकर उनकी प्रतिदिन वन्दना भी करे ॥ १८१-१८२ ॥

प्रणमेत्तद्दिशोऽन्यत्र देवतावन्दनं सदा ।
प्रातरुत्थाय पूजायां स्नानकालेऽथवा पुनः ॥ १८३ ॥

यदि दूर में रहने वाले हैं, तो उसी दिशा को प्रणाम करे । इसी प्रकार प्रातः उठकर अथवा पूजाकाल में अथवा स्नान काल में देवता वन्दन करे ॥ १८३ ॥

संस्कृताऽसंस्कृता वापि हीनजाताऽपि वा तथा ।
नमस्या सर्वजातीनां कुलीनानां कुलार्चने ॥ १८४ ॥

कुलार्चन में चाहे संस्कृत अथवा असंस्कृत अथवा हीन जाता ही क्यों न हों कौलों के लिये सभी जातियों की स्त्रियाँ नमस्कारार्ह हैं ॥ १८४ ॥

वर्जयेद् गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम् ।
अभ्यङ्गगन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च ॥ १८५ ॥

पुरश्चरणकर्त्ता गाना बजाना न सुने, नृत्य न देखे, शरीर में उपटन तेल न लगावे और इत्रादि, सुगन्ध एवं पुष्प धारण करना वर्जित रखे ॥ १८५ ॥

अस्नातांश्च द्विजान् शूद्रान् स्त्रियं नैव स्पृशेत् क्वचित् ।
त्यजेदुष्णोदकस्नानमनिवेदितभोजनम् ॥ १८६ ॥

ब्राह्मण, शूद्र और स्त्रियाँ यदि अस्नात हों, तो उनका स्पर्श न करे । उष्णोदक से स्नान न करे । बिना दिये हुये अन्न का भोजन न करे ॥ १८६ ॥

नानाचारः प्रकर्त्तव्यो न चारणमितस्ततः ।

भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा विशेषतः ॥ १८७ ॥

अनाचार न करे । इधर-उधर न घूमे । किसी भी जीव की हिंसा विशेषकर पशु की हिंसा वर्जित करे ॥ १८७ ॥

बलिदानं विना देव्या हिंसां सर्वत्र वर्जयेत् ।
अन्यमन्त्रपुरस्कारं निन्दां चैव विवर्जयेत् ॥ १८८ ॥

देवी के बलिदान को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र हिंसा कार्य न करे । दूसरे के मन्त्रों की प्रशंसा तथा निन्दा न करे ॥ १८८ ॥

उष्णीशी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशोऽप्यनावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत् क्वचित् ॥ १८९ ॥

पगड़ी या टोपी, अथवा कुर्त्ता गञ्जी पहनकर, अथवा नङ्गा होकर, शिखा खोलकर, अथवा बिना आवरण के अपवित्र हाथ से, अथवा अशुद्ध शरीर से, अथवा बातचीत करते हुये जप न करे ॥ १८९ ॥

अनावृतकरो भूत्वा शिरसा चावृतोऽपि वा ।
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो वा न जपेत् कदा ॥ १९०॥

खुले हाथ से, अथवा सिर पर कपड़ा रखकर, अथवा चिन्ता से व्याकुल चित्त होकर अथवा क्रुद्धावस्था में कदापि जप न करे ॥ १९० ॥

वीरासनशयानो वा गच्छन्नखिल एव वा ।
रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमिरालये ॥ १९१ ॥

वीरासन लगाकर सोते हुये, चलते हुये, जनसमूह में, गली में, बुरे स्थान में, घोर अन्धकार में जप न करे ॥ १९१ ॥

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते ।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥ १९२ ॥

पतित एवं अन्त्यजों के दिखाई पड़ने पर उनसे भाषण के समय छींक, जँभाई लेते हुये और अधोवायु के त्याग काल में जप का परित्याग करे ॥ १९२ ॥

उत्थायाऽऽचमनं कृत्वा प्राणायामषडङ्गकम् ।
कृत्वा सम्यग्जपेच्छेषमथवा सूर्यदर्शनम् ॥ १९३ ॥

इन सभी अवस्थाओं में प्रायश्चित्त रूप में आसन से उठकर आचमन करे और प्राणायाम एवं षडङ्ग न्यास करे । इतना कर सम्यक् रूप से शेष जप करे, अथवा सूर्य का दर्शन करे ॥ १९३ ॥

स्त्रियं शूद्रं पशुञ्चैव तथा च भ्रष्टसाधकम् ।
सम्भाषयेत् कदाचिन्न ब्रह्मचर्यं समाचरेत् ॥ १९४ ॥

स्त्री, शूद्र, पशु तथा भ्रष्ट साधक से कभी भी सम्भाषण न करे और ब्रह्मचर्य का पालन करे ॥ १९४ ॥

जपकाले च, सततं भार्यां यत्नेन वर्जयेत् ।
शयीतशुद्धशय्यायां शुचिर्वस्त्रधरः सदा ॥ १९५ ॥

जप काल में सर्वदा प्रयत्नपूर्वक भार्या (के संगम) का त्याग करे, उत्तम एवं पवित्र वस्त्र धारण कर शुद्ध शय्या पर शयन करे ॥ १९५ ॥

प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ।
नाऽऽलोकयेदन्यशास्त्रं वेदागमं विना सुधीः ॥ १९६ ॥

प्रतिदिन शय्या का प्रक्षालन करे और अकेले निर्भय हो शयन करे । वेद और आगम के अतिरिक्त और शास्त्रों का अवलोकन न करे ॥ १९६ ॥

नक्तं भोजी हविष्यान्नं जपेद्विद्यां दिवा शुचिः ।
दिवसे सर्वथा वीरो ब्रह्मचारी भवेत् सदा ॥ १९७ ॥

रात्रि के समय हविष्यान्न का भोजन करे । दिन में अत्यन्त पवित्र होकर महाविद्या का जप करे । वीर मार्ग का उपासक दिन में सर्वथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे ॥ १९७ ॥

देवताध्यानसंयुक्तो गमयेदनिशं बुधः ।
रात्रौ सम्पूजयेद् देवीं कुलाचारक्रमेण तु ॥ १९८ ॥

सारा दिन देवता के ध्यान में तत्पर होकर व्यतीत करे । रात्रि में कुलाचार के क्रम से देवी का पूजन करते हुये व्यतीत करे ॥ १९८ ॥

पञ्चतत्त्वैः प्रपूज्यैव यथाशक्ति जपञ्चरेत् ।
पुरश्चरणकाले तु यदि स्यात् पीठदर्शनम् ॥ १९९ ॥
तदा तत्र पीठपूजा मनसापि न हीयते ।
प्रसङ्गात् कथ्यते पीठपूजा तन्त्रविधानतः ॥ २०० ॥

वीर साधक पञ्चतत्त्व से ही पूजन करे फिर यथाशक्ति जप करे । यदि पुरश्चरणकाल में पीठ का दर्शन हो जावे, तब उस समय साधक पीठ पूजा मन से भी कदापि त्याग न करे । अब आगे प्रसङ्गवश तन्त्रशास्त्र के अनुसार पीठ पूजा कहता हूँ ॥ १९९-२०० ॥

चतुःपीठे पूज्यदेवीनामानि

देवीकूटे महाभागे उड्डीयाने तथा पुनः ।
योगनिद्रा कामरूपे महिषासुरमर्द्दिनी ॥ २०१ ॥

अत्यन्त भाग्यशाली देवीकूट में एवं उड्डीयान पीठ में योग निद्रा की पूजा करे और कामरूप पीठ में महिषमर्दिनी की पूजा करे ॥ २०१ ॥

कात्यायनी कामभूमौ कामाख्या कामदायिनी ।
जालन्धरे च पूर्णेशी पूर्णं शैले च चण्डिका ॥ २०२ ॥

कामभूमि में कात्यायनी की, कामाख्या पीठ में कामदायिनी की, जालन्धर में पूर्णेशी की और पूर्णशैल पीठ में चण्डिका की पूजा करे ॥ २०२ ॥

कामरूपे तु वेहारे पूज्या दिक्करवासिनी ।
अथवा कामरूपस्य दर्शनं यदि भाग्यतः ॥ २०३ ॥
तदा भगादिदेवीनां पूजा तत्र विधीयते ।
वक्ष्यमाणविधानेन तासां ज्ञात्वा स्वनामकम् ॥ २०४ ॥

कामरूप पीठ में साधक बेहार में दिक्करवासिनी की पूजा करे, अथवा यदि भाग्यवश कामरूप का दर्शन हो जाय, तो उस समय वहाँ भगादि देवियों की पूजा का विधान कहा गया है । आगे बतलायी गयी विधि के अनुसार उनका नाम लेकर पूजा करनी चाहिए ॥ २०३-२०४ ॥

कुलनाथं पुनर्ध्यात्वा स्वयमच्युतमानसः ।
पूजां समापयेद्वीरः तदनुस्मृतिपूर्वकम् ॥ २०५ ॥

फिर कुलनाथ का ध्यान कर साधक विष्णु का मन से स्मरण करते हुये पूजा समाप्त कर देवे ॥ २०५ ॥

पूजाकाले हीनजाता स्वयोषिद्वा विधानतः ।
पूजनीया प्रयत्नेन द्वैधं तत्र विवर्जयेत् ॥ २०६ ॥

पूजा के समय नीचकुल में उत्पन्न, अथवा अपनी स्त्री की विधानपूर्वक पूजा करे और सन्देह विवर्जित होकर पूजा करे ॥ २०६ ॥

कुलाचारस्य मन्त्रगुप्तिकथनम्

यथा विष्णुपुरं गोप्यं यथा वा शम्भुरीश्वरः ।
यथा कमलजन्मापि ये वा व्यासमुखा द्विजाः ॥ २०७ ॥
इन्द्राद्यालोकपालाश्च सर्वगन्धर्वकिन्नराः ।

यक्षरक्षःपिशाचाद्या गुह्यचारणवन्दिनः ॥ २०८ ॥
तैर्यथा गोपितं गुप्तं तदुक्तं शास्त्रसम्भवम् ।
तथा शैवेन गोप्तव्यः कुलाचारः सुदुर्लभः ॥ २०९ ॥

जिस प्रकार विष्णु ने, शम्भु ने, ईश्वर ने, जिस प्रकार ब्रह्मदेव ने व्यासादि प्रसिद्ध द्विजों ने, इन्द्रादि समस्त लोकपालों ने, सभी गन्धर्व और किन्नरों ने, यक्ष राक्षस और पिशाचों ने, गुह्यचारण बन्दियों ने, इन लोगों ने जिस प्रकार कुलाचार को गुप्त रखा था वह शास्त्रों में कह दिया गया है । उसी प्रकार शैवों को भी जो अत्यन्त दुर्लभ है उस कुलाचार को गुप्त रखना चाहिये ॥ २०७-२०९ ॥

युगभेदे जपसंख्याभेदः

अनेन विधिना मन्त्री पुरश्चर्यां समाचरेत् ।
येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः ॥ २१० ॥
तेषामष्टसहस्राणि संख्योक्ता जपहोमयोः ।
यस्मिंश्च निगदे चैव मन्त्रे संख्या विधीयते ॥ २११ ॥
तत्र सर्वत्र मन्त्राणां संख्यावृद्धिर्युगक्रमात् ।
कल्पोक्ते यत् कृतासंख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत् ॥ २१२ ॥

मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार पुरश्चरण करे । मनीषियों ने जिन मन्त्रों से होम तथा उसके जप की संख्या नहीं कही है, वहाँ उन मन्त्रों के जप तथा होम की संख्या आठ हजार समझनी चाहिये । किन्तु जहाँ होम तथा जप में संख्या कह दी गई है, वहाँ-वहाँ उन मन्त्रों में युग के अनुरूप मन्त्र की संख्या में वृद्धि समझना चाहिये । तन्त्र कल्प में जहाँ मन्त्र के जप की संख्या का निर्देश है, त्रेता में उस जप की संख्या दूनी समझनी चाहिये ॥ २१०-२१२ ॥

द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा ।
न दिव्यवीरयोरेव युगसेवापरिश्रमः ॥ २१३ ॥

द्वापर में तीन गुनी तथा कलि में उस मन्त्र के जप की संख्या चतुर्गुणी समझनी चाहिये । किन्तु दिव्य और वीर मार्ग वालों के लिये युगानुसार जप की संख्या के बढ़ाने के परिश्रम का नियम नहीं है ॥ २१३ ॥

पशूनां विद्यते चात्र संख्यावृद्धिर्युगक्रमात् ।
तेषां पूजा त्रिकालं हि रात्रौ नैव कदाचन ॥ २१४ ॥

यह युग के अनुसार जप की संख्या की वृद्धि का क्रम पशुमार्ग वालों के लिये कहा गया है । उनके लिये त्रिकाल पूजा का क्रम बतलाया गया है । रात्रि में कदापि नहीं ॥ २१४ ॥

कथितं सर्वशास्त्रेषु विधानं तन्त्रवर्त्मना ।
चतुर्गुणं तु ताराया विना शङ्खाक्षमालया ॥ २१५ ॥

इस प्रकार हमने तन्त्रमार्ग के अनुसार पुरश्चरण का विधान कह दिया । तारा मन्त्र का जप शङ्ख की माला से न करे । तारा के मन्त्रों की जप संख्या चतुर्गुणित समझनी चाहिये ॥ २१५ ॥

एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षचतुष्टयम् ।
नरास्थिमालामादाय जपेद्वा लक्षमेककम् ॥ २१६ ॥

शङ्ख की माला के बिना साधक हविष्य भोजन कर तारा मन्त्र का जप करे । यदि मनुष्य के हड्डी की माला हो तब एक लाख जप करे ॥ २१६ ॥

भावनारहितानाञ्च क्षुद्राणां क्षुद्रचेतसाम् ।
चतुर्गुणजपः प्रोक्तः सिद्धये नान्यथा भवेत् ॥ २१७ ॥

जो भावना से रहित है, जन्मना क्षुद्र है, अथवा जिनका चित्त क्षुद्र है, उनकी सिद्धि के लिये यह चतुर्गुण जप का विधान है ॥ २१७ ॥

उन्मुखीकालिकाविधानम्

सिद्धविद्या यथा नात्र युगसेवापरिश्रमः ।
विशेषतः कलियुगे तारा काली तथोन्मुखी ॥ २१८ ॥
आसामेव कदा नास्ति युगसेवाविधिः स्मृतः ।

तारा, काली और उन्मुखी—ये सिद्धविद्या कही गई हैं । इनके मन्त्रों में युगानुसार मन्त्र जप की संख्यावृद्धि का क्रम नहीं है । इनकी युगानुसार सेवा विधि की वृद्धि का क्रम भी नहीं है ॥ २१८ ॥

उन्मुख्याः कालिकायाश्च विशेषः कथ्यतेऽधुना ॥ २१९ ॥

अब उन्मुखी तथा काली के विषय में जो विशेष है उसे कहता हूँ ॥ २१९ ॥

दिवसे ब्रह्मचर्येण स्वीयसंख्यं जपं पठेत् ।
रात्रौ मांसासवैर्मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनोद्भवैः ॥ २२० ॥
सम्पूज्य च महादेवीं गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।
ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो रमणक्लेशतोऽपि वा ॥ २२१ ॥

दिन में इनके मन्त्रों का जप ब्रह्मचर्यपूर्वक उतने ही संख्या में करे । किन्तु रात्रि में जप करना हो तो मांस, मद्य, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुनादि पञ्चमकारों से गन्ध एवं पुष्पादि उपचारों से देवी की पूजा करे । अथवा नग्न स्त्री के साथ, नग्न होकर मैथुन के खेद से खिन्न होकर इनका जप करे ॥ २२०-२२१ ॥

जपेल्लक्षं प्रयत्नेन साधको मन्त्रसिद्धये ।
द्विजन्मनां तु सर्वेषां द्विधा विधिरिहोच्यते ॥ २२२ ॥
शूद्राणां तु तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम् ।
ततः सर्वे स्वकल्पोक्तजपसंख्यां समाप्य च ।
ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषाऽनले ॥ २२३ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये द्वादशोल्लासः ॥ १२ ॥

साधक अपने मन्त्र की सिद्धि के लिये इनके मन्त्र का एक लाख जप करे । हमने केवल द्विजातियों के लिये उक्त प्रकार की दो विधि कही है । शूद्रों के लिये तो रात्रि में इस प्रकार का जप अभीष्ट है, जो महाफल प्रदान करता है । इस प्रकार सभी लोग अपने अपने कल्प के अनुसार जप संख्या समाप्त कर उसके दशांश से अग्नि में हवि द्वारा हवन करे ॥ २२२-२२३ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के द्वादश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

त्रयोदश उल्लासः

...৩❀৩...

होमविधिः

अथ होमविधिं वक्ष्ये यथातन्त्रानुसारतः ।
आदौ भूमिं परीक्षेत वास्तुज्ञानविशारदः ॥ १ ॥

अब तन्त्र शास्त्र के अनुसार होम का विधान कहता हूँ । वास्तुज्ञान का पण्डित सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा करे ॥ १ ॥

कुण्डविधानम्

शल्यादीन् शोधयेद्यत्नादथवा पुरुषं खनेत् ।
नवहस्तप्रमाणं वा सप्तहस्तमथापि वा ॥ २ ॥
पञ्चहस्तप्रमाणं वा चतुरस्त्रसमन्वितम् ।
विच्छिद्रं तु चतुर्द्वारं दिव्यदृष्टिविभूषितम् ॥ ३ ॥

शल्योद्धरण करे अथवा एक पोरसा, अथवा नव हाथ, अथवा सात हाथ, अथवा पाँच हाथ भूमि खनन करना चाहिये । जितना विस्तार हो उतना चौड़ा, उतना ही गहरा इस प्रकार चतुरस्त्र कुण्ड होना चाहिये । उसमें कहीं से छेद न हो और देखने में भी अच्छा लगे ॥ २-३ ॥

दिव्यमालापरिवृतं तन्तुना परिवेष्टितम् ।
आदौ कुण्डं प्रकुर्वीत साधकः सिद्धिहेतवे ॥ ४ ॥

उसके चारो ओर सूत्र परिवेष्टित करे, उसे दिव्यमाला से विभूषित करे, इस प्रकार साधक मन्त्र सिद्धि के लिये कुण्ड का निर्माण करे ॥ ४ ॥

विविधाकाराणिकुण्डानि

चतुरस्त्रं योनिमर्धचन्द्रं त्र्यस्त्रं सुवर्त्तुलम् ।
षडस्त्रं पङ्कजाकारं अष्टास्त्रं तानि नामतः ॥ ५ ॥

मण्डल में कुण्ड विधान—चतुरस्त्र, योनि, अर्द्धचन्द्र, त्र्यस्त्र, सुवर्त्तुल, षडस्त्र, पङ्कजाकार और अष्टास्त्र—ये आठ प्रकार के कुण्डों के नाम हैं ॥ ५ ॥

विमर्श—ग्रन्थकार ने मण्डप में कुण्ड विधान के ४ श्लोक से लेकर ६७ श्लोक तक मूल शारदातिलक के ३.४९ से लेकर ३.१०२ पर्यन्त श्लोक तक लिया है ।

(१) चतुरस्त्र कुण्डमानम्

हस्तमात्रमितां भूमिं पूर्ववत् परिसूत्रयेत् ।
समन्तात् कुण्डमेतत् स्याच्चतुरस्त्रं शुभावहम् ॥ ६ ॥

१. चतुरस्त्र कुण्ड—एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा इस प्रकार का शुभावह चतुरस्त्र कुण्ड कहा. जाता है ॥ ६ ॥

चतुर्विंशत्यंगुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः ।
कर्त्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिपर्वणः ॥ ७ ॥
मध्यस्य दैर्घ्यमानेन मानाङ्गुलमुदीरितम् ।
यवानामष्टभिः क्लृप्तं मानाङ्गुलमितीरितम् ॥ ८ ॥

कोई कोई तन्त्रवेत्ता कर्त्ता के हाथ से चौबीस अङ्गुल का प्रमाण मानते हैं । कर्त्ता के दाहिने हाथ के मध्यम अङ्गुलि के मध्य पर्व पर्यन्त मान को चौबीस अङ्गुल का प्रमाण माना गया है । शास्त्रकारों ने आठ यव के प्रमाण को एक अङ्गुल प्रमाण माना है ॥ ७-८ ॥

(२) योनिकुण्डम्

चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं पञ्चधा विभजेत् सुधीः ।
न्यसेत् पुरस्तादेकांशं कोणार्धार्धप्रमाणतः ॥ ९ ॥
भ्रामयेत्तेन मानेन तथान्यदपि मन्त्रवित् ।
सूत्रयुग्मं ततो दद्यात् कुण्डं योनिनिभं भवेत् ॥ १० ॥

२. योनि कुण्ड—बुद्धिमान् साधक एक हाथ वाले चतुरस्त्र के क्षेत्रफल को पाँच भागों में प्रविभक्त करे । यह पाँचवाँ भाग चार अङ्गुल साढ़े छह यव के आस-पास होगा । (यह चतुरस्त्र सभी कुण्डों का प्रकृतिभूत है । पुनः मध्य रेखा जो उत्तर से दक्षिण की ओर खींची गई है । उसमें उत्तर की ओर पञ्चमांश बढ़ा देवे । तदनन्तर उत्तर की ओर बढ़ी हुई उस रेखा को पूर्व और पश्चिम की रेखा से मिला देवे । इसी प्रकार पूर्व-दक्षिण और पश्चिम-दक्षिण को भी मिला देवे । पुनः पूर्व-दक्षिण रेखा के अर्ध भाग से तथा पश्चिम-दक्षिण की रेखा के अर्द्ध भाग से अर्धवृत्त का निर्माण कर देवे । ऐसा करने से योनि कुण्ड बन जायेगा ॥ ९-१० ॥

(३) अर्धचन्द्रकुण्डम्

चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेत् सुधीः ।

एकमेकं त्यजेदंशमध ऊर्ध्वञ्च मन्त्रवित् ॥ ११ ॥
ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानात् भ्रामयेत् पुनः ।
अर्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत् ॥ १२ ॥

३. अर्धचन्द्रकुण्ड—सर्वप्रथम चतुरस्रीकृत क्षेत्र को दश भागों में प्रविभक्त करे । तदनन्तर एक भाग ऊपर की ओर और एक भाग नीचे की ओर छोड़ देवे । फिर नीचे से ऊपर पर्यन्त प्रमाण में अर्धवृत्त का निर्माण करे और दोनों ज्या (जीवा) को मिला देवे ऐसा करने से अर्धचन्द्र कुण्ड बन जाता है । यह कुण्ड अत्यन्त मनोहर होता है ॥ ११-१२ ॥

(४) त्र्यस्रकुण्डम्

चतुर्धा भेदिते क्षेत्रे विन्यसेत् पार्श्वयोर्द्वयोः ।
एकैकमंशं तन्मानादग्रतो लाञ्छयेत् पुनः ॥ १३ ॥
सूत्रयुग्मं बुधः कुर्यात् त्र्यस्रं कुण्डमुदाहृतम् ।

चतुरस्र क्षेत्र का निर्माण कर पुनः मध्य रेखा से दोनों ओर उसके चार भाग करे । तत्पश्चात् मध्य रेखा में पड़े लम्ब को पूर्व की ओर चतुर्थांश बढ़ा दें, इसी प्रकार आधार रेखा को दोनों ओर चतुर्थांश बढ़ा देवे । फिर लम्ब से बढ़ी रेखा को दोनों बढ़े क्षेत्रों से मिला देवे । ऐसा करने से त्र्यस्र कुण्ड होता है ॥१३-१४॥

(५) वृत्तकुण्डम्

अष्टादशांशके क्षेत्रे न्यसेदेकं बहिर्बुधः ॥ १४ ॥
भ्रामयेत्तेन मानेन वृत्तं कुण्डमनुत्तमम् ।

५. वृत्तकुण्ड—बुद्धिमान् साधक उस चतुरस्र क्षेत्र को कुल अट्ठारह भागों में प्रविभक्त करे । फिर मध्य के पूर्व-पश्चिम तथा उसका एक-एक बढ़ा देवे । उसके पश्चात् व्यास के केन्द्र बिन्दु से चारों ओर वृत्त खींच देवे । इसे वृत्त कुण्ड कहा जाता है ॥ १४-१५ ॥

(६) षडस्रकुण्डम्

अष्टधा विभजेत् क्षेत्रं मध्यसूत्रस्य पार्श्वयोः ॥ १५ ॥
भागं न्यसेदेकमेकं मानेनाऽनेन मध्यतः ।
कुर्यात् पार्श्वद्वये मत्स्यचतुष्कं तन्त्रवित्तमः ॥ १६ ॥
सूत्रषट्कं ततो दद्यात् षडस्रं कुण्डमुत्तमम् ।

६. षडस्रकुण्ड—सर्वप्रथम चतुरस्र क्षेत्र के मध्य से दोनों ओर की रेखा को आठ भागों में प्रविभक्त करे । तदनन्तर मध्य की उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की रेखाओं को अष्टमांश बढ़ा देवे । तदनन्तर बढ़ी हुई रेखाओं से सम्बद्ध व्यास के

केन्द्र से एक वृत्त का निर्माण करे । तदनन्तर बढ़ी हुई रेखा के दोनों ओर तन्त्रवेत्ता साधक चार चिह्न लगावे । फिर छओं सूत्रों को मिला देवे तो षडस्र कुण्ड हो जाता है ॥ १५-१७ ॥

(७) पद्मकुण्डम्

चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं विभज्याऽष्टादशांशतः ॥ १७ ॥
एकं भागं बहिर्न्यस्य भ्रामयेत्तेन वर्त्तुलम् ।
वृत्तानि कर्णिकादीनां बहिस्त्रीणि प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥
पद्मकुण्डमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् ।

७. पद्मकुण्ड विधान—उस चतुरस्र कुण्ड के क्षेत्र को अट्ठारह भागों में प्रविभक्त करे । पुनः एक भाग बाहर छोड़कर चारों ओर वृत्त बनावे । पुनः साधक कर्णिका के बाहर तीन वृत्त का निर्माण करे तो देखने में अत्यन्त मनोहर पद्मकुण्ड बन जाता है ॥ १७-१९ ॥

(८) अष्टास्रकुण्डम्

पूर्वोक्तं विभजेत् क्षेत्रं चतुर्विंशतिभागतः ॥ १९ ॥
एकं भागं बहिर्न्यस्य चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ।
अन्तःस्थचतुरस्रस्य कोणार्धार्धप्रमाणतः ॥ २० ॥
बाह्यस्य चतुरस्रस्य कोणाभ्यां परिलाञ्छयेत् ।
दिशं प्रति यथान्यायमष्टसूत्राणि पातयेत् ॥ २१ ॥
अष्टास्रं कुण्डमेतद्धि तन्त्रविद्भिरुदाहृतम् ।

८. अष्टास्रकुण्डविधान—पूर्वोक्त चतुरस्र कुण्ड के क्षेत्र को साधक कुल चौबीस भागों में प्रविभक्त करे। तदनन्तर चारों ओर एक भाग बाहर छोड़कर पुनः उसे चौकोर निर्माण करे। तदनन्तर अन्तःस्थ चतुरस्र के कोण के आधे भाग को बाहर के चतुरस्र कोणों से मिला देवे । फिर साधक आठो दिशाओं में आठो सूत्रों को एक में मिला देवे । तन्त्रवेत्ताओं ने इस प्रकार से बने हुये कुण्ड को अष्टास्र कुण्ड कहा है ॥ २०-२१ ॥

खातमानम्

यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम् ॥ २२ ॥

मेखलालक्षणं तन्मानञ्च

कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानाञ्च तादृशम् ।
कुण्डादेर्द्व्यङ्गुलं त्यक्त्वा कर्त्तव्या मेखलाः शुभाः ॥ २३ ॥

खात और मेखला की माप—कुण्ड का जितना विस्तार हो उतने ही प्रमाण

में उसकी गहराई होनी चाहिये। कुण्ड का जैसा स्वरूप हो उसकी मेखला भी उसी प्रकार की होनी चाहिये अर्थात् चतुरस्र कुण्ड में चतुरस्र मेखला और योनि कुण्ड में योनिरूपा इत्यादि मेखलायें बनानी चाहिये । कुण्ड के आदि में दो अङ्गुल छोड़कर मेखला बनानी चाहिये ॥ २२-२३ ॥

कुण्डानां मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रेण ताः क्रमात् ।
उत्सेधायामतो ज्ञेया द्व्येकार्धाङ्गुलिसम्मिताः ॥ २४ ॥
अरत्निमात्रकुण्डस्य तास्त्रिद्विकाङ्गुलात्मिकाः ।
अष्टादशाङ्गुलं ज्ञेयम् अरत्निमानं धीमता ॥ २५ ॥
द्वादशाङ्गुलिभिश्चैव हस्तार्धं परिकीर्त्तितम् ।

हर प्रकार के कुण्डों में तीन-तीन मेखलायें बनानी चाहिये । त्रिमेखला पक्ष में उसकी ऊँचाई तथा चौड़ाई क्रमशः एक-एक मुष्टि के बराबर होनी चाहिये । प्रथम मेखला दो अङ्गुल चौड़ी और दो अङ्गुल ऊँची, दूसरी मेखला प्रथम की अपेक्षा एक अङ्गुल चौड़ी और एक अङ्गुल ऊँची । इसी प्रकार तृतीय मेखला द्वितीय की अपेक्षा आधा अङ्गुल चौड़ी तथा आधा अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये । यदि अरत्नि प्रमाण का कुण्ड हो तो तीनों मेखलायें क्रमशः तीन, दो और एक अङ्गुल चौड़ी तथा ऊँची होनी चाहिये । यदि एक हाथ का कुण्ड हो तो चार, तीन और दो अङ्गुल चौड़ी तथा ऊँची मेखला होनी चाहिये । बारह अङ्गुल का आधा हाथ समझना चाहिये ॥ २४-२६ ॥

नेमिलक्षणम्

एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनाङ्गुलाः ॥ २६ ॥
मेखलानां भवेदन्तः परितो नेमिरङ्गुलात् ।
एक हस्तस्य कुण्डस्य वर्धयेत् तत्क्रमात् सुधीः ॥ २७ ॥

नेमि का लक्षण—यदि एक हाथ का कुण्ड हो तो मेखला के भीतर चारों ओर एक अङ्गुल का कण्ठ निर्माण करे । इसी प्रकार कुण्ड के विस्तार के अनुसार उसका कण्ठ भी बढ़ाते रहना चाहिये । इसी प्रकार दश हाथ के कुण्ड में पृथक्-पृथक् आधा अङ्गुल कण्ठ बढ़ाते रहना चाहिये ॥ २६-२७ ॥

कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेदगुणाङ्गुलाः ।
चतुर्हस्तेषु कुण्डेषु वसुतर्कयुगाङ्गुलाः ॥ २८ ॥
कुण्डे रसकरे ताः स्युर्दशाष्टरससम्मिताः ।
वसुहस्तमिते कुण्डे भानुपङ्क्त्याष्टकाङ्गुलाः ॥ २९ ॥
दशहस्तमिते कुण्डे मनुभानुदशाङ्गुलाः ।
विस्तारोत्सेधतो ज्ञेया मेखलाः सर्वतो बुधैः ॥ ३० ॥

यदि दो हाथ का कुण्ड हो तो मेखला भी क्रमशः छह, चार और तीन अङ्गुल की ऊँची और चौड़ी करनी चाहिये । यदि चार हाथ का कुण्ड हो तो आठ, छह और चार अङ्गुल की ऊँचाई और चौड़ाई में मेखला बनानी चाहिये । यदि कुण्ड छह हाथ का हो तब मेखला भी क्रमशः दश, आठ और छह अङ्गुल चौड़ी और ऊँची बनानी चाहिये । यदि कुण्ड आठ हाथ का हो तो मेखला भी बारह, दश तथा आठ अङ्गुल चौड़ी और ऊँची बनावे । यदि कुण्ड दश हाथ का हो तो मेखलायें भी चौदह, बारह और दश अङ्गुल की होनी चाहिये । इसी प्रकार बुद्धिमान् साधक कुण्ड के अनुसार मेखलाओं की ऊँचाई तथा चौड़ाई का विचार कर लेवे ॥ २८-३० ॥

योनिलक्षणम्

होतुरग्रे योनिरासामुपर्यश्वत्थपत्रवत् ।
मुष्ट्यरत्रेकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता ।
षट्चतुर्द्व्यङ्गुलायामविस्तारोन्नतिशलिनी ॥ ३१ ॥

योनि का लक्षण—होता के आगे इन मेखलाओं के ऊपर अश्वत्थ पत्र के आकार की योनि बनानी चाहिये । मुष्टि, अरत्नि एवं एक हाथ के कुण्ड में छह, चार एवं दो अङ्गुल की चौड़ी तथा ऊँची योनि होनी चाहिये ॥ ३१ ॥

नाललक्षणम्, तन्मानञ्च

योन्याः पश्चिमतो नालं विस्तारं चतुरङ्गुलम् ।
त्रिद्व्येकाङ्गुलमानेन क्रमान्मूलाग्रमिष्यते ॥ ३२ ॥

योनि के पीछे चार अङ्गुल का नाल निर्माण करना चाहिये । उसके मूल का अग्रभाग क्रमशः तीन, दो और एक अङ्गुल का होना चाहिये ॥ ३२ ॥

नालमेखलयोर्मध्ये परिधिस्थापनाय च ।
स्थलादारभ्य नालं स्यात् योन्या मध्ये सरन्ध्रकम् ॥ ३३ ॥
नार्पयेत् कुण्डकोणेषु योनिं तां तन्त्रवित्तमः ।
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता ॥ ३४ ॥
एकैकाङ्गुलतो योनिं कुण्डेष्वन्येषु वर्धयेत् ।
यवद्वयक्रमेणैव योन्यग्रमपि वर्धयेत् ॥ ३५ ॥

नाल और मेखला के मध्य में परिधि स्थापन के लिये स्थल से आरम्भ कर छिद्रसहित नाल का निर्माण करना चाहिये । तन्त्रवेत्ता विद्वान् कोणों पर योनि का निर्माण न करे । मुष्टि, अरत्नि तथा एक हाथ के कुण्ड में योनि निर्माण की विधि कही गई है । अन्य कुण्डों में एक-एक अङ्गुली योनि का विस्तार करे । दो-दो

यव के क्रम से योनि को भी बढ़ाता रहे ॥ ३३-३५ ॥

नाभिप्रमाणम्

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभाम् ।
तत्तत् कुण्डानुरूपं वा मानमस्य निगद्यते ॥ ३६ ॥

कुण्ड के भीतर कमल के आकार की नाभि बनानी चाहिये अथवा कुण्ड की जैसी आकृति हो वैसी नाभि निर्माण करे ॥ ३६ ॥

मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेधतारतः ।
नेत्रवेदाङ्गुलोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्धयेत् ॥ ३७ ॥
यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः ।
योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं विवर्जयेत् ॥ ३८ ॥
नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम् ।
बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत् ॥ ३९ ॥
मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्धं सम्प्रचक्षते ।
शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्रके ॥ ४० ॥

मुष्टि, अरत्नि तथा एक हाथ के कुण्ड में नाभि की ऊँचाई क्रमशः दो, तीन और चार अङ्गुल की होनी चाहिये । इसी प्रकार अन्य कुण्डों में इसकी ऊँचाई बढ़ाते रहना चाहिये । उदार बुद्धि वाले बुद्धिमान् साधक को अन्य कुण्डों में दो-दो यव के क्रम से पृथक् पृथक् नाभि बढ़ाते रहना चाहिये । योनि कुण्ड में योनि का तथा पद्मकुण्ड में नाभि का निर्माण न करे । नाभि के क्षेत्र का तीन भागकर मध्य भाग में कर्णिका का निर्माण करना चाहिये । बाहर के दो भाग में आठ कमल पत्र का निर्माण करे । सौ के आधे अर्थात् पचास आहुति वाले होम में मुष्टिमात्र का कुण्ड निर्माण करे । सौ आहुति वाले होम में अरत्नि मात्र का कुण्ड और सहस्र आहुति वाले होम में एक हाथ के कुण्ड का निर्माण विहित है ॥ ३७-४० ॥

कोणसूत्रप्रमाणेन कुर्याद्धस्तकुण्डकम् ।
चतुर्हस्तादिकेऽप्येवं कर्त्तव्यं साधकेन च ॥ ४१ ॥
द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदीरितम् ।
दशलक्षेषु षट्करं कोट्यामष्टकरं स्मृतम् ॥ ४२ ॥

दश हजार की आहुति में दो हाथ का, एक लाख की आहुति में चार हाथ का, दश लाख की आहुति में छह हाथ का और एक करोड़ की आहुति में आठ का कुण्ड निर्माण करना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥

(यद्वा) एकहस्तमितं कुण्डमेकलक्षे विधीयते ।

लक्षाणां दशकं यावत् तावद्धस्तेन वर्धयेत् ॥ ४३ ॥
दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमे च दृश्यते ।

अथवा एक लाख की आहुति के लिये एक हाथ । इसी प्रकार दश लाख की आहुति पर्यन्त एक एक हाथ बढ़ाना चाहिये । एक कोटि होम में दश हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये ॥ ४३-४४ ॥

कुण्डानां फलकथनम्

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्त्रमुदाहृतम् ॥ ४४ ॥

चतुरस्त्र कुण्ड सभी प्रकार की सिद्धि देने वाला कहा गया है ॥ ४४ ॥

पुत्रप्रदं योनिकुण्डं अर्धचन्द्रं शुभप्रदम् ।
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्त्रं वर्त्तुलं शान्तिकर्मणि ॥ ४५ ॥

योनि कुण्ड साधक को पुत्र प्रदान करता है । अर्ध चन्द्र कुण्ड सभी के लिए कल्याणकारी है । त्र्यस्त्र कुण्ड शत्रु का क्षय करता है । वृत्त कुण्ड शान्ति के लिये प्रशस्त कहा गया है ॥ ४५ ॥

छेद मारणयोः कुण्डं षडस्त्रं पद्मसन्निभम् ।
वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्त्रमीरितम् ॥ ४६ ॥

भेद और मारणकर्म के लिये षडस्त्र और पद्मकुण्ड कहे गये हैं और अष्टास्त्र कुण्ड वर्षा कराने वाला एवं रोग नष्ट करने वाला कहा गया है ॥ ४६ ॥

(यद्वा) **योनिकुण्डं वाक्प्रदं स्यादब्जमाकृष्टिकरणम् ।**
लक्ष्मीप्रदं वर्त्तुलञ्चचन्द्रार्धं तु भयं हरेत् ॥ ४७ ॥

अथवा योनिकुण्ड विद्या प्रदान करने वाला, पद्मकुण्ड आकर्षण कराने वाला कहा गया है । वृत्त कुण्ड लक्ष्मी प्रदान करने वाला तथा अर्धचन्द्र कुण्ड सब प्रकार का भय दूर करता है ॥ ४७ ॥

वृत्तं त्रिकोणकुण्डं हि खेचरीसिद्धिदायकम् ।
चतुरस्त्रं शान्तिलक्ष्मीपुष्टिऋद्धिप्रदायकम् ॥ ४८ ॥

वृत्त एवं त्रिकोण कुण्ड खेचरी की सिद्धि करता है । चतुरस्त्र कुण्ड शान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि एवं समृद्धि प्रदान करता है ॥ ४८ ॥

कारणं सर्वसम्पत्तेर्धनसौभाग्यवर्द्धनम् ।
षडस्त्रं सर्वसम्पत्तिकारणं पौरुषप्रदम् ॥ ४९ ॥

षडस्त्र कुण्ड सम्पूर्ण सम्पत्ति का कारण है, धन सौभाग्य बढ़ाता है और

पुरुषार्थ प्रदान करता है ॥ ४९ ॥

अष्टास्त्रं तु तथा ज्ञेयं समीहितफलप्रदम् ।
गुणानि सर्वकार्याणि चतुरस्त्रे भवन्ति हि ॥ ५० ॥

अष्टास्त्र कुण्ड उन-उन फलों को तो देता ही है और मनोरथपूर्ण भी करता है चतुरस्त्रकुण्ड में सभी कार्य सम्पादन के गुण हैं ॥ ५० ॥

विप्राणां चतुरस्त्रं स्याद् राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते ।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्त्रमीरितम् ॥ ५१ ॥

तन्त्रशास्त्र में ब्राह्मणों के लिये चतुरस्त्र कुण्ड, क्षत्रियों के लिये वर्त्तुलाकार कुण्ड, वैश्यों के लिये अर्धचन्द्राकार कुण्ड और शूद्रों के लिये त्र्यस्त्र कुण्ड का विधान कहा गया है ॥ ५१ ॥

चतुरस्त्रं तु सर्वेषां किञ्चित्तान्त्रिकसम्मतिः ।
कुण्डस्य रूपं जानीयात् परमं प्रकृतेर्वपुः ॥ ५२ ॥

कुछ विद्वान् तान्त्रिकों की सम्मति है कि चतुरस्त्र कुण्ड सबके लिये हितकारी है । जो परम प्रकृति का स्वरूप है, वहीं कुण्ड का भी स्वरूप है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

कुण्डाकृतिभेदेनफलभेदः

प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः ।
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे ॥ ५३ ॥

कुण्ड का पूर्व दिशा में शिर है, उत्तर और दक्षिण में बाहू है, कुण्ड उदर है; और पश्चिम में रहने वाली योनि पैर है ॥ ५३ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत् ।
हस्तमात्रं तु तत् कुर्याद्बालुकाभिः सुशोभनम् ॥ ५४ ॥

अथवा नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म स्थण्डिल में ही करे । बालू के द्वारा एक हाथ का लम्बा चौड़ा स्थण्डिल निर्माण करे ॥ ५४ ॥

अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्त्रं समन्ततः ।
एषामेकतमं कुण्डं निष्पाद्य स्त्रुक्स्त्रुवौ ततः ॥ ५५ ॥

चौकोर तथा एक अङ्गुल ऊँचा स्थण्डिल होना चाहिये । ऊपर कहे गये अनेक प्रकार के कुण्डों में से एक कुण्ड का निर्माण कर साधक स्त्रुक् और स्त्रुवा का निर्माण करे ॥ ५५ ॥

प्रकल्पयेत् स्रुचं यागे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।
श्रीफलशिंशपाक्षीरशाखिष्वेकतमं बुधः ॥ ५६ ॥
गृहीत्वा विभजेद्धस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुनः ।
विंशत्यंशैर्भवेद्दण्डो वेदी तैरष्टभिर्भवेत् ॥ ५७ ॥
एकांशेन मितं कण्ठं सप्तभागमितं मुखम् ।
वेदीत्र्यंशेन विस्तारः कण्ठस्य परिकीर्त्तितः ॥ ५८ ॥
अग्रं कण्ठसमानं स्यात् मुखे मार्गं प्रकल्पयेत् ।
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय च ॥ ५९ ॥

स्रुचा निर्माण विधि—यज्ञ कार्य में आगे कही जाने वाली विधि के अनुसार स्रुचा का निर्माण करना चाहिये । आचार्य श्रीपर्णी, शिंशपा (शीशम) अथवा बट आदि क्षीरी वृक्ष में किसी एक की शाखा का एक हाथ का काष्ठ लावे । पुनः उसे छत्तीस भाग में प्रविभक्त करे; जिसमें बीस भाग दण्ड के लिये छोड़ देवे । आठ भाग वेदी के लिये छोड़े । फिर एक भाग में कण्ठ तथा सात भाग में उसका मुख निर्माण करे । वेदी के तीन अंश में कण्ठ का विस्तार कहा गया है । उसका अग्रभाग (मुख) कण्ठ के समान अर्थात् वेदी के तीन भाग पर्यन्त विस्तृत होना चाहिये । मुख में भी घी गिरने के लिये कनिष्ठाङ्गुली के प्रमाण का छेद करना चाहिये ॥ ५६-५९ ॥

उद्दिष्टवेधा रचनाप्रकारम्

वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका ।
विदधीत बहिस्तस्या एकांशेनाऽभितोऽवटम् ॥ ६० ॥
तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्धांशतो भवेत् ।
अंशेनैकेन परितो दलानि परिकल्पयेत् ॥ ६१ ॥
मेखला मुखवेद्योः स्यात् परितोऽर्धांशमानतः ।
दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी गुणवेदाङ्गुलैः क्रमात् ॥ ६२ ॥

वेदी निर्माण विधि—वेदी के मध्य के एक भाग में कर्णिका का निर्माण करना चाहिये । उसके बाहर चारों ओर एक अंश में गर्त्त बनाना चाहिये । तीन भाग (दो अङ्गुल) में उसका खात तथा आधे अंश (एक अङ्गुल) में उसका वृत्त बनाना चाहिये । उसके चारो ओर एक अंश. (एक अङ्गुल) में दल बनाना चाहिये। पुनः मुख और वेदी के मध्य में मेखला का निर्माण करना चाहिये । यह मेखला चारों ओर आधे अङ्गुल के प्रमाण में की जानी चाहिये । दण्ड तथा मूल के अग्रभाग में तीन और चार अङ्गुल के क्रम से गण्डी (कङ्गनाकार) का निर्माण करना चाहिये ॥ ६०-६२ ॥

गण्डीयुग्मं यमांशैः स्याद्दण्डस्याऽऽनाह ईरितः ।
षड्भिरंशैः पृष्ठभागो वेद्याः कूर्माकृतिर्भवेत् ॥ ६३ ॥
हंसस्य वा हस्तिनो वा पोत्रिणो वा मुखं लिखेत्।
मुखस्य पृष्ठभागस्य सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः ॥ ६४ ॥

दो दो अङ्गुल का दो गण्डी (कङ्गनाकार) निर्माण करे । दण्ड की विशालता ६ अंशों में करनी चाहिये । वेदी का पृष्ठभाग कूर्म की पीठ के आकार का होना चाहिये । स्रुचा के पृष्ठभाग में हंस, हाथी अथवा शूकर का मुख बनाना चाहिये । इस प्रकार हमने मुख तथा पृष्ठ का और स्रुचा का लक्षण कहा ॥ ६३-६४ ॥

स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैर्वा रचयेत् स्रुवम् ।
द्वाविंशत्या दण्डमानमंशैरेतस्य कीर्त्तितम् ।
चतुर्भिरंशैरानाहः कर्षाज्यग्राहि तच्छिरः ॥ ६५ ॥
अंशद्वयेन निखनेत् पङ्के मृगपदाकृति ।

स्रुचा के चौबीस भाग में स्रुव का निर्माण करना चाहिये । जिसमें बाइस भाग दण्ड के लिये छोड़ना चाहिये । चार अंशों में उसका विस्तार और दो अंशों में सोलह माष प्रमाण का उसका शिर निर्माण करना चाहिये । पङ्क में मृग के पद की आकृति के समान उसका खात होना चाहिये ॥ ६५-६६ ॥

दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी भवेत् कङ्कणभूषिता ।
मूलात् षडङ्गुलं त्यक्त्वा अग्रेचैन द्विसप्तकम्॥ ६६ ॥
स्रुवन्तु धारयेन्मन्त्री मूलमेव न दर्शयेत् ।
स्रुवस्य विधिराख्यातो यथातन्त्रविधानतः ॥ ६७ ॥

दण्ड के मूल भाग तथा अग्रभाग में कङ्कण भूषित गण्डी होनी चाहिये । मूल से छह अङ्गुल छोड़कर तथा आगे चौदह अङ्गुल छोड़कर मन्त्रज्ञ स्रुवा धारण करे जिससे उसका मूल भाग दिखाई न पड़े । यहाँ तक तन्त्र के विधान के अनुसार हमने स्रुवा की विधि कहीं ॥ ६६-६७ ॥

कुण्डस्य अष्टादश संस्काराः

संस्काराणि च वा कुर्यात् कुण्डस्य साधकोत्तमः ।
अष्टादशाः स्युःसंस्काराः कुण्डानां तन्त्रचोदिताः ॥ ६८ ॥

कुण्ड के अट्ठारह संस्कार—इसके बाद उत्तम साधक कुण्ड का संस्कार करे। तन्त्रशास्त्रों में कुण्ड के अट्ठारह संस्कार बताये गये हैं ॥ ६८ ॥

मूलेन वीक्षणं कृत्वा अस्त्रेण प्रोक्षणं ततः ।

तेनैव ताडनं दर्भैर्वर्मणाऽभ्युक्षणं मतम् ॥ ६९ ॥
अस्त्रेण खनोद्धारौ हन्मन्त्रेण प्रपूरणम् ।
समीकरणमस्त्रेण वर्मणा सेचनं मतम् ॥ ७० ॥

मूल मन्त्र पढ़कर कुण्ड का वीक्षण करे । यह प्रथम संस्कार है । शर मन्त्र अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) पढ़कर प्रोक्षण करना—यह दूसरा संस्कार है । पुनः उसी अस्त्र मन्त्र से दर्भ द्वारा कुण्ड का ताड़न करना तीसरा संस्कार है । वर्म मन्त्र (कवचाय हुं) से अभ्युक्षण करना चौथा संस्कार है ॥ ६९-७० ॥

कुट्टनं हेतिमन्त्रेण कवचेन तु मार्जनम् ।
विलेपनं कलारूपकल्पनं तदनन्तरम् ॥ ७१ ॥
त्रिसूत्रीकरणं पश्चात् हृदयेनाऽर्चनं तथा ।
शरेण वज्रीकरणं हृदयेन कुशैः शुभैः ॥ ७२ ॥
चतुष्पथं तनुत्रेण तनतयादक्षपाटनम् ।
यागे कुण्डानि संस्कुर्यात्संस्कारैरेभिरीरितैः ॥ ७३ ॥

अस्त्र मन्त्र से कुण्ड की मिट्टी खनना पुनः उसे बाहर निकालना । पुनः अन्य मिट्टी लाकर नमः मन्त्र से उस खात को पूर्ण करना पाँचवाँ, छठाँ एवं सातवाँ संस्कार है । अस्त्र मन्त्र पढ़कर मिट्टी को समतल बनाना, कवच मन्त्र पढ़कर उसका अभिसिञ्चन करना, अस्त्र मन्त्र से उसे कूटना और वर्म मन्त्र से उसका मार्जन करना—ये आठ, नव, दश तथा ग्यारह संस्कार हुये । फिर कुण्ड को लीपना उसमें सूर्य, चन्द्र, अग्नि की कला की कल्पना करना, तीन सूत्र लपेटना। पुनः नमः पढ़कर अर्चन करना, क्रमशः बारह, तेरह और चौदह संस्कार हुये । अस्त्र मन्त्र से कुण्ड को दृढ़ बनाना, नमः मन्त्र पढ़कर उत्तम कुशों से चतुष्पथ निर्माण करना, वर्म मन्त्र पढ़कर इन्द्रियार्चन करना तथा हुङ्कार से राक्षसों का अपसारण करना—ये क्रमशः पन्द्रह, सोलह, सत्रह तथा अट्ठारह संस्कार कुण्ड के निष्पन्न हुये । इस प्रकार यज्ञ में ऊपर कहे गये इन अट्ठारह प्रकार के संस्कारों से कुण्ड का संस्कार करना चाहिये ॥ ७१-७३ ॥

प्रकारान्तरसंस्कारकथनम्

अथवा तानि संस्कुर्याच्चतुर्भिर्वीक्षणादिभिः ।
तिस्रस्तिस्रो लिखेद् रेखा हृदा प्रागुदगग्रगाः ॥ ७४ ॥

अथवा अशक्त होने पर केवल तत्तन्मन्त्रों से वीक्षण, प्रोक्षण, ताड़न एवं अभ्युक्षण—ये चार ही संस्कार करना चाहिये । पुनः उस कुण्ड में दक्षिण दिशा से आरम्भ कर उत्तर तक और पश्चिम दिशा से आरम्भ कर पूर्व तक तीन-तीन रेखा खीचे ॥ ७४ ॥

प्रागग्राणां स्मृता देवा मुकुन्देशपुरन्दराः ।
रेखाणामुदगग्राणां ब्रह्मवैवश्चेन्दवः ॥ ७५ ॥

जिन तीन रेखाओं के अग्रभाग पूर्व की ओर हैं, उनके मुकुन्द, ईश्वर तथा पुरन्दर देवता हैं, जिन रेखाओं के अग्रभाग उत्तर की ओर हैं उनके ब्रह्मा, विवस्वान् और चन्द्रमा देवता हैं ॥ ७५ ॥

षट्कोणान्तर्गतां योनिं मण्डलं चाष्टपत्रकम् ।
वृत्तं क्षितिगृहं चैव कुण्डमध्ये लिखेत्ततः ॥ ७६ ॥

फिर साधक कुण्ड के भीतर में षट्कोण के भीतर योनि मण्डल, अष्टपत्र, वृत्त एवं भूपुर का निर्माण करे ॥ ७६ ॥

तारेण प्रोक्षणं कृत्वा पूजयेत् पीठदेवताः ।
मण्डले कालवह्निञ्च रुद्रमेव ततः परम् ॥ ७७ ॥

तार (प्रणव) से उनका प्रोक्षण कर पीठ देवता का तथा मण्डल में कालवह्नि और रुद्र का पूजन करे ॥ ७७ ॥

आधारशक्तिं कूर्मञ्च पृथिवीं रत्नद्वीपकम् ।
मणिगेहं प्रपूज्याथ कल्पवृक्षं ततः सुधीः ॥ ७८ ॥
सुवर्णवेदिकामध्ये आग्नेयादिषु तत्परम् ।
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यं ऐश्वर्यञ्च यथाक्रमात् ॥ ७९ ॥

फिर विद्वान् साधक आधारशक्ति, कूर्म, पृथ्वी, रत्नदीप और मणिगृह का पूजन कर कल्पवृक्ष का पूजन करे । फिर सुवर्ण वेदी के मध्य में आग्नेयादि कोणों में अधर्मादि का तथा पूर्वादि दिशाओं में धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य का क्रमशः पूजन करे ॥ ७८-७९ ॥

पूर्वाद्येतांश्च मध्ये च पुनर्मध्ये ततो यजेत् ।
परमानन्दकन्दञ्च सम्विन्नालं ततः परम् ॥ ८० ॥
सर्वतत्त्वार्थकाब्जञ्च प्रकृतिपत्रकं ततः ।
विकारमयकेशरं मातृकामयकर्णिकाम् ॥ ८१ ॥
सूर्यस्य मण्डलं सोममण्डलं वह्निमण्डलम् ।
सत्त्वरजस्तमश्चैव आत्मानमन्तरात्मनाम् ॥ ८२ ॥
परमात्मानमभ्यर्च्य ज्ञानात्मानं ततः परम् ।
नामाद्यक्षरबीजाद्यान् चतुर्थ्यन्तान्नमोऽन्वितान् ॥ ८३ ॥
प्रणवाद्यान् यजेदेतान् वर्त्तुले भुवनेश्वरीम् ।

वागीश्वरीञ्च वागीशं यजेद्योगस्वरूपकम् ॥ ८४ ॥
पीठाय नम इत्युक्त्वा कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।

वागीश्वरीध्यानम्

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरसन्निभाम् ॥ ८५ ॥
वागीश्वरेण संयुक्तामुपचारैः प्रपूजयेत् ।
मायाबीजं समुच्चार्य वागीश्वरीञ्च ङेयुताम् ॥ ८६ ॥
नमोऽन्तोऽयं महामन्त्रो वागीश्वर्याः प्रकीर्त्तितः ।
योगीश्वरं स्वमन्त्रेण ततो वह्निं समानयेत् ॥ ८७ ॥

फिर पूर्वादि दिशाओं में, मध्य में, पुनः मध्य में, परमानन्द कन्द संवित् नाल उसके बाद सर्वतत्त्वकमल, प्रकृति पत्र, विकारमय केशर और मातृकामय कर्णिका सूर्यमण्डल, सोममण्डल, वह्निमण्डल, सत्त्व, रज, तम, आत्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा का अर्चन कर, ज्ञानात्मा का नाम के आदि अक्षर रूप बीज, तदनन्तर चतुर्थ्यन्त नाम, फिर 'नमः' इस मन्त्र से पूजा करे । आदि में प्रणव लगावे । वर्त्तुल में भुवनेश्वरी तथा एक मिले हुये वागीश एवं वागीश्वरी का 'पीठाय नमः' इस मन्त्र को पढ़कर जप करे । कर्णिका में नील कमल के समान ऋतुस्नाता वागीश्वरी का जो वागीश्वर से संयुक्त हैं; ध्यान करे । अनेक उपचारों से, मायाबीज (ह्रीं), फिर चतुर्थ्यन्त वागीश्वरी (वागीश्वर्यै), तदनन्तर 'नमः' यह 'ह्रीं वागीश्वर्यै नमः' वागीश्वरी का महामन्त्र है; इससे पूजन करे । इसी प्रकार 'ह्रीं वागीश्वराय नमः' इस मन्त्र से वागीश्वर का पूजन करे । फिर अग्नि ले आवे ॥ ८०-८७ ॥

सूर्यकान्तादिसम्भूतं यद्वा श्रोत्रियगेहजम् ।
ताम्रपात्रे पुटीकृत्य क्रव्यादांशं परित्यजेत् ॥ ८८ ॥
वह्निबीजेन चाऽस्त्रेण नैर्ऋत्यां दिशि साधकः ।
संस्कुर्यात्तं यथान्यायं चतुर्भिर्वीक्षणादिभिः ॥ ८९ ॥

इस अग्नि को सूर्यकान्त मणि से उत्पन्न करे, अथवा श्रोत्रिय के गृह से ताम्र पात्र में रखकर उसे ढक कर ले आवे । उसमें क्रव्याद अंश का परित्याग करे । (पात्र में स्थित अग्नि का कुछ अंश) 'रं' इस मन्त्र को तथा 'अस्त्राय फट्' इस अस्त्र मन्त्र को पढ़कर नैर्ऋत्यकोण में त्याग दे । (यह क्रव्यादंश के त्याग की विधि है) । इसके बाद वीक्षणादि चार संस्कार से अग्नि को शुद्ध करे ॥८८-८९॥

औदर्यवैदवाग्निभ्यां भौमस्यैक्यं स्मरन् वसोः ।
योजयेद्वह्निबीजेन चैतन्यं पावके ततः ॥ ९० ॥

तदनन्तर उस भौम अग्नि का औदर्य और वैन्दव अग्नि से एकत्व की सम्भावना करते हुये 'रं' इस मन्त्र को पढ़कर उसमें चैतन्य स्थापित करे ॥ ९० ॥

तारेण मन्त्रितं मन्त्री धेनुमुद्रामृतीकृतम् ।
अस्त्रेण रक्षितं पश्चात् कवचेनाऽवगुण्ठितम् ॥ ९१ ॥
अर्चितं त्रिः परिभ्राम्य कुण्डस्योपरि देशिकः ।
प्रदक्षिणं तदा तारमन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥ ९२ ॥
आत्मनोऽभिमुखं वह्निं जानुस्पृष्टमहीतलः ।
शिवबीजधिया देव्या योनावेव विनिःक्षिपेत् ॥ ९३ ॥
पश्चाद् देवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनादिकम् ।
ज्वालिनीं दर्शयित्वा च ज्वालयेन्मनुनाऽमुना ॥ ९४ ॥

प्रणव मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे । धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, अस्त्र मन्त्र से संरक्षण, कवच मन्त्र से अवगुण्ठन तथा पुनः अर्चन कर, कुण्ड के ऊपर, उस अग्नि को तीन बार दाहिनी ओर से घुमाकर, प्रणव मन्त्र का उच्चारण कर, स्वयं आचार्य पृथ्वी पर जानु रखकर, अपने सामने कुण्ड में देवी की योनि में, शिव बीज का ध्यान करते हुये उस योनि में अग्नि स्थापित करे । अग्नि स्थापन के पश्चात् स्वयं आचार्य वागीश्वर और वागीश्वरी को आचमन करावे । फिर वक्ष्यमाण मन्त्र से ज्वालिनी मुद्रा प्रदर्शित कर उस अग्नि को प्रज्वलित करे ॥ ९१-९४ ॥

वह्निमन्त्रकथनम्

चित्पिङ्गल हन दह पचयुग्मान्युदीर्य च ।
सर्वज्ञाऽऽज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं समुदीरितः ॥ ९५ ॥
अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ ९६ ॥
उपतिष्ठेत विधिवत् मनुनाऽनेन पावकम् ।
विन्यसेदात्मनो देहे मन्त्री जिह्वा हविर्भुजः ॥ ९७ ॥

'चित् पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' यह मन्त्र अग्नि प्रज्वलित करने का है । अग्नि प्रज्वलित करने के अनन्तर आचार्य 'अग्नि प्रज्वलितं.......विश्वतोमुखम्' इस मन्त्र से अग्नि की स्तुति करे । फिर अग्नि की सप्तजिह्वा के वर्ण मन्त्रों से अपने शरीर में न्यास करे ॥ ९५-९७ ॥

लिङ्गपायुशिरोवक्त्रघ्राणनेत्रेषु सर्वतः ।
वह्नीराघींशसंयुक्ताः सादियान्ताः सबिन्दवः ॥ ९८ ॥
वह्नेर्मन्त्राः समुद्दिष्टाः जिह्वानां सप्त देशिकैः ।
जिह्वास्तास्त्रिविधाः प्रोक्ता गुणभेदेषु कर्मसु ॥ ९९ ॥

लिङ्ग, पायु, शिर, मुख, घ्राण, नेत्र और सर्वाङ्ग इन सात स्थानों में वह्नि (र)

इर् य् और आर्घीश (ऊ) से संयुक्त आदि में स, अन्त में य वर्ण जो सविन्दुक हो, उनसे न्यास करे । यथा—'स्यूं ष्यूं श्यूं ब्यूं ल्यूं ट्यूँ य्यूं'—ये अग्नि की सप्त जिह्वाओं के बीज मन्त्र हैं; यथा—'स्यूं हिरण्यायै नमः' लिङ्गे इत्यादि । इस प्रकार आचार्यों ने अग्नि की सात जिह्वायें कहीं हैं । वे ही गुण भेद से कर्म की अवस्था में तीन-तीन प्रकार की हो जाती है ॥ ९८-९९ ॥

सत्त्वरजस्तमोभेदेन वह्निजिह्वाकथनम्

हिरण्या गगना रक्ता कृष्णाऽन्या सुप्रभा मता ।
बहुरूपाऽतिरिक्ता च सात्विक्यो यागकर्मसु ॥ १०० ॥

अग्नि की सात्त्विकी जिह्वा—हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता—ये सात अग्नि की सात्विकी जिह्वायें हैं । जिनका प्रयोग यज्ञ कर्म में किया जाता है ॥ १०० ॥

पद्मरागा सुवर्णाऽन्या तृतीया भद्रलोहिता ।
लोहिताऽनन्तरं श्वेता धूमिनी च करालिका ॥ १०१ ॥
राजस्यो रसना वह्नेर्विहिताः काम्यकर्मसु ।

अग्नि की राजसी जिह्वा—पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी और करालिका—ये सात अग्नि की राजसी जिह्वायें हैं जिनका प्रयोग काम्य कर्म में किया जाता है ॥ १०१-१०२ ॥

विश्वमूर्त्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ॥ १०२ ॥
लोहिताऽन्या करालाख्या काली तामस्य ईरिताः ।
एताः सप्त प्रयुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभिः ॥ १०३ ॥

अग्नि की तामसी जिह्वा—विश्वमूर्त्ति, स्फुलिङ्गिनी धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला और काली—ये अग्नि की तामसी जिह्वायें हैं । मन्त्रवेत्ता लोग इनका प्रयोग क्रूरकर्मों तथा अभिचारादि कर्मों में करते हैं ॥ १०२-१०३ ॥

स्वस्वनामसमाभाः स्युर्जिह्वाः कल्याणरेतसः ।
अमर्त्यपितृगन्धर्वयक्षनागपिशाचकाः ॥ १०४ ॥
राक्षसाः सप्तजिह्वानामीरितास्त्वधिदेवताः ।
वह्नेरङ्गमनून् न्यस्येत्तनावुक्तेन वर्त्मना ॥ १०५ ॥

अग्नि की ये जिह्वायें जैसा नाम है वैसा ही फल देती हैं, देवता, पितर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच और राक्षस—ये सात इन जिह्वाओं के अधि देवता बतलाये गए हैं । तदनन्तर ऊपर कही गई विधि के अनुसार अग्नि के अङ्गमन्त्रों का अपने शरीर में न्यास करे । प्रयोगविधि—यथा 'सहस्त्रार्चिषे हृदयाय नमः'

इत्यादि ॥ १०४-१०५ ॥

सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः पुनः ।
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतीरितः ॥ १०६ ॥
षडङ्गमनवः प्रोक्ता जातिभिः सह संयुताः ।
मूर्त्तीरष्टौ तनौ न्यस्येद् देशिको जातवेदसः ॥ १०७ ॥
मूर्द्धांशपार्श्वकट्यन्धु कटी पार्श्वांशुकेषु च ।
प्रदक्षिणवशान्न्यस्येदुच्यन्ते ता यथाक्रमम् ॥ १०८ ॥

सहस्रार्चि, स्वस्तिपूर्ण, उत्तिष्ठ पुरुष, धूमव्यापी, सप्तजिह्वा, धनुर्धर—ये क्रमशः अग्नि के षडङ्ग मन्त्र कहे गये हैं । ये मन्त्र अपने-अपने नाम के अनुसार तत्तद् गुणों से युक्त हैं । आचार्य अग्नि की आठ मूर्त्तियों से अपने शरीर, मूर्धा, बायाँ कन्धा, वामपार्श्व, वामकटि, लिङ्ग, पुनः दाहिनी कटि, दाहिने पार्श्व, दाहिने कन्धे में प्रदक्षिण क्रम से न्यास करे । अब अग्नि के उन आठ मूर्त्तियों के नामों को कहते हैं ॥ १०६-१०८ ॥

वह्निसंज्ञा

जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसञ्ज्ञकः ।
अश्वोदरजसञ्ज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ॥ १०९ ॥
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः ।
तारागनये पदाद्याः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्त्तयः ॥ ११० ॥
आसनं कल्पयित्वाऽग्नेर्मूर्त्तिं तस्य चिन्तियेत् ॥ १११ ॥

जातवेद, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख एवं देवमुख इन पदों के आदि में 'ॐ अग्नये शब्द' अन्त में नमः पद लगाकर न्यास करना चाहिये यथा—'अग्नये जातवेदसे नमः' मूर्ध्नि, तदनन्तर 'रं अग्न्यासनाय नमः' इस मन्त्र से अग्नि को आसन देकर उन अग्नि की मूर्त्तियों का इस प्रकार ध्यान करे ॥ १०९-१११ ॥

वह्निध्यानम्

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चै-
र्दीर्घैर्दोर्भिः धारयन्तं जवाभम् ।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं
ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ॥ ११२ ॥
परिषिञ्चेत्ततस्तोयैर्विशुद्धैर्मेखलोपरि ।
दर्भैरगर्भमध्यस्थमेखलायां परिस्तरेत् ॥ ११३ ॥

अग्नि का ध्यान—जिनके नीचे के दाहिने विशाल हाथ में वर, ऊपर के दाहिने हाथ में शक्ति और ऊपर के बायें हाथ में स्वस्तिक तथा नीचे के बायें हाथ में अभयमुद्रा है, जिनके बाहु विशाल तथा ऊँचे हैं, जिनके शरीर का वर्ण जवाकुसुम के सदृश है और आभूषणों से जगमगा रहा है, कमलासन पर विराजमान जिन अग्नि देव के तीन नेत्र और शिर पर जटायें हैं; इस प्रकार के अग्नि देव का ध्यान कर कुण्ड की मेखला पर शुद्ध जल छिड़के । फिर आचार्य मध्य मेखला में दर्भ का परिस्तरण करे ॥ ११२-११३ ॥

निःक्षिपेद्दिक्षु परिधीन् प्राचीवर्जञ्च मन्त्रवित् ।
प्रादक्षिण्येन सम्पूज्यास्ते ब्रह्माद्यष्टमूर्त्तयः ॥ ११४ ॥

पुनः आचार्य पूर्वदिशा को छोड़कर शेष सभी दिशाओं में परिधि का निक्षेप करे । उसके बाद प्रदक्षिण क्रम से पुनः उन परिधियों पर ब्रह्मादि की आठ मूर्त्तियों का पूजन करे । (पलाश, वैकङ्कत, काश्मर्य तथा बिल्ववृक्ष की एक-एक हाथ लम्बी तथा आर्द्र समिधा परिधि कही गई है) ॥ ११४ ॥

ध्यायन् वह्निं यजेन्मध्ये गन्धाद्यैर्मनुनाऽमुना ।
वैश्वानर जातवेदपदं पश्चादिहाऽऽवह ॥ ११५ ॥
लोहिताक्ष पदस्यान्ते सर्वकर्माणि साधय ।
वह्निजायावधिः प्रोक्तो मनुः पावकवल्लभः ॥ ११६ ॥

तदनन्तर पूर्वोक्त रीति से ध्यान की गई अग्नि का षोडशोपचार पूजन करना चाहिए । 'वैश्वानर जातवेद इहाऽऽवह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस मन्त्र से अग्निदेव का आवाहन करना चाहिए । यह मन्त्र अग्निदेव को अत्यन्त प्रिय है ॥ ११५-११६ ॥

मध्ये षट्स्वपि कोणेषु जिह्वा वह्नेस्ततो यजेत् ।
केशरेषूक्तमार्गेण पूजयेदङ्गदेवताः ॥ ११७ ॥

तदनन्तर अग्नि के षट्कोण के मध्य में अग्नि की छह जिह्वाओं का ईशानादि कोण के क्रम से पूजन करे । केशरों के मध्य में पूर्वोक्त रीति से अङ्ग देवता का पूजन करे ॥ ११७ ॥

दलेषु पूजयेन्मूर्त्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः ।
दलाग्रे मातरः पूज्याः सासिताङ्गादिभैरवाः ॥ ११८ ॥
लोकपालांस्ततो दिक्षु पूजयेदुक्तलक्षणान् ।
पश्चादादाय पाणिभ्यां स्रुक्स्रुवौ तावधोमुखौ ॥ ११९ ॥

अष्टदलों में शक्ति तथा स्वस्तिक धारण करने वाली अग्नि की अष्टमूर्त्तियों का

यजन करे । पत्र के अग्रभाग में असितादि भैरवों से युक्त अष्ट मातृकाओं का, तदनन्तर पूर्व में कहे गये लोकपालों का पूजन करे ॥ ११८-११९ ॥

त्रिः सम्प्रतापयेद्वह्नौ दर्भानादाय देशिकः ।
तदग्रमध्यमूलानि शोधयेत्तौ यथाक्रमात् ॥ १२० ॥
गृहीत्वा वामहस्तेन प्रोक्षयेद्दक्षिणेन तौ ।
पुनः प्रताप्य तौ मन्त्री दर्भानग्नौ विनिःक्षिपेत् ॥ १२१ ॥
आत्मनो दक्षिणे भागे स्थापयेत्तौ कुशास्तरे ।

पुनः अपने दोनों हाथों में स्रुव् तथा स्रुवा लेकर उन्हें अधोमुख कर तीन बार अग्नि में प्रतप्त करे । फिर कुशा लेकर उन दोनों के अग्रभाग, मध्यभाग तथा मूल भाग को यथाक्रम कुशा के मूलादि भाग से संशुद्ध करे । तदनन्तर अपने बायें हाथ में रखकर दाहिने हाथ से प्रोक्षणी के जल से आसिञ्चन करे । फिर उन दोनों को अग्नि में प्रतप्त कर मार्जन करने वाले कुशों को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देवे और उन्हें कुशा का आसन देकर अपने दक्षिण भाग में स्थापित करे ।

वीक्षणादिषट्संस्काराः

आज्यस्थालीमथाऽऽदाय प्रोक्षयेदर्घवारिणा ॥ १२२ ॥
तस्यामाज्यं विनिःक्षिप्य संस्कुर्याद्वीक्षणादिभिः ।

१. वीक्षण संस्कार—तदनन्तर आज्यस्थाली को लेकर अर्घ्य के जल से प्रक्षालित करे । फिर उस आज्यस्थाली में घी रखकर वीक्षणादि से उसे सुसंस्कृत करे ॥ १२२-१२३ ॥

निरुह्य वायव्येङ्गारान् हृदा तेषु निवेशयेत् ॥ १२३ ॥
इदं तापनमुद्दिष्टं देशिकैस्तन्त्रवेदिभिः ।

२. तापन संस्कार—फिर कुण्ड से अग्नि निकाल कर उसे वायव्यकोण में स्थापित करे, फिर 'नमः' मन्त्र पढ़कर घृत संयुक्त उस आज्यस्थाली को उस अग्नि पर स्थापित करे । इसे तन्त्रवेत्ता आचार्यों ने इस प्रकार के सम्पन्न आज्य का तापन संस्कार कहा है ॥ १२३-१२४ ॥

दीप्तदर्भयुग्ममाज्ये क्षिप्त्वाऽनले क्षिपेत्ततः ॥ १२४ ॥
गुरुर्हृदयमन्त्रेण पवित्रीकरणन्त्विदम् ।

३. पवित्रीकरण संस्कार—फिर दो कुशा अग्नि में प्रतप्त कर घी में डुबोकर 'नमः' मन्त्र से अग्नि में प्रक्षिप्त कर देवे तो इसे आज्य का पवित्रीकरण कहा गया है ॥ १२४-१२५ ॥

दीप्तेन दर्भयुग्मेन नीराज्याज्यं सवर्मणा ॥ १२५ ॥
अग्नौ विसर्जयेद्दर्भमभिद्योतनमीरितम् ।
घृते प्रज्वलितान् दर्भान् प्रदर्श्याऽस्त्राणुना गुरुः ॥ १२६ ॥
जातवेदसि तान् न्यस्येदुद्योतनमीरितम् ।

४. अभिद्योतन संस्कार—जलते हुये कुशा से कवच मन्त्र द्वारा आरती कर उसे अग्नि में ड़ाल देवे तो उसे अभिद्योतन संस्कार कहा जाता है । जलते हुये कुशा को अणु मन्त्र से घृत को दिखा कर पुनः उसे अग्नि में डाल देने पर उद्योतन संस्कार कहा गया है ॥ १२५-१२७ ॥

गृहीत्वा घृतमङ्गारान् संयोज्याऽग्नौ जलं स्पृशेत् ॥ १२७ ॥
अङ्गुष्ठोपकनिष्ठाभ्यां दर्भौ प्रादेशसम्मितौ ।
धृत्वोत्पुनीयादस्त्रेण घृतमुत्पवनन्त्विदम् ॥ १२८ ॥

५. उत्पवन संस्कार—आज्यस्थाली को नीचे उतार कर उस अग्नि को कुण्ड की अग्नि में संयुक्त कर जल का स्पर्श करे । पुनः प्रादेशमात्र कुशा अङ्गुष्ठ तथा अनामिका अङ्गुली में धारण कर अस्त्र मन्त्र पढ़ते हुये घृत को पवित्र करे । इसे घृत का उत्पवन संस्कार कहते हैं ॥ १२७-१२८ ॥

तद्वद्धृदयमन्त्रेण कुशाभ्यामात्मनो मुखम् ।
घृतेन प्लावनं कुर्यात् संस्काराः षडुदीरिताः ॥ १२९ ॥

६. उत्प्लवन संस्कार—पुनः नमः मन्त्र पढ़ते हुये दो कुशाओं से अपने सम्मुख घृत को उछाले । इस क्रिया का नाम उत्प्लवन है । यहाँ तक हमने घृत के छह संस्कारों का वर्णन किया ॥ १२९ ॥

प्रादेशमात्रं सग्रन्थि दर्भयुग्मं घृतान्तरे ।
निःक्षिप्य भागौ द्वौ कृत्वा पक्षौ शुक्लेतरौ स्मरेत् ॥१३०॥
वामे नाडीमिडां भागे दक्षिणे पिङ्गलां पुनः ।
सुषुम्णां मध्यतो ध्यात्वा कुर्याद्धोमं यथाविधि ॥ १३१ ॥
स्त्रुवेण दक्षिणभागादादायाऽऽज्यं हृदा सुधीः ।
जुहुयादग्नये स्वाहा अग्नेर्दक्षिणलोचने ॥ १३२ ॥

प्रादेश मात्र के ग्रन्थियुक्त दो दर्भ घृत मध्य में डुबोकर उसका दो भाग कर बाईं या दाहिनी ओर फेंक देवे । तदनन्तर बाईं ओर शुक्ल पक्ष का तथा दाहिनी ओर कृष्णपक्ष का ध्यान करे । पुनः बाईं ओर इडा नाड़ी का तथा दाहिनी ओर पिङ्गला नाड़ी का और मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान कर स्त्रुवा से अपनी दाहिनी ओर से घृत लेकर 'नमः' मन्त्र पढ़ते हुये होम प्रारम्भ करे । सर्वप्रथम

'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि के दाहिने नेत्र में हवन करे ॥ १३०-१३२ ॥

वामतस्तद्वदादाय वामे वह्निविलोचने ।

इसी प्रकार 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर बाईं ओर से घृत लेकर अग्नि के वाम नेत्र में हवन करे ॥ १३३ ॥

जुहुयादथ सोमाय स्वाहेति हृदयाणुना ॥ १३३ ॥
हृन्मन्त्रेण स्रुवेणाऽऽज्यं भागादादाय दक्षिणात् ।
जुहुयादग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति तन्मुखे ॥ १३४ ॥
इति सम्पातयेद् भागेष्वाज्यस्याऽथाऽऽहुतिं क्रमात् ।
इत्यग्निनेत्रवक्त्राणां कुर्यादुद्घाटनं सुधीः ॥ १३५ ॥

पुनः नमः इस मन्त्र को पढ़कर मध्य भाग से स्रुवा से घृत लेकर 'सोमाय स्वाहा' मन्त्र पढ़ते हुये अग्नि के भालस्थ तृतीय नेत्र में आहुति प्रदान करे । पुनः दक्षिण भाग से 'नमः' इस मन्त्र को पढ़कर स्रुवा से घृत लेकर 'आग्नीषोमाभ्यां स्वाहा हृदयाय नमः' मन्त्र से होम करे । 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि के मुख में आहुति प्रदान करे । तत्तद्देवता के लिये दी जाने वाली आहुति से शेष आज्य को अग्नि के नेत्र, हृदय तथा मुख में गिरावे । इस प्रकार आचार्य अग्नि के नेत्र, हृदय तथा मुख का उद्घाटन करे ॥ १३३-१३५ ॥

वह्नेः गर्भाधानादिसंस्काराः

सताराभिर्व्याहृतिभिराज्येन जुहुयात् पुनः ।
जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवारान् साधकोत्तमः ॥ १३६ ॥
गर्भाधानादिकां वह्नेः क्रियां निर्वर्तयेत् क्रमात् ।
अष्टाभिराज्याहुतिभिः प्रणवेन पृथक् पृथक् ॥ १३७ ॥

फिर प्रणव युक्त व्याहृतियों द्वारा घृत का होम कर पश्चात् 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से तीन आहुति प्रदान करे । इतना कर लेने के पश्चात् क्रमशः अग्नि का गर्भाधानादि संस्कार सम्पन्न करे । प्रणव के द्वारा प्रत्येक संस्कारों में घृत से पृथक् पृथक् आठ-आठ आहुति प्रदान करे ॥ १३६-१३७ ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं पुनः ।
अनन्तरं जातकर्म स्यान्नामकरणं तथा ॥ १३८ ॥
उपनिष्क्रमणं पश्चादन्नप्राशनमीरितम् ।
चूडोपनयने भूयो महानाम्ना महाव्रतम् ॥ १३९ ॥
तथोपनिषदं पश्चात् गोदानोद्वाहकौ मृतिः ।
शुभेषु स्युर्विवाहान्ताः क्रियास्ताः क्रूरकर्मसु ॥ १४० ॥

मरणान्ताः समुद्दिष्टा वह्नेरागमवेदिभिः ।
ततश्च पितरौ तस्य सम्पूज्याऽऽत्मनि योजयेत् ॥ १४१ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन (महानाम), समावर्त्तन, महाव्रत स्नान तथा उपनिषद के पश्चात् गोदान, उद्वाह और मृति—ये संस्कारों के नाम हैं। शुभ कार्यों में अग्नि का विवाहान्त संस्कार करे और क्रूरकर्म में अग्नि का मरणान्त संस्कार करे; ऐसा आगम शास्त्र के विद्वानों ने कहा है। इतने संस्कार कर लेने के पश्चात् आचार्य उन अग्नि के समक्ष माता-पिता की पूजाकर उस अग्नि को अपनी आत्मा में स्थापित करे ॥ १३८-१४१ ॥

समिधः पञ्च जुहुयादादाय घृतसंप्लुताः ।
मन्त्रैर्जिह्वाङ्गमूर्त्तीनां क्रमाद्वह्नेर्यथाविधि ॥ १४२ ॥

फिर पाँच समिधायें जो मूल से अग्र भाग तक घी में डुबोई गई हैं, उनका हवन करे। इसी प्रकार यथाविधि अग्नि की जिह्वा, उनके अङ्ग और उनकी मूर्त्तियों के प्रत्येक मन्त्र से आचार्य एक-एक आहुति प्रदान करे ॥ १४२ ॥

प्रत्येकं जुहुयादेकामाहुतिं मन्त्रवित्तमः ।
अवदाय स्त्रुवेणाऽऽज्यं चतुः स्त्रुचि पिधाय ताम् ॥ १४३ ॥
स्त्रुवेण तिष्ठन्नेवाग्नौ देशिको यतमानसः ।
जुहुयाद्वह्निमन्त्रेण वौषडन्तेन सम्पदे ॥ १४४ ॥
विघ्नेश्वरस्य मन्त्रेण जुहुयादाहुतीर्दश ।

पुनः आचार्य दत्तचित्त हो कर स्त्रुवा से चार बार घृत लेकर स्त्रुचा में स्थापित कर उस स्त्रुचा को स्त्रुवा से ढककर 'वौषट्' अन्त वाले अग्नि के मन्त्रों से हवन करे। इसके बाद महागणेश मन्त्र से पूर्व-पूर्व मिलाते हुये दश आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥ १४३-१४५ ॥

विघ्नराजमन्त्रोद्धारः

तारं रमा तथा मायां क्लीं ग्लौं तदनन्तरम् ॥ १४५ ॥
गं गणपतये वरवरदान्ते सर्वपदं जनम् ।
मे वशमानय प्रोच्य वह्निजाया ततः परम् ॥ १४६ ॥
कथितं विघ्नराजस्य मन्त्रराजं सुदुर्लभम् ।
सामान्यं सर्वदेवानामेतदग्निमुखं मतम् ॥ १४७ ॥

तार (ॐ), रमा (श्री), माया (ह्रीं), क्लीं, ग्लौं इसके बाद 'गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' यह विघ्नराज गणेश का अत्यन्त दुर्लभ महामन्त्र

बतलाया गया है । सभी सामान्य कर्म में इतना अग्निकार्य मुख्य रूप से होना चाहिये ॥ १४५-१४७ ॥

एकीकरणम्

ततः पीठं समभ्यर्च्य देवताया हुताशने ।
अर्चयेद्वह्निरूपां तां देवतामिष्टदायिनीम् ॥ १४८ ॥
तन्मुखे जुहुयान्मन्त्री पञ्चविंशतिसंख्यया ।
आज्येन मूलमन्त्रेण वह्न्यैकीकरणं त्विदम् ॥ १४९ ॥
वह्निदैवतयोरैक्यमात्मना सह भावयन् ।

इसके बाद अग्नि में प्रकृत देवता के पीठ का पूजन करना चाहिये । तदनन्तर इष्ट फल प्रदान करने वाले उस प्रकृत देवता का अग्नि रूप से पूजन कर मन्त्रज्ञ पच्चीस आहुति उनके मुख में प्रदान करे । इस प्रकार मूल मन्त्र से आज्य के द्वारा अग्नि का एकीकरण किया जाता है । तदनन्तर उस अग्नि एवं प्रकृत देवता का एकीकरण अपनी आत्मा में करे ॥ १४८-१५० ॥

नाडीसन्धानम्

मूलमन्त्रेण जुहुयादाज्यैरेकादशाऽऽहुतीः ॥ १५० ॥
नाडीसन्धानमुद्दिष्टमेतदागमवेदिभिः ।
जुहुयादङ्गमुख्यानामावृतीनामनुक्रमात् ॥ १५१ ॥
एकैकामाहुतिं सम्यक् सर्पिषा देशिकोत्तमः ।
त्रिमध्वक्तैस्तिलैर्मन्त्री हुनेज्जपदशांशतः ॥ १५२ ॥

फिर मूल मन्त्र से ग्यारह घृत की आहुति अग्नि में प्रदान करे । आगम शास्त्र के विद्वानों ने इसको 'नाडी संधान' की सञ्ज्ञा कहा है । तदनन्तर अनुक्रम से अग्नि के अङ्ग देवताओं और आवरण देवताओं के मूल मन्त्र से घी की एक-एक आहुति प्रदान करे । फिर त्रिमधु घी (मधु शर्करा) से मिश्रित तिल से जप का दशांश होम करे ॥ १५१-१५२ ॥

मुद्रा ज्ञेया च धीरेण पाणिहोमेषु सर्वदा ।
शूकरी करसङ्कोची हंसी मुक्तकनिष्ठिका ॥ १५३ ॥
कनिष्ठा तर्जनी मुक्ता मृगीति कथिता त्रिधा ।
अभिचारे च पुष्टौ च शान्त्यादौ च यथाक्रमात् ॥ १५४ ॥

पाणि होम में साधक मुद्रा का प्रदर्शन करे । पाणि के सङ्कोच करने से शूकरी, उसी में कनिष्ठा को हटा देने से हंसी तथा जिसमें कनिष्ठा तर्जनी का सम्बन्ध न हो उसे मृगी मुद्रा कहते हैं । अभिचार (मारण) में, शूकरी पुष्टिकर्म में

हंसी तथा शान्ति में मृगी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये ॥ १५३-१५४ ॥

रिक्तहस्तेन हवने फलाभावः

रिक्तहस्तेन यद्दानं हूयते च हुताशने ।
दातुः पुण्यफलं नास्ति होता च नरकं व्रजेत् ॥ १५५ ॥

रिक्त हस्त से जो दान दिया जाता है अथवा होम किया जाता है; उससे दाता को कोई फल नहीं होता है बल्कि इस प्रकार से होम करने वाले साधक को नरक प्राप्त होता है ॥ १५५ ॥

एवं ज्ञात्वा विशेषज्ञो होमं कुर्यात् प्रयत्नतः ।
आज्येन मधुना चैव शर्करा च मधुत्रयम् ॥ १५६ ॥

इतना विचार कर विशेषज्ञ प्रयत्नपूर्वक आज्य, मधु एवं शर्करा इन तीन मधुत्रय से होम करे ॥ १५६ ॥

द्रव्यैः पूर्वोदितैर्वापि होमयेत् संस्कृतेऽनले ।
स्वकल्पविहितैर्द्रव्यैः साधको यतमानसः ॥ १५७ ॥

अथवा पूर्व में कहे गये द्रव्यों से सुसंस्कृत अग्नि में होम करे । अथवा अपने सम्प्रदायानुसार विहित द्रव्यों से दत्तचित्त हो साधक होम करे ॥ १५७ ॥

जपसंख्यादशांशेन होमयेद्विधिपूर्वकम् ।
अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते ॥ १५८ ॥

जप संख्या के दशांश से विधिपूर्वक होम करे । जहाँ हवि पदार्थ नहीं कहा गया है वहाँ तिलमिश्रित घृत हवि समझना चाहिये ॥ १५८ ॥

छिन्नायाः कालिकायाश्च विशेषस्तन्यतेऽधुना ।
दिवा जपदशांशेन मधुरत्रयसंयुतम् ॥ १५९ ॥

अब छिन्नमस्ता तथा महाकाली की विशेषता कहता हूँ । दिन में किये गये जपों का दशांश मधुर त्रय (आज्य, मधु, शर्करा) संयुक्त तिल पुष्प फल अथवा जो हविष्यान्न प्राप्त हो, इनमें से किसी एक के द्वारा हवन करे ॥ १५९ ॥

हुत्वा संख्यां समाप्याथ रात्रिकल्पं समाचरेत् ।
योनिकुण्डे स्थिते सर्पिर्मांसमत्स्ययुतं भृशम् ॥ १६० ॥

उतनी संख्या द्वारा होम कर लेने के पश्चात् रात्रि कल्प में किये गये जप का विधान सम्पादित करे । इस प्रकार योनि कुण्ड में पर्याप्त मांस, मत्स्य युक्त घी का होम करे ॥ १६० ॥

काम्यकर्मवर्णनम्

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये सर्वशाक्तेषु सिद्धिदम् ।
मल्लिकाजातिपुन्नागैर्होमाद् भाग्योदयो भवेत् ॥ १६१ ॥

काम्यकर्म विधान—अब सभी शाक्त मत वालों के लिये काम्य कर्म का विधान कहता हूँ जो सिद्धि प्रदान करने वाले हैं । मल्लिका, जाती और पुन्नाग के होम से भाग्य की अभिवृद्धि होती है ॥ १६१ ॥

फलैर्विल्वसमुद्भूतैस्तत्पत्रैर्वा हुताद् भवेत् ।
राजपुत्त्रस्य राज्याप्तिः पङ्कजैः श्रियमाप्नुयात् ॥ १६२ ॥

बिल्व फल के होम से तथा बिल्व पत्र के होम से राजपुत्र को राज्य की प्राप्ति होती है और कमलपुष्प के होम से श्री की प्राप्ति होती है ॥ १६२ ॥

उत्पलैर्वशयेद्विश्वं लक्ष्मीं पुष्पैस्तथा नरः ।
बन्धूकपुष्पैर्वकुलैर्जवोत्थैः किंशुकोद्भवैः ॥ १६३ ॥
वश्याय जुहुयान्मन्त्री मधुना सह सिद्धये ।
लवणैर्मधुरोपेतैर्हुत्वा कर्षति सुन्दरीम् ॥ १६४ ॥

उत्पल के होम से विश्व वशीभूत हो जाता है तथा पुष्प के होम से लक्ष्मी प्राप्त होती है । बन्धूक पुष्प, वकुलपुष्प, जवापुष्प, पलाश पुष्प को मधु के साथ मिलाकर मन्त्रज्ञ वशीकरण के लिये होम करे । त्रिमधु युक्त लवण के होम से सुन्दरी स्त्रियाँ आकृष्ट होती हैं ॥ १६३-१६४ ॥

वञ्जुलस्य समिद्धोमात् वृष्टिं वितनुतेऽचिरात् ।
क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमो नाशयति ज्वरम् ॥ १६५ ॥
दूर्वाभिरायुराप्नोति कदम्बैर्वश्यमाप्नुयात् ।
राजीलवण होमेन शत्रून मारयतेऽचिरात् ॥ १६६ ॥

वञ्जुल (वेंत) की समिधा के होम से स्वल्पकाल में वृष्टि होती है । दूध में डुबोये गये अमृता (गुरुच) के टुकड़ों से होम करने पर ज्वर नष्ट होता है । दूर्वा के होम से आयु की प्राप्ति, कदम्ब से वशीकरण, राजी (राई) मिश्रित लवण का होम निश्चय ही शत्रु का विनाश करता है ॥ १६५-१६६ ॥

अन्नेन मधुयुक्तेन निर्धनो धनमाप्नुयात् ।
सर्वं त्रिमधुरोपेतं होमद्रव्यमुदाहृतम् ॥ १६७ ॥

त्रिमधुयुक्त अन्न के होम से निर्धन को धन प्राप्त होता है । ऊपर जितने भी द्रव्य कहे गये हैं उनमें त्रिमधु अवश्य मिलाना चाहिये ॥ १६७ ॥

नन्द्यावर्त्तभवैः पुष्पैर्होमाद्वाग्मी भवेन्नरः ।
बिल्वप्रसूनैर्जुहुयादीप्सितां श्रियमाप्नुयात् ॥ १६८ ॥

नन्द्यावर्त्त के पुष्प से होम करने पर मनुष्य वाग्मी होता है । बिल्व के फूल से होम करने पर अभीष्ट लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥ १६८ ॥

पलाशकुसुमैर्होमात्तेजस्वी जायते नरः ।
चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कमादिभिः ॥ १६९ ॥
वश्याय जुहुयान्मन्त्री वशयेदखिलं जगत् ।
निर्गुण्डीमूलहोमेन निगडान्मुच्यते नरः ॥ १७० ॥

पलाश पुष्प के होम से मनुष्य तेजस्वी होता है, चन्दन, अगुरु, कपूर, रोचना और कुङ्कुम का होम वशीकरण के लिये करे तो वह सारे जगत् को वश में कर लेता है । निर्गुण्डी के मूल के होम से साधक मनुष्य निगड (जेलखाना) से छूट जाता है ॥ १६९-१७० ॥

निम्बतैलान्वितैर्लोणैर्होमः शत्रुविनाशनः ।
हरिद्राचूर्णसंमिश्रैर्लवणैः स्तम्भयेत् परान् ॥ १७१ ॥

तैल संयुक्त निम्ब और लवण के होम से शत्रु नष्ट होते हैं, हरदी के चूर्ण से मिश्रित लवण के होम से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है ॥ १७१ ॥

रसवद्भिः फलैः पक्वैः पुष्पैः परिमलान्वितैः ।
हुत्वा सम्यगवाप्नोति साधकः सर्वमीप्सितम् ॥ १७२ ॥

रस युक्त पके हुये फलो तथा सुगन्ध युक्त पुष्पों के होम से साधक अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त करता है ॥ १७२ ॥

मालतीपुष्पहोमेन वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् ।
वशयेद्वचहोमेन नरान्नरपतीनपि ॥ १७३ ॥

मालती पुष्प के होम से वाग्मी तथा द्रुत कवि होता है । वचा के होम से मनुष्यों की बात क्या राजा को भी वश में कर लेता है ॥ १७३ ॥

पद्मैर्हुत्वा जयेत् शत्रून् दूर्वाभिः शान्तिमाप्नुयात् ।
पलाशकुसुमैः पुष्टिं धनं धान्यं श्रियं लभेत् ॥ १७४ ॥

कमल पुष्प के होम करने से शत्रु पर विजय तथा दूर्वा के होम से शान्ति प्राप्त होती है । पलाश पुष्प के होम से पुष्टि, धन-धान्य तथा श्रीसमृद्धि की प्राप्ति होती है ॥ १७४ ॥

शशकस्य तु मांसेन मधुना लोढितेन च ।
हुत्वा हेममवाप्नोति वित्तविद्यावरस्त्रियः ॥ १७५ ॥

मधु से विलोडित शशक (खरगोश) के मांस के होम से सुवर्ण, वित्त, विद्या एवं उत्तमोत्तम स्त्री की प्राप्ति होती है ॥ १७५ ॥

काकपक्षैः कृते होमे विद्वेषं तनुते नृणाम् ।
मरीचहोमैर्मरणं रिपुराप्नोति निश्चितम् ॥ १७६ ॥

काक पक्ष के होम से मनुष्यों में विद्वेष होता है । मरीच के होम से निश्चित रूप से शत्रु का मरण हो जाता है ॥ १७६ ॥

अयुतं वटवृक्षोत्थैः संशुद्धिरर्चितेऽनले ।
होमं समिद्वरैः कुर्यान्नाशयत्यापदां कुलम् ॥ १७७ ॥

वट वृक्ष की श्रेष्ठ दश हजार समिधाओं द्वारा सुसंस्कृत अग्नि में होम करने से समस्त आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और आत्मशुद्धि होती है ॥ १७७ ॥

अपामार्गसमिद्भिर्वा तिलैर्वा काननोद्भवैः ।
व्रीहिभिर्जुहुयाद्धीरो वत्सरात् व्रीहिमान् भवेत् ॥ १७८ ॥

अपामार्ग की समिधा से अथवा बन में उत्पन्न होने वाली तिल (जर्तिला) से अथवा धान के होम से मनुष्य एक वर्ष के भीतर बहुत धन धान्य से समृद्ध हो जाता है ॥ १७८ ॥

दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्मधुना वत्सराद् भवेत् ।
आरग्वधैःसमृद्धिः स्यादाज्येन लभते धनम् ॥ १७९ ॥

मधु युक्त दूर्वा के होम से मात्र एक वर्ष में दीर्घायु की प्राप्ति होती है । घृत संयुक्त आरग्वध के होम से समृद्धि की प्राप्ति निश्चित है ॥ १७९ ॥

गोदुग्धेन गवां वृद्धिमाप्नुयान्नात्र संशयः ।
काम्यहोमं सदा धीरः कुर्यादयुतसंख्यया ॥ १८० ॥

गोदुग्ध से हवन करने पर गायों की वृद्धि होती है इसमें संशय नहीं । धीर पुरुष काम्य होम दश हजार की संख्या में करे ॥ १८० ॥

लतापुष्पान्वितं कृत्वा पर्णानां शतकं सुधीः ।
तानि संमन्त्र्य विधिवदसकृत् साधकोत्तमः ॥ १८१ ॥
ततो वै होमयेत्तानि संस्कृतेऽग्नौ यथाविधि ।
युगानामयुतं तेन पूजनं जायते तथा ॥ १८२ ॥

अनेन क्रमयोगेन यश्चरेद् भुवि साधकः ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १८३ ॥

सौ पत्तों को (आरग्वध की) लता के फूले हुये पुष्पों से गूँथ कर उन्हें अनेक बार मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उत्तम साधक संस्कृत अग्नि में विधि के अनुसार हवन करे । इतने मात्र से उसे दश हजार युगों के पूजा का फल प्राप्त हो जाता है। इस क्रम से वह समस्त पृथ्वी पर विचरण करे तो तीनों लोकों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो दुर्लभ हो ॥ १८१-१८३ ॥

वीरो भवति वाग्मीकः सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।
हुनेदाज्येन तक्रेण मांसेन रुधिरेण च ॥ १८४ ॥
रक्तपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ।
आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात् सुधीः ॥ १८५ ॥

तक्र, मांस, रुधिर घृत मिश्रित तथा रुधिर मिश्रित रक्त पुष्प से एवं आमिषादि से सुधी साधक श्मशान में होम करे तब वह वीर वाग्मी हो जाता है और उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ १८४-१८५ ॥

मांसं रक्तं तिलं केशं नखं भक्तञ्च पायसम् ।
आज्यं चैव विशेषेण जुहुयात् सर्वसिद्धये ॥ १८६ ॥
एवं कृतेन सर्वत्र लभते सिद्धिमुत्तमाम् ।
यत् यत् कामयते कामं तत्तदाप्नोति निश्चितम् ॥ १८७ ॥

साधक सभी सिद्धियों के लिये मांस, रक्त, तिल, केश, नख, भात, पायस और विशेष रूप से आज्य मिलाकर हवन करे । ऐसा करने से सर्वत्र उसे सिद्धि प्राप्त होती है । इतना ही नही वह जो जो भी अभिलाषा करता है वह सब निश्चित रूप से पूर्ण हो जाती है । १८६-१८७ ॥

देववन्मानुषो भूत्वा भुनक्ति बहुलं सुखम् ।
योनिकुण्डे हुनेद्विद्वान् यथावत् साधितेऽनले ॥ १८८ ॥
हविषा चैव भक्तेन मांसेन रुधिरेण च ।
रक्तचन्दनपुष्पेण कृष्णेन च विशेषतः ॥ १८९ ॥
श्मशाने जुहुयान्मन्त्री शुद्धामिक्षाभिरप्यथ ।
धने धनेश्वरो भूयादाज्ञया च शचीपतिः ॥ १९० ॥
बलेन पवनो भूत्वा देववद्विचरेद् भुवि ।

वह मनुष्य होकर भी देवता के समान हो जाता है समस्त सुखों का उपभोग करता है विद्वान् साधक या योनिकुण्ड की सुसंस्कृत अग्नि में विधि के अनुसार

हविः, भात, मांस और रुधिर से रक्त चन्दन से विशेषकर काले पुष्प से शुद्ध आमिक्षा से श्मशानाग्नि में होम करे तो वह धन में धनेश्वर (कुबेर) के समान हो जाता है और आज्ञा में साक्षात् इन्द्र के समान हो जाता है तथा वह पुरुष बल में वायु के समान होकर पृथ्वी में विचरण करता है ॥ १८८-१९० ॥

अथ ध्यात्वा चरेद्धोमं दधिसिद्धान्नतण्डुलैः ॥ १९१ ॥
सहस्रैकविधानेन समस्तफलसिद्धये ।
विद्याकामेन होतव्यं शर्करायुतपायसैः ॥ १९२ ॥

महाभगवती का ध्यान कर सभी सिद्धियों के लिये दधि, पक्वान्न एवं अक्षत से विधानपूर्वक एक सहस्र हवन करे । विद्या चाहने वाला शर्करायुक्त पायस (खीर) से होम करे ॥ १९१-१९२ ॥

मलनाश्यं भवत्येव सद्यो विद्याचतुर्दश ।
रजस्वलाया वस्त्रेण मधुना सह सर्पिषा ॥ १९३ ॥
अयुतैकं विधानेन सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।

ऐसा करने से उस साधक के पाप दूर हो जाते हैं और तत्क्षण चतुर्दश विद्या उसको प्राप्त हो जाती है । रजःस्वला के वस्त्र में यदि मधु और घृत मिलाकर दश हजार की संख्या में होम करे तो निश्चय ही मन्त्री साधक को समस्त सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १९३-१९४ ॥

सद्योमार्जारमांसेन घृतेन मधुना सह ॥ १९४ ॥
चाण्डालकेशयुक्तेन सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
बन्धूककुसुमैर्होमं कृत्वा रक्तान्वितैर्ध्रुवम् ॥ १९५ ॥
दुर्भगाया भवेद् भाग्यं सर्वसिद्धिर्न संशयः ।

टटके विलाव के मांस में घृत और मधु मिलाकर चाण्डाल के केश के साथ होम करे तो सब सिद्धि हो जाती है इसमें संशय नहीं । रुधिर मिश्रित बन्धूक के पुष्पों से होम करने पर दुर्भाग्य युक्त मानव का भी भाग्य जाग जाता है और उसे सब सिद्धि प्राप्त होती है इसमें संशय नहीं ॥ १९४-१९६ ॥

रम्भापुष्पं शालमत्स्यं जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ॥ १९६ ॥
सर्वसिद्धिमनुप्राप्य अन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।
साक्षतं विल्वपत्रञ्च जुहुयाच्च सहस्रकम् ॥ १९७ ॥
लभते मञ्जुलां वाणीं महाष्टम्यां विशेषतः ।
एवं ज्ञात्वा प्रकुर्वीत द्रव्यमानमथोच्यते ॥ १९८ ॥

यदि मन्त्रवेत्ता साधक केला का पुष्प, शाल और मत्स्य का होम करे तो वह

समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है । अक्षत सहित बिल्वपत्र से यदि एक हजार की संख्या में होम करे तो उस साधक की वाणी अत्यन्त मीठी हो जाती है । विशेषकर महाष्टमी के दिन यह कार्य प्रशस्त बतलाया गया है । साधक ऐसा समझ कर उक्त सारा कार्य करे । अब यहाँ होम के लिये द्रव्य का परिमाण कहते हैं ॥ १९६-१९८ ॥

होमद्रव्यादिमानम्

कर्षमानं घृतं 'होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् ।
पञ्चगव्यञ्च तत्संख्यं भवेन्मधु तथा समम् ॥ १९९ ॥

हवन सामग्री का परिमाण—होम में कर्ष परिमाण का घृत तथा शुक्ति की मात्रा में दूध कहा गया है इसी प्रकार उतनी ही मात्रा में पञ्चगव्य तथा मधु भी प्रदान करना चाहिये ॥ १९९ ॥

दुग्धान्नमक्षसदृशं दधि प्रसृतिमानकम् ।
लाजा मुष्टिमिता ज्ञेया पृथुकं शुक्तिमेव च ॥ २०० ॥

दूध में पकाया गया अन्न अक्ष (कवलगट्टा) की मात्रा में होना चाहिये । दही एक पसर की मात्रा में होना चाहिये, लावा का परिमाण मुष्टि तथा पृथुक (चिउड़ा) का परिमाण एक शुक्ति भर होना चाहिये ॥ २०० ॥

गुडं पलार्धमानं स्यात् शर्कराऽपि तथा समा ।
मत्स्यं मांसं तथा ज्ञेयं रुधिरं शुक्तिमात्रकम् ॥ २०१ ॥

गुड़ की मात्रा आधा पल, उतनी ही मात्रा में शर्करा भी देना चाहिये । मत्स्य मांस तथा रुधिर एक शुक्ति मात्रा देना चाहिये ॥ २०१ ॥

ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षु पर्वावधि स्मृतम् ।
एकैकपत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत् ॥ २०२ ॥

चरु (खीर) की मात्रा आधा ग्रास, इक्षु पर्व (गाँठ) की मात्रा में और पत्र, पुष्प तथा अपूप एक संख्या में देना चाहिये ॥ २०२ ॥

कदलीफलनारङ्गफलान्येकैकशो विदुः ।
मातुलुङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा भवेत् ॥ २०३ ॥

केला फल और नारङ्गी फल एक एक कहा गया है किन्तु मातुलुङ्ग का चार खण्ड तथा पनस (कटहल) दश भाग कर आहुति देनी चाहिये ॥ २०३ ॥

अष्टधा नारिकेलञ्च मालूरञ्च त्रिधा भवेत् ।
कपित्थञ्च त्रिधा ज्ञेयं ऊर्वारुकं त्रिधा भवेत् ॥ २०४ ॥

नारिकेल आठ भाग में तथा बिल्व तीन भाग में, कपित्थ भी तीन ही भाग में ऊर्वारुक (कर्कटी) भी तीन भाग में करके देना चाहिये ॥ २०४ ॥

फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ।
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडुचो चतुरङ्गुला ॥ २०५ ॥

अन्य फल बिना खण्ड किये ही देवे । होम की समिधा दश अङ्गुल की होनी चाहिये । दूर्वा तीन की संख्या में तीन अङ्गुल की तथा गुडूची चार अङ्गुल की होनी चाहिये ॥ २०५ ॥

व्रीहयो मुष्टिमानाः स्युर्मुद्गमाषयवा अपि ।
तण्डुलाः स्युस्तदर्धञ्च अथवा मुष्टिसम्मिताः ॥ २०६ ॥

ब्रीहि का परिमाण एक मुट्ठी, इसी प्रकार मूग, माष और यव भी एक मुट्ठी परिमाण में होना चाहिये । चावल उसका आधा अथवा उसे भी एक मुट्ठी मात्रा में होम करना चाहिये ॥ २०६ ॥

गोधूमा रक्तकलभा मुष्टिमानास्तिलास्तथा ।
मुष्टिमानाः सर्षपाश्च लवणं शुक्तिमानकम् ॥ २०७ ॥

विद्वानों द्वारा गो धूम (गेहूँ), रक्त, कलभ (शालिधान्य) और तिल एक मुट्ठी परिमाण में कहे गये हैं । सर्षप (सरसों) भी एक मुष्टि मात्रा में तथा एक शुक्ति ही कहा गया है ॥ २०७ ॥

मरीचानि च विंशतिः पुरं बदरसंमितम् ।
रामठं तत्समं ज्ञेयं रोचना तत्समा भवेत् ॥ २०८ ॥

मरीच बीस संख्या में, पुर (गुग्गुल) बैर की मात्रा में, रामठ (हींग) तथा रोचना (हल्दी) भी उतनी ही मात्रा में देनी चाहिये ॥ २०८ ॥

चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च ।
तिन्तिडीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः ॥ २०९ ॥

चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, कुङ्कुम का परिमाण इमली के बीज की मात्रा में आचार्यों ने बतलाया है ॥ २०९ ॥

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु देशिकः ।
शयानमाज्यहोमेषु निषण्णः शेषवस्तुषु ॥ २१० ॥

आचार्य समिधा का होम करते समय उसमें अग्नि की स्थिति का ध्यान करे । घी की आहुति में उन्हें सोते हुये तथा शेष वस्तुओं के होम में उन्हें बैठा हुआ ध्यान करे ॥ २१० ॥

आस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेर्विपश्चित् सर्वकर्मसु ।
ज्वलत् शिखा मुखं वह्नेर्बोद्धव्यं साधकोत्तमैः ॥ २११ ॥

विद्वान् को सभी कामों में अग्नि के मुख में ही होम करना चाहिये । शिखा पर्यन्त जलते रहना अग्नि का मुख कहा गया है ॥ २११ ॥

वह्निवर्णादिभेदतः शुभाशुभकथनम्

शुभाशुभं तथा ज्ञेयं वह्नेर्वर्णादिभेदतः ।
स्वर्णसिन्दूरवालार्ककुङ्कमक्षौद्रसन्निभः ॥ २१२ ॥
सुवर्णरितसो वर्णः शोभनः परिकीर्त्तितः ।
भेरीवारिदहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः ॥ २१३ ॥

अग्नि की ज्वाला एवं धूम का शुभाशुभ विचार—अग्नि के वर्ण का भेद देखकर शुभाशुभ का विचार करना चाहिये । यदि सुवर्ण सिन्दूर, उदीयमान सूर्य, कुङ्कुम तथा क्षौद्र (मधु) एवं सुवर्ण रेत (लाल) के समान अग्नि जलती हो तो शुभ है, इसी प्रकार नगाड़ा, बादल और हाथी के समान अग्नि का शब्द हो तो वह भी शुभावह है ॥ २१२-२१३ ॥

नागचम्पकपुन्नागपाटलायुथिकानिभः ।
पद्मेन्दीवरकल्हारसर्पिर्गुग्गुलसन्निभः ॥ २१४ ॥
पावकस्य शुभो गन्ध इत्युक्तस्तन्त्रवेदिभिः ।
प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाःसुप्रभाः शिखिनः शिखाः ॥ २१५ ॥
शुभदाः साधकानां तु अन्यथाऽनिष्टदा भवेत् ।
कुन्देन्दुधवलो धूमो वह्नेः प्रोक्तः शुभावहः ॥ २१६ ॥

यदि नागकेशर, चम्पक, पुन्नाग, पाटल (गुलाब), यूथिका, कमल, इन्दीवर, कह्लार, घृत तथा गुग्गुल के समान अग्नि से गन्ध निकल रहा हो तो वह भी शुभावह है ऐसा तन्त्रवेत्ताओं ने कहा है । कम्पनरहित दाहिनी ओर ज्वाला जा रही हो तो साधक के लिये इष्टकारक है अन्यथा अनिष्ट समझना चाहिये । कुन्द तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल धूम वाली अग्नि शुभावह कही गई है ॥२१४-२१६॥

कृष्णवर्णो भवेद् धूमो मन्त्रिणं नाशयेद् ध्रुवम् ।
श्वेतो राष्ट्रं दहत्याशु वायसस्वरसन्निभः ॥ २१७ ॥

यदि अग्नि से काला वर्ण का धूम निकल रहा हो तो निश्चय ही वह मन्त्रज्ञ साधक को विनष्ट करेगा । कौवे के समान कर्कश स्वर करने वाला श्वेत धूआँ राष्ट्र को जला देने वाला होता है ॥ २१७ ॥

खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत् ।

पूतिगन्धो हुतभुजो होतुर्दुःखप्रदो भवेत् ॥ २१८ ॥

अग्नि के द्वारा गदहे के समान निकलने वाला शब्द सब कुछ नष्ट कर देता है और दुर्गन्ध युक्त अग्नि से निकलने वाला धुआँ हवनकर्त्ता साधक को दुःख प्रदान करता है ॥ २१८ ॥

छिन्नावर्त्ता शिखा कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम् ।
शुकपक्षिनिभो धूमः पारावतसमप्रभः ॥ २१९ ॥
हानिं तुरगजातीनां गवाञ्च कुरुतेऽचिरात् ।
एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय साधकः ॥ २२० ॥

बीच-बीच में कटी हुई ज्वाला वाली अग्नि मृत्यु प्रदान करती है और धन का विनाश करती है । तोते के पक्ष के समान हरित वर्ण तथा कपोत के समान निकलने वाला धूआँ घोड़ों तथा गौ को शीघ्रातिशीघ्र हानि प्रदान करता है । इस प्रकार अशुभ सङ्केत करने वाली अग्नि के ज्वाला का वर्ण, शब्द तथा धूआँ को देखकर साधक इस प्रकार का प्रायश्चित्त करे ॥ २१९-२२० ॥

प्रायश्चित्त निरूपणम्

मूलेनाऽऽज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतीः ।
स्वीयसंख्याविधानेन हुत्वाशेषं समाचरेत् ॥ २२१ ॥
स्रुचा पूर्णाहुतिं कृत्वा मूलमन्त्रेण देशिकः ।
उद्वास्य देवतां कुम्भे साङ्गावरणपूर्विकाम् ॥ २२२ ॥

साधक मूल मन्त्र पढ़कर घी से पच्चीस आहुति अग्नि में देवे । फिर मन्त्र के अक्षर की अथवा अपने नाम के अक्षर की जितनी संख्या हो उतनी आहुति देवे । फिर शेष द्रव्य को स्रुचा में भरकर मूल मन्त्र से पूर्णाहुति करे, फिर अङ्ग और आवरण सहित देवता को कुम्भ में उद्वासन करे ॥ २२१-२२२ ॥

पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा जिह्वादीनां विभावसोः ।
एकैकामाहुतिं हुत्वा परिषिच्यादि्भरात्मनि ॥ २२३ ॥

फिर व्याहृतियों से हवन कर अग्नि की जिह्वाओं को एक एक आहुति प्रदान कर अपने ऊपर जल छिड़के ॥ २२३ ॥

पावकं योजयित्वा स्वे परिधीन् सपरिस्तरान् ।
नैमित्तिके काम्यहोमे दहेत्तान्न तु नित्यके ॥ २२४ ॥

अग्नि का अपनी आत्मा में ध्यान कर पूर्वोक्त परिस्तरण एवं परिधियों को नैमित्तिक और काम्य होम में हवन कर देवे, किन्तु नित्यकर्म न करे ॥ २२४ ॥

काम्यतर्पणविधानम्

होमस्य विधिराख्यातस्तर्पणस्यापि कथ्यते ।
ततः सन्तर्पयेन्मन्त्री होमस्यापि दशांशतः ॥ २२५ ॥

यहाँ तक हमने होम का विधान कहा अब तर्पण का विधान कहता हूँ । होम के बाद मन्त्रज्ञ साधक होम की संख्या के दशांश से तर्पण करे ॥ २२५ ॥

तीर्थतोयेन दुग्धेन सर्पिषा सुरयाऽपि वा ।
गन्धोदकेन वा कुर्यात् सर्वत्र साधकोत्तमः ॥ २२६ ॥

यह तर्पण उत्तम साधक तीर्थ के जल से, दूध से, घृत से, अथवा मद्य से, अथवा गन्धोदक से सर्वत्र करे ॥ २२६ ॥

होमान्ते देवतायाश्च पीठं तोये विचिन्तयेत् ।
अथवा होमपात्रादौ यन्त्रं कृत्वा ततः परम् ॥ २२७ ॥
पूजयित्वा ततो देवीं परिवारगणान्विताम् ।
आदौ सन्तर्पयेद्यन्त्रे गुर्वादींस्तु यथाक्रमात् ॥ २२८ ॥

होम कर लेने के पश्चात् जल में देवता के पीठ का ध्यान करे अथवा होम पात्र में यन्त्र निर्माण करे । इसके बाद उस पर आवरण संहित देवी की पूजा कर सर्वप्रथम गुर्वादि का तर्पण करे ॥ २२७-२२८ ॥

एकैकमञ्जलिं कृत्वा सन्तर्प्य रश्मिवृदकम् ।
पूर्वद्रव्यैर्देवमुखे तर्पयेद्विधिना ततः ॥ २२९ ॥

तदनन्तर एक एक अञ्जलि से रश्मिवृन्दों का तर्पण कर पूर्व द्रव्यों से विधि के अनुसार देवमुख में तर्पण करे ॥ २२९ ॥

होमस्यापि दशांशेन तर्पणञ्च समाचरेत् ।
प्रसङ्गात् कथ्यते काम्यतर्पणञ्च विशेषतः ॥ २३० ॥

इस प्रकार होम का दशांश तर्पण करे । अब प्रसङ्ग वश काम्य तर्पण विशेष रूप से कहते हैं ॥ २३० ॥

इष्टदेवीं ततः पश्चात् यथोक्तसंख्यया बुधः ।
तर्पयित्वा महादेवीं काम्यतर्पणमाचरेत् ॥ २३१ ॥

फिर पूर्वोक्त संख्या में इष्टदेवी का तर्पण करे । महादेवी के तर्पण के पश्चात् काम्य तर्पण करे ॥ २३१ ॥

तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा ।
मज्जाभिश्च यथा तत्तत् स्वकीयेन कचेन च ॥ २३२ ॥

आकर्षितायाः कन्यायाः कुलप्रक्षालनेन च ।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ॥ २३३ ॥
मूषामार्जाररक्तेन . तर्पयेत् परदेवताम् ।
एवं तर्पणमात्रेण साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ २३४ ॥

रक्त धारा संयुक्त दूध से, मज्जा से तथा अपने केश से तर्पण करे अथवा आकर्षण से वश में रहने वाली कन्या के कुल (योनि) के प्रक्षालन से अथवा मेष या महिष के रक्त से, अथवा मूषक एवं मार्जार के रक्त से परदेवता का तर्पण करे। इस प्रकार उक्त विधान से तर्पण करने पर साधक सभी सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है ॥ २३२-२३४ ॥

कविता जायते तस्य द्राक्षारसपरम्परा ।
बृहस्पतिसमो भूत्वा देवीवद्भुवि मोदते ॥ २३५ ॥

उसकी कविता द्राक्षा रस के समान मधुर होती है, वह बृहस्पति के समान होकर देवताओं के समान पृथ्वी पर सुखी हो जाता है ॥ २३५ ॥

न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।
कालागुरुद्रवोपेतैर्वशयेज्जगतीमिमाम् ॥ २३६ ॥

उसको पाप पुण्य का फल नहीं लगता, वह निश्चय ही जीवन्मुक्त बन जाता है । कालागुरु के द्रव से तर्पण करने वाला इस सारे जगत् को अपने वश में कर लेता है ॥ २३६ ॥

सचन्दनेन तोयेन सौभाग्यं लभते नरः ।
तोयैःकुङ्कममिश्रैश्च स्तम्भयेदखिलं जगत् ॥ २३७ ॥

चन्दन युक्त जल के द्वारा तर्पण करने से मनुष्य अचल सौभाग्य प्राप्त करता है कुङ्कम मिश्रित जल से तर्पण करने वाला साधक समस्त जगत् को स्तम्भित कर देता है ॥ २३७ ॥

सितामिश्रिततोयेन बृहस्पतिसमो भवेत् ।
कर्पूराक्तजलेनैव कर्षयेदसुरानपि ॥ २३८ ॥

सिता (मिश्री) युक्त जल से तर्पण करने वाला बृहस्पति के समान वाग्मी हो जाता है । कर्पूर मिश्रित जल से तर्पण करने वाला असुरों को भी आकृष्ट कर लेता है ॥ २३८ ॥

रोचनायुततोयेन मुच्यते सर्वदुर्ग्रहात् ।
सर्वशास्त्रेषु कथितं तर्पणं शुभदायकम् ॥ २३९ ॥

रोचनायुक्त जल से तर्पण करने वाला सभी दुष्टग्रहों से मुक्त हो जाता है। यह तर्पण का कल्याणकारी विधान सभी शास्त्रों में कहा गया है ॥ २३९ ॥

उन्मुखीकालिकाविधानम्

उन्मुख्याः कालिकायाश्च रात्रिकल्पस्य साधकः ।
तर्पयेन्मदिराभिश्च मत्स्यमांसैः समं बुधः ॥ २४० ॥

रात्रि कल्प का साधन करने वाला विद्वान् साधक उन्मुखी एवं कालिका का तर्पण मदिरा, मत्स्य तथा मांस से करे ॥ २४० ॥

ततः सम्पूर्णसंख्यायां स्वकल्पोक्तप्रमाणतः ।
स्थापयेदात्महृत्पद्मे परिवारगणैः सह ॥ २४१ ॥

इस प्रकार अपने कल्प (=सम्प्रदाय) के प्रमाण से सम्पूर्ण संख्या में तर्पण करने वाला साधक अपने हृदय रूप कमल में परिवार समन्वित भगवती देवी का ध्यान करे ॥ २४१ ॥

देवताञ्च ततः पश्चात्तर्पणस्य दशांशतः ।
अभिषेकं प्रकुर्वीत गन्धतोयैः सुसाधकः ॥ २४२ ॥

इसके बाद तर्पण संख्या के दशांश से गन्ध जल द्वारा उत्तम साधक इष्ट देवता का अभिषेक करे ॥ २४२ ॥

गृहीत्वा गन्धतोयञ्च मुद्रया कुम्भसञ्ज्ञया ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य ततश्चाऽमुकदेवताम् ॥ २४३ ॥
अभिषिञ्चामि तत्पश्चात् हृन्मनुस्तदनन्तरम् ।
इत्युच्चार्य स्वमूर्ध्नि तं चिन्तयित्वा समन्त्रकम् ॥ २४४ ॥

कुम्भ नाम वाली मुद्रा से गन्ध जल लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'अमुक देवतामभिषिञ्चाभि नमः' इस मन्त्र का उच्चारण कर देवता का ध्यान कर अपने सिर पर जल छिड़के ॥ २४३-२४४ ॥

ततः सञ्चिन्तयेद् देवीं साङ्गावरणदेवताम् ।
क्षिपेत्तोयं यथासंख्यं गणान् सिञ्चेत्ततः परम् ॥ २४५ ॥
अभिषेकं स्वीयसंख्यं विधाय तदनन्तरम् ।
तत्तन्मन्त्रयुतान् विप्रान् भोजयेद् देवताधिया ॥ २४६ ॥

इस प्रकार अङ्ग और आवरण देवता सहित देवी का ध्यान करते हुये तर्पण का दशांश अभिषेक करे, उसके बाद गणों का अभिषेक करे। फिर अपनी संख्या के अनुसार तर्पण कर अभिषेक का दशांश ब्राह्मण भोजन करावे। उन ब्राह्मणों में

उन-उन मन्त्रों से युक्त देवता बुद्धि रखे ॥ २४५-२४६ ॥

विधिवत् पूजयित्वा च भोजयित्वा च साधकः ।
तत्तद्देवप्रियैर्द्रव्यैरभिषेकदशांशतः ॥ २४७ ॥

मन्त्री साधक उन ब्राह्मणों का विधिवत् पूजन करे, पश्चात् उन्हें भोजन करावे। उन ब्राह्मणों की संख्या तत्तद् द्रव्यप्रिय देवताओं के अभिषेक की संख्या का दशांश होना चाहिये ॥ २४७ ॥

छिन्नाकालिकायाः दिवाकल्पः

छिन्नायाः कालिकायाश्च दिवाकल्पस्य साधकः ।
तद्दशांशान् हविष्यान्नैः भोजयेद् भक्तिभावतः ॥ २४८ ॥

दिवा कल्प में छिन्नमस्तका तथा कालिका का उपासक दशांश होम, दशांश तर्पण, दशांश अभिषेक उसके भी दशांश संख्या में हविष्यान्न द्वारा ब्राह्मणों को भेजन करावे ॥ २४८ ॥

तत्तन्मन्त्वविदो विप्रान् रात्रिकल्पं समाचरेत् ।
हेतुं मांसञ्च मत्स्यञ्च चर्वणञ्च प्रदापयेत् ॥ २४९ ॥

अब रात्रिकल्प जिस प्रकार से करे, उसको कहता हूँ । तत्तन्मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणों को मद्य, मांस, मत्स्य और चर्वण प्रदान करे ॥ २४९ ॥

विप्रभोजनादिकथनम्

ब्राह्मणान् देवताबुद्ध्या भोजयित्वा च साधकः ।
सिद्धमन्त्री भवेत् सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ॥ २५० ॥

उन-उन ब्राह्मणो को देवता बुद्धि से भोजन कराने वाला साधक सिद्ध मन्त्र वाला हो जाता है इसमें संशय नहीं ॥ २५० ॥

जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम् ।
पञ्चाङ्गेयञ्च कथिता पुरस्क्रिया सुसिद्धये ॥ २५१ ॥

जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण भोजन—ये पाँच पुरश्चरण के अङ्ग हैं, जिन्हें मैने कह दिया ॥ २५१ ॥

(अथवा) **जपहोमतर्पणञ्चाऽभिषेकोऽप्यघमर्षणम् ।**
सूर्यार्घ्यं जलपानञ्च प्रणामं चैव पूजनम् ॥ २५२ ॥
ब्राह्मणानां भोजनञ्च दशाङ्गेयं पुरस्क्रिया ।
तत्तत्कर्मदशांशेन कुर्याद्धोमादिकं बुधः ॥ २५३ ॥

अथवा जप, होम, तर्पण, अभिषेक, अघमर्षण, सूर्यार्घ्य, जलपान, प्रणाम, पूजन और ब्राह्मण भोजन—ये पुरश्चरण के दश प्रकार हैं । इसमें भी जपादि का दशांश होम, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश अभिषेक इत्यादि तत्तद्दशांश कर्म करना चाहिये ॥ २५२-२५३ ॥

अघमर्षणं दिनेशार्घ्यं कृत्वा पूर्वविधानतः ।
रव्यर्घ्यस्य दशांशेन जलपानं समाचरेत् ॥ २५४ ॥

इसमें अघमर्षण और सूर्यार्घ्य पूर्व की भाँति विधानपूर्वक सम्पादन कर सूर्यार्घ्य का दशांश जलपान करे ॥ २५४ ॥

आत्मानं देवतारूपं विभाव्य यतमानसः ।
दक्षहस्ते जलं नीत्वा मूलान्तेऽमुकदेवताम् ॥ २५५ ॥
पाययामि नमः पश्चात् स्ववक्त्रैस्तत् पिबेत्ततः ।
तत्संख्याञ्च समाप्याऽथ मूलान्ते स्वीयदेवताम् ॥ २५६ ॥
नमामीति नमस्कुर्याज्जलपानदशांशतः ।
पूजनञ्च ततः कुर्यात् यथाविधिविधानतः ॥ २५७ ॥

साधक स्थिरचित्त हो स्वयं अपने को देवतारूप में भावना कर दाहिने हाथ में जल लेकर मूलमन्त्र पढ़कर, फिर 'अमुकदेवतां पाययामि नमः' इस मन्त्र को पढ़कर स्वयं अपने मुख से उस समर्पित जल को पी जावे । इस प्रकार जलपान की संख्या समाप्त कर मूल मन्त्र पढ़कर 'स्वीय देवतां नमामि' कहकर जलपान के दशांश की संख्या में नमस्कार करे । इसके बाद सम्प्रदायानुसार विधानपूर्वक यथाविधि पूजन करे ॥ २५५-२५७ ॥

विप्राणां भोजनं कुर्यान्नमस्कारदशांशतः ।
विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद् यतः ॥ २५८ ॥

भोजन करने वाले ब्राह्मणों की संख्या, नमस्कार की संख्या का दशांश होना चाहिये । ब्राह्मणों के भोजन कराने मात्र से कार्य में होने वाली समस्त त्रुटियाँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ २५८ ॥

अथवा तद्दिने कुर्यात्तत्तज्जपदशांशतः ।
द्विजादीनाञ्च वर्णानां विधिः प्रोक्तः शुभावहः ॥ २५९ ॥

अथवा अभाव में उसी दिन, जप का दशांश, पुनः जप, उसका भी दशांश, पुनः जप, उसका भी दशांश जप और उसका भी दशांश, फिर उसका भी दशांश जप करे । इस प्रकार हमने समस्त द्विजाति मात्र के लिये पुरश्चरण की शुभावह विधि कही ॥ २५९ ॥

होमकर्माद्यशक्तानां द्विगुणो जप ईरितः ।
इतरेषाञ्च वर्णानां त्रिगुणादिसमीरितः ॥ २६० ॥

अथवा जो होम कर्म में अशक्त हैं, वे केवल जप की संख्या के दशांश संख्या वाले किये जाने वाले होमादि के स्थान में मात्र होम का द्विगुणित जप करे। यह विधान ब्राह्मणों के लिये कहा गया है । इतर वर्ण होम की संख्या का त्रिगुणित जप करे ॥ २६० ॥

कुत्रापि यदि हीनं स्याद्दशकस्याऽङ्गकर्मणि ।
तत्तद्दशैव कार्याणि दशशून्यं न कारयेत् ॥ २६१ ॥

यदि इस दशांश अङ्ग वाले होमादि कार्य में कहीं से त्रुटि हो गई हो, तो उसे पुनः दशांश में ही करे । दशांश से शून्य जपादि न करे ॥ २६१ ॥

ततः सम्पूजयेद् भक्त्या सम्भारैर्विविधैर्गुरुम् ।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् मन्त्राणाञ्च विशुद्धये ॥ २६२ ॥
गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा प्रदापयेत् ।
तत्तदभावतो मन्त्री कुलीनाय कुलाय वा ॥ २६३ ॥
दत्त्वा च साधकश्रेष्ठो महापूजां समापयेत् ।
तत्तत्कल्पसमाचारान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥ २६४ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
त्रयोदशोल्लासः ॥ १३ ॥

इस प्रकार पुरश्चरण समाप्त कर शिष्य अनेक प्रकार की सामग्रियों से गुरु का पूजन करे । मन्त्र की शुद्धि के लिये गुरु को दक्षिणा देवे । यह दक्षिणा गुरु को ही देवे । उनके अभाव में गुरु के पुत्र को दे । उनके अभाव में गुरु की पत्नी को देवे । उनके अभाव में कौलमार्ग वाले किसी सिद्ध कौल को देवे । इस प्रकार दक्षिणा देने के अनन्तर महापूजा समाप्त करे । इस प्रकार तत् तत् सम्प्रदायानुसार आचरण करने से मन्त्रसिद्धि हो जाती है ॥ २६२-२६४ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के त्रयोदश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १३ ॥

चतुर्दश उल्लासः

पुरश्चरणनिरूपणम्

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
श्मशाने तु पुरश्चर्या कथिता भुवि दुर्लभा ॥ १ ॥

अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण किया जाता है । श्मशान भूमि में जो पुरश्चरण किया जाता है वह पृथ्वी में दुर्लभ है ॥ १. ॥

सर्वमन्त्रसाधकानां श्मशानसाधनेऽधिकारिता

वैष्णवे गाणपत्ये च शैवे चैवाऽन्यमन्त्रके ।
शाक्ते चैव विशेषेण साधयेत् साधकोत्तमः ॥ २ ॥

वैष्णव, गाणपत्य, शैव, अन्य मन्त्र (=सम्प्रदाय) वाले तथा शक्ति वाले स्थानों में भी उत्तम साधक पुरश्चरण की सिद्धि करे ॥ २ ॥

श्मशानसाधनविधानम्

भौमवारे तमिस्रायां यामे याते च साधकः ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ ३ ॥
कृष्णपक्षे विशेषेण साधयेदनया हितम् ।
अक्षालितचितायां तु साधको निर्भयः सुधीः ॥ ४ ॥

दोनों पक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी की तिथि में मङ्गलवार को एक प्रहर रात्रि बीत जाने पर, घोर अन्धकार में, विशेषकर कृष्णपक्ष में, साधक अक्षालित (नही धोई गई) चिता में पुरश्चरण द्वारा सिद्धि प्राप्त करने के लिये निर्भय होकर श्मशान में जाए ॥ ३-४ ॥

सामिषान्नं गुडं छागं सुरापिष्टकपायसम् ।
नानाफलञ्च नैवेद्यं स्वकल्पोक्तेन साधितम् ॥ ५ ॥
पुष्पादिकं समानीय सुहृद्भिः शस्त्रपाणिभिः ।
समानगुणसम्पन्नैः साधको वीतभीः स्वयम् ॥ ६ ॥

अपने कल्प के अनुसार मांस सहित अन्न, गुड़, बकरा, मद्य, अपूप, पायस अनेक प्रकार के फल नैवेद्य एवं पुष्पादि सामग्री से युक्त तथा अपने समान गुण वाले शस्त्र हाथों में लिये, सुहृदों के साथ साधक स्वयं भी निर्भय होकर श्मशान में जावे ॥ ५-६ ॥

भीतश्चेत् साधकस्तत्र चतुर्दिक्षु च साधकाः ।
नो चेत् स्वयं केवलोऽसौ भैरवः परिकीर्त्तितः ॥ ७ ॥

यदि उसे डर लगता हो तो अपने चारों ओर साधकों के साथ जावे, अन्यथा स्वयं भैरव बनकर जावे ॥ ७ ॥

वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्भूषितः पूर्वसम्मुखः ।
चितायाः पश्चिमे भागे उपविश्य स्थिरः शुचिः ॥ ८ ॥
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षणं यागभूमिषु ।
गुरुपादरजो ध्यात्वा वामपादपुरःसरः ॥ ९ ॥
गणेशं वटुकं चैव योगिनीं मातृकास्तथा ।
विधिवत् पूजयित्वा तु पुटाञ्जलिः पठेदिमम् ॥ १० ॥

वस्त्र अलङ्कार भूषणों को धारण किये हुये, पूर्वाभिमुख हो, चिता के पश्चिम भाग में पवित्र होकर स्थिरता के साथ बैठे । मूल मन्त्र सहित अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) इस मन्त्र से यागभूमि का प्रोक्षण करे । फिर गुरु के चरण कमलों की धूलि का ध्यान कर अपना बायें पैर आगे निकाल कर गणेश, बटुक, योगिनी तथा मातृकाओं का विधिवत् पूजन पुष्पाञ्जलि लेकर करे ॥ ८-१० ॥

आत्मरक्षामन्त्रः

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः ।
पिशाचयक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ११ ॥
योगिन्यो मातरो भूता सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः ।
सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः ॥ १२ ॥
प्रणम्येति चितामध्ये पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत् ।
श्मशानाधिपतिं पश्चाद् भैरवं कालभैरवम् ॥ १३ ॥
महाकालं यजेद्यत्नात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये ।
पाद्यादिभिश्च मन्त्रज्ञो बलिं पश्चान्निवेदयेत् ॥ १४ ॥

'ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः, पिशाचयक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणा, योगिन्यो मातरो भूता सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः, सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर प्रणाम करते हुये चिता के मध्य में तीन

पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । फिर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से श्मशानाधिपति इसके बाद भैरव, फिर काल भैरव, तदनन्तर महाकाल का प्रयत्नपूर्वक यजन करे । फिर मन्त्रज्ञ साधक पाद्यादि निवेदन कर उन्हें बलि समर्पित करे ॥ ११-१४ ॥

बलिप्रदानम्

प्रणवं कूर्चबीजं तु श्मशानाधिप तत्परम् ।
इममन्ते सामिषान्नं बलिं गृह्णद्वयं वदेत् ॥ १५ ॥
गृह्णापय द्वयं विघ्ननिवारणं ततः कुरु ।
सिद्धिं मे च प्रयच्छाऽन्ते स्वाहान्तेऽपि बलिं दिशेत्॥ १६ ॥
दुग्धेनाप्युत्सृजेद्वापि पञ्चगव्येन वा तथा ।

प्रणव (ॐ), कूर्चबीज (हुं), फिर 'श्मशानाधिप फिर 'इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्न निवारणं कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा'—इस मन्त्र से बलि प्रदान करे और दूध अथवा पञ्चगव्य का उत्सर्जन करे ॥ १५-१७ ॥

भैरवभयानकात् पूर्वं मायाबीजं पठेत् सुधीः ॥ १७ ॥
पूर्ववद्बलिमुद्धृत्य दक्षिणे बलिमाहरेत् ।
कूर्चान्ते कालशब्दान्ते भैरवेति ततः परम् ॥ १८ ॥
श्मशानाधिपतये पूर्वपश्चिमे बलिमाहरेत् ।
हूमन्ते च महाकाल पूर्ववदुत्तरे हरेत् ॥ १९ ॥

'ह्रीं भैरवभयानक ! बलिं गृहाण' इस मन्त्र से पात्र से बलि निकाल कर श्मशान के दक्षिण दिशा में बलि देवे । कूर्च (हूं) इसके बाद 'कालभैरव श्मशानाधिपतये बलिं समर्पयामि' इस मन्त्र से श्मशान के पूर्व तथा पश्चिम में बलि देवे । फिर 'हूं महाकालबलिं समर्पयामि' इस मन्त्र से साधक उत्तर दिशा में बलि देवे ॥ १७-१९ ॥

चितामध्ये ततो दत्त्वा बलित्रयमनुत्तमम् ।
कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने ॥ २० ॥
गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ।
कालकायै बलिं दत्त्वा भूतनाथाय दापयेत् ॥ २१ ॥

इसके बाद साधक चिता के मध्य में तीन बार बलि प्रदान कर 'कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने, गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर कालिका को बलि प्रदान करे । फिर साधक भूतनाथ को इस प्रकार बलि देवे ॥ २०-२१ ॥

हूमन्ते भूतनाथान्ते श्मशानाधिप इत्यपि ।

प्रणवाद्येन मनुना दापयेद्बलिमुत्तमम् ॥ २२ ॥

'ॐ हूं भूतनाथश्मशानाधितये बलिं समर्पयामि' इस मन्त्र को पढ़कर भूतनाथ को उत्तम बलि प्रदान करे ॥ २२ ॥

कूर्चं सर्वगणनाथाधिपतये ततो वदेत् ।
श्मशानमस्तकेचैव बलिं पूर्ववदाहरेत् ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर '(ॐ) कूर्च (हूं) सर्वगणनाथाधिपतये बलिं समर्पयामि' इस मन्त्र से श्मशान के मस्तक पर पूर्ववत् बलि प्रदान करे ॥ २३ ॥

ताराद्येन बलिं दत्त्वा पञ्चगव्येन चैव हि ।
अस्थिसम्प्रोक्षणं कृत्वा तत्र पीठे मनुं न्यसेत् ॥ २४ ॥
भूर्जे वा वटपत्रे वा लिखित्वा चक्रमुत्तमम् ।
लिखित्वा स्वीयमन्त्रञ्च स्थापयेदासनोपरि ॥ २५ ॥

इस प्रकार बलि प्रदान कर पञ्चगव्य से 'अस्थि' का सम्प्रोक्षण कर उसकी पीठ पर मन्त्र लिखे । फिर भोजपत्र पर अथवा बटपत्र पर चक्र तथा अपना मन्त्र लिखकर आसन के ऊपर स्थापित करे ॥ २४-२५ ॥

विघ्ननिवारणार्थं वीरार्दनमन्त्रकथनम्

पीठमास्तीर्य तस्मिन् वै बद्धपद्मासनः सुधीः ।
कूर्चबीजद्वयं पश्चात् मायायुग्मं समुद्धरेत् ॥ २६ ॥
कालिके बज्रदंष्ट्रे च प्रचण्डे चण्डनायिके ।
दानवान् दारयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं ततः ॥ २७ ॥
शवशरीरे महाविघ्नं छेदय द्वितयं ततः ।
स्वाहान्ते वर्मचाऽस्त्रान्तो वीरार्दनमनुर्मतः ॥ २८ ॥
अनेन मन्त्रितं लोष्ट्रं दश दिक्षु विनिःक्षिपेत् ।
तन्मध्ये भैरवो देवो न विघ्नैःपरिभूयते ॥ २९ ॥

सुधी साधक आसन बिछाकर पद्मासन से बैठे । फिर दो कूर्च बीज (हूं हूं), फिर माया बीज (ह्रीं), तदनन्तर 'कालिके वज्रदंष्टे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शवशरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा कवचाय हुं अस्त्राय फट्' यह वीरार्दन मन्त्र है । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर मिट्टी के ढेले को दशों दिशाओं में फेंक देवे । ऐसा करने से उसके मध्य में रहने वाले भैरव स्वरूप साधक को विघ्न नहीं होता ॥ २६-२९ ॥

यदि प्रमादवशेनैव साधको भयविह्वलः ।

अर्केन्दुसितवाट्यालमूलैर्निर्मितवर्त्तिकाम् ॥ ३० ॥
प्रदीपं गर्त्ते संस्थाप्य अस्त्रमन्त्रेण साधकः ।
अस्त्रं प्रपूजयेत्तत्र दीपं संरक्षयेत्ततः ॥ ३१ ॥

यदि किसी भूल या प्रमादवश साधक भय से विह्वल हो तो, अर्क इन्दु (कपूर) सितवाट्याल (=सफेद अतिबला) के मूल से बनी हुई बत्ती का दीपक जलाकर अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) इस मन्त्र से किसी गड्ढे में स्थापित करे । उसमें अस्त्र की पूजा करे, तदनन्तर दीप की रक्षा करे ॥ ३०-३१ ॥

हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ।
स्वस्वकल्पोक्तविधिना भूतशुद्ध्यादिकञ्चरेत् ॥ ३२ ॥

यदि कदाचित् वह महादीप बुझ जावे, तब साधक को महाविघ्न उपस्थित होते है । फिर अपने सम्प्रदायानुसार भूत शुद्ध्यादि कर्म करे ॥ ३२ ॥

षोढान्यासकथनम्

षोढां वा तारकं वापि विन्यस्य पूजयेत्ततः ।
नानाविद्याप्रभेदेन षोढा च बहुधाभवेत् ॥ ३३ ॥

षोढा अथवा तारक से न्यास कर उसकी पूजा करे । अनेक विद्याओं के भेद के कारण षोढा अनेक हैं ॥ ३३ ॥

तारकः सर्वशास्त्रेषु कथ्यते तन्त्रवर्त्मना ।
विन्यसेन्मातृकास्थाने मातृकां तारसम्पुटाम् ॥ ३४ ॥

तारक जो सभी शास्त्रों में तन्त्र के अनुसार कहा गया है उसे कहता हूँ । मातृका के स्थान में प्रणव सम्पुट मातृका से न्यास करे ॥ ३४ ॥

मातृकापुटितं तारं तारकः परिकीर्त्तितः ।
विधिवत् पूजयित्वा च निजदेवीं सुसाधकः ॥ ३५ ॥
मन्त्रध्यानपरो भूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।

मातृका से सम्पुटित तार (ॐ) तारक कहा जाता है । फिर उत्तम साधक अपनी इष्टदेवी की पूजाकर मन्त्र का ध्यान करते हुये, स्थिर चित्त हो, मन्त्र का जप करे ॥ ३५-३६ ॥

मन्त्राक्षरसंख्याभेदेन जपसंख्या

एकाक्षरं यदि भवेद् दिक्सहस्रं ततो जपेत् ॥ ३६ ॥
द्व्यक्षरे चाऽष्टसाहस्रं त्र्यक्षरे त्वयुतार्धकम् ।
अतः परन्तु मन्त्रज्ञो गजान्तक सहस्रकम् ॥ ३७ ॥

साधक यदि मन्त्र एक अक्षर का हो, तो दश हजार की संख्या में जप करे। दो अक्षर का मन्त्र हो तो आठ हजार, और तीन अक्षर का मन्त्र हो, तो पाँच हजार जप करें। इससे अधिक अक्षर वाले मन्त्र का गजान्तक (सिंह) अर्थात् एक हजार की संख्या में जप करे ॥ ३७ ॥

निशायां वा समारभ्य उदयान्तं समाचरेत्।
जपादौ तु बलिं दद्यात् पश्चादपि बलिं हरेत् ॥ ३८ ॥

अथवा रात्रि से आरम्भ कर सूर्योदय पर्यन्त जप करे। जप के आदि में तथा जप के अन्त में भी बलि प्रदान करे ॥ ३८ ॥

जपान्ते जपमध्ये वा देहि देहीति भाषिते।
तदापि च बलिंदद्यात् महिषं छागमेव वा ॥ ३९ ॥

जप के अन्त में अथवा जप के मध्य में 'देहि देहि' ऐसा शब्द करे उस समय भी भैंसे तथा छाग (बकरे) की बलि देनी चाहिये ॥ ३९ ॥

बलिदानविधानम्

बलिदानविधानं हि वक्ष्येऽहं सिद्धिहेतवे।
तरुणं सुन्दरं कृष्णं क्षतादिदोषवर्जितम् ॥ ४० ॥

अब सिद्धि के लिये बलिदान का विधान कहता हूँ। बलिदान के लिये लाया गया बकरा या महिषादि युवा, सुन्दर और काले वर्ण का तथा व्रणादि रहित होना चाहिये ॥ ४० ॥

स्वयं पूर्वमुखो भूत्वा बलिमुत्तरवक्त्रकम्।
समानीय स्ववामे च प्रोक्षयेत्तदनन्तरम् ॥ ४१ ॥

बलिदान कर्त्ता को बलि प्रदान करने के समय स्वयं पूर्वाभिमुख और बलि के जीव को उत्तराभिमुख होना चाहिये। उसे अपने बायें से लाकर उसका प्रोक्षण करना चाहिये ॥ ४१ ॥

अर्घोदकेन वीरेन्द्रस्तारादिमनुनाऽमुना।
नर्मदा यमुना गङ्गा करतोया सरस्वती ॥ ४२ ॥
कावेरी चन्द्रभागा च सिन्धुभैरवसागराः।
अजस्नाने महेशानि सान्निध्यमिह कल्पय ॥ ४३ ॥
ॐ पशुपाशविनाशाय हेमकूटस्थिताय च।
परापराय परमेष्ठिने हुङ्काराय च मूर्त्तये ॥ ४४ ॥
सम्प्रोक्षणं विधायाऽथ बलिं सम्पूजयेत्ततः।

ब्रह्मरन्ध्रे च ब्रह्माणं मस्तके मेदिनीं तथा ॥ ४५ ॥
कर्णयोश्च तथाऽऽकाशं ग्रीवायां सर्वतोमुखम् ।
ज्योतींषि नेत्रयोर्विष्णुं वदने परिपूज्य च ॥ ४६ ॥

वीरेन्द्र साधक आदि में तार (ॐ), फिर नर्मदा यमुना.......हुङ्काराय च मूर्त्तये' पर्यन्त श्लोक मन्त्र से सम्प्रोक्षण करे । इस प्रकार बलि का पूजन करे । ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्मा का, मस्तक में मेदिनी, दोनों कानों में आकाश का, ग्रीवा में सर्वतोमुख का नेत्र में ज्योतियों का और मुख में विष्णु का पूजन करे ॥ ४२-४६ ॥

ललाटे पूजयेच्चन्द्रं शक्रं दक्षिणगण्डतः ।
वामगण्डे तथा वह्निं ग्रीवायां समवर्त्तिनम् ॥ ४७ ॥
केशाग्रे नैर्ऋतिं मध्ये भ्रवोश्चापि प्रचेतसम् ।
नासामूले च श्वसनं स्कन्धे चैव धनेश्वरम् ॥ ४८ ॥
हृदये सर्पराजेन्द्रं पूजयित्वा पठेदिमम् ।
इतोऽन्यथा पापयुतं मलमूत्रवसायुतम् ॥ ४९ ॥
तं बलिं नहि गृह्णाति देवता च कदाचन ।
अन्येषां महिषादीनां बलीनामथ पूजनात् ॥ ५० ॥
कायोमेध्यत्वमायाति रक्तं गृह्णाति वै शिवा ।
भूषयेद्रक्तमाल्येन सिन्दूरेण विशेषतः ॥ ५१ ॥

ललाट में चन्द्रमा का, दक्षिण गण्डस्थल में इन्द्र का, वामगण्डस्थल में अग्नि का, ग्रीवा में समवर्त्ति का, केशाग्र में निर्ऋति का, भ्रूमध्य में प्रचेता का, नासामूल में वायु का, दोनों कन्धों में धनेश्वर का, हृदय में सर्पराजेन्द्र वासुकि, अथवा शेष का नाम एवं मन्त्र से पूजन करे । पूजन न करने पर बलि जीव का शरीर पापयुक्त, मल, मूत्र और वसायुक्त रहता है, उस प्रकार की बलि को देवता कदापि ग्रहण नहीं करते । महिषादि बलि, जीवों के पूजन से उनका शरीर पवित्र हो जाता है, तब उसके रक्त पहना कर शिवा ग्रहण करती है । बलि प्रदान के जीव को लाल माला को विशेषकर सिन्दूर से भूषित करना चाहिये ॥ ४७-५१ ॥

पशुपूजामन्त्रः

तं निरीक्ष्य पठेद्धीरो निजदेवस्वरूपकम् ।
छाग त्वं बलरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ॥ ५२ ॥
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ।
चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशिने ॥ ५३ ॥
चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तुते ।

यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेवस्वयम्भुवा ॥ ५४ ॥
अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ।
ततो वाग्भवो माया च कमला तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥
इत्युच्चार्य बलेमूर्ध्नि पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत् ।

बलिदान कर्त्ता उस प्रकार के बलिदान वाले भूषित जीव को अपने इष्टदेव के रूप में देखकर यह मन्त्र पढ़े—'छाग त्वं बलिरूपेण.....तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़े । फिर वाग्भव (ऐं), माया (ह्रीं), कमला (श्रीं), इस मन्त्र को पढ़कर उसके ऊपर तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करे ॥ ५२-५६ ॥

पशुच्छेदमन्त्रः

शिवबुद्ध्या सुसञ्चिन्त्य तं पूज्य च ततः परम् ॥ ५६ ॥
ततः सम्पूजयेत् खड्गं गृहीत्वा तं पठेद् बुधः ।
कृष्णं पिनाकपाणिञ्च कालरात्रिस्वरूपिणम् ॥ ५७ ॥
उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
रक्ताम्बरधरं चैव पाशहस्तं कुटुम्बिनम् ॥ ५८ ॥
पिवमानञ्च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम् ।
इति ध्यात्वा सुसम्पूज्य नमस्कुर्यात् प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार उसके कल्याण की दृष्टि से अथवा साक्षात् शिव की दृष्टि से पूजा कर खड्ग ग्रहण करे और उसकी पूजा करे । सर्वप्रथम उसका इस प्रकार ध्यान करे । आप काले वर्ण वाले साक्षात् पिनाकपाणि कालरात्रि स्वरूप उग्र रक्त मुख एवं रक्त नेत्र वाले रक्त वस्त्र धारण किये हुये हाथ में पाश लिये हुये कुटुम्बयुक्त रक्त का पान एवं मांस का भोजन करने वाले हैं । इस प्रकार के खड्ग का ध्यान कर उसकी पूजा करे और प्रयत्नपूर्वक नमस्कार करे ॥ ५६-५९ ॥

आशीविषसमः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ॥ ६० ॥
पुटाञ्जलिं विधायाथ पठेदमुं मनुं बुधः ।
रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः ॥ ६१ ॥
मायायुग्मं ततः प्रोच्य कालिककालि ततो वदेत् ।
वज्रेश्वरि पदस्यान्ते लौहदण्डश्च ङेयुतः ॥ ६२ ॥
हृदयञ्च पठित्वा च अङ्गाय नमो यजेत् ।
विषं मायायुगं कालियुग्मं विकटशब्दतः ॥ ६३ ॥
दंष्ट्रे च स्फेंद्वयं पश्चात् फेत्कारिणि च खादय ।

द्वयं छेदययुग्मञ्च सर्वदुष्टांश्च मारय ॥ ६४ ॥
द्वयमजञ्च खड्गेन छिन्धिद्वयं किलिद्वयम् ।
चिकिद्वन्द्वं पिबद्वन्द्वं रुधिरं स्फ्रों (स्फ्रों) युगन्ततः ॥ ६५ ॥
किलिद्वयं कालियुग्मं हृन्मनुं तदनन्तरम् ।

फिर 'आशीविषसमः.....नमोऽस्तु ते' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर इस मन्त्र को पढ़े । 'रसना त्वं...सुरलोक प्रसाधकः' के बाद दो बार माया (ह्रीं ह्रीं), फिर कालि कालि स्फीं वज्रेश्वरि लोहदण्डाय, फिर नमः पढ़कर, खड्गाय नमः पढ़े । फिर विष (मं), फिर मायायुग (ह्रीं ह्रीं), फिर दो बार कालि कालि, फिर विकटदंष्ट्रे, फिर दो बार 'स्फें', फिर फेत्कारिणि, फिर खादय, दो बार, फिर दो बार छेदय, फिर सर्वदुष्टांश्च, फिर दो बार मारय मारय, अजञ्च खड्गेन' इसके बाद दो बार छिन्धि, फिर दो बार किलि शब्द, फिर दो बार चिकि फिर, दो बार पिब, फिर रुधिरं, फिर दो बार 'स्फ्रों' शब्द पढ़े । फिर दो बार किलि, फिर दो बार कालि, इसके बाद नमः शब्द पढ़े ।

विमर्श—मन्त्र का स्वरूप—रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोक प्रसाधकः, ह्रीं ह्रीं कालि कालि वज्रेश्वरि लोहदण्डाय नमः, खड्गाय नमः, मं ह्रीं ह्रीं कालि कालि विकटदंष्ट्रे स्फें स्फें फेत्कारिणि खादय खादय छेदय छेदय सर्व दुष्टांश्च मारय मारय अजञ्च खड्गेन छिन्धि छिन्धि किलि किलि चिकि चिकि पिब पिब रुधिरं स्फ्रों स्फ्रों किलि किलि कालि कालि नमः ॥ ६०-६६ ॥

अनेन मन्त्रितं खड्गमुत्तोल्य साधकोत्तमः ॥ ६६ ॥
देत्ता पूर्वमुखो भूत्वा बलिमुत्तरवक्त्रकम् ।
आं हूं फडिति मन्त्रेण छेदयित्वा ततः परम् ॥ ६७ ॥
रुधिरं जलसैन्धवशर्करामधुसंयुतम् ।
गन्धपुष्पान्वितं कृत्वा उत्सृजेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥ ६८ ॥

इस मन्त्र से खड्ग ऊपर उठाकर वेत्ता साधक पूर्वाभिमुख होकर उत्तरमुख वाले बलि जीव को 'आं हूं फट्' इस मन्त्र से काटकर उस बलि के रुधिर में जल, सैन्धव, शर्करा और मधु से संयुक्त कर उसमें गन्ध पुष्प मिलाकर इस मन्त्र को पढ़ते हुये छोड़ देवे ॥ ६६-६८ ॥

आप्यायनमन्त्रोद्धारः

प्रणवं वाग्भवं मायां लक्ष्मीं कौशिकिशब्दतः ।
रुधिरेण ततः पश्चादाप्यायतां ततः परम् ॥ ६९ ॥
निवेद्य रुधिरं वीरः शिरो दद्यात् सदीपकम् ।
न दिक्षु वीक्षणं कुर्यात् न च बन्धुसमागमम् ॥ ७० ॥

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), माया (ह्रीं), फिर लक्ष्मी (श्रीं), फिर कौशिकि ! रुधिरेणाप्यायताम्' इस मन्त्र से रुधिर का निवेदन कर वीर बलि जीव का शिर दीपक के साथ निवेदन करे । उस समय दिशाओं में इधर-उधर न देखे और न आगत बन्धुओं की ओर देखे ॥ ६९-७० ॥

जलादिदुर्गसर्पाणां गजानां दंष्ट्रिणां तथा ।
पक्षिकीटपिशाचानां यद्वा मनसि संस्थितम् ॥ ७१ ॥
तत्सर्वं स्वप्नवद्ध्यात्वा भयं सर्वत्र वर्जयेत् ।
साधनञ्च समाप्याथ दक्षिणां गुरवे ददेत् ॥ ७२ ॥

जलादि, दुर्ग, सर्प, हाथी, दाँत से काटने वाले कुत्ता, सिंह, पक्षि, कीट एवं पिशाचों से होने वाले अथवा अकस्मात् मन से उत्पन्न हुये समस्त भय का त्याग कर देवे उसे स्वप्न की तरह झूठा समझे । सब प्रकार के भय से रहित हो साधक निर्भय रहे । इस प्रकार साधक बलि साधन क्रिया की समाप्ति कर गुरु को दक्षिणा प्रदान करे ॥ ७१-७२ ॥

पूजाद्रव्यं जले चैव गर्त्ते वा निःक्षिपेत्ततः ।
सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य नाऽसाध्यं विद्यते क्वचित् ॥ ७३ ॥
बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव एव सः ।
स्वकुलान्ते पुरश्चर्या रात्रौ कार्या न चान्यथा ॥ ७४ ॥

पूजा के लिये एकत्र सभी द्रव्यों को जल में छोड़ देवे, अथवा गड्ढ़े में डाल देवे, इस प्रकार एक ही मन्त्र को सम्यक् सिद्ध करने वाले साधक के लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है, फिर जिसने बहुत मन्त्रों की सिद्धि कर ली है उसके लिये क्या कहना, वह तो साक्षात् शिव ही है । कौल सिद्धान्त प्रतिपादन करने वाली इस पुरश्चर्या को रात्रि में करे, जिससे वह निष्फल न हो ॥ ७३-७४ ॥

सर्वसिद्धिप्रदं साक्षात् सर्वदेवनमस्कृतम् ।
सर्वपापहरं चैव सर्वरोगविनाशनम् ॥ ७५ ॥

यह पुरश्चरण सर्वसिद्धिप्रद, साक्षात्, सर्वदेवनमस्कृत् सर्वपापहारी और सर्व रोगविनाशक है ॥ ७५ ॥

नान्यत् सिद्धिप्रदं चैव वीरसाधनवर्जितम् ।
महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः ॥ ७६ ॥
महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूतहिते रतः ।
तेषां कृते प्रवक्ष्यामि वीरसाधनमुत्तमम् ॥ ७७ ॥

वीर साधना को छोड़कर और साधन सिद्धिप्रद नहीं है । अब जो

महाबलवान्, महाबृद्धिमान्, महासाहसिक, शुचि, महास्वच्छ, दयालु, सम्पूर्ण प्राणियों के हित में लगे रहने वाले तत्वज्ञ साधक हैं, उनके लिये सर्वोत्तम वीर साधन कहता हूँ ॥ ७६-७७ ॥

वीरसाधनम्

नास्मात् परतरं किञ्चित् सत्वरं सिद्धिदायकम् ।
सर्वसिद्धिर्भवत्येव अहोरात्रे कलौ युगे ॥ ७८ ॥
द्वापरे तच्च मासेन त्रेतायां हायनेन तु ।
कृते तु दशभिर्वर्षैः सत्यं सिद्धिर्न संशयः ॥ ७९ ॥

इस वक्ष्यमाण साधन से बढ़कर अन्य साधन सत्त्वर सिद्धि नहीं प्रदान करते । इस साधन से कलियुग में अहोरात्र मात्र में सिद्धि प्राप्त हो जाती है । द्वापर में एक मास में, त्रेता में एक वर्ष में, और सत्ययुग में दश वर्ष में सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं ॥ ७८-७९ ॥

कटीबन्धेन वस्त्रञ्च मूलेन परिधापयेत् ।
दूबाह्ये च पुनर्वस्त्रं मूलेन चन्दनादिकम् ॥ ८० ॥

मूल मन्त्र द्वारा कमर को कसकर वस्त्र धारण करे । उसके बाद पुनः वस्त्र धारण करे । फिर मूल मन्त्र से चन्दनादिक धारण करे ॥ ८० ॥

कृतोष्णीशश्च मूलेन सिन्दूरेणाऽर्धपुण्ड्रकम् ।
इष्टदेवं गुरुं नत्वा रात्रौ प्रहरमध्यतः ॥ ८१ ॥
कार्या च साधकैः सार्धं कुलमन्त्रं परामृशन् ।
अक्षुब्धो भुक्तभोज्यस्तु यदि स्याद्वीरसाधकः ॥ ८२ ॥
दिव्यो बलिः पशुस्तत्र भुक्त्वा साधनमाचरेत् ।

टोपी या पगड़ी बाँधकर मूलमन्त्र से सिन्दूर का ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करे । अपने इष्टदेव तथा गुरुगणों को नमस्कार करे । अर्धरात्रि के समय साधकों के साथ कुलमन्त्र के विषय में विचार करते हुये चाञ्चल्यरहित हो, भोजनोपरान्त वीरसाधक इस पुरश्चरण क्रिया का प्रारम्भ करे । देवता को दिये गये पशु का भोजन कर साधन प्रारम्भ करे ॥ ८१-८३ ॥

शवसाधनम्

पूर्वोक्तदिवसे वीरो नानोपचारसंयुतः ॥ ८३ ॥
मत्स्यमांसयुतं भक्तं गुडं छागञ्च पिष्टकम् ।
पायसान्नं सुरां चैव माषभक्तबलिं तथा ॥ ८४ ॥
तिलं कुशं सर्षपञ्च दीपं चैव सुधूपकम् ।

एलालवङ्गकर्पूरजातिखदिरमार्द्रकम् ॥ ८५ ॥
ताम्बूलं पट्टसूत्रञ्च एलाजिनञ्च कम्बलम् ।
चषकं यज्ञकाष्ठञ्च स्वप्रादेशप्रमाणकम् ॥ ८६ ॥
पञ्चगव्यं स्वकल्पोक्तं पूजाद्रव्यं प्रगृह्य च ।
यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम् ॥ ८७ ॥
वज्रविद्धं सर्पदष्टं चाण्डालं वाऽतिभूतकम् ।
तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्ज्वलम् ॥ ८८ ॥
पलायनविशून्यञ्च सम्मुखे रणवर्त्तिनम् ।
न स्वयं घातयेद्विद्वान् मन्त्राणि तत्र वर्जयेत् ॥ ८९ ॥

ऊपर कहे गये दिनों में (द्र.१४.१-२) वीर साधक मत्स्य, मांस युक्त भात, गुड़, बकरा, पूआ, खीर, मद्य, माष (उड़द) और भक्त की बलि तिल, कुश, सरसो, दीपक, धूप, एला, लवङ्ग, कर्पूर, जाति पुष्प, खदिर (=कत्था), आदि, ताम्बूल, पट्टवस्त्र, इलायची, कृष्ण मृगचर्म, कम्बल, मद्य पीने वाला पात्र, अपने प्रादेश मात्र यज्ञ काष्ठ, पञ्चगव्य इस प्रकार अन्य भी स्वकल्पोक्त पूजाद्रव्य लेकर यष्टि (लाठी) से मारे गये, शूल से मारे गये, खड्ग से मारे गये, पयोमृत (रुधिर) वज्र से मारे गये, साँप विष से मारे गये, अथवा चाण्डाल, अथवा भूत से मारे गये, तरुण, सुन्दर शूर जो युवा हो, प्रशस्त हो, पलायनरहित हो, युद्ध में आमने-सामने मारे गये हो, ऐसे में किसी एक शव को एकत्रित करे, जो स्वयं न मारा गया हो क्योंकि उसमें मन्त्र वर्जित है ॥ ८३-८९ ॥

स्वेच्छामृतं द्विवर्षं च वृद्धं स्त्रियं द्विजं तथा ।
अनातुरमृतं कुष्ठि सप्तरात्रोर्ध्वगं तथा ॥ ९० ॥
अङ्गहीनञ्च सन्यज्य पूर्वोक्तान्यतमं परम् ।
गृहीत्वा मूलमन्त्रेण पूजास्थाने समानयेत् ॥ ९१ ॥

अपनी इच्छा से मरे हुये आत्मघाती, दो वर्ष की अवस्था में मरे हुये, वृद्ध स्त्री, ब्राह्मण, स्वस्थावस्था में मरे हुये, कोढ़ी, सात रात से पहले का मरा हुआ, अङ्गहीन शव का परित्याग करे । पूर्वोक्त में किसी एक शव को पकड़कर पूजा स्थान में लावे ॥ ९०-९१ ॥

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते निर्जने तथा ।
बिल्वमूले श्मशाने वा तत्समीपे वनस्थले ॥ ९२ ॥

शून्यागार में नदी के तट पर पर्वत में निर्जन स्थान में, बिल्व मूल में, श्मशान में अथवा उसके समीपवर्ती वनस्थल में क्रिया आरम्भ करे ॥ ९२ ॥

दीपस्थानं समाश्रित्य भूमौ वीरार्दनं लिखेत् ।
वीरार्दनाङ्किते भूमौ माया मोहो न विद्यते ॥ ९३ ॥

जिस स्थान पर दीपक रखना हो, उस स्थान पर भूमि में 'वीरार्दन' मन्त्र (१४.२६) लिखे । जिस स्थान पर 'वीरार्दन' मन्त्र लिख दिया जाता है, वहाँ माया मोह का प्रवेश नहीं होता ॥ ९३ ॥

गुरुपूजादिकम्

गुरुपूजादिकं सर्वं पूर्वोक्तमतमाचरेत् ।
ये चात्रेत्यादिमन्त्रेण भूमौ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ ९४ ॥

इसके बाद गुरु पूजादि कार्य सम्पन्न कर पूर्वोक्त क्रिया आरम्भ करे, 'ये चात्र' द्र. १४.११-१२' इस श्लोक मन्त्र से भूमि में पुष्पाञ्जलि देवे ॥ ९४ ॥

अघोरास्त्रादिमन्त्राः

अघोरास्त्रेण रक्षां वै सुदर्शनेन वा पुनः ।
मायास्फुरद्वयं भूयः प्रस्फुरद्वितयं पुनः ॥ ९५ ॥
घोरघोरतरेऽत्यन्ते तत्त्वरूपे पदंततः ।
चटयुग्मं तदन्ते च प्रचटद्वितयं पुनः ॥ ९६ ॥
कहद्वयं वमद्वन्द्वं ततो दहयुगंततः ।
घातयद्वितयं वर्मफडन्तोऽघोरको मनुः ॥ ९७ ॥

पुनः अघोरास्त्र से अथवा सुदर्शन से आत्मरक्षा करे । माया (ह्रीं), फिर दो बार स्फुर, फिर दो बार प्रस्फुर, फिर घोरतरे अतितत्त्वरूप, फिर दो बार चट, इसके अन्त में दो बार 'प्रचट', फिर दो बार 'कह', दो बार 'वम', दो बार 'दह', दो बार 'घातय', हुं फट्' यह अघोरमन्त्र है ॥ ९५-९७ ॥

विमर्श—अघोरास्त्रमन्त्र का स्वरूप—ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोर-तरे तत्त्वरूपे चर चर प्रचट प्रचट कह कह वम वम दह दह घातय घातय हुँ फट्।

हालाहलं समुद्धृत्य सहस्रारस्वरूपकम् ।
वर्मास्त्रान्तो महामन्त्रः सुदर्शनस्य कीर्त्तितः ॥ ९८ ॥

'हलाहल', इसके बाद 'सहस्रार' फिर 'हुं फट्' यह सुदर्शन का मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप—सहस्रार हुँ फट् ॥ ९८ ॥

प्रणवाद्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्षितं पूजयेत्ततः ।
प्रणवं कूर्चवजं तु मृतकाय नमश्च फट् ॥ ९९ ॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् स्पर्शपूर्वकम् ।

अतीव परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर ॥ १०० ॥
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्क शङ्कर ।
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि सन्तिष्ठ देविकार्चने ॥ १०१ ॥
प्रणम्यानेन मनुना क्षालयेत्तदनन्तरम् ।

शवशोधनम्

प्रणवं शब्दबीजञ्च मृतकाय नमस्ततः ॥ १०२ ॥
इत्युच्चार्यं गन्धतोयैः प्रक्षाल्य शवमुत्तमम् ।
रक्तयुक्तो यदि भवेत् भक्षयेत् कुलसाधकम् ॥ १०३ ॥

फिर प्रणव (ॐ) के साथ अस्त्र मन्त्र (फट्) से शव का प्रोक्षण कर उसकी पूजा करे । फिर प्रणव (ॐ), कूर्च बीज (हुं) मृतकाय नमः 'फट्' इस मन्त्र से शव पर तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । तदनन्तर 'अतीव परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर, आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्क शङ्कर, वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि सन्तिष्ठ देविकार्चने' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर प्रणाम करते हुये शव का प्रक्षालन करे । फिर प्रणव (ॐ), शब्द बीज (ऐं) फिर 'मृतकाय नमः' इस मन्त्र को पढ़कर गन्धयुक्त जल से उस शव का प्रक्षालन करे । यदि प्रक्षालन करते समय उसमें से रक्त प्रवाहित हो तो वह उस कुल साधक को खा जाता है ॥ ९९-१०३ ॥

विमर्श—प्रोक्षणमन्त्र—ॐ फट्, पुष्पाञ्जलि मन्त्र—ॐ हुँ मृतकाय नमः फट् । शवप्रक्षालनमन्त्र—(गन्धयुक्त जल से) ॐ ऐं मृतकाय नमः ।

सुधूपैर्धूपयेत्तञ्च लेपयेद् गन्धचन्दनैः ।
उपचारं स्वदक्षे तु स्थापयित्वा सुसाधकः ॥ १०४ ॥
अधिकारिविशेषेण सुरया तत्र पूजयेत् ।
गृहीत्वा तत्र दातव्यं सर्वं नैव च संस्पृशेत् ॥ १०५ ॥

शव को उत्तम धूप देवे और गन्ध चन्दन का लेप करे । फिर अपनी दाहिनी ओर उपचार स्थापित कर सुसाधक विशेष-अधिकारी के हाथ से सुरा लेकर शव को प्रदान करे । किन्तु शव का स्पर्श न करे ॥ १०४-१०५ ॥

रक्षां दिक्षु प्रकल्प्याथ वीरार्दनमनुं स्मरन् ।
मृद्वासने ततो वीरो वीरासन परिग्रहः ॥ १०६ ॥

दशो दिशाओं में रक्षा का प्रबन्ध करने के पश्चात् वीरार्दन मन्त्र का स्मरण करे (द्र. १४.२६-२८)। फिर वीर साधक वीरासन के परिग्रहभूत मृदु आसन (शवासन) पर बैठे ॥ १०६ ॥

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा न्यासजालं प्रविन्यसेत् ।

आत्मरक्षां विधायाथ अघोरेण समाहितः ॥ १०७ ॥
ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणीति वह्निजाया ततः परम् ।
अनेन मनुना वीरः सर्षपान् दिक्षु निःक्षिपेत् ॥ १०८ ॥

फिर भूतशुद्धि आदि करन्यास जाल से शरीर का न्यास करे । तदनन्तर समाहित चित्त हो अघोरमन्त्र से आत्मरक्षा कर 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इस मन्त्र से दशो दिशाओं में सर्षप प्रक्षिप्त करे ॥ १०७-१०८ ॥

ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो सर्वेषां तृप्तिकारकः ।
पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः ॥ १०९ ॥
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः ।
इति क्षिप्त्वा तिलांस्तत्र चतुर्भागं शवादितः ॥ ११० ॥
इति संरक्षणं कृत्वा शवमात्मपुरो नयेत् ।
कुशशय्यां परिस्तीर्य तत्र संस्थापयेच्छवम् ॥ १११ ॥

फिर 'ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो सर्वेषां तृप्तिकारकः, पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः, भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर तिल का चौथा भाग शव पर प्रक्षिप्त करे । इस प्रकार संरक्षण कर उस शव को साधक अपने आगे ले आवे । कुश की शय्या बिछाकर उस पर शव को स्थापित करे ॥ १०९-१११ ॥

एलादिसहितं वीरस्ताम्बूलं तस्य वक्त्रके ।
निःक्षिप्य च ततः कुर्याच्छवं पश्चादधोमुखम् ॥ ११२ ॥
स्थापयित्वा च तत्पृष्ठं चन्दनेन विलेपयेत् ।
बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विभाव्य च ॥ ११३ ॥
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम् ।
तत्र चैलेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत् ॥ ११४ ॥
श्मशानाधिपतीनाञ्च बलिं दद्याच्च पूर्ववत् ।
निःक्षिपेद्दश काष्ठानि पूर्वादिदशदिक्षु च ॥ ११५ ॥
क्षिप्त्वा सम्पूजयेत्तत्र इन्द्रादिदशदेवताः ।
विषमिन्द्रपदं लिख्य सुराधिपतये ततः ॥ ११६ ॥
इमं बलिं गृह्णयुग्मं गृह्णापययुगं ततः ।
विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ ठद्वयम् ॥ ११७ ॥
अनेन मनुना पूर्वे बलिं दद्याच्च सामिषम् ।
स्वस्वनामादिकं कृत्वा पूर्ववद्बलिमुद्धरेत् ॥ ११८ ॥

उसके मुख में इलायची सहित पान देवे, तदनन्तर शव को अधोमुख करे। अधोमुख शव को स्थापित कर उसकी पीठ में चन्दन का अनुलेप करे। फिर बाहुमूल से कटिपर्यन्त उसके चौकोर भाग को अच्छी तरह समझकर मध्य में आठ दल वाला पद्म, उसके बाद चतुर्द्वार भूपुर निर्माण करे। पहले कम्बल, उस पर कृष्णमृग चर्म, फिर उसपर सूती वस्त्र का आसन रखे। पूर्ववत् दशों दिशाओं में बलि देवे और पूर्वादि दिशाओं में रक्षा के लिये दश काष्ठ रखे। फिर उन काष्ठों पर इन्द्रादि दश देवताओं का पूजन करे। विष (मं), फिर 'इन्द्र सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्न निवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से मांस युक्त बलि पूर्व दिशा में इन्द्र को देवे। इसी प्रकार तत्तन्नामों को लेकर तत्तद्देवताओं को दशों दिशाओं में बलि देवे ॥ ११२-११८ ॥

शवाधिष्ठातृभूतेभ्यो बलिञ्च सुरया सह ।
चतुःषष्टियोगिनीभ्यो डाकिनीभ्योऽपि सन्दिशेत् ॥ ११९ ॥

शवाधिष्ठातृ भूतों के लिये और चतुःषष्टि (६४) योगिनियों के लिये एवं डाकिनियों के लिये मद्य के साथ बलिदान प्रदान करे ॥ ११९ ॥

द्वारदेशे ततो वीरः कुर्यादुत्तरसाधकम् ।
समानगुणसम्पन्नं मान्त्रिकं विजितेन्द्रियम् ॥ १२० ॥
अभिषेकविधिज्ञं च दैववीरविशारदम् ।
संस्थाप्यासनमभ्यर्प्य स्वमन्त्रान्ते परान्ततः ॥ १२१ ॥
फडित्यनेन मन्त्रेण ततश्चाऽऽवाहनं विशेत् ।
कुशान् पादतले दत्त्वा शवकेशान् प्रगृह्य च ॥ १२२ ॥
दृढं निबध्य जुटिकां कृतसङ्कल्पसाधकः ।
तत्र देवीं सुसम्पूज्य उपचारैः सुविस्तरैः ॥ १२३ ॥

फिर द्वार देश पर अपने समान गुण वाले मन्त्रवेत्ता जितेन्द्रिय, अभिषेक विधान को जानने वाले, दिव्य वीर मत में विशारद, अपने से कनिष्ठ किसी साधक को स्थापित करे। फिर आसन का पूजन करने के उपरान्त अपने मन्त्र के बाद 'परां फट्' इस मन्त्र से आवाहन करे। फिर उस पर बैठ जावे और अपने पैर के नीचे कुशा रखे। शव के केशों को पकड़कर उसकी जटा बनावे फिर उस पर सङ्कल्पपूर्वक अनेक विस्तृत उपचारों से देवी की पूजा करे ॥ १२०-१२३ ॥

शवं प्रति प्रार्थना

उत्थाय सम्मुखे स्थित्वा पठेद् भक्तिपरायणः ।
ॐ वशो मे भव देवेश मम वीरपदन्ततः ॥ १२४ ॥
सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रयपरायण ।

अनेन मनुना मन्त्री अभिलप्य कृताञ्जलिः ॥ १२५ ॥

तदनन्तर खड़े होकर भक्तिपरायण होकर इस प्रकार प्रार्थना करे—'ॐ वशो मे भव देवेश मम वीर' पद पढ़े; फिर 'सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रय परायण' इस मन्त्र से साधक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे ॥ १२४-१२५ ॥

ॐ भीम भीरुभयाभाव भव्यलोचन भावुक ।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप ॥ १२६ ॥
इति पादतले तस्य त्रिकोणं चक्रमुद्धरेत् ।
तदोत्थातुं न शक्नोति शवस्तु निश्चलो भवेत् ॥ १२७ ॥
अथवा मूलमन्त्रञ्च संस्मरन् साधकोत्तमः ।
पट्टसूत्रेण बध्नीयात् शवपादद्वयं ततः ॥ १२८ ॥
उपविश्य पुनस्तस्य बाहू निःसार्य पार्श्वयोः ।
हस्तयोः कुशमास्तीर्य पादौ तत्र निधापयेत् ॥ १२९ ॥
ओष्ठौ तु सम्पुटौ कृत्वा स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ।
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनी जपनमाचरेत् ॥ १३० ॥

फिर 'ॐ भीम भीरुभयाभाव भव्यलोचन भावुक त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप' इस श्लोक मन्त्र को पढ़कर उस शव के पैर के नीचे त्रिकोण चक्र लिखे । ऐसा करने से वह शव खड़ा नहीं हो सकता और निश्चल रहता है । अथवा उत्तम साधक मूलमन्त्र का स्मरण करते हुये उसके दोनों पैरों को पट्टसूत्र से बाँध देवे । फिर बैठकर उसके दोनों बाहुओं को निकाल कर दोनों बाहुओं के पार्श्वभाग में तथा दोनों हाथों में कुशा का आस्तरण करे । उस पर स्वयं अपना पैर रखे । अपने दोनों होठों को सम्पुटित कर स्थिर चित्त, स्थिरेन्द्रिय होकर देवी का हृदय में ध्यान करते हुये मौन होकर जप करे ॥ १२६-१३० ॥

ततोऽर्धरात्रिपर्यन्तं यदि किञ्चिन्न लभ्यते ।
जयदुर्गामनुनाऽर्घ्यं तेनैव सर्षपान् क्षिपेत् ॥ १३१ ॥

इस प्रकार अर्धरात्रि पर्यन्त जप करते हुये यदि कुछ दिखाई न पड़े तब 'जय दुर्गे' इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्य प्रदान करे और सर्षप प्रक्षिप्त करे ॥ १३१ ॥

पूर्ववत्तिलमुत्क्षिप्य गत्वा सप्तपदानथ ।
देवीं तत्रापि सम्पूज्य प्रजपेन्मनुमुत्तमम् ॥ १३२ ॥
निर्भयः प्रजपेद् देवि सिद्धिं वा लभते नरः ।
पूर्वोक्तक्रमयोगेन अक्षमालां विधानतः ॥ १३३ ॥
चलासनाद्भयं नास्ति भये जाते वदेत्ततः ।

यत् प्रार्थयसि देवेशि दातव्यं कुञ्जरादिकम् ॥ १३४ ॥
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे ।
इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत् ॥ १३५ ॥

पूर्ववत् तिल प्रक्षेपण कर सात पद चलकर वहाँ देवी का पूजन कर पुनः मन्त्र का जप करे । पूर्वोक्त क्रम के अनुसार जपमाला पर विधि के अनुसार निर्भय होकर जप करे । मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होगी । यदि आसन चलायमान हो तो भी भय न करे । यदि भय हो तो कंहे कि 'हे देवि! यदि आप मेरे देने योग्य कुञ्जर (हाथी) आदि चाहती हो तो मैं दिन में प्रदान करुँगा अपना नाम बताओ' । इतना कहकर निर्भय हो शुद्ध रूप से पुनः जप करे ॥ १३२-१३५ ॥

पुनश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः ।
ततः सत्यं कारयित्वा वरन्तु प्रार्थयेन्नरः ॥ १३६ ॥

इसके बाद यदि वह मीठी वाणी में बोले, तब स्वयं भी उससे मधुर वाणी में बोले । इस प्रकार उससे 'सत्य' की प्रतिज्ञा कराकर वर की प्रार्थना करे ॥ १३६ ॥

यदि सत्यं न करोति वरं तु न प्रयच्छति ।
तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रमानसं यथा ॥ १३७ ॥

यदि सत्य की प्रतिज्ञा न करे और वरदान देने को स्वीकार न करे । तब पुनः धीमान् साधक एकाग्रमन होकर जप करे ॥ १३७ ॥

नररूपं विना तत्र देवोऽपि न हि सर्पति ।
यत्नतस्तेन बोद्धव्यं नरो वा देवयोनिजः ॥ १३८ ॥

उस समय प्रयोगकर्त्ता उस साधक के पास मनुष्य रूप धारण किये बिना कोई देवता भी नहीं जा सकता । अतः, यत्नपूर्वक तत्त्वज्ञ साधक मनुष्य अथवा देवता की पहचान करे ॥ १३८ ॥

माता मातृस्वसा वापि मातुलानी तथैव च ।
आगत्य विघ्नं कुरुते माययाऽऽच्छाद्य विग्रहम् ॥ १३९ ॥
उत्तिष्ठ वत्स ते कार्यं सर्वं जातं न संशयः ।
प्रभातसमयो जातस्त्वत्पिता क्रोशते गृहे ॥ १४० ॥

उस समय स्वयं देवी माया से अपना शरीर छिपाकर माता, मौसी और मामी का रूप धारण कर इस प्रकार विघ्न करने लगती है । वत्स ! उठो, तुम्हारा काम पूर्ण हो गया । अब संशय मत करो । देखो, प्रातःकाल हो गया और घर पर तुम्हारे पिता दुःखी हो रहे हैं ॥ १३९-१४० ॥

प्रायो विमत्सरा लोका राजानो दण्डधारिणः ।
कदाचित्केन वा दृष्टस्तदाऽनिष्टं भविष्यति ॥ १४१ ॥
इत्यादिविविधैर्वाक्यैर्न च जापं परित्यजेत् ।

देखो सारा संसार मत्सर से ग्रस्त है । राजा भी दण्ड देने वाले होते हैं । यदि किसी ने तुम्हें इस प्रकार देख लिया तो निश्चय ही अनिष्ट की सम्भावना हो सकती है—इत्यादि अनेक वाक्यों से योगिनियाँ विघ्न करती हैं । फिर भी जप का परित्याग न करे ॥ १४१-१४२ ॥

मृताः पितृगणास्तत्र दूरदेशनिवासिनः ॥ १४२ ॥
बान्धवास्तत्र चायान्ति देवरूपधरास्ततः ।
स्त्रीपुत्रसेवकादींश्च गृहीत्वा नीयते परैः ॥ १४३ ॥
रुदन्ति पुत्रकाः सर्वे भ्रातरोऽनुजसेवकाः ।
निजकान्ताङ्गसंस्पर्शवस्त्राद्याभरणादिकम् ॥ १४४ ॥
गृहीत्वा नीयते पत्तिपालकैस्तद्भयं त्यजेत् ।
दिवसे यत्र वा शङ्का सैव तत्र प्रजायते ॥ १४५ ॥
यदि न क्षुभ्यते तत्र तदा किं वा न लभ्यते ।
स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान् ॥ १४६ ॥
वरं गृह्णेति शब्दे वै त्रिरात्रं ते वरं लभेत् ।

उस समय उसके पास मरे हुये पितृगण, दूर देश में रहने वाले बान्धव, देव रूप धारण करके आते हैं । शत्रुगण उसके स्त्री, पुत्र एवं सेवकों को पकड़कर ले जाने लगते हैं । उस समय सभी पुत्र, सभी भाई एवं सभी सेवक रोने लगते हैं । बहुत क्या, अपनी स्त्री के अङ्ग का स्पर्श करते हैं । वस्त्र आभरणादि बलात् छीन कर पैदल ले जाने लगते हैं । साधक उनका भय त्याग देवे । दिन में जैसी शङ्का होती है, वही शङ्का उस समय होने लगती है । ऐसी अवस्था में यदि निर्भय साधक का चित्त भयभीत अथवा चञ्चल नहीं हुआ तो साधक क्या नहीं प्राप्त कर सकता । इसके बाद तीन रात बीत जाने पर देवी स्वयं स्त्री रूप धारण कर अथवा ब्राह्मण पुरुष का रूप धारण कर 'वर माँगो' ऐसा कहती है । तब साधक वर प्राप्त करे ॥ १४२-१४७ ॥

साधुनाऽसाधुना वापि योषिच्चेद्वरदायिनी ॥ १४७ ॥
तदा वीरपतेस्तस्य किं न सिध्यति भूतले ।
निष्पापपुरुषेचैव सत्कुलनैश्च संस्कृता ॥ १४८ ॥
असंस्कृतवरा देवी पापयुक्तेन संशयः ।
सम्मुखेऽसम्मुखे वापि संस्कृतं वक्ति चापरम् ॥ १४९ ॥

सैव देवी न सन्देहः स देवो भैरवः स्वयम् ।
न चेदेवं भवेच्चैव मायारचितविग्रहः ॥ १५० ॥

यदि साधुवेश में अथवा असाधुवेश में स्त्री वर देने के लिये आती है तो उस वीर उपासक का कौन-सा ऐसा कार्य है जो इस पृथ्वी पर सिद्ध न हो? यदि पुरुष निष्पाप है तो देवी सत्कुलीनों से संस्कृत स्त्री का और पापयुक्त पुरुष में असंस्कृता नीच स्त्री का रूप धारण करके आती है, इसमें संशय नहीं । यदि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संस्कृत बोलती है तो उसे देवी ही समझे सन्देह न करे । यदि देव रूप होकर संस्कृत बोले तो उसे साक्षात् भैरव समझे । यदि ऐसा न हो तब तत्त्वज्ञ साधक समझे कि यह माया का रूप धारण कर विघ्न करने के लिये आया हुआ है ॥ १४७-१५० ॥

न वरयेद्वरं तत्र न किञ्चित् प्रवदेत् क्वचित् ।
सा चेत् संस्कृतमाख्यानं वक्ति वा व्यक्तमीदृशम् ॥ १५१ ॥
नो चेत् स्वयं कौलिकोक्त्या वरं ग्राह्यं निराकुलम् ।
अथवा उत्कटं किञ्चित् ज्योतिर्वा नीललोहितम् ॥ १५२ ॥
शब्दो वा जायते सम्यगमृतं वापि लभ्यते ।
विचार्य तद्गृहीतव्यमेवं दिक् परिकीर्तितम् ॥ १५३ ॥

इस प्रकार मायारूप धारण कर समागत व्यक्ति से वर न माँगे और न भाषण करे । यदि वह संस्कृत में बात करती है, अथवा ऐसा न कर कौलिक बन कर वर माँगने के लिये स्पष्ट रूप से कहती है तब निश्चय ही वर माँग लेना चाहिये, अथवा यदि अत्यन्त उग्र प्रकाश वाली, नीले वर्ण की ज्योति दिखाई पड़े, अथवा आकाश में शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़े, अथवा अमृत की प्राप्ति हो, तब विचार कर उसे ग्रहण कर लेवे । इस प्रकार से भी विद्वानों द्वारा सिद्धि बतलाई गई है ॥ १५१-१५३ ॥

देवकृत्यास्तु बहुधा नरास्त्वकृतबुद्धयः ।
अवश्यं तत्र भेतव्यं न तत्र प्रत्ययः क्वचित् ॥ १५४ ॥

देवता के कृत्य अनेक प्रकार के होते हैं । सामान्यतया मनुष्य के पास बुद्धि नहीं होती । अतः अवश्य ही उस विषय में भयभीत रहना चाहिये उसमें विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५४ ॥

भैरवा बटुकाश्चैव कुलशास्त्रपरायणाः ।
एतच्छास्त्रप्रसङ्गेन कृत्वा कुटिलविग्रहाः ॥ १५५ ॥
पुत्रो भूत्वा हरेद्विद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत् ।
तस्मात्तत्तु भवन्नो वा विचारे यत्नमाचरेत् ॥ १५६ ॥

कुलशास्त्र के मर्मज्ञ भैरव और बटुक इस शास्त्र के प्रसङ्ग के अनुसार कपटी शरीर धारण कर पुत्र बनकर विद्या का हरण कर लेते हैं । अथवा स्त्री बनकर मोहित कर लेते हैं । इसलिये वही हैं या दूसरे हैं ? इस प्रकार के विचार में ऊहापोहपूर्वक प्रयत्न करे ॥ १५५-१५६ ॥

सत्ये कृते वरं लब्ध्वा सन्त्यजेच्च जपादिकम् ।
फलं जातमिति ज्ञात्वा जुटिकां मोचयेत्ततः ॥ १५७ ॥

यदि देवी ने 'सत्य' कह दिया हो, तो वर माँग लेवे और जप का परित्याग कर देवे । 'मेरा मनोरथ मुझको मिल गया'—ऐसा समझकर साधक शव-केश की जटा खोल देवे ॥ १५७ ॥

अथ तैर्याचितानश्वनरकुञ्जरशूकरान् ।
दत्त्वा पिष्टमयानन्ते कर्त्तव्यं समुपोषणम् ॥ १५८ ॥

इसके बाद उनके द्वारा माँगे गये अश्व, मनुष्य, हाथी एवं शूकरों को अपूप के आकार में बनाकर उन्हें देवे और उस दिन उपवास रखे ॥ १५८ ॥

परेऽह्नि नित्यमाचर्य पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशति संख्यकान् ॥ १५९ ॥

दूसरे दिन नित्य कर्म सम्पादन करे फिर पञ्चगव्य का पान करे । फिर पच्चीस ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १५९ ॥

पञ्च पञ्च विहीनान् वा क्रमाच्चैव दशावधि ।
तत्रः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमे स्थले ॥ १६० ॥
यदि न स्याद्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत् ।
तेन चेन्निर्धनत्वं स्यात्तदा देवः प्रकुप्यति ॥ १६१ ॥

यदि पच्चीस ब्राह्मण न प्राप्त हों तो केवल दश ब्राह्मणों को ही भोजन करावे, फिर स्नान करे, भोजन करे और उत्तम स्थान में निवास करे । ब्राह्मण भोजन न करावे, तो साधक निर्धन हो जाता है । यदि इस कारण निर्धनता आती है तो वह देवता का कोपभाजन होता है ॥ १६०-१६१ ॥

त्रिरात्रं षड्रात्रंवा नवरात्रञ्च गोपयेत् ।
शय्यायां यदि गच्छेद्वै तदा व्याधिं विनिर्दिशेत् ॥ १६२ ॥
गीतं श्रुत्वा च बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात् ।
यदि वक्ति दिने वाक्यं तदा स मूकतां व्रजेत् ॥ १६३ ॥
पञ्चदशदिनान्तं हि देहे देवस्य संस्थितिः ।

गोब्राह्मणानां निन्दाञ्च न कुर्याच्च कदाचन ॥ १६४ ॥

तीन रात, छह रात एवं नव रात तक तो रक्षा करते हैं, इसके बाद यदि वह शय्या पर सोता है तो व्याधि आती है, गीत श्रवण करने पर बधिर और नृत्यदर्शन करने से अन्धा हो जाता है । यदि दिन में बोलता है तब गूँगा हो जाता है । इस प्रकार उसके देह में पन्द्रह दिन तक देवता का निवास रहता है । इसके बाद वह साधक गौर ब्राह्मण की निन्दा कदापि न करे ॥ १६२-१६४ ॥

देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः ।
प्रातर्नित्यक्रियान्ते तु बिल्वपत्रोदकं पिबेत् ॥ १६५ ॥

पवित्र होकर देव, ब्राह्मण और गौ का प्रतिदिन स्पर्श करे । प्रातःकाल नित्य क्रिया के अनन्तर बिल्वपत्र का जल पान करे ॥ १६५ ॥

ततः स्नात्वा च गङ्गायां प्राप्तषोडशवासरे ।
ततः शतत्रयादूर्ध्वं देवानां तर्पणं जलैः ॥ १६६ ॥

सोलहवाँ दिन प्राप्त होने पर गङ्गा में स्नान कर एक-सौ तीन से ऊपर देवताओं का जल से तर्पण करे ॥ १६६ ॥

स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद्देवस्य तर्पणम् ।
इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥ १६७ ॥

स्नान तर्पण के बिना देवता प्रसन्न नहीं होते । इस प्रकार के विधान से साधक सिद्धि प्राप्त करता है ॥ १६७ ॥

इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते याति हरेः पदम् ।
असाङ्ग साङ्गमेवं वा निष्फलं सफलञ्च वा ॥ १६८ ॥
कृत्वा साधनमेवैतत् शक्तेः प्रियतरो भवेत् ।
शवाभावे श्मशाने वा कार्या वै वीरसाधना ॥ १६९ ॥

इस लोक में वह साधक समस्त भोग भोगता है और अन्त में मुक्ति प्राप्त करता है । साङ्ग अथवा साङ्गरहित, निष्फल अथवा सफल रूप से इस प्रकार साधन करने वाला साधक शक्ति का अत्यन्त प्रिय पात्र बन जाता है । शवाभाव में श्मशान में इस वीरसाधना को करना चाहिये ॥ १६८-१६९ ॥

प्रकारान्तरेण पुरश्चरणकथनम्

नृणां शीघ्रफलावाप्त्यै प्रकारान्तरमुच्यते ।
चतुष्पथे चतुर्दिक्षु पुरुषं हृदयं खनेत् ॥ १७० ॥
जीवितं ब्रह्मरन्ध्रे वै दीपं प्रज्वालयेत् सुधीः ।

मध्ये तथा खनेदेकं तत्र मृद्वासनं भवेत् ॥ १७१ ॥

अब मनुष्यों को शीघ्र फल प्राप्ति के लिये प्रकारान्तर से पुरश्चरण विधि कहता हूँ। किसी चतुष्पथ में चारों दिशाओं में पुरुष के आकार का एक गड्ढा बनावे। फिर सुधी साधक ब्रह्मरन्ध्र में जहाँ जीव का स्थान है वहाँ दीपक जलावे। चतुष्पथ के मध्य में एक गड्ढा खोदे और उसे मृद्वासन समझे ॥ १७०-१७१ ॥

पूर्वोक्तक्रममार्गेण तत्र संस्कारमाचरेत् ।
महाकालादिदेवेभ्यो बलिं पूर्ववदाहरेत् ॥ १७२ ॥
कल्पोक्तपूजां सम्पूज्य जपेत् प्रयतमानसः ।
दिग्वासाश्च जपेन्मन्त्रमयुतं सर्वदैवतम् ॥ १७३ ॥
जपान्ते च बलिं दत्त्वा दक्षिणां विभवावधि ।
सर्वसिद्धिर्भवेद्विद्वान् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ १७४ ॥

पूर्वोक्त क्रम मार्ग से आसन का संस्कार करे। पूर्ववत् महाकालादि देवताओं को बलि देवे। सम्प्रदायानुसार पूजा कर स्थिर चित्त से नङ्गा होकर दश हजार की संख्या में जप करे। जप के अन्त में अपने विभव के अनुसार दक्षिणा देना चाहिये। ऐसा करने से सब प्रकार की सिद्धि हो जाती है ॥ १७२-१७४ ॥

पूर्ववद्वीरवेशेन यात्रां कृत्वा सुसाधकः ।
साधकैः सह सामग्रीं पूजायां विविधां तथा ॥ १७५ ॥

अब अन्य पुरश्चरण कहते हैं—सर्वदेवनमस्कृत विद्वान् सुसाधक पूर्ववद् वीर वेश बनाकर साधकों के साथ यात्रा करे। साथ में पूजा के लिये नाना प्रकार की सामग्री भी एकत्रित करे ॥ १७५ ॥

स्थाने पूर्वोदिते वीरः शवं चैव समानयेत् ।
वर्मास्त्रमनुना हस्तप्रमाणं चतुरस्त्रकम् ॥ १७६ ॥
लिखित्वा मण्डलं तत्र तेनैव स्थापयेच्छवम् ।
ततो नाथयुगन्त्राहि युगलं तदनन्तरम् ॥ १७७ ॥
मम कार्यं कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ततः परम् ।
इत्यात्मानं शवं चैव वेष्टयित्वा च साधकः ॥ १७८ ॥

फिर वह वीर साधक पूर्वोक्त स्थान में शव ले आवे और उसकी पीठ पर चौकोर चिह्न वर्म (हुं) अस्त्र (फट्) इस मन्त्र से निर्माण करे। फिर मण्डल पर पूर्व क्रम के अनुसार अधोमुख शव स्थापित करे। फिर 'नाथ नाथ त्राहि त्राहि मम कार्यं कुरु स्वाहा अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से प्रयोगकर्त्ता साधक अपने को तथा शव को भी वेष्टित करे ॥ १७६-१७८ ॥

रेखात्रयं प्रकुर्वीत बलिं पश्चान्निवेदयेत् ।
डाकिनीहाकिनीभ्यश्च शाकिनीभ्योऽपि सन्दिशेत् ॥ १७९ ॥
समांसमधुसंयुक्तं पूर्वपश्चिमयोगतः ।
वामदेवाय दत्त्वा वै रक्तदन्ताय दापयेत् ॥ १८० ॥

फिर तीन रेखा बनावे उसके पश्चात् डाकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी का आवाहन करे और उन्हें बलि देवे । फिर पूर्व से पश्चिम तक मांस मधु मिश्रित बलि वामदेव को देकर रक्तदन्त को भी देवे ॥ १७९-१८० ॥

तेजसे च बलित्रयं घृतमिरं सशर्करम् ।
दक्षिणे रुद्रकालाय वज्रनाभाय सन्दिशेत् ॥ १८१ ॥
सपिष्टकं घृतान्नञ्च यवपिष्टञ्च दापयेत् ।
उत्तरस्याञ्च वह्नये दत्त्वा च बलिरूपिणे ॥ १८२ ॥
गुडौदनं पायसञ्च बलिं निवेद्य साधकः ।
ततः सम्पूजयेद् देवीं स्वकल्पोक्तविधानतः ॥ १८३ ॥

फिर तेज को शर्करा और घृत मिश्रित तीन बलि देवे दक्षिण दिशा में रुद्र काल और वज्रनाभ को अपूप एवं घृतान्न तथा यवपिष्ट की बलि देवे । फिर उत्तर दिशा में बलि रूप धारण करने वाले अग्नि के लिये गुड़, ओदन और पायस की बलि देकर साधक अपने सम्प्रदायानुसार देवी की पूजा करे ॥ १८१-१८३ ॥

अस्त्रमन्त्रेण संस्थाप्य शवं तैलहरिद्रया ।
उद्वर्त्तनं ततः कृत्वा स्नापयित्वा तु साधकः ॥ १८४ ॥
सम्मार्ज्य वाससा तत्र महाप्रेतासनं यजेत् ।
जीवन्यासं विधायाथ पाद्यादिभिः प्रपूजयेत् ॥ १८५ ॥

फिर अस्त्र (फट्) मन्त्र से शव स्थापित कर तेल मिश्रित हरिद्रा से उसको उपटन लगावे, स्नान करावे । वस्त्र से उसे पोंछे, उस महाप्रेतासन की पूजा निम्न प्रकार से करे । उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर पाद्यादि से पूजा करे ॥ १८४-१८५ ॥

मूलेन जुटिकां बद्ध्वा पद्मं पूर्ववदालिखेत् ।
आसनं पूर्ववत् क्षिप्त्वा मूलमुच्चार्य साधकः ॥ १८६ ॥
अश्वारोहणरूपेण स्थित्वा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
अनन्यमानसो भूत्वा जपात् सिद्धिः प्रजायते ॥ १८७ ॥

मूल मन्त्र से शव के केश बाँधकर केश की जटा बनावे । फिर आसन पर कमल का चिह्न बनाकर पूर्ववत् उसे स्थापित करे । जिस प्रकार घोड़ा की सवारी की जाती है उसी प्रकार, उस आसन पर मूल मन्त्र पढ़कर बैठकर सुधी साधक

मन्त्र का जप करे । यदि अनन्य मन (स्थिर चित्त) से जप किया जाय तो सिद्धि हो जाती है ॥ १८६-१८७ ॥

भीतश्चेत् साधकस्तत्र गुरुपादयुगं स्मरेत् ।
गुरुपादप्रसादेन मा हिंसन्ति च हिंसकाः ॥ १८८ ॥

यदि साधक को भय मालूम पड़े, तो अपने गुरु के चरण कमलों का स्मरण करे । गुरु के चरण कमल की कृपा से हिंसक जन्तु हिंसा नहीं करते ॥ १८८ ॥

इति चित्तं स्थिरीकृत्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
देवता यदि वामे वै आगच्छति कदाचन ॥ १८९ ॥
सम्भाषणा च कार्या वै न दातव्यं प्रियं वचः ।
हूङ्कारिणैव तां कुर्यात् स्वदक्षे साधकोत्तमः ॥ १९० ॥

इस प्रकार चित्त स्थिर कर एकाग्र हो मन्त्र का जप करे । यदि कदाचित् बाईं ओर से देवता उपस्थित हों और उनसे सम्भाषण करें किन्तु प्रिय न बोले, तो उन्हें उत्तम साधक अपने हुङ्कार से अपने दाहिने कर देवे ॥ १८९-१९० ॥

गत्वा च दक्षिणे सापि देहि देहीति भाषिते ।
तथापि च बलिं दत्त्वा अशक्तौ मनसाऽथवा ॥ १९१ ॥

वह देवता दक्षिण भाग में जाकर यदि 'देहि देहि' ऐसा कहे तभी उन्हें बलि देवे । अशक्त होने पर मन से ही बलि देवे ॥ १९१ ॥

लब्ध्वाभीष्टं निजं वीरो गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
शवादिकञ्जले क्षिप्त्वा गृहं गच्छेत् यथासुखम् ॥ १९२ ॥

तदनन्तर उस देवता से अपना अभीष्ट प्राप्त कर वीर साधक गुरु को दक्षिणा प्रदान करे । शव को जल में फेंक देवे और सुखपूर्वक अपने घर जावे ॥ १९२ ॥

बटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च ।
स्नात्वा तत्र मनुं जप्त्वा अयुतं साधकोत्तमः ॥ १९३ ॥
सर्वसिद्धीश्वरो वीरो भवेन्नात्र विकल्पनम् ।
बिल्वमूले निजक्रोडे शवमारोप्य यत्नतः ॥ १९४ ॥
नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकया सुधीः ।
सहस्त्रं तत्र जप्त्वा वै सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १९५ ॥

अब **सिद्धि का अन्य उपाय** कहते हैं—वट वृक्ष के मूल के नीचे शव लाकर उसपर देवी की पूजा करे । स्नान कर दश हजार मन्त्र जप कर वीर साधक सभी सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है, इसमें सन्देह न करे । (अन्य उपाय) बेल के पेड़

रेखात्रयं प्रकुर्वीत बलिं पश्चान्निवेदयेत् ।
डाकिनीहाकिनीभ्यश्च शाकिनीभ्योऽपि सन्दिशेत् ॥ १७९ ॥
समांसमधुसंयुक्तं पूर्वपश्चिमयोगतः ।
वामदेवाय दत्त्वा वै रक्तदन्ताय दापयेत् ॥ १८० ॥

फिर तीन रेखा बनावे उसके पश्चात् डाकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी का आवाहन करे और उन्हें बलि देवे । फिर पूर्व से पश्चिम तक मांस मधु मिश्रित बलि वामदेव को देकर रक्तदन्त को भी देवे ॥ १७९-१८० ॥

तेजसे च बलित्रयं घृतमिरं सशर्करम् ।
दक्षिणे रुद्रकालाय वज्रनाभाय सन्दिशेत् ॥ १८१ ॥
सपिष्टकं घृतान्नञ्च यवपिष्टञ्च दापयेत् ।
उत्तरस्याञ्च वह्नये दत्त्वा च बलिरूपिणे ॥ १८२ ॥
गुडौदनं पायसञ्च बलिं निवेद्य साधकः ।
ततः सम्पूजयेद् देवीं स्वकल्पोक्तविधानतः ॥ १८३ ॥

फिर तेज को शर्करा और घृत मिश्रित तीन बलि देवे दक्षिण दिशा में रुद्र काल और वज्रनाभ को अपूप एवं घृतान्न तथा यवपिष्ट की बलि देवे । फिर उत्तर दिशा में बलि रूप धारण करने वाले अग्नि के लिये गुड़, ओदन और पायस की बलि देकर साधक अपने सम्प्रदायानुसार देवी की पूजा करे ॥ १८१-१८३ ॥

अस्त्रमन्त्रेण संस्थाप्य शवं तैलहरिद्रया ।
उद्वर्त्तनं ततः कृत्वा स्नापयित्वा तु साधकः ॥ १८४ ॥
सम्मार्ज्य वाससा तत्र महाप्रेतासनं यजेत् ।
जीवन्यासं विधायाथ पाद्यादिभिः प्रपूजयेत् ॥ १८५ ॥

फिर अस्त्र (फट्) मन्त्र से शव स्थापित कर तेल मिश्रित हरिद्रा से उसको उपटन लगावे, स्नान करावे । वस्त्र से उसे पोंछे, उस महाप्रेतासन की पूजा निम्न प्रकार से करे । उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर पाद्यादि से पूजा करे ॥ १८४-१८५ ॥

मूलेन जुटिकां बद्ध्वा पद्मं पूर्ववदालिखेत् ।
आसनं पूर्ववत् क्षिप्त्वा मूलमुच्चार्य साधकः ॥ १८६ ॥
अश्वारोहणरूपेण स्थित्वा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
अनन्यमानसो भूत्वा जपात् सिद्धिः प्रजायते ॥ १८७ ॥

मूल मन्त्र से शव के केश बाँधकर केश की जटा बनावे । फिर आसन पर कमल का चिह्न बनाकर पूर्ववत् उसे स्थापित करे । जिस प्रकार घोड़ा की सवारी की जाती है उसी प्रकार, उस आसन पर मूल मन्त्र पढ़कर बैठकर सुधी साधक

मन्त्र का जप करे । यदि अनन्य मन (स्थिर चित्त) से जप किया जाय तो सिद्धि हो जाती है ॥ १८६-१८७ ॥

भीतश्चेत् साधकस्तत्र गुरुपादयुगं स्मरेत् ।
गुरुपादप्रसादेन मा हिंसन्ति च हिंसकाः ॥ १८८ ॥

यदि साधक को भय मालूम पड़े, तो अपने गुरु के चरण कमलों का स्मरण करे । गुरु के चरण कमल की कृपा से हिंसक जन्तु हिंसा नहीं करते ॥ १८८ ॥

इति चित्तं स्थिरीकृत्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
देवता यदि वामे वै आगच्छति कदाचन ॥ १८९ ॥
सम्भाषणा च कार्या वै न दातव्यं प्रियं वचः ।
हूङ्कारिणैव तां कुर्यात् स्वदक्षे साधकोत्तमः ॥ १९० ॥

इस प्रकार चित्त स्थिर कर एकाग्र हो मन्त्र का जप करे । यदि कदाचित् बाईं ओर से देवता उपस्थित हों और उनसे सम्भाषण करें किन्तु प्रिय न बोले, तो उन्हें उत्तम साधक अपने हुङ्कार से अपने दाहिने कर देवे ॥ १८९-१९० ॥

गत्वा च दक्षिणे सापि देहि देहीति भाषिते ।
तथापि च बलिं दत्त्वा अशक्तौ मनसाऽथवा ॥ १९१ ॥

वह देवता दक्षिण भाग में जाकर यदि 'देहि देहि' ऐसा कहे तभी उन्हें बलि देवे । अशक्त होने पर मन से ही बलि देवे ॥ १९१ ॥

लब्ध्वाभीष्टं निजं वीरो गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
शवादिकञ्जले क्षिप्त्वा गृहं गच्छेत् यथासुखम् ॥ १९२ ॥

तदनन्तर उस देवता से अपना अभीष्ट प्राप्त कर वीर साधक गुरु को दक्षिणा प्रदान करे । शव को जल में फेंक देवे और सुखपूर्वक अपने घर जावे ॥ १९२ ॥

बटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च ।
स्नात्वा तत्र मनुं जप्त्वा अयुतं साधकोत्तमः ॥ १९३ ॥
सर्वसिद्धीश्वरो वीरो भवेन्नात्र विकल्पनम् ।
बिल्वमूले निजक्रोडे शवमारोप्य यत्नतः ॥ १९४ ॥
नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकया सुधीः ।
सहस्रं तत्र जप्त्वा वै सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १९५ ॥

अब **सिद्धि का अन्य उपाय** कहते हैं—वट वृक्ष के मूल के नीचे शव लाकर उसपर देवी की पूजा करे । स्नान कर दश हजार मन्त्र जप कर वीर साधक सभी सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है, इसमें सन्देह न करे । (अन्य उपाय) बेल के पेड़

के नीचे शव को अपनी गोद में यत्नपूर्वक स्थापित कर, उसे नृसिंह मुद्रा से देखकर, मातृका मन्त्र से एक सहस्र की संख्या में जप करे, तो वह तत्त्वज्ञ साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है ॥ १९३-१९५ ॥

जानुमध्ये करौ कृत्वा चिबुकोष्ठौ समावृतौ ।
हस्तौ च भूमिसंलग्नौ कम्पमानः पुनः पुनः ॥ १९६ ॥
मुखं विवृतकं कुर्यात् लेलिहानञ्च जिह्वया ।
नारसिंही भवेन्मुद्रा सर्वसिद्धिप्रदायिका ॥ १९७ ॥

दोनों हाथ जानु के मध्य में रखकर, चिबुक को ओष्ठ से बन्द कर हाथ को भूमि में लगाकर वारम्बार कम्पन करे और मुख को फैला कर साधक जीभ को लपलपाता रहे, तो यह नारसिंही मुद्रा कही जाती है जो समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली कही गई है ॥ १९६-१९७ ॥

सहस्रं तत्र जप्त्वा वै सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीरोचनाघनचन्दनम् ॥ १९८ ॥
कर्पूरं पद्मकाष्ठञ्च केशरं हरिचन्दनम् ।
एकत्र साधितं कृत्वा प्रत्येकं साधयेन्नरः ॥ १९९ ॥

वहाँ बैठकर साधक उस मुद्रा से यदि एक सहस्र जप करे तो वह सिद्धीश्वर बन जाता है। प्रयोगकर्त्ता साधक कुङ्कुम, अगुरु, कस्तूरी, रोचना, घन, चन्दन, कपूर, पद्मकाष्ठ, नागकेशर और हरिचन्दन इनको एक में मिलाकर रखे और अलग-अलग भी रखे ॥१९८-१९९ ॥

विद्युदग्नियुतं चैव नेत्रान्तं चन्द्रविन्दुयुक् ।
बीजं प्रत्येकं द्रव्याणां मिलितानाञ्च साधकः ॥ २०० ॥
मूलमन्त्रं च मन्त्रज्ञो जपेत् साष्टसहस्रकम् ।
अस्य तिलकमात्रेण राजानं वशमानयेत् ॥ २०१ ॥

अग्नि (रेफ) से युक्त विद्युत् (?) चन्द्र विन्दु (अनुस्वार) से युक्त नेत्रान्त (?) फिर प्रत्येक द्रव्यों के बीज मन्त्र एवं उन मिलित द्रव्यों के बीज मन्त्र, फिर मूल मन्त्र का जप साधक आठ सहस्र करे और उक्त द्रव्यों का तिलक देवे तो राजा को भी वश में किया जा सकता है ॥ २००-२०१ ॥

जिह्वाग्रे रुधिरं वीर आकाशे स्वयमाहरेत् ।
तेनैव गुटिकां कृत्वा तत्र कालीं प्रपूजयेत् ॥ २०२ ॥

जिह्वा आकाश (बाहर) में कर उसके अग्रभाग से स्वयं रुधिर निकाल कर उसकी गुटिका (गोली) बनाकर उससे काली का पूजन करे ॥ २०२ ॥

नीलां नीलपताकाञ्च लोलजिह्वां कपालिनीम् ।
जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनिःस्वने ॥ २०३ ॥
बलिं गृह्ण वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले ।
कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं ततः ॥ २०४ ॥
कालिकेति समाख्याता वीराणां हितकाम्यया ।
कूर्चयुग्मं तु नीलायाः कथितं मन्त्रमुत्तमम् ॥ २०५ ॥

नीला मन्त्रोद्धार—अब पूजन के लिये काली का मन्त्र कहते हैं—नीलां नीलपताकां च.........प्रचण्डोग्रे पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर अस्त्र (फट्), फिर कवच (हुं) पढ़े । यह वीर साधकों के हित के लिये कालिका का महामन्त्र कहा गया है । दो बार कूर्च (हुं हूं) यह नीला का मन्त्र कहा गया है ॥ २०३-२०५ ॥

वियद्भृगुरमां चैव बलमिन्द्ररवी रतिः ।
चन्द्रखण्डसमीयुक्तं ततो नीलपदं ततः ॥ २०६ ॥
पताके हुं फडन्तः स्यात् पूर्वकूटमनुर्मतः ।
सन्तप्तेयं महाविद्या कथिता सुरदुर्लभा ॥ २०७ ॥
जय श्रीधरणीदेवी पताके वरणस्थले ।
तेन नीलपताकेयं संयोज्या नीलसाधने ॥ २०८ ॥

सन्तप्त महाविद्या—वियद् (हं), भृगु (सं), रमा (श्रीं), बल (?), इन्द्र (ल), रवि (मं), रति (णं) इनको चन्द्र खण्ड अनुस्वार से युक्त करे । इसके बाद 'नील' पद का उच्चारण करे फिर 'पताके हुं फट्' यह पूर्वकूट मन्त्र कहा जाता है । यह सन्तप्ता महाविद्या कही गई है जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है । नील साधना के समय 'पताके' के वरणस्थल में 'जय श्री धरणी नीलपताके' इतना जोड़ देना चाहिये ॥ २०६-२०८ ॥

श्रीशक्तिस्मरबीजानि तदन्ते हूमिति स्मरेत् ।
भृगुं सर्गान्वितं पश्चाद्दीर्घं कवचमुद्धरेत् ॥ २०९ ॥
उग्रचण्डे पदं पश्चान्मामन्ते रक्षयुग्मकम् ।
मम शत्रुपदस्यान्ते ततो भक्षपदं वदेत् ॥ २१० ॥
ह्रीं क्लीं सः इत्यन्ते श्रीशक्तिस्मरबीजानि तदन्ते ।
राज्यं मे देहि सम्भाष्य भृगुं सर्गान्वितं वदेत् ॥ २११ ॥
क्लींकारञ्च ततो ब्रूयात् कामं मायां रमान्ततः ।
एकचत्वारिंशदर्णो मनुः प्रोक्तो ध्रुवादिकः ॥ २१२ ॥

उग्र चण्डा महाविद्या—'ॐ, श्रीबीज (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), स्मर बीज (क्लीं),

इसके बाद 'हूं', फिर सर्गयुक्त भृगु (सः), फिर दीर्घ कवच (हूं), फिर 'उग्रचण्डे मां रक्ष रक्ष मम शत्रुं भक्षय ह्रीं क्लीं सः श्रीं ह्रीं क्लीं राज्यं मे देहि सः क्लीं' फिर काम (क्लीं), फिर माया (ह्रीं), फिर रमा (श्रीं) कहे और आदि में ॐ लगावे। यह एकतालिस अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इसके आदि में ध्रुव (ॐ) लगाना चाहिये ॥ २०९-२१२ ॥

उग्रचण्डा महाविद्या लोलजिह्वेति कीर्त्तिता ।
या सा विद्या महातारा सा करालेति कीर्त्तिता ॥ २१३ ॥

इसे उग्रचण्डा महाविद्या अथवा लोल जिह्वा विद्या कहा जाता है और जो महातारा विद्या है उसे कराला विद्या कहा जाता है ॥ २१३ ॥

महातारामन्त्रोद्धारः

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारे तु तारे च तथा ।
नमः स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदीरितः ॥ २१४ ॥
कथिता च महातारा सर्वसिद्धिप्रदायिका ।
एभिरामन्त्रितं चैव मूलेनैव सहस्रकम् ॥ २१५ ॥
ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीतभीः स्वयम् ।

महातारा मन्त्रोद्धार—पहले प्रणव (ॐ), फिर तारे तु तारे, फिर 'नमः स्वाहा', यह दश अक्षर का मन्त्र है इसे महातारा मन्त्र कहा जाता है जो सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करती है। इनको पहले लगाकर मूल मन्त्र का सहस्र बार जप करे। इस मन्त्र का जप ललाट में तिलक लगाकर करने से साधक निर्भय हो जाता है ॥ २१४-२१६ ॥

महाष्टमीनवम्योस्तु संयोगे पुरतः स्थितः ॥ २१६ ॥
छागमहिषमेषाणां चतुर्दिक्ष शवान् क्षिपेत् ।
कबन्धं मुण्डपुञ्जञ्च दीपादिभिरलंकृतम् ॥ २१७ ॥
मध्ये कबन्धमास्त्रीर्य तत्र गन्धर्वरूपधृक् ।
ताम्बूलपूरवक्त्रञ्च अञ्जनाञ्चितलोचनम् ॥ २१८ ॥
कृत्वा तारं मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।

जब महाष्टमी एवं महानवमी का संयोग हो, तब देवी के आगे खड़े होकर बकरा; भैंस और भेंड़ का मांस चारों ओर फेंक देवे। कबन्ध तथा मुण्डपुञ्ज पर दीपक जलाकर उसे अलंकृत करे। फिर कबन्ध के मध्य में बैठकर गन्धर्व का नग्न रूप धारण करे। मुख ताम्बूल से पूर्ण करे आँखों में अञ्जन लगावे। इस प्रकार अपना स्वरूप बनाकर तार मन्त्र का जप करे तो वह सर्वसिद्धीश्वर बन

जाता है ॥ २१६-२१९ ॥

अथ पूर्वोदिते स्थाने चतुष्पथे विशेषतः ॥ २१९ ॥
ऊर्ध्वं द्विवर्षाद्यदि वा पञ्च वा तरुणं यदि ।
सप्तमाष्टममासीयं गर्भजं यदि वा शवम् ॥ २२० ॥
चाण्डालञ्चाभिभूतं तु शीघ्रसिद्धिफलप्रदम् ।
आनीय स्थापयेदादौ न्यासजालं समाचरेत् ॥ २२१ ॥
प्रेतमन्त्रं समालिख्य गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।
अभ्यर्च्य चाऽऽसनं दत्त्वा रक्षामात्मनि कारयेत् ॥ २२२ ॥

अब अन्य विधान कहते हैं । पूर्वोक्त किसी स्थान में विशेषकर चौराहे पर दो वर्ष से ऊपर पाँच वर्ष तक, अथवा युवावस्था, अथवा सात महीने, या आठ महीने का गर्भजात शिशु चाण्डाल अथवा नीच जाति का हो तो शीघ्र सिद्धि का फल प्राप्त हो जाता है । उस प्रकार के शव को ले आकर स्थापित करे । फिर न्यास जाल करे । उस पर प्रेत मन्त्र लिखकर गन्ध पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करे और उस पर आसन रखकर आत्म रक्षा करे ॥ २१९-२२२ ॥

शवसाधनेन सर्वसिद्धिः

ततः शवास्ये विधिवद्देवताप्यायनं ततः ।
ततो जप्त्वा सर्वमन्त्र सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ २२३ ॥

फिर शव के मुख में देवता का आप्यायन करे । तदनन्तर सर्व मन्त्र का जप कर सर्व सिद्धीश्वर बन जाता है ॥ २२३ ॥

तारं शब्दं मृतकाय नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरन् ।
शवस्थापनमन्त्रोऽयं शवासनमनुं ततः ॥ २२४ ॥
मूलान्ते भुवनेशी स्यात् फडन्तो मन्त्र ईरितः ।
करकाञ्चीं समादाय मुण्डमालाविभूषितः ॥ २२५ ॥
तेनैव तिलकं कृत्वा तत्तद्भस्मविभूषितः ।
श्मशाने च सकृज्जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ २२६ ॥

तार (ॐ), शब्द (ऐं), मृतकाय नमः'—यह शव स्थापन मन्त्र है । इसके बाद शवासन मन्त्र इस प्रकार है—प्रथम मूल, उसके बाद भुवनेशी, फिर फट्, यह शवासन मन्त्र कहा गया है । शव के हाथ की काञ्ची पहने, उसके मुण्डों की माला पहने, उसी शव का तिलक लगावे, तत्तद् भस्म से विभूषित होकर श्मशान में एक बार के जप से भी साधक सर्वसिद्धीश्वर बन जाता है ॥ २२४-२२६ ॥

मत्स्यमानीय वीरेन्द्रो निःक्षिपेत् पितृकानने ।

तत्र सकृज्जपित्वा तु देवतामेलनं भवेत् ॥ २२७ ॥

वीर साधक मत्स्य लाकर श्मशान में चारों ओर फेंक देवे । वहाँ एक बार भी जप करे तो साक्षात् देवता प्राप्त हो जाते हैं ॥ २२७ ॥

तत्र नत्वा महादेवं महादेवीञ्च साधकः ।
तद्भस्मतिलकं कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत् ॥ २२८ ॥

फिर साधक वहाँ महादेव और महादेवी को नमस्कार कर शव के भस्म का तिलक लगावे तो साधक स्वयं वीरेश्वर बन जाता है ॥ २२८ ॥

निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः ।
दिग्वासा विमलो भस्मभूषणो मुक्तकेशकः ॥ २२९ ॥
कपाली खड्गहस्तश्च जपेन्मातृकया सुधीः ।
तदा तस्य महासिद्धिर्जायते शतजापतः ॥ २३० ॥

रात्रि के समय श्मशान पर जहाँ आनन्द भैरव का निवास है, वहाँ नङ्गा होकर पापरहित हो, भस्म से भूषित हो, केश को खुला रखकर, कपाल एवं खड्ग हाथ में धारण कर मातृका अक्षरों से सुधी साधक जप करे । इस प्रकार केवल सौ संख्याक जप से महासिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २२९-२३० ॥

डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यां वा भूतलाङ्गनाम् ।
तत्राऽप्यानीय सम्पूज्य गजान्तकसहस्रकम् ॥ २३१ ॥
जप्त्वा च साधकश्रेष्ठः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधानशवसाधने ॥ २३२ ॥

डाकिनी, योगिनी, अथवा अन्य पृथ्वी पर रहने वाली अङ्गना को उस स्थान पर लाकर, पूजा कर, एक हजार जप करे, तो साधक सर्व-सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है । प्रधान शव साधन में महाशव प्रशस्त कहे गये हैं ॥ २३१-२३२ ॥

क्षुद्राः प्रयोगकर्त्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः ।
सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां नीलसाधने ॥ २३३ ॥
ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम् ।
एवं नीलक्रमं चैव कथितञ्च शुभावहम् ॥ २३४ ॥

केवल प्रयोग करने वालों के लिये क्षुद्र शव प्रशस्त हैं और सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करते हैं । नीला के साधन में सभी जन्तुओं के शव, ब्राह्मण और गौ को छोड़कर प्रशस्त कहे गये हैं । अतः उनसे वीर साधना करे । इस प्रकार नील क्रम जो अत्यन्त कल्याणकारी हैं, हमने कहा ॥ २३३-२३४ ॥

न कस्मैचित्प्रवक्तव्यं मन्त्रसिद्धेश्च कारणम् ।
कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहितः ॥ २३५ ॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विलेपितम् ।
निःक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः काननान्तरे ॥ २३६ ॥
तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः ।
एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः ॥ २३७ ॥

मन्त्र सिद्धि में कहे गये उपर्युक्त कारणों को किसी भी व्यक्ति से नहीं कहना चाहिये । मङ्गलवार अथवा शनिवार के दिन स्थिर चित्त हो नरमुण्ड को पञ्चगव्य से शुद्ध करे और चन्दनादि का लेप करे । फिर उसे किसी वन में भूमि के भीतर आधा हाथ गड्ढ़ा खोदकर गाड़ देवे । वहाँ यदि मनुष्य उसी दिन से रात्रि पर्यन्त अकेले यदि मनुष्य एक सहस्र की संख्या में जप करे तो वह साधक साक्षात् कल्पवृक्ष हो जाता है ॥ २३५-२३७ ॥

शवमानीय तद्द्वारि तत्रैव परिखन्य च ।
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम् ॥ २३८ ॥
स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ।
अथवा विजनेऽरण्येऽस्थिशय्यासनो नरः ॥ २३९ ॥
उदयास्तं दिवा जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।

शव लाकर उसके द्वार पर खनकर गाड़ देवे । उस दिन से लेकर पुनः आगामी उस दिन तक केवल १०८ संख्या में जप करे, तो वह सर्वसिद्धीश बन जाता है, इसमें सन्देह नहीं । अथवा विजन वन प्रदेश में अस्थिशय्या का आसन बनाकर दिन में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त जप करने वाला सर्व सिद्धीश्वर बन जाता है ॥ २३८-२४० ॥

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ २४० ॥
सूर्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरम् ।
तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ २४१ ॥

दोनों पक्ष में होने वाली अष्टमी और चतुर्दशी तिथि को सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन सूर्योदय पर्यन्त जप करे, तो सभी आतङ्कों से रहित होकर सर्व सिद्धीश्वर हो जाता है ॥ २४०-२४१ ॥

चन्द्रसूर्यग्रहणे पुरश्चरणविधानम्

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य शुचिः पूर्वमुपोषितः ।
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमावस्थितेऽम्भसि ॥ २४२ ॥

यद्वा शुद्धोदके स्नात्वा शुचौ देशे समाहितः ।
ग्रासाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपं कुर्यादनन्यधीः ॥ २४३ ॥

चन्द्र सूर्य के ग्रहण काल में, पूर्व काल से ही पवित्र होकर उपवास करते हुये, समुद्रगामिनी नदी के जल में, नाभि मात्र स्थित होकर, अथवा किसी शुद्धोदक से स्नान कर, किसी पवित्र देश में, समाहित हो, ग्रास लगने से आरम्भ कर ग्रहण के मुक्ति पर्यन्त दत्तचित्त हो जप करे ॥ २४२-२४३ ॥

अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकञ्चरेत् ।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥ २४४ ॥
ततश्च मन्त्रसिद्धं तु गुरुं सम्पूज्य तोषयेत् ।
सूर्यग्रहणकालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते ॥ २४५ ॥

इसके बाद जप के दशांश से होम करे । उसके बाद भगवती की पूजा कर ब्राह्मण भोजन करावे । इसके बाद गुरु की पूजाकर उन्हें सन्तुष्ट करे तो उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है । अतः इस कार्य में सूर्य ग्रहण काल को छोड़कर अन्य काल प्रशस्त नहीं बतलाया गया है ॥ २४३-२४५ ॥

तत्र यद्यत् कृतं कर्म अनन्तफलदं भवेत् ।
शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं विशेषतः ॥ २४६ ॥
भक्तितः पूजयित्वा च रात्रौ तावत् सहस्रकम् ।
जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ॥ २४७ ॥
अष्टम्यादि नवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ।
स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ॥ २४८ ॥

उस ग्रहण काल में जो-जो भी कार्य किया जाता है, वह अनन्त फलदायी होता है। शरत्काल के आने पर, विशेष कर चतुर्थी से लेकर नवमी पर्यन्त, रात्रि काल में, भक्तिपूर्वक भगवती की पूजा कर, अकेले किसी निर्जन वन में, घोर अन्धकार होने पर जप करे । अष्टमी के आदि से लेकर नवमी के अन्त तक उपवास करे तो वह साधक सर्वसिद्धीश बन जाता है, इसमें किसी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं ॥ २४६-२४८ ॥

अष्टमीसन्धिवेलायामष्टोत्तरलतागृहम् ।
प्रविश्य मन्त्री विधिवत्ताः समभ्यर्च्च्य यत्नतः ॥ २४९ ॥
स्वकल्पोक्तविधानेन पूजयित्वा च साधकः ।
केवलं कामभावेन जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ २५० ॥
तासाञ्च पत्रमूलेन उल्कां संगृह्य कर्णके ।

महासिद्धिर्भवेत् सद्यो लतादर्शनपूजनात् ॥ २५१ ॥

अष्टमी के दिन सन्ध्या के समय १०८ लताओं वाले गृह में जाकर मन्त्रज्ञ साधक जाकर, प्रयत्नपूर्वक अपने सम्प्रदायानुसार पूजाकर, केवल कामभाव से एक-सौ आठ संख्या में, उन लताओं के पत्र के मूल का उल्का कान में लगाकर जप करे। इस प्रकार पुनः लता का पूजन और दर्शन करे तो उसे महासिद्धि होती है ॥ २४९-२५१ ॥

कुलाष्टकं लतागारे लिखित्वा यन्त्रमेव च ।
प्रपूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेदयेत् ॥ २५२ ॥
किञ्चिज्जप्त्वा मनुं नीत्वा देवताभावनापरः ।
तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयतः ॥ २५३ ॥
प्रीतः स्त्रीभ्यो बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः ।

लतागृह में कुलाष्टक यन्त्र लिखकर, फिर संस्कार कर उसकी पूजा करे। फिर भगवती को निवेदन करे। फिर देवता की भावना में तत्पर हो कर, कुछ जप कर, नमस्कार कर, उसका विसर्जन करे। फिर सुसंयत होकर, स्त्रियों के साथ जप कर, प्रसन्नतापूर्वक देवी को बलि प्रदान करे तो सर्व प्रकार की मन्त्र सिद्धि हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २५२-२५४ ॥

अथवा गुरुमानीय देवभावेन पूजयेत् ॥ २५४ ॥
वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च ।
तत्सुतं तत्सुतां चैव पत्नीं चैव विशेषतः ॥ २५५ ॥

अथवा गुरु को अपने घर बुलाकर देवता भाव से पूजन करे और उन गुरु को वस्त्र, अलङ्कार एवं सुवर्ण देकर सन्तुष्ट करे। विशेष रूप से उनके लड़के, लड़की एवं पत्नी को सन्तुष्ट करे ॥ २५४-२५५ ॥

पूजयित्वा मनुं जप्त्वा स्वयं सिद्धीश्वरो भवेत् ।
सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च ॥ २५६ ॥
केवलं देवताबुद्ध्या जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्यथाविभवविस्तरैः ॥ २५७ ॥

इस प्रकार पूजन कर मन्त्र का जप कर साधक स्वयं सभी सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है मस्तिष्क के सहस्रार चक्र में गुरु के चरण कमलों का देवता बुद्धि से ध्यान कर पूजन कर मन्त्र का जप कर स्वयं सिद्धीश्वर बन जाता है। गुरु को अपने समृद्धि के विस्तार के अनुसार दक्षिणा देवे ॥ २५६-२५७ ॥

गुरोरनुज्ञामात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।

गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन्नाऽधिकारी सुरोऽपि च॥ २५८ ॥
एषाञ्च मन्त्रहीनानां प्रयोगः क्रियते यदि ।
गुरुवक्त्रं विना चैव सिद्धि हानिः प्रजायते ॥ २५९ ॥
एतत्तन्त्रञ्च मन्त्रञ्च पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ।
अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम् ॥ २६० ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
चतुर्दशोल्लासः ॥ १४ ॥

क्योंकि गुरु की आज्ञा से सदोष भी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । गुरु को त्यागकर इस कौलशास्त्र के देवता भी अधिकारी नहीं हो पाते । यदि गुरु के मुख से मन्त्र लिये बिना मन्त्रहीन कोई भी व्यक्ति इसका प्रयोग करे, तो उसकी सिद्धि में हानि होती है । यह तन्त्र-मन्त्र सर्वथा गुप्त रखे । पुत्र को भी न दिखावे, अन्यथा वह मृत्यु को प्राप्त होता है, यह निश्चित है ॥ २५८-२६० ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के चतुर्दश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

पञ्चदश उल्लासः

...᠅❀᠅...
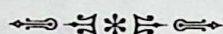
कुमारीपूजननिरूपणम्

अथ वक्ष्ये कुमारीणां पूजां तन्त्रविधानतः ।
होमादिकं हि विफलं कुमारीपूजनं विना ॥ १ ॥

इसके अनन्तर अब मैं तन्त्रशास्त्र के अनुसार कुमारी पूजा का विधान कहता हूँ। क्योंकि कुमारी पूजन के बिना होमादि समस्त कार्य विफल हो जाते हैं ॥ १ ॥

तद्विहीनं होमादिकं निष्फलम्

परिपूर्णफलं नैव जीवहीनं यथा वपुः ।
यथा यथा देवताया पूजनं वा यथागुरोः ॥ २ ॥
तथैव हि कुलीनानां कुमार्याः पूजनं भवेत् ।
यथाशक्त्या हि वितरेत् कुमार्यै यद्यदीप्सितम् ॥ ३ ॥

जिस प्रकार जीव के विना शरीर निष्फल है उसी प्रकार कुमारी पूजन के बिना पूर्णफल नहीं प्राप्त होता । जिन-जिन विधियों से देवता का पूजन अथवा जिस विधि से गुरु का पूजन किया जाता है, उसी प्रकार कौलों के लिये कुमारी पूजन आवश्यक है । साधक द्वारा कुमारी को जो-जो अभीष्ट हो उसकी पूर्त्ति यथाशक्ति करनी चाहिये ॥ २-३ ॥

अशक्यं शक्यमेवं हि दानाभावे फलात्ययः ।
पुष्पं कुमार्यै यद्दत्तं तन्मेरुसदृशं मतम् ॥ ४ ॥

चाहे समर्थ हो अथवा असमर्थ हो, कुमारी का मनोरथ पूर्ण करना ही चाहिये क्योंकि बिना अभीष्ट पूर्त्ति के फल प्राप्ति में बाधा होती है । यदि कुमारी को एक पुष्प भी दिया गया तो वह मेरु के सदृश महान् हो जाता है ॥ ४ ॥

दत्तमन्यच्च यत्किञ्चिद् भक्ष्यभोज्यादिकं तथा ।
अल्पमप्यथवा मन्त्रहीनं बहुगुणं भवेत् ॥ ५ ॥

इसके अतिरिक्त यत्किञ्चिद् उनको दिया गया भक्ष्य-भोज्य पदार्थ आदि स्वल्प एवं मन्त्रहीन होने पर भी बहुगुणित फल देता है ॥ ५ ॥

कुमारीपूजाफलम्

कुमारीपूजनाच्चैव कुमारीभोजनादपि ।
कुमारीवन्दनादेव कुमारीसदृशो भवेत् ॥ ६ ॥

कुमारी के पूजन से, कुमारी को भोजन कराने से और कुमारी की वन्दना करने से साधक कुमारी के सदृश हो जाता है ॥ ६ ॥

कुमार्यङ्गे सर्वदेवतास्थितिः

कुमारिका भवेत् देवी शिवोऽपि च कुमारिका ।
कुमारी योगिनी साक्षात् कुमारी सर्वदेवता ॥ ७ ॥
तस्याः पूजनमात्रेण त्रैलोक्यपूजनं भवेत् ।
सुकुमारी महादेवी त्रिधा मूर्त्तिर्व्यवस्थिता ॥ ८ ॥

कुमारिका देवी हैं, कुमारिका शिव हैं और कुमारी साक्षात् योगिनी हैं बहुत क्या कुमारी सभी देवता स्वरूप हैं । उसकी पूजा करने मात्र से त्रैलोक्य की पूजा निष्पन्न हो जाती है । महादेवी सुकुमारी तीन रूपों में व्याप्त हैं ॥ ७-८ ॥

परा चैवाऽपरा चैव तृतीया च परापरा ।
यत्र काले न किञ्चित् स्याद् देवासुरमहोरगाः ॥ ९ ॥
त्रैलोक्यं लयमानञ्च तदा जाता कुमारिका ।
आद्यसृष्टेश्च या शक्तिः प्रत्यक्षा सा तु तत्त्रिधा ॥ १० ॥

परा एवं अपरा और तीसरा परापरा-इस प्रकार उनके तीन रूप हैं । जिस काल में देवता, मनुष्य, असुर, महोरग किसी की उत्पत्ति नहीं हुई थी, सारा त्रैलोक्य लीयमान था, उस समय सर्वप्रथम कुमारिका की उत्पत्ति हुई । यह सृष्टि की आदिशक्ति हैं वह प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार की हो गई हैं ॥ ९-१० ॥

तिलतिला तु सा जाता सृष्टिरूपा भवार्णवे ।
भूर्भुवोमूर्त्तिरूपा सा एका पूज्या कुमारिका ॥ ११ ॥

तिल-तिल में (व्याप्त) वह कुमारिका इस संसार समुद्र में सृष्टिरूपा है और भू एवं भुवः मूर्त्तिस्वरूपा वह एक कुमारी का ही स्वरूप है, अतः पूजनीय है ॥११॥

एकीकृत्य त्रिभिश्चैव सप्ताष्टनवधा पुनः ।
नित्यक्रमेण देवेशि पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ १२ ॥

उनके इन तीन स्वरूपों को एक में मिलाकर सात, आठ अथवा नव रूपों में

नित्य के क्रम से विधिपूर्वक पूजा करे ॥ १२ ॥

अष्टोत्तरं शतं वापि एकां कन्यां प्रपूजयेत् ।
पूजिताः प्रतिगृह्णन्ते निर्गच्छन्त्यवमानिताः ॥ १३ ॥

अथवा एक ही कन्या का एक सौ आठ बार पूजन करे । ये कन्यायें पूजा करने पर अनुग्रह करती हैं और अपमान करने पर जला देती हैं ॥ १३ ॥

कुमारीपूजनेन सर्वदेव सन्तुष्टिः

असुराश्च तथा नागा ये च दुष्टग्रहा अपि ।
भूतवेतालगन्धर्वा डाकिनीयक्षराक्षसाः ॥ १४ ॥
क्रूराश्च देवताः सर्वे भूर्भुवश्चैव भैरवाः ।
पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ १५ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ॥ १६ ॥

असुर, नाग और दुष्टग्रह, भूत, बेताल, गन्धर्व, डाकिनी, यक्ष, राक्षस, नीच प्रकृति वाले देवता, भूः, भुवः, भैरव, पृथिव्यादि पञ्च महाभूत, समस्त चराचर, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव ये सभी जो कन्या का पूजन करते हैं उनसे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं ॥ १४-१६ ॥

कुमारी पूजनाच्चैव कोटिपूजाफलं लभेत् ।
घ्नन्ति विघ्नान् पूजितास्तास्तथा शत्रुं महोत्कटम् ॥ १७ ॥
व्याधयः सर्वरिष्टानि पलायन्ते न संशयः ।
ग्रहा यक्षाः क्षयं यान्ति भूतवेतालपन्नगाः ॥ १८ ॥
असुरा गुह्यकाः प्रेता योगिनी गुह्यडाकिनी ।
महाभयानि दुर्भिक्षमुत्पातानि सहस्रशः ॥ १९ ॥
दुःस्वप्नमपमृत्युश्च अन्ये ये ये समुद्भवाः ।
कुमारी पूजनादेव न तस्य प्रभवन्ति च ॥ २० ॥

मात्र कुमारी के पूजन से करोड़ों पूजा का फल प्राप्त होता है । ये कन्यायें पूजित होने पर समस्त विघ्नों का और अत्यन्त करके उग्र शत्रु का भी विनाश कर देती हैं । किं बहुना, व्याधियाँ और सभी प्रकार के अरिष्ट दूर भाग जाते हैं, इसमें संशय नहीं । ग्रह शान्त हो जाते है । यक्ष, भूत, बेताल एवं पन्नग नष्ट हो जाते हैं । असुर, गुह्यक, प्रेत, योगिनियाँ, गुप्त रूप में रहने वाली डाकिनी सभी दूर भाग जाते हैं । महाभयावह-हजारों दुर्भिक्ष, हजारों लाखों उत्पात, दुःस्वप्न एवं अपमृत्यु और भी जितने सांसारिक उपद्रव हैं वे सभी कुमारी के पूजन मात्र से ही

उत्पन्न नहीं होते ॥ १७-२० ॥

अणिमादीनि सिद्धानि पातालगुटिकाञ्जनाः ।
चतुष्कं दिव्यवेतालं भवेत् कुमारिकार्चनात् ॥ २१ ॥

कुमारी पूजा से अणिमादि सिद्धियाँ, पाताल, गुटिका एवं अञ्जन—ये चारों तथा दिव्य बेताल की सिद्धि हो जाती है ॥ २१ ॥

कुमारीलक्षणम्

लक्षणं यजनं तासां वक्ष्येऽहं तन्त्रवर्त्मना ।
द्वितीयवत्सरादूर्ध्वं यावत् स्यादष्टमाब्दिकम् ॥ २२ ॥
तावत् कुमारी विज्ञेया मन्त्रतन्त्रफलप्रदा ।
अथवा षोडशाब्दान्तं यावत् पुष्पं न जायते ॥ २३ ॥
ताम्यः पुष्पफलं वापि गन्धचन्दनपायसम् ।
बालप्रियञ्च नैवेद्यं बलाभावविचेष्टितम् ॥ २४ ॥
ताभिः प्रियकरालापैस्तोषयेत् साधकोत्तमः ।

कन्याओं के लक्षण तथा पूजन की विधि—अब उन कन्याओं के लक्षण तथा पूजन की विधि तन्त्रशास्त्र के अनुसार कहता हूँ—दो वर्ष से लेकर आठ वर्ष तक कन्यायें कुमारी कही गई हैं जो पूजा से मन्त्र एवं तन्त्र का फल प्रदान करती हैं, अथवा षोडश वर्ष तक की कन्यायें जब तक पुष्पवती नहीं होती, अथवा पुष्पवती हो भी जावें तब भी वे कन्यायें हैं उन्हें गन्ध, चन्दन, पायस एवं बाल-प्रिय नैवेद्य और बालभाव की चेष्टा करते हुए तथा प्रियशब्दों से बातचीत कर उत्तम साधक उन्हें सन्तुष्ट करे ॥ २२-२५ ॥

वयोभेदेन कुमारीणां नामभेदः

एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा च सरस्वती ॥ २५ ॥
त्रिवर्षा च त्रिधामूर्त्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका ।
सुभगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा च उमा भवेत् ॥ २६ ॥
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा च कुब्जिका ।
नवभिः कालसङ्कर्षा दशभिश्चापराजिता ॥ २७ ॥
एकादशे तु रुद्राणी द्वादशाब्दा तु भैरवी ।
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्ता पीठनायिका ॥ २८ ॥
क्षत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे वाचिका मता ।
एवं क्रमेण पूज्या तु यावत् पुष्पं न विद्यते ॥ २९ ॥

एक वर्ष की सन्ध्या, दो वर्ष की सरस्वती, त्रिवर्षा त्रिधामूर्त्ति, चतुर्वर्षा कालिका, पञ्चवर्षा सुभगा, षड्वर्षा कन्या उमा, सात वर्ष वाली मालिनी और अष्टवर्षा कन्या साक्षात् कुब्जिका कही गई है । नव वर्ष वाली कालसङ्कर्षा, दश वर्ष की अवस्था वाली अपराजिता, एकादश वर्ष वाली रुद्राणी, बारह वर्ष वाली भैरवी, तेरह वर्ष वाली महालक्ष्मी, चौदह वर्ष वाली पीठनायिका, पन्द्रह वर्ष वाली क्षत्रज्ञा और सोलह वर्ष वाली वाचिका नाम वाली कही गई हैं । इस नाम के क्रम से उनकी पूजा करनी चाहिये यदि वे पुष्पवती न हुई हों ॥ २५-२९ ॥

प्रशस्तदिवसकथनम्

प्रतिपदादिदर्शान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ।
महापर्वसु सर्वेषु विशेषश्च पवित्रके ॥ ३० ॥

प्रतिपदा से लेकर अमावास्या पर्यन्त वृद्धिभेद से कन्याओं का पूजन करे । (प्रतिपदा को एक द्वितीया को दो.....इत्यादि) सभी महा पर्वों में विशेषकर पवित्र काल में पूजा करे ॥ ३० ॥

महानवम्यां वीरेन्द्रः कुमारीः सम्प्रपूजयेत् ।
पिङ्गलां पूजयेद्यस्तु षोडशैश्चैव भक्तिमान् ॥ ३१ ॥
पूजयित्वा भक्तिभावे सर्वसम्पत्तिमालभेत् ।
पूजयेत् कुलविद्याञ्च चैकां बालकभैरवीम् ॥ ३२ ॥

वीर साधक महा नवमी को कुमारी का पूजन करे । जो भक्तिपूर्वक पिङ्गला की षोडशोपचारों से पूजा करते हैं, वे सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त कर लेते है, अथवा कुल विद्या स्वरूपा एक बालक भैरवी की ही पूजा करे ॥ ३१-३२ ॥

कुमारीपूजनमन्त्र कथनम्

एवं प्रणवयोगेन चैतन्यतनुमर्चयेत् ।
वाणी माया तथा लक्ष्मीर्माया कूर्चद्वयन्ततः ॥ ३३ ॥
एते च प्रणवा ज्ञेयाः कुमार्याः परिपूजने ।
एकादशस्वरेणाऽऽढ्यो भृगुर्विन्दिन्दु संयुतः ॥ ३४ ॥
चैतन्यबीजं कथितं साधकानां समृद्धिदम् ।

कुमारी पूजन के छह प्रणव—प्रणव से उन्हें चैतन्य शरीर वाली बनाकर पूजा करनी चाहिये । कुमारी पूजन में वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं) और माया (ह्रीं) फिर दो कूर्च (हुं हुं)—ये कुल छह कुमारी पूजन में प्रणव बतलाये गये हैं। एकादश स्वर (ए) से युक्त भृगु (स) जो विन्दु और इन्दु से संयुक्त हो (सैं)—ये चैतन्य के बीज बतलाये गये हैं जो साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाले

कहे गये हैं ॥ ३३-३५ ॥

एवं द्वाभ्यां त्रिभिश्चैव सप्तधा नवधा पुनः ॥ ३५ ॥
नित्यक्रमेण नियतं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।
वाग्भवेन जलं देयं मायया पादशौचकम् ॥ ३६ ॥
लक्ष्म्या चार्घं प्रदद्यात्तु कूर्चबीजेन चन्दनम् ।
शक्तिबीजेन पुष्पाणि धूपं षष्ठेन दापयेत् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार दो, तीन, सात एवं नव कन्याओं की नित्य क्रम से पूजा करनी चाहिये । वाग्भव (ऐं) से जल देवे, माया (ह्रीं) से पाद्य देवे, लक्ष्मी (श्रीं) से अर्घ्य प्रदान करे, कूर्च बीज (हुं) से चन्दन, शक्ति बीज (ह्रीं) से पुष्प और षष्ठ बीज (हुं) से धूप प्रदान करे ॥ ३५-३७ ॥

वाग्भवेन पुरक्षेमो मायया च गुणाष्टकम् ।
श्रींबीजेन श्रियो लाभो ह्रींबीजेनाऽरिसङ्क्षयः ॥ ३८ ॥
भैरवेण तु बीजेन खङ्गत्वमनुगच्छति ।
न्यासादिकं प्रकुर्वीत आदौ स्वीयक्रमेण तु ॥ ३९ ॥

वाग्भव (ऐं) से पुर का कल्याण, माया (ह्रीं) से आठो गुण, श्री बीज से श्री लाभ, ह्रीं बीज से शत्रु का नाश और भैरव बीज (हुं) से खङ्गत्व प्राप्त करता है । इसके बाद अपने क्रम से न्यासादि का विधान करे ॥ ३८-३९ ॥

कुमार्यङ्गे विशेषन्यासः

कुमार्यङ्गे ततः पश्चाद्विशेषन्यासमुत्तमम् ।

विशेषन्यासस्य मन्त्राः

ऐं क्लीं श्रीं क्लौं हसौः कुलकुमारिके हृदयाय नमः॥ ४० ॥
ऐं हैं ह्रीं श्रीं क्लां एं स्वाहा शिरसे स्वाहा ।
ऐं क्लीं सैं शिखायै वषट् ॥ ४१ ॥
ऐं कुलवागीश्वरवागीश्वरि कवचाय हुं ।
क्लीं अस्त्राय फट् ।
ऐं सिद्धि जयाय पूर्ववक्त्राय नमः ॥ ४२ ॥
ऐं जयाय उत्तरवक्त्राय नमः ।
ऐं क्लीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः ।
क्रं कालिके दक्षिणवक्त्राय नमः ॥ ४३ ॥
वर्णन्यासं षडङ्गञ्च कुमार्यङ्गे प्रविन्यसेत् ।
अष्टोत्तरशतं वापि एकां कन्यां प्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥

पाद्यमर्घ्यं पुनर्धूपं कुङ्कुमं चन्दनादिकम् ।
भक्तिभावेन सम्पूज्य तस्यै सर्वं निवेदयेत् ॥ ४५ ॥

इसके बाद कुमारी के अङ्ग में सर्वोत्तम विशेष न्यास करे । ऐं क्लीं श्रीं क्लौं ह्सौं कुलकुमारिके हृदयाय नमः से हृदय में, ऐं हैं ह्रीं श्रीं क्लां एं स्वाहा शिरसे स्वाहा से शिर में, ऐं क्लीं सैं शिखायै वषट् से शिखा में, ऐं कुलवागीश्वरवागीश्वरि कवचाय हुँ से दोनों बाहुओं में, क्लीं अस्त्राय फट् से अस्त्र न्यास करे । फिर ऐं सिद्धि जयाय पूर्ववक्त्राय नमः, ऐं जयाय उत्तरवक्त्राय नमः, ऐं क्लीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः, ऐं कालिके दक्षिणवक्त्राय नमः पर्यन्त मन्त्र पढ़कर मुख के पूर्व, उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण भाग में न्यास करे । इस प्रकार वर्णन्यास और षडङ्गन्यास कुमारी के अङ्ग में करे । जब एक कन्या का पूजन करे तब एक-सौ आठ न्यास करे । फिर पाद्य, अर्घ्य, धूप, कुङ्कुम, चन्दनादि द्वारा भक्तिभाव से पूजा कर उसे सब कुछ समर्पण कर देवे ॥ ४०-४५ ॥

तरुणोल्लासवान् भूत्वा स्वयमच्युतमानसः ।
बालामलङ्कृतां पश्यन् चिन्तयेत् स्वेष्टदेवताम् ॥ ४६ ॥

युवावस्था से सम्पन्न अत्यन्त उल्लासयुक्त हृदय में भगवान् का स्मरण करते हुये बाला स्त्री को अलंकृत देखकर उसमें अपनी इष्टदेवता (=त्रिपुरसुन्दरी) का ध्यान करे ॥ ४६ ॥

यथाशक्ति जपेत् पश्चादष्टोत्तरशतादिकम् ।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्यादादिमध्ये शुभं भवेत् ॥ ४७ ॥

इसके पश्चात् यथाशक्ति एक-सौ आठ बार जप करे । फिर प्रदक्षिणा करे, ऐसा करने से साधक का कल्याण होता है ॥ ४७ ॥

ततस्तां देवताबुद्ध्या नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।
पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतस्वर्णमौक्तिकैः ॥ ४८ ॥

फिर उसमें देवता की बुद्धि कर नमस्कार कर विसर्जन कर देवे । पूजन के बाद रजत, सुवर्ण और मोती की दक्षिणा देवे ॥ ४८ ॥

कुमारीपूजनफलम्

कुमारी पूजनाच्चैव कोटिपूजाफलं लभेत् ।
कुमारीपूजने चैव जातिमात्रं न चिन्तयेत् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार कुमारी पूजन से करोड़ों गुना पूजा का फल होता है । कुमारी पूजन में जाति का विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४९ ॥

अशेषकुलसम्पन्ना नाजातिसमुद्भवाः ।
नानादोषोद्भवा वापि गुणलावण्यसंयुताः ॥ ५० ॥
सर्वथैव कुलीनानां पूज्यास्ताः शुभदायिकाः ।
यथायथा तत्प्रियकृत् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ५१ ॥

उत्तम कुल में सम्पन्न अनेक जाति वाली अथवा अनेक दोषों वाली अथवा गुण लावण्य से संयुक्त रहने वाली कुमारियाँ इस प्रकार—ये सभी कुलमार्ग वाले कौलों के लिये पूज्य हैं और उनका कल्याण करने वाली हैं । जैसे-जैसे कन्याओं को प्रसन्न करता है वैसे-वैसे सर्व सिद्धीश्वर बन जाता है ॥ ५०-५१ ॥

महाभये समुत्पन्ने कन्यकाञ्च प्रपूजयेत् ।
तत्क्षणाल्लभते मोक्षं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५२ ॥

महाभय उपस्थित होने पर कुमारी पूजन करना चाहिये । ऐसा करने से वह तत्क्षण भय से मुक्त हो जाता है, यह सत्य है यह सत्य है; इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥

यदि कन्या का पूजन करे तो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव सन्तुष्ट हो जाते हैं फिर कन्या के सन्तुष्ट होने पर तो सभी सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

विवाहयेत् स्वयं कन्यां ब्रह्महत्यादि नश्यति ।
गोहत्यां स्त्रीवधं चैव सर्वपापं प्रणश्यति ॥ ५४ ॥

कन्या का स्वयं विवाह कर दे तो ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं । इतना ही नही, गोहत्या एवं स्त्री वध का पाप, किं बहुना, सभी प्रकार के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

मातरः पितरश्चैव भ्रातरश्चैव सर्वतः ।
ये तु ये तु पुन सर्वे कन्यादानं प्रकल्पयेत् ॥ ५५ ॥
भुक्तिमुक्तिफलं तेषां सौभाग्यं सर्वसम्पदः ।
रुद्रलोके वसेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरिः ॥ ५६ ॥

माता-पिता, भ्राता जो जो भी कन्यादान करते हैं, उन्हें भुक्ति-मुक्ति रूप फल सौभाग्य और सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है । वह रुद्रलोक में त्रिनेत्र होकर निवास करता है, अथवा विष्णुलोक में जहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं, वहाँ निवास करता है ॥ ५५-५६ ॥

षष्टिकोटिसहस्राणां चाश्वमेधफलं लभेत् ।
कुमारीकल्पमाख्यातं अथवाऽन्यतमञ्चरेत् ॥ ५७ ॥

साठ करोड़ हजार अश्वमेघ का फल उसे प्राप्त होता है । यहाँ तक हमने कुमारी कल्प कहा है । अथवा साधक अन्य विकल्प करे ॥ ५७ ॥

बटुकपूजनम्

सन्ध्यादिनवकन्याञ्च समानीय प्रपूज्य च ।
पूर्ववद्विधिवद्वीरो नव बालकमानयेत् ॥ ५८ ॥

सन्ध्यादि नाम वाली नव कन्याओं को ले आकर उनकी पूजा कर वीर साधक पूर्ववत् नव बालकों को (बटुक पूजन हेतु) ले आवे ॥ ५८ ॥

प्रशस्तकालनिर्णयः

बटुकं पञ्चवर्षञ्च नववर्षं गणेश्वरम् ।
गन्धपुष्पाक्षताकल्पैर्यथाविभवविस्तरैः ॥ ५९ ॥
अभ्यर्च्य देवता बुद्ध्या पदार्थैः परितोषयेत् ।
स्वकार्यफलसिद्ध्यर्थं वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ६० ॥

उनमें बटुक पाँच वर्ष के तथा गणेश्वर नव वर्ष के होने चाहिये । अपने विभव के अनुसार गन्ध, पुष्प, अक्षतादि उपचारों से पूजन करे । अपने कार्य की सिद्धि के लिये वित्त शाठय (कंजूसी) न करते हुये देवता बुद्धि से पूजा कर उन्हें तत् पदार्थों से सन्तुष्ट करे ॥ ६० ॥

नवरात्रं येदेकोत्तरवृद्ध्या क्रमेण तु ।
नवरात्रकृतां पूजां महादेव्यै समर्पयेत् ॥ ६१ ॥

एक एक के वृद्धि-क्रम से नवरात्र पर्यन्त यजन करे । इस प्रकार नवरात्र पर्यन्त की गई पूजा महादेवी को समर्पित करे ॥ ६१ ॥

ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा कुमारीस्तान् विसर्जयेत् ।
एवं नवकुमारीणामर्चनं प्रतिवत्सरम् ॥ ६२ ॥
यः करोति हि पुण्यात्मा देवताप्रीतिमाप्नुयात् ।
मनोऽभिलषितं प्राप्य निवसेत्तवसन्निधौ ॥ ६३ ॥

ताम्बूल और दक्षिणा देकर उन कुमारियों का विसर्जन करे । इस प्रकार प्रत्येक वर्ष नव कुमारियों का जो पुण्यात्मा अर्चन करता है उस पर देवता प्रसन्न हो जाते हैं । वह मनोऽभिलषित प्राप्त कर उन महादेवी के सन्निधान में निवास करता है ॥ ६२-६३ ॥

शक्तिपूजा

अथवा यौवनारूढाः प्रमदा नव शोभनाः ।
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या नव रात्रिषु मन्त्रवित् ॥ ६४ ॥
हृल्लेखां गगनां रक्तां महोत्सुकां करालिकाम् ।
इच्छां ज्ञानां क्रियां दुर्गां वटुकञ्च गणेश्वरम् ॥ ६५ ॥
पूर्ववत् पूजनाद्यैश्च पदार्थैः परितोषयेत् ।
प्रौढोल्लासेन संयुक्ताः सन्तुष्टा यदि चेत् तदा ॥ ६६ ॥
साधकस्तीर्थमासाद्य निवसेच्छिवसन्निधौ ।
एवं यः पूजयेद् देवीं प्रतिवर्षं यतिव्रतः ॥ ६७ ॥
षण्मासे वा त्रिमासे वा मासे मासेऽथवा बुधः ।
तिस्रो वा पञ्च वा सप्त पूजयेद् देवताधिया ॥ ६८ ॥
सर्वैश्वर्यसमृद्ध्यात्मा स भवेच्छिवयोः प्रियः ।
अथवाऽन्यप्रकारेण कथ्यते मिथुनार्चनम् ॥ ६९ ॥

अथवा चढ़ती हुई जवानी वाली, मस्ती से परिपूर्ण, आभूषणों से अलंकृत, नव युवतियों की मन्त्रवेत्ता साधक भक्तिपूर्वक सविधि रात्रि में पूजा करे । उनमें हृल्लेखा, गगना, रक्ता, महोत्सुका, करालिका, इच्छा, ज्ञाना, क्रिया और दुर्गा (इन नौ) की भावना करे । साथ में बटुक और गणेश्वर की पूर्ववत् पूजा कर अनेक पदार्थों से सन्तुष्ट करे । यदि जवानी के मद से इठलाती हुई वे युवतियाँ प्रसन्न हो गईं, तब साधक किसी तीर्थ स्थान को प्राप्त कर शिव का सन्निधान प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार नियम से आबद्ध होकर प्रतिवर्ष देवी का पूजन करे, अथवा ६ मास में, अथवा तीन मास में, अथवा एक-एक मास में, तीन, पाँच, सात युवतियों की देवी की बुद्धि से पूजा करे तो साधक सभी ऐश्वर्यों से समृद्ध हो जाता है और शिव शिवा की प्रीति का पात्र हो जाता है । अथवा अन्य प्रकार से अब मिथुनार्चन का विधान कहता हूँ ॥ ६४-६९ ॥

मिथुनार्चनविधानम्

तुलायां वापि मेषे वा सर्वसंक्रान्तिषु भृशम् ।
गौरीशिवौ रमाविष्णू वाणीसरसिजासनौ ॥ ७० ॥
शचीन्द्रौ रोहिणीचन्द्रौ स्वाहाग्नी च प्रभारवी ।
भद्रकालीवीरभद्रौ भैरवीभैरवावपि ॥ ७१ ॥
समानीय प्रयत्नेन पूजयेत् पूर्ववर्त्मना ।
त्रितारादिनमोऽन्तेन तत्तन्नाम्ना विधानतः ॥ ७२ ॥
वाग्बीजं शक्तिबीजञ्च श्रीबीजञ्च त्रितारकम् ।

गन्धपुष्पादिभिः पूज्य तत्त्वाद्यैः परितोषयेत् ॥ ७३ ॥
प्रौढोल्लासेन युक्तानि कुर्वीत मिथुनानि च ।
एवं कृते न सन्देहस्तुष्टा मिथुनदेवताः ॥ ७४ ॥

मिथुनार्चन विधान—तुला, मेष, अथवा सभी सङ्क्रान्तियों में गौरी-शिव, रमा-विष्णु, वाणी-ब्रह्मदेव, शची-इन्द्र, रोहिणी-चन्द्र, स्वाहा-अग्नी, प्रभा-रवी, भद्रकाली एवं वीरभद्र तथा भैरवी-भैरव इन आठ जोड़ों को लाकर पूर्व की भाँति आदि में त्रितार (ऐं ह्रीं श्रीं) और अन्त में नमः लगाकर तत्तन्नामों से पूजा करे । वाग्बीज (ऐं), शक्ति बीज (ह्रीं), श्री बीज (श्रीं)—ये त्रितार कहे गये हैं । गन्ध पुष्पादि से इनकी पूजा कर तत्त्वादि (पञ्चमकारों) से इन्हें सन्तुष्ट करे । इस प्रकार की पूजा से उन मिथुनाष्टकों को पूर्ण उल्लास (प्रहर्ष) से संयुक्त कर दे ऐसा करने से वे मिथुन देवता प्रसन्न हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७०-७४ ॥

अनुगृह्णन्ति तं देवाः प्रयच्छन्ति मनोरथम् ।
प्रतिवर्षं तु यः कुर्याद् भक्त्या च मिथुनार्चनम् ॥ ७५ ॥

फिर तो वे मिथुन पूजा से देवता प्रसन्न होकर साधक के सभी मनोरथ पूर्ण कर देते हैं, यह मिथुनार्चन प्रतिवर्ष भक्ति से युक्त होकर करे ॥ ७५ ॥

शिवलोकेषु निवसेत् सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।
भृगुवारे यजेद्यत्नात् कान्तामारूढयौवनाम् ॥ ७६ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नामनुकूलां मनोरमाम् ।
कुलाकुलाष्टमां चैवा आमन्त्रयाऽऽहूयपुष्पिणीम् ॥ ७७ ॥
अभ्यङ्गस्नानशुद्धाङ्गीं स्वासने चोपवेशयेत् ।
आत्मानं गन्धपुष्पाद्यैरलंकुर्यात् सुसाधकः ॥ ७८ ॥
आवाह्य देवतां तस्यां यजेन्न्यासक्रमेण हि ।
कृत्वा क्रमार्चनं धूपदीपञ्च कुलदीपकम् ॥ ७९ ॥
प्रदर्श्य देवताबुद्ध्या पदार्थैः षड्रसान्वितैः ।
मांसादिभक्ष्यभोज्याद्यैस्तोषयेद् भक्तिभावतः ॥ ८० ॥
प्रौढोल्लासेन सहितां पश्यंश्च प्रजपेन्मनुम् ।
यौवनोल्लाससहितः स्वयं तद्ध्यानतत्परः ॥ ८१ ॥

वह सर्वैश्वर्य समन्वित होकर शिव लोक में निवास करता है । शुक्रवार को चढ़ती हुई जवानी वाली युवती का पूजन करे । जो सर्वलक्षणसम्पन्न हो, अपने अनुकूल हो और सुन्दरी भी हो, कुलाकुल के सम्प्रदाय में अष्टम संख्या वाली पुष्पिणी को जो सर्वथा उपटन स्नान से शुद्ध शरीर वाली हो उसे आमन्त्रित कर

अपने आसन पर बैठावे । सुसाधक अपने को भी गन्ध, माल्यादि से अलंकृत कर शोभित रहे । उस स्त्री में देवता का आवाहन कर न्यास क्रम से उसकी पूजा करे। क्रमशः धूप देवे, फिर दीपक दिखाकर षड्रस युक्त पदार्थ निवेदन करे । मांस, मत्स्यादि समर्पित कर भक्तिभावपूर्वक उसे सन्तुष्ट करे, फिर जवानी के उमङ्ग से भरी हुई उसको देखते हुये स्वयं जवानी के उत्साह से पूर्ण उसका ध्यान करते हुये जप करे ॥ ७६-८१ ॥

निर्विकारेण चित्तेन अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जपादिकं समाप्याथ तया सह निशां नयेत् ॥ ८२ ॥
त्रिसप्तपञ्चनवसु भृगुवारेषु यः सदा ।
पूजयेद्विधिना चैव तस्य पुण्यं न गण्यते ॥ ८३ ॥
चतुःपीठार्चनफलं स प्राप्नोति सुनिश्चितम् ।
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि समयाचारमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

फिर निर्विकार चित्त से एक-सौ आठ की संख्या में जप कर उसके साथ रहकर रात्रि व्यतीत करे । इस प्रकार तीन, सात, पाँच, नव शुक्रवार को जो उक्त प्रकार से कुलाकुल अष्टमी कन्या का पूजन करता है, उसके पुण्य की गणना नहीं की जा सकती । वह चौसठ पीठों के अर्चन का फल प्राप्त करता है यह निश्चित है। अब इसके बाद अत्यन्त श्रेष्ठ समयाचार कहता हूँ ॥ ८२-८४ ॥

समयाचारकथनम्

येन हीना न सिध्यन्ति मन्त्राः कोटिसहस्रशः ।
मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुसारिणाम् ॥ ८५ ॥
उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ।
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा ॥ ८६ ॥
पर्वते विपिने चैव निर्जने शून्यमण्डले ।
चतुष्पथे कलाशून्ये यदि दैवाद्गतिर्भवेत् ॥ ८७ ॥
क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वानत्वा गच्छेद्यथासुखम् ।
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितम् ॥ ८८ ॥

समयाचार विधान—जिसके बिना करोड़ों सहस्र वर्ष प्रयत्न करने पर भी मन्त्र सिद्ध नहीं होते । कुल शास्त्र के अनुसार कुलाचार का अनुसरण करने वाला मानव जो उदारचित्त वैष्णवाचार तत्पर दूसरे की निन्दा न सुनने वाला परोपकार में निरत पर्वत या वन या निर्जन या शून्य स्थान या चतुष्पथ या कला शून्य स्थान पर यदि भाग्यवश चला जाय वहाँ क्षण भर भगवती का ध्यान कर मन्त्र जप कर यदि अपनी इच्छानुसार किसी दिशा में गमन करे उस समय यदि गृध्र दिखाई पड़े

तब गुप्त रूप से महाकाली को नमस्कार करे ॥ ८५-८८ ॥

गृध्रादिनमस्कारमन्त्रा:

क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बूकीं यमदूतिकाम् ।
कुररं द्रोणकाकं तु कृष्णमार्जारमेव च ॥ ८९ ॥
कृष्णसारं तथा व्याघ्रं खड्गिनं सिंहमेव च ।
कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये ॥ ९० ॥
कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये ।
श्मशाने च शिवां दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् ॥ ९१ ॥
प्रणम्यानेन मनुना मन्त्री सुखमवाप्नुयात् ।
घोरदंष्ट्रे कठोराक्षि किटिशब्दनिनादिनि ॥ ९२ ॥
घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनि ।

क्षेमङ्करी (सफेद चिल्ह), जम्बुकी (सियारिन), यमदूतिका (उलूकी), कुरर काला कौआ, काला विलाव, कृष्णसार, बाघ, गैंड़ा, सिंह देखे तो कृशोदरि से लेकर शङ्करप्रिये पर्यन्त मन्त्र पढ़कर नमस्कार करे । श्मशान में शिवा (शृङ्गाली) देखकर उसकी प्रदक्षिणा करते हुये घोर दंष्ट्रे.............नमस्ते चितिवासिनि पर्यन्त मन्त्र पढ़ते हुये नमस्कार करे तो सुखी हो जाता है ॥ ८९-९३ ॥

रक्तवस्त्रां रक्तपुष्पां विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम् ॥ ९३ ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमाविमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
बन्धूकपुष्पसङ्काशे त्रिपुरे भयनाशिनि ॥ ९४ ॥
भाग्योदये समुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि ।
कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम् ॥ ९५ ॥
हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपुरुषान् ।
महिषं कुलदेवञ्च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ॥ ९६ ॥
प्रणम्य जयदुर्गांवा स च विघ्नैर्न लिप्यते ।
जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते ॥ ९७ ॥
भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते ।

रक्त वस्त्र वाली एवं रक्तपुष्प वाली को त्रिपुराम्बिका समझकर दण्डवद् भूमि में गिर कर प्रणाम कर बन्धूक पुष्प सङ्काशे..............नमस्ते वरवर्णिनि' पर्यन्त इस श्लोक मन्त्र को पढ़े तो सुखी हो जाता है । काला वस्त्र, या काला पुष्प, या राजा, या राजपुत्र, हाथी, घोड़ा, शस्त्रफलक, वीरपुरुष, महिष और कुलदेव (कौलिकाचार्य) को देखकर महिषमर्दिनी को प्रणाम कर 'जय दुर्गे' इत्यादि मन्त्र

कहे तो उसे विघ्न नहीं होता। 'जय देवि जगद्धात्रि............महिषघ्नि नमोऽस्तुते' यह श्लोक महिषघ्नी के नमस्कार का मन्त्र है ॥ ९३-९८ ॥

मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम् ॥ ९८ ॥
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्यविमृशेन्मनुम् ।
घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये ॥ ९९ ॥
नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते ।
रक्तधारासमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम् ॥ १०० ॥
सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे ।
एतेषां दर्शने चैव यदि नैवं प्रकुर्वते ॥ १०१ ॥
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तेषां सिद्धिर्न जायते ।
एतेषां मारणोच्चाटहिंसनं वा भयादिभिः ॥ १०२ ॥
क्रियते यदि पापात्मा देवीभक्तः कथं भवेत् ।
प्रधानांशसमुद्भूता एते कुलजनाः प्रिये ॥ १०३ ॥

मद्य का पात्र, मत्स्य, मांस एवं सौभाग्यवती स्त्री इनको देखकर भैरवी देवी को प्रणाम कर 'घोरविघ्नविनाशाय.....नमस्ते हरवल्लभे' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़े। यदि इनके दर्शन होने पर शक्ति के तत्तन्मन्त्रों से प्रणाम न करे तो साधक को सिद्धि नहीं होती। उपर्युक्त गृध्र से लेकर सौभाग्यवती स्त्री (८८-९८) पर्यन्त को यदि साधक भय दिखावे या मारण, उच्चाटन एवं हिंसा करे तो वह पापात्मा भला देवी भक्त किस प्रकार कहा जा सकता है? हे प्रिय! प्रधान के अंश से उत्पन्न हुये—ये सभी कुलजन ही है ॥ ९८-१०३ ॥

डाकिन्यश्च तथा सर्वा देव्यंशा योषितो यतः ।
लब्धसिद्धिसमायोगात् डाकिनीहिंसनं यदि ॥ १०४ ॥
अथवा मानवानाञ्च मद्भक्तानां विशेषतः ।
बटुकानां भैरवाणां तस्य सिद्धिर्न जायते ॥ १०५ ॥

वस्तुतः डाकिनियाँ तथा सभी स्त्रियाँ देवी का अंश ही हैं। यदि भगवती की कृपा से सिद्धि प्राप्त कर कोई डाकिनी का बध करता है, अथवा मेरे भक्तजन मानवों का या बटुक भैरवों का कोई साधक वध करता है तो निश्चय ही उसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥ १०४-१०५ ॥

कामुकीं प्रतिवीरसाधककर्त्तव्यम्

ग्रामे वा नगरे वापि हट्टे वा चत्वरेऽपि च ।
यं दृष्ट्वा युवती नारी कलाकुशलसंयुता ॥ १०६ ॥

भावैकभिन्नहृदया वक्रं दृष्ट्याऽवलोकते ।
उत्क्षिप्य भुजमूलस्य वाससं क्षिप्यते यदि ॥ १०७ ॥
चेलाञ्चलपरीवर्त्तदर्शिता जघनाञ्चला ।
कण्डूयभावव्याजेन शिथिलीकृतवाससा ॥ १०८ ॥
दर्शितस्तनपर्यन्तभूभागा पुनरावृता ।
स्खलत् पादयुगात् पादं पतिता पुनरुत्थिता ॥ १०९ ॥
सखीभिर्व्याजमासाद्य कर्णाकिर्णी मनोहरम् ।
इत्यादिभावभावितां दृष्ट्वा साधकसत्तमः ॥ ११० ॥
तस्या निजमनोहारि सविशेषं निधाय च ।
तत्र स्थित्वा पुनः क्षोभं कुर्यात् काम वापरः ॥ १११ ॥
वृद्धां वा युवतीं वापि बालां वा सुन्दरीं तथा ।
विदग्धां वा महाभ्रष्टां कुत्सितां वापि हीनजाम् ॥ ११२ ॥
भावैकभिन्नहृदयां ज्ञात्वा वीरवरोत्तमः ।
सम्भोगेन विनोपेक्षां न कुर्याच्च कदाचन ॥ ११३ ॥

ग्राम या नगर या बाजार और चौराहे पर कुलाकुल वाली युवती नारी भाव द्वारा भिन्न हृदय से टेढ़ी निगाहों से देखे, हाथ उठाकर वस्त्र को ऊपर करे, वस्त्र का अञ्चल हटाकर जघन प्रदेश का अञ्चल प्रदर्शित करे, खुजली के बहाने वहाँ के वस्त्र को ढीला करे, स्तनपर्यन्त भू भाग प्रदर्शित करे, चलकर फिर लौट आवे, पैर फिसल जाने का बहाना कर गिर पड़े और पुनः उठ जावे, सखियों से बहाना करती हुई उसके कानों में फुसफुस शब्द कहे इत्यादि उसके भावपूर्ण मन के हरण करने वाले को देखकर, उत्तम साधक उसकी विशेषता समझकर, थोड़ी देर वहीं रहकर, उसके मन को दूसरे कामदेव के समान और भी क्षुब्ध करे । वृद्धा, अथवा युवती, अथवा बाला, अथवा सुन्दरी, कामकला में चतुरा, अथवा महाभ्रष्टा, कुत्सिता, कुरूपा या हीनजाता ही क्यों न हो? यदि कामभाव से उसके हृदय के धैर्य का बाँध टूट गया हो ऐसा समझकर सम्भोग किये बिना उसकी उपेक्षा कदापि न करे ॥ १०६-११३ ॥

आलस्येन भयेनापि अशक्त्या वा यदि त्यजेत् ।
क्रुद्धा भगवती तस्य शापं दद्यात् सुदारुणम् ॥ ११४ ॥
मृते च नरकं गत्वा नानाक्लेशयुतो भवेत् ।
निष्कृतिर्नास्ति तस्यैव यावदाचन्द्रतारकम् ॥ ११५ ॥

यदि आलस्य, भय अथवा अशक्ति वश उससे सम्भोग न कर त्याग कर देता है तो भगवती क्रुद्ध होकर विकटशाप देती हैं । फिर वह मरकर नरक जाता है

और अनेक क्लेश भोगता है । जब तक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं; तब तक उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं ॥ ११४-११५ ॥

फलं पुष्पञ्च ताम्बूलं अन्नपानादिकञ्च यत् ।
महादेव्यै विना दत्त्वा न भोक्तव्यं कदाचन ॥ ११६ ॥
पतिव्रतायां भार्यायां तथैव ऋतुसङ्गमे ।
नमस्कुर्यात् प्रयत्नेन चण्डिकां साधकोत्तमः ॥ ११७ ॥

फल, पुष्प, ताम्बूल तथा अन्नपानादिक महादेवी को समर्पित किये बिना कदापि भोजन न करे । पतिव्रता भार्या में तथा ऋतुसङ्गम काल में साधकोत्तम चण्डिका को अवश्य नमस्कार करे ॥ ११६-११७ ॥

शान्तिकं पौष्टिकं वापि तथेष्टापूर्त्तकर्मणि ।
यदा कुर्यात्तदा नत्वा देवीं यात्रां समाचरेत् ॥ ११८ ॥

शान्तिक, पौष्टिक तथा इष्टापूर्त्त (कूप, तड़ागादि प्रतिष्ठा) में कर्म जब करने लगे, तब देवी को नमस्कार कर कार्य प्रारम्भ करे ॥ ११८ ॥

तौर्यत्रिकं यदा पश्येद्देवानां गीतमेव वा ।
तत्र देव्यै निवेद्यैव कर्त्तव्यञ्च प्रपूजनम् ॥ ११९ ॥

जब भेरी नगाड़ा आदि बाजा बजने लगे अथवा देवता विषयक गीत का गान हो, तब देवी को निवेदित कर ही पूजन प्रारम्भ करे ॥ ११९ ॥

व्यायामे यदि वा देवसभायां वापि पर्वते ।
वने वा दुर्गमेवापि यदि गच्छति साधकः ॥ १२० ॥
तत्र स्थित्वा महादेवीं प्रणमेद् भक्तिभावतः ।
तर्पणादौ प्रकुर्वीत तृप्यतां ब्रह्मभैरव ॥ १२१ ॥

व्यायाम, देवसभा, अथवा पर्वत, वन एवं दुर्गम स्थान में जिस समय साधक जाने लगे तो वहाँ स्थित होकर भक्तिभाव से देवी को प्रणाम अवश्य करे । तर्पण करते समय 'तृप्यतां ब्रह्मभैरव' इतना अवश्य कहे ॥ १२०-१२१ ॥

आवाहने स्वपितॄन् वै भैरवानिति कीर्त्तयेत् ।
तृप्यतां भैरवी माता पिता भैरव तृप्यताम् ॥ १२२ ॥

पितरों के आवाहन काल में भैरव शब्द का प्रयोग करे 'यथा भैरवी माता तृप्यताम्, पिता भैरवं तृप्यताम्' इत्यादि ॥ १२२ ॥

आदौ च त्रिपुरापूर्वां तर्पणे भैरवीं यजेत् ।
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ यत्र यं यं प्रपूजयेत् ॥ १२३ ॥

प्रणम्य शिरसा धीरो भैरवीं चिन्तयेद्धिया ।
स्त्रियो दृष्ट्वा तथैकत्र युवत्यतिमनोहराः ॥ १२४ ॥
ताभ्यस्त्रिपुरभैरव्याः प्रीतये चन्दनादिकम् ।
दद्यात्तत्तत्प्रियं द्रव्यं मनसा चिन्त्य चण्डिकाम् ॥ १२५ ॥

तर्पण काल में त्रिपुरा भैरवी का तर्पण सर्वप्रथम करे । ज्योतिष्टोम एवं अश्वमेधादि यज्ञों में जहाँ-जहाँ जिस जिस देवता की पूजा करे वहाँ भैरवी देवी को शिर से प्रणाम कर त्रिपुराभैरवी का ध्यान करना चाहिये । यदि एक ही स्थान में बहुत सुन्दरी युवती स्त्रियाँ दिखाई पड़े तब साधक त्रिपुरभैरवी को प्रसन्न करने के लिये चन्दनादि प्रदान करे और मन में चण्डिका का ध्यान करते हुये उन्हें जो वस्तु अच्छी लगे वह सब देवे ॥ १२३-१२५ ॥

त्रिपुरार्घ्यदानमन्त्रः

भैरवी प्रतिगह्णाति भैरवोऽहं प्रतिग्रहे ।
कन्याया भाषणे श्रीमत्त्रिपुरायाः प्रपूजनम् ॥ १२६ ॥
भैरवाय ददाम्यर्घ्यं देवीं त्रिपुरभैरवीम् ।
एवं वदेत् प्रदाने तु कन्यकायाः प्रपूजने ॥ १२७ ॥

भैरवी ग्रहण करती है, मैं भैरव स्वरूप ग्रहण कर रहा हूँ । कन्या से भाषण मात्र में त्रिपुरा के पूजन का पर्यवसान हो जाता है कन्या के प्रदान करते समय अथवा जब कन्या का पूजन करे तब 'भैरवाय अर्घ्य ददामि' त्रिपुर भैरवीं ददामि' इतना अवश्य कहे ॥ १२६-१२७ ॥

कथितः समयाचारः साधकस्य सुसिद्धये ।
अत्राऽशक्तो भवेद्यस्तु तस्यार्थं लिख्यते स्तवः ॥ १२८ ॥

साधक की सुख से सिद्धि के लिये हमने 'समयाचार' का वर्णन किया । अब इसमें अशक्त लोगों के लिये स्तोत्र लिख रहा हूँ ॥ १२८ ॥

त्रिपुरास्तोत्रम्, तस्याः नव नामानि

त्रिपुरा त्रिपुरेशी च सुन्दरी पुरवासिनी ।
श्रीर्मालिनी च सिद्धाऽम्बा महात्रिपुरसुन्दरी ॥ १२९ ॥

गुप्तगुप्ततरादिभेदेन योगिनीभेदः

प्रकटाश्च तथागुप्तास्तथा गुप्ततराः पराः ।
सम्प्रदायाः कुलं कौला रहस्यातिरहस्यगाः ॥ १३० ॥
परापररहस्या च तथा कामेश्वरी शुभा ।

भगमालादि महाविद्या नामकथनम्

भगमाला नित्यक्लिन्ना भेरुण्डा वह्निवासिनी ॥ १३१ ॥
महाव्रजेश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी ।
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला ॥ १३२ ॥
ज्वालांशुमालिनी चित्रा वशिनी शुभगा तथा ।
पूर्णाख्या च तथा ज्ञेया कामेशी मोदिनी तथा ॥ १३३ ॥
विमला चाऽरुणा देवी जयिनी कुलभैरवी ।
सर्वेश्वरी तथा कौली वागीशी सर्वकामिनी ॥ १३४ ॥
सिद्धेश्वरी तथा चोग्रा दुर्गा महिषमर्दिनी ।
स्वप्नावती शूलिनी च मातङ्गी सुरसुन्दरी ॥ १३५ ॥
महाकाली महोग्रा च चित्ररूपा महोदरी ।
प्राणविद्या तथैकाक्षी , चैकपादा महाङ्कुशा ॥ १३६ ॥
वामा शिवा तथा ज्येष्ठा सुरूपा चारुभाषिणी ।
त्रिखण्डा त्रिशिरा शौरी गौरी विन्ध्यनिवासिनी ॥ १३७॥
विभुर्जाया मधुमती तथा नीलसरस्वती ।
काली कुण्डमयी कुण्डरूपिणी बन्धुरूपिणी ॥ १३८ ॥
बाला पूर्णा महादेवी नीललक्ष्मीति कथ्यते ।
क्षोभिणी नादिनी भद्रा ललिता बहुरूपिका ॥ १३९ ॥
सर्वसम्पत्करी तारा भवानी विश्ववासिनी ।
त्रोटेश्वरी महाविद्याः कथितास्तव भैरव ॥ १४० ॥

त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, सुन्दरी, पुरवासिनी, श्री, मालिनी, सिद्धाऽम्बा, महात्रिपुर-सुन्दरी, प्रकटा, गुप्ता, गुप्ततरा, परा, सम्प्रदाया, कुल, कौला, रहस्या, अति-रहस्यगा, परापररहस्या, कामेश्वरी, शुभा, भगमाला, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाव्रजेश्वरी, दूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालांशुमालिनी, चित्रा, वशिनी, शुभगा, पूर्णाख्या, कामेशी, मोदिनी, विमला, अरुणा, देवी, जयिनी, कुलभैरवी, सर्वेश्वरी, कौली, वागीशी, सर्वकामिनी, सिद्धेश्वरी, उग्रा, दुर्गा, महिषमर्दिनी, स्वप्नावती, शूलिनी, मातङ्गी, सुरसुन्दरी, महाकाली, महोग्रा, चित्ररूपा, महोदरी, प्राणविद्या, एकाक्षी, एकपादा, महाङ्कुशा, वामा, शिवा, ज्येष्ठा, सुरूपा, चारुभाषिणी, त्रिखण्डा, त्रिशिरा, शौरी, गौरी, विन्ध्यनिवासिनी, विभुर्जाया, मधुमती, नीलसरस्वती, काली, कुण्डमयी, कुण्डरूपिणी, बन्धुरूपिणी, बाला, पूर्णा, महादेवी, नीललक्ष्मीति, क्षोभिणी, नादिनी, भद्रा, ललिता, बहुरूपिका, सर्वसम्पत्करी, तारा, भवानी, विश्ववासिनी,

त्रोटेश्वरी, महाविद्या—यहाँ तक भगवती त्रिपुरा की नामावली का स्तोत्र बतलाया गया है ॥ १२९-१४० ॥

त्रिपुरोपासकनामस्तोत्रम्

उपासकान् महादेव श्रृणुष्वैकमनाः स्वयम् ।
मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च मन्मथस्तदनन्तरम् ॥ १४१ ॥
लोपामुद्रा मुनिर्नन्दी शक्रः सुन्दः शिवस्तथा ।
क्रोधभट्टारकश्चैव पञ्चमी च प्रकीर्त्तिता ॥ १४२ ॥
दुर्वासा व्याससूर्यौ च वशिष्ठश्च पराशरः ।
और्वो वह्निर्यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणस्तथा ॥ १४३ ॥
वायुर्विष्णुः स्वयम्भूश्च भैरवो गणकस्तथा ।
अनिरुद्धो भरद्वाजो दक्षिणामूर्त्तिरेव च ॥ १४४ ॥
गणपः कुलपश्चैव वाणी गङ्गा सरस्वती ।
धात्री शेषः प्रमत्तश्च उन्मत्तः कुलभैरवः ॥ १४५ ॥
क्षेत्रपालो हनूमांश्च दक्षो गरुड एव च ।
प्रह्लादः शुकदेवश्च रामो रावण एव च ॥ १४६ ॥
काश्यपः कुम्भकर्णश्च जमदग्निर्भृगुस्तथा ।
बृहस्पतिर्यदुश्रेष्ठो दत्तात्रेयो युधिष्ठिरः ॥ १४७ ॥
अर्जुनो भीमसेनश्च द्रोणाचार्यो वृषाकपिः ।
दुर्योधनस्तथा कुन्ती सीता च रुक्मिणी तथा ॥ १४८ ॥
सत्यभामा द्रौपदी च उर्वशी च तिलोत्तमा ।
पुष्पदन्तो महाबुद्धो बाणः कालश्च मन्दरः ॥ १४९ ॥
कैलासः क्षीरसिन्धुश्च उदधिर्हिमवांस्तथा ।
नारदो भीष्मकर्णौ च मेरुश्चारुण एव च ॥ १५० ॥
जनकश्च तथा कौत्सः कथिता ब्रह्मसाधकाः ।
महाविद्याप्रसादेन स्वस्वकर्म समन्विताः ॥ १५१ ॥

इसके बाद महादेव को सम्बोधन कर त्रिपुरा के उपासकों के नाम है । मनु, चन्द्र, कुबेर, मन्मथ, लोपामुद्रा, नन्दी, शक्र, सुन्द, शिव, क्रोधभट्टारक, दुर्वासा, व्यास, सूर्य, वशिष्ठ, पराशर, और्व, वह्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, विष्णु, स्वयम्भू, भैरव, गणक, अनिरुद्ध, भरद्वाज, दक्षिणामूर्त्ति, गणप, कुलप, वाणी, गङ्गा, सरस्वती, धात्री, शेष, प्रमत्त, उन्मत्त, कुलभैरव, क्षेत्रपाल, हनूमान, दक्ष, गरुड, प्रह्लाद, शुकदेव, राम, रावण, काश्यप, कुम्भकर्ण, जमदग्नि, भृगु, बृहस्पति, यदुश्रेष्ठ, दत्तात्रेय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, द्रोणाचार्य, वृषाकपि,

दुर्योधन, कुन्ती, सीता, रुक्मिणी, सत्यभामा, द्रौपदी, उर्वशी, तिलोत्तमा, पुष्पदन्त, महाबुद्ध, बाण, काल, मन्दर, कैलास, क्षीरसिन्धु, उदधि, हिमवान्, नारद, भीष्म, कर्ण, मेरु, अरुण, जनक और कौत्स—यहाँ तक त्रिपुरा के साधकों के नाम कहे गये हैं । जो महाविद्या की कृपा से अपने अपने कर्मों से सिद्धि प्राप्त कर चुके है ॥ १४१-१५१ ॥

एतेषां शुभनामानि नित्याविद्योपसेविनाम् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा यः पठेत् प्रयतात्मना ॥ १५२ ॥
पूजयेद् वा शुचिर्भूत्वा प्रसीदामि कुलप्रिये ।
अशुचिर्वा निरालम्बो सालम्बो वा कुलान्तिके ॥ १५३ ॥
नित्यपूजाफलं तस्य ददामि वरमीप्सितम् ।
चक्रसङ्केतकं चैव गुरुसङ्केतकं तथा ॥ १५४ ॥
मन्त्रसङ्केतकं चैव नामसङ्केतकं तथा ।
समयाचारसङ्केतमकृत्वा योऽत्र वर्त्तते ॥ १५५ ॥
जपपूजार्चनं होमोऽभिचाराय प्रकल्पते ।
एवं स्तोत्रं पठित्वा तु सङ्केतमानयेद् ध्रुवम् ॥ १५६ ॥

अब फलश्रुति कहते हैं—नित्या महाविद्या की सेवा में परायण इन उपासकों का नाम प्रात:काल के समय जो साधक पवित्र होकर समाहित चित्त से पढ़ता है अथवा जो पवित्र होकर इनका पूजन करता है; मैं प्रसन्न हो जाती हूँ । कौलों से प्रेम करने वाले अथवा कौलों के समीप अशुचि अथवा निरालम्ब अथवा सालम्ब होकर जो इस स्तोत्र का पाठ करता है उसे मैं नित्यपूजा का फल तो देती ही हूँ। उसे अभीष्ट वर भी प्रदान करती हूँ । चक्रसङ्केतक, गुरुसङ्केतक, मन्त्रसङ्केतक, नामसङ्केतक, अथवा समयाचार सङ्केतक बिना स्तुति किये जो कुलधर्म स्वीकार करता है उस साधक का किया गया समस्त जप, पूजा, अर्चन और होम मृत्यु का कारण बन जाता है । अत: इस स्तोत्र को पढ़कर निश्चय ही सङ्केत प्रारम्भ करना चाहिए ॥ १५२-१५६ ॥

नैमित्तिकार्चन विधानम्

अथ वक्ष्यामि शाक्तानां नैमित्तार्चनमुत्तमम् ।
अथ वैशाखमासस्य शुक्लप्रतिपदीश्वरि ॥ १५७ ॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय स्नानं सन्ध्यामुपास्य च ।
मनोज्ञे रहसि स्थाने पूर्वाभिमुखमास्थितः ॥ १५८ ॥
आत्मानं गन्धपुष्पाद्यैरलंकृत्य विधानतः ।
कृत्वा पुरोदितान् न्यासान् देवताभावमास्थितः ॥ १५९ ॥

मत्स्यमांसादिविधिवद् भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।
अर्घ्यं निवेद्य तच्छेषं शक्त्या सह पिबेत्ततः ॥ १६० ॥
यौवनोल्लाससहितो निर्विकल्पेन चेतसा ।
ध्यायंस्तन्मण्डले देवीमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १६१ ॥
जप्त्वा समर्प्य तत्पूजां देवताञ्च समुद्धरेत् ।

तत्र कालादि निर्णयः

एवं शुक्लप्रतिपदं समारभ्य दिने दिने ॥ १६२ ॥
कुर्याज्जपार्चनं कृष्णचतुर्दश्यन्तमम्बिके ।
अमावस्यादिने धीरः पूजयेद् भक्तकौलिकान् ॥ १६३ ॥

शाक्तों का नैमित्तिक अर्चन—अब इसके बाद शाक्तों के लिये उत्तम नैमित्तिक अर्चन कहता हूँ कृष्णापक्षार्चन—हे ईश्वरि ! वैशाख मास की शुक्ल प्रतिपदा को ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर स्नान सन्ध्यादि कर्म समाप्त कर किसी मनोज्ञ एकान्त स्थान में जाकर अपने को विधिपूर्वक गन्ध पुष्पादि से अलंकृत कर पूर्व में कहे गये न्यासों को कर देवता भाव में स्थित होकर भक्ष्य-भोज्य समन्वित मत्स्य मांसादि एवं अर्घ्य विधिवत् भगवती को निवेदन कर उस प्रसाद को शक्ति के साथ पान करे । फिर जवानी की मस्ती के उमङ्ग से भरकर निःसन्देह चित्त होकर भगवती का ध्यान करते हुये आठ हजार की संख्या में जप कर देवी को समर्पित कर देवता का पूजन करे । इस प्रकार शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ कर वह जप और पूजा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के अन्त तक प्रतिदिन करे । फिर अमावास्या के दिन भक्त कौलिकों की पूजा करे ॥ १५७-१६३ ॥

त्रि सप्त नव पञ्च वा वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
एवं यो मासमात्रन्तु कुर्यात् सूर्योदयार्चनम् ॥ १६४ ॥
देवता तस्य सन्तुष्टा ददाति फलमीप्सितम् ।
यत्किञ्चिदुदिते सूर्ये मण्डले स्वेष्टदेवताम् ॥ १६५ ॥
ध्यात्वा सावरणां सम्यक् प्रजपेत्तु विधानतः ।
षोडशैरुपचारैस्तु चक्रपूजापुरःसरम् ॥ १६६ ॥
कुलदीपान् प्रदर्श्याऽथ साधको भावतत्परः ।
मध्याह्ने पूजयेद्वापि सायाह्ने वापि पूजयेत् ॥ १६७ ॥
स तत्फलमवाप्नोति योगिनीनां प्रियो भवेत् ।
काङ्क्षितां लभते सिद्धिं देववद्विचरेद्भुवि ॥ १६८ ॥

वित्त की शठता (कंजूसी) त्याग कर तीन, सात, नव, पाँच संख्याक कौलिकों का पूजन करे । इस प्रकार जो एक मास तक सूर्योदय के काल में

कृष्णापक्षार्चन करता है उसके ऊपर सन्तुष्ट देवता उसको अभीष्ट फल देते हैं। यत्किञ्चित् सूर्य मण्डल के उदय काल में अपनी इष्ट देवता का ध्यान कर चक्रपूजा पुरःसर षोडशोपचारों से विधानपूर्वक पूजन कर मन्त्र का जप करे। फिर धर्म में तत्पर होकर साधक कुलमार्ग के दीपों का भावतत्पर होकर प्रदर्शन करे। फिर मध्याह्न में अथवा सायाह्न में पूजन करे। वह साधक उस फल को प्राप्त कर लेता है और योगिनियों का प्रिय होता है। अपना अभीष्ट फल प्राप्त करता है और देवता के समान भूलोक में विचरण करता है ॥ १६४-१६८ ॥

शुक्लपक्षार्चनविधानम्

माघशुक्लप्रतिपदि दिवावसानके बुधः।
स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः सायं सन्ध्यामुपास्य च ॥ १६९ ॥
सूर्यार्चनोक्तमार्गेण सर्वद्रव्यसमन्वितः।
यौवनोल्लाससहितश्चन्द्रस्थां देवतां स्मरन् ॥ १७० ॥
देवीं सम्पूज्य विधिवच्चन्द्रमण्डलवासिनीम्।
चन्द्रास्तोदयपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ १७१ ॥
एवं प्रतिदिनं शुक्लचतुर्दश्यन्तमर्चयेत्।
पौर्णमास्यां यथाशक्त्या पूजयेच्छक्तिकौलिकान् ॥ १७२ ॥
एवं यः कुरुते भक्त्या शुक्लपक्षार्चनं सदा।
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥ १७३ ॥
सर्वलोकैकसम्पूज्यः शिववद्विचरेद्भुवि।
शुक्लपक्षार्चनं यद्वत्तद्वत् पक्षे सितेतरे ॥ १७४ ॥
यः करोति विधानेन सर्वान् कामान् समश्नुते।
इह भुक्त्वाऽखिलान् भोगान् देववत् प्रियदर्शनः ॥ १७५ ॥
योगिनीवीरमिलनं लभते नात्र संशयः।

शुक्लपक्षार्चन—माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन सायङ्काल के समय बुद्धिमान् साधक स्नान कर शुक्ल वस्त्र धारण कर सायङ्काल की सन्ध्योपासना कर पूर्वाचन में कही गई विधि के अनुसार समस्त वस्तुओं से समन्वित होकर जवानी की उमङ्ग के सहित उत्साहयुक्त चन्द्रमा में रहने वाली भगवती श्री देवता का स्मरण कर चन्द्रमण्डलवासिनी भगवती महाश्री का पूजन कर चन्द्रमा के अस्त से लेकर उदय पर्यन्त एकाग्रचित्त से मन्त्र का जप करे। इस प्रकार प्रतिदिन शुक्ल चतुर्दशी तक जप करे। पौर्णमासी के दिन अपनी शक्ति के अनुसार कौलिकों की पूजा करे। इस प्रकार जो साधक भगवती महा श्री का शुक्ल पक्षार्चन करता है वह सर्वपाप विशुद्धात्मा सर्वैश्वर्य समन्वित सर्वलोकैक पूज्य शिव के समान होकर भूमण्डल में

विचरण करता है । इसी प्रकार शुक्ल पक्षार्चन के समान जो सितेतर कृष्णपक्ष में भी भगवती महा-श्री का विधानपूर्वक अर्चन करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओं का उपभोग करता है । वह देवता के समान शरीर धारण कर समस्त भोगों का भोग करता है । उसे योगिनियाँ और वीर उपासक प्राप्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ १६९-१७६ ॥

कृष्णपक्षार्चनम्

अथ कार्त्तिकमासस्य शुक्लप्रतिपदि ध्रुवम् ॥ १७६ ॥
स्नात्वाऽऽचम्य च शुद्धात्मा न्यासान् कृत्वा पुरोदितान् ।
प्रसुप्ते जीवलोके तु मुदितात्मा महानिशि ॥ १७७ ॥
सूर्यार्चनोक्तविधिना सर्वद्रव्यसमन्वितः ।
आज्येनानामिकाङ्गुष्ठे वर्त्तिं प्रज्वाल्य साधकः ॥ १७८ ॥
पञ्चवर्णरजश्चित्रे वसुपत्रसरोरुहे ।
मधुसम्पूर्णकलसे कांस्यपात्रे मनोहरे ॥ १७९ ॥
दीपं संस्थाप्य पुरत उत्तराभिमुखस्थितः ।
दीपे सावरणां देवीं ध्यात्वा विधिवदर्चयेत् ॥ १८० ॥

कार्तिक मास की शुक्ल प्रतिपदा के दिन स्नान कर आचमन करे । इस प्रकार शुद्धात्मा होकर पूर्ववत् न्यास करे । जब सारा संसार सो जावे, उस समय महानिशा (अर्धरात्रि) के समय पूर्वोक्त विधि से सम्पूर्ण पूजा सामग्री एकत्रित कर घी से अनामिकाङ्गुष्ठ अङ्गुलियों से जलाकर दीपक में स्थापित करे । फिर पचरङ्गे रङ्ग से रङ्गे हुये अष्टपत्र कमल पर स्थापित मद्यपूर्ण कलश पर अथवा सुन्दर कांस के पात्र पर उसे स्थापित कर देवे । फिर उत्तराभिमुख होकर आवरण सहित देवी का ध्यान कर विधिवत् उसका अर्चन करे ॥ १७६-१८० ॥

यौवनोल्लाससहितो दीपस्थां देवतां स्मरन् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ १८१ ॥

जवानी के उत्साह से भरा हुआ उक्त साधक दीप में रहने वाली देवी का स्मरण करते हुये एकाग्रचित्त हो आठ हजार जप करे ॥ १८१ ॥

एवं समर्चयेत् कृष्णचतुर्दश्यन्तमम्बिके ।
अमावस्यादिने शक्त्या पूजयेत् शक्तिकौलिकान् ॥ १८२ ॥

इस प्रकार कृष्ण चतुर्दशी के अन्त तक अम्बिका का समर्चन करे । अमावास्या के दिन शक्ति के अनुसार कौलिकों का पूजन करे ॥ १८२ ॥

एवं कृते महादेवी प्रीता भवति सर्वदा

सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥ १८३ ॥
सर्वलोकैकसम्मान्यः सञ्चरेच्च यथासुखम् ।
अष्टाष्टकार्चनं कुर्याच्छक्तश्चेदेकवासरे ॥ १८४ ॥

ऐसा करने से महादेवी सदैव के लिये प्रसन्न हो जाती है । वह साधक सर्वकामसमृद्धात्मा, सर्वैश्वर्य समन्वित एवं समस्त जनों से सम्मानित होकर इच्छानुसार लोक में सञ्चरण करता है । यदि सामर्थ्य हो तो एक दिन में अष्टकाष्टक का अर्चन करे ॥ १८३-१८४ ॥

अष्टाष्टकार्चनम्

अथवाऽष्टदिनेष्वेवाथवा द्व्यष्टदिनेषु वा ।
द्वात्रिंशद्दिवसेष्वेव चतुःषष्टिदिनेषु वा ॥ १८५ ॥
गुरुणा कारयेदेतत् क्रमज्ञेनाऽपरेण वा ।
क्रमज्ञश्चेत् स्वयं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ १८६ ॥

अथवा आठ दिन में, अथवा सोलह दिन में, अथवा बत्तीस दिन में, अथवा चौंसठ दिनों में अष्टकाष्टक का पूजन करे । यह अर्चन गुरु से करावे, अथवा क्रम जानने वाले किसी और से करावे । यदि क्रम का ज्ञान हो तो स्वयं करे । किन्तु वित्त की शठता (कंजूसी) न करे ॥ १८५-१८६ ॥

मूलाष्टकं तु ब्राह्म्याद्यश्चासिताङ्गादिभैरवाः ।
मङ्गलाद्यैश्च निपुणैरष्टभिः शक्तिभिस्तथा ॥ १८७ ॥
मूलाष्टकोद्भवानीति प्रसिद्धानि कुलागमे ।
अक्षोभ्यादिचतुःषष्टिमिथुनानि समर्चयेत् ॥ १८८ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन यथा विभवमर्चयेत् ।
क्रमलोपं न कुर्वीत स्वेष्टकायार्थसिद्धये ॥ १८९ ॥
गन्धपुष्पाक्षताद्यैश्च मत्स्यमांसासवादिभिः ।
भक्ष्यभोज्यादिभिर्नानापदार्थैः षड्रसान्वितैः ॥ १९० ॥
सम्यक् सन्तोषयेत्तानि मिथुनान्यतिभक्तितः ।
प्रौढान्तोल्लासपर्यन्तं कुर्यात् श्रीचक्रपूजनम् ॥ १९१ ॥

ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि मूलाष्टक हैं । सर्वनिपुण्य मङ्गल आदि आठ शक्तियों के साथ असिताङ्ग आदि भैरव भी मूलाष्टक है । भवानी इत्यादि भी मूलाष्टक कही गई है जो कुलागम में प्रसिद्ध हैं । अक्षोभ्य आदि चौंसठ मिथुन (युग्म या जोड़े) की पूर्वोक्त विधान से अपने विभवानुसार अर्चना करे । अपने इष्टकर्म की सिद्धि के लिये क्रम लोप न करे । गन्ध, पुष्प, अक्षतादि से मत्स्य, मांस, आसवादि से

षड्रस समन्वित भक्ष्य भोज्यादि नाना पदार्थ भक्तिपूर्वक उन मिथुनों को समर्पित कर सन्तुष्ट करना चाहिए । इस प्रकार अत्यन्त प्रौढ़ उल्लास पर्यन्त श्रीचक्र का पूजन करे ॥ १८७-१९१ ॥

एवं यः कुरुते भक्त्या सकृदष्टाष्टकार्चनम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशादि देवताभिः स पूज्यते ॥ १९२ ॥

इस प्रकार जो एक बार भी अष्टाष्टक का पूजन करता है, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशादि देवताओं से वह पूजित होता है ॥ १९२ ॥

किं पुनर्मानवाद्यैश्च साक्षाच्छिव इवापरः ।
यदर्चनाच्चतुःषष्टि योगिनीगणसंस्तुतः ॥ १९३ ॥

फिर मनुष्यों की बात ही क्या कही जाय? वह दूसरा साक्षात् शिव है इस अष्टाष्टकादि सहित चक्र के पूजन से वह साधक योगिनीगणों से साक्षात् संस्तुत हो जाता है ॥ १९३ ॥

अव्याहताज्ञः सर्वत्र पूज्यते देववद् भुवि ।
पुनरावृत्तिरहितो निवसेच्छिवसन्निधौ ॥ १९४ ॥

उस साधक की आज्ञा अप्रतिहत रहती है । वह विद्वान् साधक सर्वत्र देवता के समान पूजित होता है। वह पुनः जन्म नहीं लेता और शिव के सन्निधान में उसका निवास होता है ॥ १९४ ॥

अस्मात् परतरा पूजा नास्ति सत्यं न संशयः ।
कुलपूजां विना चक्रे नाधिकारः कथञ्चन ॥ १९५ ॥

इससे बढ़कर और कोई पूजा नहीं । यह सत्य है इसमें संशय नहीं । कुलपूजा के बिना चक्रपूजन का अधिकार किसी प्रकार भी नहीं होता ॥ १९५ ॥

विना यन्त्रेण पूजा चेत् देवता न प्रसीदति ।
कुलपूजां सुनियतं यः करोति स कौलिकः ॥ १९६ ॥

यन्त्र के बिना यदि पूजा की जावे तो देवता प्रसन्न नहीं होते । कौलिक वही है जो नियमपूर्वक नित्य कुलपूजा करता है ॥ १९६ ॥

सर्वदा समवाप्नोति योगिनीवीरमेलनम् ।
नीचोऽपि वा सकृद् भक्त्या कारयेद् यः कुलार्चनम् ॥ १९७ ॥

स सद्गतिमवाप्नोति किमुताऽन्ये द्विजातयः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ १९८ ॥

कुलपूजारतो भूयादभीष्टफलसिद्धये ।
वेदशास्त्रोक्तमार्गेण कुलपूजां करोति यः ॥ १९९ ॥
तत्समीपस्थिता नित्यं शिवेन सह शङ्करी ।
इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २०० ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये पञ्चदशोल्लासः ॥ १५ ॥

उसे योगिनियाँ और वीरसाधक मिलते रहते हैं । नीच पुरुष भी यदि एक बार भक्तिपूर्वक कुलार्चन करता है, तो वह सद्गति प्राप्त कर लेता है । फिर उत्तम द्विजाति पुरुषों के लिये कहना ही क्या है? इसलिये सब प्रकार के प्रयत्नों से सभी अवस्थाओं में कुलपूजा में संलग्न रहे । जिससे अपने अभीष्ट फल की सिद्धि हो, वेदशास्त्रोक्त मार्ग से जो कुल पूजा करता है, उसके सन्निधान में शिव के साथ शङ्करी का सदा सन्निवास रहता है; यह सत्य है, यह सत्य है, यह सत्य है; इसमें संशय नहीं ॥ १९७-२०० ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के पञ्चदश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

षोडश उल्लासः

...

कुलदीक्षाविधानम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कुलदीक्षां सुसिद्धये ।
अदीक्षितकुलो यो हि साधनं समुपाचरेत् ॥ १ ॥
स महापातकी भूत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
अदीक्षितकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ २ ॥

अब उत्तम प्रकार की सिद्धि प्राप्ति के लिये कुलदीक्षा कहता हूँ । जो बिना दीक्षा लिये साधन करता है वह महापातकी होकर रौरव नरक में गिरता है । जिसकी दीक्षा नही हुई है, उसका साथ करने से अपनी सिद्धि में हानि उठानी पड़ती है ॥ १-२ ॥

तत्कथाश्रवणं चेत् स्यात्तत्तल्पागमनं यदि ।
स कुलीनः कथं चैव पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ ३ ॥

यदि उसकी चर्चा अथवा कथा सुने या उसकी शय्या पर बैठे, तब वह कुलीन बनकर किस प्रकार परमेश्वरी का पूजन कर सकता है ॥ ३ ॥

दीक्षिता न च योषा चेत् कथं स्यात्कुलपूजनम् ।
यत्कुले कुलदीक्षा तु न स्यात् पापी स एव हि ॥ ४ ॥

यदि स्त्री दीक्षा न ली हो तो कुलपूजन किस प्रकार सम्भव हो सकता है? जिस कुल में कुल दीक्षा न हो वह निश्चय ही पापी है ॥ ४ ॥

कुल पूजा न चेच्चैव कुलमन्त्राः पराङ्मुखाः ।
परयोषा यदि स्याच्च स्वयं तस्या गुरुर्भवेत् ॥ ५ ॥

कुल दीक्षा के बिना कुलपूजा नहीं होती । फिर तो कुलपूजा के बिना मन्त्र भी पराङ्मुख हो जाते हैं । यदि दूसरे की स्त्री हो तो स्वयं दीक्षा देकर उसका गुरु हो जाना चाहिये ॥ ५ ॥

निजाकान्तां समानीय सुशीलां सुयशस्विनीम् ।
कुलभक्तं गुरुं प्रार्थ्य दीक्षयेत् कुलदीक्षया ॥ ६ ॥

अपनी सुशीला सुयश:स्विनी स्त्री को लेकर कुलभक्त गुरु से प्रार्थना कर कुलदीक्षा से दीक्षित करावे ॥ ६ ॥

शिवश्च कौल एव स्याच्छिवाः स्युः सर्वदेशिकाः ।
गणेशो गाणपत्यश्च गणदीक्षाप्रभुर्यतः ॥ ७ ॥

कौल ही शिव है, कुलमार्ग के सभी आचार्य शिवा हैं, गाणपत्य गणेश हैं क्योंकि वही गणदीक्षा के प्रभु है ॥ ७ ॥

सुरः सौरास्तथा चैव विष्णुर्विष्णुपरायणाः ।
कुलीनः सर्वमन्त्राणामधिकारी भवेत् सदा ॥ ८ ॥

सौर सुर हैं और विष्णु परायण विष्णु हैं, किन्तु कुलीन साधक सभी मन्त्रों का अधिकारी है ॥ ८ ॥

ततः सुदीक्षतं कुर्यात् कुलं गुरुः प्रयत्नतः ।
दीक्षायां कुलपूजायां शिष्यत्वे यदि वा गुरौ ॥ ९ ॥
लज्जापरं कुलं यत्र विद्यापि तत्र निद्रिता ।
अधस्तात् दृष्टिपातेन तस्य विद्याऽप्यधोमुखी ॥ १० ॥

इसलिये गुरु प्रयत्नपूर्वक कुल को दीक्षित करे । दीक्षा में कुल पूजा में जहाँ जहाँ कुल मार्ग वाले गुरु और शिष्य लजाते हैं वहाँ वहाँ महाविद्या भी प्रसुप्त रहती हैं । यतः वह लज्जा से अपना मुख और दृष्टि नीचे किये रहता है, इसलिये उसकी विद्या भी अधोमुखी हो जाती है ॥ ९-१० ॥

निमीलनात्ततो विद्या साधकं मारयेद् ध्रुवम् ।
पार्श्वावलोकनेनैव व्याधिदारिद्र्यपीडिता ॥ ११ ॥

विद्या के निमीलित हो जाने से वह साधक को निश्चित रूप से विनष्ट कर देती है । दोनों पार्श्व में अवलोकन से विद्या व्याधि और दारिद्र्य से पीड़ित रहती है ॥ ११ ॥

चतुर्दिगालोकनेन उच्चाटनगतो भवेत् ।
एतादृशं कुलं चैव यदि कुर्यात् कथञ्चन ॥ १२ ॥
तदा कुलगुरुं प्रार्थ्य कारयेद्दीक्षितं ततः ।
एतादृश कुलस्याग्रे प्रयोगः फलदो न हि ॥ १३ ॥

चारों दिशा में देखने से उच्चाटन की अवस्था हो जाती है । यदि किसी प्रकार कुल की ऐसी दशा हो जावे, तब कुलगुरु से प्रार्थना कर उस कुल को दीक्षित करावे क्योंकि ऐसे कुल के आगे प्रयोग सफल नहीं होते ॥ १२-१३ ॥

इत्यादि शिक्षया चैव शिक्षिता कुलजा सती ।
परानन्दरसाघूर्णहृदया लोललोचना ॥ १४ ॥
मालालङ्कारशोभाढ्या रक्तवस्त्रविभूषणा ।
ताम्बूलपूरितमुखी सिन्दूराञ्जनसंयुता ॥ १५ ॥
गुरुवक्त्रात् प्रयोगार्थं सोत्सुका साधकप्रिया ।
देवीवाहं देवदेव उपदेशं समाचर ॥ १६ ॥

कुलीन की इस प्रकार की शिक्षा से शिक्षित हुई कुलजा सती परानन्द रस से मदमत्त हुई हृदय वाली, चञ्चलनेत्रा, मालालङ्कार से शोभा संयुक्त, लाल वस्त्र धारण कर, मुख में ताम्बूल चबाती हुई, माँग में सिन्दूर और नेत्रों में अञ्जन लगाकर प्रयोग के लिये उत्सुक उस तत्वज्ञ साधक की पत्नी गुरु के मुख से दीक्षा प्राप्त करने के लिये इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे देवदेव ! मैं देवी के समान हूँ मुझे उपदेश दीजिये' ॥ १४-१६ ॥

शक्तिदीक्षाकथनम्

एवमुक्ते कुले चैव देवोऽहं श्रृणु पार्वति ।
इत्युक्त्वा सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्यः स्थिरमानसः ॥ १७ ॥
जप्त्वा ब्राह्म्यादिकाः शक्तीः पूर्वमन्त्रेण सेवयेत् ।
तद्गात्रे देयमन्त्रस्य न्यासजालं प्रविन्यसेत् ॥ १८ ॥

इस प्रकार उसके कहे जाने पर गुरु कहे—हे पार्वति ! सुनिए मैं स्वयं देव हूँ। ऐसा कहकर गुरु सभी श्रृङ्गार वेष से शोभित एवं स्थिर चित्त होकर ब्राह्मी आदि शक्तियों का जप कर पूर्व मन्त्र से उसका प्रोक्षण करे । फिर देयमन्त्र से उसके शरीर में न्यास जाल का न्यास करे ॥ १७-१८ ॥

निजपुत्रीवदाचार्यस्तद्भालपटले लिखेत् ।
शक्तिचक्रं त्रिधाऽऽवेष्ट्य तत्र कामकलां लिखेत्॥ १९ ॥

आचार्य अपनी पुत्री के समान उसके भालपट्ट पर तीन बार शक्तिचक्र (ह्रीं ह्रीं ह्रीं) लिखे । फिर उससे तीन बार आवेष्टित कर कामकला (क्लीं) लिखे ॥ १९ ॥

तन्मध्ये देयमन्त्रेण दर्भितं नाम रञ्जितम् ।
तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वा तां तु प्रपूजयेत् ॥ २० ॥

उसके मध्य में देय मन्त्र से दर्भित नाम लिखे । फिर उस पर देवी का आवाहन कर उनकी पूजा करे ॥ २० ॥

ततस्तत्पुत्रिकाकर्णे ऋषिछन्दः समन्विताम् ।
मूलविद्यां त्रिधाऽऽवृत्त्या कथयेत् वामकर्णके ॥ २१ ॥

फिर उस पुत्री के कान में ऋषि छन्द समन्वित मूल विद्या को गुरु तीन आवृत्ति में उसके बायें कान में कहे ॥ २१ ॥

नाम कुर्यात्ततस्तस्याः कान्तं साधकसत्तमः ।
मातृपितृकृतं नाम वर्जयित्वा वदेत्ततः ॥ २२ ॥
अद्यप्रभृति पुत्रि त्वं कुलपूजार्चने रता ।
सकुलाज्ञां समादाय लज्जालस्यविवर्जिता ॥ २३ ॥

फिर वह साधक सत्तम उस पुत्री का अत्यन्त सुन्दर नामकरण करे । माता पिता के द्वारा किया हुआ नाम वर्जित कर अपना दिया हुआ नाम उसे बतावे । फिर उससे कहे—हे पुत्रि ! आज से तुम कुलपूजा किया करना । लज्जा और आलस्य का त्याग करना तथा 'कौलों की आज्ञा' का आदर करना ॥ २२-२३ ॥

यथोपदिष्ट विधिना सामरस्यं समाचर ।
इत्यनुज्ञां गुरोर्लब्ध्वा प्रणमेद्दण्डवद् भुवि ॥ २४ ॥
त्राहि नाथ कुलाचारपक्षिणीपद्मनायक ।
हृत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधन ॥ २५ ॥
विधिना स्तवनं कृत्वा गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
सर्वस्वं गुरवे दद्यात्तदर्धं वा दयायुजे ॥ २६ ॥

जैसा हमने उपदेश किया है, उसी उपदेश के अनुसार सामरस्य स्थापित करना । गुरु की इस प्रकार आज्ञा पाकर वह शिष्या उस गुरु को पृथ्वी में गिरकर दण्डवत् प्रणाम करे । फिर 'त्राहि नाथ कुलाचारपक्षिणीपद्मनायक, हृत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधन' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर विधिपूर्वक गुरु की स्तुति करे । तदनन्तर गुरु को दक्षिणा प्रदान करे । उन दयालु गुरु को सब कुछ दक्षिणा देवे, अथवा अपने धन का आधा दक्षिणा में देवे ॥ २४-२६ ॥

दक्षिणाञ्च यथाशक्त्या प्रदत्त्वा गुरवे सुधीः ।
स्तुत्वा नत्वा यथाशक्त्या स्वकल्पोक्तं समाचरेत्॥ २७ ॥

सुधी साधक गुरु को यथाशक्ति दक्षिणा देकर उनकी स्तुति कर उन्हें नमस्कार करे । फिर सम्प्रदायानुसार यथाशक्ति कार्य करे ॥ २७ ॥

प्रशस्तशक्तिलक्षणानि

उपदिष्टा यदा देवी तदा देवी तु पुत्रिका ।
पूजार्हा च यदा देवी तदा माता न संशयः ॥ २८ ॥

जब गुरु ने उस कुलाङ्गना को दीक्षा दी और उसे उपदेश दिया, तब तो वह उसकी पुत्री हो गई । यदि देवी पूजा के योग्य हो, तब वह माता बन जाती है; इसमें सन्देह नहीं ॥ २८ ॥

सर्वथा पितृपुत्त्रीभ्यां मूलयोगो न दृश्यते ।
तत्कृत्वा तेन पापेन उभौ नरकगामिनौ ॥ २९ ॥

मूल पिता (=मूल उत्पन्नकर्ता) और पुत्री का संयोग नहीं रह जाता । यदि उन दोनों का सम्बन्ध रह जाता है तो दोनों ही नरकगामी होते हैं ॥ २९ ॥

चुम्बुके चान्यशास्त्रो पशुग्रामे तथैव च ।
न कर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं न च वाच्यं कदाचन ॥ ३० ॥
एवं कृते गुरौ शिष्ये मम शापो भविष्यति ।

ग्रन्थ चुम्बक (अल्पज्ञ), अन्य शास्त्र के ज्ञाता और पशुग्राम (बनावटी पशु साधक) में कुलधर्म न करे, न करे और न वहाँ कदापि चर्चा ही करे । यदि गुरु या शिष्य ऐसा करते हैं तब उन्हें मेरा शाप लगता है ॥ ३०-३१ ॥

शक्तिपूजाविधानम्

साङ्गावरणपूजादौ यदा न क्षरये कुलम् ॥ ३१ ॥
तदा मूर्ध्नि गुरुं ध्यात्वा कुलामृतरसेन तु ।
तर्पयित्वा कुलं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं निराकुलः ॥ ३२ ॥

साङ्गावरण पूजादि में यदि कुलमन्त्र सिद्ध न हो । तब साधक को ब्रह्मरन्ध्र में गुरु का ध्यान कर कुलामृतरस से भगवती को तृप्त कर सावधानी से मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन ।
न न्यासो योषिताञ्चापि न ध्यानं न च पूजनम् ॥ ३३ ॥

नियम पुरुष के लिये कहे गये हैं । स्त्रियों के लिये कोई कदापि नियम नहीं कहे गये है । स्त्रियों के लिये न्यास, ध्यान और पूजन आवश्यक नहीं है ॥ ३३ ॥

रात्रौ षडङ्गमाचर्य जपं कुर्यात् समाहितः ।
सर्वविद्याप्रयोगं तु ततः कुर्यात् सुसाधकः ॥ ३४ ॥

रात्रि में षडङ्ग न्यास कर समाहित चित्त से जप करना चाहिये । इसके बाद साधक को समाहित होकर सर्वविद्या प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

कुलपुष्पकथनम्

अथातः कुलपुष्पस्य विधानं कथ्यतेऽधुना ।
यत्प्राप्य कुलदेवेन लभ्यते वाञ्छितं महत् ॥ ३५ ॥

कुलपुष्पविधान—अब कुल पुष्प का विधान कहता हूँ जिसे प्राप्त कर कुलाचार्य वाञ्छित फल प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३५ ॥

ऋतुकाले महादेवी सुषुम्णामध्यवर्त्तिनी ।
अमृतं वर्षते सा तु त्रिदिनं पृथिवीतले ॥ ३६ ॥

ऋतुकाल प्राप्त होने के समय महादेवी सुषुम्ना के भीतर निवास करती है । वह ऋतुकाल से तीन दिन तक पृथ्वी में अमृत की वर्षा करती है ॥ ३६ ॥

तद्दिने तत्र वीरेन्द्रो यदि विद्यां समुच्चरेत् ।
पूर्णमेव भवेत्तस्य सफलं च मनोरथम् ॥ ३७ ॥

उस दिन यदि वीर साधक महाविद्या का पूजन करे तो वह सिद्ध हो जाता है और उसका मनोरथ सफल हो जाता है ॥ ३७ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलं वीक्ष्य जपं कुरु ।
आनीय प्रमदां दिव्यां प्रमत्तां यौवनान्विताम् ॥ ३८ ॥
सुस्नापितां सुदीक्षितां सुनासां चारुहासिनीम् ।
सर्वदानन्दहृदयां घृणालज्जाविवर्जिताम् ॥ ३९ ॥
गुरुभक्तां सुवेशाच्च देवतापूजने रताम् ।
स्वकान्तां परकान्तां वा संस्थाप्य तूलिकोपरि ॥ ४० ॥

इसलिये, हे साधक ! कुल का प्रयत्नपूर्वक दर्शन कर जप करे । साधक दिव्य एवं मदमस्त युवती प्रमदा को लावे, जो सुस्नात हो, सुदीक्षित हो, जिसकी नासिका सुन्दर हो, जो मन्द-मन्द मधुर स्मित करने वाली, सर्वदा हृदय से प्रसन्न रहने वाली, घृणा और लज्जा से रहित हो, गुरु में भक्ति रखने वाली, मनोहर वेश धारण किये हुये और देवपूजन में निरत रहने वाली हो । चाहे वह अपनी स्त्री हो अथवा अन्य की स्त्री हो, उसे लाकर रूई के गद्दे पर बैठावे ॥ ३८-४० ॥

न्यासजालं प्रविन्यस्य साधकोऽक्षुब्धमानसः ।
तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ ४१ ॥

फिर स्थिर चित्त वाला साधक विना क्षुब्ध हुए न्यास जाल कर उसके

मदनागार में परमेश्वरी का पूजन करे ॥ ४१ ॥

स्वयमक्षोभितो भूत्वा स्वयम्भूकुसुमं लभेत् ।
शिवहीना यदा शक्तिः सर्वादौ वर्षते हि यत् ॥ ४२ ॥
तदेव परमं पुष्पं स्वयम्भूकुसुमाख्यकम् ।
तद्द्रव्यप्राप्तिमात्रेण किं न सिध्यति भूतले ॥ ४३ ॥
स्वयम्भूकुसुमं द्रव्यं त्रैलोक्ये चाति दुर्लभम् ।
स्वेच्छा ऋतुमती शक्तिः साक्षाद्देवी महेश्वरी ॥ ४४ ॥
तस्याः पुष्पं साधकेन रक्षणीयं प्रयत्नतः ।
वस्त्रालङ्कारपुष्पैश्च शक्तिश्च परिपूजयेत् ॥ ४५ ॥

फिर तो साधक स्वयं अक्षुब्ध रहकर स्वयम्भू कुसुम प्राप्त कर लेता है । शिव (पति) हीन शक्ति (अविवाहित कन्या) जब सबसे पहले रजःस्वला होती है वही सर्वोत्कृष्ट स्वयम्भू कुसुम कहा जाता है । उस द्रव्य के प्राप्त हो जाने पर पृथ्वी में ऐसा कौन पदार्थ है जो सिद्ध न हो । यह स्वयम्भू कुसुम नामक द्रव्य समस्त त्रैलोक्य में दुर्लभ है । क्योंकि शक्तिस्वरूपा महामहेश्वरी देवी ही साक्षात् ऋतुमती होती है । अतः साधक को उनके उस पुष्प की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये और वस्त्र, अलङ्कार तथा पुष्पों से उसकी पूजा करे ॥ ४२-४५ ॥

दीक्षितायाा यथाकाले पुष्पं भवति नित्यशः ।
कुलपुष्पं तदेव स्यात् सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४६ ॥

दीक्षित युवती को समय-समय पर नित्य ही पुष्प उत्पन्न होता रहता है । उस समय का उसका पुष्प भी कुल पुष्प कहा जाता है जो समस्त सिद्धियों को प्रदान करता है ॥ ४६ ॥

कुण्डोद्भवञ्च गोलोत्थं पूर्वैव कथितं मया ।
कुण्डोद्भवं सिद्धिप्रदं प्रकारान्तरमुच्यते ॥ ४७ ॥

कुण्डोद्भव तथा गोलोद्भव पुष्प हम पहले कह आये हैं । अब जिस प्रकार कुण्डोद्भव सिद्धि प्रदान करता है उसको अन्य प्रकार से कह रहा हूँ ॥ ४७ ॥

यथायोग्यं समानीय शक्तिं पूर्वोदितां शुभाम् ।
स्वकल्पोक्तं समाचर्य साधको जितमानसः ॥ ४८ ॥
चर्व्यं चोष्यं निवेद्याथ वस्त्रालङ्करणादिकम् ।
पूजयेदक्षतैः शुद्धैः तस्या मदनमन्दिरम् ॥ ४९ ॥

पूर्व में बतलायी गई शुभ लक्षण वाली यथायोग्य शक्ति को ले आकर अपने

सम्प्रदायानुसार उसके साथ व्यवहार कर जितेन्द्रिय साधक चर्व्य, चोष्य एवं वस्त्रालङ्कार देकर शुद्ध अक्षत से उसके मदनमन्दिर की पूजा करे ॥ ४८-४९ ॥

भावयेत् कामभावेन स्वयमच्युतमानसः ।
शुद्धमन्त्रौषधेनैव मथयेन्मदनालयम् ॥ ५० ॥
मथ्यमानेऽपि तस्यां हि जायते तत्त्वमुत्तमम् ।
गृह्णीयात्तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुण्डोद्भवं शुभम् ॥ ५१ ॥

फिर भगवान् का ध्यान कर उसमें काम की भावना करे और शुद्ध मन्त्र औषधपूर्वक उसके मदनालय का मन्थन करे । इस प्रकार उसमें मन्थन करते-करते उत्तम तत्त्व प्राप्त हो जायेगा । तन्त्रशास्त्र के अनुसार वही कुण्डोद्भव द्रव्य कहा जाता है । अतः उसे प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करे ॥ ५०-५१ ॥

एतच्चतुष्टयं द्रव्यं मन्त्रसिद्धेश्च कारणम् ।
एतेषां द्रव्यमध्ये तु स्वयम्भूकुसुमं महत् ॥ ५२ ॥

इस प्रकार ये चार द्रव्य (स्वयम्भू कुसुम, कुलपुष्प, कुण्डोद्भव और गोलोद्भव) मन्त्र की सिद्धि में कारण होते हैं । इन द्रव्यों के मध्य में स्वयम्भू कुसुम ही सर्वश्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥

क्वचिद्गन्धर्वराजेन लभ्यते वा नवा पुनः ।
लब्ध्वा तत्परमं द्रव्यं लाक्षारससमन्वितम् ॥ ५३ ॥
कस्तूरीं कुङ्कुमं चैव चन्दनेन सुमिश्रितम् ।
रक्तेन चन्दनेनापि वटीं कृत्वा सुगोपयेत् ॥ ५४ ॥

गन्धर्वराज कदाचित् इस पुरुष को प्राप्त करते हैं कि नहीं सन्देह है । उस परम द्रव्य को प्राप्त कर उसमें लाक्षारस मिलावे । कस्तूरी, कुङ्कुम और चन्दन मिलावे । फिर तत्वज्ञ साधक रक्तचन्दन के साथ उसकी गोली बनाकर गुप्त रूप से रखे ॥ ५३-५४ ॥

पूर्वोक्तक्रमतो वीरो विशोध्य मन्त्रराजकम् ।
लिखित्वा पूजयेद्भक्त्या यां तिथिं प्राप्य साधकः॥ ५५ ॥

फिर पूर्वोक्त क्रम से वीर साधक उससे मन्त्रराज का संशोधन कर लिखे । उत्तम तिथि प्राप्त होने पर भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे ॥ ५५ ॥

सुप्तादिदोषदुष्टा ये मन्त्रा विद्याश्च कीर्त्तिताः ।
प्रबुद्धास्तत्प्रयोगेन यावत् सा पुनरागता ॥ ५६ ॥

पूर्वोक्त सुप्तादि दोष से दूषित जो मन्त्र और विद्यायें कहीं गई हैं, उसके

प्रयोग से फिर आकर वह प्रबुद्ध हो जाती है ॥ ५६ ॥

द्वितीयायां गते चैव दृश्या जाता कलावती ।
तिथिक्रमेण सा देवी पौर्णमास्यां फलप्रदा ॥ ५७ ॥
तत्र प्रयोगमात्रेण कृष्णपक्षे विशेषतः ।
क्षीणाति पूर्णतां याति यावत् सा तिथिरागता ॥ ५८ ॥
ततः प्रयोगं विद्यानां मन्त्रादीनाञ्च कारयेत् ।
एवं यथा प्रबुद्धा सा नैव तादृक् कदाचन ॥ ५९ ॥

द्वितीया तिथि को (विद्या) कलावती दिखलाई पड़ती है । वह देवी तिथिक्रम से पूर्णमासी को फलदायी होती है । अतः वहाँ विशेषतः कृष्णपक्ष में प्रयोगमात्र से जब तक तिथि नही आती तब तक क्षीण होती है और फिर पूर्ण हो जाती है । तब विद्याओं और मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए । इस प्रकार से वह (विद्या) जितनी प्रबुद्ध होती है, वैसी अन्य प्रकार से प्रबुद्ध नहीं होती है ॥ ५७-५९ ॥

पूजाफलकथनम्

स्वयम्भूकुसुमैः पूजां प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
योगिन्यश्च महानागा राक्षसादानवाश्च ये ॥ ६० ॥
राजानश्च स्त्रियः सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि ।
एतेनाक्षतयोगान् मधुमतीसिद्धिमालभेत् ॥ ६१ ॥
प्रत्येकेन लभेत् सिद्धिं कुसुमाद्यैर्यथाविधि ।
अथ वक्ष्ये च शाक्तानां काम्यपूजनमुत्तमम् ॥ ६२ ॥

मधुमतीसिद्धि—यदि साधक स्वयम्भू कुसुम से प्रतिदिन पूजा करे तो योगिनियाँ, महानाग, राक्षस, दानव, राजा, स्त्रियाँ—ये सभी उसके वश में हो जाते हैं । अक्षत में मिलाकर मधुमती की सिद्धि प्राप्त हो जाती है । पूर्वोक्त चार प्रकार के कुसुमों में प्रत्येक से यथाविधि प्रयोग से सिद्धि प्राप्त हो जाती है । अब शाक्तमत वालों के लिये सर्वोत्तम काम्य पूजन कहता हूँ ॥ ६०-६२ ॥

काम्यपूजनकथनम्

रक्तपद्मैर्यजेद् देवीं समस्तरश्मिसंयुताम् ।
विधिवल्लिखिते यन्त्रे कुलाचारेण रात्रिके ॥ ६३ ॥
मासमात्रेण वीराणां महापातककोटयः ।
जन्मान्तरकृताः सर्वे नाशमायान्ति निश्चितम् ॥ ६४ ॥

काम्य पूजन—रक्त वर्ण के पुष्पों से रश्मि सहित महादेवी की पूजा करे । यह पूजा विधिपूर्वक लिखे हुये यन्त्र में रात्रि के समय कुलाचार के अनुसार करे ।

एक महीने तक निरन्तर पूजा करते रहने से जन्मान्तर कृत सभी करोड़ों महापातक निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३-६४ ॥

लक्ष्मीस्तस्य गृहे वश्या सुस्थिरा भवति ध्रुवम् ।
जवापुष्पैश्चक्रराजं पूजयेन्मासमात्रकम् ॥ ६५ ॥
कुलाचारेण रात्रौ च मन्त्रेण भक्तिभावतः ।
ब्रह्महत्यादि पापांश्च पूर्वजन्मकृतानपि ॥ ६६ ॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो धनवान् जायते नरः ।
केतकीतरुणैः पत्रैः पूर्ववत् पूजयेच्छिवाम् ॥ ६७ ॥
उपपातकसङ्घांश्च मासमात्रेण नाशयेत् ।
सौभाग्यमतुलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ६८ ॥

उस साधक के घर में वशीभूत हुई लक्ष्मी निश्चित रूप से सदा निवास करती हैं । जपा पुष्प से एक माह पर्यन्त कुलाचार के अनुसार रात्रि काल में मन्त्र द्वारा भक्तिभाव से चक्रराज का पूजन करे तो इस जन्म में तथा पूर्वजन्म में किये गये ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि वह साधक धनवान् हो जाता है । केतकी के पूर्ण रूप से पके हुये पत्रों से पूर्ववत् मास मात्र शिवा की पूजा करे तो उप पातक समूह नष्ट हो जाते हैं और उसके अतुल सौभाग्य का उदय हो जाता है; इसमें संशय नहीं ॥ ६५-६८ ॥

शतपत्रैर्मनोरम्यैः पूजयेन् मासमात्रकम् ।
पूर्ववत् परमेशानि सर्वपापं विनाशयेत् ॥ ६९ ॥

यदि साधक मनोहर शतपत्र (=गेंदा) से मास मात्र शिवा की पूर्ववत् पूजा करे तो वह सभी पापों को विनष्ट कर देता है ॥ ६९ ॥

चम्पकैः सुमनोरम्यैः पूजयेत् पूर्ववच्छिवाम् ।
मासमात्रेण हन्त्येव पातकान् पूर्वजन्मजान् ॥ ७० ॥

मनोरम चम्पक पुष्पों से शिवा की मास मात्र भक्तिपूर्वक पूजा करे तो हे परमेशानि ! वह विद्वान् साधक अपने पूर्व जन्म में किये गये सभी पापों को विनष्ट कर देता है ॥ ७० ॥

सौभाग्यं वा लभेन्मन्त्री भगवत्याः प्रसादतः ।
श्वेतपद्मैर्महादेवीं पूजयेद् भक्तिभावतः ॥ ७१ ॥
पूर्ववन्नाशयेत् पापान् त्रिंशज्जन्मकृतानपि ।
मासमात्रेण सकलान् मोक्षस्तस्य करे स्थितः ॥ ७२ ॥

वह मन्त्रज्ञ भगवती की प्रसन्नता से सौभाग्य प्राप्त करता है । यदि श्वेत कमल से भक्तिभावपूर्वक पूर्ववत् शिवा का पूजन मास मात्र करे तो वह अपने तीन-सौ जन्मों में किये गये पापों को नष्ट कर देता है और मोक्ष तो उसके हस्तगत हो जाता है ॥ ७१-७२ ॥

बन्धूककुसुमैर्देवीं मासमात्रेण पूजनात् ।
त्रैलोक्यं वशगं तस्य सर्वपापं 'प्रणाशयेत् ॥ ७३ ॥

बन्धूक पुष्प से मास मात्र भगवती के पूजन से सारा त्रैलोक्य उसके वश में हो जाता है और वह अपना सारा पाप भी नष्ट कर देता है ॥ ७३ ॥

बिल्वपत्रैश्च जलजैः सहैव परिपूजयेत् ।
पूर्ववत् परमेशानीं मासमात्रं न संशयः ॥ ७४ ॥
समृद्धिमान् भवेत् सोऽपि सर्वपापहरः सदा ।
मल्लिकामालतीजातीकुन्दैश्च शतपत्रकैः ॥ ७५ ॥
श्वेतोत्पलैः प्रसूनैश्च पूजयेन्मासमात्रकम् ।
कुलाचारक्रमेणैव पातकान् शतजन्मजान् ॥ ७६ ॥
ब्रह्महत्यादिजनितान् नाशयेन्नात्र संशयः ।
मुक्तिस्तस्य करे सत्यं वाचांपतिसमो भुवि ॥ ७७ ॥

बिल्व पत्र और कमल दोनों से एक साथ मास मात्र पूर्ववत् परमेशानी की पूजा करे तो वह निश्चय ही समृद्धि से युक्त और सर्वपापहर हो जाता है । मल्लिका, मालती, जाती कुन्द, शतपत्रक (गेंदा) श्वेतकमल के पुष्पों से एक साथ मास मात्र कुलाचार विधि से पूजा करे तो सैकड़ों जन्म के ब्रह्महत्यादि से होने वाले पापों को नष्ट कर देता है । उसके हाथ में मुक्ति हो जाती है और पृथ्वी में वह बृहस्पति के समान वाग्मी हो जाता है ॥ ७४-७७ ॥

अगस्त्यबालबन्धूकजवारक्तोत्पलैः समम् ।
पूर्वक्रमेण सम्पूज्य मासमात्रं प्रयत्नधीः ॥ ७८ ॥
पातकान् पाशयेत् मन्त्री साक्षात्कामलसी भवेत्।
चम्पकैः पाटलैर्देवीं बकुलैर्नागकेशरैः ॥ ७९ ॥
कह्लारैः सिन्धुवारैश्च पूजयेत् पूर्ववत् क्रमात् ।
सौभाग्यमण्डलं तस्य मासमात्रेण निश्चितम् ॥ ८० ॥

अगस्त्य, बाल बन्धूक, जवा (=गुड़हल) और लाल कमल के पुष्पों से एक साथ मास मात्र पूर्वक्रम से प्रयत्नपूर्वक पूजा करने वाला मन्त्रज्ञ साधक अपने सभी पापों को नष्ट कर देता है और साक्षात् कामदेव के समान हो जाता है । चम्पक,

गुलाब, वङ्कुल, नागकेशर, कल्हार, सिन्धुवार से पूर्ववत् क्रमशः पूजा करे तो एक महीने मात्र में उसके सौभाग्य का मण्डल उदय हो जाता है ॥ ७८-८० ॥

महापातकयुक्तो वा यदि देवीं प्रपूजयेत् ।
शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरथवाऽर्कजैः ॥ ८१ ॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं ध्रुवम् ।
अथातः सर्वविद्यानां लिख्यते सिद्धिकारणम् ॥ ८२ ॥

महापातक से युक्त भी साधक यदि शमी, दूर्वाङ्कुर, अश्वत्थ के पल्लव अथवा मदार के पत्ते से एक मास पर्यन्त अम्बा भगवती की पूजा करे । तब वह अपने सात जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है । अब सभी विद्याओं की सिद्धि का कारण लिखता हूँ ॥ ८१-८२ ॥

ब्राह्म्याद्यष्टकुलैः सार्धं साधकः स्थिरधीः शुचिः ।
चतुष्पथे वा नद्यां वा वटमूले त्रिशूलके ॥ ८३ ॥
प्रेतभूमौ बिल्वमूले हट्टे वा राजवेश्मनि ।
सिन्दूरेण लिखेन्मन्त्रं विपुलं साध्यदर्भितम् ॥ ८४ ॥
ततः सम्पूज्य विधिवत् कुलं कुलरसेन च ।
तर्पयित्वा तदन्तःस्थः प्रजपेन्निशिचारतः ॥ ८५ ॥
ततो लक्षप्रमाणेन सिद्धिस्तावद्भवन्ति हि ।
अथ रात्रौ पुण्यगेहे उद्याने वा सुरालये ॥ ८६ ॥
आनीय कुलजां देवीं मूलमन्त्रेण दीक्षयेत् ।
ततः पूर्वोक्तरूपेण कुलक्षोभं समाचरेत् ॥ ८७ ॥

सिद्धि का कारण—ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों के साथ साधक पवित्रतापूर्वक सावधान चित्त हो चतुष्पथ, नदी, वटमूल, त्रिशूल (तिराहा), श्मशान, बिल्व वृक्ष का मूल, हट्ट (बाजार) और राजभवन इनमें किसी स्थान पर अपने साध्य से दर्भित समस्त मन्त्र सिन्दूर से लिखे । फिर कुल रस से उस कुल का पूजन कर उसका तर्पण करे । उसे अपने हृदय में धारण कर रात्रि पर्यन्त एक लाख की संख्या में जप करे तो सद्यः सिद्धि प्राप्त हो जाती है । रात्रि के समय पुण्यगृह, उद्यान, सुरालय (=देवस्थान) में कुलजा कन्या को ले आवे और उसे मूलमन्त्र द्वारा दीक्षा देवे । फिर पूर्वोक्त रूप से उसमें क्षोभ उत्पन्न करे ॥ ८३-८७ ॥

रत्नपूजाविधानम्

रत्नपूजाविधानं हि कथयामि विशेषतः ।
पुष्पाणि रचयेद्वीरो माणिक्यघटितानि च ॥ ८८ ॥

तैस्तु पूजा प्रकर्त्तव्या चक्रराजस्य पूर्ववत् ।
नानापुष्पैः सुगन्धैश्च कर्पूरक्षोदचर्चितैः ॥ ८९ ॥
एकविंशतिरात्रेण विंशतिर्धरणीभुजाम् ।
दासभूताः भवन्त्येव महारोगांश्च नाशयेत् ॥ ९० ॥

रत्नपूजा विधान—अब विशेष रूप से रत्नपूजा का विधान कहता हूँ । वीर पुरुष माणिक्यों का पुष्प निर्माण करे । उन मणिघटित पुष्पों से चक्रराज की पूर्ववत् पूजा करनी चाहिये । अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों एवं कपूर चूर्णों से सुवासित इक्कीस रात्रि पर्यन्त निरन्तर पूजा करे तो बीस बीस राजाओं के समूह उसके दास होकर उसके वशीभूत हो जाते हैं और वह महारोगों के नाश करने में भी समर्थ हो जाता है ॥ ८८-९० ॥

सूर्यवत् कान्तिमान्मन्त्री जायते नात्र संशयः ।
मुक्तारत्नरञ्जितानि स्वर्णपुष्पाणि साधकैः ॥ ९१ ॥
तैस्तु पूजा प्रकर्त्तव्या नानारत्नैश्च पूर्ववत् ।
एकविंशतिरात्रेण राजपुत्री वशीभवेत् ॥ ९२ ॥

वह मन्त्रज्ञ साधक सूर्य के समान कान्तिमान् हो जाता है इसमें संशय नहीं । साधक मोती के पुष्पों से, अथवा सुवर्णमय पुष्पों से, अथवा अनेक रत्नमय पुष्पों से भगवती की पूजा पूर्ववत् २१ दिन पर्यन्त निरन्तर करे तो राजपुत्री उसके वश में निश्चित रूप से हो जाती है ॥ ९१-९२ ॥

कलाकान्तियुतो वीरो जायते सुभगः क्षितौ ।
प्रवालघटितैः स्वर्णपुष्पैस्तु बहुभिर्यजेत् ॥ ९३ ॥
पूर्ववत् परमेशानीं कुलाचारक्रमेण तु ।
पुष्पैश्च विविधैश्चैव सप्ताहाच्च सुनिश्चितम् ॥ ९४ ॥
क्रूरास्तस्य वशाः सर्वे वैरिवर्गांश्च नाशयेत् ।
तथा मरकतक्षिप्तस्वर्णपुष्पैश्च पूजयेत् ॥ ९५ ॥
एकविंशतिरात्रेण नानापुष्पैः क्रमाद्यजेत् ।
विधिवत् तस्य वरदा भैरवी भवति स्थिरम् ॥ ९६ ॥

वह वीर चन्द्रकला की कान्ति से युक्त होकर सुन्दर भाग्यवान् बन जाता है मूँगे से निर्मित पुष्पों द्वारा तथा बहुत सुवर्णमय पुष्पों द्वारा अथवा अनेक पुष्पों द्वारा कुलाचार क्रम से परमेशानी का पूर्ववत् यजन करे तो सात दिन में ही निश्चित रूप से सभी क्रूर स्वभाव वाले भी व्यक्ति उसके वश में हो जाते हैं और वह अपने समस्त शत्रु समूहों के नाश करने में समर्थ हो जाता है । यदि मरकत

मणि के बने हुये पुष्पों एवं स्वर्ण पुष्पों से तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से परमेश्वरी का यजन इक्कीस रात्रि पर्यन्त विधिवत् करे, तब निश्चय ही भैरवी उसे स्थिरतापूर्वक वर प्रदान करती है ॥ ९३-९६ ॥

पद्मरागमहारत्ननिर्मितैः स्वर्णसंयुतैः ।
कुसुमैरर्चयेच्चक्रं त्रिसप्ताहात् सुनिश्चितम् ॥ ९७ ॥
सुरास्तस्य वशाः सर्वे बृहस्पतिसमो भवेत् ।
सुवर्णरचितैः पुष्पैर्वज्रकेशरवर्जितैः ॥ ९८ ॥
एकविंशतिरात्रेण मोहयेज्जगतीमिमाम् ।
देवा दैत्यावशांस्तस्य जायन्ते नात्र संशयः ॥ ९९ ॥

स्वर्णयुक्त पद्मरागमणि से निर्मित पुष्पों द्वारा तीन सप्ताह पर्यन्त चक्रार्चन करे तो निश्चय ही सभी देवता उसके वश में हो जाते हैं और वह स्वयं बृहस्पति के समान वाग्मी हो जाता है । वज्र और केशर के बिना सुवर्ण रचित पुष्पों से इक्कीस रात्रि पर्यन्त पूजा करने से साधक समस्त जगत् को मोहित कर लेता है । देवता एवं दैत्य सभी उसके वश में हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ९७-९९ ॥

इन्द्रनीलमयैः स्वर्णपुष्पैश्चक्रं समर्चयेत् ।
एकविंशतिरात्रेण तथा नीलैश्च नीरजैः ॥ १०० ॥
वैरिणो नाशमायान्ति शेषा वश्या भवन्ति हि ।
गोमेदघटितैः पुष्पैः स्वर्णपुष्पैर्यजेद् बुधः ॥ १०१ ॥
किंशुकैः कुन्दपुष्पैश्च पूर्ववत् परमेश्वरीम् ।
सप्ताहाद् वैरिणो वश्या घातस्तेषु प्रजायते ॥ १०२ ॥

इन्द्रनीलमय एवं स्वर्णमय पुष्पों से चक्र की पूजा करे । इक्कीस रात्रि तक नीलमणि और नीलकमल के पुष्पों से पूजा करे तो वैरी विनष्ट हो जाते हैं । शेष सभी उसके वशवर्ती हो जाते हैं । गोमेद रचित पुष्पों से अथवा सुवर्णमय पुष्पों से बुद्धिमान् साधक यजन करे, अथवा कुन्द पुष्प, अथवा किंशुक (पलाश) से पूर्ववत् परमेश्वरी का यजन करे तो सात दिन के भीतर समस्त वैरी वशीभूत हो जाते हैं और उन शत्रुओं के ऊपर विपत्ति कहर डालती है ॥ १००-१०२ ॥

त्रिसप्ताहान्महापापसञ्चयं नाशयेत्ततः ।
स्वर्णरत्नमयैः पुष्पैर्पुनर्नवैः प्रपूज्यते ॥ १०३ ॥
तदाऽश्वमेधदशकं फलं भवति निश्चितम् ।
क्रव्यादयस्तद्वश्या हि भवन्त्येव न संशयः ॥ १०४ ॥

इक्कीस दिन पर्यन्त पूर्वोक्त रीति से पूजा करते रहने से महापाप का सञ्चय

नष्ट हो जाता है । स्वर्ण रत्नमय पुष्पों से, अथवा पुनर्नवा से पूजन किया जाय तो दश अश्वमेध का फल प्राप्त हो जाता है; यह निश्चित है । मांसाहारी समस्त जन्तु वश में हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ १०३-१०४ ॥

वैदूर्यघटितैः पुष्पैः पूजयेच्चक्रमुत्तमम् ।
सचम्पकादिभिर्धीरस्त्रैलोक्यं स्तम्भयेत् क्षणात् ॥ १०५ ॥
एकविंशतिभिर्वारैर्महापापहरो भवेत् ।

धीर साधक चम्पा पुष्प सहित वैदूर्य रचित पुष्पों से यदि पूर्ववत् २१ दिन तक उत्तम चक्र का पूजन करे तो वह क्षण भर में समस्त त्रिलोकी को स्तम्भित कर सकता है और महापापों को दूर करने वाला हो जाता है ॥ १०५-१०६ ॥

निर्माल्यभूतैः कुसुमैरर्चितैः परमेश्वरीम् ॥ १०६ ॥
नानारत्नमयैः स्वर्णपुष्पैर्यदि शिवां यजेत् ।
तदा देवाश्च मुनयः पन्नगा राक्षसादयः ॥ १०७ ॥
सर्वे वश्या भवन्त्येव त्रिसप्ताहान्न संशयः ।
जन्मकोटिभवं पापं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १०८ ॥

परमेश्वरी को अर्चित निर्माल्यभूत नानारत्नमय, अथवा सुवर्णमय, अनेक पुष्पों से यदि शिवा का तीन सप्ताह पर्यन्त यजन करे तो देवता, मुनि, नाग, राक्षस सभी वश में हो जाते हैं और वह अपने करोड़ों जन्म के किये गये पापों को नष्ट कर देता है इसमें संशय नहीं ॥ १०६-१०८ ॥

स्वर्णवर्णमयैः पुष्पैर्मासमेकं प्रपूजयेत् ।
तदाश्वमेधदशकफलं भवति सर्वदा ॥ १०९ ॥

सुवर्ण के वर्ण वाले पुष्पों से यदि एक महीना पर्यन्त पूजन करे तो उसे सर्वदा अश्वमेघ का फल प्राप्त हो जाता है ॥ १०९ ॥

स्वर्णरत्नानि पुष्पाणि यदि न स्युस्तदा शृणु ।
पूर्वोदितस्वपुष्पैश्च पूजा कार्या सुसाधकैः ॥ ११० ॥

यदि स्वर्ण अथवा रत्नों के पुष्प न प्राप्त हों तो सुनो । विद्वान् साधक पूर्व में कहे गये स्वपुष्प (स्वयम्भू कुसुम, कुलपुष्प, कुण्डोद्भव एवं गोलोद्भव) से ही पूजन करे ॥ ११० ॥

यद्यत् पुष्पं यत्र यत्र देयं तत्र महात्मना ।
तत्र तत्रैव दातव्यं यद्दातव्यं सुखेच्छया ॥ १११ ॥

महात्मा साधक जहाँ-जहाँ जिन-जिन पुष्पों को देना चाहिये, वह उन्हें

वहाँ-वहाँ सुख की इच्छा से प्रदान करे ॥ १११ ॥

अलङ्कारस्वरूपेण पूजयेच्चक्रनायिकाम् ।
केवलं योनिपुष्पैस्तु त्रैलोक्यं स्तम्भयेद्भृशम् ॥ ११२ ॥

श्री चक्र की अधीष्ठात्री भगवती का अलङ्कारों से पूजन करे । यदि केवल योनि पुष्प से ही साधक उनका पूजन करे तो वह समस्त त्रैलोक्य को क्षणमात्र में स्तम्भित कर सकता है ॥ ११२ ॥

मासमात्रेण पापानि सप्तजन्मभवान्यपि ।
नाशयेन्मोहयेत् सर्वान्समुद्रवलयां धराम् ॥ ११३ ॥

एक मास पर्यन्त उक्त रीति से पूजा करने वाला सात जन्म तक किये गये अपने पापों को नष्ट कर देता है और समुद्रवलय वाली समस्त पृथ्वी को मोहित कर लेता है ॥ ११३ ॥

त्रिपुराबीजसाधनम्

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि त्रिपुराबीजसाधनम् ।
शुक्लाम्बरधरो धीरः शुक्लगन्धादिभूषितः ॥ ११४ ॥
शुक्लालङ्काररचितः शुक्लमाल्यान्वितः शुचिः ।
शुक्लगो ब्रह्मचारी तु शुक्लासनपरिग्रहः ॥ ११५ ॥
पूजयेत् शुक्लपुष्पैस्तु नैवेद्यैर्धवलैस्तथा ।
पिष्टकं पायसं दुग्धं अन्नं बहुविधं तथा ॥ ११६ ॥
शर्करा मोदकं चैव नानाफलसमन्वितम् ।
कृतसङ्कल्पवीरेन्द्रः साधयेद्वाग्भवाक्षरम् ॥ ११७ ॥

त्रिपुराबीज साधना—अब त्रिपुरा बीज के साधन को कहता हूँ । धीर साधक शुक्ल वस्त्र धारण कर, शुक्ल गन्ध से विभूषित होकर शुक्ल अलङ्कार धारण कर शुक्ल माल्य पहनकर, पवित्रात्मा एवं विशुद्धेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहकर शुक्ल वर्ण के आसन पर बैठकर शुक्ल पुष्पों से, धवल वर्ण के नैवेद्यों से, पूआ-पायस, दूध, अन्न आदि शर्करा, मोदक, नाना फल समन्वित उपहारों से, सङ्कल्पपूर्वक पूजन कर वाग्भव (ऐं) बीज वाली वागीश्वरी की साधना करे ॥ ११४-११७ ॥

वाग्भवबीजसाधनम्

वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन् बुधः ।
कूर्परधवलां शुभ्रपुष्पाभरणभूषिताम् ॥ ११८ ॥

कपूर के समान श्वेत वर्ण वाली, शुभ्र पुष्प, शुभ्र आभरण वाली, वाग्भवा

विद्या का ध्यान करते हुये वाग्भव (ऐं) मन्त्र का जप करे ॥ ११८ ॥

अत्यन्तशुभ्रवसनां वज्रमौक्तिकभूषणाम् ।
मुक्ताफलसमुद्भूतजपमालालसत्कराम् ॥ ११९ ॥
पुस्तकं वरदानञ्च दधतीमभयप्रदाम् ।
एवं ध्यात्वा प्रपूज्यैव वागीशीं साधकोत्तमः ॥ १२० ॥

अत्यन्त शुभ्र वस्त्र धारण की हुई, हीरे एवं मोती के आभूषणों को धारण की हुई, मोती की माला से सुशोभित हाथों वाली, अन्य हाथ में पुस्तक और वरदान मुद्रा धारण किये, अभयप्रदा भगवती वागीशी का ध्यान कर उत्तम साधक उनकी पूजा करे ॥ ११९-१२० ॥

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्त्रवत्पीयूषवर्षिणीम् ।
तस्माज्जोतिर्मयीं ध्यायेत् जिह्वाग्रेऽमृतरूपिणीम् ॥ १२१ ॥
विभाव्य प्रजपेन्मन्त्रं पुरश्चरणसंख्यकम् ।
ततश्च नष्टहृदयो ग्राम्यो मूर्खोऽतिपातकी ॥ १२२ ॥
शठोऽपि यः पदं स्पष्टमक्षरं वक्तुमक्षमः ।
जडो मूर्खोऽतिदुर्मेधा गतप्रज्ञो विनष्टधीः ॥ १२३ ॥
सोऽपि सञ्जायते वाग्मी वाचस्पतिरिवापरः ।
सत्पण्डितघटाटोपजेताऽप्रतिहतप्रभः ॥ १२४ ॥
सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित् ।
कुमारतरस्कार वृत्तालङ्कारपूर्वकैः ॥ १२५ ॥

मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त टपकते हुये अमृत की वर्षा करने वाली, निकलती हुई ज्योतिःस्वरूपा एवं अमृतास्वरूपा का ध्यान कर पुरश्चरण की संख्या (आठ हजार) में जप करे, ऐसा करने से जिसके पास हृदय नहीं है, जो ग्राम्य, मूर्ख, अति पातकी, शठ हैं और जो स्पष्ट अक्षर बोलने में असमर्थ हैं (गूँगा) जड़, मूर्ख, अत्यन्त दुर्बुद्धि, गतप्रज्ञ, विनष्ट बुद्धि वाला है, वह भी वाग्मी (विशुद्ध वक्ता) और अपर वाचस्पति के समान हो जाता है । वह उत्तमोत्तम पण्डितों के घटा टोप (आडम्बर) का विजेता तथा अप्रतिहत ज्ञान वाला हो जाता है । उत्तम तर्क, उत्तम पद, उत्तम वाक्य का तथा शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार तथा शृङ्गारादि रसों का विद्वान् हो जाता है । वृत्त और अलङ्कारों से परिपूर्ण उसकी वाणी में अभूतपूर्व मधुरता टपकती है ॥ १२१-१२५ ॥

पदगुम्फैर्महाकाव्यकर्ता सोऽपि प्रजायते ।
वेदवेदाङ्गवेदान्तसिद्धान्तज्ञानपारगः ॥ १२६ ॥

ज्योतिःशस्त्रेतिहासादिमीमांसास्मृतिसारवित् ।
पुराणरसवादादिगारुडानेकमन्त्रवित् ॥ १२७ ॥
पातालशास्त्रविज्ञानभूततन्त्रार्थतत्त्ववित् ।
विचित्रचित्रकर्मादिशिल्पानेकविचक्षणः ॥ १२८ ॥
सर्वभाषारुतज्ञानी समस्तलिपिकर्मवित् ।
नानाशास्त्रादिशिक्षादिवेत्ताभुवनविश्रुतः ॥ १२९ ॥
सर्ववाङ्मयवेत्ता च सर्वज्ञो भुवि जायते ।

इस प्रकार का वह महामूर्ख वागीश्वरी के पुरश्चरण से उत्तमोत्तम पद से गूँथे हुये काव्यों की रचना करने वाला हो जाता है । वेद, वेदाङ्ग एवं वेदान्त के सिद्धान्त का परगामी हो जाता है । ज्योतिःशास्त्र, इतिहासादि, मीमांसा एवं स्मृति आदि का सारवेत्ता पुराण, रस वादादि तथा गारुड़ (विष) शास्त्र के मन्त्र का वेत्ता हो जाता है । पाताल विद्या, विज्ञान विद्या, भूत विद्याओं एवं तन्त्र विद्या के अर्थों का तत्त्ववेत्ता विचित्र, चित्र-विचित्र कर्म करने वाला, शिल्प कर्म में निपुण, सभी भाषाओं की बोली का ज्ञाता, समस्त लिपि का लिखने वाला, नाना शास्त्र, नाना शिक्षाओं का वेत्ता, त्रिभुवन में प्रसिद्ध, सर्ववाङ्मय का ज्ञाता और इस पृथ्वी पर सर्वज्ञ हो जाता है ॥ १२६-१३० ॥

कामबीजसाधनम्

अथ कामकलासक्तः साधको रक्तमन्दिरे ॥ १३० ॥
रक्तालङ्कारसंयुक्तो रक्तगन्धानुलेपनः ।
रक्तवस्त्रावृतः सम्यङ्मध्ये कामकलात्मना ॥ १३१ ॥
रक्तपुष्पैश्च विविधैः नैवेद्यै रक्तसन्निभैः ।
नानोपहारबलिभिः कुङ्कुमादिभिरर्चयेत् ॥ १३२ ॥
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्फरद्दीप्तिस्वरूपिणीम् ।
बन्धूककुसुमाकारकान्तिभूषणभूषिताम् ॥ १३३ ॥
एवं सचिन्त्य वीरेन्द्रः पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
यथोक्तसंख्यं सञ्जप्य कामराजं सुसाधकः ॥ १३४ ॥
चिन्तयेत् परमेशानीं त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ।
राजानो वशमायान्ति पन्नगा राक्षसाः सुराः ॥ १३५ ॥
कन्दर्प इव वीरेन्द्रो योषितां मानहारकः ।
मनश्चिन्तितयोषित्तु दासीवद्वशगाभवेत् ॥ १३६ ॥

कामकला में रुचि रखने वाला साधक लालवर्ण के मकान में, लाल वर्ण के

अलङ्कारों को धारण कर, रक्त वर्ण के गन्ध से अनुलिप्त, रक्त वस्त्र धारण कर, मण्डप के मध्य में स्वयं कामकला का स्वरूप वनकर, रक्त वर्ण के पुष्पों से सरस रक्तवर्ण के नैवेद्यों से युक्त, रक्त वर्ण के अनेक उपहारों से समन्वित, अनेक बलियों एवं कुङ्कुमादिकों से जो मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जाज्वल्यमान दीप्ति स्वरूपा, बन्धूक पुष्प के आकार के समान, रक्त कान्ति एवं रक्त भूषण से भूषित हैं अपने हाथों में ऊख का धनुष, पुष्प का वाण, वर एवं अभयमुद्रा धारण की हुई हैं, जिनका भालस्थान उद्दीप्त कान्ति वाले, सिन्दूर से अलंकृत है और जो तीन नेत्रों वाली हैं । इस प्रकार स्वरूप वाली भगवती का ध्यान करते हुए वीरेन्द्र परमेश्वरी का पूजन करे । फिर जितनी संख्या कही गई है, उतनी संख्या में कामराज का मन्त्र जप कर सुसाधक भगवती परमेश्वरी का ध्यान करे; तो वह क्षणमात्र में त्रिलोकी को अपने वश में कर लेता है । राजा, पन्नग, राक्षस और देवता सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं । वह वीर साधक दूसरे कामदेव के समान कामिनियों के मान का खण्डन कर देता है और जिस स्त्री को मन से चाहता है वह दासी के समान उसके वश में हो जाती है ॥ १३०-१३६ ॥

तद्दृष्टिपथगा नारी सुरी वाप्यथवाऽसुरी ।
विद्याधरी किन्नरी वा यक्षी नागाङ्गनाऽथवा ॥ १३७ ॥
प्रचण्डतरभूपालकन्यका सिद्धकन्यका ।
ज्वलन्मदनदुष्प्रेक्ष्यदहनोत्तप्तमानसा ॥ १३८ ॥
क्लिन्न प्रचलितापाङ्गा विमूढा मदविह्वला ।
निवेदितात्मसर्वस्वा वशगा तस्य जायते ॥ १३९ ॥

उसके दृष्टिपथ में आने वाली नारी देवी, आसुरी, विद्याधरी, किन्नरी, यक्षी, नागाङ्गना, अथवा अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले राजा की कन्या, सिद्ध कन्या, जलती हुई मदनाग्नि से उत्तप्त मन हो स्खलित, मद से विह्वल, चञ्चल कटाक्षों वाली, स्त्रियाँ विकल होकर अपना सर्वस्व उस साधक पर निछावर कर उसके वशीभूत हो जाती हैं ॥ १३७-१३९ ॥

चलज्जलेन्दुसङ्काशा बालार्ककिरणारुणा ।
चिन्तिता योषितां योनौ क्षोभयति च तत्क्षणात् ॥ १४० ॥

जल में पड़ी हुई छाया वाले चन्द्रमा के समान चञ्चल स्वभाव वाली, नवीन उदीयमान सूर्य के किरणों के समान लाल आभा वाली, अरुणा भगवती का स्त्री की योनि में ध्यान करते ही वह तत्क्षण क्षोभ उत्पन्न कर देती हैं ॥ १४० ॥

सैव सिन्दूरवर्णाभा हृदये चिन्तिता सती ।
सम्मोहोन्मादनारोपचित्तकर्षकरी तथा ॥ १४१ ॥

सिन्दूर वर्ण के आभा वाली वही अरुणा भगवती हृदय में ध्यान करने से तत्क्षण सम्मोहन करती है, उन्मादन करती है और चित्त में आरूढ़ हो कर आकर्षण करती है ॥ १४१ ॥

नियोजिताऽथवा मूर्ध्नि वर्षन्ती रक्तबिन्दुभिः ।
धारणासम्प्रयोगेण करोति वशगं जगत् ॥ १४२ ॥

अथवा शिरः स्थान में ध्यान करने से लाल वर्ण के जल की वर्षा करती हुई धारणा के सम्प्रयोग से सारे जगत् को वह वश में कर लेती है ॥ १४२ ॥

त्रैलोक्यमोहनप्रयोगकथनम्

आकर्षयेत्तदा शीघ्रं रम्भाञ्चापि तिलोत्तमाम् ।
रक्तवर्णां स्त्रियं ध्यात्वा तदीयमहसा ततः ॥ १४३ ॥
तस्या मूर्ध्नि स्मरेद्विद्यां स्रवत्पीयूषवर्षिणीम् ।
ध्यायन् सम्मोहयेन्नारीं मदनोत्तप्तमानसाम् ॥ १४४ ॥

त्रैलोक्यमोहन प्रयोग—इस प्रकार योनि, हृदय तथा शिरःस्थान में अरुणा का ध्यान करने वाला पुरुष रम्भा, तिलोत्तमा जैसी अप्सराओं को भी अपने वश में कर लेता है । रक्त वर्ण वाली स्त्री का ध्यान कर तत्त्वज्ञ साधक भगवती के तेज से युक्त उनके शिरःस्थान में टपकते हुये बिन्दुओं से युक्त, अमृत की वर्षा करने वाली भगवती का ध्यान करने से साधक काम से उत्तप्त मन वाली स्त्री को मोहित कर लेता है ॥ १४३-१४४ ॥

क्षणमात्रेण वीरेन्द्रस्त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
एतत्कामकलाध्यानात् पञ्चकाम इवापरः ॥ १४५ ॥
श्रीं ह्रीं क्लीं हूं ततः संसु क्रमेण परियोजिताः ।
यन्त्रं विदध्यात् कामस्तु मन्मथान्तर्गतो भवेत् ॥ १४६ ॥
कन्दर्पसम्पुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः ।
मकरध्वजसञ्ज्ञन्तु सर्वमेतत् सुसाधकः ॥ १४७ ॥
मीनकेतुगतं कुर्यात् मोहयेज्जगतीमिमाम् ।
त्रैलोक्यमोहनो नाम प्रयोगोऽयं प्रदर्शितः ॥ १४८ ॥

वह वीरेन्द्र क्षण मात्र में समस्त त्रैलोक्य को अपने वश में कर लेता है । इन कामकला (ईं) का ध्यान करने से वह अपर पञ्च काम के समान बन जाता है । श्रीं ह्रीं क्लीं हूँ संसु इन अक्षरों से संयुक्त यन्त्र का निर्माण करे और काम उस मन्मथ के अन्तर्गत रखे । फिर कन्दर्प बीज (क्लीं) से सम्पुट कर उसे कोण के मध्य में स्थापित करना चाहिए । यह सब मकरध्वज सञ्ज्ञक यन्त्र कहा जाता है ।

फिर तत्त्वज्ञ साधक मीनकेतु (=कामदेव) के भीतर उसे स्थापित कर देवे तो वह इस जगत् को मोहित कर देता है। इस प्रकार यह त्रैलोक्यमोहन नामक प्रयोग हमने प्रदर्शित किया ॥ १४५-१४८ ॥

शक्तिबीजसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्तिबीजस्य साधनम् ।
सृष्टिसंहारपर्यन्तां शरीरे चिन्तयेत् पराम् ॥ १४९ ॥

अब शक्तिबीज (ह्रीं) का साधन कहता हूँ। साधक इस शरीर में सृष्टि का संहार करने वाली भगवती परा का ध्यान करे ॥ १४९ ॥

स्रवत्पीयूषधाराभिर्वर्षन्तीं विषहारिणीम् ।
हेमप्रभाभासमानां विद्युल्लतासमप्रभाम् ॥ १५० ॥
स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णकपालं वरदाभये ।
ज्ञानमुद्राञ्च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम् ॥ १५१ ॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री हेमाभैरुपचारकैः ।
पूर्वसंख्यं जपेद्बीजं नानाविघ्नं विनाशयेत् ॥ १५२ ॥
एतस्याः स्मरणाद्वीरो नीलकण्ठत्वमागतः ।
वैनतेयसमो मन्त्री विषभारं विनाशयेत् ॥ १५३ ॥
नागा दर्शनमात्रेण जडीभवन्ति तत्क्षणात् ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १५४ ॥

जो टपकते हुये अमृत की धारा की वर्षा करती हैं। विषहारिणी सुवर्ण की आभा के समान देदीप्यमान, बिजली की लता के समान चमकीली, हाथ में चमकते हुये चन्द्रमा के समान पूर्ण कपाल, वर, अभय और ज्ञानमुद्रा को धारण की हुई साक्षात् अमृत स्वरूपा भगवती का इस प्रकार ध्यान कर सुवर्ण के समान दीप्त उपचारों से उसकी पूजा कर साधक पूर्वकथित संख्या में जप करे तो वह सम्पूर्ण विघ्नों को विनष्ट कर देता है। इन भगवती के स्मरण मात्र से भगवान् शिव नीलकण्ठ बन गये। किं बहुना, इनके स्मरण से साधक गरुड़ के समान होकर समस्त विषों को नाश करने में समर्थ हो जाता है। नाग इन साधकों के दर्शन मात्र से तत्क्षण जड़ हो जाते हैं। इस प्रकार भगवती का साधक भूत, प्रेत तथा पिशाचों को नष्ट कर देता है; इसमें संशय न करे ॥ १५०-१५४ ॥

चातुर्थिकज्वरान् सर्वानपस्मारांश्च नाशयेत् ।
दुष्टव्याधिग्रहांश्चैव डाकिनीरूपिका गणाः ॥ १५५ ॥
यक्षराक्षसवेतालैस्त्रिनेत्र इव दृश्यते ।

अथवा येन विद्येयं परिपूर्णा विचिन्त्यते ॥ १५६ ॥

चातुर्थिक ज्वर, सभी प्रकार के अपस्मार, दुष्ट व्याधियाँ और दुष्ट ग्रहों को नाश कर देता है । डाकिनी, रूपिका, गण, यक्ष, राक्षस तथा बेतालों को वह शिव के समान भयङ्कर दिखाई पड़ता है अथवा जो इस विद्या को सिद्ध कर लेता है उसके लिये उपाय कहता हूँ ॥ १५५-१५६ ॥

नाभिमण्डलहृत्पद्ममुखमण्डलमध्यगा ।
पद्मरागमणिस्वच्छा चिन्तनात् साधकस्य च ॥ १५७ ॥
तस्याष्टगुणमैश्वर्यमचिरात् सम्प्रवर्त्तते ।
तन्नामस्मरणान्मन्त्री योगिनीनां भवेत् प्रियः ॥ १५८ ॥
मातृचक्रं तस्य काये तेन सार्धं सुखी भवेत् ।
पुत्रवान् धनवान् धीरो मन्त्रं ध्यात्वा न संशयः ॥ १५९ ॥

अब जो साधक अपने नाभिमण्डल हृत्कमल एवं मुख मण्डल के मध्य में पद्मरागमणि के समान स्वच्छ इस महाविद्या का ध्यान करता है उसे अष्टगुण युक्त ऐश्वर्य की शीघ्र ही प्राप्ति हो जाती है । किं बहुना, उन भगवती के नाम मात्र स्मरण करने वाला साधक योगिनी गणों का प्रिय हो जाता है । उसके शरीर में मातृचक्र के समावेश हो जाने से वह सुखी हो जाता है । मन्त्र के ध्यान करने से धीर साधक पुत्रवान् एवं धनवान् हो जाता है; इसमें संशय नहीं ॥ १५७-१५९ ॥

विलिख्य चक्रराजं तु परिपूर्णां प्रपूजयेत् ।
प्रयच्छति महादेवी खेचरीसिद्धिमुत्तमाम् ॥ १६० ॥
चतुःषष्टियुताः कोट्यो योगिणीनां महोजसाम् ।
चक्रमेतत् समासाद्य स्थितास्ता नात्र संशयः ॥ १६१ ॥

चक्रराज लिख कर सङ्गोपाङ्ग पूजन करे तो महादेवी प्रसन्न होकर उत्तम खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्रदान करती हैं । अत्यन्त तेजस्विनी चौंसठ करोड़ योगिनियाँ इस चक्र में निवास करती हैं; इसमें संशय नही ॥ १६०-१६१ ॥

पूर्णविद्याजपात् सर्वेवश्या भवन्ति निश्चितम् ।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोक पातालतलवासिनः ॥ १६२ ॥

भगवती के मन्त्र के जप को पूर्ण संख्या में जप करने से सभी वशीभूत हो जाते हैं इसमें संशय नहीं । ऐसा साधक स्वर्ग लोक और भूलोक और पाताल लोक के वासियों को क्षुब्ध कर देता है ॥ १६२ ॥

क्षोभयन्त्येव वीरेन्द्राः महाविद्याप्रसादतः ।
वाग्भवात् वाक्पतित्वञ्च कामात् कामसमो भवेत् ॥ १६३ ॥

शिवत्वं शक्तिबीजेन त्रिकूटे सर्वमालभेत् ।
सर्वसिद्धिर्भवत्येव कूटत्रयस्य जापतः ॥ १६४ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
षोडशोल्लासः ॥ १६ ॥

किं बहुना, महाविद्या के प्रसाद से वीर उपासक सब को क्षुब्ध कर देता है और वाग्भव के प्रभाव से वाक्पतित्त्व तथा काम मन्त्र के जप के प्रभाव से काम के समान हो जाता है । शक्ति बीज के जप के प्रभाव से शिवत्त्व प्राप्त हो जाता है तथा तीनों कूटों के जप के परिणाम स्वरूप सब कुछ प्राप्त कर लेता है और उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ १६३-१६४ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के षोडश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १६ ॥

सप्तदश उल्लासः

...৩৯৪৩...

मन्त्रशिखाविधानम्

अथ वक्ष्ये च मन्त्राणां शिखां सिद्धिप्रदायिकाम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण क्षिप्रं विद्या प्रसीदति ॥ १ ॥

अब सिद्धि प्रदान करने वाली सभी मन्त्रों की शिखा कहता हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से महाविद्या शीघ्र प्रसन्न होकर सिद्ध हो जाती है ॥ १ ॥

मूलरन्ध्रे तु या शक्तिर्भुजगाकाररूपिणी ।
तत्र यश्च भ्रमावर्त्तोऽपान इत्युच्यते बुधैः ॥ २ ॥
नीवारयुक्तविधिना कूजन्ती सततोत्थिता ।
गच्छन्ती ब्रह्मरन्ध्रेऽपि प्रविशन्ती स्वकेतने ॥ ३ ॥

मूलाधार में सर्पाकार जो शक्ति है, उसके भ्रमावर्त्त (चकोह) को बुद्धिमान् लोग 'अपान' नाम से कहते हैं । यह नीवार तृण धान्य के विशेष आकार वाली के समान है और शब्द करती हुई मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है और पुनः वहाँ से अपने पूर्वस्थान में लौट आती है ॥ २-३ ॥

यातायातक्रमेणैव कुर्यात्तत्र मनोलयम् ।
तेन मन्त्रशिखा जाता सर्वमन्त्रप्रदीपिका ॥ ४ ॥

उसके यातायात क्रम से मनोलय करे । उससे मन्त्र शिखा उत्पन्न होती है, जो समस्त मन्त्रों को प्रदीप्त (तेजस्वी) करती है ॥ ४ ॥

तमःपूर्णगृहे यद्वत् न किञ्चित् प्रतिभासते ।
शिखाहीनास्तथा मन्त्रा न सिध्यन्ति कदाचन ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अन्धकार युक्त गृह में कुछ दिखाई नहीं पड़ता, उसी प्रकार शिखारहित मन्त्र कदापि सिद्ध नहीं होते ॥ ५ ॥

शिखोपदेशः सर्वत्र गोप्तव्यः साधकेन च ।
विनाऽनेन न सिध्यन्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६ ॥

साधक को शिखा का उपदेश गोपनीय रखना चाहिये । शिखा के बिना करोड़ों सौ उपाय करने पर मन्त्र सिद्ध नहीं होते ॥ ६ ॥

चतुर्विधा तु या सृष्टिर्यस्या योनौ प्रजायते ।
पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशिवान्तिका ॥ ७ ॥

योनि में चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है । फिर उसमें काल, अग्नि आदि तथा शिवादि भी लीन हो जाते हैं ॥ ७ ॥

योनिमुद्रा परा ह्येषा वन्धस्तस्याः प्रकीर्त्तितः ।
तस्यास्तु बन्धमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ ८ ॥

इसकी श्रेष्ठ योनिमुद्रा को उसका बन्ध कहा जाता है । उसके योनि के बन्ध करने मात्र से ऐसा कोई तत्त्व नहीं है जो सिद्ध न हो ॥ ८ ॥

अन्यथा जप्यते यस्तु अन्यथा कुरुते तु यः ।
नासौ सिध्यति मन्त्रश्च सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ ९ ॥

जो अन्यथा जप करता है या अन्यथा कार्य करता है उसको मन्त्र की सिद्धि नहीं होती । यह सत्य है, पुनः पुनः सत्य है ॥ ९ ॥

छिन्ना रुद्धाश्च ये मन्त्राः कीलिताः स्तम्भिताश्च ये ।
दग्धाः सन्त्रासिता हीना मलिनास्तु तिरस्कृताः ॥ १० ॥
भेदिता भ्रमसंयुक्ताः शप्ताः सम्मूर्छिताश्च ये ।
वृद्धा बालास्तथा स्त्रस्ताः प्रौढा यौवनगर्विताः ॥ ११ ॥
अरिपक्षस्थिता ये च निर्वीर्याः सत्त्ववर्जिताः ।
अंशकेन विहीनाश्च खण्डशः शतधा कृताः ॥ १२ ॥
विधिनाऽनेन संयुक्ताः प्रभवन्त्यचिरेण तु ।
सिद्धिमोक्षप्रदाः सर्वे साधकेन नियोजिताः ॥ १३ ॥

जो मन्त्र छिन्न, रुद्ध, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, सन्त्रासित, हीन, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, भ्रम, संयुक्त, शप्त, सम्मूर्च्छित, वृद्ध, वाल, स्त्रस्त, प्रौढ़, यौवनगर्वित, अरिपक्षस्थित, निर्वीर्य, सत्त्वरहित, अंश से विहीन और सैकड़ों खण्ड किये गये हैं ऐसे निकृष्ट मन्त्र इस शिखा की विधि से संयुक्त कर देने पर साधक को सिद्धि और मोक्ष देने वाले हो जाते हैं ॥ १०-१३ ॥

यद्यदुच्चार्यते मन्त्री वर्णरूपं शुभावहम् ।
तत्तत् सिध्यत्यनायासाद् योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १४ ॥

मन्त्रज्ञ साधक इस योनिमुद्रा के निबन्धन करने से वर्ण रूप जिस-जिस मन्त्र

का उच्चारण करता है, वह शुभावह हो जाता है और अनायास ही सिद्ध भी हो जाता है ॥ १४ ॥

दीक्षयित्वा विधानेन अभिषिच्य सहस्रधा ।
ततोऽधिकारी तन्त्रेऽस्मिन् भवेत् साधकसत्तमः ॥ १५ ॥

विधानपूर्वक दीक्षा लेकर हजारों बार अभिषिक्त हो जाने पर साधक सत्तम इस तन्त्रशास्त्र का अधिकारी बनता है ॥ १५ ॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि त्रैलोक्यमपि घातयेत् ।
नाऽसौ लिप्यति पापेन योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १६ ॥
न तस्य पापपुण्यैस्तु कृतैर्दोषैर्न लिप्यते ।
कृत्वा पापसहस्राणि असंख्यातानि सर्वदा ॥ १७ ॥
दहत्युच्चारमात्रेण योनिमुद्रानिबन्धनात् ।
दुष्टमन्त्राश्च सिध्यन्ति मन्त्राश्चान्ये तु किं पुनः ॥ १८ ॥

योनिमुद्रा के निबन्धन से साधक सहस्रों ब्रह्महत्या का पाप तो नष्ट करता ही है, किं बहुना, समस्त त्रिलोकी भी नष्ट कर सकता है । वह किसी प्रकार के पाप से लिप्त नहीं होता । वह पाप-पुण्य के दोषों से लिप्त नहीं होता । सहस्रों, किं बहुना, असंख्य पापों को योनि मुद्रा निबन्धन करने वाला साधक अपने उच्चारमात्र से नष्ट कर देता है । दुष्ट मन्त्र भी ऐसा करने से सिद्ध हो जाते हैं फिर अन्य मन्त्रों की बात क्या ॥ १६-१८ ॥

स्थानस्था वरदा मन्त्रा ध्यानस्थाश्च फलप्रदाः ।
स्थानध्यानविनिर्युक्ताः सुसिद्धा अपि वैरिणः ॥ १९ ॥
सिध्यन्ति येन तत्स्थानं कथयामि विशेषतः ।
सकलं निष्कलं सूक्ष्मं तथा सकलनिष्कलम् ॥ २० ॥
कलाभिन्नं कलातीतं षोढास्थानं शिवोऽब्रवीत् ।
सकलं ब्रह्मबन्धस्थं तदूर्ध्वं विद्धि निष्कलम् ॥ २१ ॥
मानसं सूक्ष्मनामानं हृत्स्थं सकलनिष्कलम् ।
बिन्दुस्थितं कलाभिन्नं कलातीतं तदूर्ध्वतः ॥ २२ ॥

मन्त्रों का छह स्थान—अब जिस प्रकार मन्त्र स्व-स्थान पर रहते हुए वर प्रदान करते हैं । ध्यानस्थ होने पर फल देते हैं । स्थान एवं ध्यान दोनों से युक्त होने पर वैरी मन्त्र भी सिद्ध होते हैं । अब उन उन स्थानों को विशेष रूप से कहता हूँ । सकल, निष्कल, सूक्ष्म, सकलनिष्कल, कलाभिन्न और कलातीत मन्त्रों के—ये छह स्थान सदाशिव ने बताये हैं । ब्रह्मरन्ध्र में रहने वाले मन्त्र सकल,

उससे ऊपर रहने वाले निष्कल, मन में रहने वाले सूक्ष्म, हृदय में रहने वाले सकलनिष्कल, उभयात्मक बिन्दु में रहने वाले कलाभिन्न और उसके भी ऊपर रहने वाले कलातीत कहे जाते हैं ॥ १९-२२ ॥

कलाङ्गशूलिनी सैव नादशक्तिः शिवोदिता ।
एषु स्थानङ्गता मन्त्राः स्थानस्थाः परिकीर्त्तिताः ॥ २३ ॥
देवतां हृदि सञ्चिन्त्य मन्त्रजापश्च जायते ।
ध्यानस्थाश्चैव ते मन्त्रा विज्ञेयाः साधकेन वा ॥ २४ ॥

वह भगवती कलाङ्गशूलिनी तथा नादशक्ति कही जाती है; ऐसा शिव ने कहा है । इन-इन स्थानों में रहने वाले मन्त्र स्थानस्थ कहे जाते हैं । जब देवता को हृदय में स्थापित कर मन्त्र का जप किया जाता है; तब उसे 'ध्यानस्थ' कहा जाता है । इस प्रकार साधकों को ऐसा विचार करना चाहिये ॥ २३-२४ ॥

तारसम्पुटितो वापि दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।
यस्य यत्र दृढा भक्तिर्जायते सततं यदि ॥ २५ ॥
तस्य सिद्धो भवेन्मन्त्रो यथोक्तजपमात्रतः ।

तार (ॐ) से सम्पुटित करने पर द्रष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं । जिसकी जिस विषय में दृढ़ भक्ति हो, उसको उक्त मन्त्रों के उक्त प्रकार के जाप से सिद्धि होती है ॥ २५-२६ ॥

अथातः सर्वविद्यानां लिख्यते सिद्धिकारणम् ॥ २६ ॥
ब्राह्म्याद्यष्टकुलैः सार्धं साधकःस्थिरधीः शुचिः ।
चतुष्पथे वा नद्यां वा वटमूले त्रिशूलके ॥ २७ ॥
प्रेतभूमौ विल्वमूले हट्टे वा राजवेश्मनि ।
सिन्दूरेण लिखेद् यन्त्रं विपुलं साध्यदर्भितम् ॥ २८ ॥

अब सभी विद्याओं की सिद्धि के कारण को लिखता हूँ । साधक एकाग्रचित्त हो ब्राह्मी आदि अष्टकुलों के साथ किसी चतुष्पथ (चौराहा), नदी, वटमूल, त्रिशूलक (त्रिराहा), श्मशान, बिल्वमूल अथवा हट्ट (=बाजार) अथवा राजभवन में जाकर अपने साध्य से दर्भित मन्त्र को सिन्दूर से लिखे ॥ २६-२८ ॥

तत्र सम्पूज्य विधिवत् कुलं कुलरसेन च ।
तर्पयित्वा तदन्तःस्थं प्रजपेन्निशिचारतः ॥ २९ ॥

वहाँ उन कुलों की कुलरस से पूजा करे । फिर उनके अन्तःस्थ देव का पूजन कर रात्रि के समय जप करे ॥ २९ ॥

ततो लक्षप्रमाणेन सिद्धिप्रदा भवन्ति हि ।
रात्रौ पुण्यगृहे चैव उद्याने वा सुरालये ॥ ३० ॥
आनीय कुलजां देवीं मूलमन्त्रेण दीक्षयेत् ।
ततः पूर्वोक्तरूपेण कुलक्षोभं समाचरेत् ॥ ३१ ॥
एवं कृतं न सिद्धिश्चेन्मूलमन्त्रं समभ्यसेत् ।
पीठानां परमं पीठं कामरूपं महाफलम् ॥ ३२ ॥

एक लाख की संख्या में जप करने से मन्त्र सिद्धि प्रदान करते हैं । रात्रि के समय किसी पुण्यगृह अथवा उद्यान अथवा देवालय में किसी कुलजा (कौल मार्गानुगामिनी) स्त्री को लाकर उसे मन्त्र द्वारा दीक्षित करे । फिर पूर्वोक्ति विधि के अनुसार कुलक्षोभ उत्पन्न करे । यदि इतना करने पर सिद्धि न हो, तो पुनः मूलमन्त्र का जप करे । सभी पीठों में कामरूप पीठ सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यह महाफल प्रदान करता है ॥ ३०-३२ ॥

अत्र या क्रियते पूजा सकृद्वा साधकेन च ।
विहाय सर्वपीठानि तस्य देहे वसेच्छिवा ॥ ३३ ॥

यहाँ पर जिस साधक ने एक बार भी यदि पूजा की, तब शिवा समस्त पीठों को छोड़कर उसके शरीर में निवास करती है ॥ ३३ ॥

ततः शतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
यत्र कोटिगणैः सार्धमाद्या वसति मर्दिनी ॥ ३४ ॥

इसका सौ गुना फल कामाख्या योनि-मण्डल में पूजा से प्राप्त होता है, जहाँ आद्या महिषमर्दिनी अपने करोड़ों गणों के साथ निवास करती हैं ॥ ३४ ॥

यत्पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं गुप्तं सर्वसुखावहम् ।
यतो देव्यश्च देवाश्च मुनयश्चैव भावजाः ॥ ३५ ॥
सर्वेऽप्याविर्भवन्त्यत्र तेन गुप्तं महाकुलम् ।
द्विविधं चैव तत्पीठं गुप्तं व्यक्तं सदा पशौ ॥ ३६ ॥
व्यक्तं गुप्तं महापुण्यं दुरापं साधकेन वै ।
व्यक्तं सर्वत्र देवेश लभ्यते कुलसुन्दरैः ॥ ३७ ॥
तत्रापि लक्षमानेन सिद्धिर्भवति निश्चितम् ।
अथवाऽन्यप्रकारेण कथ्यते साधनं महत् ॥ ३८ ॥

यह पीठ अत्यन्त गुप्त है, ब्रह्मदेव का साक्षात् मुख है, सुखकारक है, जहाँ देवियाँ, देवगण एवं मुनिगण भाव करने मात्र से प्रगट हो जाते हैं । इस कारण यह महाकुल गुप्त है । यह पीठ गुप्त और व्यक्त रूप दो भेदों वाला है । दोनों ही

महापुण्य है । साधक के लिये कठिनाई से प्राप्त करने योग्य है । हे देवेश! कुलमार्ग के उपासकों के लिये सभी प्रदेश व्यक्त हैं । उस व्यक्त पीठ में एक लाख की संख्या में जप करने से निश्चित रूप से सिद्धि हो जाती है, अथवा अन्य प्रकार से सिद्धि का महान् साधन कहता हूँ ॥ ३५-३८ ॥

आनीय देवीं तद्गात्रे व्यापकान्तं प्रविन्यसेत् ।
उपचारैः षोडशभिस्तां सम्पूज्य विधानतः ॥ ३९ ॥
प्रथमं साधकश्रेष्ठो देवीकूटस्य मस्तके ।
मन्त्रं विलिख्य यथोक्तं पूजयेत् कुलवर्त्मना ॥ ४० ॥

देवी को लाकर उसके शरीर में व्यापक पर्यन्त न्यास करे । फिर षोडशोपचार से विधानपूर्वक उसकी पूजा करे । श्रेष्ठ साधक देवी कूट का प्रथम मन्त्र लिखकर उसके मस्तक में स्थापित कर कुलमार्ग के अनुसार पूजा करे ॥ ३९-४० ॥

प्रथमे पीठदेवीञ्च पूजयेद् गन्धपुष्पकैः ।
महाभागां ततो मूलदेवीमावरणैः सह ॥ ४१ ॥
लक्षैकं तत्र सञ्जप्य उड्डीयानं ततो विशेत् ।
तत्र पीठे योगनिद्रां पूजयित्वा ततो यजेत् ॥ ४२ ॥

सर्वप्रथम पीठ की अधिष्ठात्री देवी का गन्ध पुष्प से पूजन करे । फिर आवरण सहित महादेवी का पूजन करे । वहाँ एक लाख जप कर उड्डीयान पीठ में प्रवेश करे । उस पीठ में योग निद्रा का पूजन कर अपनी इष्ट देवता का पूजन कर एक लाख जप करे ॥ ४१-४२ ॥

निजेष्टदेवतां तत्र जपेल्लक्षं समाहितः ।
कामरूपं ततो गत्वा तत्र कात्यायनीं यजेत् ॥ ४३ ॥
पूजयित्वा ततो देवीं जपेल्लक्षं समाहितः ।
ततो जालन्धरे गत्वा पूर्णेशीं प्रथमं यजेत् ॥ ४४ ॥
तत्रापि लक्षमानं तु जप्त्वा मन्त्रं समाहितः ।
ततः पूर्णगिरिं गत्वा यजेच्चण्डीं समाहितः ॥ ४५ ॥

फिर कामरूप में जाकर कात्यायनी का यजन करे । वहाँ कात्यायनी का पूजन कर एक लाख जप करे । फिर जालन्धर पीठ में जाकर पूर्णेशी का पूजन करे । वहाँ भी समाहित चित्त हो एक लाख जप करे । फिर पूर्णगिरि में जाकर समाहित चित्त हो चण्डी का यजन करे ॥ ४३-४५ ॥

पूजयित्वा महादेवीं जपेल्लक्षमनन्यधीः ।
सिन्दूरबिन्दुपीठे च कामाख्यां प्रथमं यजेत् ॥ ४६ ॥

वहाँ महादेवी का पूजन कर एक लाख की संख्या में सावधानी से जप करे। सर्वप्रथम सिन्दूरबिन्दुपीठ में भगवती कामाख्या का यजन करे ॥ ४६ ॥

ततः प्रान्ते महादेवीं यजेद्दिक्करवासिनीम् ।
एवं पीठेश्वरीं जप्त्वा पूजयेदिष्टदेवताम् ॥ ४७ ॥

उसके बाद उनके सन्निकट में रहने वाली दिक्करवासिनी की पूजा करे। इस प्रकार पीठेश्वरी का जपकर अपने इष्ट देवता का पूजन करे ॥ ४७ ॥

सप्तपीठे सप्तलक्षं जप्त्वा रात्रौ समाहितः ।
संख्यापूर्वं ततः पृच्छेन्महादेवी कुलोत्तमम् ॥ ४८ ॥
तवेष्टदेवतैवाऽहं वृणुष्व वरमुत्तमम् ।
ततः प्रणम्य देवेशीं वृणुयाद्वरमुत्तमम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार सात पीठ में समाहित चित्त हो, रात्रि में सात लाख जप करे। फिर कुलोत्तमा महादेवी साधक का नाम लेकर उससे पूछती है। मैं तुम्हारी इष्ट देवता हूँ। तुम सर्वोत्तम वर मुझसे माँग लो। फिर साधक देवी को प्रणाम कर अपने अनुकूल श्रेष्ठ वर वरण करे ॥ ४८-४९ ॥

यद्येवं नैव सा देवी पुनः पूर्वोक्तमाचरेत् ।
अक्षोभितः कुलाचारपरिचर्यापरो भवेत् ॥ ५० ॥

यदि देवी प्रगट होकर इस प्रकार साधक से न पूछे, तब वह पुनः पूर्वोक्त अनुष्ठान करे और चाञ्चल्यरहित होकर कुलमार्ग के अनुसार ही कौलों की परिचर्या करे ॥ ५० ॥

अथवा सर्वपीठेषु यजेन् महिषमर्दिनीम् ।
ततः प्रसन्ना भवति सैव कुलवरप्रिया ॥ ५१ ॥
ततो जप्त्वा मूलमन्त्रं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
ततो ध्यात्वा न्यसेदादौ मातृकान्तरसञ्ज्ञकम् ॥ ५२ ॥

अथवा उक्त समस्त पीठों में महिषमर्दिनी का ही यजन करे। इस पूजन से कुल सम्प्रदाय वालों को वर देने वाली महिषमर्दिनी प्रसन्न हो जाती हैं। तदनन्तर मूल मन्त्र का जप कर साधक सिद्धीश्वर हो जाता है। इसके बाद ध्यान कर अन्य मातृका सञ्ज्ञा से न्यास करे ॥ ५१-५२ ॥

पूर्ववद्विधिना न्यस्य तेनैव न्यस्य मातृकाम् ।
अकारादिक्षकारान्तमेकैकक्रमयोगतः ॥ ५३ ॥
पञ्चाङ्गञ्च पुनः कृत्वा पञ्चधा व्यापकं चरेत् ।

मूर्द्धादिचरणान्तञ्च तस्मान्मूर्द्धावसानकम् ॥ ५४ ॥
मूलेन मनुना मन्त्री कृत्वा सञ्चिन्तयेत्ततः ।
ध्यायेत् कालीं महादैत्ययुद्धरागमहोन्मुखीम् ॥ ५५ ॥
दक्षिणे चक्रखड्गौ च बाणं शूलं तथैव च ।
वामे शङ्खं तथा चर्म धनुस्तर्जनमेव च ॥ ५६ ॥
बिभ्रतीं तीव्रबाणञ्च महिषे तु निषेदुषीम् ।
पीताम्बरधरां देवीं पीनोन्नतकुचद्वयाम् ॥ ५७ ॥
जटामुकुटशोभाढ्यां पितृभूमिसुखावहाम् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीं मानसैरुपचारकैः ॥ ५८ ॥
पूजयेद्विधिवद् भक्त्या स्वकीय हृदि पङ्कजे ।
ततः सोऽहं विभाव्याथ पुष्पं निःक्षिप्य मस्तके ॥ ५९ ॥
घटस्थापनमारभ्य पीठपूजावसानकम् ।
कृत्वा च पूर्ववद्वीरः सदाशिवं यजेत्ततः ॥ ६० ॥

पूर्ववत् विधान से न्यास कर उसी क्रम से अकारादि-क्षकारान्त वर्णों से मातृका न्यास करे । फिर पञ्चाङ्गपूजन कर पाँच प्रकार का व्यापक न्यास करे । प्रथम मूर्धा से लेकर चरण पर्यन्त, फिर चरण से मूर्धा पर्यन्त न्यास कर मन्त्रज्ञ मूल मन्त्र से भगवती महाकाली, जिनका महादैत्यों से युद्ध करने में महोत्साह है । जो अपने दक्षिण हाथ में चक्र, खड्ग, बाण, शूल तथा बायें हाथ में शङ्ख, ढाल, धनुष और तीखा बाण धारण की हुई महिष पर बैठी हैं । पीताम्बर धारण किये हुये ऊँचे-ऊँचे दोनों कुचमण्डलों से सुशोभित हैं । जटामुकुट धारण की हुई हैं । जिन्हें पितृकानन (श्मशान) में सुख प्राप्त होता है । इस प्रकार महादेवी काली का ध्यान कर मानस उपचारों से भक्तिपूर्वक अपने हृदय कमल में पूजन करे । फिर 'सोऽहम्' इस मन्त्र का ध्यान कर भगवती के मस्तक पर पुष्प चढ़ाकर घटस्थापन से लेकर पीठ पूजन पर्यन्त समस्त कार्य सम्पादन कर वीर साधक सदाशिव का यजन करे ॥ ५३-६० ॥

पूर्वोक्तविधिना चैव ध्यात्वा च परदेवताम् ।
यन्त्रमध्ये समावाह्य मूलेन परिकल्पिताम् ॥ ६१ ॥
आवाहनादिकं चैव पूर्ववच्च समाचरेत् ।
सम्पूज्य च महादेवीं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ ६२ ॥
देव्या वामे यजेत् पश्चात्पूर्वोक्तञ्च गुरोःकुलम् ।
शाक्तं जप्त्वा च गुर्वादीन् नारदञ्च ततो यजेत् ॥ ६३ ॥

इसके बाद पूर्वोक्त विधि से परदेवता का ध्यान कर यन्त्र के मध्य में मूल मन्त्र

से आवाहनादि समस्त कार्य करे । इस प्रकार महादेवी का पूजन कर देवी के वाम भाग में शक्ति सम्प्रदाय के गुरुओं का पूजन करे । शाक्त मन्त्र का जप करे फिर नारद का यजन करे ॥ ६१-६३ ॥

अष्टपत्रे यजेद्देवीं दुर्गाद्यां दीर्घपूर्विकाम् ।
दुर्गा च प्रथमा ज्ञेया द्वितीया वरवर्णिनी ॥ ६४ ॥
आर्या चैव तृतीया च चतुर्थी कनकप्रभा ।
कृत्तिका पञ्चमी प्रोक्ता षष्ठी चैवाभयप्रदा ॥ ६५ ॥
काली सुरागिणी चैव जप्त्वा पूर्वोदितक्रमात् ।
आयुधानि दलाग्रेषु यादिभिः क्रमतो यजेत् ॥ ६६ ॥

फिर अष्टपत्र पर दीर्घपूर्वक (आं ईं ऊँ एं ऐं ओं औं अः) दुर्गादि देवियों का पूजन करे । प्रथम दुर्गा, दूसरी वरवर्णिनी, तृतीया आर्या, चौथी कनकप्रभा, पञ्चमी कृत्तिका, षष्ठी अभयप्रदा, फिर काली, इसके बाद सुरागिणी—ये आठ दुर्गादि देवियाँ कही गई हैं । इस प्रकार उनका यजन कर दल के अग्रभाग में यादि वर्णों से (यं रं लं वं शं षं सं हं) उनके आयुधों का पूजन करे ॥ ६४-६६ ॥

ब्राह्म्याद्याश्च ततः पश्चात् लोकपालांस्ततो बहिः ।
तदस्त्राणि बहिर्जप्त्वा तर्पयित्त्वा विधानतः ॥ ६७ ॥

उसके बाद ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि अष्ट मातृकाओं का, उसके बाहर अष्ट लोकपालों का और उसके बाद लोकपालों के अस्त्रों का पूजन कर साधक विधिपूर्वक उनका तर्पण करे ॥ ६७ ॥

ततः सम्पूजयेद्देवीं पूर्ववत् साधकोत्तमः ।
तर्पयित्वा महादेवीं मन्त्रजापं समाचरेत् ॥ ६८ ॥

फिर उत्तम साधक देवी का पूर्ववत् पूजन कर उनका भी तर्पण करे । तदनन्तर मन्त्र का जप करे ॥ ६८ ॥

मातुर्महिषमर्दिन्याः सङ्केतं कथयाम्यतः ।
कुलाचारस्य संसिद्ध्यै भुक्तिमुक्तिसुसिद्धये ॥ ६९ ॥

अब इसके बाद महिषमर्दिनी माता का सङ्केत कहता हूँ । महिषमर्दिनी माता का यह सङ्केत कुलाचार की सिद्धि के लिये तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति के लिये किया जाता है ॥ ६९ ॥

भान्तं वियत् सनयनं श्वेतो मर्दिनी ठ द्वयम् ।
अष्टाक्षरी समाख्याता विद्या महिषमर्दिनी ॥ ७० ॥

भान्त (म), वियत् (ह), जो सनयन (इ) हो, उसके बाद श्वेत (ष), फिर मर्दिनी पद, इसके बाद दो ठ (स्वाहा) अर्थात् 'महिषमर्दिन्यै स्वाहा'—यह महिषमर्दिनी अष्टाक्षरी विद्या कही जाती है ॥ ७० ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानामादिभूता सनातनी ।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्या कथिता सिद्धिकारिणी ॥ ७१ ॥

यह महाविद्या सृष्टि, स्थिति और विनाश की आदिभूता विद्या है और सनातनी है । अतः उनकी यह सिद्धिकारिणी अष्टाक्षरी विद्या किसी को उपदिष्ट नहीं करना चाहिये ॥ ७१ ॥

अत्यन्तगुरुभक्ताय शुद्धाय सा हि प्रार्थ्यते ।
तदाष्टवर्गा दातव्या सफलं तस्य साधनम् ॥ ७२ ॥

अत्यन्त गुरुभक्त और सदाचार से विशुद्ध व्यक्ति जब बहुत प्रार्थना करे । तब उसे इस अष्टाक्षरी विद्या का उपदेश करना चाहिये । जिससे उसका साधन फलवान् हो जाय ॥ ७१ ॥

प्रणवाद्यां जपेद्विद्यां मायाद्यां वा जपेत् सुधीः ।
वधूबीजादिकां वापि कवचाद्यां जपेत्तदा ॥ ७३ ॥

सुधी साधक इस महाविद्या के आदि में प्रणव लगाकर अथवा माया (ह्रीं) लगाकर जप करे, अथवा वधू बीज (स्त्रीं) लगाकर अथवा कवच (हुं) लगाकर जप करे ॥ ७३ ॥

सर्वकालेषु सर्वत्र कामाद्यां प्रजपेत् सुधीः ।
वाग्भवाद्यां जपेत् तां तु देवीं वाक्यविशुद्धये ॥ ७४ ॥

अथवा सर्वत्र सभी कालों में सुधी साधक काम (क्लीं) लगाकर जप करे । वाक्शुद्धि के लिये आदि में वाग्भव (ऐं) लगाकर जप करे ॥ ७४ ॥

साधारणी प्राणविद्या हृल्लेखा सिद्धिखेचरा ।
एतत्पूर्वस्थिता देवी सुरसिद्धिविधायिनी ॥ ७५ ॥

साधारणी प्राण विद्या (हं), हृल्लेखा (ह्रीं), सिद्धिखेचरा (?) इस विद्या के पूर्व में लगाकर जप करे तो वह देवता विषयक सिद्धि करा देती है ॥ ७५ ॥

विशेषतः कलियुगे महासिद्धेश्च दायिनी ।
गुरूणां कुलनाथानां मायापाशविमोचिनी ॥ ७६ ॥

यह नवाक्षरी विद्या विशेष रूप से कलि में फलप्रदा है और गुरुजनों एवं

कौलाचार्यों को मायापाश से विमुक्त करने वाली है ॥ ७६ ॥

तस्माद्यत्नेन सततं गोप्तव्येयं नवाक्षरी ।
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः ॥ ७७ ॥

इस कारण इस नवाक्षरी महाविद्या को प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखे । इस मन्त्र का आठ लाख जप करे । तदनन्तर उसका दशांश हवन करे ॥ ७७ ॥

पुरश्चरणाष्टलक्षं बोद्धव्यं साधकेन च ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा समाप्याथ स्तुतिं पठेत् ॥ ७८ ॥

साधक को यह समझ लेना चाहिये कि इसका पुरश्चरण भी आठ लाख का होता है । यथाशक्ति जप कर उसे समाप्त कर इस स्तुति को पढ़े ॥ ७८ ॥

महिषघ्निस्तुति

जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तुते ॥ ७९ ॥
रोगविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये ।
करालवदने श्यामे नमस्ते सुरसुन्दरि ॥ ८० ॥
कुलभक्तप्रसन्नास्ये शङ्करप्राणवल्लभे ।
रक्तमांससमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम् ॥ ८१ ॥
इति स्तवने संस्तुत्य शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
विसर्जनं विधायाथ प्रयोगञ्च ततश्चरेत् ॥ ८२ ॥

'जय देवि जगद्धात्रि......................त्वां नमाम्यहम्' (७९-८१) पर्यन्त स्तुति कर शेष पूजन पूर्ववत् सम्पन्न करे । हे देवि ! हे जगत् का पालन करने वाली ! हे त्रिपुराद्ये ! हे त्रिदेवते ! हे महिषासुर का वध करने वाली ! आप भक्तों को वर प्रदान करने वाली हो; आपको नमस्कार है । रोग एवं विघ्न के विनाश के लिए, कुलाचार की समृद्धि के लिए, हे श्यामा! हे सुरसुन्दरि! हे कराल मुख वाली ! आपको नमस्कार है । हे शङ्कर की प्राणवल्लभा ! आपको नमस्कार है । तदनन्तर विसर्जन कर इसका प्रयोग करे ॥ ७९-८२ ॥

एतद्विद्या महाविद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
यदि भाग्यवशात् लभ्या कुलदेवी कुलोत्तमैः ॥ ८३ ॥

यह विद्या महाविद्या है । यदि यह कुलदेवी भाग्यवश कुलाचार्यों को प्राप्त हो जावे तो उसे वह जिस-किसी को नहीं देवे ॥ ८३ ॥

दीक्षिता कुलजाभिस्तु सिद्धिदा सैव नान्यथा ।

कुल धर्म में उत्पन्न हुई दीक्षित ललनाओं को यह सिद्धि प्रदान करती है अन्य को नहीं ॥ ८४ ॥

अथ दूतीयजनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दूतीयजनमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
शाक्तो वा वैष्णवो वापि शैवो वाऽप्यन्यपूजकः ।
यस्मात् क्षिप्रं भवेत् सिद्धिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः॥ ८५ ॥

दूतीयजनविधान—अब सर्वोत्तम दूती याग का विधान कहता हूँ। चाहे शाक्त हो, या वैष्णव, या शैव हो, अथवा अन्य देवता का पूजक हो, वह दूती के पूजन से ही सिद्धि लाभ करता है। अन्यथा करोड़ों जन्म तक उपाय करता रहे फिर भी सिद्धि नहीं मिलती ॥ ८४-८५ ॥

मन्त्रस्य सिद्धिकामस्तु दूतीयजनमाचरेत् ।
किं जपन्यासविधिना ध्यानपूजादिविस्तरैः ॥ ८६ ॥
यावद्दूतीं न पूज्येत तावत् सिद्धिर्भवेत् कुतः ।
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा योनौ सम्पूज्य साधकः ॥ ८७ ॥
इहामुत्र सुखी भूत्वा देवीपुत्रो भवेत् क्षितौ ।

अतः मन्त्र-सिद्धि के लिये दूती-यजन अवश्य करना चाहिये। जप, न्यास, विधि, ध्यान और विस्तृत पूजा से कोई लाभ नहीं। जब तक साधक दूती पूजा नहीं करता, तब तक सिद्धि किस प्रकार सम्भव है। साधक गन्धर्व जैसा रूप बनाकर योनि में पूजन कर इस लोक और परलोक में सुखी होकर पृथ्वी में देवीपुत्र बन जाता है ॥ ८६-८८ ॥

त्रिकोणेषु त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ८८ ॥
योनिमध्ये यजेन्नित्यं चण्डिकां कुलदेवताम् ।
तत्र विद्यां जगद्धात्रीं कुलामृतैः कुलक्रमात् ॥ ८९ ॥
स भवेत् साधकश्रेष्ठः शिवतुल्यो भवेन्नरः ।
तत्र या क्रियते पूजा जपं वा तर्पणं पुनः ॥ ९० ॥
तदनन्तफलं कर्त्तुर्भवत्येव न संशयः ।
युवतीयोनिमास्थाय सर्वसिद्धिर्भवेद्यतः ॥ ९१ ॥

योनि के त्रिकोण में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का निवास है। योनि के मध्य में कौलों की देवता चण्डिका का निवास है अतः वहीं उनका यजन करे। वहाँ जगद्धात्री महाविद्या का कौलमतानुसार कुलामृत से पूजन करना चाहिये। ऐसा साधक शिवतुल्य हो जाता है। उस स्थान पर जो जप, पूजा अथवा तर्पण किया

जाता है उससे कर्त्ता को अनन्त पुण्य प्राप्त होता है; इसमें कोई संशय नहीं। क्योंकि युवती की योनि का सहारा लेने से साधक को समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ८८-९१ ॥

तस्माद्वै योषितां योनौ पूजयेत् साधकोत्तमः ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तो रक्तवस्त्रविभूषितः ॥ ९२ ॥
परमानन्दतो रात्रौ पञ्चतत्त्वेन संयजेत् ।
स्वकल्पोक्तं प्रकुर्वीत न्यासादिकं सुसाधकः ॥ ९३ ॥

इस कारण उत्तम साधक युवती की योनि में पूजा करे । साधक समस्त अलङ्कार धारण कर, रक्त वस्त्र से विभूषित हो, आनन्द में निमग्न होकर, रात्रि के समय युवती की पूजा पञ्चतत्त्व (मद्यादि) से करे और साधक अपने सम्प्रदायानुसार न्यासादि करे ॥ ९२-९३ ॥

मस्तकं गजदन्तस्य हेमरूप्यादिनिर्मितम् ।
अर्घ्यपात्रे प्रतिष्ठानं कार्यं हेतुजलेन च ॥ ९४ ॥

सुवर्ण तथा रजत निर्मित गणेश की मूर्त्ति अर्घ्यपात्र में स्थापित कर मद्य के जल से उनकी प्रतिष्ठा करे ॥ ९३-९४ ॥

विशुद्धक्षौमरचितां हूनिकां चात्र योजयेत् ।
पुष्पान्यकार्यमध्ये च उपर्युपरि पूजयेत् ॥ ९५ ॥

विशुद्ध पट्ट वस्त्र प्रदान करे यहाँ हूनिका का योजन करे और गन्धादिक अन्य कार्य करके मध्य में तथा ऊपर पुष्प चढ़ावे ॥ ९५ ॥

मण्डूकं पूजयेदादौ रुद्रं कालाग्निसंयुतम् ।
आधारशक्तिं कूर्मञ्च तथानन्तवराहकम् ॥ ९६ ॥

सर्वप्रथम मण्डूक की पूजा करे । फिर कालाग्नि से युक्त रुद्र की पूजा करे । फिर आधारशक्ति की, कूर्म की, शेष की और वराह की पूजा करे ॥ ९६ ॥

पृथिवीञ्च तथा कन्दं नालं वसुदलं तथा ।
केशराणि च सम्पूज्य कर्णिकायां यजेत्ततः ॥ ९७ ॥
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यं ऐश्वर्यञ्च क्रमाद्यजेत् ।
अपूर्वान् पूजयेदेतान् साधकः सिद्धिहेतवे ॥ ९८ ॥

फिर पृथ्वी, कन्द, नाल और अष्टदल केशर की पूजा कर कर्णिका में क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा करे । फिर साधक अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की पूजा अपनी सिद्धि के लिये करे ॥ ९७-९८ ॥

आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानं क्रमेण च ।
पूजयित्वा ततश्चैव गुरुरूपान् समर्चयेत् ॥ ९९ ॥
अद्वैताचारसम्पन्नां गुरुभक्तां दृढव्रताम् ।
सदनुष्ठाननिरतां सात्त्विकीभक्तिसंयुताम् ॥ १०० ॥
कुर्यात् पैशुन्यरहितां अमायां भक्तवत्सलाम् ।
चातुर्यौदार्यदाक्षिण्यकरुणादिगुणान्विताम् ॥ १०१ ॥
रूपयौवनसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् ।
मनोगृहीतविश्वासां यद्वा सङ्केतमागताम् ॥ १०२ ॥
अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम् ।
विलिप्तां रक्तवस्त्रेण रक्तगन्धविभूषिताम् ॥ १०३ ॥
सुगन्धिरक्तकुसुमां सर्वाभरणराजिताम् ।
सुधूपैर्धूपितां तन्वीं दूतीकर्मणि योजयेत् ॥ १०४ ॥

फिर क्रमशः आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा की पूजा करे । इनके पूजन के अनन्तर गुरु स्वरूप वालों की पूजा करे । इसके बाद अद्वैत आचार ज्ञान से सम्पन्न गुरु में भक्ति रखने वाली, अपने व्रत में दृढ़, उत्तम आचरण में संलग्न, सात्त्विकी भक्ति से संयुक्त, पिशुनता से रहित, अपने सहेलियों पर कृपा रखने वाली, चातुर्य, औदार्य, दाक्षिण्य, करुणादि गुणों से सम्पन्न, रूप और युवावस्था से परिपूर्ण, शीलवती, सौभाग्यशालिनी, मन से विश्वास रखने वाली, ऐसी युवती जो सङ्केतपूर्वक बुलाई गई हो, अथवा तत्क्षण संयोगवशात् आई हो, मदनाग्नि से सन्तप्त-उत्तम गन्ध का लेप किये हुए रक्त वस्त्र और रक्तगन्ध से विभूषित हो, सुगन्धयुक्त पुष्पों की माला तथा सब प्रकार के आभूषणों से भूषित हो, उत्तम धूप से धूपित हो, ऐसी तन्वी युवती को दूती कर्म में नियुक्त करे ॥ ९९-१०४ ॥

एवम्भूतां यजेद्यस्तु प्रसूनतूलिकोपरि ।
तस्य गात्रे स्वकल्पोक्तं न्यासजालं विधाय च ॥ १०५ ॥

उपर्युक्त गुणसम्पन्ना दूती का पुष्प सुसज्जित रूई के गद्दे पर यजन करे। सर्व प्रथम उसके शरीर में स्वकल्पोक्त न्यास जाल का विधान करे ॥ १०५ ॥

षोडशैरुपचारैस्तु पूजयेत् स्थिरमानसः ।
जप्त्वा च हूनिकामध्ये प्रसूनैश्च सुगन्धिभिः ॥ १०६ ॥
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ।
समाकीर्णे सुपर्यङ्के पूजयेत् कुलनायिकाम् ॥ १०७ ॥

फिर एकाग्रचित्त हो षोडशोपचारों से उसका पूजन करे। हूनिका के मध्य में जप कर सुगन्ध, पुष्पों, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, कुङ्कुमादि से संयुक्त सुन्दर पलङ्ग पर बैठाकर उस कुलनायिका का पूजन करे ॥ १०६-१०७ ॥

पूजयित्वा सदा भक्त्या स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ।
बटुकं गणपं दुर्गां क्षेत्रपालं तथैव च ॥ १०८ ॥
पूर्वादिक्रमतो मन्त्री पूजयेत् सिद्धिहेतवे ।
त्रिकोणे पूजयेन्मूर्ध्नि कामेशीं तस्य मध्यगे ॥ १०९ ॥

इस प्रकार कुलनायिका का पूजन कर स्थिर चित्त एवं जितेन्द्रिय साधक बटुक, गणेश, दुर्गा तथा क्षेत्रपाल का पूर्वादिक्रम से अपनी सिद्धि के लिये यजन करे। फिर त्रिकोण में, शिरः स्थान में तथा चक्रमध्य में कामेश्वरी की पूजा करनी चाहिए ॥ १०८-१०९ ॥

गणेशञ्च कुलाध्यक्षं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ।
त्रिकोणे पूजयित्वा तु वसन्तं मदनं तथा ॥ ११० ॥
स्तनयोः पूजयेत् पश्चात् मुखे तस्याः कलाधरम् ।
दक्षपादादिमूर्धान्तं वाममूर्धादिकं तथा ॥ १११ ॥
पूजयेत् साधकश्रेष्ठः कला वै कामसोमयोः ।

कुलाध्यक्ष गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी तथा सरस्वती की त्रिकोण में पूजाकर उस दूती के स्तन में वसन्त और कामदेव की पूजा करे। मुख में कलाधर चन्द्रमा की, दाहिने पाद से लेकर मूर्धा पर्यन्त तथा बायें पाद से लेकर मूर्धा पर्यन्त श्रेष्ठ साधक काम और सोम की पूजा करे ॥ ११०-१११ ॥

श्रद्धा प्रीतीरतिश्चैव दूतिः कान्तिर्मनोरमा ॥ ११२ ॥
विमला मोदिनी घोरा मदनोन्मादिनी तथा ।
मोहिनी दीपनी चैव शोषणी चैव शङ्करी ॥ ११३ ॥
रञ्जनी च क्रमेणैव षोडशी प्रियदर्शना ।
षोडशस्वरसंयुक्ता एताः कामकला यजेत् ॥ ११४ ॥

श्रद्धा, प्रीति, रति, दूती, कान्ति, मनोरमा, विमला, मोदिनी, घोरा, मदना, उन्मादिनी, मोहिनी, दीपनी, शोषणी, शङ्करी एवं रञ्जनी—ये षोडशी कही जाती हैं जो अत्यन्त सुन्दरी हैं। साधक षोडश स्वरों से इन षोडशी कामकलाओं का यजन करे ॥ ११२-११४ ॥

पूषा रमा च सुमना रतिः प्रीतिस्तथा धृतिः ।
ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च तथा चैवांशुमालिनी ॥ ११५ ॥

अङ्गिरा पावनी चैव छाया सम्पूर्णमण्डला ।
तथा तुष्टामृते चैव कलाः सोमस्य षोडश ॥ ११६ ॥
स्वरैरेव प्रपूज्या हि सर्वकामार्थसिद्धये ।
तस्यास्तु मदनागारे पूजयेद् भगमालिनीम् ॥ ११७ ॥

पूषा, रमा, सुमना, रति, प्रीति, धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, अंशुमालिनी, अंगिरा, पावनी, छाया, सम्पूर्णमण्डला, तुष्टा और अमृता—ये सोलह चन्द्रमा की कलायें हैं, साधक सिद्धि के लिये इनका पूजन स्वरों से ही करे । फिर उसके मदनागार में भगमालिनी की पूजा करे ॥ ११५-११७ ॥

वाग्भवं भगशब्दावते भुगे भगिनि चालिखेत् ।
अथोदरि भगान्ते च भगमाले भगावहे ॥ ११८ ॥
भगग्गुह्ये भगयोनि ततो भगनिपातिनि ।
सर्वभगवशङ्करि भगरूपे ततः परम् ॥ ११९ ॥
नित्यक्लिन्ने भगप्रान्ते स्वरूपे सर्वाण्यालिखेत् ।
भगानि मे ह्यानयान्ते वरदेऽथ समालिखेत् ॥ १२० ॥
रेते सुरेतेऽथ भग क्लिन्ने क्लिन्नद्रवे ततः ।
क्लेदय द्रावयाऽमोघे भगविच्चे ततः परम् ॥ १२१ ॥
क्षुभः क्षोभयशब्दान्ते सर्वपदं वदेत्ततः ।
सत्त्वान् भगेश्वरि ब्रूयात् वाग्भवं ब्लूं जमादिकम् ॥ १२२ ॥
भें ब्लूं मों ब्लूं प्रदान्ते हें हें क्लिन्ने ततो वदेत् ।
सर्वाणि भगानि मे वशमानय चोद्धरेत् ॥ १२३ ॥
वधू हर्ब्लें भुवनेशीं ततश्च भगमालिनि ।
भगमालाञ्च नित्याञ्च ङेयुतां मनुमुद्धरेत् ॥ १२४ ॥

भगमालिनी मन्त्रोद्धार—वाग्भव (ऐं) 'भग' इसके बाद 'भुगे भगिनि' कहे । फिर भग इसके अन्त में उदरि (=भगोदरि) 'भगमाले भगावहे' फिर भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि' फिर 'सर्वभगवशङ्करि भगरूपे' कहे । इसके बाद 'नित्यक्लिन्ने' इसके बाद 'भग' उसके अन्त में 'स्वरूपे' फिर 'सर्वाणि भगानि मे आनय वरदे' इस प्रकार लिखे । फिर 'रेते सुरेते भग क्लिन्ने क्लिन्न द्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे', इसके बाद क्षुभः क्षोभय, इसके बाद 'सर्व', फिर 'सत्त्वान् भगेश्वरि' कहे । फिर वाग्भव (ऐं), ब्लूं, जं ब्लूं भें ब्लूं मों ब्लूं के अन्त में 'हें हें क्लिन्ने' 'सर्वाणि भगानि मे वशमानय' पर्यन्त भगमालिनी मन्त्र का उद्धार करे । फिर 'वधू' (स्त्रीं) हर ब्लें भुवनेशि भगमालिनी भगमाला नित्यायै' पर्यन्त मन्त्र का उद्धार करे ॥ ११५-१२४ ॥

विमर्श—भगमालिनी नित्या के मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे आनय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्व सत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लूं भें ब्लूं मों ब्लूं हें हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय।

भगमालां महाविद्यां पूजयित्वा च साधकः ।
सर्वानन्दमये मध्ये चक्रराजं समर्चयेत् ॥ १२५ ॥

फिर साधक भगमाला महाविद्या का पूजन कर सर्वानन्दमय के मध्य में चक्रराज की पूजा करे ॥ १२५ ॥

पूर्वपश्चिमयोगेन निजविद्यां प्रपूजयेत् ।
तत्राप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासं तथैव च ॥ १२६ ॥
विधिवत् पूजनं कृत्वा स्वलिङ्गे तदनन्तरम् ।
तारञ्च भुवनेशानीं त्रिपुरायास्त्रयं ततः ॥ १२७ ॥
नमः शिवाय विद्येयं दशार्णा परिकीर्त्तिता ।
अनेन मनुना मन्त्री स्वलिङ्गे पूजयेच्छिवम् ॥ १२८ ॥
यजेत्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसञ्ज्ञया ।

पूर्व से पश्चिम पर्यन्त निज विद्या का पूजन करना चाहिए । उसमें आवाहन तथा प्राण प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती । चक्रराज का विधिवत् पूजन कर अपने लिङ्ग में तार (ॐ), भुवनेशी (ह्रीं), इसके बाद तीन त्रिपुरा (क्लीं क्लीं क्लीं), फिर 'नमः शिवाय' यह महाविद्या दश अक्षरों वाली कही गई हैं इस मन्त्र से साधक अपने लिङ्ग में सदाशिव का पूजन करे और फिर 'तत्पुरुषाय विद्महे' अघोर मन्त्र, सद्योजात और वामदेव और ईशानः सर्व विद्यानाम्' इन मन्त्रों से यजन करे ॥ १२६-१२९ ॥

निवृत्तिञ्च प्रतिष्ठां च विद्यां शान्तिं ततः परम् ॥ १२९ ॥
शान्त्यतीतां च सम्पूज्य षडङ्गावरणं यजेत् ।
समग्रविद्यामुच्चार्य तत्त्रिकोणे प्रपूजयेत् ॥ १३० ॥

फिर निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता का पूजन कर षडङ्गावरण की पूजा त्रिकोण में ही समस्त विद्या मन्त्र का उच्चारण कर करे ॥ १२९-१३० ॥

पुष्पं धूपादिकं दत्त्वा निर्विकल्पमनाः स्वयम् ।
सर्वसङ्क्षोभणीं मुद्रां बद्ध्वा योनिं विचालयेत् ॥ १३१ ॥

फिर पुष्प धूपादि प्रदान कर स्वयं विकाररहित होकर सर्वसङ्क्षोभणी मुद्रा

बनाकर योनि को चला देवे ॥ १३१ ॥

मध्यमे मध्यगे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ॥ १३२ ॥
एषा तु परमा मुद्रा सर्वसङ्क्षोभणी मता ।
क्षोभयेदथवा मन्त्री गजहस्ताख्यमुद्रया ॥ १३३ ॥
अधोमुखं दक्षपाणिं निधायाऽङ्गुष्ठके समे ।
निःक्षिपेदङ्गुलीः सर्वा गजतुण्डाकृतिर्यथा ॥ १३४ ॥
गजहस्ता महामुद्रा कथिता सिद्धिदायिका ।
उच्चरेद्भगमालाञ्च द्राविणीबीजमुच्चरन् ॥ १३५ ॥
अक्षुब्धमनयोर्योगे महाविन्दुः प्रजायते ।
रजोमयं रजः साक्षात् संविदेव न संशयः ॥ १३६ ॥

दोनों मध्यमा को मध्य भाग में स्थापित कर; कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ अङ्गुलियों से रोक कर; तर्जनी को डण्डे के समान खड़ी रखे । (दोनों) अनामिका को मध्यमा पर स्थापित करे । यह परमा सङ्क्षोभणी मुद्रा कही जाती है अथवा मन्त्रज्ञ साधक गजहस्त नामक मुद्रा दिखाकर योनि संक्षुब्ध करे । दाहिने हाथ को अधोमुख कर दोनों अङ्गूठों को समतल रखकर सभी अङ्गुलियों को गजतुण्ड के समान ऊपर उठावे—इसे गजमुद्रा कहा जाता है जो सब सिद्धि प्रदान करने वाली है । फिर द्राविणी बीज का उच्चारण कर भगमाला मन्त्र का उच्चारण करे । इन दोनों मन्त्रों के योग से महाविन्दु उत्पन्न होता है जो भय एवं रज ही संवित् (ज्ञान) है इसमें संशय नहीं ॥ १३२-१३६ ॥

प्रकृतिः परमेशानी बीजं पुरुष उच्यते ।
शिवशक्तिसमायोगो योग एव न संशयः ॥ १३७ ॥

इसकी प्रकृति परमेश्वरी है, पुरुष बीज है । शिव शक्ति का एक में मिलन योग है इसमें संशय नहीं ॥ १३७ ॥

शीत्कारो मन्त्ररूपस्तु वचनं स्तवनं भवेत् ।
आलिङ्गनञ्च कस्तूरी कर्पूरं चुम्बनं भवेत् ॥ १३८ ॥
नखदन्तक्षतादीनि पुष्पमालादिपूजनम् ।
लीलादिकं धूपदीपं कुचमर्दं शिवार्चनम् ॥ १३९ ॥

इस योग की स्थिति में शीत्कार मन्त्र है, वचन स्तुति है, आलिङ्गन कस्तूरी है, चुम्बन कपूर है, पुष्प मालादि से पूजन नखक्षत दन्तक्षतादि है, धूपदान लीलादिक है और शिवार्चन स्तन मर्दन है ॥ १३८-१३९ ॥

मैथुनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातो विसर्जनम् ।
कुलद्रव्येण संशोध्य शिवशक्तिमयो भवेत् ॥ १४० ॥

तर्पण को मैथुन समझना चाहिये और विसर्जन को वीर्यपात समझना चाहिये । कुलद्रव्य से अपने को शुद्ध कर साधक शिवशक्तिमय बन जाता है ॥ १४० ॥

वीर्यामृतं परंब्रह्म हुनेद्राहु मुखाम्बुजे ।
कुण्डे त्रिगुणसम्पन्ने श्रीविन्दुनिलये परे ॥ १४१ ॥

यह शिवार्चन रूप वीर्यामृत परब्रह्म स्वरूप है इसे राहु के मुख कमल में हवन कर देवे । त्रिगुण सम्पन्न श्री विन्दु का निवास स्थान कुण्ड ही राहु बतलाया गया है ॥ १४१ ॥

परापरविभागेन कुलीनो विश्वपूजितः ।
विविक्तुः कुत्सनपरो जायते गुरुतल्पगः ॥ १४२ ॥

इस प्रकार परापर के विभाग से कौल विश्वपूजित हो जाता है । ऐसे विवेचक कौल की निन्दा करने वाले को गुरुतल्पगामी होने का दोष लगता है ॥ १४२ ॥

प्रकृतञ्च समाप्याथ गृहीत्वाद्रव्यमुत्तमम् ।
तर्पयित्वा महादेवीं शक्तये दक्षिणां ददेत् ॥ १४३ ॥

साधक प्रकृत कार्य सम्पादन कर उस उत्तम द्रव्य को ग्रहण कर उससे महादेवी का तर्पण कर शक्ति को दक्षिणा प्रदान करे ॥ १४३ ॥

सुवस्त्राभरणाद्यैश्च शक्तिञ्च परितोषयेत् ।
त्रिविधं त्रिपुरायाश्च कथितं पूजनं महत् ॥ १४४ ॥

उत्तमोत्तम वस्त्र आभरण देकर शक्ति को सन्तुष्ट करे । इस प्रकार हमने त्रिपुरा की तीन प्रकार की विस्तारपूर्वक पूजा कहा ॥ १४४ ॥

अतएव महाप्राज्ञो निर्विकल्पः सदा भवेत् ।
तदा सुविस्तरैः स्तवैः सर्वाणि परिशोधयेत् ॥ १४५ ॥

तदनन्तर महाप्राज्ञ साधक अपने मन में किसी प्रकार का विकल्प (शङ्का सन्देह) न करे । उस समय विस्तृत स्तुतियों से सब को प्रसन्न करे ॥ १४५ ॥

निर्विकल्पतया गात्रयज्ञे दोषो न विद्यते ।
अश्वमेधादियज्ञादौ वाजिहत्या कथं भवेत् ॥ १४६ ॥

इस प्रकार दूती के शरीर में सम्पन्न किया गया याग निर्विकार होने के कारण दोषावह नहीं होता । यदि ऐसा न हो तो अश्वमेधादि यज्ञों में घोड़े की हत्या क्यों

की जाती है ॥ १४६ ॥

सर्वभोज्यवस्तूनामामिषत्वम्

फलं क्षीरं घृतं चैव मधु मौरेयमैक्षवम् ।
पैष्टीभवं धान्यभवं तथा चक्रविनिर्मितम् ॥ १४७ ॥
सहकारभवं चैव विविधं वस्तुभेदतः ।
मादकं धर्मसञ्छेदात् वर्ज्यमाहुर्मनीषिणिः ॥ १४८ ॥
ज्ञानेन संस्कृते तत्तु महापातकनाशनम् ।
ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिपातकान् ॥ १४९ ॥
नाशयेत् पूजनाच्चैव निर्विकल्पः स मन्त्रवित् ।
विचारयेत् सदा सर्वं सत्तर्केण सुसाधकः ॥ १५० ॥

फल, दूध, घृत, मधु, मैरेय (मद्य), इक्षुरस से, अपूप से तथा धान्य से होने वाले तथा सहकार (आम्र) से होने वाले मद्य—ये वस्तु भेद से अनेक प्रकार के हो जाते हैं । जो मादक होने के कारण धर्मतः प्रतिकूल होने से मनीषियों द्वारा निषेध किये गये हैं । किन्तु वही ज्ञान से संस्कृत हो जाने पर महा पातकों के नाश करने वाले बन जाते हैं । इतना ही नहीं वह विज्ञ साधक पूजा के प्रभाव से सुसंस्कृत होकर ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णस्तेय आदि पातकों को भी नष्ट कर देता है । अतः मन्त्रवेत्ता तत्त्वज्ञ सुसाधक सर्वदा सभी वस्तुओं के विषय में सतर्कता-पूर्वक विचार विमर्श करे ॥ १४७-१५० ॥

पयः पिबन्तीह देवा गवां नाश्नन्ति शोणितम् ।
मीनं न भुञ्जते हन्त विधवा तत् कथं पयः ॥ १५१ ॥
पिबन्ति संसर्गदुष्टं यथान्यदपि वस्तुषु ।
जलं जलचरं विद्धि घटपूर्णं समानयेत् ॥ १५२ ॥
स्थापितं तद्धि सप्ताहं जलं जीवसमन्वितम् ।
अनामिषं नास्ति किञ्चित् सर्वं क्षीरादिकं तथा ॥ १५३ ॥
शमीवृक्षे यथा वह्निः सदा तिष्ठति नित्यशः ।
सर्वभूतेषु विज्ञानं तथा ज्ञेयं सुसाधकैः ॥ १५४ ॥

ब्राह्मण दूध पी लेते हैं, किन्तु गोमांस नहीं खाते और मछली भी नहीं खाते । यदि—ये सभी विधवा (अग्राह्य) हैं, तब दूध क्यों ग्राह्य है? उसे क्यों पीते हैं? वह भी तो संसर्ग दुष्ट है? जैसे अन्य वस्तु संसर्ग दुष्ट हो जाते हैं । जल में रहने वाले जलचर मत्स्यादि के अभक्ष्य होने पर विचार कीजिये । यदि घड़ा में जल भर कर रखे, एक सप्ताह के भीतर उसमें जीव पड़ जाते हैं, वही जल पीया जाता है । किन्तु उसमें उत्पन्न होने वाले मत्स्य अभक्ष्य क्यों हैं? जैसे दुग्धादि पदार्थ

आमिष (मांस) नहीं हैं, उसी प्रकार सभी पदार्थ आमिष नहीं है । जिस प्रकार शमी वृक्ष में अग्नि सर्वदा निवास करती है, उसी प्रकार सभी भूतों में विज्ञान निश्चित रूप से रहता है सुधाधक को ऐसा जानना चाहिए ॥ १५१-१५४ ॥

काष्ठादिघर्षणाच्चैव प्रकटो वह्निरुच्यते ।
तत्काष्ठं दह्यते तेन तथा ब्रह्ममयं जगत् ॥ १५५ ॥

जिस प्रकार घर्षण से काष्ठादि में अग्नि उत्पन्न होती है, फिर उसी अग्नि के द्वारा काष्ठादि जल जाते हैं । इसी प्रकार यह जगत् ब्रह्ममय है, ज्ञानस्वरूप है । उसके उत्पन्न होने से समस्त अज्ञान नष्ट हो जाते हैं ॥ १५५ ॥

पापपुण्यविनिर्मुक्तं ज्ञानमेतदुदाहृतम् ।
यज्ञयुक्तस्य नान्यस्य अन्यथा पातकं भवेत् ॥ १५६ ॥

इस प्रकार का ज्ञान पाप-पुण्यरहित कहा जाता है । अतः यज्ञयुक्त ज्ञानी को पाप नहीं लगता । अन्य अज्ञानी को तो पाप लगता ही है ॥ १५६ ॥

सकलं पवित्रं, वासना कुत्सिता

मादकं वस्तु सकलं वर्जयेत्कनकादिकम् ।
धर्माधर्मपरिज्ञानात् संस्काराच्च पवित्रता ॥ १५७ ॥

सभी कनकादि (धतूरादि) वस्तु मादक होने से वर्जित किये गये हैं । किन्तु धर्माधर्म के परिज्ञान से अथवा संस्कार से उनमें पवित्रता आती है ॥ १५७ ॥

विण्मूत्रस्त्रीरजो वापि नखास्थि सकलं तथा ।
विचारयेन्मन्त्रवित्तु भ्रान्तिरेव न संशयः ॥ १५८ ॥

विष्ठा, मूत्र, स्त्रीरज, नख, अस्थि (हड्डी)—ये सभी धर्माधर्म के परिज्ञान से संस्कार से शुद्ध हैं । इनमें अन्य अपवित्रता का विचार तो भ्रान्ति ही है; इसमें संशय नहीं ॥ १५८ ॥

स्त्रीरजः परमं द्रव्यं देहस्तेन प्रजायते ।
कथं तद्दूषणं येन प्राप्यते परमं पदम् ॥ १५९ ॥
पुरुषस्य यद् बीजं विन्दुरित्यभिधीयते ।
विन्दुस्तु परमं द्रव्यं कायोऽयं शिवरूपकः ॥ १६० ॥

स्त्री के रज से शरीर का निर्माण होता है । इसलिये वह उत्कृष्ट द्रव्य है । उसी शरीर से मोक्ष की प्राप्ति होती है । फिर वह किस प्रकार दूषित कहा जा सकता है ? पुरुष का वीर्य जिसे विन्दु कहा जाता है, वह विन्दु भी परम द्रव्य क्यों नहीं? जिससे शिवस्वरूप यह शरीर बनता है ॥ १५९-१६० ॥

शिवतत्त्वेन चास्थ्यादिदूषणं नास्ति वैन्दवे ।
पृथिव्यापस्ततो वायुराकाशं चन्द्रसूर्यकौ ॥ १६१ ॥
एतैः स्थूलशरीरं तु शुक्रशोणितसम्भवम् ।
पितृतस्त्रीणि जायन्ते मज्जास्थिस्नायुरेव च ॥ १६२ ॥
मातृतस्त्रीणि जायन्ते त्वङ्मांसशोणितानि च ।
षाट्कौषिकमिदं प्रोक्तं शरीरं परमर्षिभिः ॥ १६३ ॥
मूलशुद्धिः सर्वशुद्धिरिति न्यायः प्रवर्त्तते ।
शरीरं यदि शुद्धं स्यात्तदा तत्र न दूषणम् ॥ १६४ ॥
सर्वथा नैव दोषोऽस्ति तथा शुक्रेषु निश्चितम् ।
ततः पवित्रं देहस्य कारणं केन दूष्यते ॥ १६५ ॥

विन्दु के शिवतत्त्व होने से उससे बनने वाले अस्थि आदि दूषित नहीं कहे जा सकते । पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, चन्द्रमा एवं सूर्यात्मक स्थूल यह शरीर है, जो शुक्र और शोणित से उत्पन्न हुआ है । इसमें मज्जा, अस्थि और स्नायु—ये तीन पिता के वीर्य (विन्दु) से बनते हैं । त्वचा, मांस और शोणित माता के रज से बनते हैं । इस प्रकार महर्षियों ने इस शरीर को षाट्कौशिक (छह कोषों वाला) कहा है । यत: मूल (जड़) शुद्ध है तो सब शुद्ध है । इस न्याय से समस्त शरीर शुद्ध ही मानना चाहिये । फिर इसे दूषित किस प्रकार समझा जा सकता है? जब शुक्र में दोष नहीं है तब शरीर को किस प्रकार दूषित कहा जा सकता है? अत: शरीर सर्वथा पवित्र है । उसे दूषित कहने में कोई कारण नहीं ॥ १६१-१६५ ॥

ज्ञानमार्गेण सकलं निर्विकल्पं न दूषणम् ।
सविकल्पो यदि भवेत् पापभाग्जायते नरः ॥ १६६ ॥

निर्विकल्पयोगी को ज्ञान मार्ग से कहीं भी दोष दिखाई नहीं पड़ता । किन्तु सविकल्प पुरुष तो इसे न जान सकने के कारण पापी बन जाता है ॥ १६६ ॥

अन्नं ब्रह्ममयं विद्धि तेन यस्य तु सम्भवः ।
नानाजीवमयं तत्तु पुरीषं केन दूष्यते ॥ १६७ ॥

अन्न ब्रह्ममय है और सब का जीवन है । फिर उस अन्न से बनने वाला पुरीष (मल) किस प्रकार दूषित हो सकता है ॥ १६७ ॥

नानाविधा हि सततं देवताः सलिले स्थिताः ।
तेनोदकेन यज्जातं मूत्रं केन च दूषितम् ॥ १६८ ॥

जल में अनेक देवताओं का निवास है । उस जल से होने वाले मूत्र को किस कारण दूषित कहा जा सकता है? ॥ १६८ ॥

गोमूत्रप्राशनं विप्रैर्गोमयस्य च भक्षणम् ।
मले मूत्रे च यो दोषो भ्रान्तिरेव न संशयः ॥ १६९ ॥

ब्राह्मण लोग गोमूत्र और गोमय का भक्षण (प्रायश्चित्त में) करते ही हैं । इसलिये मल मूत्र को सदोष कहना भ्रान्ति ही है ॥ १६९ ॥

पवित्रं सकलं चैव वासना कुत्सिता भवेत् ।
ततो विचार्य मतिमान् साधकस्तर्कशोधितः ॥ १७० ॥

अतः सब पवित्र ही है । वासना कुत्सित है । इसलिये बुद्धिमान् साधक विचार कर तर्क द्वारा सब को शुद्ध समझे ॥ १७० ॥

परमार्थतः पूज्यपूजकभेदो मिथ्या

मायामूलमिदं सर्वं ततो जातमिदं जगत् ।
पूज्यपूजकभेदश्च मिथ्यैव परमार्थतः ॥ १७१ ॥

जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, उसका मूल माया है । परमार्थ की दृष्टि से पूज्य-पूजक भाव भी मिथ्या ही है ॥ १७१ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ज्ञानमार्गेण शोधयेत् ।
सर्वं ब्रह्ममयं विद्धि सत्तर्केण ससाधकः ॥ १७२ ॥

इसलिये साधक प्रयत्नपूर्वक ज्ञानमार्ग से सब को प्रयत्नपूर्वक शुद्ध समझे । सत्तर्क से सबको ब्रह्ममय समझे ॥ १७२ ॥

प्रकृतञ्च समाप्याथ गृह्णीयाद् द्रव्यमुत्तमम् ।
तर्पयित्वा महादेवीं शक्त्या यद्दक्षिणां ददेत् ॥ १७३ ॥

प्रकृत कार्य समाप्त कर साधक उत्तम द्रव्य ग्रहण कर महादेवी का तर्पण करे और अपनी शक्ति के अनुसार उसे दक्षिणा देवे ॥ १७३ ॥

त्रिविधं त्रिपुरायास्तु कथितं पूजनं महत् ।
वक्ष्येऽहं सर्वशाक्तानां दूतीयजनमुत्तमम् ॥ १७४ ॥

हमने तीन प्रकार से त्रिपुरा का पूजन कहा है । अब सभी शाक्तों के लिये सर्वोत्तम दूतीयजन का विधान कहता हूँ ॥ १७४ ॥

नायिकायजनम्

पीठपूजाविधिं कृत्वा पूर्ववत् साधकोत्तमः ।
संस्थाप्य तत्र शक्तिञ्च पूर्ववदपि पूजयेत् ॥ १७५ ॥

दूतीयजन विधान—उत्तम साधक पूर्ववत् पीठ पूजा की विधि सम्पन्न कर उस पर शक्ति स्थापित कर पूर्ववत् पूजा करे ॥ १७५ ॥

भक्तिभावेन सम्पूज्य नायिकाञ्च यथोदिताम् ।
पूजयेच्च ततस्तस्यां पञ्च कामान् समाहितः ॥ १७६ ॥

भक्तिभाव से पूर्वकथित नायिका (द्र. १७.१००-१०४) का पूजन कर उसमें समाहित चित्त हो पञ्चकामों का पूजन करे ॥ १७६ ॥

मायां कामं तथा पूर्वं ब्लूं स्त्रीञ्च यथाक्रमात् ।
काम बीजञ्च कन्दर्प मन्मथञ्च ततः परम् ॥ १७७ ॥
मकरकेतनं चैव मनोभवञ्च ङेयुतम् ।
प्रणवादिनमोऽन्तञ्च क्रमेण गन्धपुष्पकैः ॥ १७८ ॥

माया (ह्रीं), काम (क्लीं), पूर्व में इसके बाद 'ब्लूँ' 'स्त्रीं' पुनः कामबीज (क्लीं) से क्रमशः कन्दर्प, मन्मथ, इसके बाद मकरकेतन, फिर मनोभव, इनका चतुर्थ्यन्त, आदि में प्रणव, पुनः अन्त में नमः लगाकर गन्ध एवं पुष्पों से पूजन करे । जैसे—'ॐ ह्रीं कन्दर्पाय नमः' इत्यादि ॥ १७७-१७८ ॥

अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु पूजयेत्तदनन्तरम् ।
वटुकं भैरवं चैव दुर्गाञ्च क्षेत्रपालकम् ॥ १७९ ॥
तस्या मूर्ध्नि त्रिकोणञ्च यन्त्रमालिख्य साधकः ।
महाप्रेतासनं मध्ये बालामेव प्रपूजयेत् ॥ १८० ॥

पञ्चकामों के पूजा के अनन्तर चारों दिशाओं में बटुक, भैरव, दुर्गा और क्षेत्रपाल का पूजन करे । फिर उस नायिका के शिर के मध्य भाग में त्रिकोण उसमें महाप्रेतासन यन्त्र स्थापित कर केवल यन्त्र लिखकर स्थापित करे । उस यन्त्र के मध्य में बाला की पूजा करे ॥ १७९-१८० ॥

मौलौ गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके ।
दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम् ॥ १८१ ॥
स्तनद्वये वसन्तञ्च मदनं चैव पूजयेत् ।
मुखे सुधानिधिं पृष्ठे ग्लूं बीजानन्तरोदितम् ॥ १८२ ॥
दक्षिणांशं समाश्रित्य आशिरश्चरणावधि ।
पूज्याः कामकलास्तस्याः नायिकाऽङ्गेषु सर्वशः ॥ १८३ ॥

फिर उसके शिरःस्थान में गणेश, केशाग्र भाग में कुलाध्यक्ष, ललाट में दुर्गा, दोनों भ्रुवों में महालक्ष्मी, जिह्वा में सरस्वती, दोनों स्तन में वसन्त और कामदेव,

मुख में सुधानिधि चन्द्रमा, पीठ में ग्लूं बीज, फिर उस (नायिका) के शरीर के दक्षिण भाग में शिर से लेकर चरण पर्यन्त तत्त्वज्ञ साधक कामकलाओं का पूजन करना चाहिए ॥ १८१-१८३ ॥

तस्यां षोडशकामकलापूजनम्

श्रद्धा प्रीतिस्तथा तुष्टिर्धृतिश्च तदनन्तरम् ।
भूतिः कान्तिर्मनोज्ञा च विमला मोदिनी तथा ॥ १८४ ॥
मोघा मनोभवकरी प्रमदा मोहिनी तथा ।
दीपनी शोषणी चैव वशङ्करी तथा पुनः ॥ १८५ ॥
रञ्जनी चैव कामस्य कलाः स्वरविराजिताः ।

षोडशचन्द्रकलापूजनम्

ततश्चन्द्रकलाः पूज्या आशिरश्चरणावधि ॥ १८६ ॥
पूषा वशा सुमना च रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा ।
ऋद्धिश्च सौम्या मरीचिर्बहुमाया ततः परम् ॥ १८७ ॥
मदिरा शशिनी छाया तथा सम्पूर्णमण्डला ।
तुष्टिस्तथाऽमृता चैव पूज्याश्चन्द्रकला इमाः ॥ १८८ ॥

श्रद्धा, प्रीति-तुष्टि, धृति इसके बाद भूति, कान्ति, मनोज्ञा, विमला, मोदिनी, मोघा, मनोभवकरी, प्रमदा, मोहिनी, दीपनी, शोषणी, वशङ्करी-रञ्जनी—इन सोलह काम कलाओं का सोलह स्वरों से पूजन करे। फिर साधक शरीर के बायें भाग में शिर से लेकर चरण पर्यन्त विद्यमान सोलह चन्द्रकलाओं का पूजन करे। पूषा, वशा, सुमना, रति, प्रीति, धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, बहुमाया, मदिरा, शशिनी, छाया, सम्पूर्णमण्डला, तुष्टि और अमृता—ये सोलह चन्द्रकलायें कही गई हैं ॥ १८४-१८८ ॥

पूजयेन्मदनागारे रक्तचन्दनभूषिते ।
भगमालामनुं प्रोच्य पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ १८९ ॥
वाग्भवं भुवनेशीञ्च कमला वाग्भवं ततः ।
जं ब्लूश्चैव ततः क्लिन्ने सर्वाणीति ततो वदेत् ॥ १९० ॥
भगानीति ततः पश्चाद्वशमानय तत्परम् ।
स्त्रीं स्फ्रीं क्लेदिनी बीजं क्लीं क्लीं च ततः परम् ॥ १९१ ॥
भगमालिन्यै नमः स्वाहा पूजयेच्चक्रमध्यगे ।
पूजयित्वा ततश्चक्रं निजदेवीं ततो यजेत् ॥ १९२ ॥

फिर रक्तचन्दन से भूषित मदनागार में भगमाला मन्त्र पढ़कर साधक चक्र का

पूजन करे । वाग्भव (ऐं), भुवनेशी (ह्रीं), कमला (श्रीं), वाग्भव (ऐं), इसके बाद जं ब्लूं क्लिन्ने 'सर्वाणि', फिर 'भगानि वशमानय', फिर 'स्त्रीं स्फीं क्लेदिनीं क्लीं क्लीं, इसके बाद 'भगमालिन्यै नमः स्वाहा'—इस मन्त्र से पूजन करे । इस प्रकार चक्र का पूजन कर अपनी इष्टदेवी का पूजन करे ॥ १८९-१९२ ॥

विधिवत् पूजयित्वा च गन्धैः पुष्पैस्तथाऽक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैः कुलसाधकः ॥ १९३ ॥
विधाय वन्दनं चैव तदुच्छिष्टं स्वयं हरेत् ।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम् ॥ १९४ ॥

फिर कुल साधक गन्ध, पुष्प तथा अक्षत, धूप-दीप, विविध नैवेद्य से पूजन कर वन्दना करे और उनका उच्छिष्ट स्वयं ग्रहण करे । इसके बाद गन्ध, पुष्पादि से अपने शिव (लिङ्ग) की पूजा करे ॥ १९३-१९४ ॥

मूलमन्त्रं समुच्चार्य प्रणवं भुवनेश्वरीम् ।
नमः शब्दं ततः पश्चात् शिवायेति ततो वदेत् ॥ १९५ ॥
यजेत्तत् पुरुषाघोरसद्यो वामेश्वरानपि ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठां च विद्यां च तदनन्तरम् ॥ १९६ ॥
शान्तिश्च शान्त्यतीतां च षडङ्गावरणं ततः ।
समग्रविद्यामुच्चार्य त्रिकोणं चैव पूजयेत् ॥ १९७ ॥

मूल मन्त्र का उच्चारण कर प्रणव (ॐ), भुवनेश्वरी (ह्रीं), फिर नमः शिवाय कहे, 'ॐ ह्रीं नमः शिवाय' मन्त्र से पूजाकर तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान की पूजा करे । फिर निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता की फिर समग्र षडङ्ग आवरण की तथा समग्रविद्या महामन्त्र का उच्चारण कर त्रिकोण की पूजा करे ॥ १९५-१९७ ॥

अवधूतेश्वरी कुब्जा-कामाख्या समया अपि ।
वज्रेश्वरीकालिके च तथा दिक्करवासिनीम् ॥ १९८ ॥
महाचण्डेश्वरीतारे पूजयेत्तत्र साधकः ।
तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा भुक्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् ॥ १९९ ॥
स्वशिवं तत्र निःक्षिप्य गजहस्ताख्यमुद्रया ।
प्रजपेत् क्षोभरहितश्चाष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ २०० ॥

फिर अवधूतेश्वरी, कुब्जा, कामाख्या, समया, वज्रेश्वरी, कालिका, दिक्करवासिनी, महाचण्डेश्वरी एवं तारा का साधक पूजन करे । फिर उनकी आज्ञा लेकर ताम्बूल खाकर अपना शिव उसमें डालकर गजमुद्रा से क्षोभरहित हो आठ हजार

मन्त्र का जप करे ॥ १९८-२०० ॥

शतमष्टोत्तरञ्चापि अक्षोभस्थिरमानसः ।
जपान्ते तज्जपं देव्यै समर्प्य तदनन्तरम् ॥ २०१ ॥
क्षुब्धां मनोभवसुखैः पूजयेत् सुचिरं वसेत् ।
गलच्चन्द्रद्रवं तस्माद् गृहीत्वा तर्पयेच्छिवाम् ॥ २०२ ॥

अथवा चाञ्चल्यरहित होकर एक-सौ आठ बार जप करे । जप के अन्त में सारा जप भगवती को समर्पण कर मनोभव (काम) के सुख से क्षुब्ध उस दूती का पूजन करे और सुखपूर्वक उसके साथ निवास करे । उससे टपकते हुये चन्द्रद्रव को लेकर शिवा का तर्पण करे ॥ २०१-२०२ ॥

स्तुत्वा प्रदक्षिणीकृत्य विसर्जयेदनन्तरम् ।
विसर्जनं विधायाथ शक्तिञ्च परितोषयेत् ॥ २०३ ॥
विधिवद्दक्षिणां दत्त्वा अन्नपानादिभिस्तथा ।
एवं यजनमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्न संशयः ॥ २०४ ॥

देवी की स्तुति करे, फिर प्रदक्षिणा करे, इसके बाद विसर्जन करे । विसर्जन कर उस शक्ति को तत्त्वज्ञ साधक विधिवद् दक्षिणा तथा अन्नपानादि देकर सन्तुष्ट करे । इस प्रकार दूती यजन से निश्चित रूप से मन्त्र सिद्धि हो जाती है; इसमें संशय नहीं ॥ २०३-२०४ ॥

प्रकारान्तरदूतीयागः

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि दूतीयागमनुत्तमम् ।
सम्प्राप्य दिवसं पूर्वदेवीञ्च विधिवद्भगे ॥ २०५ ॥
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रमयुतद्वितयं तथा ।
तस्य लक्ष्मीर्महाविद्या भवेच्च भुवि दुर्लभा ॥ २०६ ॥

अब इसके बाद एक अन्य प्रकार से श्रेष्ठ दूतीयाग का विधान कहता हूँ । पूर्व निर्दिष्ट समय में देवी को प्राप्त कर सविधि भग में उसका पूजन कर दो अयुत (बीस हजार) मन्त्र का जप करे । उसे महामाया लक्ष्मी इतनी प्राप्त हो जाती हैं जो अन्यों के लिये दुर्लभ हैं ॥ २०५-२०६ ॥

अष्टमीतिथिमासाद्य पक्षयोरुभयोरपि ।
आमन्त्र्य विधिवद्योनिं तत्रैव योगिनीं यजेत् ॥ २०७ ॥

दोनों पक्षों की अष्टमी तिथि प्राप्त होने पर स्त्री का आमन्त्रण कर उसके भग में योगिनियों की विधिवत् पूजा करे ॥ २०७ ॥

पश्चात् सम्पूज्य देवेशीं मूलमन्त्रञ्च साधकः ।
षट्सहस्रं दिवारात्रौ जप्त्वा मन्त्रमनन्यधीः ॥ २०८ ॥
सम्प्राप्य महतीं विद्यां देवीपुत्रो भवेद्भुवि ।

पश्चात् देवेशी का पूजन कर साधक अनन्यधी हो, दिन रात छह हजार मूल मन्त्र का जप करे । विधिपूर्वक पूजा से ऐसा साधक महती विद्या प्राप्त कर पृथ्वी में देवी पुत्र बन जाता है ॥ २०८-२०९ ॥

पुरश्चरणकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रकारान्तरमुत्तमम् ॥ २०९ ॥
योनौ सम्पूजयेद्देवीं सर्वदुःखनिवारिणीम् ।
भगाद्यैर्भगमामन्त्र्य भगे भगवतीं ततः ॥ २१० ॥
ततो वै लभते सिद्धिं मन्त्रस्य लक्षमानतः ।
द्विलक्षेण महावाग्मी त्रिलक्षेण महाकविः ॥ २११ ॥

अब इसके बाद अन्य सर्वोत्तम प्रकार कहता हूँ । साधक योनि में भगादि मन्त्र से भग का आवाहन कर भग में सम्पूर्ण दुःखों को निवारण करने वाली देवी भगवती का पूजन करे । फिर एक लाख की संख्या में जप करे, तो वह मन्त्र की सिद्धि प्राप्त करता है और दो लाख के जप से महावाग्मी हो जाता है तथा तीन लाख के जप से महाकवि हो जाता है ॥ २०९-२११ ॥

वेदलक्षेण वेदस्य साधकः पारगो भवेत् ।
वाक्सिद्धिश्च भवेत्तस्य पञ्चलक्षप्रमाणतः ॥ २१२ ॥

चार लाख के जप से वेद का पारगामी विद्वान् हो जाता है और पाँच लाख जप से उसे वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २१२ ॥

रसलक्षैर्भवेत्तस्य अणिमादिगुणाष्टकम् ।
सप्तलक्षेण वीरेन्द्रो जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २१३ ॥

छह लाख के जप से उसे अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । सात लाख जप से वह वीरेन्द्र तथा जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २१३ ॥

अत ऊर्ध्वं न जानामि शिव एव न संशयः ।
विधिवच्छक्तिमासाद्य साधकः स्थिरमानसः ॥ २१४ ॥
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या योनौ मूलं न्यसेत्ततः ।
रात्रौ जागरणं कृत्वा हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥ २१५ ॥
योनिं स्पृष्टा जपेन्मन्त्रमेकाकी लक्षमानतः ।

जायते मन्त्रसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ २१६ ॥

इसके बाद जप करने वाला (साधक) और फल तो मैं नहीं जानता, वह साक्षात् शिव हो जाता है । स्थिर चित्त साधक पूर्वोक्त विधिवत् (द्र. १७. १००-१०४) शक्ति को प्राप्त कर, भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा कर, योनि में मूल मन्त्र का न्यास करे । फिर हविष्याशी एवं जितेन्द्रिय होकर रात्रि में जागरण करते हुये, योनि का स्पर्श कर, अकेले एक लक्ष की संख्या में जप करे, तो मन्त्र सिद्ध हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २१४-२१६ ॥

सर्वसिद्धिः करे तस्य सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।
अथवा विषुवे चैव मासान्तपक्षयोरपि ॥ २१७ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
श्मशाने वा यथाशक्त्या गुरोर्वा शिवसन्निधौ ॥ २१८ ॥
लतामानीय यत्नेन योनौ चक्रं यथाविधि ।
लिखनञ्च प्रकुर्वीत कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥ २१९ ॥
मन्त्रञ्च प्रलिखेत्तस्यामावाह्य परमेश्वरीम् ।
सम्पूज्य विधिवद् भक्त्या साधकः स्थिरमानसः ॥ २२० ॥

उसके हाथ में समस्त सिद्धियाँ हो जाती है, यह सत्य है, सुनिश्चित सत्य है; अथवा विषुव की सङ्क्रान्ति में, मासान्त एवं उभय पक्ष में; अथवा अष्टमी चतुर्दशी के दिन; अथवा चन्द्र सूर्य के उपराग काल में, यथाशक्ति श्मशान में अथवा गुरु के सन्निधान में; अथवा शिव सन्निधान में, प्रयत्नपूर्वक लता (स्त्री) लाकर उसे योनि में स्थापित कर कुङ्कुम, अगुरु एवं चन्दन से यथाविधि चक्र यन्त्र लिखे । फिर उसी लता में मन्त्र लिखकर परमेश्वरी का आवाहन करे । फिर स्थिर चित्त साधक भक्तिपूर्वक परमेश्वरी का पूजन करे ॥ २१७-२२० ॥

जपेन्मन्त्रं दिवारात्रौ योषितां योनिदेशतः ।
लक्षमेकं तदूर्ध्वं वा दशभिर्होममाचरेत् ॥ २२१ ॥
पूजाञ्च विधिवत् कृत्वा यथाविभवविस्तरैः ।
परितोष्य गुरुं पश्चान्मन्त्रसिद्धिश्च जायते ॥ २२२ ॥
महावाग्मी भवेत् सोऽपि धनवान् राजवल्लभः ।
लक्ष्मीस्तस्य सदा गेहे वाणी वक्त्रे सुनिश्चितम् ॥ २२३ ॥
भुवि शक्रसमो वीरो जीवन्मुक्तः प्रजायते ।

फिर योनि के स्थान के सन्निकट बैठकर दिनरात एक लाख अथवा उससे भी अधिक मन्त्र का जप करे और दशांश से होम करे । फिर अपने विभव विस्तार के

अनुकूल विधिवत् पूजा कार्य सम्पन्न कर गुरु को सन्तुष्ट करे । ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है । वह महावाग्मी धनवान् और राजवल्लभ हो जाता है । उसके घर में सदैव के लिये महालक्ष्मी का निवास तथा मुख में सरस्वती का निवास निश्चित रूप से हो जाता है । इस पृथ्वी में वह इन्द्र बन जाता है और अन्ततः जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २२१-२२४ ॥

प्रकारान्तरेण दूतीयजनम्

अथवान्यप्रकारेण दूतीयजनमुत्तमम् ॥ २२४ ॥
तत्र तां स्थापयेद्दूतीं पूजयेच्च यथाविधि ।
वस्त्रालङ्करणं चैव दत्त्वा तस्यै यथोचितम् ॥ २२५ ॥
धूपयित्वा रक्तवस्त्रं दूतीं कुर्यात् सुलक्षणाम् ।
पद्मं भूमौ समालिख्य षट्कोणान्तर्गतं लिखेत् ॥ २२६ ॥
तस्योपरि गतां नारीं निर्जने भूषणान्विताम् ।
ततस्तां गन्धपुष्पाद्यैर्नानोपहारविस्तरैः ॥ २२७ ॥
देवीरूपेण सम्भाव्य पूजयेत्तां यथाविधि ।
तस्या गात्रे न्यसेन्मन्त्रं पञ्चबाणान् क्रमेण तु ॥ २२८ ॥

अथवा अन्य प्रकार से सर्वोत्तम दूती यजन का विधान करना चाहिये । उस दूती को पूर्वोक्त रूई के गद्दे पर बिठाकर पूजन करना चाहिये । उसके अनुकूल वस्त्र और अलङ्कार प्रदान करे, धूप देवे और रक्त वस्त्र देवे । इस प्रकार उस दूती को सुलक्षण युक्त करे । फिर षट्कोण बनाकर कमल बनावे । वहाँ निर्जन स्थान में उस भूषण भूषिता नारी को यन्त्र पर आमन्त्रित कर बैठावे । उनकी गन्ध पुष्पादि पञ्चोपचारों से तथा अनेक प्रकार के विस्तृत उपहारों से देवी रूप की कल्पना कर यथाविधि पूजा करे । उनके शरीर में पञ्चबाणों (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) से क्रमशः मन्त्र न्यास करे ॥ २२४-२२९ ॥

स्वकल्पोक्तक्रमेणैव न्यासजालं प्रविन्यसेत् ।
दीक्षयित्वा तन्मूलेन देवीबुद्ध्या यजेत्ततः ॥ २२९ ॥

फिर अपने सम्प्रदायानुसार न्यास जाल का विन्यास करे । फिर मूल मन्त्र से दीक्षित कर देवी की बुद्धि से उनका यजन करे ॥ २२९ ॥

योनौ वा पूजयेद्देवीं यस्माद्योनिमयी शिवा ।
योनौ कामेश्वरीं चैव नाभौ वज्रेश्वरीं ततः ॥ २३० ॥

यतः शिवा योनिमयी है इसलिये योनि में भी देवी का यजन करे । तदनन्तर योनि में कामेश्वरी की और नाभि में वज्रेश्वरी का पूजन करे ॥ २३० ॥

हृद्वक्त्रस्तन्मध्येषु पूजयेत् परदेवताम् ।
योनिं सदाऽक्षतां कृत्वा जपेद्विद्यां ततः पराम् ॥ २३१ ॥

हृदय, मुख और दोनों स्तनों के मध्य में परदेवता का पूजन करे । फिर योनि को अक्षत रखते हुये परा विद्या का जप करे ॥ २३१ ॥

अयुतञ्च जपं कृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
शक्तिमानीय विधिवत् पूजयेद्योनिमण्डले ॥ २३२ ॥

इस प्रकार दश हजार जप करने पर साधक फिर सिद्धीश्वर बन जाता है । फिर शक्ति को बुलाकर योनिमण्डल में पूजा करे ॥ २३२ ॥

सम्पूज्य निजदेवीञ्च सायुधां सपरिकराम् ।
भगिनीं भगजिह्वाञ्च भगास्यां भगमालिनीम् ॥ २३३ ॥
भगदन्तां भगाक्षीञ्च भगवर्णां भगत्वचाम् ।
भगस्तनीं भगाङ्गीञ्च भगस्थां भगसर्पिणीम् ॥ २३४ ॥
भगे भगवतीं तस्याः सम्पूज्य भगमालया ।
वाग्भवं कामबीजञ्च कमलाबीजमेव च ॥ २३५ ॥
इति बबीजत्रयं दत्त्वा ङेयुताश्च नमोऽन्तिकाः ।
पूजयित्वा ततः पश्चान्मूलमन्त्रं जपेत्ततः ॥ २३६ ॥

इस प्रकार सायुध एवं सावरण देवी का पूंजन कर भगिनी, भगजिह्वा, भगस्या, भगमालिनी, भगदन्ता, भगाक्षी, भगवर्णा, भगत्वचा, भगस्तनी, भगाङ्गी, भगस्था और भगसर्पिणी इन देवियों का उसके भग में इस प्रकार पूजन करे । भगमाला के साथ वाग्भव (ऐं), कामबीज (क्लीं), कमलाबीज (श्रीं) इन तीन बीजों के साथ नाम में चतुर्थ्यन्त लगाकर अन्त में नमः लगाकर पूजन करे । यथा भगमाले ऐं क्लीं श्रीं भगिन्यै नमः इत्यादि । इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् मूल मन्त्र का जप करे ॥ २३३-२३६ ॥

एकायुतजपं कृत्वा सर्वसिद्धिपरायणः ।
सर्वशास्त्रार्थवेत्ता च सर्वगः सर्ववित् प्रभुः ॥ २३७ ॥

एक अयुत (दश हजार) जप करने वाला साधक समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है । वह सिद्धि प्राप्त करने पर सर्वशास्त्रार्थवेत्ता, सर्वगामी, सर्ववेत्ता और सामर्थ्य युक्त हो जाता है ॥ २३७ ॥

दूतीयागमाहात्म्यकथनम्

इदानीं कथ्यते दूतीयागस्य महिमा भृशम् ।

योषितां योनिमास्थाय सर्वसिद्धिर्न संशयः ॥ २३८ ॥

दूतीयाग माहात्म्य—अब दूतीयाग की विशेष महिमा कहता हूँ । स्त्री की योनि का आश्रय लेने से समस्त सिद्धि हो जाती है इसमें संशय नहीं ॥ २३८ ॥

एतत् पूजनमम्बायाः सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
इत्थं पूजाविधिं कृत्वा सर्वसिद्धियुतो भवेत् ॥ २३९ ॥

यह अम्बा भगवती का दूतीयाग के रूप में पूजन सभी तन्त्रों में गुप्त रखा गया है । अतः इस प्रकार पूजन करने वाला साधक सभी सिद्धियों से युक्त हो जाता है ॥ २३९ ॥

लभते विमलां वाणीं कवीनामग्रणीर्भवेत् ।
ऐश्वर्यमतुलं प्राप्य वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ २४० ॥

वह विमलवाणी प्राप्त कर लेता है । समस्त कवियों में श्रेष्ठ हो जाता है और विपुल ऐश्वर्य प्राप्त कर तीनों लोकों को वश में कर लेता है ॥ २४१ ॥

सिद्धगन्धर्वदेवैश्च किन्नरैर्दानवैस्तथा ।
राक्षसैर्मनुजैर्नित्यं पूज्यो भवति साधकः ॥ २४१ ॥

वह साधक सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, देव, दानव, राक्षस और मनुष्यों से नित्य पूजित हो जाता है ॥ २४१ ॥

सर्वेषां वल्लभः सोऽपि योगिनीनां सुदुर्लभः ।
अन्ते च रमते देव्या साक्षात् स्मरहरोपमः ॥ २४२ ॥

वह सभी का वल्लभ हो जाता है योगिनियाँ उसे प्राप्त नहीं कर सकती और अन्त में देवी के साथ साक्षात् सदाशिव बनकर विहार करता है ॥ २४२ ॥

चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्लताः सम्पूज्य यत्नतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रमेत् कल्पायुतं भुवि ॥ २४३ ॥

वह साधक चन्दन, अगुरु आदि के गन्ध से यत्नपूर्वक पूजाकर सभी पापों से विनिर्मुक्त हो दश हजार कल्प तक पृथ्वी पर विहार करता है ॥ २४३ ॥

वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च तोषयेद् यदि कामिनीम् ।
अतुलां श्रियमाप्नोति स गच्छेत्पार्वतीपदम् ॥ २४४ ॥

यदि कोई तत्त्वज्ञ साधक वस्त्र, अलङ्कार और माला से कामिनी को सन्तुष्ट करता है तो वह अतुल श्री प्राप्त कर लेता है और देवी पार्वती का पद प्राप्त कर लेता है ॥ २४४ ॥

मत्स्यमांसदधिक्षौद्रपिष्टकैः पायसादिभिः ।
भोजयेद्युवतीं यस्तु स भवेत् पृथिवीपतिः ॥ २४५ ॥

जो मत्स्य, मांस, दधि, मधु, अपूप एवं पायस से भोजन कराकर कामिनी को सन्तुष्ट रखता है वह राजा हो जाता है ॥ २४५ ॥

कायेन मनसा वाचा सुन्दरीं यश्च तोषयेत् ।
स भवेत् साधकश्रेष्ठो मातृणाञ्च भवेत् प्रियः ॥ २४६ ॥

जो साधक शरीर, मन एवं वाणी से सुन्दरी को सन्तुष्ट कर देता है, वह सभी साधकों में श्रेष्ठ हो जाता है और मातृकाओं का प्रिय पात्र हो जाता है ॥ २४६ ॥

बालिकां यदि पश्येच्च निर्जने च दिगम्बरीम् ।
तदा तदा प्रपूज्येत देवीं ध्यात्वा यथाविधि ॥ २४७ ॥

यदि निर्जन स्थान में किसी बालिका को जब-जब वस्त्र रहित देखे, तब-तब उसमें देवी की भावना कर, उसकी यथाविधि पूजा करे ॥ २४७ ॥

स च सर्वप्रियो भूत्वा वाग्मी एककविर्भवेत् ।
एतत्तु सर्वभूतानां तन्त्राणां गोपितं भुवि ॥ २४८ ॥

वह साधक सर्वप्रयि होकर, वाग्मी और अद्वितीय कवि हो जाता है । यह रहस्य पृथ्वी में सभी तन्त्रों में गुप्त है ॥ २४८ ॥

ज्ञात्वा गुरुमुखात् सर्वं शिवतुल्यो भवेन्नरः ।
निर्विकल्पस्तु मन्त्रज्ञो भवेद् वै साधकः सदा ॥ २४९ ॥

इस रहस्य को गुरुमुख से जानकर मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है । वह निर्विकल्प मन्त्रज्ञ साधक हो जाता है ॥ २४९ ॥

काम्यं नैमित्तिकं ज्ञात्वा चण्डिकां परिपूजयेत् ।
दीक्षितस्याऽधिकारोऽत्र नान्यस्यैव कदाचन ॥ २५० ॥

साधक काम्य और नैमित्तिक कर्म का ज्ञान रखकर चण्डिका का पूजन करे । इसमें दीक्षित का ही अधिकार है । अन्य सामान्य जन का किसी भी प्रकार अधिकार नहीं है ॥ २५० ॥

भूतलिपेः मन्त्रसिद्धेः द्रावणादिविविधा उपायः

अथ सर्वत्र जप्तव्यं अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अमृतत्रयसंयोगात् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ २५१ ॥

इस तन्त्र शास्त्र में जहाँ-जहाँ जप संख्या नहीं दी गई है । वहाँ-वहाँ जप की

संख्या एक हजार आठ जाननी चाहिये । अमृत त्रय (ऐं ह्रीं श्रीं) के संयोग से दोष दूषित मन्त्र भी सिद्ध हो जाता है ॥ २५१ ॥

एवं भूतलिपिश्चैव हृल्लेखा मोदिनीत्रयम् ।
त्र्यमृतेन पुटीकृत्य यो मन्त्रं भजतेऽचिरात् ॥ २५२ ॥
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तस्य सिद्धो भवेन्मनुः ।
पञ्चह्रस्वा सन्धिवर्णा व्योमेराग्निजलन्धरा ॥ २५३ ॥

भूतलिपि, हृल्लेखा (ह्रीं) और मोदिनी इन अमृतत्रय से सम्पुटित कर उस मन्त्र का क्रम से अथवा उत्क्रम से जो साधक जप करता है; उसे मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । पाँच ह्रस्व—अ इ उ ऋ ऌ यह भूतलिपि का प्रथम वर्ग है । इसके बाद सन्धि वर्ण—ए ऐ ओ औ यह उसका द्वितीय वर्ग है । फिर व्योम (ह), ईरा (य), अग्नि (र), जल (व) और धरा (ल) यह तृतीय वर्ग है ॥ २५२-२५३ ॥

अन्त्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ।
पञ्च वर्गाक्षराणि स्युर्वान्तं श्वेतेन्दुभिः सह ॥ २५४ ॥
एषा भूतलिपिः प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः ।
पुरश्चर्यादिभिर्मन्त्रो यदि सिद्धो भवेन्न हि ॥ २५५ ॥
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सप्त शङ्करभाषिताः ।

पञ्चवर्ग के अक्षर में अन्त्य (ङ), आद्य (क), फिर द्वितीय (ख), चतुर्थ (घ), फिर मध्यम (ग), यही क्रम आगे के चार वर्गों में समझना चाहिये । इस प्रकार भूतलिपि के आठ वर्ग हुये । फिर वान्त (श), श्वेत (ष), इन्दु (स) यह नवमवर्ग है । इस प्रकार नववर्गों में बयालीस अक्षरों की भूतलिपि कही गई है । यदि मन्त्रज्ञ साधक को पुरश्चरणादि (कर्म करने) से मन्त्र सिद्धि नहीं हुई । तब मन्त्रसिद्धि के लिये शङ्कर जी द्वारा कहे गये सात उपाय करना चाहिये ॥ २५४-२५६ ॥

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणम् ॥ २५६ ॥
दहनान्तं क्रमात् कुर्यात्ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ।
वारुणेनैव बीजेन ग्रथनं कारयेन्मनुम् ॥ २५७ ॥
तन्मन्त्रयन्त्रमालिख्य शिह्लकर्पूरकुङ्कुमैः ।
उषीररोचनाख्याभिर्मन्त्रं संग्रथितं लिखेत् ॥ २५८ ॥
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तं लिखितं क्षिपेत् ।
पूजनाज्जपनादर्चनाद् द्रावितः सिद्धिदो मनुः ॥ २५९ ॥

द्रावण (१) बोधन (२) वश्य (३) पीडन (४) पोषण (५) शोषण (६) अन्त में दहन (७)—ये सात उपाय करे तो मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । वारुण बीज

(वं) से मन्त्र को ग्रथित करे । फिर उस मन्त्र यन्त्र को लिखकर शिह्ल, कपूर, कुङ्कुम, उशीर, रोचना से संग्रथित कर पुनः लिखे । फिर दूध, घी, मधु और जल के बीच उसे डाल देवे तब पुनः पूजन, जप और अर्चन के द्वारा द्रावित मन्त्र सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ २५६-२५९ ॥

द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद् बोधनं तस्य कारयेत् ।
सारस्वतेन बीजे सम्पुटीकृत्य तं जपेत् ॥ २६० ॥
एवं कृते न सिद्धिश्चेद्वशीकुर्यात्ततः परम् ।
आरक्तचन्दनं कुष्ठं हरिद्रा मदनं शिला ॥ २६१ ॥
एतैस्तु मन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने ।
धार्यं कण्ठे न चेत् सिद्धिः पीडनं तस्य कारयेत् ॥ २६२ ॥

यदि द्रावित करने पर भी मन्त्रसिद्धि न हो तो उसका बोधन करे । सारस्वत मन्त्र (ऐं) से सम्पुटित कर उसका जप करे । यदि इतने पर भी सिद्ध न हो तो वशीकरण करे । रक्तचन्दन, कुष्ठ, हरिद्रा, मदन और शिलाजीत () इनसे शुभ भूर्जपत्र पर मन्त्र लिखकर कण्ठ में धारण करे । यदि इतने से भी मन्त्र सिद्ध न हो तब उसका पीडन करे ॥ २६०-२६२ ॥

अधरोत्तरयोगेन पादानि परिजप्यते ।
ध्यायेत्तु देवतां तद्वत्तदधोत्तररूपिणीम् ॥ २६३ ॥
विद्यामादौ च दुग्धेन लिखित्वाऽक्रम्य चाङ्घ्रिणा ।
तथा भूतेन मन्त्रेण होमं कार्यं दिने दिने ॥ २६४ ॥
पीडितो लज्जयाऽऽविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत् ।
बालायास्त्रितयं बीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत् ॥ २६५ ॥
गोक्षीरमधुना लिख्य विद्यां पाणौ विधारयेत् ।
पोषितोऽयं भवेत् सिद्धो न चेत् कुर्वीत शोषणम् ॥ २६६ ॥

पहले अधर उसके बाद उत्तर के योग से एक-एक पाद का जप करे और उसी अधरोत्तर रूप वाले देवता का ध्यान करे । फिर आदि में दूधिया से विद्या लिखकर उसे (देवता के) पैर के नीचे रख देवे और उसी मन्त्र से प्रतिदिन हवन करता रहे । पीड़ित होने पर लज्जावश जब मन्त्र सिद्ध हो जावे, तब उसका पोषण करे । उसके आदि और अन्त में बाला (त्रिपुरसुन्दरी) के तीन बीज (ऐं क्लीं सौः) को गोदुग्ध और मधु से लिखकर उस विद्या को हाथ में धारण करे । इस प्रकार (मन्त्र का) पोषण करे । यदि पोषित होने पर भी मन्त्र सिद्ध न हो तब शोषण (कर दोष निवारण) करे ॥ २६३-२६६ ॥

द्वाभ्यां च वायुबीजाभ्यां मन्त्रं कुर्याद्विदर्भितम् ।

एषा विद्या गले धार्या लिखिता शवभस्मना ॥ २६७ ॥
शोषितोऽपि न सिद्धश्चेद्दहनीयोऽग्निबीजतः ।
आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रस्यैकैकमक्षरम् ॥ २६८ ॥
आद्यन्तमध ऊर्ध्वञ्च योजयेद्दाहकर्मणि ।
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत् ॥ २६९ ॥
धारणात् कण्ठदेशे तु ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
एवं क्रमेण कुर्वीत पुरश्चरणमुत्तमम् ॥ २७० ॥

दो वायु बीज (यं) से मन्त्र को विदर्भित करे, फिर शव के भस्म से लिखकर गले में धारण करे । यदि शोषण करने पर भी मन्त्र सिद्ध न हो तो अग्निबीज (रं) से उसे जलावे, फिर आग्नेय बीज (रं) के साथ मन्त्र का एक-एक अक्षर लिखे । फिर उसके आदि, अन्त, नीचे और ऊपर के एक-एक भाग को जला देवे और ब्रह्म वृक्ष के तेल से मन्त्र लिखकर धारण करे ! इस प्रकार कण्ठदेश में धारण करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है । साधक इस प्रकार सिद्धि के लिए सर्वोत्तम पुरश्चरण करे ॥ २६७-२७० ॥

पुरश्चर्यादिभिर्विना मन्त्रसिद्धेरुपायः

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धेस्तु कारणम् ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्येन पुरश्चर्यादिभिर्विना ॥ २७१ ॥

शिवशिखिसितभानुं पञ्चमान्त्यस्वराढ्यं
द्वितयमिदमपूर्वं बीजमुग्रप्रभायाः ।
क्षणमपि खमणीनां मण्डलान्तर्विभाव्य
क्षपयति दुरदृष्टं वादिराड् जायते सः ॥ २७२ ॥

अब मन्त्रसिद्धि के विषय में एक और कारण का निर्देश करता हूँ । जिसके करने से पुरश्चरण के बिना भी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । शिव (ह), शिखी (र), सितभानु (स), को पञ्चम स्वर (ऋ) और अन्त्य स्वर (विसर्ग) से प्रत्येक को युक्त कर लिखे । यह द्वितीय उग्रप्रभा का अपूर्व बीज है एक भी क्षण के लिये सूर्यमण्डल या चन्द्र मण्डल के भीतर रख देवे तो दुर्दृष्ट नष्ट हो जाते हैं और वह स्वयं वादिराट् बन जाता है ॥ २७१-२७२ ॥

स जयति रिपुवर्गान् वादिराजान् विवादे
नमयति रमणीनां चित्तचौरश्चिरायुः ।
कथयति कविराजैरप्यदृष्टं सुकाव्यं
मधुमतिरपि हेयः किंपुनः सिद्धिसङ्घाः ॥ २७३ ॥

वह समस्त शत्रुसमूहों को पराजित कर देता है । विवाद में बड़े-बड़े विपक्षियों को हरा देता है । युवतियों के चित्त को हरण करने वाला चिरायु होता है । बड़े-बड़े कविराज भी जिसकी कल्पना नहीं कर सकते ऐसे अभूतपूर्व काव्यों की रचना करता है । उसके सामने मधुर कविता करने वाले बृहस्पति भी हेय हो जाते हैं फिर सिद्ध समूहों की बात क्या ॥ २७३ ॥

कुलयुवति सुयोनौ मन्त्रवर्णान् विलिख्य
निखिल निगमवर्णान् सुप्तदोषादिदुष्टान् ।
विदित गुरुकुलान्तर्वाह्यवर्त्मा विधिज्ञो
मनुपुटितपटीयान् साधयेत् शान्तचेताः ॥ २७४ ॥

गुरुकुल से बाह्य एवं आन्तरिक साधनों को जान लेने वाला, सम्पुटित मन्त्र पाठ में चतुर, शान्तचित्त वाला विधानज्ञ साधक कुलयुवती की योनि में समस्त मातृका वर्णों को लिखकर सुप्त दोषादि दोषों से दुष्ट मन्त्रों को भी सिद्ध कर लेता है ॥ २७४ ॥

कुलपथमनुसन्धायामितायां सुभूमौ
तव जननि जनो यस्तर्पयेत्तीर्थतोयैः ।
रुधिरतरसुपुष्पैर्गन्धमाल्यानुलेपै
रचित युवतिवेशस्तद्धिया ध्यायते सः ॥ २७५ ॥

हे मातः ! आपका जो भक्त युवती का वेष बनाकर अच्छी प्रकार से कुलपथ का ज्ञानकर आपकी अमित भूमि में तीर्थ के जल से तर्पण कर रुधिरानुलिप्त मनोहर पुष्प, गन्ध, माल्य एवं सुगन्धित द्रव्यों से पूजन कर आपका ध्यान करता है (वह धन्य है) ॥ २७५ ॥

परिचरति समस्तैर्न्यासपूर्वैः प्रसिद्धै-
स्तव परिकरजालैर्योनिचक्रे प्रपूज्य ।
सुविमलकुलजां त्वां ह्रीघृणावर्जितो यः
स्वयमपि रचिताङ्गः क्षोभकृद्योगिनीनाम् ॥ २७६ ॥

हे मातः ! लज्जा और घृणा का परित्याग कर स्वयं मनोहर वेशभूषा से भूषित होकर आपका जो भक्त योनिचक्र में सुविमल कुल में उत्पन्न होने वाली परिकर समेत आपकी पूजा कर प्रसिद्ध समस्त न्यास जालों से आपकी सेवा करता है वह योगिनियों के मन को भी क्षुब्ध कर देता है ॥ २७६ ॥

पशुरिपुकुलचक्रं संस्पृशन् मध्यशाखं
सुरतरु सुरनाथः शापभ्रष्टः सुरेशः ।

शापभ्रष्ट सुरेश पशुओं के शत्रुभूत आपके कुलचक्र के मध्य शाखा का स्पर्श करते ही कल्पवृक्ष के तथा देवताओं के अधीश्वर बन गये ॥ २७७ ॥

कुलपतिकुलनाथस्तदद्वयं योजयित्वा
मनुपुटितविमृग्यं योजयेत्तद्बहिर्यः ॥ २७७ ॥
जननि तव कलानां कोविदः कामरूपः
कुमतिरहितचित्तःसंलिखेत्तां त्रिधारेः ।
विगतभय विवादध्वान्तजालः सुधांशु-
स्तव चरणतलान्तर्धूलिजालैर्विशालैः ॥ २७८ ॥
परिजनितवपुस्तद्धर्मभिर्देव पूज्यैः
परिचरति सुविज्ञो मोक्षचर्याधिपः सः ।

कुलपति और कुलनाथ इन दोनों का संयोग कर जो उसके बाहर से मन्त्र के सम्पुट की योजना कर पाठ करता है, हे मातः! वह आपकी समस्त कलाओं का ज्ञाता और कामरूप (इच्छानुसार) रूप धारण करने वाला हो जाता है तथा उसका चित्त सदैव कुमति से रहित हो जाता है । जो तुम्हारे मन्त्रों को शत्रु के सहित तीन प्रकारों से लिखता है, उसके समस्त विवादरूप अन्धकार (अज्ञान) आपके चरणतल के विशाल धूलि-जाल से मिट जाते हैं । वह साक्षात् सुधांशु हो जाता है । किं बहुना; वह विगत भय हो जाता है । वह साधक सुविज्ञ देव पूज्य उन-उन धर्मों से शरीर धारण कर आपकी परिचर्या करता है और मोक्ष रूप पुरुषार्थ का अधीश्वर बन जाता है ॥ २७७-२७९ ॥

मदनमदवधूनां बीजमुद्धृत्य शक्तिं
तदनु कठिनबीजं लोकधात्रीं तदन्तः ॥ २७९ ॥
यदि जपति मदन्तर्भावमासाद्य सद्यः
सुरनगरगतिस्तैः सिद्धिवर्गैः स पूज्यः ।

मदन मद वधुओं का (स्त्रीं) बीज उद्धृत कर उसके बाद शक्ति बीज (ह्रीं) फिर कठिन बीज (श्रीं) उसके अन्त में लोकधात्री लगाकर, मदन्तर्भाव प्राप्त कर, यदि साधक उसका जप करे, तो उसकी गति स्वर्ग तक हो जाती है और वह सिद्धवर्गों से भी पूजित हो जाता है ॥ २७९-२८० ॥

शिवभृगुमदपृथ्वीशक्तियुक्तं सुसिद्धं
हरिहरचतुरास्यस्वस्वभूतिप्रसूतम् ॥ २८० ॥
परमपुरुषसञ्ज्ञः क्षोभकृत् कामिनीना
मधिपतिरपि वाचां श्रीपतिः सार्वभौमः ।

शिव (ह), भृगु (स), मद (क), पृथ्वी (ल), शक्ति (ह्रीं), इन बीज मन्त्रों से युक्त (हलकल ह्रीं) मन्त्र सुसिद्ध है । वह हरि, हर तथा ब्रह्मदेव की भी अपनी-अपनी विभूतियों को उत्पन्न करने वाला है । यह परमपुरुष सञ्ज्ञक मन्त्र कामिनियों को क्षुब्ध करने वाला है । यह समस्त वाणी का अधिपति है और श्रीपति एवं सार्वभौम है ॥ २८०-२८१ ॥

भृगुमदकठिनाधः कामबीजं तदग्रे
भुवनभयविनाशः क्षोभिणीं योजयित्वा ॥ २८१ ॥
जपति यदि सकृद्वा चिन्त्यते वीरसिंहः
कुलयुवतिकुलान्तः क्षोभकृत् कामभावात् ।

भृगु (स), मद (क), कठिन (?), इसके बाद काम बीज (क्लीं) उसके आगे उसमें 'भुवनभय विनाश और क्षोभिणी को संयुक्त कर जो एक बार भी उसका जप करता है; अथवा ध्यान करता है । वह वीरसिंह कामभाव से कुलयुवतियों के अन्तःकरण में क्षोभ उत्पन्न कर देता है ॥ २८१-२८२ ॥

मदनमदतलाधः शक्तिबीजं नियोज्य
स्मरहरहरिरूपी कामरूपः कुबेरः ॥ २८२ ॥
रिपुकुलहरिणाक्षीलोचनाम्भोजविप्रुट्
प्रसभजलनिषेकात् खण्डितान्ताघतापः ।

हे मातः! मदनमद (?) तल के नीचे शक्ति बीज (ह्रीं) का नियोजन कर जो आपके मन्त्र का जप करता है वह स्मरहर शिव का एवं हरि का रूप कामरूप तथा कुबेर बन जाता है । इतना ही नहीं वह अपने शत्रुओं के हरिणी के समान नेत्रों द्वारा निकले हुये अश्रु जल कणों से अपने अन्तःकरण में रहने वाले पापों को भी नष्ट कर देता है ॥ २८२-२८३ ॥

शिवभृगुमदमूलं लोभमूलं समूलं
भजति यदि गुरूणां वर्णमूलं विमृग्यम् ॥ २८३ ॥
निधिपतिरपि नाथो गीष्पतिः क्षुद्रचेता
यदि भवति तदेतन्मुख्यमुर्वीपतित्वम् ।

यदि क्षुद्र चित्त वाला साधक समस्त लोभ मूल का त्याग कर मूल सहित शिव (ह), भृगु (स) और मद (क) के मूल (बीजाक्षरों) को, अत्यन्त अन्वेष्टव्य, गुरुओं द्वारा दिये गये वर्णमूल (हसकल ह्रीं) का जप करे तो; हे मातः! वह पुरुष निधिपति सबका नाथ एवं वाचस्पति हो जाता है, बहुत क्या? वह सभी पृथ्वी का पतित्व प्राप्त कर लेता है ॥ २८३-२८४ ॥

वरणरणविवर्जं घ्राणमेवं विवर्ज्यं
तदुपरि मृगचिह्नं द्वन्द्वमेतत् भवान्याः ॥ २८४ ॥
निखिल मनु वराणां मुख्यदानैकदक्षः
स कुसुमशरधर्मक्षोभकृन्मन्त्रराजः ।

........................उसके ऊपर मृग चिह्न यह दो अक्षर (ल ह्रीं) भवानी का बीज है जो समस्त श्रेष्ठ मन्त्रों में मुख्य दान में (वर) देने में दक्ष है और कामदेव के बाणरूप धर्मों से सबको क्षुब्ध करने वाला मन्त्रराज है ॥ २८४-२८५ ॥

अमलशिरसि धर्मं वादिराजं स्वतन्त्रं
तव समनय युक्तं बीजमन्यद् भवान्याः ॥ २८५ ॥
द्वितयमपि विमानं वक्तुमीशो महेशः
किमिह कमलजन्मा जन्मधारासहस्रैः ।

भवानी का एक अन्य बीज है; जो श्रेष्ठ महात्माओं के शिर में धर्म का स्वरूप है, वादिराज है, स्वतन्त्र है और हे मातः! वह तुम्हारी समनय (=नीति) के सर्वथा युक्त है । वह दूसरा विमान है जिसे कहने में महेश ही समर्थ हैं कमलजन्मा ब्रह्मदेव सहस्रों जन्म तक धारा प्रवाह के रूप में जन्म ले तो भी वे उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥ २८५-२८६ ॥

इह जपति य एनं मन्त्रराजं स्वभाग्यैः
भजति जननि युष्मत्पादपद्मोत्थभक्त्या ॥ २८६ ॥
त्यजति परपुमांसं मादृशं चापि काले
न खलु वपुरनर्घ्यं तस्य काचित् कदाचित् ।

हे जननि! तुम्हारे चरण कमलों से उत्पन्न हुई भक्ति से जो अपने भाग्यवशात् इस मन्त्रराज को जपता है वह मेरे जैसे परमपुरुष का भी समय आने पर त्याग कर देता है । कदाचित् किसी भी प्रकार उसका कोई शरीर अनर्घ्य नहीं होता । भाव यह कि उसे किसी भी शरीर में अहन्ता ममता नहीं होती ॥ २८६-२८७ ॥

विहित गुरुमुखाद्वा वालकाद्वा पशोर्वा
लिखितमपि स्वबुद्ध्या प्राप्य कस्मादकस्मात् ॥ २८७ ॥
स्मररिपुपुरपारे मोक्षपूर्यधिपारे
परमपदविलीनः सर्वसौभाग्यभोगैः ।

हे मातः! गुरु के मुख से प्राप्त कर, बालक से प्राप्त कर अथवा पशु मार्ग वाले साधक से प्राप्त कर, अथवा लेख द्वारा प्राप्त कर, अथवा बुद्धि द्वारा, अथवा अकस्मात् कहीं से प्राप्त कर जो तुम्हारे इस महामन्त्र का जप करता है; वह

शिवलोक से परे और मोक्षपुरी से भी परे परमपद में अपने सर्वसौभाग्यवश प्राप्त भोगों से उसी में विलीन हो जाता है ॥ २८७-२८९ ॥

अनलपुरविभागे कालिकावर्णबीजं
तदपि यदि विदध्याद्दिग्युतं दन्तवर्णम् ॥ २८८ ॥
नयनयुतलकारं मस्तके नामयुक्तं
तदनु विकटदंष्ट्रा सोत्कटं बीजयुक्तम् ।
यदि जपति समस्तं गुह्यगुह्यातिगुह्यं
त्रिजगति किमिहास्ते क्लेशलभ्यं कथञ्चित्॥२८९ ॥

अनलपुर (श्मशान) में कालिका का वर्ण बीज (क्लीं) उसे दिक्‌युक्त (ह), दन्त वर्ण (लृतुयशानां दन्ता) से तथा नयन (इकार) युक्त लकार, उसके मस्तक पर नाम युक्त विकटदंष्ट्रा सोत्कट बीज से युक्त कर जो तत्त्वज्ञ साधक जप करता है उसे इस जगत् में गुह्य से भी अतिगुह्य कौन-सा पदार्थ है जो कदाचित् क्लेश लभ्य हो? ॥ २८८-२८९ ॥

क्रम पठितपूर्वं सर्वमेवानुमध्यं
मनुरपरवाच्यं तस्य मध्यस्वरूपम् ।
भजति यदि चिदानन्दधूक्केवलोऽसौ
विपिन भुवि च मध्ये कौतुकान् मां मनुष्यः ॥ २९० ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये सप्तदशोल्लासः ॥ १७ ॥

क्रमपूर्वक पठित, अपूर्व इस श्रेष्ठ मन्त्र के सभी मध्य भाग का, जिसका मध्य स्वरूप सर्वथा अवाच्य है, यदि साधक विपिन में एवं पृथ्वी के मध्य में केवल मेरे स्वरूप का भजन करे तो वह साक्षात् चिदानन्द स्वरूप हो जाता है ॥ २९० ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के सप्तदश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

अष्टादश उल्लासः

...✿...

सिद्धिलक्षणनिरूपणम्

अथ वक्ष्ये सिद्धिचिह्नं साधकस्य यथा भवेत् ।
अकस्मात् संलभेद् गन्धं धूपस्य कुसुमस्य वा ॥ १ ॥
सदा वा प्रियसम्भाष्यं लभ्यते योषितामपि ।
स्वप्ने वृषं गजाश्वं वा यद्वाऽऽरोहति साधकः ॥ २ ॥
सिद्धमन्त्रो भवेत् सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ।

अब मैं जिस प्रकार साधक को सिद्धि के लक्षण प्रगट होते हैं उन्हें कहता हूँ। धूप की अथवा पुष्प की अकस्मात् सुगन्ध प्राप्त हो, स्त्रियों के द्वारा अकस्मात् प्रिय सम्भाषण प्राप्त हो, स्वप्न में साधक बैल, हाथी अथवा घोड़े पर सवारी करे तब उसके मन्त्र सिद्ध होने वाले हैं इसमें संशय नहीं ॥ १-३ ॥

स्वप्ने वा जायते योषिद्वृन्दैः सम्मिलनं निशि ॥ ३ ॥
गजादिशैलशृङ्गेषु विहारो राजदर्शनम् ।
राज्ञां तथाऽङ्गनानाञ्च दर्शनं नृत्यगीतयोः ॥ ४ ॥
सौधगेहं तथा मञ्चं प्रासादञ्च मनोहरम् ।
रथं वा तरणिं वापि स्वप्नेष्वारोहयेत्तु यः ॥ ५ ॥
सम्यक्सिद्धिर्भवेत्तस्य शिवः सोऽपि न संशयः ।

रात्रि में स्वप्न में अनेक स्त्रियों का सम्मिलन हो, हाथी और पर्वत के शिखर पर विहार करे । राजा का स्वप्न में दर्शन तथा स्त्रियों का दर्शन और नृत्य, गीत का श्रवण तथा दर्शन, सौधानुलिप्त गृह, मञ्च, उच्च शिखर वाले मनोहर प्रासाद, रथ या नौका आरोहण करे, तो उस साधक को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है और वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है; इसमें संशय नहीं ॥ ३-६ ॥

ध्वजञ्च प्रतिमां चैव राजानं रुधिरं तथा ॥ ६ ॥
रुधिरालेपनं स्वाङ्गे मदिरालेपनं तथा ।
मदिरालोकनं मांसं स्त्रियं वा चारुहासिनीम् ॥ ७ ॥

स्त्रीभिर्वा वेष्टितो यस्तु स्वप्ने भवति साधकः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य सत्यमेव न संशयः ॥ ८ ॥

ध्वज, प्रतिमा, राजा, रुधिर, अपने शरीर में रुधिर का या मदिरा का आलेप, मदिरा, मांस, मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई स्त्री का दर्शन, अथवा चारों ओर स्त्रियों से घिरा हुआ जो साधक अपने को देखता है उसे मन्त्र-सिद्धि होने वाली है यह सत्य है ॥ ६-८ ॥

गोमांसं वापि चान्यस्य भक्षयेद्योऽपि मांसकम् ।
लभेद्वा भक्षयेद्वाऽपि स्पर्शयेद्वा कदाचन ॥ ९ ॥
देवतानरगन्धर्वनारीणां दर्शनं भवेत् ।
चरगोरुणितम्वाया वक्षोजमुखपङ्कजम् ॥ १० ॥
एतेषां तु फलं चैव परङ्गुर्वादिकं गुरुम् ।
तेषां प्रसादः स्नेहञ्च वात्सल्यं प्रियदर्शनम् ॥ ११ ॥

जो साधक गोमांस अथवा अन्य प्रकार का मांस स्वप्न में भक्षण करे अथवा उसे प्राप्त करे अथवा उसे स्पर्श करे या देव, गन्धर्व, स्त्रियाँ स्वप्न में दिखाई पड़ें या स्थल कमल के समान स्त्री के स्तन तथा मुख कमल का दर्शन दिखाई पड़े तो इसका फल परम गुरु, गुरु-गुरु या स्वयं गुरु का प्रसाद, स्नेह और वात्सल्य प्राप्त होने वाला है ऐसा समझे अथवा किसी प्रेमी का दर्शन होने वाला है ऐसा समझना चाहिए ॥ ९-११ ॥

सिद्धिचिह्नानि

सिद्धिचिह्नं भुवि ज्ञेयं यदि न व्यपते मनः ।
यदि भाग्यवशाच्चैव कुलदृष्टिस्तु जायते ॥ १२ ॥
अवार्धक्यं भवेत्तस्य सर्वसिद्धिः करे स्थिता ।
अकालपनसं चैव भक्षणं दर्शनं तथा ॥ १३ ॥
अगम्यागमनं चैव गुरोः सन्दर्शनं तथा ।
परमान्नभक्षणञ्च शोणितञ्च विशेषतः ॥ १४ ॥
दिव्यान्नं वापि भुक्त्वा च सिद्धो भवति साधकः ।

सिद्धि के चिह्न—यदि मन में विकार न हो तो ये सभी सिद्धि के चिह्न समझना चाहिये । यदि भाग्यवश किसी कापालिक का दर्शन हो जावे तो नौजवानी बनी रहेगी और ऐसे साधक को सिद्धि हस्तगत रहती है । अकाल (बिना ऋतु) में पनस (कटहल) का दर्शन एवं भक्षण, अगम्यागमन, गुरु का दर्शन, परमान्न (खरी) का भक्षण विशेषतः शोणित अथवा दिव्यान्न का भोजन प्राप्त हो तो साधक

सिद्ध हो जाता है ॥ १२-१५ ॥

साधकं द्रव्यरूपञ्च देवतां वा प्रपश्यति ॥ १५ ॥
खड्गं वा फलकं वापि अमृतं वापि पुस्तिकाम् ।
सिद्धिद्रव्यं शवं चैव वसनाभरणादिकम् ॥ १६ ॥
रक्तमाल्यं रक्तपुष्पं स्वप्ने प्राप्नोति साधकः ।
सिद्धः सोऽपि भवेत् सत्यं संशयो नास्ति निश्चितम् ॥ १७ ॥

स्वप्न विचार—कोई साधक, मत्स्य, मांसादि द्रव्य अथवा देवता दिखाई पड़े, तलवार, फलक, अमृत, पुस्तक, सिद्धिद्रव्य, शव, वस्त्र, आभरणादि, रक्तमाला, रक्तपुष्प, यदि स्वप्न में साधक को दिखाई पड़े तो वह सिद्ध होगा, यह सत्य है निश्चय है। इसमें सन्देह नहीं ॥ १५-१७ ॥

गजं वा तुरगं वापि शिवलिङ्गञ्च पश्यति ।
पीठादिगमनं तत्र देवतादर्शनं तथा ॥ १८ ॥
उद्यानं काननं वापि भूदेवयतिदर्शनम् ।
बालकं भिक्षुकं चैव फलादीनां तु लोलुपम् ॥ १९ ॥
पशुपक्षिफलादीनं विश्वासः प्रियदर्शनः ।
मनसा भाविते कार्ये शङ्खादिध्वनिरुत्सवः ॥ २० ॥
वेणुवीणारवं गीतं विचित्रदर्शनं तथा ।
अज्ञातजनसम्वादो नष्टद्रव्योदयं तथा ॥ २१ ॥
अकस्माद् भावसिद्धिस्तु अलक्षितजनस्तुतिः ।
क्षुद्रस्य महती पूजा सुकृती च कृतस्तुतिः ॥ २२ ॥
अदृष्टशास्त्रविज्ञानं तेजस्वी जनवल्लभः ।
मन्त्रलाभस्तथा स्वप्ने गुरूणां दुहितुस्तथा ॥ २३ ॥
पत्नीनां साधकानाञ्च उत्कटोत्कटदर्शनम् ।
असुगन्धिः सुगन्धिश्च श्रद्धा पुष्पोद्भवस्तथा ॥ २४ ॥
स्वप्ने चैव पुरश्चारी पुरश्चरणकर्मणि ।
इति विज्ञाय वीरेन्द्रः प्रयोगञ्च समाचरेत् ॥ २५ ॥

यदि साधक हाथी, घोड़ा अथवा शिवलिङ्ग स्वप्न में देखे या किसी सिद्धि सम्पन्न पीठ में अपना गमन, देवता का दर्शन, उद्यान एवं वन, ब्राह्मण, सन्यासी, फलादि के लिये लोलुप भिक्षुक अथवा बालक को देखे, पशु, पक्षी, फलादि की प्राप्ति में विश्वास, प्रिय वस्तु का दर्शन, भविष्य में होने वाले सोंचे हुए कार्य में शङ्खादि की ध्वनिपूर्वक उत्सव अथवा वेणु (वंशी), वीणा का शब्द, गीत, विचित्र

दर्शन, अज्ञात पुरुष से वार्तालाप, नष्टद्रव्य की प्राप्ति, अकस्माद् विचार किये गये कार्यों की सिद्धि, अदृश्य पुरुष द्वारा की गई अपनी स्तुति, क्षुद्र की महती पूजा, पुण्यशाली की स्तुति, अदृष्ट शास्त्र का ज्ञान, अपने को तेजस्वी देखना तथा जनता का प्रेमपात्र बनना, स्वप्न में अकस्मात् मन्त्र की प्राप्ति, गुरु का दर्शन, कन्या का दर्शन, अपनी पत्नी का दर्शन, एक से एक उत्तम योगी साधकों का दर्शन, असुगन्धि, सुगन्धि, श्रद्धा-पुष्प की उत्पत्ति, स्वप्न में पुरश्चरण कर्म में सबसे आगे चलना आदि इन स्वप्नों को देखकर वीरेन्द्र साधक मन्त्र के प्रयोग का अनुष्ठान करे ॥ १८-२५ ॥

निन्द्यचिह्नानि

अथ निन्द्यानि वक्ष्यामि विद्यानर्थकराणि च ।
कृष्णवर्णभटं स्वप्ने प्रहारस्तेन मेलनम् ॥ २६ ॥
मैथुनं परनारीभिर्विनाशो मरणं तथा ।
राज्यक्षोभवह्निवायुजन्तुभिर्वधदर्शनम् ॥ २७ ॥
गुरोराक्षेपसम्पत्तिर्जन्तूनां व्याधिसाधनम् ।
अन्यमन्त्रार्चने श्रद्धा स्वदेवार्चननिन्दनम् ॥ २८ ॥
असिद्धार्थकुले तत्र सिद्धार्थजपमाचरेत् ।
गणेशं वटुकं पश्चात् क्षेत्रेशं योगिनीस्तथा ॥ २९ ॥
पूजयेद्रात्रिसमये बलिं चैव सदाऽर्पयेत् ।
कुमारं बटुकं भद्रं लक्ष्मीं सुचारुनायकम् ॥ ३० ॥
स्वशक्तिं पञ्चक्षेत्रेशं योगिनीं योगिभिः सह ।
पूजयित्वा विधानेन बलिं पश्चान्निवेदयेत् ॥ ३१ ॥

निन्दनीय स्वप्न—अब विद्या सिद्धि में अनर्थ उत्पन्न करने वाले निन्दनीय स्वप्नों का वर्णन करता हूँ । काले रङ्ग का योद्धा, उसके द्वारा किया गया प्रहार, अथवा उससे सम्मिलन, दूसरे की स्त्री से मैथुन, विनाश, मरण, राजा का क्रोध, आग, हवा तथा जन्तुओं द्वारा अपने वध का दिखाई पड़ना, गुरु पर आक्षेप, गुरु का पतन, जन्तुओं में व्याधि का दिखाई पड़ना, अन्य के मन्त्र में अर्चन के लिये उत्पन्न हुई श्रद्धा, अपने इष्टदेव के अर्चा में निन्दा, असिद्धार्थ कुल में श्रद्धा हो, तब ऐसे दुःस्वप्न की स्थिति में सिद्धि के लिये मन्त्र का जप करे, गणेश, बटुक, इसके पश्चात् क्षेत्रपाल और योगिनियों का रात्रि समय में पूजन करे और सर्वदा उन्हें बलि देवे । कुमार, बटुक, वीरभद्र, महालक्ष्मी, सुचारु नायक (मङ्गलकर्ता गणपति) स्वशक्ति, पञ्चक्षेत्रेश और योगियों के सहित योगिनियों का विधान सहित पूजन कर पश्चात् उन्हें बलि प्रदान करे ॥ २६-३१ ॥

ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रो निर्विघ्नेन सुनिश्चितम् ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि काम्यप्रयोगमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

ऐसा करने से मन्त्रवेत्ता साधक निर्विघ्न रूप से निश्चय ही सिद्ध हो जाता है अब सर्वोत्तम काम्यप्रयोगों को कहता हूँ ॥ ३२ ॥

काम्यप्रयोगकथनम्

रजोऽवस्थां समालोक्य तन्मूले स्वेष्टदेवताम् ।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं प्रजपेन्मनुम् ॥ ३३ ॥
लक्षपीठफलं चैव लभते साधकोत्तमः ।
वेतालपादुकासिद्धिं खड्गसिद्धिन्तथैव च ॥ ३४ ॥
अञ्जनं तिलकं चैव प्राप्नोति क्षोभवर्जितः ।
कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः ॥ ३५ ॥
अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ।
केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत् ॥ ३६ ॥

महाशक्ति की रजोऽवस्था का काल जानकर साधक उसके मूल में अपनी इष्टदेवता का पूजन कर अर्धरात्रि के समय तीन दिन तक एक लाख जप करे तो उसे पीठ जप का फल प्राप्त हो जाता है । वेताल सिद्धि, पादुका सिद्धि, खड्ग सिद्धि, अञ्जन सिद्धि और तिलक सिद्धि उस साधक को प्राप्त हो जाती है । जो वेत्ता साधक पुष्पिता स्त्री के कुलागार (=स्मरमन्दिर) को देखकर क्षोभरहित स्थिर चित्त होकर गुप्त रूप से दश हजार की संख्या में जप करता है वह विद्यानिधि हो जाता है ॥ ३३-३६ ॥

संस्कृताः प्राकृताश्चैव लौकिका वैदिकास्तथा ।
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य न चान्यथा ॥ ३७ ॥

संस्कृत, प्राकृत, लौकिक एवं वैदिक सभी शब्द (शास्त्र) उसके वश में हो जाते हैं । यह अन्यथा (असत्य) नहीं ॥ ३७ ॥

अथवा मुक्तकेशश्च भुवि भुक्त्वा सुसंयतः ।
प्रजप्य चाऽयुतं प्राज्ञः एतदेव फलं लभेत् ॥ ३८ ॥

प्राज्ञ साधक भोजन कर केशों को विकीर्ण कर पृथ्वी पर इतनी ही संख्या में जप करता है, वह भी इसी फल को प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

नग्नां परलतां पश्यन् अयुतं यस्तु साधकः ।
प्रजपेद् यो भवेत् सद्यो विद्यायावल्लभः स्वयम् ॥ ३९ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठतां गताः ।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ ४० ॥

नङ्गी दूसरे की लता (स्त्री) को देखते हुये जो साधक दश हजार की संख्या में मन्त्र का जप करता है, वह स्वयं महाविद्या का प्रिय पात्र हो जाता है उसके देखने मात्र से वादी कुण्ठित हो जाते हैं । सभा के मध्य में उसकी गद्यपद्यमयी वाणी उत्पन्न होती है ॥ ३९-४० ॥

तस्य वाक्यपरिचयाज्जडीभवन्ति वाग्मिनः ।
तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः ॥ ४१ ॥
हविर्भुक्त्वाऽथवा पूर्वक्रमेणैव फलं लभेत् ।
अथवा धनकामस्तु महदैश्वर्यकामुकः ॥ ४२ ॥

उसके वाणी का परिचय प्राप्त होते ही वाग्मी जड़ हो जाते हैं । सभी विद्वान् उसका नाम सुनते ही प्रसन्नतापूर्वक उसे प्रणाम करने लगते हैं । महान् ऐश्वर्य की कामना करने वाला धनी हविः भोजन कर अथवा पूर्वक्रम से ही जप करे, तब उसे भी इसी फल की प्राप्ति होती है ॥ ४१-४२ ॥

बृहस्पतिसमो यस्तु भवितुं कामयेन्नरः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामन्त्र्य तत्त्ववित् ॥ ४३ ॥

जो पुरुष अपने को बृहस्पति के समान बनना चाहता है वह एक-सौ आठ की संख्या में जप कर कुल की पूजा करने से तत्त्ववेत्ता हो जाता है ॥ ४३ ॥

मैथुनं यः करोत्येव स तु सर्वफलं लभेत् ।
अथवा हस्तमारोप्य स्थिरधीः पूतमानसः ॥ ४४ ॥
कवित्वं लभते सोऽपि अमृतत्वञ्च गच्छति ।
पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः ॥ ४५ ॥
तदा वादी सुसिद्धान्ते ततः क्षितितलं विशेत् ।
महाचीनक्रमे देवीं ध्यात्वा देवीं प्रपूजयेत् ॥ ४६ ॥
तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद् भक्तिभावतः ।
स भवेत् कुलदेवश्च कुलद्रुमगतः शुचिः ॥ ४७ ॥

जो शक्ति से मैथुन करता हुआ जप करता है वह समस्त फल प्राप्त कर लेता है, अथवा पवित्र मन से स्तन पर हाथ रखकर यदि जप करे तो वह कवित्व प्राप्त कर लेता है और उसे अमृत तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है । पृथ्वी के ऋतुमती काल में यदि नित्य एक सहस्र की संख्या में जप करे तब वह वादी सुसिद्ध होकर पृथ्वी तल में प्रवेश कर जाता है । महाचीन क्रम में देवी का ध्यान

कर उस चीन द्रुम से उद्भूत (कुल) रूप पुष्प से भक्तिभावपूर्वक पूजन करे तो वह कुल क्रम प्राप्त कर शुचि हो, कुलदेवता बन जाता है ॥ ४४-४७ ॥

ब्रह्मतरोर्मूलपद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि ।
तत्सुधाधारसारेण तर्पयेन्मातृकानने ॥ ४८ ॥
पद्मं दृष्ट्वा तथा विल्वं खञ्जनं शिखरं तथा ।
चामरं रविविम्बञ्च तिलपुष्पं सरोवरम् ॥ ४९ ॥
त्रिसृतं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावतः ।
मुखप्रसादं सुवचः सुलोचनं सुहास्यकम् ॥ ५० ॥
सुवेशं सुभगं गन्धं सुजनं सुखमेव च ।
लभते च यथासंख्यं साधकः स्थिरमानसः ॥ ५१ ॥

ब्रह्मतरु के नीचे मूलपद्म में यथाविधि देवी का ध्यान कर उससे टपकती हुई सुधा की धारा से मातृका के मुख में तर्पण करे । पद्म तथा बेल पत्र, ब्राह्मण, खञ्जन, शिखर, चामर, सूर्यविम्ब, तिलपुष्प, सरोवर और त्रिसृत देखकर शुद्धभाव से एक-सौ बार जप करे तो मुख की प्रसन्नता, मधुरवाणी, उत्तम नेत्र, उत्तम हास्य, सुवेष, सौन्दर्य, गन्ध, सौजन्य और सुख स्थिर चित्त साधक को क्रमशः प्राप्त होते हैं ॥ ४८-५१ ॥

महाचीनक्रमः

महाचीनद्रुमलता वेष्टितेन च यत् फलम् ।
तस्यापि षोडशांशेन फलं नार्हनित ते शवाः ॥ ५२ ॥

महाचीनद्रुमलता (=कुलाङ्गना) से वेष्टित होकर जप करने से जो फल प्राप्त होता है उसका षोडशांश भी फल शव सिद्धि से नहीं होता है ॥ ५२ ॥

शवासनाधिकफलं लतागृहप्रवेशनम् ।
लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये ॥ ५३ ॥

शवासन से अधिक फल लतागृह (=स्मरमन्दिर) में प्रवेश कर जप करने से होता है । महापातक से विमुक्ति के लिये सुधी साधक लताओं से लिपटे वृक्ष के नीचे जप करे ॥ ५३ ॥

धनार्थी प्रजपेद्विद्यां परयोषित् समागमे ।
लताभावे समुत्सार्य स्वशुक्रं साधकोत्तमः ॥ ५४ ॥
अक्षुब्धं प्रजपेन्मन्त्रं धर्मकामार्थसिद्धये ।
इति चीनक्रमेणैव तारा शीघ्रफलप्रदा ॥ ५५ ॥

धनार्थी उत्तम साधक लता (कुलस्त्री) के अभाव में दूसरे की स्त्री से समागम कर अपना शुक्र निकाल कर जप करे । अक्षुब्ध होकर धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि के लिये मन्त्र का जप करे । इस प्रकार चीन क्रम (=चीनाचार) से जप करने पर तारा शीघ्र फल प्रदान करती है ॥ ५४-५५ ॥

गुरुवाक्यक्रमेणैव त्रिपुरा भुक्तिमुक्तिदा ।
महाचीनक्रमेणैव कालिका फलदायिणी ॥ ५६ ॥

गुरु के द्वारा बताए गए वाक्य क्रम से जप करने पर त्रिपुरा भोग और मोक्ष दोनों ही प्रदान करती है । महाचीन क्रम से जप एवं पूजन करने पर कालिका फल प्रदान करती है ॥ ५६ ॥

सप्तसप्ततिभेदा या श्रीविद्या कथिता भुवि ।
तासान्तु समता ज्ञेया गुप्तसाधनसाधने ॥ ५७ ॥

पृथ्वी में ७७ प्रकार के विद्या के भेद कहे गये हैं । गुप्त साधन से सिद्ध होने पर उक्त समस्त विद्याओं की समता प्राप्त हो जाती है ॥ ५७ ॥

चत्वारिंशत् प्रकारा या भैरवी विदिता भुवि ।
तासां तु समता ज्ञेया गुप्तसाधनसाधने ॥ ५८ ॥

पृथ्वी में जो भैरवी के चालीस भेद कहे गये हैं वे सभी गुप्त साधन के सिद्ध होने पर उक्त भैरवी की समता प्राप्त हो जाती है ॥ ५८ ॥

या या विद्या महाचण्डास्तासामेवं विधिर्मतः ।
महाचीनक्रमेणैव छिन्नमस्ता तु सिद्धिदा ॥ ५९ ॥

जितनी जितनी महाचण्डा (उग्र) विद्यायें हैं उन सभी की प्राप्ति के लिये यही विधि है । महाचीन क्रम (=चीनाचार) से जप अर्चन करने पर छिन्नमस्ता सिद्धि प्रदान करती है ॥ ५९ ॥

सर्वा याश्चण्डिका विद्यास्तासां चैवं विधिः स्मृतः ।
यथा काली तथा तारा यथा बाला तथोन्मुखी ॥ ६० ॥
यथा काली तथा दुर्गा यथा दुर्गा तथा जटा ।
यथाऽसौ त्रिपुरा बाला तथा त्रिपुरभैरवी ॥ ६१ ॥
सुन्दरी च तथा ज्ञेया मर्द्दिनी च तथा परा ।
अन्या या या महाविद्या तथा भवति निश्चितम् ॥ ६२ ॥

जो चण्डिका की सभी विद्यायें हैं, उनके लिये यही विधि कही गई है । जैसी काली वैसी तारा, जैसी बाला वैसी उन्मुखी, जैसी काली वैसी दुर्गा, जैसी दुर्गा

वैसी जटा, जैसी त्रिपुराबाला वैसी त्रिपुरभैरवी, जैसी सुन्दरी वैसी परा महिषमर्दिनी है । इस प्रकार वैसी वैसी अन्य विद्यायें हैं; यह निश्चित है ॥ ६०-६२ ॥

मन्त्रं यन्त्रं पृथग्भावात् साधनेनैकतां भजेत् ।
एतत्यन्त्रञ्च मन्त्रञ्च पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ॥ ६३ ॥

मन्त्र और यन्त्र यद्यपि पृथक् पृथक् हैं तथापि साधन से एक हो जाते हैं । अत: यह यन्त्र और मन्त्र पुत्र को भी न प्रदान करे ॥ ६३ ॥

अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम् ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि काम्यसाधनमुत्तमम् ॥ ६४ ॥

अयोग्य को विद्या देने पर निश्चय ही वह यमराज की पुरी को जाता है । अब इसके बाद सर्वोत्तम काम्यसाधन कहता हूँ ॥ ६४ ॥

संयोज्य मूलमन्त्रान्ते क्रमोत्क्रमेण मातृकाम् ।
आमन्त्रयेत्ततः पश्चात् पञ्चविंशतिसंख्यया ॥ ६५ ॥
प्रातरेव जलं धीरो भावयेन्मातृकामयम् ।
तदम्बुपानतो मन्त्री वाग्मी द्रुतं कविर्भवेत् ॥ ६६ ॥
त्रिमासान्नाऽत्र सन्देहः षण्मासात् वाक्पतिर्भवेत् ।
काम्यकर्त्ता महावाग्मी भवेत् श्रुतिधरा नरः ॥ ६७ ॥

कार्म्यकर्म साधन—मूल मन्त्र के अन्त में क्रम उत्क्रम (सीधे 'अं से क्ष' और उल्टे क्ष से अ पर्यन्त) मातृका वर्णों को संयुक्त कर उससे २५ संख्या में प्रात:काल जल अभिमन्त्रित कर साधक उस जल को मातृकामय के रूप में ध्यान कर जल को पी जावे । यह क्रम तीन महीने तक करे, तो वह आशु कवि बन जाता है । छह मास तक करे तो वाक्पतित्व प्राप्त कर लेता है । कामना से साधना करने वाला नर महावाग्मी और श्रुतिधर हो जाता है ॥ ६५-६७ ॥

अष्टमात् सर्वमन्त्राणां पारगो विश्वपूजितः ।
सर्वज्ञतां लभेद्धीरो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६८ ॥

आठ मास तक करे तो सभी मन्त्रों का पारगामी विद्वान् बन जाता है और वह विश्वपूजित हो जाता है । इतना ही नहीं वह वीर साधक सर्वज्ञता भी प्राप्त कर लेता है । इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ॥ ६८ ॥

द्विवर्षादष्टसिद्धिश्च त्रिवर्षात्तु शिवो भवेत् ।
प्रदीपकलिकाकारं जिह्वायां मूलमन्त्रकम् ॥ ६९ ॥
देवतां शुक्लवर्णाञ्च विभाव्य यो जपेन्मनुम् ।

त्रिमासादूर्ध्वतो मन्त्री पूर्ववत् फलमाप्नुयात् ॥ ७० ॥

दो वर्ष तक निरन्तर इस प्रयोग से अष्टसिद्धि प्राप्त होती है । तीन वर्ष तक निरन्तर जप करने से साक्षात् शिव हो जाता है । जिह्वा में प्रदीप की कलिका के समान शुक्ल वर्णा देवता का ध्यान कर मन्त्र का जप करे । इस क्रिया को निरन्तर तीन मास से ऊपर करते रहने पर प्रयोगकर्त्ता को उक्त सभी फल प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६९-७० ॥

तत्तत्प्रकारभेदेन तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
प्रातरेव हि जप्तव्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ ७१ ॥
अथवाऽन्यप्रकारं तु वक्ष्यामि तन्त्रवर्त्मना ।
बलिदानादिकं सर्वं विधाय पूर्ववद् बुधः ॥ ७२ ॥
श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
जपेदयुतसङ्ख्यं तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ७३ ॥

उन-उन प्रकारों के भेद से जप करने पर उक्त फल प्राप्त हो जाता है । यह जप क्रिया प्रातःकाल में ही आठ हजार की संख्या में करनी चाहिये; अथवा तन्त्र मार्ग के अनुसार इसे अन्य प्रकार से कहता हूँ । बुद्धिमान साधक पूर्ववत् बलिदानादि कार्य सम्पन्न कर, श्मशानालय में जाकर, केशों को खोलकर, दिगम्बर (नङ्गा) होकर, अपने समस्त काम और अर्थों की सिद्धि के लिये दश हजार की संख्या में जप करे ॥ ७१-७३ ॥

महाचीनद्रुमलतामज्जाभिर्विप्रपुत्रकम् ।
सहस्रं देवीमभ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः ॥ ७४ ॥
तदा राज्यमवाप्नोति यदि स न पलायितः ।
स्वगात्ररुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्रशः ॥ ७५ ॥
श्मशानेऽभ्यर्च्य देवीन्तु वागीशसमतां व्रजेत् ।
श्मशानशयनो वीरः शवासनगतः शुचिः ॥ ७६ ॥
असकृत् प्रजपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिर्भवेत्ततः ।
कविर्वाग्मी धनी दक्षः सर्वयोषित्प्रियः सुखी ॥ ७७ ॥

उत्तम साधक श्मशान में महाचीन वृक्ष (=कुलस्त्री) की लपटी हुई लता की मज्जा से ब्राह्मण पुत्र में एक सहस्र बार देवी की भावना कर अर्चना करे । इस प्रकार यदि निरन्तर करे और प्रयोग से भागे नहीं तो वह राज्य प्राप्त कर लेता है । अपने शरीर से रक्त निकाल कर उससे बिल्वपत्र को आसक्त कर श्मशान में देवी का पूजन करे तो बृहस्पति के समान बन जाता है । श्मशान पर सोते हुये,

अथवा पवित्रतापूर्वक शवासन पर बैठकर बहुत संख्या में जप करे, तो उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वह साधक कवि, वाग्मी, धनी, दक्ष, सर्वयोषित् प्रिय एवं सुखी बन जाता है ॥ ७४-७७ ॥

जायते नात्र सन्देहश्चण्डिकासाधकः स्वयम् ।
क्षुद्रविट्चौरभूतानि देवीं ध्यात्वा विनाशयेत् ॥ ७८ ॥

ऐसा व्यक्ति चण्डिका का साधक बन जाता है इसमें सन्देह नहीं। वह स्वयं देवी का ध्यान कर क्षुद्र, धूर्त्त, चौर एवं भूतों को विनष्ट कर देता है ॥ ७८ ॥

नाभिमात्रजले स्थित्वा देवीमर्कगतां स्मरन् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा साधको लभते श्रियम् ॥ ७९ ॥

नाभि मात्र जल में स्थित होकर सूर्य में भगवती का ध्यान कर एक सौ आठ बार जप करने से साधक महालक्ष्मी प्राप्त करता है ॥ ७९ ॥

रेतोयुक्तेन पुष्पेण अर्कस्येह सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्च्य देवीन्तु सर्वसिद्धिं तु विन्दति ॥ ८० ॥

रेतः (वीर्य) मिश्रित मन्दार पुष्पों से श्मशान में देवी के अर्चन से समस्त सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ८० ॥

धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ।
सुखी स्यान्नात्र सन्देहो महाकालवचो यथा ॥ ८१ ॥

वह धनवान्, बलवान्, वाग्मी, सर्वस्त्रीप्रिय और सुखी हो जाता है ऐसा महाकाल का वचन है इसमें सन्देह न करे ॥ ८१ ॥

च्छन् यो तं शा ग ने षि श्म येत् न्त्रं क गे ल्प म प्र भ ।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलंकृताम् ॥ ८२ ॥
त जां कु गे वीं पू प्र भ जवापुष्पैर्विशेषतः ।
मन्त्रं प्रोच्चारयेत्तत्र ने ग वे गे श लिं प्र भ ॥ ८३ ॥
कुण्डगोलोद्भवैः पुष्पैः स्वयम्भूकुसुमेन च ।
पूजयित्वा तत्र देवीं यो वै ध्यायेच्च देवताम् ॥ ८४ ॥
तत्र गत्वा लभेत् सिद्धिं यदि वा न भयं व्रजेत् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयित्वा यथाविधि ॥ ८५ ॥
अर्घ्यं दत्त्वा ततः पश्चात् जवापुष्पञ्च वर्वराम् ।
चन्दनञ्चाऽर्ककुसुमं तथा श्वेतापराजिताम् ॥ ८६ ॥
अर्घ्यं दत्त्वा विशेषेण देवीमर्कगतां स्मरन् ।

अष्टोत्तरशतं जाप्यं यावज्जीवनसंख्यया ॥ ८७ ॥
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।
प्रातः स्नानरतो मन्त्रीं नित्यमष्टोत्तरं शतम् ॥ ८८ ॥
जपेत्तस्याऽऽशु सिध्यन्ति धनधान्यादिसम्पदः ।
अनेन विधिना मन्त्री ग्रहक्षुद्ररिपून् जयेत् ॥ ८९ ॥

'श्मशाने योषितं गच्छन् भगे मन्त्रं प्रकल्पयेत्'—शमशान में स्त्री समागम करते हुए भग में मन्त्र की भावना से कुल नायिका के शरीर में रक्त चन्दन का अनुलेप करे और उसे रक्त पुष्पों से अलंकृत करे तथा 'भगे पूजां प्रकुर्वीत'—मन्त्र का उच्चारण कर जपा पुष्पों से भग की पूजा करे । 'भगे लिङ्ग प्रवेशने'—भग में लिङ्ग का प्रवेश करते हुए कुण्डगोल तथा स्वयम्भू कुसुमों से पूजा कर उसमें जो साधक अपनी इष्ट देवता देवी का ध्यान करे तो वह उसी स्थान में सिद्धि प्राप्त कर लेता है । यदि वह भयभीत न हो तो अष्टमी एवं चतुर्दशी को यथाविधि देवी का पूजन कर अर्घ्य प्रदान करे । तदनन्तर जवा पुष्प, बर्बरा, चन्दन, मन्दार पुष्प तथा श्वेत अपराजिता का पुष्प युक्त अर्घ्य देकर सूर्य में भगवती का ध्यान करते हुये; एक-सौ आठ की संख्या में यावज्जीवन जप करे, तो उसे आज्ञा सिद्धि प्राप्त हो जाती है; यह सत्य है, यह सत्य है; इसमें संशय नहीं । मन्त्रज्ञ साधक प्रातः स्नान कर नित्य एक-सौ आठ की संख्या में जप करे, तो उसे शीघ्र ही धन-धान्यादि सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है । इस विधि से वह ग्रहों और क्षुद्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ८२-८९ ॥

अथोच्यते पदाघातं देव्यास्तन्त्रविधानतः ।
स्वकल्पोक्तं विधायाऽथ साधको विजितेन्द्रियः ॥ ९० ॥
सर्वद्रव्यसमायुक्तो देवताध्यानतत्परः ।
विवादे जपकाले वा यत्किञ्चित् कुलसाधने ॥ ९१ ॥
तत्रादौ चक्रमालिख्य सिन्दूररजसाऽऽप्लुतम् ।
रात्रौ प्रपूजयेद् गेहे स्थित्वा पदात्मिकां पराम् ॥ ९२ ॥
जप्त्वाऽयुतप्रमाणेन तथा चामन्त्रयेत्ततः ।
एहि मातर्जगद्धात्रि सञ्चारे चरणाकुले ॥ ९३ ॥
शुभाशुभमये रात्रे कथयस्व जगत्पते ।
एवं निमन्त्रयित्वा तु सप्तवारान् सुसंयतः ॥ ९४ ॥
भक्तिभावेन सम्पूज्य दत्त्वा च बलिमुत्तमम् ।
ततो वीक्षेच्चक्रराजं साधकः स्थिरमानसः ॥ ९५ ॥

पदाघात विधान—अब देवी तन्त्र के विधान के अनुसार पदाघात की विधि

कहता हूँ । साधक जितेन्द्रिय हो, अपने सम्प्रदायानुसार क्रिया कर, सभी द्रव्यों से समन्वित देवता का ध्यान करते हुये, विवाद में, जपकाल में, यत् किञ्चित् कुल मन्त्र के साधन में, सिन्दूर के रज से चक्र लिखे और रात्रि में अपने घर में स्थित हो उसमें पदात्मिका परा भगवती का पूजन करे । दश हजार की संख्या में जप कर उसमें 'एहि मातर......जगत्पते' पर्यन्त श्लोक मन्त्र सात बार पढ़कर सुसंयत हो; देवी का आमन्त्रण करे और भक्तिभाव से पूजा करे तथा उत्तम विधि से बलि देवे । फिर साधक स्थिर चित्त हो चक्रराज का दर्शन करे ॥ ९०-९५ ॥

पदाघातं समालोक्य ज्ञातव्यं तच्छुभाशुभम् ।
साधकाभिमुखं चिह्नं उभयोर्यदि चैकतः ॥ ९६ ॥
सव्यस्य दक्षिणस्यापि शुभं भवति निश्चितम् ।
विपरीतफलं दद्याद्विपरीते सुनिश्चितम् ॥ ९७ ॥

उसमें पदाघात देखकर शुभाशुभ फल का विचार करे । यदि साधक के सामने दाहिने और बायें दोनों पदों का आघात चिन्ह एक-सा दिखाई पड़े तो निश्चय ही शुभ होगा । यदि विपरीत दिखाई पड़े तो उसका फल भी विपरीत ही होगा ॥ ९६-९७ ॥

पदमध्ये शुभा रेखा शुभदा शुभयोगतः ।
विपरीतफलं तत्तु विपरीतञ्च निश्चितम् ॥ ९८ ॥

पद के मध्य में, शुभ योग से शुभदा रेखा दिखलाई पड़े तो शुभ समझना चाहिये । विपरीत दिखलाई पड़ने पर उसका विपरीत फल होता है ॥ ९८ ॥

क्षुद्रं क्षुद्रफलं प्रोक्तं दीर्घं दीर्घफलप्रदम् ।
अथातः पादुकामन्त्रं कथयामि समासतः ॥ ९९ ॥

क्षुद्र रेखा दिखाई पड़े तो क्षुद्रफल तथा दीर्घ रेखा दिखाई पड़े तो उसका दीर्घफल समझना चाहिये । अब संक्षेप में पादुका मन्त्र कहता हूँ ॥ ९९ ॥

पादुकां पूजयाम्यद्य आद्यन्तमण्डितां वदेत् ।
सर्वभूते महाशक्तिः पादाग्रे या स्थिता यतः ॥ १०० ॥
अतस्तौ चरणौ पूज्यौ सर्वत्र भूतिमिच्छता ।
आद्यन्तरहिता देवी पादुकादिस्वरूपिणी ॥ १०१ ॥
योषितां योनिमास्थाय सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।
स्वतन्त्रेयं महाविद्या न प्रकाश्या कदाचन ॥ १०२ ॥

पादुका मन्त्र—'पादुकां पूजयाम्यद्य आद्यन्तमण्डिताम्'—इतना कहकर फिर 'सर्वभूते महाशक्ति पादाग्रे या स्थिता यतः' इतना कहकर कल्याण चाहने वाला

साधक वहाँ विद्यमान दोनों चरणों की पूजा करे । वह देवी आद्यन्त से रहित पादुकादि स्वरूप वाली है । वह स्त्रियों की योनि में स्थित होकर महासिद्धि प्रदान करने वाली है । यह पादुका महाविद्या (=पादुकां पूजयामि) स्वतन्त्र है । इसे कदापि प्रकाशित न करे ॥ १००-१०२ ॥

संहारक्रमयोगेन देवी संहाररूपिणी ।
सृष्टिक्रमेण देवेशीमहासृष्टिप्रवर्त्तिनी ॥ १०३ ॥
स्थितिक्रमेण सा देवी स्थितितत्त्वप्रवर्त्तिनी ।
ब्रह्मविष्णुस्वरूपा सा महादेवस्वरूपिणी ॥ १०४ ॥
आद्ये मधुमतीसिद्धिः संहारक्रमयोगतः ।
अन्ते क्षेत्रेण सिद्धिः स्याच्छेषे गन्धर्वयोनयः ॥ १०५ ॥

पूजाक्रम विधान—संहारक्रम से पूजा करने पर यह देवी संहाररूपिणी है । सृष्टि क्रम से पूजा करने पर यह महासृष्टिप्रवर्त्तिनी है और स्थिति क्रम से पूजा करने पर यह स्थितितत्त्वप्रवर्त्तिनी है । यह महाविष्णुस्वरूपा और महादेवस्वरूपिणी है । संहारक्रम के योग से पूजा करने पर मधुमती विद्या की सिद्धि हो जाती है । अन्त क्रम से पूजा करने पर क्षेत्र सिद्धि होती है और शेष से पूजा करने पर गन्धर्व योनि मिलती है ॥ १०३-१०५ ॥

समुदाये महामोक्षं ददाति परमा कला ।
पादुका परमा विद्या सप्ताक्षरसमन्विता ॥ १०६ ॥
एतां विना महाविद्या नैव सर्वफलप्रदा ।
कथितेयं महाविद्या यत्नाद् गोप्या सदैव हि ॥ १०७ ॥

यह परमा कला संहार, सृष्टि और स्थिति रूप समुदाय से पूजा करने पर महा मोक्ष प्रदान करती है । यह पादुका सर्वोत्कृष्ट महाविद्या है जो सात अक्षरों वाली है (पादुकां पूजयामि) । इसके पूजन के बिना महाविद्या पूजन करने पर भी सम्पूर्ण फल प्रदान नहीं करती । इस पादुका महाविद्या के विषय में हमने कह दिया । इसे सदैव गोपनीय रखे ॥ १०६-१०७ ॥

लोकस्नेहादिदानीं तु कथितञ्च सुदुर्लभम् ।
एतत्तन्त्रञ्च मन्त्रञ्च प्रयोगञ्च तथा परम् ॥ १०८ ॥
अतिभक्ताय पुत्राय प्राणदाय न दर्शयेत् ।
अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम् ॥ १०९ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
अष्टादशोल्लासः ॥ १८ ॥

इस अत्यन्त दुर्लभ महाविद्या को हमने लोगों पर स्नेह होने के कारण कहा। इस तन्त्रमन्त्र प्रयोग तथा अन्य बातों को जो भक्त न हो, प्राण देने वाला पुत्र न हो उसे प्रदर्शित न करे। अन्यथा यमराज के घर निश्चित रूप से जाना पड़ता है।

विमर्श—बिना गुरु से प्रयोग जाने हुए यदि इस पुस्तक से किसी अदीक्षितजन द्वारा प्रयोग किया जायगा तो वह निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त होगा या पागल हो जायेगा ॥ १०८-१०९ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के अष्टादश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

एकोनविंश उल्लासः

...❧❀❧...

षट्कर्मविधानम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षट्कर्मविधिमुत्तमम् ।
शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने ततः ॥ १ ॥
मारणं कर्मषट्कञ्च तेषां लक्षणमुच्यते ।

शान्त्यादिषट्कर्मलक्षणम्

रोगकृत्या ग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता ॥ २ ॥
वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदाहृतम् ।
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं तदुदाहृतम् ॥ ३ ॥

अब इसके बाद उत्तम षट्कर्म विधि का वर्णन करता हूँ । शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन और मारण—ये षट् कर्म कहे गये हैं । सर्वप्रथम इनका लक्षण कहता हूँ । रोग, कृत्या तथा ग्रहादि को नष्ट करना शान्ति है । सभी लोगों को अपना विधेय (आज्ञाकारित्व) बनाना वश्य कहा जाता है । सबकी प्रवृत्ति को रोक देना स्तम्भन है ॥ १-३ ॥

स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ।
सद्विद्यासिद्धिकालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥ ४ ॥

परस्पर सुहृद लोगों में विद्वेष उत्पन्न करना विद्वेषण है । अपने देश से अपने लोगों से मन को खींच लेना उच्चाटन कहा गया है । प्राणियों के प्राण का अपहरण मारण कहा गया है । उसके लिये सद्विद्या तथा सिद्धि के उत्तम काल को अच्छी तरह समझ कर कार्यारम्भ करना चाहिये ॥ ४ ॥

पूर्वोक्तबलिमन्त्रेण बलिं दद्याच्चतुष्पथे ।
रात्रावेव प्रयोगादौ शिवायै च सुसिद्धये ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त बलि मन्त्र से चतुष्पथ पर बलि प्रदान करे । अपने कल्याण के लिये तथा मन्त्र सिद्धि के लिये रात्रि में ही प्रयोगादि का विधान है ॥ ५ ॥

तत्तत्कर्मसु मन्त्रयन्त्रकालनिर्णयः

दिक्कालदेवतादींश्च(ज्ञात्वा)विद्वेषे व्योम कीर्त्तितम् ।
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूयोऽग्निर्मारणे मतः ॥ ६ ॥

इन षट्कर्मों के देश, काल और देवता का ज्ञान कर कार्यारम्भ करना चाहिये । शान्ति कर्म के लिये जल, वश्य में अग्नि, स्तम्भन के लिये पृथ्वी और विद्वेष के लिये आकाश प्रशस्त कहे गये हैं । उच्चाटन के लिये वायु तथा मारण के लिये अग्नि प्रशस्त कहा गया है ॥ ६-७ ॥

स्वच्छं वियन् मरुत् कृष्णो रक्तोऽग्निविशदं पयः ।
पीता भूमिः पञ्चभूत रूपमेतदुदीरितम् ॥ ७ ॥
वृत्तं दिवस्तत् षड्विन्दुलाञ्छितं मातरिश्वनः ।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वह्नेरर्धेन्दुसंयुतम् ॥ ८ ॥
अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्त्रं सवज्रकम् ।
तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः ॥ ९ ॥

आकाश का वर्ण स्वच्छ है । वायु का वर्ण काला है । अग्नि का वर्ण लाल है । जल का स्वच्छ वर्ण है और भूमि का वर्ण पीत है । यहाँ तक हमने पञ्चभूतों के स्वरूप का वर्णन बतलाया । आकाश गोलाकार है । षड्विन्दु युक्त वृत्त वायु है। स्वस्तिक युक्त त्रिकोण, अग्नि, कमल युक्त अर्धचन्द्र के समान जल का आकार तथा कठोरतायुक्त चौकोर एवं समतल यह भूमि का आकार है । तत्तद्भूतों के उदयकाल में तत्तन्मण्डलों की रचना करनी चाहिये; तत्त्वज्ञ बुद्धिमानों ने ऐसा बतलाया है ॥ ८-१० ॥

वर्णाः स्वैरञ्जितान्याहुः स्वस्वनामावृतान्यपि ।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा भूतगुणाः स्मृताः ॥ १० ॥

पञ्चाशत् वर्ण, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी स्वरूप ही है । उनका वर्ण भी इन्हीं भूतों के समान समझना चाहिये (द्र. भूतलिपि प्रकरण; शारदातिलक २.११-१२) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँचों भूतों के गुण बतलाये गये हैं ॥ १० ॥

भूतानामुदयं द्वयोरपि बुधः संलक्षयेत् पक्षयो-
स्तत्राधो वसुधोदयं निशितधीर्घ्राणस्य दण्डस्पृशि ।
देवेधःस्पृशि वारिणो हुतवहस्योर्ध्वं गते तूदयं
तिर्यक् संस्पृशि मारुतस्य परितः स्पृष्टे मरुद्वर्त्मनः ॥ ११ ॥
वश्यस्तम्भनयोः प्रशस्त उदयो भूमेर्जलस्योदयः

शस्तः शान्तिकपौष्टिकादिषु शुभेष्वहनाय वह्नेः पुनः ।
शत्रोर्मारणदारणादिकरणेषूच्चाटनोच्छ्वासया-
र्वायोः शान्तिकनिर्विषीकरणयोर्व्योम्नो हि तश्चोदयः ॥ १२ ॥

१. बुद्धिमान् साधक दोनों नासापुटों से पञ्चभूतों का उदय इस प्रकार समझे—जब श्वास की गति नाक के मध्य से सीधे दण्डे की तरह नीचे की ओर हो तब पृथ्वी तत्त्व का उदय समझना चाहिए । २. जल एवं पावक की गति ऊर्ध्व होती है । अतः श्वास की गति ऊर्ध्व होने पर जल और अग्नि तत्त्व का उदय समझना चाहिये । ३. वायु की गति तिरछी होती है । अतः श्वास की गति तिरछी चलने पर वायु तत्त्व का उदय समझना चाहिये । ४. आकाश तत्त्व के उदयकाल में मध्य गति होती है । मन्त्रवेत्ता पुरुष भूमितत्त्व के उदय में स्तम्भन तथा वश्य कार्य करे । जल तत्त्व के उदय में शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म करना चाहिए । अग्नि तत्त्व के उदय में मारणादि प्रयोग करे । वायुतत्त्व के उदय में शत्रु के उच्चाटन की क्रिया करनी चाहिए । आकाश तत्त्व के उदय में शान्तिक एवं निर्विषीकरण की प्रक्रिया करे ॥ ११-१२.॥

तत्तद्भूतोदये सम्यक् तत्तन्मण्डलसंयुते ।
यन्त्रं कुर्यात् रोचनया गुण्डिकया हरिद्रया ॥ १३ ॥
गृहधूमचिताङ्गारविषैरथ क्रमेण तु ।
शीतांशुसलिलक्षौणीव्योमवायुहविर्भुजाम् ॥ १४ ॥
वर्णाः स्युर्मन्त्रबीजानि षट्कर्मसु यथाक्रमम् ।
वश्यादौ लेखनी दूर्वा आकर्षे शिखिपुच्छिका ॥ १५ ॥
विद्वेषोच्चाटने काकपक्षेणापि च मारणम् ।

तत्तद्भूतों के उदय काल में तत्तद् मण्डलों की रचना कर रोचना, गुण्डिका, हरिद्रा, गृहधूम, चिताङ्गार और विष से क्रमशः तत्तन्मण्डल में यन्त्र बनाना चाहिये । उपर्युक्त षट्कर्मों में चन्द्रमा, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु तथा अग्नि के तत्तद् वर्ण तथा बीजों का क्रमशः उपयोग करना चाहिये (सोलह स्वर और ठ चन्द्रमा के वर्ण एवं बीज हैं) इनका शान्तिकर्म में उपयोग करे । इसी प्रकार अन्य तत्त्वों के वर्ण और बीज को समझना चाहिये (द्र. शारदातिलक २.११-१२)। वशीकरण के लिये दूर्वा की लेखनी, आकर्षण में मोर के पुच्छ की, विद्वेष एवं मारण और उच्चाटन में काकपक्ष की लेखनी बनानी चाहिये ॥ १३-१६ ॥

षट्कर्मदेवतानिरूपणम्

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथाक्रमात् ॥ १६ ॥
षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षट्कर्मकाल निर्णयम् ॥ १७ ॥

रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा और काली—ये क्रमशः शान्त्यादि षट्कर्मों की देवता हैं । षट्कर्म के आरम्भ में कर्म के उन-उन देवताओं का पूजन करना चाहिये । अब षट्कर्म के काल का निर्णय कहता हूँ ॥ १६-१७ ॥

षट्कर्मकालनिर्णयः

पञ्चमी च द्वितीया च चतुर्थी सप्तमी तथा ।
बुधेज्यरविसंयुक्ता शान्तिकर्मणि पूजिता ॥ १८ ॥

षट्कर्म का काल—शान्ति के कर्म के लिये पञ्चमी, द्वितीया, चतुर्थी और सप्तमी तिथियाँ, बुध, बृहस्पति या रविवार से संयुक्त होने पर शान्ति कर्म में श्रेष्ठ कही गई हैं ॥ १८ ॥

गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी ।
नवमी पौष्टिके शस्ता अष्टमी नवमी तथा ॥ १९ ॥
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिने तथा ।
आकर्षणे त्वमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा ॥ २० ॥
पौर्णमासी मन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि ।
कृष्णा चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारकाः ॥ २१ ॥
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे च विशेषतः ।
चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा त्वमावास्या तथैव च ॥ २२ ॥
मन्दारार्कदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ।
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा ॥ २३ ॥
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि ।
शुभग्रहोदये कुर्यात् शुभानि च शुभोदये ॥ २४ ॥

गुरुवार और चन्द्रवार से युक्त षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी और नवमी पौष्टिक कर्म के लिये प्रशस्त है । अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, रविवार और शुक्र दिन में होने पर आकर्षण के लिये उत्तम कही गई है । अमावस्या, नवमी, प्रतिपदा, पौर्णमासी तिथियाँ यदि शनिवार और रविवार के दिन हों तब विद्वेष कर्म के लिये उचित हैं । कृष्णा चतुर्दशी, कृष्णा अष्टमी यदि शनिवार को पड़े तब उच्चाटन के लिये विशेष कर प्रदोष काल प्रशस्त कहे गये हैं । कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या शनिवार एवं रविवार के दिन होने पर मारण कर्म में प्रशस्त कही गई है । बुधवार, सोमवार दिन में, पञ्चमी, दशमी, पौर्णमासी तिथि पड़े, तो स्तम्भन के लिये प्रशस्त है । शुभ ग्रह के उदय होने पर ही शुभ कर्म

करना चाहिये ॥ १९-२४ ॥

रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम् ।
ईशश्चन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिवाय्वग्नीनां दिशो मताः ॥ २५ ॥

रौद्रकर्म रिक्ता युक्त रविवार के दिन और मृत्युयोग में मारण कर्म करे । इन छह कर्मों के लिये क्रमशः ईशान, उत्तर, पूर्व, निर्ऋति, वायव्य और आग्नेय दिशायें क्रमशः कही गई हैं ॥ २५ ॥

सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात् ।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने ॥ २६ ॥
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्याशरद्धेमन्तशैशिराः ।
हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि ॥ २७ ॥
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः ।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेयः शरन्मारण कर्मणि ॥ २८ ॥

प्रतिदिन सूर्योदय से आरम्भ कर दश दश घटी पर्यन्त वसन्तादि छह ऋतुयें होती हैं । इनके नाम बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर हैं । शान्ति कर्म में हेमन्त, वश्यकर्म के लिये बसन्त, स्तम्भन के लिये शिशिर, विद्वेष के लिये ग्रीष्म, उच्चाटन के लिये वर्षा और मारण कर्म के लिये शरत्काल प्रशस्त कहा गया है ॥ २६-२८ ॥

षट्कर्मसु आसनादिनिर्णयः

गोमेषयोः शान्तिके च व्याघ्रस्य खड्गिनोऽपि वा ।
वश्ये च स्तम्भने शस्ता गजचर्मणि द्वेषके ॥ २९ ॥

षट्कर्म में प्रयुक्त आसन—शान्ति कर्म में गौ और मेष के चर्म का आसन होना चाहिए । वश्यकर्म में व्याघ्र का, स्तम्भन में गैंडे का और द्वेष में गज चर्म का आसन प्रशस्त है ॥ २९ ॥

उच्चाटने भल्लूकस्य मेषस्य मारणे तथा ।
महिषाश्वयोर्वा चर्मणि साधयेत् साधकोत्तमः ॥ ३० ॥

उच्चाटन में भल्लूक के चर्म का, मारण में मेष का, अथवा महिष (भैंस) के चर्म का या अश्व के चर्म का आसन उपयोग में लावे ॥ ३० ॥

पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः ।
वज्रं भद्रकमित्याहुरासनानि मनीषिणः ॥ ३१ ॥

मनीषियों ने षट्कर्म में पद्मासन, स्वास्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन,

वज्रासन और भद्रासन का उपयोग बताया है ॥ ३१ ॥

अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ।
ऊर्वोरुपरि वीरेन्द्रः कृत्वा पादतले उभे ॥ ३२ ॥
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वेषामेव पूजितम् ।
पूजाजपविधानेन अङ्गुष्ठं धारणञ्चरेत् ॥ ३३ ॥

१. पद्मासन—दोनों जाँघों पर दोनों पैर रखकर दोनों हाथों को पीठ की ओर उलटे क्रम से घुमाकर पैर के दोनों अङ्गूठों को हाथ से बाँध लेना पद्मासन कहा गया है । यह आसन सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोपकारक बताया गया है इसमें पूजा एवं जप के विधान से अङ्गूठे को पकड़ना चाहिए ॥ ३२-३३ ॥

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ॥ ३४ ॥

२. स्वस्तिकासन—शरीर को सीधे रखकर अपने दोनों पादतलों को दोनों जानु और जाँघ के बीच में स्थापित कर सुखपूर्वक बैठे तो उसे स्वस्तिकासन कहा जाता है ॥ ३४ ॥

सीवन्यामात्मनः पार्श्वे गुल्फौ निःक्षिप्य पादयोः ।
एतद्वा स्वस्तिकं प्रोक्तं सव्ये न्यस्येतरं करम् ॥ ३५ ॥

अपने पैर के दोनों गुल्फों को सीवनी के पार्श्व में स्थापित करे बायें पर दाहिना हाथ स्थापित करे तो इसे भी स्वास्तिकासन कहा जाता है ॥ ३५ ॥

पद्मासनं समास्थाय जानूर्वोरन्तरे करौ ।
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य रोमस्थः कुक्कुटासनः ॥ ३६ ॥

३. कुक्कुटासन—पद्मासन लगाकर जानु और ऊरू के बीच में दोनों हाथ नीचे कर उसे पृथ्वी में स्थापित कर विलोम स्थित हो जावे तो वह कुक्कुटासन कहा जाता है ॥ ३६ ॥

गुल्फौ च वृषणस्याधःसीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलः ॥ ३७ ॥
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविषापहम् ।

४. भद्रासन—दोनों गुल्फों को सीवनी के पास अण्डकोश के नीचे स्थापित करे । दोनों हाथों से दृढ़तापूर्वक पार्श्व और पैर को पकड़ कर स्थिर रहे तो उसे भद्रासन कहा जाता है । यह भद्रासन सम्पूर्ण व्याधियों एवं विषों को विनष्ट कर देता है ॥ ३७ ॥

ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यम्मुखाङ्गुलौ ॥ ३८ ॥
करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ।
स्वस्वकल्पविधानेन पूजादींश्च समाचरेत् ॥ ३९ ॥

५. वज्रासन—दोनों ऊरू स्थान में दोनों पैर रखकर दोनों जानुओं पर हाथ की अङ्गुलियों को प्रत्यङ्मुख कर रखे इसे वज्रासन कहा जाता है । इस प्रकार अपने-अपने सम्प्रदायानुसार अनुकूल आसन पर बैठकर साधक पूजादि कार्य सम्पन्न करे ॥ ३८-३९ ॥

मुद्राविधानम्

षण्मुद्राः क्रमशो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः ।
मुषलाशनिखड्गाद्याः शान्तिकादिषु कर्मसु ॥ ४० ॥

मुद्रा विधान—अब शान्त्यादि षट्कर्मों में विहित् मुद्रा कहते हैं—१. पद्म, २. पाश, ३. गदा, ४. मुशल, ५. अशनि और ६. खड्ग—ये छह मुद्रायें शान्तिकादि कर्म में कही गई हैं ॥ ४० ॥

हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सन्नतावुन्नताङ्गुलौ ।
तलान्तमिलिताङ्गुष्ठौ कृत्वैषा पद्ममुद्रिका ॥ ४१ ॥

१. पद्म मुद्रा—दोनों हाथों को सामने रखकर अङ्गुलियों को कुछ झुकाकर ऊँचें उठाये रखे और दोनों अङ्गूठे के तलों को मिलाये रखे तो ऐसा करने से पद्म मुद्रा बन जाती है ॥ ४१ ॥

वाममुष्टिस्तु तर्जन्यां दक्षमुष्टिस्तु तर्जनीम् ।
संयोज्याङ्गुष्ठकाग्राभ्यां तर्जन्यग्रे क्षिपेत्ततः ॥ ४२ ॥
एषा पाशाह्वया मुद्रा विद्वद्भिः परिकीर्त्तिता ।

२. पाश मुद्रा—बाये मुष्टि की तर्जनी में दाहिने हाथ की मुट्ठी की तर्जनी को आपस में मिलाकर उसे दोनों अङ्गुष्ठ के अग्रभाग से तर्जनी पर स्थापित करे तो विद्वानों ने उसे पाशमुद्रा कहा है ॥ ४२-४३ ॥

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ कृत्वा च ग्रथिताङ्गुलौ ॥ ४३ ॥
अङ्गुल्यौ मध्यमे भूयः संलग्ने च प्रसारिते ।
गदामुद्रेयमाख्याता विद्वद्भिः परिकीर्त्तिता ॥ ४४ ॥

३. गदा मुद्रा—दोनों हाथ की अङ्गुलियों को एक दूसरे में ग्रथित कर उन्हें मिला देवे फिर दो अङ्गुलियों को मध्यमा में संलग्न कर फैला देवे तो विद्वानों ने इसे गदामुद्रा कहा है ॥ ४३-४४ ॥

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान्मुषलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ ४५ ॥

४. मुषल मुद्रा—दोनों हाथ से मुट्ठी बनाकर बायीं मुट्ठी पर दाहिनी मुट्ठी स्थापित करे तो मुषल मुद्रा बन जाती है । यह मुद्रा साधक के सभी विघ्नों का विनाश करती है ॥ ४५ ॥

अनामिकाद्वयं वेष्ट्य चाकुञ्च्य तर्जनीद्वयम् ।
कनिष्ठां मध्यमां चैव ज्येष्ठाङ्गुष्ठेन च क्रमात् ॥ ४६ ॥
वज्रमुद्रेयमाख्याता विद्वद्भिः परिकीर्त्तिता ।

५. वज्र मुद्रा—दोनों हाथ की अनामिका अङ्गुलियों को वेष्टित कर कनिष्ठा एवं मध्यमा को भी ज्येष्ठ अङ्गुष्ठ के साथ दोनों तर्जनियों को सङ्कुचित करे तो वह वज्रमुद्रा बन जाती है ॥ ४६-४७ ॥

कनिष्ठानामिकां बद्ध्वा साङ्गुष्ठेनैव संयुता ॥ ४७ ॥
शेषाङ्गुली तु प्रसृते संस्पृष्टे खड्गमुद्रिका ।

६. खड्ग मुद्रा—कनिष्ठा अनामिका को एक-दूसरे में बाँधकर उसे अङ्गुष्ठ के साथ संयुक्त करे और शेष अङ्गुलियों को एक में मिलाकर फैला देवे तो खड्ग मुद्रा बन जाती है ॥ ४७-४८ ॥

सितरक्तपीतमिश्रा कृष्णधूम्रा प्रकीर्त्तिताः ॥ ४८ ॥
षट्कर्मदेवतावर्णाः कथितास्तु यथाक्रमात् ।
यद्वर्णदेवता यत्र तद्वर्णञ्चोपहारणम् ॥ ४९ ॥

षट्कर्म के देवता के वर्ण—इन षट्कर्मों के देवता क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत, मिश्रित, काली और धूम्र वर्ण वाली कही गई हैं । हमनें षट्कर्मों के देवताओं का वर्णन क्रमशः कह दिया । जिन-जिन वर्णों के देवता जहाँ कहे गये हैं । इन्हें उन-उन वर्णों के उपहार (नैवेद्य) प्रस्तुत करना चाहिये ॥ ४८-४९ ॥

पुष्पं चैव तथा ज्ञेयं साधकानां सुसिद्धये ।
मन्त्रेणान्तरितान् कुर्यान्मारणानि यथाविधि ॥ ५० ॥

उन-उन वर्णों के पुष्प समर्पित करना चाहिये यह हमने साधकों के लिये कहा है । मारणादि कर्मों में इनका प्रयोग मन्त्र द्वारा आवृत कर विधानानुसार करना चाहिए ॥ ५० ॥

षट्कर्मसु विन्यासाः

ग्रथनञ्च विदर्भश्च सम्पुटं रोधनं तथा ।

योगः पल्लव इत्येते विन्यासाः षट्सु कर्मसु ॥ ५१ ॥

ग्रथनम्

योगास्त्रान्तरितान् कृत्वा साध्यवर्णान् यथाविधि ।
ग्रथनं तद्विजानीयात् प्रशस्तं शान्तिकर्मणि ॥ ५२ ॥

षट्कर्म विन्यास—ग्रथन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग और पल्लव—ये षट्कर्मों के विन्यास हैं ॥ ५१ ॥

१. ग्रथन विन्यास—मन्त्र का एक अक्षर उसके बाद साध्य नाम का एक अक्षर इसके बाद पुनः मन्त्राक्षर पुनः साध्य नामाक्षर इस प्रकार लिखने की रीति को ग्रथन विन्यास कहा जाता है जो शान्ति कर्म में प्रशस्त हैं ॥ ५२ ॥

विदर्भः

मन्त्रार्णद्वयमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।
विदर्भ एव विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि ॥ ५३ ॥

२. विदर्भ विन्यास—दो दो नामाक्षरों के बीच में साध्य के नाम का एक एक अक्षर लिखे तो इस प्रक्रिया को विदर्भ कहते हैं । इसका प्रयोग वश्य कर्म में करना चाहिये ॥ ५३ ॥

सम्पुटः

आदावन्ते च मन्त्रस्यस्यान्न्यासः सम्पुटः स्मृतः ।
एष स्यात् स्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः ॥ ५४ ॥

३. सम्पुट विन्यास—साध्य के नाम के आदि में मन्त्र और पुनः उसके अन्त में मन्त्र लिखे तो इस प्रक्रिया को सम्पुट कहते हैं । मन्त्रवेत्ताओं ने इसका प्रयोग स्तम्भन कार्य के लिये कहा है ॥ ५४ ॥

रोधनम्, योगः पल्लवः

नाम्न आद्यन्त मध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं मतम् ।
विद्वेषस्य विधाने तु प्रशस्तो न्यास उत्तमः ॥ ५५ ॥
मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योग प्रोच्चाटने मतः ।
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रः पल्लवो मारणे स्मृतः ॥ ५६ ॥

४. रोधन विन्यास—साध्य नाम के आदि में, मध्य में तथा अन्त में मन्त्र लिखे तो इसे रोधन कहा जाता है । इसका प्रयोग विद्वेष विधि में प्रशस्त कहा गया है ।

५. योग विन्यास—मन्त्र के अन्त में साध्यनाम लिखे तो योगविन्यास होता

है । इसका प्रयोग प्रोच्चाटन में किया जाता है ।

६. **पल्लव विन्यास**—नाम के अन्त में मन्त्र लिखा जाय तो उसे पल्लव कहते हैं इसका प्रयोग मारण में किया जाता है ॥ ५५-५६ ॥

षट्कर्मसु मालाविधानम्

मुक्ताभिः स्फाटिकैर्वापि समायोज्याऽक्षसूत्रकैः ।
शान्तिकर्मणि मिश्रं वा जपेन्मन्त्रस्य सिद्धये ॥ ५७ ॥
प्रवालरक्तमणिभिर्वश्यपौष्टिकयोर्जपेत् ।
मन्त्रतुल्याङ्गमणिभिर्जपेदाकृष्टकर्मणि ॥ ५८ ॥
साध्यकेशसूत्रप्रोतैस्तुरङ्गदशनोद्भवैः ।
अक्षमालां समालोक्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ॥ ५९ ॥
मृतस्य युद्धशून्यस्य दशनैर्गर्दभस्य च ।
कृत्वाऽक्षमालां जप्तव्यं शत्रुमारणमिच्छता ॥ ६० ॥
सामान्या कथिता माला विशेषाः पूर्वसूचिताः ।

षट्कर्मों में मालाविधान—साधक मन्त्र सिद्धि के लिये मुक्ता, या स्फटिक, या कवलगट्टे की माला अथवा मिश्रित माला से शान्ति कर्म में जप कार्य सम्पादन करे । वश्य और पौष्टिक कार्य में मूँगे अथवा रक्तमणि की माला तथा आकर्षण में जितने मन्त्र के अक्षर हैं उतने बीज वाले मणि की माला से जप करे । विद्वेष और उच्चाटन में साध्य के केश के सूत्रों में घोड़े के दाँत को गूँथकर बनी हुई माला से जप करना चाहिये । बिना युद्ध किये मरे हुये गदहे के दाँत की बनी हुई माला से शत्रु के मारने की इच्छा करने वाला साधक पुरुष जप करे । इस प्रकार हमने षट्कर्म में उपयोग की जाने वाली माला का वर्णन किया क्योंकि विशेष माला का वर्णन पूर्व में कह आये हैं ॥ ५७-६१ ॥

अनामिकामध्यभागे मालां संस्थाप्य साधकः ॥ ६१ ॥
शान्तिकस्तम्भवश्येषु वृद्धाग्रेण प्रचालयेत् ।
तर्जन्याङ्गुष्ठयोगेन विद्वेषोच्चाटयोर्जपेत् ॥ ६२ ॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन मारणे जप ईरितः ।
मातृकयाऽथवा कुर्याद् यथातन्त्रविधानतः ॥ ६३ ॥

माला में अङ्गुली प्रयोग—साधक अनामिका मध्य भाग में माला स्थापित कर वृद्ध (अङ्गूठे) से सञ्चालित करते हुये जप करे । यह प्रकार शान्ति, वश्य और स्तम्भन के लिये बतलाया गया है । तर्जनी अङ्गुष्ठ के योग से विद्वेष और उच्चाटन में जप करे । कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ के योग से मारण कार्य में जप कहा

गया है, अथवा केवल मातृका वर्णों से ही जप करे अर्थात् जैसी तन्त्र की विधि हो वैसा करे ॥ ६१-६३ ॥

सर्वेषु च प्रयोगेषु द्विसहस्रं जपश्चरेत् ।
अथवान्यप्रकारेण कथ्यते साधनं महत् ॥ ६४ ॥

उक्त सभी प्रयोगों में दो सहस्र जप करे, अथवा अन्य प्रकार से महान् साधन कहता हूँ ॥ ६४ ॥

आकर्षणविधानम्

महाचीनद्रुमे बीजं लिखित्वा कुङ्कुमेन च ।
तत्पार्श्वे साध्यमालिख्य ताडयेद् दिव्यदृष्टिभिः ॥ ६५ ॥

महाचीन (=कदम्ब) वृक्ष में कुङ्कुम से बीज लिखकर उसके समीप में साध्य नाम लिखे और तब उसे दिव्यदृष्टि से सन्ताडित करे ॥ ६५ ॥

तत्र गच्छति कामार्त्ता यत्र देशे स पूजकः ।
गोरोचनादिभिर्द्रव्यैः स्वीयचन्द्रं समालिखेत् ॥ ६६ ॥
अतीव सुन्दरीं रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां शुभाम् ।
ज्वलन्तीं नामसहितां कामबीजविदर्भिताम् ॥ ६७ ॥
चिन्तयेत्तु ततो देवीं योजनानां सहस्रतः ।
अदृष्टपूर्वा सा शक्तिः द्रुतमायाति दुर्लभा ॥ ६८ ॥

आकर्षण विधान—ऐसा करने से साध्य नायिका स्वयं कामार्त्त होकर उस पूजक साधक के पास स्वयं चली जाती है । गोरोचन आदि द्रव्यों से अपने को चन्द्रमा के रूप में लिखे । फिर उसके मध्य में उसके नाम को काम बीज (क्लीं) से विदर्भित नाम सहित काम से जलती हुई उस सुन्दरी कामिनी की प्रतिमा का निर्माण करे । साधक तदनन्तर उसका ध्यान करे । ऐसा करने से पहले कभी भी न देखी गई वह कामिनी कामार्त्त होकर सहस्रों योजन दूर से भी शीघ्र ही चली आती है ॥ ६६-६८ ॥

राजकन्याऽथ चार्वंगी भयलज्जाविवर्जिता ।
आयाति साधकं सम्यक् मन्त्रमूढा सती शुभा ॥ ६९ ॥

यदि साधक किसी महासुन्दरी राजकन्या को भी चाहता हो तो वह भी भय लज्जा से विवर्जित होकर मन्त्र के वशीभूत होकर प्रसन्नतापूर्वक उसके पास चली आती है ॥ ६९ ॥

चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेद् यदा ।

उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा ॥ ७० ॥
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् साधकोत्तमः ।
अनेन क्रमयोगेन युवा कन्दर्परूपवान् ॥ ७१ ॥
सर्वसौभाग्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः ।
सर्वरक्तोपचारस्तु मुद्रानिहितविग्रहः ॥ ७२ ॥
चक्रं प्रपूजयेद्यस्तु यस्य नामविदर्भितम् ।
स भवेद्दासवत् सत्यं धनेशो वापि वाक्पतिः ॥ ७३ ॥

साधक चक्र के मध्य में अपने को उदीयमान सहस्रों सूर्य के समान अरुण वर्ण का ध्यान करे । इसी प्रकार अपने साध्य को भी अरुण वर्ण में ध्यान करे । ऐसा करने से वह युवा काम के समान रूपवान्, सर्व सौभाग्य, सुभग, सर्व लोक को वशीभूत करने वाला और सभी रक्त भूषणादि उपचारों से युक्त तथा मुद्रा युक्त शरीर वाला हो जाता है । नाम से विदर्भित मन्त्र द्वारा जो चक्र का पूजन करता है उस नाम वाला व्यक्ति, चाहे धनेश कुबेर हो चाहे वक्पति बृहस्पति ही क्यों न हो; वह साधक के दास के समान हो जाता है ॥ ७०-७३ ।

चक्रमध्यगतं कृत्वा नाम यस्यास्तु योषितः ।
अदृष्टा वा सती वापि योगमुद्राधराऽपि वा ॥ ७४ ॥
हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम् ।
नागिनीमप्सरां वापि गन्धर्वीं वा सुराङ्गनाम् ॥ ७५ ॥
विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यां रिपुस्त्रियः ।
मदनोद्भवसन्तापां स्फुरज्जघनसुस्तनीम् ॥ ७६ ॥

साधक जिस स्त्री का नाम लिखकर चक्र के मध्य में रख देता है, चाहे वह पहले कभी अदृष्ट (न दिखाई) रही हो, चाहे योग मुद्रा धारण किये हो, तो भी उसे वह वहाँ शीघ्र ला देता है । चाहे वह यक्षिणी हो, चाहे राजकन्या हो, चाहे नाग कन्या हो, चाहे अप्सरा, या गन्धर्वी, देवाङ्गना, विद्याधरी, दिव्य रूपा, चाहे ऋषिकन्या, चाहे शत्रु की स्त्री ही क्यों न हो, वह कामबाण से जलती हुई संस्फुरज्जघना वाली, सुस्तनी, काम से विकल, उस चञ्चल नेत्रा को अपने वश में कर लेता है ॥ ७४-७६ ॥

कामबाणप्रभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषीम् ।
महाकामकलाध्यानात् साधकः स्थिरमानसः॥ ७७ ॥
क्षोभयेत् स्वर्गभूलोकपातालतलयोषितः ।
रोचनाभागमेकं तु भागमेकं तु कुङ्कुमम् ॥ ७८ ॥
अथ भागद्वयं चैव चन्दनैर्मर्दयेत् समम् ।

एकत्र तिलकं कुर्यात् त्रिलोकवशकारकम् ॥ ७९ ॥
अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत् ।
राजानं नगरं ग्रामं यत्किंचिदन्यदुच्यते ॥ ८० ॥
साधकेनैव नियतं तत् सर्वं तस्य वश्यगम् ।
योनिपुष्पैर्लिङ्गपुष्पैर्मिश्रीकृत्य च साधकः ॥ ८१ ॥
अञ्जलित्रयदानेन राजानं वशमानयेत् ।

स्थिर चित्त वाला साधक महाकामकला (योनि) का ध्यान कर स्वर्गलोक, भूलोक और पाताल लोक तक की स्त्रियों को चञ्चल चित्त बना देता है । एक भाग रोचना, एक भाग कुङ्कुम और दो भाग चन्दन इनको एक में मिलाकर अच्छी तरह घिसे । इस प्रकार उस एक में मिले हुये द्रव्य से तिलक करे तो वह त्रिलोकी को अपने वश में कर लेता है । यदि एक-सौ आठ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित कर तिलक करे तो वह राजा, नगर, ग्राम और जो भी हो वह सब उस साधक के वश में निश्चित रूप से हो जाता है । साधक योनि पुष्प (रज) और लिङ्ग पुष्प (वीर्य) को मिलाकर उसको तीन अञ्जलि भगवती को समर्पित करे तो वह राजा को भी वश में कर लेता है ॥ ७७-८२ ॥

पुत्तलीप्रयोगः

रहस्यस्थानके मन्त्री लिखेद्रोचनया भुवि ॥ ८२ ॥
चारुशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ।
प्रतिमां सुन्दरीं रम्यां विलिख्य सुमनोहराम् ॥ ८३ ॥

मन्त्रज्ञ किसी एकान्त स्थान में रोचना से मनोहर, शृङ्गारयुक्त वेशों वाली एवं सर्वाभरणभूषित अत्यन्त सुन्दरी स्त्री की प्रतिमा निर्माण करे ॥ ८२-८३ ॥

तद्भालगलहृन्नाभियोनिमण्डले योषिताम् ।
यस्या नाम महाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भितम् ॥ ८४ ॥
कामं वह्निसमारूढं अधरोत्तरसंयुतम् ।
विन्दुनादकलाक्रान्तमङ्कुशं परिकीर्त्तितम् ॥ ८५ ॥
सर्वसन्धिषु देहस्य कामबीजं समालिखेत् ।
स्वरान्तं पृथिवीसंस्थं रतिविन्दुसमन्वितम् ॥ ८६ ॥
कथितं कामबीजञ्च सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
नीलदाडिम्बपुष्पाभं चिन्तयेद्देहसन्धिषु ॥ ८७ ॥

उसकी भाल, गला, हृदय, नाभि, योनि मण्डल में स्त्रियों में, जिस स्त्री का नाम महाविद्या और अङ्कुश मन्त्र से विदर्भित कर लिखे; वह वश में हो जाती है ।

काम (क) वह्नि (र) अधरोत्तर (और जो विन्दु, नाद एवं कला से) आक्रान्त हो वह (क्रौं) अङ्कुश बीज कहा गया । तदनन्तर उसके शरीर की सन्धियों में काम बीज (क्लीं) लिखे । पृथ्वी (ल) उस पर संस्थित स्वरान्त रति एवं विन्दु समन्वित (क ई) अर्थात् (क्लीं) यह काम बीज कहा गया है, जो समस्त सिद्धियों को देने वाला है । इस प्रकार कामिनी के देह की सन्धियों में नीले रङ्ग के अनार की कली के पुष्प के समान कामबीज क्लीं का ध्यान करे ॥ ८४-८७ ॥

तदाशाभिमुखो भूत्वा स्वयं देवीस्वरूपकः ।
मुद्रां तु क्षोभिणीं बद्ध्वा मन्त्रमष्टशतं जपेत् ॥ ८८ ॥
नियोज्य मदनागारे चलसूर्य नवात्मके ।
ततोऽप्यधिकसर्वाङ्गीं कामबाणैः सुपीडिताम् ॥ ८९ ॥
अनन्यमानसां प्रेमभ्रममाणां मदालसाम् ।
एवमाकर्षयेन्नारीं योजनानां शतैरपि ॥ ९० ॥

स्वयं देवी का स्वरूप बनकर साधक, उस युवती की ओर मुख कर, क्षोभिणी मुद्रा बाँधकर, उसके नवात्मक त्रिकोण रूप मदनागार में डालकर आठ-सौ मन्त्र का जप करे तो, उससे भी अधिक सुन्दरी, काम बाण निपीडिता, अपने में अत्यन्त आसक्त, प्रेम से भ्रमण करती हुई मस्ती और आलस्य से भरी हुई युवती को सैकड़ो योजन से आकृष्ट कर लेता है ॥ ८८-९० ॥

ईशानेऽङ्कुशमासाद्य तत्र यन्त्रं विलिख्य च ।
अष्टमीरात्रिमारभ्य चतुर्दश्यां समापयेत् ॥ ९१ ॥
अष्टोत्तरशतं मर्त्यो मन्त्रयित्वा स्वयं यतः ।

ईशानकोण में अङ्कुश गाड़कर, उस पर यन्त्र लिखकर, अष्टमी की रात्रि से आरम्भ कर चतुर्दशी पर्यन्त समाप्त करते हुए यन्त्र लिखकर एक-सौ आठ बार मन्त्र का जप करे तो उक्त फल की प्राप्ति हो जाती है ॥ ९१-९२ ॥

ताम्बूलपूरितमुखो मुक्तकेशो जितेन्द्रियः ॥ ९२ ॥
मदिराघूर्णनयनः परयोषित्समायुतः ।
गन्धचन्दनपुष्पैस्तु दिग्वासाः कुलभूषणः ॥ ९३ ॥
यन्नाम्ना दर्भितं यन्त्रं पूजयेद्वीरसाधकः ।
सा समायाति कामार्त्ता यत्र देवः स पूजकः ॥ ९४ ॥

साधक मुख में ताम्बूल चबाते हुये, केश खोलकर, अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर, मदिरा के मद में नेत्रों से घूरते हुये, दूसरे की स्त्री से संयुक्त होकर, गन्ध, चन्दन और पुष्पों से अलंकृत होकर, नग्न शरीर होकर श्रेष्ठ कौलिक

स्वरूप धारण करने वाला साधक जिसके नाम से दर्भित यन्त्र का पूजन करे तो वह कामार्त्त होकर उस देवपूजक के पास चली आती है ॥ ९२-९४ ॥

अन्यप्रयोगकथनम्

अथ चेद्रात्रिसमये स्वकुलं तूलिकोपरि ।
वामभागे समासीनं रक्तवस्त्रविभूषितम् ॥ ९५ ॥
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्वेष्टितं सुमनोहरम् ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यं स्फुरच्चकितलोचनम् ॥ ९६ ॥
कुचद्वन्द्व जितामित्रविशालकरिकुम्भकम् ।
ललाटे मन्त्रमालिख्य साध्यनामविदर्भितम् ॥ ९७ ॥
तत्स्कन्धे भुजमारोप्य भङ्ग्याधृतकुचाचलः ।
ताम्बूलपूरितमुखः कुलं तदभिसंहितम् ॥ ९८ ॥
कुलाकुलजपं कृत्वा समानयति तत्क्षणात् ।
यन्नाम्ना लिखितं यन्त्रं ताञ्च नयति तत्क्षणात् ॥ ९९ ॥
शतयोजनबाह्यस्थां नदीपर्वतमध्यगाम् ।
द्वीपान्तरसहस्रेषु रक्षितां निगडादिभिः ॥ १०० ॥
पयोधरक्षुब्धमध्यां चञ्चलोत्पललोचनाम् ।
नितम्बविम्बविद्ध्वस्तस्फुरज्जघनमण्डलाम् ॥ १०१ ॥
साधकाकृष्टहृदयां विवरान्तःप्रसर्पिणीम् ।
कवाटलोहसन्नद्धपूरिकाविवरान्तरे ॥ १०२ ॥
साधकान्तः समासीनां देवतामिव चारिणीम् ।
एवमाकृष्टिसिद्धिश्चेत् साधकः कौलिको भवेत् ॥ १०३ ॥

अब अन्य प्रयोग कहते हैं—रात्रि के समय रूई के गद्दे पर अपने वाम भाग में बैठी हुई रक्तवस्त्र से विभूषित, गन्ध, धूप, दीपादि से परिवेष्टित, सभी शृङ्गारों से अलंकृत वेश वाली चञ्चल नेत्रों से इधर-उधर देखती हुई अपने दोनों कुचों से स्पर्द्धा करने वाले शत्रुभूत हाथी के कुम्भ को भी विजित करने वाली ऐसे अपने कुल (स्त्री) के ललाट में साध्यनाम से विदर्भित मन्त्र लिखकर, उसके कन्धे पर अपना हाथ रखते हुये, उसे घुमाकर, उसके स्तन रूप पर्वतों पर रखे । अपना मुख ताम्बूल से परिपूर्ण रखे और उससे एकदम मिल जावे । इस प्रकार स्थित रहकर कुलाकुल मन्त्र का जप करने वाला साधक जिसके नाम से यन्त्र लिखा गया है उसे तत्क्षण अपने पास बुला लेता है । भले ही वह सौ योजन की दूरी पर नदी पर्वत के मध्य में, सहस्रों द्वीपों के अन्तर में रहने वाली ही क्यों न हो, बन्दीखाने में बन्द हो, ऐसी नायिका, जिसकी ऊँचे-ऊँचे स्तनों के कारण कटि

पतली पड़ गई हो, जिसके नीले कमल के समान नेत्र चञ्चल हों, नितम्ब विम्ब (गोलाई) से वस्त्र खिसक गये हों, जघन भाग स्फुरित हो रहे हों, साधक के ऊपर अपने हृदय को निछावर कर लोहे के कपाट से बन्द विवर के मध्य से भी निकल कर मस्ती से भरी हुई देवता के समान चलती हुई साधक के समीप चली आती है । इस प्रकार का युवतियों का आकर्षण करने वाले साधक को कौलिक कहा जाता है ॥ ९५-१०३ ॥

केनापि व्यपदेशेन समासाद्य बलिं कुलात् ।
रात्रौ वीरवरो वापि दिव्यो वा साधकोत्तमः ॥ १०४ ॥
निजं कुलं समादाय तत्कुलस्थान एव च ।
विलिख्य मालिनीं देवीमारक्तवसनोज्ज्वलाम् ॥ १०५ ॥
निजवामोरुमध्ये तु निजमन्त्रविदर्भितम् ।
मणिना साध्यनामानं विलिख्य तस्य मध्यतः ॥ १०६ ॥
स्वयं कामकलारूपस्तत्राऽऽवाह्य महेश्वरीम् ।
कामराजेन संयुक्तां देवं ध्यात्वा सुसाधकः ॥ १०७ ॥
पूजयित्वा ततो जप्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
यन्नाम्ना दीयते चैव सा वश्यं प्रतिपद्यते ॥ १०८ ॥

रात्रि के समय श्रेष्ठ वीर साधक या दिव्य साधकोत्तम, किसी बहाने से किसी कौलिक द्वारा बलि प्राप्त करे । फिर अपना कुल (स्त्री) साथ लेकर उसके कुलस्थान (योनि) में रक्त वस्त्र धारण की हुई, प्रकाश युक्त, मालिनी देवी को लिखकर, फिर उसके बायें ऊरू के मध्य में, मणि द्वारा अपने मन्त्र से विदर्भित अपने साध्य का नाम लिखे । फिर स्वयं कामकला रूप धारण कर कामराज से संयुक्त महामहेश्वरी का ध्यान कर भगवती का आवाहन करे । फिर पूजा कर एक-सौ आठ की संख्या में जप करे । ऐसा करने से जिसके नाम को विदर्भित किया गया है वह युवती वशीभूत हो जाती है ॥ १०४-१०८ ॥

एतद्विधानयोगे तु प्रभवन्ति हि देवताः ।
योगिन्योऽप्सरसश्चापि के परे नरकिङ्कराः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार विधानानुसार योग से देवता, योगिनी और अप्सरायें भी वश में हो जाती हैं । फिर बेचारे मनुष्यों की बात ही क्या? ॥ १०९ ॥

स्वयं दिव्यधरो वापि किम्वाऽयं वीरसाधकः ।
इति चेत् ज्ञायते लोकैस्तदा भ्रष्टो भविष्यति ॥ ११० ॥
तस्माद् यत्नाद् गोपितव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।

अनयाकृष्टिकर्मज्ञ इति चेत् प्रतिपद्यते ॥ १११ ॥
निश्चितं निमिषे हानिस्तदा तस्य प्रजायते ।
यदि स्वप्नावतीं विद्यां साधकः स्थिरमानसः ॥ ११२ ॥
रात्रौ च दिवसे वापि जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वा विघ्नं कदाचिद्धि पथि तस्य न विद्यते ॥ ११३ ॥

यह स्वयं दिव्य रूप धारण करने वाला कोई मनुष्य है, अथवा वीर साधक है, यदि लोगों को उसके स्वरूप का पता लग गया, तो वह मन्त्रज्ञा भ्रष्ट हो जायगा। इसलिये अपने स्वरूप को साधक गुप्त रखे, कदापि प्रकाशित न करे। यदि लोगों ने जान लिया कि यह आकर्षण विधान का मर्मज्ञ है, तो बिना किसी बहाने के एक क्षण में उसकी (लौकिक) हानि अवश्य सम्भावित हो जाती है। यदि तत्त्वज्ञ साधक स्थिर चित्त हो रात्रि में, अथवा दिन में स्वप्नावती मन्त्र का एक-सौ आठ बार जप करे, तो उसके रास्ते में कदापि किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होता ॥ ११०-११३ ॥

अतिगुप्तेन कर्त्तव्यं वीरेण कुलसाधनम् ।
निःसङ्गेन सदा कुर्यात् कुलाकृष्टिं विशेषतः ॥ ११४ ॥

वीर साधक अत्यन्त गोपनीय रूप से कुल साधन करे। वह सर्वथा बिना किसी के सङ्ग के ही साधना करे। विशेषकर वह आकर्षण कर्म अवश्य ही गुप्त रखना चाहिए ॥ ११४ ॥

कुलगेहप्रवेशार्थं रात्रौ यामगते बुधः ।
जलमध्ये च दुर्मार्गे आरामे वा श्मशानके ॥ ११५ ॥
शून्यागारे तथा विल्वमूले वा जनवर्जिते ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु यो जप्त्वा गच्छति ध्रुवम् ॥ ११६ ॥
तस्य विघ्नं न जायेत साधने सर्वथा पुनः ।
अथवा स सर्वकार्येषु जप्त्वा चाष्टसहस्रकम् ॥ ११७ ॥
गच्छेद्यदि सदा धीरस्तदा विघ्नं न जायते ।
न च विघ्नं ततस्तत्र तत्र तत्र जपान्तरम् ॥ ११८ ॥

बुद्धिमान् साधक कुल गृह में प्रवेश करने के लिये रात्रि के एक याम (=प्रहर=३ घण्टा) बीत जाने पर, जल मध्य में जहाँ कोई जा न सके, ऐसे कान्तार पथ में, बगीचे में, श्मशान में, शून्य गृह में, जनवर्जित बिल्ववृक्ष के नीचे, यदि एक-सौ आठ बार मन्त्र का जप कर जावे, तो निश्चय ही उसके साधन में किसी प्रकार का भय नहीं होता, अथवा सभी कार्यों के आरम्भ में आठ हजार

की संख्या में जप कर कार्यारम्भ करे, तब कोई विघ्न नहीं होता। वहाँ-वहाँ किये जाने वाले, अन्य जप कार्यों में भी विघ्न नहीं होता ॥ ११५-११८ ॥

गमनं तस्य जायेत तस्य विघ्नं न वर्त्तते ।
अथवा मातृकां सर्वां लिखित्वा चक्रबाह्यतः ॥ ११९ ॥
भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्येऽथ ताम्रपत्रके ।
साध्यनामान्वितं कृत्वा धारयेद्वामबाहुके ॥ १२० ॥
सोऽवध्यः सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषतः ।

यदि यात्रा करे, तो भी विघ्न नहीं होता। अथवा चक्र के बाहर भूर्ज पत्र पर, स्वर्ण पत्र पर, चाँदी, अथवा ताँबे के पत्र पर साध्य का नाम से युक्त मन्त्र लिखे और अपने बायें हाथ में उसे धारण करे; तो वह सभी जन्तुओं से अबध्य हो जाता है। विशेषकर व्याघ्रादि जन्तुओं से अबध्य हो जाता है ॥ ११९-१२१ ॥

अथवा मातृकायुक्तां स्वसञ्ज्ञां चक्रमण्डिताम् ॥ १२१ ॥
कर्पूरकुङ्कुमाद्यैश्च अजरामरतां लभेत् ।
अनेन विधिना वापि रोचनागुरुचन्दनैः ॥ १२२ ॥
विदर्भितञ्च नाम्ना तु यस्मिन् कस्मिन्नुपस्थितम् ।
स्थावरं जङ्गमं वापि सकलं जलमण्डलम् ॥ १२३ ॥
वशीकुर्यान्महावीरः सोऽतिक्रान्तः न संशयः ।
कामराजेन बीजेन महाकामकलात्मना ॥ १२४ ॥
एकैकान्तरितं कृत्वा साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।
बलिरस्या लिखेदेवं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥ १२५ ॥
हेममध्यगतं कृत्वा धारयेद्वामके भुजे ।
शिखायामथवा वस्त्रे शरीरे यत्र कुत्र वा ॥ १२६ ॥
करोति दासभूतं हि त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सम्मोहयति राजानं वाजिनं दुष्टकुञ्जरम् ॥ १२७ ॥
चौरान् दस्यून् तथा चैव तथा मन्त्राभिचारकम् ।
चक्रवज्राणि वेतालं दुर्दमं राक्षसं तथा ॥ १२८ ॥

अथवा कपूर, कुङ्कुमादि से मातृका वर्णों से युक्त अपना नाम लिखकर चक्र में स्थापित करे, तो वह मन्त्रज्ञ अजर अमर हो जाता है। इसी प्रकार जो रोचना, अगुरु और चन्दन से अपने नाम से विदर्भित मन्त्र लिखे, तो वह महावीर साधक जहाँ-कहीं भी उपस्थित होने वाले स्थावर, जङ्गम तथा समस्त जल मण्डल का अतिक्रमण कर उन्हें अपने वश में कर लेता है। कामराज बीज से युक्त

महाकामकला (ईं) के एक-एक अक्षर के अन्तर पर साध्य के नाम के अक्षरों को लिखे । इसी प्रकार बलि के जीवाक्षर को भी लिखे, फिर उसे मातृका अक्षरों से वेष्टित करे, तदनन्तर उसे सुवर्ण पत्र में स्थापित कर वाईं भुजा में धारण करे, अथवा वस्त्र में, अथवा शिखा में, अथवा शरीर के किसी स्थान में उसे बाँध लेवे, तो वह तत्त्वज्ञ साधक चराचर त्रिलोकी को अपना दास बना लेता है, राजा, घोड़ा, दुष्ट, हाथी, चोर, डाकू, मन्त्रज्ञ, अभिचार करने वाले चक्र और वज्र हाथ में धारण करने वाले, बेताल, दुर्दमनीय राक्षस, भूत, प्रेत एवं पिशाच को भी मोहित कर लेता है ॥ १२१-१२८ ॥

भूतप्रेतापिशाचांश्च धारिता चक्ररूपिणी ।
येन वीरेण तत्सर्वं स कुर्याद्दासवद्वशम् ॥ १२९ ॥

जो वीर इन चक्ररूपिणी को धारण करता है, वह सभी को अपने दास के समान वश में कर लेता है ॥ १२९ ॥

तन्मध्ये च गतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम् ।
चतुःसमुद्रपर्यन्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत्ततः ॥ १३० ॥
षण्मासध्यानयोगेन जायते मदनोपमः ।
दृष्ट्याऽऽकर्षयते लोकं दृष्ट्यैव कुरुते वशम् ॥ १३१ ॥
दृष्ट्या सङ्क्षोभयेन्नारीं दृष्ट्यैवाऽपहरेद्विषम् ।
दृष्ट्या कर्षति वागीशं दृष्ट्या सर्वविलोचनम् ॥ १३२ ॥
दृष्ट्या चतुर्विधस्त्रीणां नाशयेद्विषमज्वरान् ।

उस चक्र में रहने वाली चतुःसमुद्रपर्यन्ता सशैल वन काननों को जलती हुई पृथ्वी का ध्यान करे, तो छह महीने तक इस ध्यान योग से वह काम के समान सुन्दर हो जाता है । वह अपनी दृष्टि से समस्त लोकों का आकर्षण कर लेता है । अपनी दृष्टि से ही समस्त लोक को वश में कर लेता है, दृष्टि से ही स्त्री को संक्षुब्ध कर लेता है । अपनी मन्त्रात्मक दृष्टि से विष दूर कर देता है । दृष्टि से वागीश का आकर्षण करता ही है और दृष्टि से सभी की आँखों को अपनी ओर खींच लेता है । दृष्टि से शंखिनी, पद्मिनी, चित्रिणी एवं हस्तिनी चारो प्रकार की स्त्रियों का विषम ज्वर नष्ट कर देता है ॥ १३०-१३३ ॥

एतत् प्रपूजनं रात्रौ चक्रं सिन्दूरमिश्रितम् ॥ १३३ ॥
करोति महदाकर्षं दूरस्थायाश्च योषितः ।
मध्ये दिक्षु विदिक्ष्वेवं यदा देवीं प्रपूजयेत् ॥ १३४ ॥
दिक्पतिक्रमयोगेन तदा सर्वं जगत्त्रयम् ।
भूर्जपत्रे विलिख्यैव रोचनागुरुकुङ्कुमैः ॥ १३५ ॥

तन्मध्ये नगरं देशं मण्डलं खण्डमेव वा ।
स्वनामदर्भितं कृत्वा यदि भूमौ निधापयेत् ॥ १३६ ॥
चक्रमेतन्महाभागे पुरःक्षोभनमुत्तमम् ।
धारयेद्वामहस्तेन कण्ठे वा भुजमूलके ॥ १३७ ॥
शिखायामथवा वस्त्रे धारयेद्यत्र कुत्र वा ।

रात्रि में सिन्दूर मिश्रित चक्र का वह साधक पूजन करे, तो वह बहुत बड़ा आकर्षण एवं दूर रहने वाली स्त्री का आकर्षण करता है । यदि चक्र के मध्य में, चारों दिशाओं एवं चारों कोणों में, दिशाओं के पतियों के साथ देवी का पूजन करे, तो तीनों लोकों को वश में कर लेता है । भोजपत्र पर रोचना, अगुरु और कुङ्कुम से चक्र लिखकर उसके मध्य में, नगर, देश, मण्डल और प्रखण्डों को अपने नाम से दर्भित कर लिखकर पृथ्वी में गाड़ देवे, तो हे महाभागे ! यह चक्र समस्त पुर को संक्षुब्ध कर देता है । साधक इसे बायें हाथ में, कण्ठ में, अथवा भुजा के मूल में धारण करे, अथवा शिखा, अथवा वस्त्र अथवा जहाँ-कहीं भी धारण करे ॥ १३४-१३८ ॥

रोचना कुङ्कुमाक्तञ्च लाक्षालक्तकसंयुतम् ॥ १३८ ॥
अर्कक्षीरेण संयुक्तं धूस्तूरकरसं तथा ।
कस्तूरीद्रवसंयुक्तं एकीकृत्य ततः परम् ॥ १३९ ॥
चक्रमेतत् समालिख्य यस्य नाम्ना सुसाधकः ।
तस्य व्याघ्रगजव्याधिरिपुसर्पविषादिकम् ॥ १४० ॥
चौरग्रहजलारिष्टशाकिनीडाकिनीभयम् ।
भयं न विद्यते कुत्र परमञ्चाभिचारकम् ॥ १४१ ॥

रोचना कुंकुम में डुबोये गये लाक्षा अलक्तक एवं मन्दार के दूध से संयुक्त धतूर का रस, जो कस्तूरी के पानी से संयुक्त हो, इन सभी वस्तुओं का एकीकरण कर, उससे साध्य के नाम सहित चक्र लिखे, तो उस साध्य को बाघ, गज, व्याधि, शत्रु, सर्प, विष, चौर, ग्रह, अरिष्ट, डाकिनी, शाकिनी का भय तथा अन्य भय, किं बहुना, शत्रु के द्वारा किया गया अभिचार (मारण प्रयोग) का भय नहीं होता ॥ १३८-१४१ ॥

नित्यं संसाधयेद् देवीं कालमृत्युं विनाशयेत् ।
न शक्तो हिंसितुं तस्य रोमैकमपि सर्वथा ॥ १४२ ॥

यदि नित्य भगवती का पूजन करे, तो कालमृत्यु का भय विनष्ट करे । कोई उसके एक रोम पर रञ्च मात्र प्रहार नहीं कर सकता ॥ १४२ ॥

अथवा मध्यगां देवीं त्रिकोणोदरगां तथा ।
अधस्तान्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमान्विताम् ॥ १४३ ॥
निधापयेच्च सप्ताहाद्दासवत् किङ्करो भवेत् ।

अथवा यदि चक्र के मध्य में, अथवा त्रिकोण के भीतर, रोचना कुङ्कुम से देवी (मन्त्र) को लिखे और उसके नीचे साध्य का नाम लिखकर पृथ्वी में गाड़ देवे, तो वह साध्य एक सप्ताह के भीतर दास हो जाता है ॥ १४३-१४४ ॥

ताम्बूलधूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि ॥ १४४ ॥
दुग्धं घृतं दन्तपत्रं वस्त्रं कर्पूरमेव वा ।
कस्तूरीं घुसृणं चैलां लवङ्गं जातिपत्रकम् ॥ १४५ ॥
फलं वा वस्तु यच्चान्यत् सकलं वा कदाचन ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यस्मै कस्मै प्रयच्छति ॥ १४६ ॥
स वश्यो जायते सत्यं नात्र कार्या विचारणा ।
स्त्रियश्च सकला वश्या दासीभूता भवन्ति हि ॥ १४७ ॥

ताम्बूल, धूप, जल, पत्र-पुष्प, फल, दधि, दूध, घृत, दन्तपत्र (?), वस्त्र, कपूर, कस्तूरी, घुसृण (सुगन्धलेप), लवङ्ग, जातिपत्रक, फल, अथवा अन्य समस्त वस्तुयें यदि १०८ बार जप कर, जैसे-कैसे किसी अन्य को दिया जावे, तो वह उसके वश में हो जाता है, इसमें संशय नहीं । यदि स्त्रियों को दिया जाय, तो वे सभी निश्चित रूप से वशीभूत होकर दासी हो जाती हैं ॥ १४४-१४७ ॥

हठाकर्षणमेतत्तु कथितं नान्यथा भवेत् ।
पीतद्रव्येण संलिख्य धारयेदिन्द्रदिग्गतम् ॥ १४८ ॥
नाम्ना सर्वाङ्गभूतोऽपि मूको भवति तत्क्षणात् ।
सहस्रवदनश्चापि मूको भवति निश्चितम् ॥ १४९ ॥

हमने यह हठपूर्वक किया जाने वाले आकर्षण का विधान कहा जो कभी अन्यथा होने वाला नहीं । पीत द्रव्य से जिसके नाम के साथ आकर्षण मन्त्र लिखकर पूर्व दिशा में होकर धारण करे, तो सर्वाङ्गपूर्ण होते हुये भी वह तत्क्षण मूक हो जाता है, चाहे वह साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, वह भी निश्चित रूप से मूक हो जाता है ॥ १४८-१४९ ॥

महानीलरसेनापि नाम संयोज्य पूर्ववत् ।
दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयतेऽचिरात् ॥ १५० ॥

महानील रस से साध्य नाम को लिखे, फिर दक्षिणाभिमुख होकर उस यन्त्र को अग्नि में जला देवे, तो वह साधक उस साध्य को निश्चित रूप से मारण कर

देता है ॥ १५० ॥

महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रैर्नाम चाङ्कितम् ।
कृत्वा शरावमध्यस्थं विद्विष्टं सर्वजन्तुषु ॥ १५१ ॥

भैंसे, घोड़े तथा गौर के पुरीष से साध्य नाम लिखे, फिर उसे हाँड़ी में बन्द कर दे, तो उनमें विद्वेष हो जाता है ॥ १५८ ॥

युतं रोचनया नाम काकपक्षेण संलिखेत् ।
नीलकर्पटके सम्यक् नीलसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ १५२ ॥
लम्बमानस्तदाकाशे परमुच्चाटनं भवेत् ।

नीले रङ्ग के कपड़े में काक पक्ष से रोचना द्वारा नाम लिखे, फिर उसे नीले सूत्र से वेष्टित करे, तदनन्तर उसे आकाश में लटका दे, तो अत्यन्त उच्चाटन हो जाता है ॥ १५२-१५३ ॥

दुग्धलाक्षारोचनाभिर्महानीलरसेन च ॥ १५३ ॥
लिखित्वा धारयेच्चक्रं सर्ववर्णान् वशं नयेत् ।
अनेनैव विधानेन जलमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ १५४ ॥
सौभाग्यमतुलं प्राप्य स्नानपानान्न संशयः ।
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं नागरीं वा सुराङ्गनाम् ॥ १५५ ॥
सप्ताहात् क्षोभयेन्नित्यं ज्वालामालां विचिन्तयन् ।
लिखित्वा पीतवर्णेन स्वीयचक्रं यदाऽर्चयेत् ॥ १५६ ॥
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत् सर्ववादिनः ।
सिन्दूरेण लिखेच्चक्रं पूजयेदुत्तरामुखः ॥ १५७ ॥
यदत्र दासो वशगो लोको भवति सर्वदा ।

दूध-लाक्षा रोचना और महानील के रस से चक्र लिखकर धारण करे, तो वह सभी वर्णों को अपने वश में कर लेता है । इसी प्रकार लिखकर यदि जल के मध्य में फेंक देवे, फिर उस जल से स्नान करे, उसका पान करे, तो उसे अतुल सौभाग्य प्राप्त हो जाता है । यदि उसके मध्य में, पृथ्वी, नगरी अथवा अप्सरा लिखे, तो एक सप्ताह में वह उन्हें क्षुब्ध कर देता है । पूर्वाभिमुख हो ज्वाला एवं माला युक्त चक्र का ध्यान कर पीत वर्ण से स्वयं चक्र लिखकर उसका अर्चन करे, तो समस्त वादियों को स्तम्भित कर देता है । सिन्दूर से चक्र लिखकर वह साधक उत्तराभिमुख हो उसकी पूजा करे, तो इससे समस्त दास वर्ग सर्वथा उस साधक के वश में हो जाते हैं ॥ १५३-१५८ ॥

चक्रं गैरिकयाऽऽलिख्य पूजयेत् पश्चिमामुखः ॥ १५८ ॥

सर्वाङ्गनावश्यकारी मोहकारी सदा भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा नित्यं चक्रं यदाऽर्चयेत् ॥ १५९ ॥
यस्य नाम्ना तस्य नित्यं महाहानिस्तु जायते ।
चक्रं वह्निमुखो भूत्वा रात्रौ सम्पूजयेत् सुधीः ॥ १६० ॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकारकम् ।
रोचनालिप्तितं चक्रं दुग्धमध्ये वशङ्करम् ॥ १६१ ॥

चक्र को गैरिक से लिखकर साधक पश्चिमाभिमुख हो पूजन करे, तो वह सर्वाङ्गनावश्यकारी एवं मोहकारी हो जाता है । यदि निरन्तर दक्षिणाभिमुख हो चक्र का अर्चन करे, तो जिसके नाम से अर्चन किया जाता है, उसकी महती हानि होती है । सुधी साधक रात्रि के समय आग्नेयकोण में स्थित होकर पूजन करे, तो वह स्तम्भन, विद्वेषण, व्याधिकारक और शत्रुओं का उच्चाटन करने वाला हो जाता है । रोचना से लिखित चक्र साधक यदि दूध में डाल देवे तो वह वशकारक हो जाता है ॥ १५८-१६१ ॥

क्षिप्तं गोमूत्रमध्ये तु शत्रूच्चाटनकारकम् ।
तैलस्थं चक्रराजं तु विद्वेषणकरं परम् ॥ १६२ ॥

यदि उस चक्र को गोमूत्र के मध्य में डाल देवे, तो वह चक्र शत्रुओं का उच्चाटन करने वाला हो जाता है । तेल में रखने पर वह चक्रराज विद्वेषकारक हो जाता है ॥ १६२ ॥

ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
एकायुतं जपं कुर्यात् प्रयोगेषु च साधकः ॥ १६३ ॥

धधकती हुई अग्नि के मध्य में डाल देने पर वह सभी शत्रुओं के लिए विनाशकारक हो जाता है । तत्त्वज्ञ साधक इन प्रयोगों में एक अयुत (दश हजार) की संख्या में जप करे ॥ १६३ ॥

त्रिकोणं कुण्डमासाद्य सम्यक् शास्त्रविधानतः ।
तस्मिन् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने ॥ १६४ ॥

शास्त्रीय विधानों से सम्यक् बने हुये त्रिकोण कुण्ड में सुसंस्कृत अग्नि में (दशांश) होम करे ॥ १६४ ॥

प्रक्षाल्य गव्यदुग्धेन संशोध्य लवणं सुधीः ।
चूर्णितं जुहुयान्मन्त्री सप्ताहाद्वशयेज्जनान् ॥ १६५ ॥

लवण को गाय के दुग्ध से प्रक्षालित कर उसे शुद्ध करे फिर उसका चूर्ण

बनाकर सात दिन पर्यन्त होम करे, तो सभी को वश में कर लेता है ॥ १६५ ॥

दधिमध्वाज्यसंसिक्तैः सैन्धवैर्जुहुयात् पुनः ।
वशयेत् सकलान् देवान् गन्धर्वान् किं सुपर्णकान् ॥१६६ ॥

फिर दही, मधु और आज्य से संसिक्त उसी सैन्धव से पुनः होम करे, तो वह समस्त देवता, गन्धर्व और सुपर्ण को वश में कर लेता है ॥ १६६ ॥

विशुद्धं लवणप्रस्थं विभक्तं पञ्चधा पृथक् ।
यस्य नाम्ना स वश्यः स्यादनेनैव न संशयः ॥ १६७ ॥

एक प्रस्थ विशुद्ध लवण को पाँच भागों में अलग-अलग विभक्त करे । जिसके नाम से विभक्त करे, तो वह इतने मात्र से ही वश में हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६७ ॥

शुद्धं लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम् ।
जलं पञ्चाशतं दद्याद्वशं नयति वाञ्छितम् ॥ १६८ ॥

शुद्ध लवण लेकर दूध, मधु, घृत इस त्रिमधुर में मिलाकर, फिर उसमें पञ्चाशत् भाग जल मिलाकर जिस भी वाञ्छितजन को पिलाया जाय, वह उसको वश में कर देता है ॥ १६८ ॥

दक्षिणकालिकार्चनविधानम्

दक्षिणाया विशेषञ्च कथयामि विशेषतः ।
कूर्चलज्जाद्वयं चान्ते आद्याबीजं तथैव च ॥ १६९ ॥
योजयित्वा जपेद्विद्यामयुतं वशमानयेत् ।

अब दक्षिणकालिका देवी के विषय में विशेष कहता हूँ । कूर्च (हूँ), दो लज्जा (ह्रीं ह्रीं), अन्त में आद्या बीज (श्रीं) लगाकर विद्या मन्त्र का दश हजार जप करे, तो अपने अभीष्ट को वश में कर लेता है ॥ १६९-१७० ॥

कालिकाध्यानम्

नागयज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्धधृतमस्तकाम् ॥ १७० ॥
जटाजूटसमायुक्तां महाकालसमीपगाम् ।
अष्टोत्तरशतामन्त्र्य पूर्वद्रव्येण साधकः ॥ १७१ ॥
तेनैव तिलकं कृत्वा वशयेज्जगतीमिमाम् ।
शताभिमन्त्रितं कृत्वा रोचनातिलकेन तु ॥ १७२ ॥
राजानं साधकश्रेष्ठो वशमानयति क्षणात् ।

नाग का यज्ञोपवीत, मस्तक में अर्धचन्द्र तथा जटाजूट धारण की हुई महाकाल के समीप में निवास करने वाली भगवती को साधक पूर्वद्रव्यों से एक-सौ आठ बार अभिमन्त्रित करे। फिर उसी से तिलक करे, तो वह इस जगती को वश में कर लेता है। रोचना को एक-सौ बार अभिमन्त्रित कर उसका तिलक लगावे, तो वह साधक राजा को भी क्षणमात्र में वश में कर लेता है ॥ १७०-१७३ ॥

आद्ये चैकं तु बीजानां तथैवान्ते च एककम् ॥ १७३ ॥
दक्षिणे कालिके चेति साध्यं संयोज्य मन्त्रवित् ।
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य भवेदाकर्षणं महत् ॥ १७४ ॥

मन्त्रवेत्ता 'दक्षिणे कालिके' इसके पहले प्रथम बीज तथा इसके अन्त में भी एक ही बीज लगाकर उसमें साध्य नाम संयुक्त कर अन्त में 'स्वाहा' पद का उच्चारण करे, तो इस मन्त्र से आकर्षण हो जाता है ॥ १७३-१७४ ॥

लोहिताङ्गुलिहस्तां च एकशूलधरां तथा ।
महाकालाग्र आसीनां ध्यात्वा चाकर्षणञ्चरेत् ॥ १७५ ॥

रक्त अङ्गुलि युक्त हाथों वाली, एक शूल धारण की हुई, महाकाल के आगे बैठी हुई महाकाली का ध्यान कर आकर्षण क्रिया करे ॥ १७५ ॥

स्थावरं जङ्गमं चैव पातालतलगं तथा ।
आकर्षयति मन्त्रज्ञः किमन्यत् भुवि योषितः ॥ १७६ ॥

मन्त्रज्ञ साधक ऐसा करने से स्थावर, जङ्गम एवं पाताल में रहने वालों को भी आकृष्ट कर लेता है। फिर पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाये ॥ १७६ ॥

शेषञ्च वशवत् कुर्यादुच्चाटनमथोच्यते ।
पिङ्गाक्षीं कृष्णवर्णाञ्च कर्त्रीखर्परधारिणीम् ॥ १७७ ॥
ध्यात्वा चोच्चाटयेच्छत्रून् पूर्ववज्जपमाचरेत् ।
अन्ते च ठद्वयं दत्त्वा प्रजपेन्मनुमुत्तमम् ॥ १७८ ॥

वह साधक शेष लोगों को भी अपने वश में कर लेता है। अब उच्चाटन की विधि कहता हूँ। पीले-पीले नेत्रों वाली, काले स्वरूप वाली, कैंची (छुरी) और खर्पर हाथ में ली हुई भगवती महाकाली का ध्यान कर पूर्ववत् जप करे, तो वह साधक शत्रुओं का उच्चाटन कर देता है। अन्त में दो ठः (ठः ठः) कहकर मन्त्र का जप करे ॥ १७७-१७८ ॥

कपिलां द्विभुजां कर्त्रीकपालसव्यदक्षिणम् ।

उत्थितां सन्नतां ध्यायेत् साधको रिपुमारणे ॥ १७९ ॥

कपिल वर्ण वाली, अपने दोनों भुजाओं में बायें में कैंची (छुरी) और दाहिने में कपाल धारण की हुई, खड़ी हुई, किन्तु कुछ चुपचाप, इस प्रकार की महाकाली का शत्रुमारण में साधक ध्यान करे ॥ १७९ ॥

ध्यानानुसारेण फलकथनम्

विशेषः कथितः काल्याः सामान्यमथ वक्ष्यते ।
उच्चाटयति पिङ्गाक्षी संद्रावयति केकरा ॥ १८० ॥
विद्रावयति मुक्तास्या सन्तत्रासयति घूर्णिता ।
विक्षोभयति संक्षुब्धा सम्पातयति सन्नता ॥ १८१ ॥

हमने इस प्रकार महाकाली की विशेषता कही । अब उनके ध्यान का सामान्य फल कहता हूँ । पीले-पीले आँखों वाली काली का ध्यान उच्चाटन करता है । केकराक्षी का ध्यान शत्रुओं को भगाता है । मुख फैलाई हुई काली का ध्यान भी शत्रुओं को दूर भगाता है । घूरती हुई काली का ध्यान शत्रुओं को भय उत्पन्न करता है । संक्षुब्ध काली का ध्यान क्षोभ उत्पन्न करता है और चुपचाप रहने वाली काली का ध्यान पतन कराता है ॥ १८०-१८१ ॥

सङ्कोचयति वित्रस्ता प्रबुद्धा वा प्रबोधयेत् ।
यं यं भावं जनो ध्यायेत् तत्र तत्र स्मरेदपि ॥ १८२ ॥

वित्रस्त काली का ध्यान सङ्कुचित कराता है, प्रबुद्ध काली का ध्यान प्रबुद्ध करता है । अतः मनुष्य जिस-जिस काम्य कर्म के भाव से ध्यान करता है उस-उस भाव से देवी का स्मरण भी करे ॥ १८२ ॥

अत्र सर्वत्र कर्त्तव्यं भावमात्रस्य चिह्नितम् ।
उच्चाटनादि सर्वत्र मैथुनान्ते समाचरेत् ॥ १८३ ॥

मारण एवं उच्चाटनादि समस्त कार्यों में भाव मात्र का स्मरण करे । उच्चाटनादि समस्त कार्य मैथुन के अन्त में प्रारम्भ करे ॥ १८३ ॥

धूस्तूरकाष्ठयोगेन चितावह्नौ च मन्त्रवित् ।
उलूककाकपक्षैश्च होमाच्छत्रून् विनाशयेत् ॥ १८४ ॥

चिता की आग में धतूर काष्ठ का, उलूक और काक पक्ष से होम करे तो शत्रु विनष्ट हो जाता है ॥ १८४ ॥

उच्चाटनार्थं शत्रूणां होमं कुर्याच्च मन्त्रवित् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन चिताकाष्ठहुताशने ॥ १८५ ॥

मन्त्रवेत्ता साधक शत्रुओं के उच्चाटन के लिये चिता काष्ठ की अग्नि में पूर्वोक्त विधान से होम करे ॥ १८५ ॥

उलूककाकपक्षाभ्यां कृत्वा होमं विनिर्दशेत् ।
विद्वेषणविधानेन अन्योन्यकलहान्वितम् ॥ १८६ ॥

उलूक और काकपक्ष से होम परस्पर कलह करने वालों के उच्चाटन के लिये तथा विद्वेषण के लिए विधि-विधान से होम करे ॥ १८६ ॥

उलूकपक्षहोमेन गर्भपातो भवेत् स्त्रियाः ।

उलूक पक्ष के होम से स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है ॥ १८७ ॥

सहस्रेण प्रमाणेन कुर्याद्धोमं यथाविधि ॥ १८७ ॥
श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासरे निशि ।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य बध्नीयात् रक्ततन्तुभिः ॥ १८८ ॥
शताभिमन्त्रितं तच्च निःक्षिपेदरिमन्दिरे ।
सप्ताहाभ्यन्तरे तस्य ध्रुवमुच्चाटनं भवेत् ॥ १८९ ॥

साधक इस कार्य के लिये यथाविधि एक सहस्र की संख्या में होम करे । मङ्गलवार के दिन, रात्रि के समय, श्मशान से अङ्गार लेकर उसे काले वस्त्र में लपेटकर, लाल डोरे से बाँधना चाहिए । उसे एक-सौ बार अभिमन्त्रित कर शत्रु के घर में फेंक देवे, तो एक सप्ताह के भीतर निश्चित रूप से उसका उच्चाटन हो जाता है ॥ १८७-१८९ ॥

महाचीनद्रुमरसेनाक्तं पिण्डं विधाय च ।
यन्नाम्ना दीयते तच्च सोऽचिरान्मृत्युमर्हति ॥ १९० ॥

महाचीन (कदम्ब?) वृक्ष के रस में सानकर पिण्डा बनावे । फिर जिसके नाम से उसे दिया जावे तो वह शीघ्र मर जाता है ॥ १९० ॥

नरास्थिनि लिखेन्मन्त्रं क्षारयुक्त हरिद्रया ।
सहस्रं परिसञ्जप्य निशायां रविवासरे ॥ १९१ ॥
क्षिप्यते यस्य गेहे तु तस्य मृत्युस्त्रिमासतः ।
क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्याज्जवहानिस्तुरङ्गमे ॥ १९२ ॥

मनुष्य की हड्डी पर, रात्रि के समय, रविवार के दिन, क्षारयुक्त हरिद्रा से मन्त्र लिखे । फिर एक सहस्र जप कर उस यन्त्र को जिसके घर में फेंक देवे तो उसकी तीन महीने के भीतर मृत्यु हो जाती है । यदि खेत में फेंके तो अन्न की हानि होती है । घुड़साला में फेंके तो घोड़े की गति नष्ट हो जाती है ॥ १९१-१९२ ॥

धनहानिर्धनागारे ग्राममध्ये तु तत्क्षयः ।
द्वेष्यद्वेषकयोर्नाम्नि तयोर्द्वेषो महान् भवेत् ॥ १९३ ॥

धनागार में फेंकने से धनहानि, ग्राममध्य में फेंकने से ग्रामक्षयः द्वेष्य और द्वेषक के नाम के मध्य में रखने से उनमें महान् द्वेष बढ़ जाता है ॥ १९३ ॥

पुत्तलीप्रयोगकथनम्

मन्त्रं कृष्णतृतीयादि प्रजपेद्यावदष्टमीम् ।
पुत्तलीः पञ्च कुर्वीत साङ्गोपाङ्गाः शुभाः समाः ॥ १९४ ॥

कृष्ण तृतीया से लेकर कृष्णाष्टमी तक मन्त्र का जप करे । साधक साङ्गोपाङ्ग सुन्दर समान रूप वाली पाँच पुतली निर्माण करे ॥ १९४ ॥

एका साध्यद्रुमेण स्यादन्या पिष्टमयी तथा ।
चक्रिहस्तमृदाऽन्या स्यादन्यामधुमयी तथा ॥ १९५ ॥
लवणं पञ्चसम्भूतं चूर्णितं दुग्धशोधितम् ।
प्रोक्षयेच्च तथा क्षीरदध्याज्यमधुभिः क्रमात् ॥ १९६ ॥

एक साध्य के वृक्ष से, दूसरी पिसान से, तीसरी कुम्हार के हाथ की मिट्टी से, चौथी मधुमयी और पाँचवीं दुग्ध संशोधित पञ्च लवण के चूर्ण से बनावे । फिर इन्हें दूध, दही, घी और मधु से क्रमशः सम्प्रोक्षित करे ॥ १९५-१९६ ॥

गुडाज्यमधुभिः सम्यक् मिश्रितेनाम्बुना ततः ।
कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम् ॥ १९७ ॥

इसके बाद गुड़, घी और मधु मिश्रित जल से प्रक्षालन करे । इस प्रकार पुत्तली को सौम्य सर्वावयव शोभित बनावे ॥ १९७ ॥

पुत्तल्यां जीवमाधाय मन्त्रन्यासं ततः परम् ।
रक्तवस्त्रधरां शुद्धां पुत्तलीं दारुणा कृताम् ॥ १९८ ॥

पुत्तली में प्राणप्रतिष्ठा कर उसके बाद उसमें मन्त्र न्यास करे । फिर उसे रक्तवस्त्र पहनाकर भयानक रूप बनावे ॥ १९८ ॥

अधोमुखीं हुनेत् कुण्डे पिष्टजामासनादधः ।
मृण्मयीं प्रतिमां पाददेशे न्यस्येत्तथात्मनः ॥ १९९ ॥
मधूच्छिष्टमयीं व्योम्नि कुण्डस्योर्ध्वं प्रलम्बयेत् ।
लवणेन कृतां पश्चात् प्रतिमां संस्पृशन् जपेत् ॥ २०० ॥
निजमन्त्रं यथान्यायमष्टोत्तरसहस्रकम् ।

अग्निमादाय सन्दीप्य साध्यनक्षत्रदारुभिः ॥ २०१ ॥

साध्य के वृक्ष से बनाई गई अधोमुखी पुत्तली का कुण्ड में हवन करना चाहिए । पिसान की बनी हुई पुत्तली आसन के नीचे रखे । मिट्टी की बनी हुई पुत्तली अपने पैर के नीचे रखकर अपना न्यास करे । मधु से बनी हुई पुत्तली कुण्ड के मध्य में आकाश में लटका दे । फिर नमक से बनी हुई पुत्तली का स्पर्श करते हुये जप करे । इस प्रकार विधि के अनुसार साधक अपने मन्त्र का एक-सौ आठ की संख्या में जप करे । फिर साध्य नक्षत्र के काष्ठ से अग्नि लेकर उसे जलावे ॥ १९९-२०१ ॥

तस्मिन्नभ्यर्च्य मन्त्रोक्तां देवतां रूप्यपत्रके ।
कुशीतराजिदूर्वाभिर्दत्त्वाऽर्घ्यं प्रणमेत् सुधीः ॥ २०२ ॥

सुधी साधक उस जलती हुई अग्नि में मन्त्र में कहे गये देवतां की पूजा कर चाँदी के पत्रक में कुशीत एवं राई और दूर्वा रखकर अर्घ्य प्रदान करे । फिर उन्हें प्रणाम करे ॥ २०२ ॥

मन्त्रैरेतैः प्रयोगादावन्ते च यतमानसः ।
त्वरानन्दन शत्रुघ्न निशायां हव्यवाहन ॥ २०३ ॥
हविषा मन्त्रदत्तेन तृप्तो भव मया सह ।
जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ ॥ २०४ ॥
स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रुहन् ।
ॐ दुर्गे सर्वविपर्यासि ग्रस्तं युक्तं त्वया जगत् ॥ २०५ ॥
महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे वरदा भव ।
तमोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते ॥ २०६ ॥
क्रिया मे पुरुषं हुत्वा वशमानय देहि मे ।
ॐ दुर्गे दुर्गे दुर्गासि दुर्गसंरोधनाकुले ॥ २०७ ॥
शङ्खचक्रधरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्करि ।
नमस्ते दह मे शत्रुं वशमानय चण्डिके ॥ २०८ ॥
शाकम्भरि महादेवि शरणं मे भवाऽनघे ।
भद्रकालि भवाभीतिभद्रसिद्धिप्रदायिनि ॥ २०९ ॥
सपत्नान् मे हन हन दह तापय शोषय ।
प्राणासिशक्तिरुद्राद्यैरुत्क्रम्योत्कृत्य चानय ॥ २१० ॥
महादेवि महाकालि रक्षास्थानस्थितेऽम्बिके ।
साध्यं संहृत्य निर्वर्त्त्यं पुत्तलीं साधकोत्तमः ॥ २११ ॥

मूलमन्त्रं समुच्चार्य जुहुयादेधितेऽनले ।
प्रथमो दक्षपादश्च तत्करस्तदनन्तरम् ॥ २१२ ॥
शिवदूतीयमाख्यातं वामहस्तं ततः परम् ।
मध्यादूर्ध्वं पञ्चमः स्यादर्धोऽशः षष्ठ ईरितः ॥ २१३ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग के आदि में तथा अन्त में 'त्वरानन्दन.................. रक्षास्थानस्थितेऽम्बिके' पर्यन्त श्लोक मन्त्र (द्र.१९.२०३-२११) पढ़े । फिर साधकोत्तम साध्य की सभी पुत्तलियों को समेटकर एकत्रित करे । तदनन्तर मूल मन्त्र उच्चारण कर जलती हुई अग्नि में पहले दाहिना पैर, फिर दाहिना हाथ, फिर शिवदूतीयं नाम से कहा जाने वाला बायाँ हाथ, फिर मध्य से ऊर्ध्व भाग, फिर आधा-आधा अंश, पाँचवें एवं छठवें भाग की आहुति देवे ॥ २०३-२१३ ॥

सप्तमो वामभागः स्यादेवं भागक्रमः स्मृतः ।
सप्त सप्त विभागो वा प्रयोगेषु यथाविधि ॥ २१४ ॥

सातवाँ समस्त भाग इस प्रकार होम के सात भाग का विधान कहा गया है । अथवा इस प्रयोग में दक्षिण और वाम दोनों भागों को क्रमशः सात-सात भागों में प्रविभक्त कर यथाविधि होम करे ॥ २१४ ॥

हुत्वैवमर्चयेदग्निं प्रणमेद्दण्डवत्ततः ।
यजमानो धनैर्धान्यैः प्रीणयेद् गुरुमात्मनः ॥ २१५ ॥

इस प्रकार होम कर अग्नि की अर्चना करे । पुनः दण्डवत् प्रणाम करे । तदनन्तर यजमान धन-धान्य से अपने गुरु को प्रसन्न करे ॥ २१५ ॥

अनेन मनुना मन्त्री वशयेदसुरान सुरान् ।
किं पुनर्मनुजान् भूपान् सद्योऽप्यस्य विमोहिताः ॥ २१६ ॥

मन्त्रज्ञ इसी क्रम से मन्त्र के प्रयोग से सुर और असुरों को भी वश में कर लेता है । फिर मनुष्यों और राजाओं की बात ही क्या? वे तो स्वयं ही इससे विमोहित हो जाते हैं ॥ २१६ ॥

मारणे पूर्वसम्प्रोक्तं पुत्तलीनां चतुष्टयम् ।
निवेशयद् यथापूर्वं साधकेन्द्रो यथाविधि ॥ २१७ ॥
अपरां वक्ष्यमाणेन विधानेन प्रकल्पयेत् ।
वराहपारावतविट् तिलद्रुमैश्च रामठैः ॥ २१८ ॥
रिपोर्नखैश्च केशैश्च तथा वामाङ्घ्रिरेणुजैः ।
स्नुहिक्षीरेण सम्पिष्टैः पूर्वोक्तलवणान्वितैः ॥ २१९ ॥

विधाय पुत्तली: सम्यक् प्राणस्थापनमाचरेत् ।
जपपूजादिकं कुर्यात् प्रागुक्तवर्त्मना सुधी: ॥ २२० ॥

मारण कर्म में साधक पूर्वोक्त केवल चार पुत्तलियों का यथाविधि सम्प्रयोग करे। इन पुत्तलियों को अन्य कही जाने वाली विधि से निर्माण करे । सूकर, कबूतर, का विट्, तिल्ली, हींग, शत्रु का नख, शत्रु का केश तथा उसके बायें पैर की धूलि, इन सभी को पूर्वोक्त लवण के साथ स्नुही वृक्ष के दूध में पीसे । फिर इनकी पुत्तली बनाकर उसमें प्राण स्थापन करे । तदनन्तर पूर्वोक्त विधि से जप पूजादि कार्य यथाविधि सम्पन्न करे ॥ २१७-२२० ॥

तत: पूर्वोदिते भागे रात्रौ प्रज्वलितेऽनले ।
दुर्गां वा भद्रकालीं वा समाराध्य यथाविधि ॥ २२१ ॥
धारयेन्निशितं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधक: ।
वामं पादं समारुह्य दक्षिणं ध्रुवमानस: ॥ २२२ ॥
छित्त्वा छित्त्वा हुनेन्मन्त्री निराहारो जितेन्द्रिय: ।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी ॥ २२३ ॥

इसके बाद पूर्वोदित रात्रि के भाग में भगवती दुर्गा या भद्रकाली का यथाविधि आराधन कर साधक सव्य (बायें) हाथ में तलवार ग्रहण करे । फिर निराहार एवं जितेन्द्रिय होकर पूर्वोक्त पुत्तली के बायें पैर पर चढ़कर दक्षिण को स्थिर कर उस पुतली को काट-काट कर हवन करे । यह हवन कार्य कृष्णाष्टमी से लेकर कृष्ण चतुर्दशी तक करे ॥ २२१-२२३ ॥

अनेनैव विधानेन होमं कुर्याद्विचक्षण: ।
द्विसप्ताहप्रयोगेण मारयेत् रिपुमात्मन: ॥ २२४ ॥

यदि इस क्रम से विचक्षण साधक दो सप्ताह पर्यन्त हवन करे तो वह अपने शत्रु को मार देता है ॥ २२४ ॥

क्रूरे रोगे ग्रहे सर्पे तर्जन्या संस्पृशन् जपेत् ।
स्मृत्वा शूलधरां देवीं देवांश्च तत्क्षणाज्जयेत् ॥ २२५ ॥

रोग में, ग्रहबाधा में अथवा सर्प भय उपस्थित होने पर क्रूर त्रिशूलधारिणी भगवती देवी का स्मरण कर तर्जनी से पुतली का स्पर्श कर जप करे तो वह देवताओं को भी तत्क्षण ज़ीत लेता है ॥ २२५ ॥

दर्भितं साध्यनामानं समुद्दिष्टञ्च संलिखेत् ।
कुलालमृत्तिकायां तु प्रतिमायां हृदि न्यसेत् ॥ २२६ ॥

कृतप्राणप्रतिष्ठां - तां पूजितां कुसुमादिभिः ।
विधायाग्निं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ २२७ ॥
संख्यासम्पूर्णमात्रेण वशमायाति वाञ्छितम् ।
अभ्यर्च्य च ततः पश्चात् तीक्ष्णतैलेन मन्त्रवित् ॥ २२८ ॥
कृत्वायुतं विधायार्घ्यं तीक्ष्णतैलेन च पुनः ।
तेषु सम्पातयेद् भूयः स्पृष्ट्वा तान्ययुतं जपेत् ॥ २२९ ॥
वेधयेत् परसेनायां क्षणान्नष्टा दिशो दश ।
प्राप्नुयान्नष्टसञ्ज्ञायां पलायनपरायणः ॥ २३० ॥

कुलाल की मृत्तिका की पुत्तली बनाकर उसके हृदय में साध्य का नाम दर्भित कर लिखे । फिर न्यास कर उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर पुष्पादि से पूजा करे । फिर अग्निस्थापन कर आठ हजार की संख्या में जप करे । इस प्रकार संख्या की पूर्त्ति होते-होते उसे उसका अभीष्ट प्राप्त हो जाता है । इसके बाद मन्त्रवेत्ता तीक्ष्ण (नीम) तैल से पूजा करे और दश हजार जप करे तथा तीक्ष्ण तैल का अर्घ्य बनाकर उन पुत्तलियों पर गिरावे । पुनः दश हजार जप करे । उससे शत्रु सेना का बेधन करे तो दशों दिशाओं में रहने वाली शत्रु सेना नष्ट हो जाती है; मूर्च्छित हो जाती है और भाग जाती है ॥ २२६-२३० ॥

जपित्वा सिद्धगुञ्जानां कुडवञ्चानलोदरे ।
निःक्षिपेत् शत्रुसेनायां गूढं रात्रिसमागमे ॥ २३१ ॥
ज्वरमारीमहारागैः पीडितः सैन्यनायकः ।
परस्परविरोधेन गच्छेद्विगतचेष्टया ॥ २३२ ॥

यदि उस पुत्तली को रात्रि के समय एक कुडव परिमाण के गुञ्जा की अग्नि में उसे स्थापित कर जप करे । फिर शत्रु सेना में उसे फेंक देवे, तो सेनापति ज्वर या महामारी आदि महारोगों से पीड़ित हो जाता है और परस्पर विरोध कर अपना पराक्रम नष्ट कर देता है ॥ २३१-२३२ ॥

शिलासंस्तम्भने मन्त्री करैकसुरसम्भवैः ।
साध्यपादरजोयुक्तो होमादुच्चाटयेत् रिपून् ॥ २३३ ॥

शिला के समान संस्तम्भन कार्य में मन्त्रज्ञ एक हाथ से साध्य के पैर की मिट्टी मिलाकर होम करे तो शत्रु का उच्चाटन कर देता है ॥ २३३ ॥

करे दारुमयीं कृत्वा प्रतिमामतिशोभनाम् ।
शप्तां प्रतिष्ठितप्राणां छेदयेदङ्गशः पुरः ॥ २३४ ॥
काकोलूकवसायुक्तमष्टोत्तरसहस्रकम् ।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां श्मशाने हव्यवाहने ॥ २३५ ॥
जुहुयाज्जायते शत्रुर्यमगेहं दिनत्रयात् ।

अपने हाथ से ही शत्रु की अत्यन्त मनोहर काष्ठ प्रतिमा निर्माण करे और उसे अभिशप्त करे । पुनः प्राण प्रतिष्ठा करे । फिर अपने आगे उसका एक एक अङ्ग छेदन कर काक और उलूक की चर्बी मिलाकर आठ हजार की संख्या में हवन करे । यह होम कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में श्मशान की अग्नि में करे, तो शत्रु तीन दिन के भीतर यमराज के घर पहुँच जाता है ॥ २३४-२३६ ॥

उन्मत्तसमिधां होमान्मत्ताः स्युः शत्रवः क्षणात् ॥ २३६ ॥

साधक द्वारा उन्मत्त (धत्तूर) की समिधा में होम करने से शत्रु क्षणभर में पागल हो जाता है ॥ २३६ ॥

उलूककाकयोः पक्षं सवसारक्तसंयुतम् ।
जुहुयान्निशि कान्तारे शत्रु कालातिथिर्भवेत् ॥ २३७ ॥

उलूक और काक का पक्ष जो उनके वसा और रक्त से संयुक्त हो, साधक रात्रि के समय किसी दुर्गम कान्तार में होम करे तो शत्रु काल (=यम) का अतिथि बन जाता है ॥ २३७ ॥

शत्रोः प्रतिकृतिं मन्त्री प्रतिष्ठितसमीरणाम् ।
विषलिप्तविलिप्ताङ्गीमभ्युक्ष्य निक्षिपेज्जले ॥ २३८ ॥
ज्वराक्रान्तो भवेच्छीघ्रं दुग्धसेकात् सुखं नयेत् ।

मन्त्रज्ञ शत्रु की प्रतिमा निर्माण करे और उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करे । उसे विष के लेप से लेपित कर पुनः प्रोक्षण कर जल में फेंक देवे, तो शत्रु शीघ्र ही ज्वराक्रान्त हो जाता है । पुनः उस प्रतिमा को दूध से सिञ्चित करे तो वह सुखी हो जाता है ॥ २३८-२३९ ॥

प्रकारान्तरप्रयोगकथनम्

तर्जनीत्रिशिखं दोर्भ्यां धारयन्तीं भयङ्करीम् ॥ २३९ ॥
रक्तां ध्यात्वा रवेर्विम्बे प्रजपेदयुतं मनुम् ।
मारयेदविवादेन रिपून् बन्धुसमन्वितान् ॥ २४० ॥

साधक सूर्यमण्डल में अपने दोनों हाथों में तर्जनी (धनुष?) और बाण धारण की हुई रक्त वर्ण वाली भगवती का ध्यान करते हुये दश हजार की संख्या में जप करे, तो वह साधक बिना किसी विवाद के अपने बन्धु-बान्धवों सहित शत्रु को नष्ट कर देता है ॥ २३९-२४० ॥

खड्गखेटधरां क्रुद्धां सिंहस्थां रविमण्डले ।
ध्यात्वा मन्त्रं जपेन्मन्त्री पूर्ववन्नाशयेदरीन् ॥ २४१ ॥

सूर्यमण्डल में सिंह पर बैठी हुई खड्ग खेट हाथों में लिये हुये भगवती का ध्यान कर मन्त्रज्ञ साधक जप करे तो वह पूर्व की भाँति समस्त शत्रुओं को नष्ट कर देता है ॥ २४१ ॥

चापबाणधरां भीमां सिंहस्थां ज्वलनोपमाम् ।
सृजन्तीं बाणनिवहान् धारयन्तीं च तर्जनीम् ॥ २४२ ॥
ध्यात्वा जपेन्निजं मन्त्रमयुतं जलमध्यतः ।
रिपुञ्च परसेनाञ्च शीघ्रमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥ २४३ ॥

जल के मध्य में धनुष-बाण धारण की हुई सिंह पर सवार अग्नि के समान जाज्वल्यमान भीमा का जो तर्जनी (?) और बाण समूहों को धारण की हुई हैं उनका ध्यान कर दश हजार जप करे तो साधक शत्रु और शत्रु सेना का शीघ्र उच्चाटन कर देता है, यह निश्चित है ॥ २४२-२४३ ॥

प्रेतपिण्डं समादाय गोलकं कारयेत्ततः ।
साध्यनामाङ्कितं कृत्वा शत्रुसदृशपुत्तलीम् ॥ २४४ ॥
जीवं तत्र निधायैव चिताग्नौ प्रक्षिपेत्ततः ।
एकायुतं जपं कृत्वा त्रिरात्रान्मारणं भवेत् ॥ २४५ ॥

प्रेतपिण्ड लेकर उसका गोला बनावे । उससे साध्य नामांकित शत्रु के आकार की पुत्तली का निर्माण करे और उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर साधक चिता की अग्नि में उसे फेंक देवे । फिर साधक दश हजार जप करे तो शत्रु तीन दिन के भीतर मर जाता है ॥ २४४-२४५ ॥

पूर्ववत् पुत्तलीं कृत्वा जप्त्वा च पूर्ववर्त्मना ।
महाज्वाला भवेत्तस्य तप्तताम्रशलाकया ॥ २४६ ॥
गुह्यद्वारे प्रविन्यस्य सप्ताहान्मरणं रिपोः ।
कुण्डलिन्या मुखे क्षिप्त्वा वैरिणं साधकोत्तमः ॥ २४७ ॥
तस्मात् कालाग्निमध्ये च प्रक्षिप्य दहनञ्चरेत् ।
प्रातरेव विभाव्याथ जपेदयुतसंख्यकम् ॥ २४८ ॥
त्रिसप्ताहप्रयोगेण रिपुर्याति यमालयम् ।

पूर्ववत् शत्रु की पुत्तली बनाकर फिर तप्त ताम्रशलाका को उसके गुदा स्थान में सन्निविष्ट कर पूर्व की भाँति जप करे तो शत्रु को शरीर में महाज्वाला उत्पन्न हो जाती है जिससे उस शत्रु का एक सप्ताह में मरण हो जाता है । साधकोत्तम

अपने शत्रु को उस पुत्तली की कुण्डलिनी के मुँख में फेंक देवे । फिर वहाँ से निकाल कर कालाग्नि में ज़ला देवे । प्रातःकाल में यह क्रिया कर दश हजार की संख्या में जप करे । इस प्रकार तीन सप्ताह तक प्रयोग करने से शत्रु यमराज के घर चला जाता है ॥ २४६-२४९ ॥

भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे निम्बपत्रे विलिख्य च ॥ २४९ ॥
पूजां कृत्वा दहेदग्नौ तदा शत्रुनिकृन्तनम् ।
वह्निपत्रे रिपोर्विद्यां लिखित्वा पत्रकेऽमले ॥ २५० ॥
पुटान्तं मन्त्रमुद्भाव्य पटे कृत्वा विदर्भ्य च ।
सहस्रजन्मभिर्जप्त्वा विद्या न हि फलप्रदा ॥ २५१ ॥

भोजपत्र स्वर्णपत्र अथवा निम्बपत्र पर यन्त्र लिखकर पूजा करे और उसे अग्नि में जला दे तो शत्रु विनष्ट हो जाता है । वह्नि पत्र (स्वर्णपत्र) पर शत्रु की विद्या लिखे। फिर मन्त्र लिखकर दो पत्रों से उसे सम्पुटित करे और वस्त्र में स्थापित कर उसे विदर्भित कर दे तो शत्रु की वह विद्या एक हजार जन्मों तक भी जप करने पर फलवती नही होती ॥ २४९-२५१ ॥

पत्राभावे कुले पात्रे रक्तचन्दननिर्मितम् ।
वह्निबीजं पुटं कृत्वा दृष्ट्या दग्ध्वा विचिन्त्य च ॥ २५२ ॥
वामहस्तेन जुहुयाल्लुप्तं स्यान्नात्र संशयः ।

यदि पत्र न प्राप्त हो तो कुलवृक्ष (=बेल?) के पत्र में रक्तचन्दन से बने हुये वह्नि बीज (रं) को सम्पुटित कर उसको दृष्टि से जला देवे और उसका ध्यान करे फिर बायें हाथ से हवन करे तो वह शत्रु प्रयुक्त विद्या लुप्त हो जाती है इसमें संशय नहीं ॥ २५२-२५३ ॥

पद्मपत्रे यस्य मन्त्रं पुटीकृत्य च दीपनैः ॥ २५३ ॥
मृण्मध्ये निक्षिपेत्तोये तद्वद्बोधो भविष्यति ।
वाङ्मायाकमलाबीजं दीपनं परिकीर्त्तितम् ॥ २५४ ॥

पद्म पत्र में जिस मन्त्र को दीपन मन्त्र से सम्पुटित कर मिट्टी के बर्त्तन में स्थित जल में उसे डाल देवे, तब वह मन्त्र प्रबुद्ध हो जाता है । वाङ् (ऐं), माया (ह्रीं), कमला (श्रीं)—यह दीपन मन्त्र कहा गया है ॥ २५३-२५४ ॥

मृत्पात्रे तु मृतं लिख्य मृदा तीर्थ पुटीकृतम् ।
जले च निक्षिपेन्मन्त्रं पुनर्नव इतीरितः ॥ २५५ ॥

मृत मन्त्र को मिट्टी के बर्त्तन में लिखकर उसमें स्थित जल को तीर्थ की मिट्टी से ही सम्पुटित करे । फिर उसे जल में फेंक देवे, तो वह मन्त्र पुनः नवीन हो

जाता है ॥ २५५ ॥

यन्मनुं तं मनुं दग्धं नवोदितशशी यथा ।
कारयेदक्षवृक्षेणाऽप्येदायुध पञ्चकम् ॥ २५६ ॥
शङ्खखड्गरथाङ्गानि शार्ङ्गकौमोदकी क्रमात् ।
पञ्चगव्येषु निक्षिप्य तानि स्पृष्ट्वा जपेन्मनुम् ॥ २५७ ॥
अवटान् पञ्च निखनेद्दिक्षु पूर्वोदितक्रमात् ।
अवटेषु च पूर्णेषु पञ्चगव्येन साधकः ॥ २५८ ॥
अधराणि प्रजनानि पञ्चघोषपुरःसरम् ।
निवसेत्तस्य मध्यादि पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ २५९ ॥
बालुकाभिः समापूर्य मृद्भिः कुर्यात् समन्ततः ।
बलिञ्च विकिरेत्तत्र तेषां मन्त्री यथाक्रमात् ॥ २६० ॥
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
दीनांश्च कृपणादींश्च तोषयेद् भोजनादिभिः ॥ २६१ ॥

जो मन्त्र दग्ध होता है उसे भी साधक इस प्रक्रिया से नवीन उदीयमान चन्द्रमा के समान बना देता है । अक्ष (विभीतक) वृक्ष के काष्ठ से शङ्ख, खड्ग, चक्र, शार्ङ्ग और कौमोदकी गदा का निर्माण करे । फिर उसे पञ्चगव्य में डालकर उसका स्पर्श करते हुये मन्त्र का जप करे । पुनः पूर्वादि दिशाओं के क्रम से तथा मध्य में पाँच गड्ढा खोदे । उन अवटों (गड्ढों) को पञ्चगव्य से भर देवे । फिर पञ्च घोषों (वर्णों) के साथ उन्हें उसमें डालकर, उसके मध्य में रहकर यथाविधि पूजन करे और उसे वालुका तथा मिट्टी से चारों ओर भर देवे । फिर मन्त्रज्ञ साधक क्रमानुसार उन आयुधों को बलि प्रदान करे । दिक्पालों को बलिदान कर ब्राह्मणों को भोजन करावे । दीन और सर्वथा असमर्थ लोगों को भी भोजन देकर सन्तुष्ट करे ॥ २५६-२६१ ॥

गुरवे दक्षिणां दद्यात् यथावित्तानुसारतः ।
यत्रेयं विहिता रक्षा देशे वा नगरेऽपि वा ॥ २६२ ॥
ग्रामे गेहे तथा क्षेत्रे वर्धन्ते सम्पदः सदा ।
अग्न्युत्पातादयो दोषा भूतप्रेतादि संयुताः ॥ २६३ ॥
अभिचारकृताः कृत्यरिपुचौराद्युपद्रवाः ।
नेक्षन्तां तां दिशं भीत्या तर्जिता देवताज्ञया ॥ २६४ ॥

अपने वित्त के अनुसार गुरु को दक्षिणा देवे । जिस देश में अथवा नगर में, अथवा ग्राम में, अथवा गृह क्षेत्र में विधानपूर्वक इस प्रकार रक्षा विधि की जाती है

वहाँ निरन्तर सम्पत्ति की अभिवृद्धि होती है । अग्निजन्य उत्पातादि दोष तथा भूत प्रेतादि दोष, मारणजन्य दोष, कृत्या एवं शत्रुचोरादि के उपद्रव जिस दिशा में होते हैं उस दिशा की ओर आँख उठाकर न देखें । क्योंकि वे दिशायें देवता की आज्ञा से भय संयुक्त हो जाती हैं ॥ २६२-२६४ ॥

यस्माच्च कथितं ग्रन्थं षट्कर्मविधिमुत्तमम् ।
गोप्तव्यञ्च प्रयत्नेन नान्यथा नरकं व्रजेत् ॥ २६५ ॥

हमने जिन कारणों से यह उत्तम षट्कर्म का विधान कहा है । इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखे अन्यथा नरक[१] जाना होता है ॥ २६५ ॥

हृदि कालीं यजेद्यत्नात् ध्यानं तस्याः प्रचक्षते ।

कालिकाध्यानम्

ध्यायेत् कालीं करालास्यां सुदंष्ट्रां भीमलोचनाम्॥ २६६ ॥
स्फुरन्मरकतश्रेणीं करकाञ्चीं दिगम्बरीम् ।
वीरासनसमासीनां महाकालोपरिस्थिताम् ॥ २६७ ॥
श्रुतिमूलसमाकीर्णां सृक्कणीं चण्डनादिनीम् ।
मुण्डमालागलद्रक्तचर्चितां पीवरस्तनीम् ॥ २६८ ॥
मदिरामोदितास्फालकम्पिताखिलमेदिनीम् ।
वामे खड्गमुण्डखण्डधारिणीं दक्षिणे करे ॥ २६९ ॥
वराभययुतां घोरवदनां लोलजिह्विकाम् ।
शकुन्तपक्षिसंयुक्तां बालचन्द्रविभूषिताम् ॥ २७० ॥
शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ।
चण्डहासचण्डनादचण्डस्फोटैश्च भैरवैः ॥ २७१ ॥
गृहीत्वा नरकङ्कालं जयशब्दपरायणैः ।
सेविताशेषसिद्धौघसेवितैः सेवितां सदा ॥ २७२ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
एकोनविंशोल्लासः ॥ १९ ॥

यह षट्कर्म साधक हृदय में महाकाली का ध्यान करते हुये करे । अब ध्यान की जाने वाली उन भगवती काली का स्वरूप कहता हूँ ।

काली का ध्यान—कराल मुख वाली, सुदंष्ट्रा एवं भीमलोचना यह काली

१. पुस्तक में पढ़कर षट्कर्म प्रयोग नहीं करना चाहिए । त्रुटि होने पर साधक स्वयं मर जाता है । बिना गुरु के इन कर्मों को कदापि न करे ।

देदीप्यमान मरकत मणि के समान चमकीली हैं। मुर्दा के हाथ की काञ्ची (करधनी) धारण किये हुये दिगम्बरा हैं। महाकाल के ऊपर वीरासन से स्थित हैं। इनकी लपलपाती जीभ कान तक फैली हुई है। मुण्डमाला से गिरते हुये रक्त से सुशोभित है और स्तन अत्यन्त मोटा है। मदिरा के मद से प्रसन्न होकर जब चलती हैं तो पृथ्वी डगमगा जाती है। जो अपने बायें हाथ में खड्ग और मुण्डमाला तथा दाहिने हाथ में वर और अभयमुद्रा धारण की हुई हैं। जिनका मुख अत्यन्त भयङ्कर तथा जिह्वा लपलपा रही है। जो शकुन्त पक्षि लिये हुये हैं। जिनका मस्तक बाल चन्द्र से विभूषित है। घोर शब्द करने वाली शृगालियाँ जिनकी चारों ओर से सेवा कर रही हैं। जो प्रलय के समान अट्टहास कर रही हैं और चण्डहास तथा चण्डनाद तथा चण्डस्फोट करने वाले एवं नरकङ्काल लेकर जय-जयकार शब्द करते हुए भैरव गणों द्वारा जो संस्तुत एवं सेवित हैं साधक इस प्रकार की महाकाली का ध्यान करे ॥ २६६-२७२ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के उन्नीसवें उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १९ ॥

विंश उल्लासः

...꧁❀꧂...

लुकीविद्याविवेचनम्

अथ चात्रसमासेन लुकी विद्या प्रचक्ष्यते ।
भौमवारे निशीथे च चतुष्पथगतो नरः ॥ १ ॥
दिग्वासा मुक्तकेशश्च मकारपञ्चकैः सह ।
स्वकल्पोक्त विधानेन सम्पूज्य निजदेवताम् ॥ २ ॥
माषभक्तबलिं दद्यात् सदग्धमीनशोधितम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जप्त्वा स्तुत्वा च साधकः ॥ ३ ॥
सोऽदर्शनो भवत्याशु षण्मासाभ्यासयोगतः ।

अब यहाँ संक्षेप में लुकी विद्या (अदृश्य हो जाना) के विषय में कहता हूँ । भौमवार के दिन आधी रात के समय मनुष्य किसी चौराहे पर जावे । वहाँ नङ्गा होकर अपने केशों को खोलकर पञ्च मकारों के साथ अपने सम्प्रदायानुसार देवता का पूजन कर जलाई गई मछली से संयुक्त माष (उड़द) और भात की बलि देवे। फिर साधक आठ हजार की संख्या में जप करे और स्तुति करे । इस प्रकार निरन्तर छह मास तक अभ्यास के योग से वह अदृश्य हो जाता है ॥ १-४ ॥

वेतालसिद्धिकथनम्

अथ वक्ष्ये च वेताल सिद्धिं सर्वोत्तमोत्तमाम् ॥ ४ ॥
विल्ववृक्षोद्भवं काष्ठं श्मशाने साधकोत्तमः ।
भौमवारे मध्यरात्रौ गत्वा कुलयुगान्वितः ॥ ५ ॥
खनित्वा काष्ठं लक्षं वै जपेन्महिषमर्दिनीम् ।
सहस्रं होमयेद्वीरस्तत्रैव पितृकानने ॥ ६ ॥

अब सर्वोत्तमोत्तम बेताल सिद्धि कहता हूँ । उत्तम साधक बिल्व वृक्ष का काष्ठ लेकर श्मशान में भौमवार के दिन अर्धरात्रि के समय दो कौलों के साथ जावे । वहाँ खनकर काष्ठ स्थापित कर एक लाख महिषमर्दिनी का जप करे । फिर वहाँ उस श्मशान में साधक एक सहस्र होम करे ॥ ४-६ ॥

काष्ठमुद्धृत्य तेनैव दण्डं पादुकचिह्नितम् ।
कृत्वा दुर्गाष्टमीरात्रौ श्मशाने निःक्षिपेत्ततः ॥ ७ ॥
तस्योपरि शवं कृत्वा निजदेवीं प्रपूज्य च ।
शवासनगतो वीरो जपेदष्टसहस्रकम् ॥ ८ ॥

फिर बिल्व काष्ठ को खनकर निकाले । फिर उसके दण्डे पर पादुका (खड़ाऊँ) का चिन्ह बनाकर दुर्गाष्टमी की रात में श्मशान में स्थापित कर दे । फिर उसके ऊपर शव स्थापित कर अपनी देवी का पूजन कर वह वीर साधक शवासन पर बैठकर आठ हजार की संख्या में जप करे ॥ ७-८ ॥

ततो मातृबलिं दद्यात् काष्ठमामन्त्रयेत्ततः ।
स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदयप्रिय ॥ ९ ॥
मम हस्तस्थितो देव ममाज्ञां परिपालय ।
एवमामन्त्र्य वेतालं यत्र यत्र प्रपूज्यते ॥ १० ॥
तत्र तूर्णं विहायाथ पुनरायाति कौलिकम् ।
गच्छ गच्छ महाभागे पादुके वरवर्णिनि ॥ ११ ॥
मत्पादस्पर्शमात्रेण स याति शतयोजनम् ।
एवमामन्त्र्य पादुकां दद्यात् पादतले ततः ॥ १२ ॥
यत्रेच्छा वर्त्तते तस्य तत्र गच्छेद् यथासुखम् ।

फिर मातृ बलि देवे और उसी काष्ठ पर बेताल का 'स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदयप्रिय, मम हस्तस्थितो देव ममाज्ञां परिपालय' पर्यन्त मन्त्र से आवाहन करे । इस प्रकार बेताल का आमन्त्रण कर जहाँ-जहाँ उसकी पूजा करे, वह बेताल अपने स्थान को छोड़कर शीघ्र कौलिक के पास चला आता है । फिर पादुका का भी 'गच्छ गच्छ महाभागे पादूके वर वणिनि' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे तो वह साधक उसके पादुका तल के स्पर्श मात्र से सैकड़ों योजन दूर चला जाता है । इस प्रकार पादुका का आमन्त्रण कर उस पर अपना पैर रखे तो जहाँ साधक की इच्छा हो वहाँ यथासुख चला जाता है ॥ ९-१३ ॥

खड्गसिद्धिकथनम्

अथ वक्ष्ये खड्गसिद्धिं साधकानां हिताय च ॥ १३ ॥
अष्टलौहं समादाय पञ्चाशदङ्गुलं मतम् ।
कृत्वा तत्र मूलमन्त्रं लिखित्वा प्रजपेन्मनुम् ॥ १४ ॥
पूर्वसंख्यं पूर्वमन्त्रं जप्त्वा च तदनन्तरम् ।
तत् सहस्रं ततो हुत्वा महाशवकलेवरे ॥ १५ ॥

खड्ग सिद्धि—अब साधकों के हित के लिये खड्गसिद्धि का प्रकार कहता हूँ। पचास अङ्गुल का अष्ट लौह लेवे । उसका तलवार बनाकर उस पर मन्त्र लिखकर पूर्व संख्या में पूर्व मन्त्र का जप कर, तदनन्तर महाशव के शरीर के ऊपर तो एक सहस्र होम करे ॥ १३-१५ ॥

खनित्वा जीववृक्षाग्रे बद्ध्वा शुष्कं तु कारयेत् ।
कुलाष्टम्यामर्धरात्रे चितामध्ये समाहितः ॥ १६ ॥
प्रीति पूर्वं समामन्त्रा हुनेत् पितृवने ततः ।
मधुरत्रयसंयुक्तं विल्वपत्रेण संयुतम् ॥ १७ ॥
पादादिमूर्धपर्यन्तं होमान्ते बलिमाहरेत् ।
बल्यन्ते सा महामाया देवी महिषमर्दिनी ॥ १८ ॥
आयाति वरपूर्णास्या वरहस्ता हसोन्मुखी ।
गृध्रवदतिशब्देन खड्गमुत्तोल्य धारयेत् ॥ १९ ॥

फिर उस शव को जीववृक्ष (पुत्रजीव?) के आगे खनकर एवं बाँधकर शुष्क करे । फिर कुलाष्टमी के दिन अर्धरात्रि के समय चिता के मध्य में स्थिरचित्त हो बैठ कर प्रीतिपूर्वक देवी का आमन्त्रण कर उसी श्मशान में बिल्वपत्र सहित मधुरत्रय (दही, घृत, मधु) से पादादि मूर्धा पर्यन्त शव का होम करे । होम कर लेने के पश्चात् बलि देवे । बलि प्रदान के पश्चात् महिषमर्दिनी महामाया, वरदान देने के लिये मुख में वाणी तथा हाथ में वरदान लिये हुये, हँसती हुई, गृध्र के समान भयङ्कर शब्द करती हुई तलवार देती हैं । तत्त्वज्ञ साधक उस तलवार को ऊपर उठाकर धारण करे ॥ १६-१९ ॥

घोरदंष्ट्रे महाकालि करवालस्वरूपिणि ।
कां ईं ऊं कुरु कल्याणि विपक्षादपि विस्तरम् ॥ २० ॥
तत एवं समामन्त्र्य यमुद्दिश्य क्षिपेन्नरः ।
छित्त्वा छित्त्वा पुनश्छित्त्वा गतोऽप्याकृष्यते पुनः ॥ २१ ॥

फिर घोरद्रंष्ट्रे महाकालि ....कल्याणि विपक्षादपि विस्तरम्' पर्यन्त श्लोक मन्त्र पढ़कर उस तलवार को अभिमन्त्रित करे । जिसे उद्देश्य कर साधक उस तलवार को ऊपर फेंकता है वह उसका छेदन कर, छेदन कर, पुनः छेदन कर, वहाँ जाकर भी पुनः उसी के पास चला आता है ॥ २०-२१ ॥

फेत्कारिणीसिद्धिकथनम्

फेत्कारिण्यां महासिद्धिं वक्ष्यामि तन्त्रवर्त्मना ।
कुलमीनं कुलद्रव्यं कुलमद्यं कुलेश्वरः ॥ २२ ॥

कुलस्थाने समानीय दत्त्वा देव्यै प्रयत्नतः ।
विधिवत् पूजनं कृत्वा साधकः स्थिरमानसः ॥ २३ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु जप्त्वा भूमितले स्थितः ।
भूमौ फूत्कारमात्रेण विवरं तत्र जायते ॥ २४ ॥
शतयोजनदूरे वा यत्र साध्यस्थितिर्भवेत् ।
तत्रैव गमनं तस्य भूतलान्तः प्रसर्पिणः ॥ २५ ॥

फेत्कारिणी सिद्धि—अब तन्त्र मार्ग के अनुसार फेत्कारिणी (फूँक मारने) की सिद्धि का विधान कहता हूँ। कुलेश्वर साधक कुल मीन, कुल द्रव्य और कुल मद्य को कुल स्थान में लाकर स्थिरचित्त से उन वस्तुओं द्वारा पूजन कर पृथ्वी के भीतर गड्ढा खोदकर एक हजार आठ बार जप करे तो उसके फुत्कार करने मात्र से ही एक बहुत बड़ा विवर हो जाता है । उस रास्ते से एक-सौ योजन दूर भी यदि उस साधक का वाञ्छित मनोरथ रहे तो भी पृथ्वी के भीतर से वह वहाँ पहुँच जाता है ॥ २२-२५ ॥

एवं विवरमध्ये च गवाक्षैरपि साधकः ।
कायसङ्कोचमासाद्य गच्छत्यविकलो नरः ॥ २६ ॥

जिस प्रकार साधक विवर के मध्य से जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है, उसी प्रकार वह गवाक्ष से भी अपने शरीर को सङ्कुचित कर सुखपूर्वक जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है ॥ २६ ॥

खेचरीसिद्धिकथनम्

खेचराख्यां महासिद्धिं प्रवक्ष्येऽहमतः परम् ।
यादिक्षान्तं चतुर्भागे सिन्दूररजसा लिखेत् ॥ २७ ॥

खेचरी सिद्धि—अब मैं खेचर (आकाशगमन) नाम की सिद्धि के विषय में कहता हूँ । चक्र के चतुर्थ भाग में सिन्दूर के रज से 'य' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त वर्ण लिखे ॥ २७ ॥

स्वीयचक्रं मातृकार्णैः संवेष्ट्य चैव मध्यतः ।
पूजयेत् रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण तु ॥ २८ ॥
तत्क्षणात् साधकश्रेष्ठः खेचरो भवति ध्रुवम् ।
एवं षण्मासयोगेन सिद्धो भवति साधकः ॥ २९ ॥

फिर उस चक्र को मातृका वर्णों से वेष्टित कर रात्रि के समय कुलाचार क्रम से उसके मध्य में पूजा करे । यदि इस प्रकार छह महीने तक निरन्तर करे, तो वह निश्चय ही खेचर (आकाशचारी) हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

अथ षडङ्ग-देवता

ओंकारस्फटिकश्यामानीलकृष्णारुणार्च्चिषः ।
वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ॥ ३० ॥

षडङ्ग देवता का निरूपण—अब षडङ्ग देवता का निरूपण करते हैं—ॐकार, स्फटिक, श्यामा, नीला, कृष्णा और अरुण वर्ण वाली—ये छह स्त्रियाँ षडङ्ग देवता के प्रधान शरीर हैं ॥ ३० ॥

देवताङ्गे षडङ्गः स्यात् सकलीकरणं भवेत् ।
अञ्जलिश्चार्घ्यवत् कृत्वा परमीकरणं भवेत् ॥ ३१ ॥
अमृतीकरणे देवि मुद्रा स्यादनुरूपिणी ।
हृदयं मध्यमानामा तर्जनीभिः स्मृतं शिरः ॥ ३२ ॥
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा स्मृता ।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम् ॥ ३३ ॥
प्रोक्ताङ्गुलीभ्यां मन्त्रं स्यात्ततस्तालत्रयं शिवे ।
दिशस्तेनैव बध्नीयात् छोटिकाभिः समन्ततः ॥ ३४ ॥

देवता के अङ्ग में षडङ्ग किया जाता है । अञ्जलि बाँधना सकलीकरण है अञ्जलि को अर्घ्य के समान बनाना परमीकरण है । हे देवि ! अमृतीकरण में उसी के अनुरूप मुद्रा बनावे । मध्यमा अनामिका से हृदय का, तर्जनी से शिर का, मध्यमा तर्जनी के साथ अङ्गूठा लगाकर शिखा का, दशो अङ्गुलियों से कवच का, तीन अङ्गुलियों से नेत्र का, दो अङ्गुलियों को मिलाकर तीन ताल देकर उन्हीं से चुटकी बजाते हुये चारों दिशा का बन्धन करे ॥ ३१-३४ ॥

अथ कालिकाकल्पं

शिव उवाच—

सङ्कटे राजभवने कारागारेषु बन्धने ।
स्मरणात् कालिका देवी सर्वबन्धविमोचिनी ॥ ३५ ॥

अब कालिका का कल्प कहते हैं । भगवान् शङ्कर ने कहा—सङ्कट, राजभवन तथा कारागार बन्धन में स्मरण करने से कालिका देवी सभी बन्धनों से मुक्त कर देती हैं ॥ ३५ ॥

चित्स्वरूपा महाकाली विष्णुरूपा महेश्वरी ।
ब्रह्माणी देवगन्धर्वसेविता शिवगेहिनी ॥ ३६ ॥

यह महाकाली १. चित्स्वरूपा, २. विष्णुरूपा, ३. महेश्वरी, ४. ब्रह्माणी, ५. देव-गन्धर्व सेविता तथा ६. शिवगेहिनी है ॥ ३६ ॥

ब्रह्मविष्णु प्रसूतेयं शिवमायात्मिका परा ।
साधकस्य क्षणं ध्यानात् प्रत्यक्षा सुरवन्दिता ॥ ३७ ॥

यह ब्रह्मा एवं विष्णु को उत्पन्न करने वाली हैं । यही परा शिव मायात्मिका हैं । यह सुरवान्दिता महादेवी साधक द्वारा क्षणमात्र ध्यान किये जाने पर प्रत्यक्ष हो जाती हैं ॥ ३७ ॥

प्रभावं कालिकादेव्या वक्तुं न शक्यते प्रिये ।
शतकोटिमुखेनापि पञ्चभिश्च कथं प्रिये ॥ ३८ ॥

शिवजी कहते हैं—हे प्रिये ! इन कालिका देवी का प्रभाव वर्णन सर्वथा अशक्य है । सौ करोड़ मुखों से भी जब इनका प्रभाव वर्णन अशक्य है, तो मेरे तो पाँच ही मुख हैं । भला इन (महिषमर्दिनी) का प्रभाव मैं किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ ॥ ३८ ॥

अस्माकं जननी देवी भक्त्या स्वदेहगामिनी ।
आदौ माता तथा गुप्ता मागुरीत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥

यही देवी हमारी माता है । हमारी भक्ति से हमारे शरीर में आई हुई हैं । यतः यह पहले हमारी माता हैं । इसके पश्चात् गुप्ता हैं । इसलिये ये 'मागुरी' कही जाती हैं ॥ ३९ ॥

मम साम्राज्यसाहाय्यं ममैव सिद्धिदायिनी ।
मम प्रभुत्वमापन्ना मम माता यशस्विनी ॥ ४० ॥

यही हमारी साम्राज्य की सहायिका हैं । यही मुझे सिद्धि प्रदान करने वाली हैं । मेरा प्रभुत्व प्राप्त कर यही मेरी यशस्विनी माता हैं ॥ ४० ॥

तया विना जगद्धात्रि स्पन्दितुं नैव शक्यते ।
इत्युक्त्वा शङ्करो मोहात् मूर्च्छितः पुनरुद्गतः ॥ ४१ ॥

हे जगद्धात्रि! उनके बिना मैं स्पन्दन (हिलना डुलना) करने में भी असमर्थ हूँ इतना कहकर शङ्कर मोह से मूर्च्छित हो गये और फिर उठ बैठे ॥ ४१ ॥

शिवदेहाद् घोररूपो भैरवः समजीजनत् ।
जातोऽसौ शङ्करो देव्याः पादपद्मं समाश्रितः ॥ ४२ ॥

तदनन्तर उन्हीं शिव के शरीर से महा भयङ्कर भैरव उत्पन्न हुये और उत्पन्न होते ही उन भैरव ने भगवान् शङ्कर और महादेवी के चरण कमलों का आश्रय ग्रहण किया ॥ ४२ ॥

आलिङ्ग्य पार्वती तेन रूपेण वपुरुच्यते ।

केवलं ध्यानयोगेन सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥ ४३ ॥

उन्होंने देवी पार्वती का जब अलिङ्गन किया, तो उनका शरीर पार्वती के शरीर के समान हो गया । उनके केवल ध्यान करने मात्र से साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ४३ ॥

सम्पूज्य लक्षमात्रं तु जप्त्वा त्रिदशतारिणीम् ।
प्रयोगप्रभवा देवी प्रसन्न भक्तवत्सला ॥ ४४ ॥

देवताओं को भी तरण-तारण करने वाली उन महाभगवती का पूजन कर एक लाख जप करे, तो इस प्रयोग से उत्पन्न होने वाली वह देवी साक्षात् भक्त-वत्सला हो जाती है ॥ ४४ ॥

अर्कपुष्पसहस्रेण पूजिता वरदायिनी ।
सहस्रं परिजप्यैतत् सन्ध्यायां रविवासरे ॥ ४५ ॥
धनवान् कामभोगीशो भवेत् सर्वजनप्रियः ।
सहस्रं परिजप्येत विपुलां कवितां लभेत् ॥ ४६ ॥

एक हजार मन्दार पुष्प से पूजा किये जाने पर वह वर प्रदान करती है । रविवार को सन्ध्याकाल में एक सहस्र जप करने से साधक धनवान्, काम भोग का ईश्वर और सर्वजनप्रिय बन जाता है । एक सहस्र जप करने से महाकवि हो जाता है ॥ ४५-४६ ॥

महदैश्वर्यमाप्नोति धर्मपत्नीरतो निशि ।
रक्तपुष्पशतेनापि मण्डिते कुजवासरे ॥ ४७ ॥
ब्रह्मपुष्पशतेनापि रक्तचन्दनचर्चितः ।
सम्पूज्य राजसम्मानं कुजवारे निशार्धके ॥ ४८ ॥
धर्मक्षेत्रे पद्मपुष्पैः सहस्रैः परिपूजयेत् ।
रवौ वारे त्रयोदश्यां हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥
सहस्रं परिजप्येत विपुलां कवितां लभेत् ।
पुत्रदाता निशाभागे धर्मपत्नीसाहयवान् ॥ ५० ॥
सञ्जपेन्निजशय्यायां निशि संयतमानसः ।
दीर्घमायुर्वशकरं पुत्रं संलभतेऽचिरात् ॥ ५१ ॥

रात में धर्मपत्नी से सम्भोग करता हुआ जप करे, तो महान् ऐश्वर्य प्राप्त करता है । मङ्गल के दिन सौ संख्याक लाल फूलों से अथवा सौ ब्रह्मवृक्ष के पुष्पों से, स्वयं रक्तचन्दन से अनुलिप्त होकर जप करे तो साधक राज सम्मान प्राप्त करता है । मङ्गलवार के दिन आधी रात के समय किसी धर्मक्षेत्र में एक सहस्र

कमल के पुष्पों से पूजा करे, अथवा रविवार को जब त्रयोदशी तिथि हो तब हविष्य भोजन कर जितेन्द्रिय साधक एक सहस्र की संख्या में जप करे तो बहुत बड़ी कविता करने की शक्ति प्राप्त करता है । रात्रि के समय धर्मपत्नी के साथ अपनी शय्या पर बैठकर एकाग्रचित्त हो इस मन्त्र का जप करे तो वह दीर्घ आयु, सम्पन्न एवं थोड़े ही दिनों में आज्ञाकारी पुत्र प्राप्त कर लेता है ॥ ४७-५१ ॥

रोचनाप्रस्थमात्रं तु मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ।
शतमष्टोत्तरं मन्त्रं धारयेत्तिलकं यदि ॥ ५२ ॥
राजानोऽपि हि दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः ।
परनारीरता ये वा जपन्ति पश्चिमामुखाः ॥ ५३ ॥
सहस्रं कालिका मन्त्रं धनाढ्यास्ते भवन्ति हि ।
चतुष्पथे सहस्रार्धं मुक्तकेशो दिगम्बरः ॥ ५४ ॥
अष्टवारं जपेद्योऽपि तस्य प्रीता च कालिका ।
अचलां कमलां लब्ध्वा सुखं प्राप्नोति भूतले ॥ ५५ ॥

प्रस्थ परिमाण की रोचना (=रोली) को इस मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर यदि साधक उसका तिलक लगावे, तो राजागण भी दास हो जाते हैं, मनुष्यों की तो बात ही क्या? दूसरी स्त्री में मैथुन करते हुये जो पश्चिमाभिमुख इस कालिका मन्त्र का जप एक हजार की संख्या में करते हैं वे धनाढ्य हो जाते हैं । साधक केशों को खोलकर नङ्गा होकर चतुष्पथ में यदि इस मन्त्र को पाँच सौ की संख्या में जप करे तो उस पर कालिका प्रसन्न हो जाती है और वह अचल महाश्री प्राप्त कर पृथ्वी में सुखी हो जाता है ॥ ५२-५५ ॥

कर्पूरपूरितमुखो निजनारीसमागमे ।
जपेत्तु कालिकाध्यानादष्टाधिकशतं निशि ॥ ५६ ॥
सुप्रीता कालिका स्वप्ने दर्शनं प्रददाति च ।
मत्स्याशी नित्यमांसाशी रात्रौ पश्चिमदिङ्मुखः ॥ ५७ ॥
शतमष्टोत्तरं कृत्वा यो जपेदर्धरात्रकम् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं तच्छत्रुर्यमवल्लभः ॥ ५८ ॥

मुख में कपूर धारण कर अपनी स्त्री से सहवास करते हुए रात्रि के समय कालिका का ध्यान करते हुये एक-सौ आठ की संख्या में जप करे तो कालिका प्रसन्न होकर स्वप्न में उसे स्वयं दर्शन देती हैं । मत्स्य एवं मांस का भोजन कर रात्रि के समय यदि साधक पश्चिमाभिमुख हो एक-सौ आठ की संख्या में जप करे तो यह सत्य है सत्य है पुनः सत्य है कि उसका शत्रु यमराज का वल्लभ अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥ ५६-५८ ॥

अर्कारण्ये जपेद्व्याघ्रचर्मणि प्रतिवासरम् ।
अष्टौ दिनानि लभ्येत कन्यां शीलगुणान्विताम् ॥ ५९ ॥

मदार के वन में बाघ के चर्म पर बैठकर यदि आठ दिन निरन्तर जप करे तो शील गुणों से युक्त कन्या प्राप्त कर लेता है ॥ ५९ ॥

अर्कवृक्षस्य मूले तु यो जपेत्त्रिदिनं निशि ।
सहस्रार्धप्रमाणेन धनदेन समो भवेत् ॥ ६० ॥

मन्दार वृक्ष के नीचे बैठकर रात्रि के समय जो साधक तीन दिन तक पाँच सौ की संख्या में जप करे तो वह कुबेर के समान धनवान् हो जाता है ॥ ६० ॥

सहस्रं परिजप्येत निशायां मङ्गले निशि ।
चतुष्पथे महारोगान्मुक्तो रोगी भवेद् ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

मङ्गलवार के दिन रात्रिकाल में चतुष्पथ में एक सहस्र की संख्या में जप करे तो रोगी रोग से निश्चित मुक्त हो जाता है ॥ ६१ ॥

भगलिङ्गस्य संयोगी पश्चिमाभिमुखी जनः ।
तस्य दारिद्र्यसंन्यासं करोति जपमस्तके ॥ ६२ ॥

भगलिङ्ग का संयोग कर जो मनुष्य पश्चिमाभिमुख हो जप करता है, उसकी दरिद्रता उसे त्याग देती है ॥ ६२ ॥

निजरामाभिगमने प्रक्षाल्य भगलिङ्गकम् ।
तज्जलं ताम्रपात्रेषु संस्थाप्य तर्पणं चरेत् ।
मूलमन्त्रेण देवेशि लभते महतीं श्रियम् ॥ ६३ ॥

अपनी स्त्री के पास जाकर भगलिङ्ग का प्रक्षालन कर उस जल को ताम्र पात्र में स्थापित कर साधक मूल मन्त्र से तर्पण करे, तो हे देवेशि ! बहुत बड़ी लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है ॥ ६३ ॥

सप्तशतीप्रयोगविधानम्

प्रथमचरितस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीच्छन्दो महाकालीदेवता नन्दा शक्ती रक्तदन्तिका बीजमग्निस्तत्त्वं महाकालीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

दुर्गासप्तशती के तीनों चरित्रों का विनियोग इस प्रकार है—'प्रथमचरितस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीच्छन्दो महाकालीदेवता नन्दा शक्ती रक्तदन्तिका बीजमग्निस्तत्त्वं महाकालीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः'—यह प्रथम चरित्र के पाठ का विनियोग कहा गया है ।

मध्यमचरितस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः शाकम्भरी शक्तिर्दुर्गा बीजं सूर्यस्तत्त्वं महालक्ष्मीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

'मध्यमचरितस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः शाकम्भरी शक्तिर्दुर्गा बीजं सूर्यस्तत्त्वं महालक्ष्मीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः'—यह मध्यम चरित्र का विनियोग कहा गया है ।

उत्तमचरितस्य रुद्र ऋषिः सरस्वती देवता उष्णिक्छन्दो भीमा शक्तिर्भ्रामरी बीजं वायुस्तत्त्वं सरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

'उत्तमचरितस्य रुद्र ऋषिः सरस्वती देवता उष्णिक्छन्दो भीमा शक्तिर्भ्रामरी बीजं वायुस्तत्त्वं सरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः'—यह सप्तशती के तीसरे उत्तम चरित्र का विनियोग कहा गया है ॥ ६३ ॥

आसां ध्यानं नाभौ—इनका ध्यान नाभि में कहा गया है ।

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा ।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ ६४ ॥
प्रस्फुरत् कुलदंष्ट्राभा भीमरूपा भयङ्करी ।
खड्गबाणगदाशूलशङ्खचक्रभुशुण्डिभृत् ॥ ६५ ॥
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ।
मधुकैटभयोर्युद्धे यैषा सा तामसी शिवा ॥ ६६ ॥

मधु और कैटभ के नाश के लिये ब्रह्मा जी ने जिनकी स्तुति की थी उन्हीं का नाम महाकाली है; उनके दश मुख, दश भुजायें और दश पैर हैं । वे काजल के समान काले वर्ण की हैं । तीस नेत्रों की विशाल माला से सुशोभित हैं । उनके दाँत और दाढ़ें चमकती रहती हैं और वह भीमरूपा भयङ्करी हैं । वे अपने हाथों में खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शङ्ख, भुशुण्डि, परिध, धनुष तथा शिर जिससे निरन्तर रक्त चूता रहता है ऐसा कटा हुआ मस्तक धारण करती हैं । वह तामसी शिवा युद्ध में मधुकैटभ के विनाश के लिये उत्पन्न हुई थी ॥ ६४-६६ ॥

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।
रक्तमध्या रक्तदेहा नीलजङ्घोरुजानुका ॥ ६७ ॥
चित्रानुलेपना कान्ता सर्वसौभाग्यशालिनी ।
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा रणे ॥ ६८ ॥

महिषासुर का मर्दन करने वाली भगवती महालक्ष्मी का मुख गोरा, भुजायें नील वर्ण की और स्तनमण्डल श्वेत वर्ण का है । उनका शरीर और कटिभाग रक्त है तथा जङ्घा एवं जानु नीले रङ्ग के हैं । वे चित्र अनुलेपन किये हुये अत्यन्त

कान्ति से युक्त हैं । किं बहुना, रूपवती और सौभाग्यशालिनी हैं । यद्यपि उनकी भुजायें अंसख्य हैं तथापि उन्हें अट्ठारह भुजाओं से युक्त मान कर उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६७-६८ ॥

आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात् ।
अक्षमालां तु मुषलं बाणासिं कुलिशं गदाम् ॥ ६९ ॥
चक्रं त्रिशूलं परशुं शङ्खखेटक पाशकम् ।
शक्तिदण्डचर्मपाशं पानपात्रं कमण्डलुम् ॥ ७० ॥
अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैः परमेश्वरीम् ।
स्मर्त्तव्या स्तुतिकालादौ महिषासुरमर्दिनी ॥ ७१ ॥

अब उनके दाहिने हाथ के निचले भाग से बायें हाथ के निचले भाग तक के अस्त्रों का वर्णन करता हूँ । अक्षमाला, मुषल, बाण, तलवार, कुलिश, गदा, चक्र, त्रिशूल, परशु, शङ्ख, खेटक, पाश, शक्ति, दण्ड, चर्म, पाश, पानपात्र और कमण्डलु इन अस्त्रों से उन परमेश्वरी की अष्टादश भुजायें सुशोभित हैं । स्तुति पूजा काल में इन महिषमर्दिनी देवी का स्मरण करना चाहिए ॥ ६९-७१ ॥

इत्येषा राजसी मूर्त्तिः सर्वदेवमयी मता ।
एवं ध्यात्वा नरो नित्यं लभेतेप्सितमात्मनः ॥ ७२ ॥

यह भगवती की राजसी मूर्त्ति है, जो सर्वदेवमयी कही जाती हैं । इनका ध्यान कर मनुष्य अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ ७२ ॥

गौरीदेहात् समुत्पन्ना या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ ७३ ॥
दधौ चाष्टभुजा बाणं मुषलं शूलचक्रकम् ।
शङ्खघण्टालाङ्गलञ्च कार्म्मुकञ्च तथा परम् ॥ ७४ ॥
ध्येया सा स्तुतिकालादौ वधे शुम्भनिशुम्भयोः ।

सत्त्वगुण का आश्रय लेकर महा गौरी के शरीर से जिनकी उत्पत्ति हुई है, उन्हीं को सरस्वती कहा जाता है । जो शुम्भ नामक दैत्य का विनाश करने वाली हैं । उनकी आठ भुजायें हैं जिनमें बाण, मुशल, शूल, चक्र, शङ्ख, घण्टा, लाङ्गल और कार्मुक धारण की हैं । शुम्भ एवं निशुम्भ के वध के लिये उत्पन्न उन भगवती सरस्वती की स्तुति एवं समय आने पर ध्यान करे ॥ ७३-७५ ॥

अथ मन्त्रोद्धारः

वाराहीतन्त्रे—

तारं वाणीं ततो लज्जां वह्निजायां ततः परम् ।

पुनस्तारञ्च वाराही चण्डीमन्त्रः समीरितः ॥ ७५ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये विंशोल्लासः ॥ २० ॥

अब वाराहीतन्त्र का मन्त्रोद्धार कहते हैं—तार (ॐ), वाणी (ऐं), इसके बाद लज्जा (ह्रीं), फिर वह्निजाया (स्वाहा), पुनः तार (ॐ)। यह वाराही चण्डी मन्त्र का उद्धार कहा गया ॥ ७५ ॥

विमर्श—ॐ ऐं ह्रीं स्वाहा ॐ ! एवं ऋषिच्छन्दो ध्यान मन्त्रञ्च ज्ञात्वा चण्डी- पाठः कर्त्तव्यः। 'ॐ ऐं ह्रीं स्वाहा ॐ' ऋषि, छन्द, ध्यान, मन्त्र और देवता का ध्यान कर तभी चण्डी पाठ करे ॥ ८६ ॥

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के विंश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २० ॥

एकविंश उल्लासः

...✿...

अवधूताश्रमनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि अवधूतक्रमं शृणु ।
चतुर्थाश्रमिणां मध्ये अवधूताश्रमो महान् ॥ १ ॥

अब अवधूत के क्रम को कहता हूँ उसे सुनो । चारों आश्रमियों के मध्य में यह अवधूताश्रम सर्वश्रेष्ठ है ॥ १ ॥

केवलं कुलयोगेन तस्य मोक्षः प्रजायते ।
यदि न स्यात्तदा चैव शृणु यत् कथयामि ते ॥ २ ॥

केवल कुल में दीक्षित होने मात्र से मोक्ष प्राप्त हो जाता है । यदि मोक्ष न हो तो जो कहता हूँ उसे सुनो ॥ २ ॥

ज्ञान भावे च सम्पन्ने सम्प्रार्थ्यं निजकौलिकीम् ।
तदाज्ञया विमुक्तः स्यात्तां सम्पूज्य कुलान्तरे ॥ ३ ॥

ज्ञानभाव के प्राप्त होते ही अपनी कौलिकी (स्त्री) से प्रार्थना कर उसकी आज्ञा लेकर उसकी पूजा कर घर बार छोड़कर अन्य कुलों में जावे ॥ ३ ॥

कुण्डलीशक्तिविवरे तदा योगं समभ्यसेत् ।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारः शुद्धनाडीजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥

वहाँ कुण्डली शक्ति के विवर में निर्द्वन्द्व, निरहङ्कार, शुद्ध नाड़ी करके जितेन्द्रिय होकर योगाभ्यास करे ॥ ४ ॥

मृद्वासने समासीनः षट्कसंयमने रतः ।
बद्धपद्मासनो योगी योगं युञ्जीत यत्नतः ॥ ५ ॥

वह योगी मृद्वासन (= शवासन) पर बैठकर काम क्रोधादि छह विकारों को संयमित कर पद्मासन लगाकर योग का अभ्यास करे ॥ ५ ॥

ऊर्वोरुपरि वीरेन्द्रः कृत्वा पादतले उभे ।

अङ्गुष्ठौ तु निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ॥ ६ ॥
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वेषामेव पूजितम् ।

पद्मासन—दोनों ऊरूओं पर दोनों पादतल स्थापित कर वीरेन्द्र साधक दोनों हाथ को व्युत्क्रम से घुमा कर पैर के दोनों अङ्गूठों को पकड़ें तो उसे पद्मासन कहा जाता है । यह आसन सब आसनों से श्रेष्ठ है ॥

मूलाधारचक्रकथनम्

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमधोमेढ्रात्तु द्व्यङ्गुलम् ॥ ७ ॥
एकाङ्गुलं तु तन्मध्ये देहमध्यं प्रकीर्त्तितम् ।
कन्दमस्ति शरीरेऽस्मिन् पुण्यापुण्यविवर्जितः ॥ ८ ॥

गुदा स्थान से दो अङ्गुल ऊपर और लिङ्ग स्थान से दो अङ्गुल नीचे, उसके बीच में एक अङ्गुल का स्थान देह का मध्य भाग कहा जाता है । उसी स्थान पर शरीर में पुण्यापुण्य रहित एक कन्द है ॥ ६-८ ॥

तन्तुपञ्जरमध्यस्थो यथा भ्रमति सूतिकः ।
जीवस्तु मूलचक्रेऽस्मिन् अधःप्राणश्चरत्यसौ ॥ ९ ॥

जिस प्रकार मकड़ी तन्तुपञ्जर के मध्य में भ्रमण करती है, उसी प्रकार जीव इस मूलचक्र में अधःप्राण होकर भ्रमण करता रहता है ॥ ९ ॥

प्राणारूढो भवेज्जीवः सर्वदेहेषु सर्वदा ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥ १० ॥

यह जीव सभी (प्राणियों के) शरीर में प्राणों पर सर्वदा आरूढ रहता है । वही से बहत्तर हजार नाड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥ १० ॥

मेरुदण्डबहिः पार्श्वे चन्द्रसूर्यात्मिके शुभे ।
इडा च पिङ्गला चैव वामदक्षिणतः स्थिते ॥ ११ ॥

मेरुदण्ड से बाहर उसके दोनों पार्श्व में चन्द्रसूर्यात्मक दो नाड़ियाँ प्रवाहित होती रहती हैं । वाम पार्श्व और दक्षिण पार्श्व में प्रवाहित होने वाली इन नाड़ियों के नाम इडा और पिङ्गला हैं ॥ ११ ॥

कन्दमध्याद् द्वयोर्मध्ये सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता ।
पृष्ठमध्यगता सा तु सह मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ १२ ॥

इन दोनों नाड़ियों के मध्य में कन्द के मध्य से निकलने वाली सुषुम्ना प्रतिष्ठित है । वह पीठ के मध्य भाग से होती हुई मूर्धा तक जाती है ॥ १२ ॥

ऋज्वीभूता तु वज्राख्या ज्वलन्ती विश्वधारिणी ।
मुक्तिमार्गे सदा गुप्ता मेढ्रमूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ १३ ॥

सर्वथा तेजोमयी विश्व को धारण करने वाली वज्रा नाम की नाड़ी मुक्ति मार्ग में लिङ्ग के अग्रभाग में सदा गुप्त रूप से रहती है ॥ १३ ॥

तस्याश्चान्तर्गता नाडी चित्राख्या योगिवल्लभा ।
पञ्चवर्णोज्ज्वला देवी पञ्चभूतनिवासिनी ॥ १४ ॥

उसके भीतर एक चित्रा नाम की नाड़ी है, जो योगीजनों को अत्यन्त प्रिय है। वह पाँच वर्णों से उज्ज्वल तथा पाँचों महाभूतों में निवास करती है ॥ १४ ॥

पञ्चदेवैर्युता देवी पञ्चतत्त्वप्रकाशिनी ।
पूरयित्वा तु विच्छिन्ना चित्रा सा ग्रन्थिरूपिणी ॥ १५ ॥

वह पञ्चदेवों से युक्त तथा पञ्चतत्त्वों की प्रकाशिका है । यह चित्रा नाड़ी ग्रन्थि के समान है जो कही तो पूर्ण है और कहीं-कहीं कट जाती है ॥ १५ ॥

तयैव ग्रथितं सर्वं मूलादि पद्मपञ्चकम् ।
तस्या मध्ये ब्रह्मनाडी मृणालतन्तुरूपिणी ॥ १६ ॥

मूलाधार से लेकर स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा चक्रादि विशुद्ध चक्र तक पाँच पद्म उसी से ग्रथित हैं । उसके मध्य में मृणाल तन्तु के समान अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्मनाड़ी है ॥ १६ ॥

ब्रह्मरन्ध्रं तु तन्मध्ये हरवक्त्रं सदाशिवम् ।
गुदमेढ्रान्तरे ग्रन्थि सुषुम्ना सन्धिरुत्तमा ॥ १७ ॥

उसके मध्य में ब्रह्मरन्ध्र है, जो सदाशिव स्वरूप हर का मुख कहा जाता है। गुदा और लिङ्ग के बीच में सुषुम्ना की सन्धि है ॥ १७ ॥

आधारे च गुदस्थाने पङ्कजञ्च चतुर्दलम् ।
सुवर्णाभं वादिसान्तं हेमवर्णं सुशोभनम् ॥ १८ ॥

गुदास्थान में रहने वाले आधार में चार दलों का एक कमल स्थित है जो सुवर्ण के समान चमकीला है । उसमें व श ष स—ये चार वर्ण सोने के समान देदीप्यमान है ॥ १८ ॥

कलिकारूपकं पद्मं पृथिवीपद्मिनीयुतम् ।
तरुणारुणसङ्काशां शूलखट्वाङ्गकौ ततः ॥ १९ ॥
वामे खड्गं सुराकुम्भं दधानामुग्रदंष्ट्रिणीम् ।

दुग्धाभां संस्थितां ध्यायेत् डाकिनीं लोचनत्रयाम् ॥ २० ॥

डाकिनी का ध्यान—यह पद्म कलिका स्वरूप है जो पृथ्वी रूप पद्मिनी से युक्त यहाँ अत्यन्त तरुण अवस्था वाली, लाल वर्ण वाली, शूल एवं खट्वाङ्ग दाहिने हाथ में धारण की हुई तथा खड्ग एवं सुराकुम्भ बायें हाथ में लिये हुये भयानक दाँतों वाली, दुग्ध के समान स्वच्छ वर्ण, तीन नेत्रों से युक्त डाकिनी का ध्यान करना चाहिये ॥ १९-२० ॥

कर्णिकायां स्थिता योनिःकामाख्या योगिवल्लभा ।
अपानाख्यं हि कन्दर्पं आधारे च त्रिकोणके ॥ २१ ॥

कामाख्या का स्थान—इसकी कर्णिका में योगिवल्लभा कामाख्या योनि का निवास बतलाया गया है । इसके त्रिकोण के आधार में अपान नामक कन्दर्प का निवास है ॥ २१ ॥

स्वयम्भूलिङ्गं तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं भवेत् ।
बन्धूकपुष्पसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २२ ॥

उस त्रिकोण के मध्य में स्वयम्भू लिङ्ग का स्थान बतलाया गया है जो पश्चिमाभिमुख होकर स्थित है । वह बन्धूक पुष्प के समान है । उसकी कान्ति करोड़ों सूर्य के समान जाज्वल्यमान है ॥ २२ ॥

भ्रमन्तं योनिमध्ये च शिशिरं शशभृत्समम् ।
तस्योर्ध्वे कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ॥ २३ ॥

वह चन्द्रमा के समान शिशिर है और योनि के मध्य में भ्रमण करता रहता है । उसके ऊपर कुण्डली शक्ति रहती है जो कुण्डली रूप से आठ भागों में प्रविभक्त है ॥ २३ ॥

अष्टप्रकृतिरूपा सा नाभेस्तिर्यगधो गता ।
अधोवक्त्रस्थितादेवी ऊर्ध्वपुच्छाऽतिशोभना ॥ २४ ॥

कुण्डलिनी का स्वरूप—उसके आठो भाग अष्टप्रकृति स्वरूप हैं जो नाभि से तिरछे होकर नीचे की ओर जाते हैं । कुण्डिलिनी अपना मुख नीचे की ओर तथा पूँछ ऊपर की ओर किये अत्यन्त शोभित रूप में स्थित है ॥ २४ ॥

अकारादिक्षकारान्ता कुण्डलीत्यभिधीयते ।
सा च विद्युल्लताकारा मृणालतन्तुसन्निभा ॥ २५ ॥

'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त वर्णों वाली मातृका को ही कुण्डली कहा जाता है जो आकार में विद्युल्लता के समान तथा मृणालतन्तु के सदृश सूक्ष्म है ॥ २५ ॥

परिस्फुरति सर्वात्मा सुप्ताऽहिसदृशाकृतिः ।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति ॥ २६ ॥

वह सोयी हुई सर्पिणी की भाँति फुफ्कारती रहती है और अपने मुख से ब्रह्मद्वार का मुख बन्द कर स्थित रहती है ॥ २६ ॥

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारं निरामयम् ।
मुखेन श्वासं प्रविष्टा ब्रह्मरन्ध्रं मुखं तदा ॥ २७ ॥

निरामय ब्रह्मद्वार में जिस द्वार से जाना चाहिए । मुख के द्वारा श्वास-प्रश्वास से प्रविष्ट होकर ब्रह्मरन्ध्र के मुख में जाता है ॥ २७ ॥

मस्तके मणिवद्भिन्नस्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनी ।
नान्यः पन्था द्वितीयोऽस्ति शरीरे परमस्य च ॥ २८ ॥

मस्तक में जाकर किसी मणि के समान अत्यन्त देदीप्यमान स्वयम्भू लिङ्ग को वेष्टित किये रहती है । वहाँ पर जाने के लिये शरीर में और कोई दूसरा रास्ता नहीं है ॥ २८ ॥

मूलाधारे कामरूपं पीठं परमदुर्लभम् ।
अधोवक्त्राणि पद्मानि मूलादीनि यथाक्रमात् ॥ २९ ॥

कामरूप पीठ—इसी मूलाधार में अत्यन्त दुर्लभ कामरूप नामक पीठ है । मूलादि में रहने वाले सभी पद्म क्रमशः अधोमुख हैं ॥ २९ ॥

मूलाधारचक्रम्, तध्यानफलम्

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमधो मेढ्रात्तु द्व्यङ्गुलात् ।
चतुरङ्गुलविस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत् ॥ ३० ॥

कन्द स्वरूप—गुदा स्थान से दो अङ्गुल ऊपर और लिङ्ग से दो अङ्गुल नीचे चार अङ्गुल विस्तार वाला पक्षि के अण्डे के आकार का कन्द मूल है ॥ ३० ॥

एकाङ्गुलं तु तन्मध्ये चतुरस्रं त्रिकोणकम् ।
एवं ध्यात्वा च वीरेन्द्रः स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ॥ ३१ ॥
आकुञ्चयेद् गुदमूलं चिबुकं हृदयोपरि ।
नव द्वाराणि संयम्य कुक्षिमापूर्य वायुना ॥ ३२ ॥
शब्दबीजेन तां देवीं दृढविभ्रामयेत्ततः ।
वायुना भिद्य तद्वक्त्रं ऊर्ध्ववक्त्रं तु कारयेत् ॥ ३३ ॥

उस कन्द के मध्य में चौकोर त्रिकोण है । स्थिर चित्त स्थिरेन्द्रिय वीर साधक

इस प्रकार ध्यान करते हुये गुदा के मूल को बारम्बार सङ्कुचित करे और खोले। हृदय के ऊपर चिबुक से वायु खींच कर उससे कुक्षि को पूर्ण करे और नव द्वार दो आँख, दो कान, दो नेत्र, मुख, गुदा और लिङ्ग इन नवों द्वारों को बन्द कर देवे। फिर शब्द बीज से उस महादेवी कुण्डलिनी को चलावे। इस प्रकार वायु से उसका मुख ऊपर की ओर करे ॥ ३१-३३ ॥

उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया दृढम् ।
उल्लासोज्ज्वलकारस्य शिखा याति समुज्ज्वला ॥ ३४ ॥
मूलचक्रं ततो भित्त्वा ब्रह्मद्वारं विभेदयेत् ।
ऊर्ध्वं भित्त्वा तु लिङ्गं वै इतरं पुष्करं ततः ॥ ३५ ॥

जिस प्रकार कुञ्जी से ताला खोलकर दृढ़ किवाड़ खोला जाता है उसी प्रकार कुण्डलिनी का मुख ऊपर कर ब्रह्मद्वार का कपाट खोले। कपाट खोलते ही उल्लसित एवं उज्ज्वलाकार तथा उज्ज्वल वर्ण की शिखा ऊपर उठती है। इस प्रकार मूलचक्र का भेदन कर ब्रह्मद्वार का भेदन करे। ऊपर लिङ्ग का भेदन करके और भी कमलों का भेदन करे ॥ ३४-३५ ॥

मूलाधारे सन्ततं ध्यानयोगात्
स्तम्भक्षोभावुत्प्लुतिर्दार्दुरीव ।
भूमित्यागः खेचरत्वं क्रमेण
नृणामेते षड्गुणाः सम्भवन्ति ॥ ३६ ॥
कान्तिप्रकर्षो वपुषोऽपि
नादव्यक्तिः प्रदीप्तिः जठरानलस्य ।
लघुत्वमङ्गस्य निजेन्द्रियाणां
पटुत्वमारोग्यमदीनता च ॥ ३७ ॥

१. मूलाधारचक्र का भेदन—मूलाधार में निरन्तर ध्यान करने से स्तम्भ, क्षोभ, मेढ़की के समान उछाल, फिर भूमित्याग, तदनन्तर खेचरत्व की क्रमशः प्राप्ति हो जाती है। ऐसी स्थिति में उस योगी में कान्तिप्रकर्ष, शरीर में नाद की अभिव्यक्ति, जठरानल की प्रदीप्ति, शरीर में हल्कापन, इन्द्रियों में पटुता, आरोग्य और अदैन्य—ये छह गुण प्रकट हो जाते हैं ॥ ३६-३७ ॥

स्वाधिष्ठानचक्रम्, तद्ध्यानफलम्

मूलादिपद्मषट्कञ्च कलिकासदृशं शुभम् ।
स्वाधिष्ठानं महापद्मं लिङ्गमूले रसच्छदम् ॥ ३८ ॥

२. स्वाधिष्ठान चक्र भेदन—मूलादि छह पद्म (मूलाधार, स्वाधिष्ठान,

मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा) कलिका के समान शुभ कारक हैं। लिङ्ग के मूल में स्वाधिष्ठान नामक महापद्म है, जिसमें छह पत्ते हैं ॥ ३८ ॥

बन्धूक पुष्पसङ्काशं सदा जलसमन्वितम् ।
सिन्दूरप्रस्फुरद्वर्णैर्बादिलान्तैश्च मण्डितम् ॥ ३९ ॥
शूलं वज्रं तथा पद्मं डमरुं करपङ्कजैः ।
दधानां श्यामवर्णाञ्च राकिणीं त्रितयान्विताम् ॥ ४० ॥
रक्तधात्वेकनाथां तां चिन्तयेत्तत्र साधकः ।
विचिन्त्य स्थिरचित्तेन अधिष्ठानं प्रभेदयेत् ॥ ४१ ॥

वह पद्म बन्धूक पुष्प के समान लाल वर्ण का है और सदा जल युक्त रहता है। 'ब भ म य र ल' इन सिन्दूर के समान वर्ण वाले मातृका वर्णों से मण्डित है। अपने हाथों में शूल, वज्र, पद्म तथा डमरू लिये हुये श्यामवर्ण वाली रक्त धातु की स्वामिनी **राकिणी** का वहाँ ध्यान करना चाहिये। फिर स्थिर चित्त से ध्यान करने के बाद अधिष्ठान चक्र का भेदन करना चाहिये ॥ ३९-४२ ॥

इह वेत्ति निधाय मानसं स्वं
विविधञ्चाश्रुतशास्त्रजालमुच्चैः ।
अवधूतजरामयः स मर्त्यः
सुचिरं जीवति वीतमृत्युभीतिः ॥ ४२ ॥

जो इस स्थान का एकाग्र होकर ध्यान करता है वह अश्रुत भी अनेक शास्त्रजाल का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, बुढाई और रोग को नष्ट कर देता है, मृत्यु का भय उसे नहीं सताता और बहुत काल तक जीवित रहता है ॥ ४२ ॥

वपुषोऽशुचिता जनस्य शश्वत्
परमां शुद्धिमिहातनोति पुंसाम् ।
शरदम्बुजपेलवस्य देहे
दृढरुद्धो घनताञ्च शीतरश्मिः ॥ ४३ ॥

यह तो शरीर निरन्तर अपवित्र रहता है। किन्तु राकिणी के ध्यान से उसका शरीर अत्यन्त पवित्र हो जाता है। उसका शरीर शरत्कालीन कमल के समान अत्यन्त सुन्दर हो जाता है और दृढ होकर शीत रश्मि (चन्द्रमा) के समान अत्यन्त सघन हो जाता है ॥ ४३ ॥

मणिपूरचक्रम्, तद्ध्यानफलम्

तदूर्ध्वे सव्यदक्षाभ्यां चिन्तयेत् साधकोत्तमः ।
पद्ममध्ये स्थितं शुद्धं विद्युताभं त्रिकोणकम् ॥ ४४ ॥

तन्मध्ये चिन्तयेद् देवं ब्रह्माणं हंसवाहनम् ।
रक्तवर्णं चतुर्वक्त्रं दधतञ्च त्रिलोचनम् ॥ ४५ ॥
चिन्तयेत् कूर्चपद्मे च अक्षमालां कमण्डलुम् ।
ब्रह्मसत्त्वाक्षमोङ्कारं स्थितं नाभेरधः सदा ॥ ४६ ॥
नाभौ नीलनिभं पद्मं मणिपूरं दशास्त्रकम् ।
विद्युत्पुञ्जस्फुरद्वर्णैर्डादिफान्तैश्च मण्डितम् ॥ ४७ ॥
वह्निना संयुतं तत्र लाकिनीं मांसधातुगाम् ।
मानसं संविभाव्याथ भेदयेत्तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥

मणिपूर चक्र भेदन—उस स्वाधिष्ठान के ऊपर साधकोत्तम बायें और दाहिने दोनों ओर विद्युत् के समान आभा वाले त्रिकोण का ध्यान करे; जो पद्म के मध्य में स्थित है और सर्वथा शुद्ध है । उसके मध्य में हंसवाहन, रक्त वर्ण, चार मुख और तीन नेत्र धारण किये हुये **ब्रह्मदेव** का चिन्तन करे । जो कूर्च, पद्म, अक्षमाला और कमण्डलु हाथों में लिये हुये हैं । फिर साधक नाभि के नीचे ब्रह्मसत्त्व, ॐकार स्वरूप, नीले वर्ण वाले, दश अक्षरों से युक्त मणिपूर चक्र का ध्यान करे। यह चक्र विद्युत् पुञ्ज के समान स्फुरित होने वाले मणिपूर डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं वर्णों से मण्डित है और अग्नि वर्ण से संयुक्त है । वहाँ मांस धातु की अधिष्ठात्री **लाकिनी** का ध्यान कर तत्त्वज्ञ साधक उस मणिपूरचक्र का भी भेदन कर देवे ॥ ४४-४८ ॥

स्थानेऽस्मिन्निहितात्मनः सुकृतिनः पातालसिद्धिं परां
खड्गस्याप्रतिमस्य साधनमपि स्यादीप्सितञ्च क्षितौ ।
रूपं भूमिविसर्जनं परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं जरा-
हानिश्चाखिलदुःखरोगशमनं कालस्य वा वञ्चनम् ॥ ४९ ॥

इस स्थान में ध्यान करने वाले सुकृतियों को परा पातालसिद्धि प्राप्त हो जाती है और अप्रतिम खड्गसिद्धि हो जाती है । पृथ्वी में उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह पृथ्वी छोड़कर अन्य लोकों में प्रवेश करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है । उसकी कभी वृद्धावस्था नहीं आती, समस्त रोग और दुःख शान्त हो जाते हैं और वह काल को भी वञ्चित कर सकता है ॥ ४९ ॥

अनाहतचक्रम्, तद्ध्यानफलम्

अनाहतं हृदि ध्यायेत् पिङ्गाभं द्वादशच्छदम् ।
द्रुतस्वर्णप्रभावर्णैः कादिठान्तैश्च मण्डितम् ॥ ५० ॥

४. अनाहत चक्र भेदन—इसके बाद (मणिपूर के भेदन के बाद) पीले आभा वाले बारह पत्तों से युक्त अनाहत चक्र का हृदय में ध्यान करे । उसके 'कं खं गं

घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं—ये द्वादश पत्ते हैं, जिनसे वह मण्डित है ॥ ५० ॥

मेदःस्थां काकिनीं तत्र पीताभां मत्तरूपिणीम् ।
अभयं डमरुं शूलं पाशञ्च करपङ्कजैः ॥ ५१ ॥
दधानां चारुरूपाञ्च नानाभरणभूषिताम् ।
तत्रैवाङ्गुष्ठमात्मानं प्रदीपकलिकोपमम् ॥ ५२ ॥
तत्र सञ्चिन्तयेद् देवं नारायणं निरञ्जनम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं वाणीलक्ष्मीविभूषितम् ॥ ५३ ॥
वैनतेयसमारूढं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
पीताम्बरधरं शान्तं वनमालाविभूषितम् ॥ ५४ ॥
पूर्णशैलं महापीठं तत्रैव परिचिन्तयेत् ।
प्रभेदयेत्ततः पश्चात् साधकः स्थिरमानसः ॥ ५५ ॥

उस अनाहत चक्र में भेद की अधिष्ठात्री मस्ती की चाल से भरी हुई, पीत वर्ण वाली **काकिनी** का ध्यान करे । जो अपने हाथों में अभय, डमरू, त्रिशूल और पाश लिये हुये है, वह अत्यन्त मनोहर स्वरूप वाली तथा उत्तमोत्तम आभूषणों से भूषित है । वह प्रदीप कलिका के समान है और वहाँ शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ वाणी और लक्ष्मी से विभूषित निरञ्जन (माया रहित) गरुड़ पर सवार, पङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुये पीताम्बर पहने, शान्त स्वरूप, वनमाला से विभूषित **नारायण देव** का साधक ध्यान करे । तदनन्तर स्थिरचित्त साधक उस अनाहत चक्र का भेदन कर देवे ॥ ५१-५५ ॥

एतस्मिन् सततं निविष्टमनसः स्थाने विमानस्थिताः
क्षुभ्यन्त्यद्भुतरूपकान्तिकलिता दिव्यस्त्रियो योगिनः ।
ज्ञानञ्चाप्रतिमं त्रिकालविषयं क्षोभः पुरस्य श्रुति-
दूरादेव च दर्शनञ्च खगतिः स्याद्योगिनीमेलनम् ॥ ५६ ॥

जो विद्वान् साधक इस अनाहत चक्र में अपना मन स्थिर कर लेता है, उसे अपने स्थान में विमान पर स्थित अत्यन्त अद्भुत रूप की कान्ति से युक्त दिव्य स्त्रियाँ तथा योगी जन भी उसे देखकर क्षुब्ध हो जाते हैं । उसे त्रिकाल विषयक अप्रतिम ज्ञान हो जाता है और अनाहत नादादि सुनाई पड़ने लगते हैं । उसकी आकाश में गति हो जाती है तथा योगिनियाँ मिल जाती हैं और वह उनका दर्शन दूर से कर लेता है ॥ ५६ ॥

विशुद्धचक्रम् तद्ध्यानफलम्

विशुद्धं षोडशारञ्च धूम्राभं कण्ठदेशके ।

तदन्ते व्योमबीजञ्च शुक्लं हैमगजस्थितम् ॥ ५७ ॥
तरुणारुणसङ्काशैः स्वरैश्च परिमण्डितम् ।
आकाशसहितं पद्मं शाकिनीं परिचिन्तयेत् ॥ ५८ ॥

५. विशुद्ध चक्र भेदन—उस अनाहत के बाद कण्ठदेश में षोडशार विशुद्ध चक्र है, जिसका वर्ण धूम्र के समान है । उसके अन्त में व्योम बीज (ह) है, जो सुवर्ण के समान देदीप्यमान हाथी पर सवार है । वह तरुण और अरुण वर्ण वाले षोडश स्वरों से परिमण्डित है । आकाश सहित उस विशुद्ध चक्र के पद्म में **शाकिनी** का तत्त्वज्ञ ध्यान करे ॥ ५७-५८ ॥

अस्थिसंस्थां चतुर्बाहुं पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशौ पुस्तकञ्च ज्ञानमुद्राञ्च धारिणीम् ॥ ५९ ॥
दंष्ट्रिणीमुग्ररूपाञ्च सदा मधुमदाकुलाम् ।
अर्धनारीश्वरं देवं नानामणिविभूषितम् ॥ ६० ॥
चन्द्रचूडं त्रिनयनं वराभयकरं शुभम् ।
ध्यात्वैवं चक्रराजं तु भेदयेत् साधकोत्तमः ॥ ६१ ॥

जो अस्थि पर स्थित चार बाहुओं, पाँच मुखों तथा तीन नेत्रों वाली है, वह अपने हाथों में पाश, अङ्कुश, पुस्तक और ज्ञानमुद्रा धारण की हुई है । उसके बड़े बड़े दाँत हैं, वह उग्ररूपा तथा मद्य के मद से आकुल रहती है । वह अनेक मणियों से विभूषित होकर अर्धनारीश्वर, चन्द्रचूड़, तीन नेत्रों वाले, हाथ में वर और अभय धारण किये हुये सदाशिव से युक्त है । इस प्रकार **सदाशिव** सहित **शाकिनी** का ध्यान कर साधक उस चक्रराज का भी भेदन कर देवे ॥ ५९-६१ ॥

स्थानेऽत्र संसक्तमना मनुष्य-
स्त्रिकालदर्शी विगताधिरोगः ।
जित्वा जरामञ्जननीलकेशः
क्षितौ चिरं जीवति वीतमृत्युः ॥ ६२ ॥
इह स्थाने चित्तं सततमवधायात्तपवनो
यदि क्रुद्धो योगी चलयति समस्तं त्रिभुवनम् ।
न च ब्रह्मा विष्णुर्न च हरिहरो नैव खमणि-
स्तदीयं सामर्थ्यं शमयितुमलं नापि गणपः ॥ ६३ ॥

इस स्थान का एकाग्रचित्त से ध्यान करने वाला मनुष्य त्रिकालदर्शी होता है उसके पास रोग नहीं फटकते । वह बुढ़ाई को जीत लेता है । उसके बाल सदैव अञ्जन के समान नीले रहते हैं और वह पृथ्वी पर मृत्युरहित होकर चिरकाल तक

जीवित रहता है । इस स्थान पर सदैव चित्त को सावधानीपूर्वक स्थापित कर वायु को ऊपर की ओर खींचे । यदि ऐसा योगी क्रुद्ध होता है तो वह सारे त्रिभुवन को कम्पित कर देता है । उसके सामर्थ्य को ब्रह्मा, विष्णु, हरिहर, सूर्य और न गणेश ही शमन करने में समर्थ हो सकते हैं ॥ ६२-६३ ॥

आज्ञाचक्रम् तद्ध्यानफलम्

द्विदलं हक्षवर्णाभ्यां शुभाभ्यां परिमण्डितम् ।
विद्युत्कोटिप्रभं चक्रं भ्रुवोरूर्ध्वे मनोन्मनी ॥ ६४ ॥

६. आज्ञाचक्र भेदन—यह चक्र ह क्ष इन दो वर्णों से सुशोभित है करोड़ों बिजली के समान आभा वाला है । इसका निवास भ्रू के मध्य में है जहाँ मनोन्मनी का निवास है ॥ ६४ ॥

विन्दुयुक्तं सर्ववर्णं सर्वपद्मेषु चिन्तयेत् ।
योनिमध्ये स्थितं लिङ्गमितरं तरुणारुणम् ॥ ६५ ॥
जालन्धरं महापीठं हाकिनीं तत्र चिन्तयेत् ।
बिन्दुस्थां हाकिनीं शुक्रमेदोमज्जास्वरूपिणीम् ॥ ६६ ॥

उपर्युक्त कहे गये मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र पर्यन्त छह चक्रों में विन्दु युक्त सभी वर्णों का ध्यान करे । यहाँ योनि के मध्य में इतर तरुण एवं अरुण वर्ण वाला लिङ्ग है । यह जालन्धर महापीठ है । वहाँ तत्त्वज्ञ साधक **हाकिनी** का ध्यान करे । यह हाकिनी शुक्र, मेद तथा मज्जा की अधिष्ठात्री देवी है जिसका निवास स्थान बिन्दु है ॥ ६५-६६ ॥

अक्षमालाञ्च डमरुं कपालं पुस्तकं तथा ।
चापं मुद्रां दधानाञ्च शुक्लां नेत्रत्रयान्विताम् ॥ ६७ ॥
पद्ममध्येऽन्तरात्मानं प्रभारूपं हि कारणम् ।
ओङ्कारज्योतिषं कल्पप्रदीपाभं जगन्मयम् ॥ ६८ ॥
बालसूर्यप्रतीकाशां सदा बिन्दुमदक्षरम् ।
ततः सङ्क्षोभणद्वारे ध्यायेत् पद्मं सुशोभनम् ॥ ६९ ॥

यह शुक्ल वर्ण वाली त्रिनेत्रा हाकिनी अपने हाथों में अक्षमाला, डमरु, कपाल, पुस्तक और धनुष मुद्रा धारण किये हुये है । यहाँ इस पद्म के मध्य में प्रभा स्वरूप अन्तरामा, जो सब का कारण कही गयी है, उसका निवास है । यहाँ ॐकार रूप ज्योति स्थित है । वह कल्प प्रदीप की आभा वाली जगन्मयी हैं और वह उदीयमान सूर्य की समान लाल वर्ण की आभा से युक्त हैं । उस सङ्क्षोभण द्वार पर बिन्दु युक्त अक्षरों से युक्त अत्यन्त शोभा वाले द्विदल पद्म का साधक को ध्यान करना चाहिये ॥ ६७-६९ ॥

ध्यानयोगनिरतस्य जायते पूर्वजन्मकृतकर्मणां स्मृतिः ।
तत्र विन्दुनिलये च दूरतो दर्शनश्रवणयोः समर्थता ॥ ७० ॥

उस पद्म में ध्यान करने वाले योगी को पूर्व जन्म में किये गये समस्त कर्मों की स्मृति हो जाती है । उस विन्दु निलय में ध्यान करने से दूर से ही (वाञ्छित) दर्शन और श्रवण का सामर्थ्य हो जाता है ॥ ७० ॥

इह सन्निहितस्वचित्तवृत्तिः प्रतिमायाः प्रतिजल्पनं करोति ।
गमनञ्च पुरे परेषां पुनरुत्थानमप्यहो मृतस्य ॥ ७१ ॥

इसमें अपनी चित्तवृत्ति को सन्निविष्ट करने वाला साधक प्रतिमा से भी बातचीत कर सकता है । वह दूसरे लोकों में गमन करता है और मृतक को भी जिला देता है ॥ ७१ ॥

निरालम्बां मुद्रां निजगुरुमुखेनैव विदिता-
मिह स्थाने कृत्वा स्थिरनिशितधीः साधकवरः ।
सदाऽभ्यासात् पश्यत्यमरनिलयानन्तरखिला-
मुडुश्रेणीं विष्णोरपि पदमुडूनामपि पतिम् ॥ ७२ ॥

कुशाग्र बुद्धि वाला श्रेष्ठ साधक अपने गुरु से प्राप्त की गई निरालम्ब मुद्रा यदि यहाँ बनावे, तो इस प्रकार सदैव के अभ्यास से वह अपने हृदय में ही समस्त देव स्थानों को देख सकता है । विष्णु का पद, आकाश, उसमें रहने वाले तारे तथा चन्द्रमा का भी दर्शन कर लेता है ॥ ७२ ॥

भेदान्ते पद्मषट्कं च प्रस्फुटञ्चोर्ध्ववक्त्रकम् ।
भवत्येव न सन्देहोऽप्यथ स्यात् साधकस्य च ॥ ७३ ॥

उन षट् पद्मों का भेदन करते ही वे कमल खिल जाते हैं । उनका मुख ऊपर हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है । इसी प्रकार साधक का भी मुख खिल जाता है और वह भी ऊर्ध्वमुख हो जाता है ॥ ७३ ॥

तदूर्ध्वे चार्धचन्द्रे च भानुमण्डलमुत्तमम् ।
मकारविन्दुरूपेण तदूर्ध्वे चन्द्रमण्डलम् ॥ ७४ ॥

उसके ऊपर विद्यमान अर्धचन्द्र में मकार रूप वाला उत्तम भानुमण्डल है । फिर उसके ऊपर चन्द्रमण्डल है ॥ ७४ ॥

विन्दोरुपरि नादं हि शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
चेतसा सम्प्रपश्यन्ति नादान्ते वृषभध्वजम् ॥ ७५ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं कपर्दशशिभूषणम् ।

व्याघ्राम्बरं तु तन्मध्ये अधोमुखं सशक्तिकम् ॥ ७६ ॥
स्थाने ह्यत्र परीतञ्च वरदाभयपाणिकम् ।
प्रसन्नवदनं शान्तं सर्पयज्ञोपवीतिनम् ॥ ७७ ॥
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ।
नान्यत् पश्यन्ति तत्रैव अन्तरं वृषभध्वजम् ॥ ७८ ॥

उस विन्दु के ऊपर शुद्ध स्फटिक के समान नाद है । फिर योगीजन उस नाद के बाद भगवान् वृषभध्वज (सदाशिव) का दर्शन करते हैं जो शुद्ध स्फटिक के समान आभा वाले, कर्पद (जटाजूट) में चन्द्रमा का आभूषण धारण किये हुए हैं, बाघम्बर पर अधोमुख शक्ति (उमा) के साथ बैठे हुये हैं । वे अपने गणों से घिरे हुये वर और अभयमुद्रा हाथ में धारण किये हुये हैं । वहाँ योगिजन वृषभध्वज को छोड़कर किसी अन्य का दर्शन नहीं करते । वह शिव प्रसन्न मुख, शान्तमुद्रा एवं सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये हुये नाद के ऊपर विराजमान है । योगी जन उन सदाशिव का दर्शन अपने ज्ञानचक्षु से करते हैं ॥ ७५-७८ ॥

पुरत्रयविनिष्क्रान्तो यत्र वायुः प्रलीयते ।
तत्र संस्थं मनः कृत्वा तद्ध्यानमीश्वरं विदुः ॥ ७९ ॥

जिस तीन स्थान (नाभि, हृदय और कण्ठ) से वायु निकल कर जहाँ लीन हो जाती है, वहाँ उस कण्ठ स्थान में मन को स्थापित करे तो उस ध्यान को ईश्वर विषयक ध्यान कहा जाता है ॥ ७९ ॥

विभाव्य साधकश्रेष्ठो भेदयेत्तदनन्तरम् ।
शङ्खिनीनालं संस्थाप्यव्याप्तिशून्यं विभर्त्ति यः ॥ ८० ॥
अमृतोदधिसङ्काशं शतयोजनविस्तृतम् ।
चन्दनोद्यानमध्यस्थं वेदिकां तु तदन्तरे ॥ ८१ ॥

वहाँ शंखिनी नाल (कण्ठ देशावच्छिन्न प्रदेश) में मन को स्थापित कर उसका भी भेदन कर देवे । जो सर्वत्र व्याप्त एवं शून्यता को धारण करता है । वहाँ अमृत के समुद्र के समान सौ योजन लम्बा चन्दनोद्यान है उसके मध्य में एक वेदिका है ॥ ८०-८१ ॥

तन्मध्ये स्फटिकं ध्यायेत् पश्चिमाननमम्बुजम् ।
स्त्रवन्तममृतं नित्यं देव्यङ्गे कमलान्तरे ॥ ८२ ॥

उस वेदी के मध्य में स्फटिक के समान अत्यन्त स्वच्छ पश्चिमाभिमुख कमल का ध्यान करे । जिससे देवी के अङ्ग में तथा अन्य कमलों में अमृत की धारा सर्वदा टपकती रहती है ॥ ८२ ॥

सहस्रारपद्मवर्णनम्

सहस्रारपद्मं विसर्गादधस्ता-
दधो वक्त्रमारक्तकिञ्जल्कपुञ्जम् ।
कुरङ्गेण हीनस्त्रिशृङ्गस्तदन्तः
स्फुरद्रश्मिजालः सुधांशुः समास्ते ॥ ८३ ॥
तदन्तर्गतं ब्रह्मरन्ध्रं सुसूक्ष्मं
यदाधारभूतं सुषुम्णाख्यनाड्याः ।
तदेतत् पदं दिव्यमत्यन्तगुह्यं
सुरैरप्यगम्यं सुगोप्यं सुयत्नात् ॥ ८४ ॥

वहाँ विसर्ग से नीचे अधोमुख सहस्रार पद्म है, जिसका पराग समूह अत्यन्त रक्त वर्ण का है । यद्यपि उसमें कुरङ्ग नहीं है किन्तु वह तीन शृङ्गों वाला है । उस सहस्रार पद्म में रश्मिजाल से उद्भासित चन्द्रमा का निवास है । उस चन्द्रमा के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्मरन्ध्र है । जहाँ सुषुम्ना नाड़ी का आधार भूत निवास है । यह स्थान अत्यन्त दिव्य है, गुप्त है और देवताओं के लिये भी अगम्य है । अतः प्रयत्नपूर्वक इसे गुप्त रखे ॥ ८३-८४ ॥

एतत् कैलाससञ्ज्ञं परमकुलपदं बिन्दुरूपी स्वरूपी
यत्रास्ते देवेदवो भवभयतिमिरध्वंसहंसो महेशः ।
भूतानामादिदेवो रसविसरसितां सन्ततामन्तरङ्गे
सौधीं धारां विमुञ्चन्नभिमत फलदो योगिनां योगगम्यः ॥८५॥
स्थानस्यास्य ज्ञानमात्रेण पुंसां
संसारेऽस्मिन् सम्भवो नैव भूयः ।

यह सर्वश्रेष्ठ कौलों का परमपद है । अत्यन्त मनोहर स्वरूप वाला यह विन्दु रूप है । इसको कैलास नाम से भी कहा जाता है जहाँ संसार के भय रूपी तिमिर का नाश करने वाले हंस स्वरूप महेश निवास करते हैं । जो महेश समस्त भूतों के आदि देव हैं । जो अपने अन्तरङ्ग में स्थित रसपूर्ण अमृत की धारा बहाते रहते हैं । जो सब को अभिमत फल प्रदान करते हैं और योगीजनों के लिये अगम्य हैं । अतः इस स्थान को जान लेने मात्र से किसी भी पुरुष का पुनः संसार में आगमन नहीं होता ॥ ८५-८६ ॥

भूतग्रामं सन्ततन्यासयोगात्
कर्तुं हर्तुं स्याच्च शक्तिः समग्रा ॥ ८६ ॥
स्थाने परे हंसनिवासभूते-
कैलासनाम्नीह विधाय चेतः ।

योगी गतव्याधिरधःकृताधि-
वाधश्चिरं जीवति मृत्युमुक्तः ॥ ८७ ॥
स्थानेऽस्मिन् क्षयवृद्धिभावरहिता नित्योदिताऽधोमुखी
बालादित्यनिभप्रभाशशभृतः साऽस्ते कला षोडशी।
बालाग्रस्य विखण्डितस्य शतधा चैकेन भागेन या
सूक्ष्मत्वात् सदृशी निरन्तरगलत्पीयूषधाराधरा ॥ ८८ ॥

यहाँ निरन्तर ध्यान करते रहने से साधक को समस्त भूतग्राम (सृष्टि) के निर्माण और हरण करने की समस्त शक्ति प्राप्त हो जाती है । इस हंस के निवास वाले अत्यन्त उत्कृष्ट कैलास नामक स्थान में चित्त को एकाग्र कर स्थापित करने वाला योगी व्याधिरहित होता है और सम्पूर्ण बाधाओं को नष्ट कर देता है तथा मृत्यु से मुक्त होकर चिरञ्जीवी बन जाता है । इस स्थान पर क्षय एवं वृद्धि भाव से रहित नित्य उदीयमान अधोमुखी **षोडशी कला** का निवास है जो बाल आदित्य के समान लाल वर्ण वाली और चन्द्रमा के समान शीतल सुखद प्रकाश देने वाली है। वह अत्यन्त सूक्ष्म है, एक बाल के अग्रभाग के सौ टुकड़े किये जाने पर उसके एक खण्ड के समान अत्यन्त सूक्ष्म है जिससे निरन्तर अमृत की धारा का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है ॥ ८६-८८ ॥

एतस्याः परतः स्थिता भगवती भूताधिदेवाधिपा
निर्वाणाख्यकलाऽर्धचन्द्रकुटिला सा षोडशान्तर्गता ।
बालाग्रस्य सहस्रधा विगलितस्यैकेन भागेन या
सूक्ष्मत्वात् सदृशी त्रिलोकजननी या द्वादशार्कप्रभा॥ ८९ ॥

इसके बाद समस्त भूतों की अधिदेवता अर्धचन्द्र के समान कुटिल **निर्वाण नाम की कला** का निवास है जो उस षोडशी कला के भीतर ही रहने वाली है । वह मनुष्य के बाल के अग्रभाग के हजार टुकड़े किये जाने पर उसके एक भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म है । वही त्रिलोकजननी है और द्वादश सूर्य के समान कान्तिमती है ॥ ८९ ॥

निर्वाणाख्यकलापदोपरिगता निर्वाणशक्तिः परा
कोट्यादित्यसमप्रभाऽतिगहना बालाग्रभागस्य या।
कोट्यंशेन समा समस्तजननी नित्योदिता निर्मला
नित्यानन्दपदस्थलोरुविगलद्धारा निरालम्बना ॥ ९० ॥

उस निर्वाण नामक कला के स्थान से ऊपर **परा निर्वाण शक्ति** है जो करोड़ों आदित्य की प्रभा से सर्वथा दुष्प्रेक्ष्य है । वह बाल के अग्रभाग के एक करोड़ टुकड़े किये जाने पर उसके एक भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्मतम है, वह सब

लोकों की माता है तथा नित्य उदीयमान एवं निर्मल स्वरूपा है । उस नित्यानन्द पद स्थल से एक बहुत प्रवाह युक्त अमृतधारा निकलती है जिसका कोई आलम्बन नहीं है ॥ ९० ॥

एतस्याः परतः परात्परतरं निर्वाणशक्तेः पदं
शैवं शाश्वतमप्रमेयममलं नित्योदितं निष्क्रियम् ।
तद्विष्णोः पदमित्युशन्ति सुधियः केचित् पदं ब्रह्मणः
केचिद्धंसपदं निरञ्जनपदं केचिन्निरालम्बनम् ॥ ९१ ॥

इस निर्वाण शक्ति से ऊपर परात्परतर शाश्वत **शैव पद** है जो अप्रमेय अमल नित्योदित और निष्क्रिय है। उसे कोई विद्वान् **विष्णु पद** कहते हैं और कोई **ब्रह्म पद** कहते हैं तथा कोई उसे निरालम्बन, निरञ्जन, **हंसपद** कहते हैं ॥ ९१ ॥

आरोप्याऽऽरोप्य शक्तिं कमलजनिलयादात्मना साकमेषु
स्थानेष्वाज्ञावसानेष्ववहितहृदयश्चिन्तयित्वा क्रमेण ।
नीत्वा नादावसानं खगत कुलमहापद्मसद्मान्तरस्थां
ध्यायेच्चैतन्यरूपामभिमतफलसम्प्राप्तये शक्तिमाद्याम् ॥ ९२ ॥
साक्षाल्लाक्षारसाभं गगनगतमहापद्मसद्मस्थहंसां
पीत्वा दिव्यामृतौघं पुनरपि च विशेन्मध्यदेशं कुलस्य ।
चक्रे चक्रे क्रमेणामृतरसविसरैस्तर्पयेत् देवतास्ता
हाकिन्याद्याः समस्ताः कमलजपदगां तर्पयेत् कुण्डलीं ताम् ॥ ९३ ॥

ब्रह्मदेव के लय हो जाने वाले उस स्थान से अपनी आत्मा के साथ आज्ञा चक्र के अन्त तक रहने वाले इन इन स्थानों में शक्ति का क्रमशः आरोप कर सावधान चित्त वाला साधक क्रमशः एक-एक का ध्यान करे । उन शक्तियों को नाद में विलीन कर देवे । फिर अपने कुल महापद्म रूप सद्म में निवास करने वाली चैतन्यरूपा आद्या शक्ति का अभीष्ट फल प्राप्ति के लिये ध्यान करे । जो गगनगत महापद्म रूप सद्म में निवास करने वाली हंसिनी है तथा लाक्षा रस के समान आभा वाली है । वहाँ से दिव्य अमृत समूह का पान कर कुक्षि के मध्यदेश की ओर लौटे और आज्ञा चक्रादि छओ पद्मों में स्थित उन उन देवताओं का तर्पण क्रमशः उस अमृत रस से करे । इस प्रकार हाकिनी, काकिनी, राकिनी, शाकिनी, लाकिनी और डाकिनी को तृप्त कर सम्पूर्ण कमलों में जाने वाली उन कुण्डली का तर्पण करे ॥ ९२-९३ ॥

कुण्डली कुण्डलाकारानक्रीभूता निवासिनी ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्नानिलयं व्रजेत् ॥ ९४ ॥
शक्तिं भैरवसंयोगादमृतानन्दमानयेत् ।

चन्द्रमार्गेण वायुञ्च पिबेत्तञ्च शनैः शनैः ॥ ९५ ॥
कुम्भकञ्च यथाशक्त्या सूर्यमार्गेण रेचयेत् ।
सूर्यमार्गे पिबेद्वायुं चन्द्रमार्गेण रेचयेत् ॥ ९६ ॥

यह कुण्डली कुण्डलाकार है, मकर के ऊपर निवास करने वाली है, वह इड़ा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना के घर में लौट आती है । तत्त्वज्ञ साधक शक्ति और भैरव के संयोग से अमृतानन्द प्राप्त कर चन्द्रमार्ग से धीरे-धीरे वायु का पान करे। फिर यथाशक्ति कुम्भक कर सूर्य मार्ग (दाहिनी नासा) से निकाल देवे, अथवा सूर्य मार्ग (दाहिनी नासा) से वायु पान करे और पुनः उसे चन्द्रमार्ग (बाईं नासा) से निकाल देवे ॥ ९४-९६ ॥

शून्यञ्च प्रतिविम्बचन्द्रसदृशं सूक्ष्मातिसूक्ष्मं परं
सर्वं व्याप्य तमोमयं जगति सद्धामप्रकाशं परम् ।
दृश्यादृश्यविनाशभेदसकलं ज्योतिर्मयं सर्वतो
ध्यात्वा तच्च पदं तु साधकवरैः दूरीकृतश्चान्तकः ॥ ९७ ॥

वह शून्य, चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के सदृश है; सूक्ष्म से सूक्ष्म है । समस्त तमोमय जगत् में व्याप्त होकर उत्तम प्रकाश देता है और समस्त दृश्यादृश्य विनाश का भेदन करता है तथा सर्वत्र वह ज्योतिर्मय है । उत्तम साधक इस प्रकार के उस शून्य का ध्यान कर काल को भी दूर भगा देते हैं ॥ ९७ ॥

एवमभ्यस्यमानस्य अहन्यहनि निश्चितम् ।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवसागरात् ॥ ९८ ॥

साधक द्वारा प्रतिदिन इस प्रकार के किये गये अभ्यास से वह जरा मरण दुःखादि से पूर्ण इस संसार सागर से मुक्त हो जाता है ॥ ९८ ॥

योनिमुद्राबन्धफलकथनम्

चतुर्विधा तु या सृष्टिर्यस्यां योनौ प्रजायते ।
पुनः प्रलीयते यस्यां कालाग्न्यादिशिवान्तकम् ॥ ९९ ॥
योनिमुद्रा परा ह्येषा बन्धस्तस्याः प्रकीर्त्तितः ।
तस्यास्तु बन्धमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ १०० ॥

जिस योनि में अण्डज, पिण्डज आदि चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती हैं और जिसमें कालाग्नि से लेकर शिव पर्यन्त लीन हो जाते हैं वह योनि है । उसका बन्ध योनिमुद्रा कही जाती है । उस योनि मुद्रा के करने मात्र से पृथ्वी में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो उसे प्राप्त न हो ॥ ९९-१०० ॥

अन्यथा जप्यते यस्तु अन्यथा कुरुते तु यः ।
नासौ तत्फलपात्रञ्च सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १०१ ॥

जो तत्त्वज्ञ साधक अन्य प्रकार से जप करता है और अन्य विधान से कार्य करता है वह फल का पात्र नहीं बनता । यह सत्य है, यह सत्य है और इसमें संशय नहीं है ॥ १०१ ॥

छिन्ना बन्धाश्च ये मन्त्राःकीलिताः स्तम्भिताश्च ये।
दग्धाः सन्त्रासिता हीना मलिनाश्च तिरस्कृताः ॥ १०२ ॥
भेदिता भ्रमसंयुक्ताः सुप्ता सम्मूर्च्छिताश्च ये ।
वृद्धा बालास्तथा प्रौढास्तथा यौवनगर्व्विताः ॥ १०३ ॥
अरिपक्षे स्थिता ये च निर्व्वीर्याः सत्त्ववर्जिताः ।
अंशकेन विहीनाश्च खण्डशः शतधा कृताः ॥ १०४ ॥
विधिनानेन संयुक्ताः प्रभवन्त्यचिरेण तु ।
सिद्धिमोक्षप्रदाः सर्वे साधकेन नियोजिताः ॥ १०५ ॥

जो-जो मन्त्र छिन्न, बन्ध, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, सन्त्रासित, हीन, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, भ्रमसंयुक्त, प्रसुप्त, सम्मूर्च्छित, वृद्ध, बाल, प्रौढ़, यौवनगर्वित, शत्रु पक्ष में स्थित रहने वाले, निर्वीय सत्त्ववर्जित अंश से विहीन और सौ-सौ टुकड़ों में खण्ड किये गये हैं । इस प्रकार सदोष मन्त्र इस योनिबन्ध के द्वारा बहुत शीघ्र ही समर्थ हो जाते हैं तथा साधक के द्वारा नियोजित (अनुष्ठित) किये जाने पर ये सभी सिद्धि और मोक्ष देने वाले हो जाते हैं ॥ १०२-१०५ ॥

यद्यदुच्चरते मन्त्री वर्णरूपं शुभाशुभम् ।
तत्तत् सिध्यत्यसन्देहो योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १०६ ॥

इस योनि मुद्रा का इतना बड़ा प्रभाव है कि मन्त्री शुभाशुभ जिस वर्ण का उच्चारण करता है निःसन्देह सिद्ध हो जाता है ॥ १०६ ॥

दीक्षयित्वा विधानेन अभिषिच्य सहस्रधा ।
ततोऽधिकारी भवति तन्त्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः ॥ १०७ ॥

विधानपूर्वक दीक्षा लेकर एक सहस्र बार अभिषिक्त होने पर इस तन्त्र में उत्तम साधक अधिकारी होता है ॥ १०७ ॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि त्रैलोक्यमपि घातयेत् ।
नासौ लिप्यति पापेन योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥ १०८ ॥

योनिमुद्रा के निबन्धन से सहस्रों ब्रह्महत्या के पाप, किं बहुना, समस्त

त्रिलोकी की हत्या का पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकता ॥ १०८ ॥

तस्मादभ्यसनं नित्यं कर्त्तव्यं पुण्यकाङ्क्षिभिः ।
अयासाज्जायते सिद्धिरभ्यासान्मोक्षमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥

इसलिये पुण्य की इच्छा करने वाले साधकों को सर्वदा इस योनिबन्ध मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये । क्योंकि अभ्यास से सिद्धि होती है और अभ्यास से मोक्ष प्राप्ति होती है ॥ १०९ ॥

सम्वित्तिं लभतेऽभ्यासात् योगोऽभ्यासात् प्रवर्तते ।
मन्त्राणां सिद्धिरभ्यासादभ्यासाद्वायुसाधनम् ॥ ११० ॥

अभ्यास से ज्ञान होता है । अभ्यास से योग होता है । अभ्यास से मन्त्रों की सिद्धि होती है और अभ्यास से वायु साधन होता है ॥ ११० ॥

कालवञ्चनमभ्यासात्तथा मृत्युञ्जयो भवेत् ।
एतद्भेदं विजानाति स याति परमं पदम् ॥ १११ ॥

साधक अभ्यास से काल की वञ्चना कर सकता है तथा अभ्यास से ही मृत्युञ्जय हो जाता है । जो इस भेद को जान लेता है वह परम पद प्राप्त कर लेता है ॥ १११ ॥

तदष्टधा तु जीवोऽसौ बहिर्याति दिने दिने ।
दिनेशाङ्गुलिमानेन तदर्धञ्चोपवासतः ॥ ११२ ॥
त्रिगुणं रतिकाले च द्विगुणं भोजनाद् बहिः ।
अत ऊर्ध्वं वहेद्वायुस्त्रिगुणं यदि दैवतम् ॥ ११३ ॥
न्यूनं धत्ते ततः प्राणः शरीरं परिमुञ्चति ।
शरीरसमतां नीत्वा न्यूनं वा साधकोत्तमः ॥ ११४ ॥
कुम्भयित्वा अधोवायुं कुण्डलीमुखवर्त्मनि ।
योजयित्वा ततो जीवं कुण्डल्या सहितं सुधीः ॥ ११५ ॥
गमागमं कारयित्वा सिद्धो भवति नापरः ।
पीयते खाद्यते यत्तु तत्सर्वं कुण्डलीमुखे ॥ ११६ ॥
हुत्वा सिद्धिमवाप्नोति न च बन्धेन बाध्यते ।

यह जीव आठ प्रकार से शरीर पिण्ड के बाहर जाता रहता है । सामान्य प्रकार से बारह अङ्गुल, उपवास से उसका आधा छह अङ्गुल, रतिकाल में उसका तिगुना छत्तीस अङ्गुल और भोजनोपरान्त बारह अङ्गुल बाहर जाता है । यदि इसके बाद त्रिगुण वायु उससे ऊपर जावे अथवा न्यून परिमाण में यातायात करे तो प्राण शरीर को छोड़ देता है । शरीर को सीधा कर अथवा न्यून कर उत्तम साधक

अधोवायु का कुम्भक बनाकर उसे कुण्डली मुख में संयुक्त कर देवे । फिर कुण्डली सहित जीव को साधक एक-में मिलाकर गतागत करे तो वह सिद्ध हो जाता है । इस प्रकार करने से साधक जो खाता है अथवा पीता है वह सब कुण्डली के मुख में हवन करने से सिद्ध हो जाता है और किसी बन्धन से बँधता नहीं ॥ ११२-११७ ॥

अवधूताचारकथनम्

भिक्षा कार्या न च स्वार्थं कुण्डल्याः प्रकृतेः पुनः ॥ ११७ ॥
रे मातर्देहि मे भिक्षां कुण्डलीं तर्पयाम्यहम् ।
अवधूताश्रमे स्थित्वा भैरवानन्दतत्परः ॥ ११८ ॥
भैरवोऽहं न चान्योऽस्मि न चान्यो मत्परः क्वचित् ।
तन्त्रमन्त्रार्चनं सर्वं मयि जातं न चान्यथा ॥ ११९ ॥

सिद्ध साधक को स्वार्थ के लिये भिक्षा न कर केवल कुण्डली के लिये ही भिक्षाटन करना चाहिये । वह किसी अवधूत आश्रम में निवास कर भैरवानन्द में तत्पर हो 'रे मातर्.....कुण्डली तर्पयाम्यहम्' पर्यन्त श्लोक वाक्य पढ़कर भिक्षाटन करे। मैं भैरव हूँ; इस जगत् में मुझसे अन्य कोई नहीं है । सारा मन्त्र तन्त्र का अर्चन मुझमें ही पर्यवसित होता है; यह अन्यथा नहीं है ॥ ११७-११९ ॥

शिवोऽहं भैरवानन्दो मत्तोऽहं कुलनायकः ।
रक्तमाल्याम्बरधरो हेतुयुक्तः सदा भवेत् ॥ १२० ॥

मैं शिव हूँ, भैरवानन्द हूँ, मैं मस्त हूँ और कुल सम्प्रदाय विशेष का आचार्य हूँ—इस प्रकार साधक भावना करे । इस प्रकार वह भैरव होकर लाल वर्ण की माला पहनकर हेतु (कुण्डलीनिस्सृत मद्यपान) युक्त सदा रहे ॥ १२० ॥

एवं भिक्षां व्रजन् भिक्षुर्भैरवानन्दतत्परः ।
येन केनापि वेशेन येन केनाऽप्यलक्षितः ॥ १२१ ॥

भिक्षा के लिये प्रव्रजन् करने वाला भिक्षु भैरवानन्द में तत्पर रहे । जिस किसी वेश को धारण कर जैसे कैसे भी हो सके तो अलक्षित रहे ॥ १२१ ॥

यत्र कुत्राश्रमे तिष्ठन् कुलयोगीश्वरः सदा ।
उन्मत्तमूकजडवत् विरले लोकमध्यगे ॥ १२२ ॥

ऐसा कुल योगी सर्वदा कौलों के आश्रम में ही निवास करे । इस लोक में उन्मत्त एवं मूक जड़वत् आचरण करे । अथवा किसी एकान्त स्थान में जाकर निवास करे ॥ १२२ ॥

क्वचिच्छिष्टः क्वचिद्भ्रष्टः क्वचिद् भूतपिशाचवत्।
नानावेशधरो योगी विचरेत्तु महीतले ॥ १२३ ॥

कहीं शिष्ट का आचरण करे । कहीं भ्रष्ट का आचरण करे और कहीं भूतप्रेत पिशाचवत् आचरण करे । इस प्रकार अनेक प्रकार का वेश धारण कर साधक पृथ्वी तल में विचरण करे ॥ १२३ ॥

सर्वस्पर्शो यथा वायुर्यथाकाशश्च सर्वगः ।
सर्वभक्षो यथा वह्निस्तथा योगी सदा शुचिः ॥ १२४ ॥

जिस प्रकार वायु बिना विचारे जैसे तैसे ऊँच-नीच का स्पर्श करती है और आकाश जिस प्रकार सर्वगामी है तथा जिस प्रकार अग्नि सर्वभक्षी होकर भी सदा पवित्र रहता है उसी प्रकार सब का स्पर्श कर, सर्वगामी होकर एवं सर्वभक्षी होकर भी अवधूत योगी पवित्र रहता है ॥ १२४ ॥

तथा म्लेच्छगृहान्नादि योगीहस्तगतं शुचि ।
क्षीयते न च पापेन बध्यते न च जन्मना ॥ १२५ ॥

जिस प्रकार म्लेच्छादि का अन्न योगी के हाथ में जाने पर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार कुलमार्गानुसारी व्यक्ति पापादि के स्पर्श से अशुद्ध पापान्न का भक्षण कर भी (शुद्ध भाव के कारण) पाप से स्पृष्ट नहीं होता और जन्म-मरण के चक्कर से नहीं बँधता ॥ १२५ ॥

यद्वन्मन्त्रबलोपेतः क्रीडन् सर्पैर्न दंश्यते ।
तथा ज्ञानपरो योगी क्रीडन्निन्द्रियपन्नगैः ॥ १२६ ॥

जिस प्रकार मदारी मन्त्र के बल से साँप से खेलता हुआ भी उसके द्वारा डँसा नहीं जाता, उसी प्रकार ज्ञानयोगी अपने इन्द्रियरूप साँपों से खेलता हुआ भी उसके बन्धन में नहीं पड़ता ॥ १२६ ॥

पूजयन्ति महादेवीं कुलाङ्गकृष्टिमात्रतः ।
गन्धं पुष्पञ्च ताम्बूलं नैवेद्यं यत्र यद्भवेत् ॥ १२७ ॥
मनसा तत् समुत्सृज्य बाह्यतः कुलवारिणा ।
आत्मन्येव समायोज्य देवीरूपकुलेश्वरः ॥ १२८ ॥

साधक कुल के द्वारा शरीर से आकृष्ट होकर उन महादेवी का गन्ध, पुष्प, ताम्बूल एवं नैवेद्यादि जितने पदार्थ प्राप्त हों, कुल वारि से उसे प्रोक्षित कर महादेवी की पूजा बाह्य रूप से करे । उसी प्रकार उन सभी पूजा द्रव्यों को अपनी आत्मा में एकत्रित कर मानस पूजा भी करे । वह कुलेश्वर अपने में देवी का

स्वरूप धारण कर देवी की पूजा करे ॥ १२७-१२८ ॥

न पूजा नापि तन्नाम न निष्ठा न व्रतादिकम् ।
पूर्णोऽहं भैरवश्चाहं नित्यानन्दोऽहमव्ययः ॥ १२९ ॥

अथवा साधक जब अपने में 'मैं भैरव हूँ' नित्यानन्द हूँ, मैं अव्यय हूँ, जब इस प्रकार की भावना करे तब पूजा नाम निष्ठा तथा किसी प्रकार के व्रत की उसे आवश्यकता नहीं है ॥ १२९ ॥

निरञ्जनस्वरूपोऽहं निर्विकारो ह्यहं प्रभुः ।
सर्वशास्त्राभियुक्तोऽहं सर्वमन्त्रार्थपास्याः ॥ १३० ॥
अस्मत्परतरो देशो न जातो न जनिष्यति ।
आनन्दरूपवान् भूत्वा सर्वेषां प्रियकारक ॥ १३१ ॥

वह सिद्ध साधक सर्वदा अपने में इस प्रकार ध्यान करे कि मैं निरञ्जन स्वरूप हूँ, निर्विकल्प हूँ, स्वयं प्रभु हूँ । मैं स्वयं सभी शास्त्रों का ज्ञाता हूँ; सभी मन्त्रार्थ का कारण हूँ । सब कुछ मैं स्वयं ही हूँ । हमारे अतिरिक्त कोई देश न है; न होगा और न पहले भी था । मैं स्वयं ही सब कुछ हूँ; मैं आनन्द रूपवान् होकर सभी का प्रिय कारक हूँ ॥ १३०-१३१ ॥

न योगी न भोगी न वात्मा न काङ्क्षी
न वीरो न धीरो न वा साधकेन्द्रः ।
सदानन्दपूर्णो धरण्यां विवेकी
चिराज्जातधूतो द्वितीयो महेशः ॥ १३२ ॥

मैं योगी नही हूँ; भोगी और आत्मा भी नहीं हूँ । मैं कुछ नहीं चाहता; मैं वीर, धीर अथवा साधकेन्द्र नहीं हूँ । मैं इस पृथ्वी मण्डल में सर्वदा आनन्दपूर्ण हूँ और विवेकी हूँ । बहुत दिन का चिरायु एवं अवधूत योगी हूँ । किं बहुना; मैं स्वयं दूसरा महेश्वर ही हूँ ॥ १३२ ॥

श्रुतौ कुण्डलेऽसृग् गले मुण्डमाला
करे पानपात्रं मुखे हन्त हाला ।
परित्यक्तकर्मा लयन्यस्तधर्मा
विरक्तोऽवधूतो द्वितीयो महेशः ॥ १३३ ॥

कानों में रक्त का कुण्डल, गले में मुण्डमाला, हाथ में मद्य पीने का पात्र, मुख में हलाहल (विष) और समस्त (सङ्कल्प विकल्प रूप) कर्म का त्याग करने वाला हूँ । सब में अपने आपको लीन करना ही मेरा धर्म है । विरक्त हूँ; अवधूत हूँ और बहुत क्या; द्वितीय महेश हूँ ॥ १३३ ॥

वामे रामा रमणकुशला दक्षिणे पानपात्रं
मध्ये न्यस्तं मरिचसहितं शूकरस्योष्णमांसम् ।
स्कन्धे वीणा ललितसुभगा सद्गुरूणां प्रपञ्चः
कौलो धर्म्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ १३४ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचिते कौलावलीनिर्णये
एकविंशोल्लासः समाप्तः ॥ २१ ॥

कौलिकों की बाएँ ओर कामकला में कुशल रामा (रमणी), दाहिनी ओर पान-पात्र, मध्य में मरिच सहित गर्मागर्म शूकर का मांस तथा स्कन्ध पर अत्यन्त मनोहर स्वर करने वाली वीणा स्थित रहती है । इस प्रकार कौल गुरुओं का प्रपञ्च कोई कैसे जान सकता है । वह तो योगीजनों के लिये भी अत्यन्त असाध्य और अगम्य है ॥ १३४ ॥

विमर्श—इस श्लोक का रहस्यार्थ भूमिका में देखें ।

महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामरञ्जन मालवीय कृत श्रीमज्ज्ञानानन्द परमहंस विरचित कौलावलीनिर्णय नामक तन्त्र के एकविंश उल्लास की निरञ्जन हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २१ ॥

॥ समाप्तोऽयं कौलावलीनिर्णयः ॥

श्लोकार्धानुक्रमणिका

ख

ग

प

फ

ब

र

श

परिशिष्ट-१

कुण्ड निर्माण विधान

१. चतुरस्त्रकुण्ड

एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा इस प्रकार का शुभावह कुण्ड चतुरस्त्र कहा जाता है। कोई कोई तन्त्रवेत्ता दीक्षा लेने वाले शिष्य के चौबीस अङ्गुल का प्रमाण बताते हैं। कर्त्ता (शिष्य) के दाहिने हाथ के मध्यम अङ्गुलि के मध्य पर्व पर्यन्त मान को चौबीस अङ्गुलि का प्रमाण माना गया है। शास्त्रकारों ने आठ यव के प्रमाण को एक अङ्गुल प्रमाण माना है।

२. योनिकुण्ड
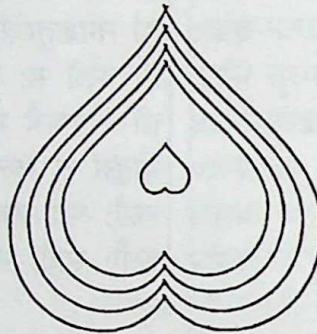
बुद्धिमान् साधक को एक हाथ वाले चतुरस्त्र के क्षेत्रफल को पाँच विभागों में प्रविभक्त करना चाहिए। प्रत्येक भाग चार अङ्गुल साढ़े छह यव के आस पास होगा। वस्तुतः यह चतुरस्त्र ही सभी कुण्डों का प्रकृतिभूत आधार है।

पुनः मध्यरेखा जो उत्तर से दक्षिण की ओर खींची गई है उसमें उत्तर की ओर पञ्चमांश बढ़ा दे। तदनन्तर उत्तर की बढ़ी हुई उस रेखा को पूर्व और पश्चिम की रेखा से मिला देना चाहिए। इसी प्रकार पूर्व दक्षिण और पश्चिम दक्षिण को मिला दें। पुनः पूर्व दक्षिण रेखा के अर्ध भाग से तथा पश्चिम दक्षिण की रेखा के अर्ध भाग से वृत्तार्ध का निर्माण करे। इस प्रकार योनि कुण्ड निर्मित हो जायगा।

३. अर्द्धचन्द्रकुण्डम्
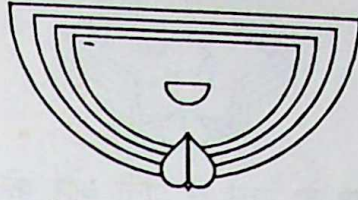
सर्वप्रथम चतुरस्त्रीकृत क्षेत्र को दश भागों में प्रविभक्त करे । तदनन्तर एक भाग ऊपर और एक भाग नीचे छोड़ देवे । फिर नीचे से ऊपर पर्यन्त प्रमाण में अर्धवृत्त का निर्माण करे और दोनों जीवा को मिला देवे। ऐसा करने से अर्धचन्द्र कुण्ड हो जाता है । यह कुण्ड अत्यन्त मनोहर होता है ।

४. त्र्यस्त्रकुण्डम्
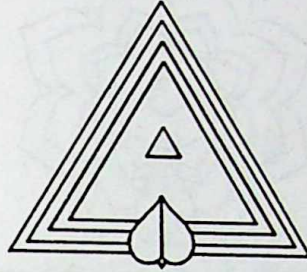
सर्वप्रथम चतुरस्त्र क्षेत्र का निर्माण करे । पुनः मध्य रेखा से दोनों ओर उसके चार भाग करे । पश्चात् मध्य रेखा में पड़े लम्ब को पूर्व की ओर चतुर्थांश बढ़ावे और आधार रेखा को दोनों ओर भी चतुर्थाशं बढ़ा देवे । फिर लम्ब से बढ़ी रेखा को दोनों बढ़े क्षेत्रों से मिला देवे । ऐसा करने से त्र्यस्त्र कुण्ड बन जाता है ।

५. वृत्तकुण्डम्
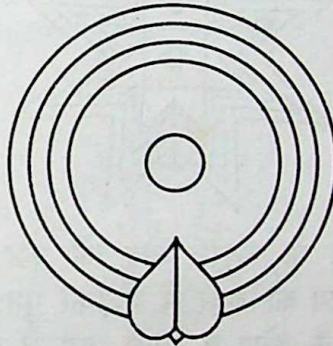
सर्वप्रथम चतुरस्त्र क्षेत्र को अट्ठारह भागों में प्रविभक्त करे । फिर मध्य के पूर्व पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण के रेखाओं में उसका एक एक अंश बढ़ा दे। पश्चात् व्यास के केन्द्र बिन्दु से चारों ओर वृत्त रेखा खींच देवे । इस प्रकार वृत्त कुण्ड बन जाता है ।

६. षडस्त्रकुण्ड
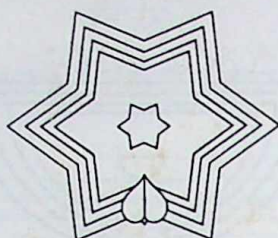
सर्वप्रथम चतुरस्त्र क्षेत्र के मध्य से दोनों ओर की रेखा को आठ भागों में प्रविभक्त कर तदनन्तर मध्य की उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम की रेखाओं को अष्टमांश बढ़ा दे । तदनन्तर बढ़ी हुई रेखाओं से सम्बद्ध व्यास के केन्द्र से एक वृत्त का निर्माण करे । तदनन्तर बढ़ी हुई रेखा के दोनों ओर तन्त्रवेत्ता साधक ४ चिन्ह लगावे । फिर छओं सूत्रों को मिला देवे तो षडस्त्र कुण्ड हो जाता है ।
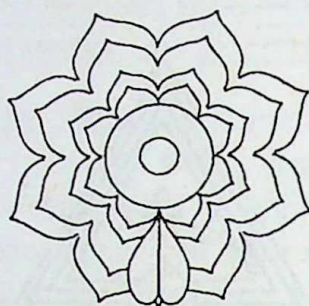
७. पद्मकुण्ड

चतुरस्त्र क्षेत्र को १८ भागों में प्रविभक्त करे। पुनः एक भाग बाहर छोड़कर चारों ओर गोल वृत्त बना देवे । पुनः कर्णिका के बाहर तीन वृत्त का निर्माण कर ले। इस प्रकार देखने में अत्यन्त मनोहर पद्मकुण्ड बन जाता है ।

८. अष्टास्त्रकुण्ड
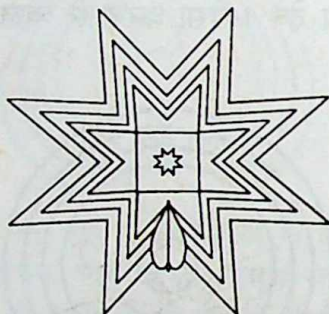
पूर्वोक्त १८ अङ्गुल के चतुरस्त्र क्षेत्र को २४ भागों में प्रविभक्त करें । तदनन्तर चारों ओर एक भाग को बाहर से छोड़कर पुनः उसे चौकोर निर्माण करे। तदनन्तर अन्तस्थ चतुरस्त्र के कोण के आधे भाग से बाहर के चतुरस्त्र कोणों से मिला देवे । फिर आठों दिशाओं के आठों सूत्रों को एक में मिला देवे । तन्त्रवेत्ताओं ने इस प्रकार के बने हुये कुण्ड को अष्टास्त्र कुण्ड कहा है ।

परिशिष्ट-२

षट्चक्र विधान

१. मूलाधार चक्र
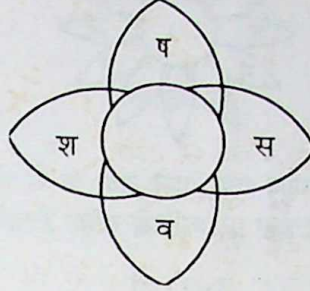
मूलाधार नाम का महापद्म चार दलों से सुशोभित है, उस पर व, श, ष, स —ये चार वर्ण हैं जो स्वर्ण के समान चमकीले हैं । उसका ध्यान करने वाला साधक शक्तिब्रह्म का पद प्राप्त करता है । क्षिति, जल, तेज, वायु, व्योम तथा शून्य—ये छः चक्रों में निवास करते हैं ।

२. स्वाधिष्ठान चक्र
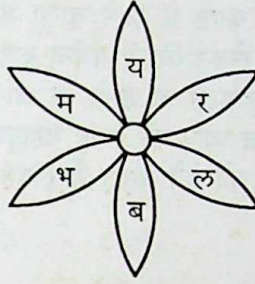
मूलाधार वाले महापद्म के ऊपर अत्यन्त तेजस्वी स्वाधिष्ठान नामक महाचक्र है जिसमें छः पत्ते हैं, साधक उसकी कर्णिका में राकिणी शक्ति के साथ विष्णु का स्मरण करे । उस स्वाधिष्ठान के षड्दल पर ब, भ, म, य, र, ल, इन छः वर्णों का ध्यान करने से मनुष्य इन्द्र पदवी प्राप्त कर सकता है, यह लिङ्ग के मूल में संस्थित है तथा कामवायु से व्याप्त है, मन्त्रज्ञ साधक को उस स्वाधिष्ठान का आश्रय लेना चाहिए ।

३. मणिपूर चक्र
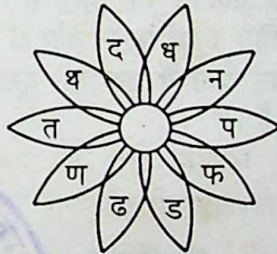
उस स्वाधिष्ठान के ऊपर नाभिमूल में करोड़ों मणि के समान प्रकाश वाला मणिपूर चक्र है जिसमें डकार से लेकर प फ पर्यन्त दश वर्ण हैं । उस मणिपूर चक्र में योग सिद्धि के लिए साधक लाकिनी सहित रुद्र का ध्यान करे ।

४. अनाहत चक्र
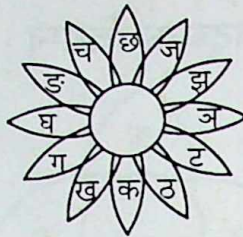
बन्धूक पुष्प के समान अरुण वर्ण वाले तथा क से लेकर ठ पर्यन्त द्वादश वर्ण से सुशोभित द्वादश पत्र वाले अनाहत चक्र पर काकिनी सहित ईश्वर का ध्यान करे ।

५. विशुद्ध चक्र
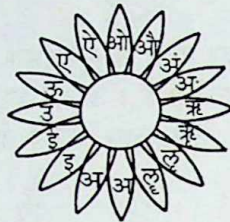
उस अनाहत चक्र के ऊपर कण्ठ में रहने वाला षोडश पत्रात्मक पद्मचक्र षोडश स्वर से परिवेष्टित है । अकार से लेकर विसर्ग पर्यन्त वर्ण सोलह स्वर होते हैं । इन स्वरों का ध्यान कर साधक को फिर कुण्डली के ऊपर ले जाना चाहिए । सोलहदल वाले इस पद्म पर साकिनी सहित सदाशिव का ध्यान करे । यह महापुण्यदायक विशुद्ध नामक महापद्म है जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को देने वाला है । यह चक्र धुएं के आकार से परिपूर्ण विद्युत्पुञ्ज के समान है ।

६. आज्ञा चक्र
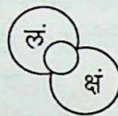
विशुद्ध चक्र के बाद हिम, कुन्द, इन्दु के मन्दिर के समान आज्ञा चक्र नामक महापद्म है जो भ्रूकुटी में है । यह चक्र दो पत्तों वाला है । बिन्दु पद से युक्त हंस मन्त्र का स्थान है, उसका भजन करना चाहिए । इस पर ल और क्ष दो वर्ण हैं जो बिन्दु से युक्त हैं । यहीं पर मन का लय होता है । उन दोनों में एक स्त्री दूसरा पुरुष प्रकृति वाला है । यह करोड़ों चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है ।
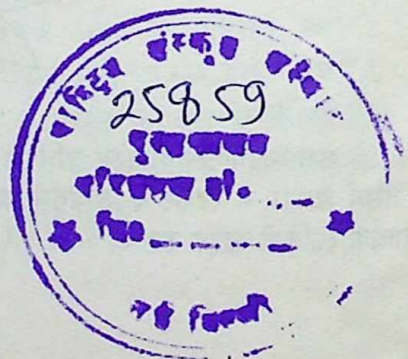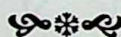
कुलार्णवतन्त्रम्

(ऊर्ध्वाम्नायतन्त्रात्मकम्-'कल्याणी'-हिन्दी व्याख्या सहितश्च)

सम्पादक एवं भूमिका लेखक : **डॉ. सुधाकर मालवीय**

हिन्दी अनुवादक : **पं. चितरञ्जन मालवीय**

कौल शब्द 'कुल' शब्द से निष्पन्न होता है। कुल शब्द के अन्यान्य अर्थ पाये जाते हैं— १. मूलाधारचक्र, २. जीव, प्रकृति, दिक्, काल, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—इन नौ तत्त्वों की 'कुल' संज्ञा है। ३. श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण की कुल संज्ञा है, इसी को योनि भी कहते हैं। सौभाग्यभास्कर ग्रन्थ में कौलमार्ग शब्द का स्पष्टीकरण 'कुल' = शक्ति, अकुल = शिव के रूप में किया गया है। कुल से अकुल का अर्थात् शक्ति से शिव का सम्बन्ध ही कौल है। कौलमतानुसार शिवशक्ति में कोई भेद नहीं है। कुलार्णव तन्त्र कौल सम्प्रदाय का अत्यन्त प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है।

प्रस्तुत संस्करण का मूल पाठ आर्थर एवलोन के संस्करण पर आधृत है। महामना संस्कृत शोध संस्थान के विद्वान् पं. चितरञ्जन मालवीय द्वारा इस ग्रन्थ की इदं प्रथमतया हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रन्थ के सम्पादक एवं भूमिका लेखक डॉ. सुधाकर मालवीय, संस्कृत विभाग, कला संकाय, का. हि. वि. वि. वाराणसी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इस प्रकार काशी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा संशोधित एवं व्याख्यात यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है और शोधार्थियों द्वारा संग्रहणीय है।

पृ. ३९२ मूल्य : रु. २००-००

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

सम्पादक एवं भूमिका लेखक : **डॉ. सुधाकर मालवीय**

हिन्दी अनुवादक : **पं. रामरञ्जन मालवीय**

ज्ञानार्णव तन्त्र का प्रस्तुत संस्करण श्रीविद्या के उपासकों के समक्ष इदं प्रथमतया हिन्दी के साथ प्रस्तुत है। प्रस्तुत संस्करण का मूल आनन्दाश्रम के मुद्रित मूल पर आधारित है तथा अनेक स्थानों पर पाठों को मन्त्रमहोदधि आदि अन्य ग्रन्थों से मिलाकर शुद्ध किया गया है। श्रीविद्याविषयक अनेक ग्रन्थ सम्प्रदायानुसार प्राप्त होते हैं। ज्ञानार्णव तन्त्र का उनमें एक विशिष्ट स्थान है। त्रिपुरसुन्दरी की उपासना इस तन्त्र का मुख्य विषय है।

श्रीविद्या के कादि, हादि और कहादि नामक तीन भेद प्रसिद्ध हैं। कादियों की देवी काली, हादियों की त्रिपुरसुन्दरी और कहादियों की तारा (अथवा नीलसरस्वती) हैं। तीनों सम्प्रदायों के अपने-अपने मान्य ग्रन्थ हैं, जिनमें त्रिपुरसुन्दरी की उपासना पद्धति का तन्त्र ग्रन्थ ज्ञानार्णव है।

प्रस्तुत ज्ञानार्णव तन्त्र की हिन्दी व्याख्या प्रथमतः महामना संस्कृत शोध संस्थान के विद्वान् पं. रामरञ्जन मालवीय द्वारा की गई है। ग्रन्थ के सम्पादक एवं भूमिका लेखक डॉ. सुधाकर मालवीय का. हि. वि. वि. वाराणसी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इन दोनों विद्वानों द्वारा सम्पादित एवं अनूदित यह तन्त्र ग्रन्थ संग्रहणीय है। पृष्ठ : ३४४ मूल्य : रु. २००-००

लक्ष्मीतन्त्रम्।

'सुधा' हिन्दीव्याख्योपेतम्।

सम्पादक एवं व्याख्याकार-

डॉ. सुधाकर मालवीय

मूल्य : रु. ४५०-००

ISBN : 81-7080-171-0 Price : Rs. 450.00